Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

खत्री हितैषी

विशेषांक

स्वर्ण जयन्ती विशेषांक

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

स्वर्ण जयन्ती वर्ष पर हार्दिक बधाइयां :

समाज की सेवा ही, भगवान की सच्ची सेवा है। संगठन में ही शक्ति है। आप समाज के लिए बहुत उपयोगी है। अपने को समाज सेवा के प्रति सक्रिय रक्खें :

卐 卐 卐

स्व० प्रताप नरायन कपूर

भू० पू० अध्यक्ष, उ० प्र० खत्री सभा

□□

मेसर्स राम नरायन प्रताप नरायन

मेसर्स राम गंगा कोल्ड स्टोरेज

कन्नौज

□

मेसर्स आर. पी. केमीकल वर्क्स

कन्नौज

□

मेसर्स पाली पैक ऊवेन सैकस प्रा. लि.

कन्नौज

□

मेसर्स प्रताप शुगर इण्डस्ट्रीज

सनऊवा, (मोहम्दी) खीरी

□

आर. पी. शुगर इन्डस्ट्रीज प्रा. लि.

पंसगवां, जिला खीरी

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी

स्वर्ण - जयन्ती विशेषांक

वर्ष १९३६ - ८७

प्रथम खण्ड

इतिहास के झरोखों से

द्वितीय खण्ड

खत्री समाज की महान विभूतियों का परिचय
जिन पर समाज को गर्व है

प्रकाशक

श्री खत्री उपकारिणी सभा लखनऊ

खत्री भवन

डा० गयेन्द्र मार्ग, लखनऊ-२२६ ०१८

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mulukata Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

स्वर्ण - जयन्ती विशेषांक

विमोचन दिनांक ११ सितम्बर, १९८८ हरिद्वार

इस अंक में

प्रथम खण्ड

- खत्री जाति की उत्पत्ति
- जाति क्या है ?
- क्षत्री तथा खत्री शब्द का अन्तर
- खत्री सब एक हैं
- खत्री जाति की विशेषतायें
- खत्रियों एवं अरोड़ों की अल्लें
- खत्रियों के गोत्र
- मान्य देवी-देवता
- सूर्यवंश-चन्द्रवंश की वंशावली
- तड़बन्दी
- भारत के इतिहास में खत्रियों का स्थान
- खत्री और उनके पूर्वज
- खत्रियों की जातीय सम्पत्ति क्या है ?
- धार्मिक उत्सव तथा पर्व
- खत्रियों के जातीय गुण
- मान्य तीर्थ स्थान
- मान्य वृक्ष
- मान्य पशु-पक्षी और पवित्र अस्त्र-शस्त्र
- विवाह एक यज्ञ–विवाह एक संस्कार
- खत्रियों के संस्कार
- अन्त्येष्ठि संस्कार में हमारा प्रायः अज्ञान
- अरोड़ों का इतिहास

द्वितीय खण्ड

लगभग २५० उन महान विभूतियों की जीवनी

जिन पर समाज को गर्व है

यह पुस्तक अधिक से अधिक खत्री परिवारों में पहुंच सके इस उद्देश्य से

मूल्य मात्र २५) रु० डाक व्यय अतिरिक्त

प्रबन्ध सम्पादक

खत्री सतीशचन्द्र सेठ

सेठ सदन-विवेक खण्ड

२०, राणा प्रताप मार्ग

लखनऊ-२२६ ००१

सह सम्पादक

खत्री महेन्द्र कुमार मेहरा

सर्वश्री हिन्दी साहित्य भण्डार

५५, चौपटियाँ रोड, सरायं माली खां

लखनऊ-२२६ ००३

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

हम नत मस्तक हैं !

आपकी प्रेरणा

एवं

आशीर्वाद से

खत्री

समाज

के

इतिहास

का

यह संकलन

प्रकाशित

हो सका

सम्पादक मण्डल

एवं

प्रबन्ध-मण्डल

खत्री हितैषी मासिक

उत्तर प्रदेश

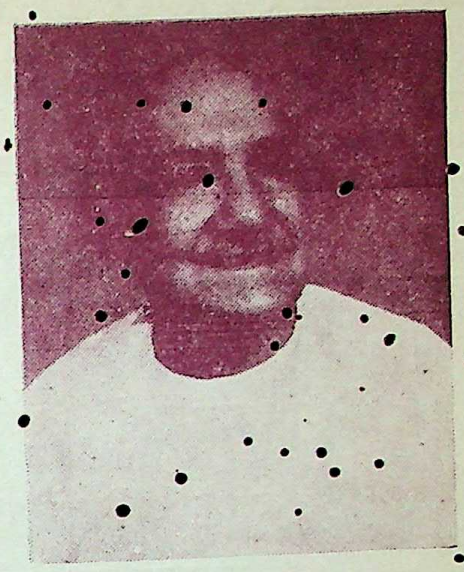

जातिरत्न

खत्री बिशनचन्द सेठ जी

वृन्दावन

मुख्य संरक्षक खत्री हितैषी मासिक

उत्तर प्रदेश

समाज के

प्रकाश

स्तम्भ

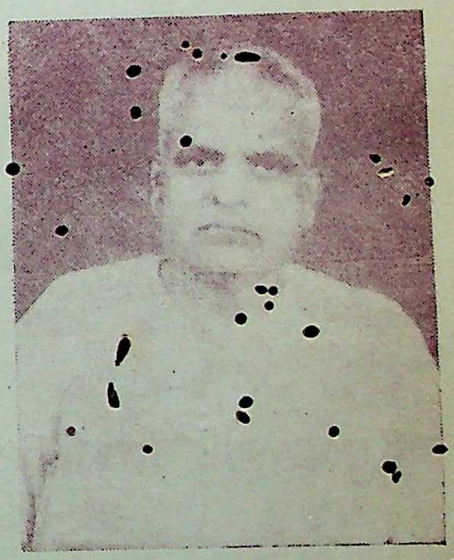

जातिभूषण

स्व० खत्री प्रताप नारायन कपूर

कन्नौज

भू०पू० अध्यक्ष उत्तर प्रदेश खत्री सभा

भू०पू० संरक्षक खत्री हितैषी मासिक

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Digital Archive.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

स्वर्ण-जयन्ती वर्ष पर खत्री समाज को

हार्दिक बधाइयाँ

कर्मठता एवं दानशीलता के लिए

स्व० सीताराम टण्डन जी

खत्री समाज में चिरस्मरणीय रहेंगे

आपके पदचिन्हों पर चलकर

अनवरत उन्नति की ओर

अग्रसर प्रतिष्ठान

फोन दुकान : ४३८६४
निवास : ३५८६२

सर्वश्री ग्राटोरज

हर प्रकार के स्कूटर व मोटर साइकिल के असली पुर्जो का एकमात्र बिक्री केन्द्र

स्टील बर्ड कं०

फाईनेकस कं०

पूजा

आदि द्वारा निर्मित आटो पार्टस तथा ऐसेसरीज आदि का

टण्डन परिवार का एकमात्र प्रतिष्ठान

८, बी० एन० रोड, लखनऊ-२२६ ००१

खत्री सुरेश कुमार टण्डन खत्री अजय कुमार टण्डन

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री

: जाति - गान

ब्रह्म विष्णु - शिव शक्ति उपासक,
निरंकार ओंकार आराधक ।
सूर्यवंश तब, चन्द्रवंश तब,
अग्निवंश जय हे, क्षत्रि जाति जय हे ।।
खत्री जाति जय हे ।

शिवा, चण्डिका, जोन बराही,
अष्टभुजी जय, विध्यवासिनी ।
वैष्णो माता ज्योताँवाली,
जय माता दी जय हे, क्षत्रि जाति जय हे ।।
खत्री जाति जय हे ।

भृगु अंगिरा अत्रिकुल संस्कृति,
नानक श्रीचन्द्र, गोविन्द संतति ।
सैनिक, शासक, भूपति पालक,
सो निहाल जय हे, क्षत्रि जाति जय हे ।।
खत्री जाति जय हे ।

ऋद्धि - सिद्ध समृद्धि दिवाकर,
पर दुःख कातर, सहज कृपाकर ।
जन-जन सेवक, सेवा प्रेरक,
आर्यवंश जय हे, क्षत्रि जाति जय हे ।।
खत्री जाति जय हे ।

रचयिता—स्व० कृष्णचन्द्र मेहरोत्रा
(जातिगौरव) वाराणसी

लखनऊ खत्री समाज के प्रकाश स्तम्भ

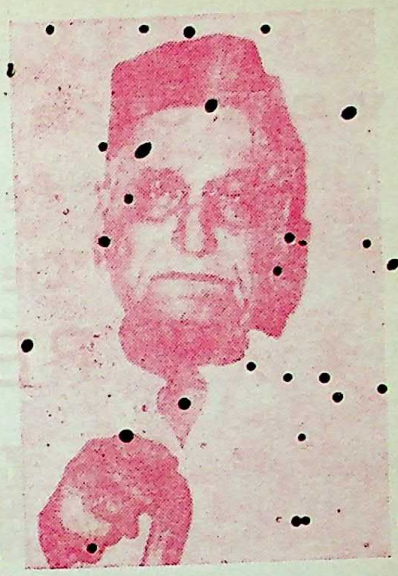

प्रसिद्ध वस्त्र व्यवसायी
स्व० बेनी माधव खत्री
कर्मठता एवं दानशीलता के लिए आप
खत्री समाज में चिरस्मरणीय रहेंगे
परिश्रम ही भगवान की सच्ची पूजा है

जिनके आशीर्वाद
से अनवरत प्रतिष्ठान

सर्वश्री बेनी माधव खत्री
थोक वस्त्र व्यापारी

सर्वश्री नारायण बेनी खत्री
छपी साड़ी के निर्माता (बम्बई एवं पाली)
कार्यालय-पुराना नजाजा अमीनाबाद, लखनऊ

सर्वश्री राज कुमार टन्डन
(एच० यू० एफ०)
थोक वस्त्र व्यापारी

सर्वश्री खत्री टेक्सटाइल्स
थोक वस्त्र विक्रेता
गणेशगंज, लखनऊ-२२६ ०१८
दूरभाष :—दुकान ४६१९३ निवास ३५५२४ - ७६१४४

CC-0. Bhagavad Ramanuja National P...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के शुभ अवसर पर टण्डन बन्धुओं की हार्दिक बधाईयाँ

मार्डन टी कम्पनी

खुली चाय के थोक व फुटकर विक्रेता

गोल दरवाजा के भीतर चौक, लखनऊ-२२६ ००३

खत्री जयकिशोर टण्डन

निवास ८२८२६ —: फोन :— ८३४१६ प्रतिष्ठान

स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ :

सुशील कुमार कपूर

एजेन्ट :— जीवन बीमा निगम

DIPLOMA IN LIFE INSURANCE MARKETING

MEMBER DIVISIONAL MANAGERS CLUB

LAHARPUR. SITAPUR

उपाध्यक्ष खत्री सभा लहरपुर

HEARTIAST CONGRATULATION ON CELEBRATION OF

"GOLDEN JUBLE" OF "KHATTRI HITAISHI"

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

STUDIO VIJAY

NEAR POST OFFICE 20, KHUN KHUN JI ROAD

CHOWK LUCKNOW-226 003

Specialist in : VIDEO 4 COLOUR, PHOTO GRAPHY, MARRIAGE, BIRTHDAY, PARTY Etc

Prop. Khattri Vijay Mehrotra

खत्री हितैषी अमर रहे

हितैषी

सम्पादक मण्डल

द्वारा प्राप्त

सहयोग

से

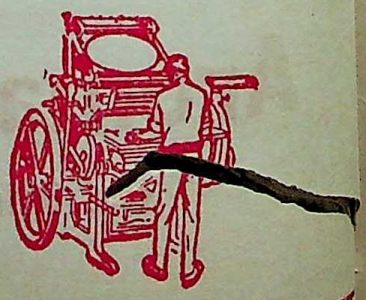

मुद्रित :—बन्धु प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

भूमिका

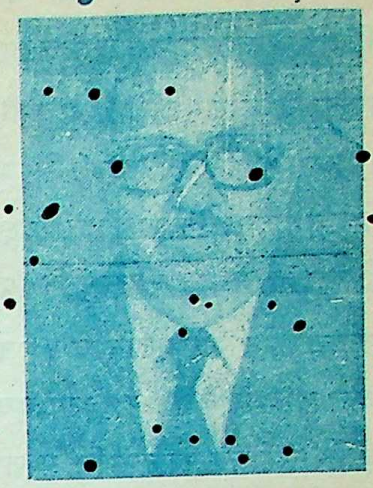

खत्री डा० बैजनाथ पुरी
बी-५८, सेक्टर-ए, महानगर
लखनऊ-२२६ ००६

खत्री जाति का इतिहास गौरवमय एवं महत्वपूर्ण है। इसका सम्पूर्ण विवरण 'क्ष' एवं 'ख' के बीच में विलुप्त है 'क्ष' का 'ख' में परिवर्तन बोलचाल भाषा की देन है। पालि एवं प्राकृत में 'क्ष' के अभाव से क्षत्री को खत्री अथवा 'खत्री' या 'खत्रिय' कह देना साधारण था। क्षयित्रों का व्यवसाय राज्य एवं युद्ध करना था पर खत्रियों का व्यापार से सम्बन्धित होना उनके सम्मानित स्तर को एक श्रेणी नीचे रखा गया। इसमें जनमत गणना के अधिकारियों की चाल थी

भारतीय इतिहास, पुरातत्व और संस्कृति के मूर्धन्य विद्वान भारतीय मनीष को अन्तर्राष्ट्रीय अभिस्वीकृत प्रदान कराने में सक्षम, गुणिषु प्रमोद, प्रबुद्ध प्रेरक 'इतिहास विशेषज्ञ" एम० ए० एल-एल० बी०, एम० लिट० डी० फिल० "इतिहास-मनीषी" सम्मान से सम्मानित—खत्री इतिहास पर शोध करता। लगभग २५ ऐतिहासिक पुस्तकों के लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त इतिहासकार डा० बी० एन० पुरी जी ने, इस स्वर्ण जयन्ती विशेषांक की "भूमिका" लिखकर जो सहयोग प्रदान किया है, उसके लिए हम सभी आपके आभारी हैं।

—प्रबन्ध सम्पादक

और १९०१ का सामाजिक जाति आन्दोलन अपने ढग का था। इसे सफलता मिली। उसने जाति के इतिहास लिखने के लिए विद्वानों को प्रोत्साहित भी किया। सर्वश्री सर्वन लाल खडन और बाद में श्री मोती लाल सेठ ने अपने ढग से खत्रियों का इतिहास लिखा जिसमें व्याकरण एवं साहित्य के आधार पर तथा पाश्चात्य विद्वानों के मतों का सहारा लेकर 'खत्री' को 'क्षत्रिय' अथवा 'क्षत्रि' श्रेणी में डालने का प्रयास किया गया। तत्कालीन परिस्थिति में इस ढग से इतिहास लिखा जाना स्वाभाविक था।

आज इस तरह के प्रकाशन को ८० वर्षों से अधिक समय हो चुका है। इतिहास का मोड़ बदल चुका है एवं 'खत्री' 'क्षत्रिय' की समानता अथवा एकीकरण की समस्या नहीं रह गई है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अब तो मध्य एवं आधुनिक कालों में राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक एवं साहित्यक क्षेत्र में खत्रियों के योगदान का अनुपात करना है। कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं रहा है जहाँ खत्रियों ने अपना सिक्का न जमाया हो। राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में मध्यकाल से ही खत्री उच्चपदों पर आसीन रहे। अलाउद्दीन से मुगलों के समय तक इनका उत्तरी भारत की राजनीति में एवं प्रशासन, शिक्षा तथा वित्तीय क्षेत्र में अधिकार रहा। इन्हें दक्षिण में भी इसी कार्य हेतु भेजा गया। कई राज्यों में यह दीवान के पदों पर आसीन रहे। व्यापार में इनकी सफलता दिल्ली, ढाका, कलकत्ता एवं अहमदाबाद (गुजरात) में इस स्तर पर पहुंच गई थी कि विदेशी यात्रियों ने इसका विवरण दिया है। साहित्य एवं धार्मिक क्षेत्रों में भी फारसी, हिन्दी एवं उर्दू में रचनाएं की। इन्होंने धर्म को राजनीति से जोड़कर एक नई दिशा दी। गुरुनानक से गुरुगोविन्द सिंह जी तक के सब सिख गुरु खत्री थे। महाराजा रंजीत सिंह तथा मराठों के यहाँ भी खत्री उच्च पदों पर थे। इनकी वीर गाथा भी हरी सिंह नलवा, मूलराज चोपड़ा इत्यादि की मिसालों से मिलती है। आधुनिक युग में भी इनका स्वधीनता आन्दोलन में हाथ रहा। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद यह सेना के क्षेत्र में तीनों अंगों में सर्वोच्च पदों पर रहे। यह उनकी प्राचीन वीरता एवं शौर्यता का प्रतीक है। जैसा कि भारत के मुख्य न्यायाधीश जस्टिस हिदायत उल्ला ने मेरी पुस्तक 'खत्रिज' ए-शोशियल हिष्टारिकल स्टडीज' (खत्री जाति एक सामाजिक, ऐतिहासिक अध्ययन) की भूमिका में लिखा है कि "खत्री चाहे जिस क्षेत्र में रहे हों सदैव सर्वोच्च पद पर पहुंच सके हैं"।

मुझे प्रसन्नता है कि खत्री हितैषी जो लगभग पचास वर्षों से जाति की सेवा में संलग्न है अपना स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक निकाल रही है। मुझे इसे देखने और पढ़ने का अवसर मिला और इसमें जाति के सामाजिक इतिहास, रीतियों एवं जाति के गण्यमान्य व्यक्तियों के परिचय उपलब्ध हैं। यह बात विशेषतया उल्लेखनीय एवं सराहनीय है कि इतने कम पृष्ठों में खत्री जाति के इतिहास एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर इस विशेषांक में समाज को बड़ी उपयोगी सामग्री देने का प्रयास किया गया है इसलिए सम्पादक तथा प्रबन्ध मण्डल बधाई के पात्र हैं। मुझे आशा है कि इस पत्रिका को अधिक से अधिक खत्री भाई अपनायेंगे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS, MoE. Digitization: eGangotri.

अखिल भारतीय खत्री महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष
उत्तर प्रदेश खत्री सभा के संरक्षक
खत्री हितैषी मासिक के संरक्षक
साहित्यकार एवं विख्यात प्रकाशक

जातिभूषण खत्री कृष्णचन्द्र बेरी जी के

उद्गार

खत्री जाति ने प्रत्येक काल में अपनी जातीय अस्मिता बनाये रखने के साथ ही संपूर्ण समाज की उन्नति और मानवमात्र की सेवा में जो अनवरत योग दान दिया है उससे यह बात निर्मूल सिद्ध हो जाती है कि जातीय चेतना का फल संकुचित मानसिकता होती है। जाति व्यवस्था के कारण चाहे बाद में समाज में कुछ खराबियाँ आ गई हों। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि इस व्यवस्था का आरम्भ श्रम विभाजन और विशेषीकरण के सिद्धान्तों की नींव पर हुआ था। यह दोनों सिद्धान्त आज भी अर्थशास्त्र के महत्वपूर्ण अंग हैं।

किन्तु प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में यह भी खतरा छिपा रहता है कि वह ऐसा विकृत रूप ले ले कि समाज को लाभान्वित करने की बजाय उसकी जड़ में कीड़ा लगाने का काम करने लगे। जातीय विशिष्टता यदि विलगीकरण का रूप ले लेती है तो वह स्वयं अपने को अनजाने ही अवनति के मार्ग पर अग्रसर करने लगती है। जहाँ किसी जाति ने अपने सदस्यों को सीमित घेरे में बंद किया और समाज के अन्य अंगों से पूर्ण संपर्क और समन्वय स्थापित न होने दिया उसी समय से वह जाति या वर्ग अपने को अलग-थलग करने लगता हैं और कालांतर में मृत या अर्धमृत होकर समाज के कंधे का बोझ बन जाता है। ऐसी दशा में उसकी प्राचीन उपलब्धियाँ प्राणहीन रूढ़ियों के रूप में ही रह जाती हैं, भाँति-भाँति की कुरीतियाँ और आत्मघाती संस्कार उसमें पैदा हो जाते हैं और उसके सदस्यों के पास एक थोथे ऐतिहासिक अभिमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता, क्योंकि साधारण समाज के लिये उनके अस्तित्व की अर्थवत्ता नहीं रह जाती और किसी प्रकार का सामाजिक सम्मान उन्हें नहीं मिल पाता।

सौभाग्य से खत्री जाति के समक्ष ऐसी स्थिति कभी नहीं आई। प्रत्येक युग में उसके साधारण सदस्यों ने अपनी आर्थिक और सामाजिक दृढ़ता कायम रखी है और प्रत्येक युग में उसके विशिष्ट व्यक्तियों ने प्रत्येक क्षेत्र—प्रशासन, रणकौशल, व्यापार, शिक्षा, साहित्य, कला आदि—में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। गुरूनानक, गुरू-गोविन्द सिंह, राजा टोडरमल, दीवान मूलराज, रामकृष्ण खत्री, आचार्य नरेन्द्र देव, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन उन खत्री नर-पुंगवों की लम्बी सूची में से कुछ नाम हैं, जिन्होंने तत्कालीन समाज को प्रगति के मार्ग पर ले जाने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। इसी स्वस्थ् परम्परा का प्रभाव है कि यद्यपि उन शताब्दियों में जब कि सारा भारतीय समाज रुढ़िग्रस्त हो गया था। खत्री समाज में भी कुछ अस्वस्थ्य परम्पराओं ने प्रवेश पा लिया, तथापि कुल मिलाकर इस जाति के सदस्य समाज की अग्रिम पंक्तियों में बने रहे।

यह संभव इसीलिये हुआ कि प्रत्येक युग में खत्री प्रतिभाओं ने अपने काल की मुख्य समस्याओं से आगे बढ़ कर टक्कर ली, वे केवल अपनी पुरानी परम्पराओं के पोषक नहीं रहे, बल्कि उन्मुक्त मानसिकता, धैर्य, साहस और कर्मठता के शस्त्रों से सज्जित होकर सामाजिक उन्नति के रणांगण में कूद पड़े।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

किन्तु हमारे अंग्रेजों ने जो कुछ किया बात वहीं पर खत्म नही हो जाती। खत्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका की परम्परा अगर हमें कायम रखनी है तो हमें स्व प्रेरणा के बल पर आज की समस्याओं से टक्कर लेनी होगी। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि आज भारतीय समाज के सामने जितनी भीषण समस्याएं हैं उतनी शायद पहले कभी नहीं थी। बेरोजगारी, निर्धनता और शारीरिक स्वास्थ्य हीनता की समस्याएं तो पहले भी थीं और आज भी हैं, सबसे बड़ी समस्या सामाजिक विघटन की है। तरह-तरह के बहाने गढ़कर स्वार्थीलोग जनता के विभिन्न वर्गों और सम्प्रदायों को आपस में लड़ा रहे हैं। कहीं धर्म का नाम लेकर निर्दोष लोगों की हत्या होती है, कहीं धार्मिक जुलूस या तो झगड़ा कराने के लिये निकाले जाते हैं या झगड़ा कराने के लिए उनपर पथराव कर दिया जाता है। इसी प्रकार के स्वार्थों के वशीभूत होकर लोग सती जैसी बर्बर और अशास्त्रीय रुढ़ि का पुनरुत्थान करने में लगे हैं और कहीं धर्मग्रन्थों की शाब्दिक सीमाओं में बंधकर विधवाओं को उनके मानवीय अधिकार से वंचित किया जाता है। दहेज के लिए वधू दाह या वधू उत्पीड़न अब प्रत्येक जाति में घर कर गया है।

खत्री समाज समय-समय पर अपनी जाति में अस्वस्थ परम्पराओं के विरुद्ध संघर्ष छेड़ता रहा है और उसने यथेष्ट रूप से इसमें सफलता भी प्राप्त की है। किन्तु हमें इसी पर संतोष नहीं कर लेना चाहिये। जाति सुधार से आगे बढ़कर हमें पूरे समाज के सुधार में अग्रणी की भूमिका निभानी चाहिये। क्योंकि हमारी परम्परा यही रही है।

हम इस कार्य के लिये सक्षम भी हैं। हमारी आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक और वैचारिक स्थिति ऐसी है कि हमें इस दिशा में अग्रसर होने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिये। जरूरत सिर्फ अपने दायित्व के बोध और दृढ़ निश्चय की है।

खत्री बन्धुओं की प्रत्येक जातीय संस्था अपने कार्यक्रम में अनिवार्य रूप से ऐसे रचनात्मक और सुधारात्मक अंग शामिल करे जिनका लाभ जाति भाइयों से आगे बढ़कर अन्य लोगों को भी मिले। कुरीतियों के विरुद्ध अभियान, एकता के प्रयास, स्वास्थ्य और शिक्षा प्रसार, भ्रष्टाचार विरोध और इसी प्रकार के अन्य उद्देश्यों के लिए हमारे जातीय संगठनों को अग्रसर होना चाहिए। और इनमें अन्य जातियों के प्रगतिशील तत्वों का सहयोग भी लेना चाहिये। समय की यही मांग है।

जहां समाचार-पत्र, पत्र-पत्रिकायें अल्पायु में विलुप्त होते रहते हैं, वहीं "खत्री हितैषी" के स्वर्ण जयन्ती अंक का प्रकाशन सामाजिक संचार माध्यम के क्षेत्र में एक चिरस्मरणीय घटना है। पत्रिका स्वयं में मुखर रही है। जो कार्य अब भ० सा० खत्री महासभा या उत्तर प्रदेश खत्री सभा तथा अन्य स्थानीय खत्री सभाओं ने किये, उन्हें अपने निर्भीक सम्पादकीय के माध्यम से खत्री हितैषी प्रेरणा देता रहा।

विगत ५० वर्षों में इसका निष्ठावान सम्पादकीय परिवार समाज का जागृत प्रहरी रह कर सेवारत रहा। समाज के कार्यक्रमों के संपादक के रूप में खत्री हितैषी परिवार को हार्दिक धन्यवाद देते हुए हम स्वर्ण जयन्ती के इस पुण्य महान अवसर पर अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर अपने कर्त्तव्य की औपचारिकता मात्र का निर्वाह कर रहे हैं। वस्तुतः इस महान ऐतिहासिक अवसर पर समाज को स्वयं एक महान आयोजन कर पत्रिका के पूरे परिवार को स्मृति फलक आदि प्रदान कर सम्मानित करना चाहिये।

पत्रिका के इस अंक में खत्री जाति का इतिहास, गणमान्य समाज सेवियों के परिचय, संस्थाओं के कार्यक्षेत्रों का विवरण आदि उपयोगी सामग्री प्रस्तुत की गई है। अतः इतिहास सम्बन्धी तथ्यों की पुनरावृत्ति इस लेख में करना अभीष्ट नहीं प्रतीत हुआ।

अन्त में खत्री हितैषी के प्राण विशेषांक के प्रबन्ध सम्पादक जाति भूषण युवा आंदोलन प्रेरक खत्री सतीश चन्द्र सेठ, पत्रिका के सम्पादक खत्री कैलाश नाथ जलोटा प्रबन्धक खत्री राधाकृष्ण टण्डन सह-सम्पादक खत्री महेन्द्र कुमार मेहरा तथा उनके अन्य सहयोगियों को हम साधुवाद देते हैं। हमें आशा है दृढ़व्रती, सत्यनिष्ठ यह परिवार हितैषी के स्वर्ण जयन्ती अंक के प्रकाशन के बाद समाज को दहेज समाचार 'नशीले पदार्थों' की बढ़ती प्रवृत्ति के प्रतिकार आदि विषयों पर भी विशेषांक प्रकाशित कर समाज का पथ-प्रदर्शन करेगा।

अपनी तथा समाज सेवियों की ओर से बधाई देते हुए अपने उद्गार लिखने के आमंत्रण के लिये कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। कामना है हितैषी शतायु हो।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सम्पादकीय एवं आभार

स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

वर्ष १९३६ से १९८७

क्षत्रधर्म समुन्नत्ये, देविः संकिटता वयम् ।
शुभाशिष मिहास्यर्म्यं, देहितत्यूर्तये ॥

हे देवि ! शक्ति रूपामां, हम खत्री (क्षत्रिय) बन्धु क्षत्र धर्म की उन्नति के लिये सगठित हुए हैं—इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें अपना शुभाशीर्वाद दो।

किसी भी राष्ट्र, समाज, समुदाय, संस्था के उत्थान में पत्र-पत्रिकाओं का विशेष महत्व होता है। इस सत्य को खत्री समाज के कर्णधारों ने समझा व स्वीकारा और वर्ष 1825 के आस पास से इस दिशा में सतत प्रयत्नशील रहे। खत्री समाज की पत्र-पत्रिकाओं का पूर्व का इतिहास तो उपलब्ध नहीं है। परन्तु 1872 में सर्वप्रथम पंजाब से खत्री समाज के पत्र का प्रकाशन उर्दू में आरम्भ होने के प्रमाण मिलते हैं। वर्ष 1879 में आगरा से "खत्री हितकारी" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन हुआ। इसी क्रम में समय समय पर अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन विभिन्न प्रान्तों व नगरों से हुआ जैसे—

खत्री संसार (हैदराबाद) वरुण सन्देश (जोधपुर) खत्री समाज (कलकत्ता) अरोड़ वंश सखा (व्यावर) खत्री दर्शन (नागपुर) अरोड़ सन्देश (दिल्ली) श्री ब्रह्म क्षत्रिय हितेच्छू (अहमदाबाद) सोमादित्य (जोधपुर) भारतीय खत्री समाज (बम्बई) अरोड़ वंश सुधारक (दिल्ली) सहस्त्रार्जुन वाणी (बैंगलोर) हिंगलाज ज्योति (जोधपुर) सूद सन्देश (कपूरथला-चन्डीगढ़) ब्रह्म क्षत्रिय (बम्बई) सहस्त्रार्जुन वाणी (शोलापुर) खत्री प्रगति (झाँसी) जातिबोध (विवेकानन्द नगर म० प्र०) अरोड़ बन्धु (श्री गंगा नगर राज०) आदि का मासिक अथवा त्रैमासिक के रूप में प्रकाशन आरम्भ हुआ, परन्तु अधिकांश का अब कहीं पता नहीं है।

नवम्बर 1936 में आगरा व अवध के संयुक्त प्रान्त (वर्तमान में उत्तर प्रदेश) की राजधानी के खत्री समाज की एकमात्र प्रतिनिधि सभा "श्री खत्री उपकारिणी सभा लखनऊ" ने अपने सक्रिय सदस्य स्व० श्री महाराज किशोर टण्डन जी (जिनका चित्र इस अंक के मुख्य पृष्ठ पर मुद्रित है) की योजना को साकार रूप प्रदान करते हुए "खत्री हितैषी" मासिक का प्रकाशन आरम्भ किया जो 50 वर्षों से निरन्तर प्रकाशित हो रही है और देश के खत्री समाज की सेवा कर रही है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आज देश का खत्री समाज इस बात का गर्व कर सकता है कि जातीय पत्र-पत्रिकाओं की शृंखला में "खत्री हितैषी" ही एकमात्र ऐसा मासिक है, जो कि देश के सात करोड़ की संख्या वाले खत्री समाज का मार्ग दर्शन एवं सेवा करता हुआ अपनी "स्वर्ण-जयन्ती" मना रहा है।

बड़ी विडम्बना है कि आजादी के 41 वर्षों के बाद भी हमारे बच्चों को, उनका इतिहास पढ़ाया जाता है, जिन्होंने हमें सैकड़ों वर्षों तक गुलाम रखा। परन्तु हमारे बच्चों को यह जानकारी नहीं है कि हम स्वयं कौन हैं—हमारी उत्पत्ति कहाँ से हुई—हम कहाँ से आये हैं—हमारे वंशज कौन थे—हमारे बुजुर्ग क्या करते थे—हमारे देवी-देवता, त्योहार, रीतिरिवाज, खानपान, भाषा आदि क्या थी—आदि विषयों पर हमारी पीढ़ी अनभिज्ञ है और हमारी अखिल भारतीय खत्री महासभा तथा उत्तर प्रदेश खत्री सभा भी इस ओर ध्यान नहीं देती है।

पिछले 40 वर्षों से यह माँग की जाती रही है कि "खत्री जाति का इतिहास प्रकाशित किया जाय। अनेक बन्धुओं एवं संस्थाओं ने इस दिशा में कार्य भी किया, परन्तु पूर्ण सफलता न मिल सकी। उत्तर प्रदेश खत्री सभा जिसका गठन वर्ष 1936 में हुआ था, बीच में लुप्त हो गई, जब उसके पुर्नगठन का भार मुझे सौंपा गया और 1982 से 1983 तक उ० प्र० के प्रत्येक अंचल का भ्रमण कर लगभग दस हजार खत्री परिवारों से सम्पर्क किया तो यह अनुभव हुआ कि खत्री बन्धुओं को अपने विषय में जानने व समझने की लालसा है, वे अपना इतिहास जानना, समझना चाहते हैं। फिर जिन विद्वानों व इतिहासकारों ने "खत्री जाति का इतिहास" लिखा वह या तो इतना विस्तृत था कि लोगों के पास उसे पढ़ने व समझने का समय नहीं था या फिर इतनी कम मात्रा में प्रकाशित हुआ कि वह कुछ इने गिने लोगों तक ही सीमित रह गया।

उपरोक्त को दृष्टिगत रखते हुए "खत्री हितैषी" के 50 वर्ष पूर्ण होने पर प्रबन्धक मण्डल ने यह निर्णय लिया कि, जिस प्रकार "खत्री हितैषी" अकेले ही देश के खत्री समाज की सेवा करती चली आ रही है, (जो कि अन्य समाजों के लिए भी उदाहरण है) इसी शृंखला में "खत्री समाज के इतिहास" को संक्षिप्त एवं सरल भाषा में समाज को उपलब्ध करवाया जाय तथा यह दायित्व मुझे सौंपा गया।

हमें प्रसन्नता है कि इस महान कार्य में हमें समाज की खत्री सभाओं, सम्पन्न वर्ग, विद्वानों, साहित्यकारों, इतिहासकारों एवं सामान्य कार्यकर्ता का सहयोग प्राप्त हुआ। हमारी योजना "स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक" को तीन खण्डों में प्रकाशित करने की थी। प्रथम—इतिहास के झरोखों से द्वितीय—खत्री समाज की महान विभूतियाँ—जिन पर समाज को गर्व है। तृतीय—खत्रियों द्वारा स्थापित संस्थाओं का विवरण।

भारत एक विशाल देश है और देश के कोने कोने में खत्री बन्धु निवास करते हैं और हर क्षेत्र में खत्रियों ने अपनी कीर्ति पताका फहराई है। जाहिर है कि इतने विशाल क्षेत्र से प्रकाशनार्थ

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सामग्री के संकलन एवं अनेक अन्य कारणों से विशेषांक के प्रकाशन में एक वर्ष से भी अधिक समय लग गया। ऐसी स्थिति में समाज के कुछ अत्यधिक उत्साही बन्धु हतोत्साहित हो, यह प्रचार करने लगे कि "विशेषांक" प्रकाशित नहीं होगा। अतः समाज में "खत्री हितैषी" की साख बनाए रखने के उद्देश्य से प्रबन्धक मण्डल ने यह निर्णय लिया कि "तृतीय खण्ड" के प्रकाशन को स्थगित कर दिया जाए और "विशेषांक" का विमोचन करा दिया जाए फिर भी प्रबन्धक मण्डल द्वारा घोषित 100 पन्नों के स्थान पर 307 पन्नों का यह "विशेषांक" समाज को इस आशा और विश्वास के साथ "समर्पित" है कि समाज इसके माध्यम से कुछ जानकारी प्राप्त कर लाभान्वित होगा।

"खत्रियों द्वारा स्थापित संस्थाओं" के विषय में भी हमारे पास देश के विभिन्न भागों से काफी जानकारी व विवरण प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त "इतिहास" सम्बन्धी भी कुछ सामग्री हमारे पास उपलब्ध है जैसे—"धर्म गुरु और संत"—"खत्रियों के पाधा-पुरोहित"—सूर्यवंशी-चन्द्रवंशी" तथा "यग्निवंशी खत्रियों" के भेद—"खत्रियों की प्रथा" आदि इनके अतिरिक्त अपने समाज के कुछ प्रमुख जाति सेवियों के जीवन परिचय भी हमें समय से प्राप्त न हो सकने के कारण इस "विशेषांक" में प्रकाशित नहीं हो सके हैं। किसी अन्य अवसर पर साधन उपलब्ध होने पर प्रकाशन सम्भव हो सकेगा।

हम आभारी हैं—

"स्वर्ण जयन्ती विशेषांक" में जो सामग्री प्रकाशित की गई है। उसे हमने निम्नलिखित प्रसिद्ध इतिहासकारों की पुस्तकों तथा अन्य पुस्तकों एवं समय-समय पर विभिन्न खत्री सभाओं द्वारा प्रकाशित "स्मारिकाओं" में प्रकाशित विद्वान लेखकों के लेखों से साभार लिया है—

इतिहासकार—स्व० श्री मोती लाल सेठ जी—स्व० श्री सर्वन लाल टण्डन जी—स्व० बाबू बालकृष्ण प्रसाद खत्री जी—स्व० श्री राम रक्खामल कपूर जी तथा खत्री डा० बैज नाथ पुरी जी।

पुस्तकें—"खत्री जाति परिचय (लखनऊ से प्रकाशित)" खत्री जाति का ऐतिहासिक दस्तावेज "(कानपुर से प्रकाशित)" अरोड़वंश का सक्षिप्त इतिहास "(बीकानेर से प्रकाशित)" स्वतंत्र भारत के स्वर्गीय रणवीर" (लखनऊ से प्रकाशित) "खत्रियों की प्रथा" (कलकत्ता से प्रकाशित) "खत्रियों के रीतरिवाज" (मथुरा से प्रकाशित) "खत्री जाति का ऐतिहासिक प्रकरण" (इलाहाबाद से प्रकाशित)—'वैवाहिक-प्रथा दर्पण' (क्षत्रीय चार जाति सभा लाहौर द्वारा प्रकाशित) इनके अतिरिक्त लगभग 30 स्मारिकायें और अनेक पत्र पत्रिकायें तथा स्व० श्री दयाली राम खत्री (तालबेहट) के परिवार द्वारा उपलब्ध कराये गये खत्री हितैषी के पुराने अंक एवं पत्र-पत्रिकायें आदि।

इस अंक के प्रकाशन में हमें निम्न बन्धुओं का सहयोग प्राप्त हुआ है—खत्री विश्वेश्वर नाथ मेहरोत्रा जी (कानपुर) संयोजक—"इतिहास उप-समिति अ०भा० खत्री महासभा"—खत्री हरिमोहन

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

दास टण्डन (इलाहाबाद) अध्यक्ष उ०प्र० खत्री सभा—खत्री प्रदीप मेहरोत्रा जी (लखनऊ) समाचार सम्पादक दूरदर्शन लखनऊ—खत्री डा० भंवर अरोड़ा (चुरू राजस्थान)—खत्री गुरदेव बधवा जी (दिल्ली)—जातिगौरव खत्री श्री नारायन टण्डन जी (आगरा) खत्री गोपाल चन्द्र मेहरोत्रा जी (मथुरा) खत्री गिरीश मेहरा जी (दिल्ली) खत्री किशन चन्द्र टण्डन जी (कलकत्त) खत्री नवल खन्ना जी (कानपुर) खत्री किशोर कुमार टण्डन जी (लखनऊ) खत्री सोहन लाल मेहरोत्रा जी (वाराणसी)—खत्री सन्तोष कुमार साहनी जी (तालबेहट)—खत्री विनय खन्ना (मुरादाबाद)—खत्री सुरेश टण्डन जी (लखनऊ) खत्री रामरतन साहनी जी (झाँसी) जातिगौरव खत्री राम नाथ महेन्द्र जी (कानपुर) जातिभूषण खत्री पूरन चन्द्र बेरी जी (आगरा) खत्री राजकुमार सेठ (लखनऊ) श्रीमती खत्री कुसुम टण्डन जी (मेरठ) स्व० श्री तेजनारायन टण्डन जी (लखनऊ) जातिभूषण खत्री गोपाल दास खन्ना जी (इलाहाबाद) खत्री कमल सेठ (लखनऊ) खत्री बिजय सहगल (झाँसी) खत्री जे० एन० मेहरोत्रा (लखनऊ)।

खत्री राजकुमार सहगल जी (लखनऊ) मुख्य आवरण के छायाकार—खत्री सुनील बैजल जी (लखनऊ) मुख्य आवरण के मुद्रक तथा श्री अशोक कुमार दीक्षित जी (लखनऊ) पत्रिका के मुद्रक—सर्वश्री हिन्दी साहित्य भण्डार (चौक लखनऊ) प्रकाशक के अतिरिक्त पत्रिका के संरक्षक सदस्यों सभी विज्ञापन दाताओं—पाठकों—शुभचिन्तकों तथा जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप में भी सहानुभूति रखते हुये हमारे मनोबल को बनाये रखा या अन्य किसी प्रकार से सहयोग दिया उन सभी के प्रति मैं अपनी ओर से—श्री खत्री उपकारिणी सभा लखनऊ की ओर से तथा खत्री हितैषी के प्रबन्धक मण्डल व सम्पादक मण्डल की ओर से आभार प्रकट करता हूँ।

हमारा प्रयास रहा है कि सीमित साधनों तथा सीमित पन्नों में हम अधिक से अधिक उपयोगी सामग्री सकलित कर इस विशेषांक के द्वारा खत्री परिवारों तक पहुँचायें। हमारा यह प्रयास कहाँ तक सफल या असफल रहा यह तो तभी ज्ञात हो सकेगा जब हमें आपके पत्रों द्वारा आपकी प्रतिक्रिया ज्ञात हो सकेगी।

जय खत्री समाज

प्रबन्ध सम्पादक

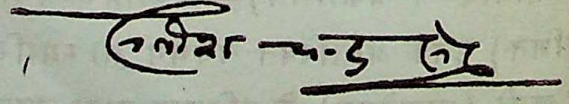

खत्री हितैषी का संरक्षक शुल्क ५०१) रु० मात्र

CC-0. Bhanavat Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

१९३६-८७

सम्पादक मण्डल

प्रबन्धक

खत्री राधाकृष्ण टण्डन

मन्त्री हितैषी

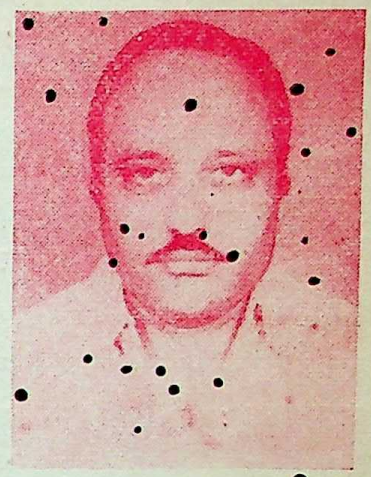

खत्री अशोक कुमार खन्ना

प्रबन्ध सम्पादक

जातिभूषण
खत्री संतीशचन्द्र सेठ

सम्पादक

खत्री कैलाशनाथ जलोटा

सह सम्पादक

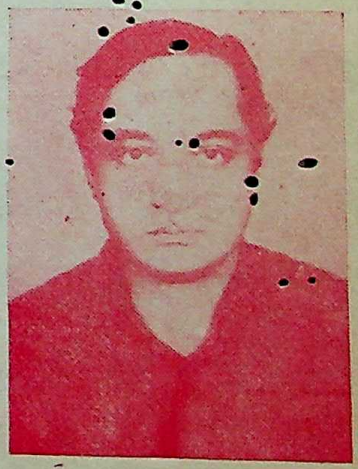

खत्री महेन्द्र कुमार मेहरा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी (मासिक) की प्रकाशक

श्री खत्री उपकारिणी सभा लखनऊ की

कार्यकारिणी समिति की सूची

अध्यक्ष :— श्री खत्री अमर नाथ मेहरोत्रा, एड्वोकेट
३५, खुनखुन जी रोड, चौक, लखनऊ-२२६ ००३

उपाध्यक्ष :— श्री खत्री गुलाबचन्द्र सेठ
२०, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ-२२६ ००१

उपाध्यक्ष :— श्री खत्री मुनेन्द्र नाथ मेहरोत्रा
'शंकर आश्रम' मिर्जा मण्डी, चौक, लखनऊ-२२६ ००३

महामंत्री :— जातिभूषण खत्री सतीशचन्द्र सेठ
सेठ सदन, विवेक खण्ड, २० राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ-२२६ ००१

कोषाध्यक्ष :— श्री खत्री गोपाल दास कपूर
कन्हैया कुन्ज, ३०, खुनखुन जी रोड, चौक, लखनऊ-२२६ ००३

सहमंत्री :— श्री खत्री प्रभात मेहरोत्रा
२६५, बाजार झाऊलाल, अमीनाबाद, लखनऊ-२२६ ०१८

भण्डार मंत्री :— श्री खत्री राधा कृष्ण टण्डन
प्रबन्धक हितैषी :— २२, लेइयावाली गली, अमीनाबाद, लखनऊ-२२६ ०१८

मंत्री हितैषी :— श्री खत्री अशोक कुमार खन्ना
सर्वश्री बेनी माधव रामनाथ होलसेल
मेहरा बिल्डिंग, गुईन रोड, अमीनाबाद, लखनऊ-२२६ ०१८

सदस्य :— श्री खत्री भोला नाथ खन्ना
सर्वश्री प्रेम मेडिकल हाल
घन्टाघर पार्क, अमीनाबाद, लखनऊ-२२६ ०१८

सदस्य :— श्री खत्री गंगा नारायन कपूर
३०, खुनखुन जी रोड, चौक, लखनऊ-२२६ ००३

सदस्य :— श्री खत्री कैलाश नाथ सेठ
सन्तोष निवास, २२/४२, पीरपुर स्क्वायर, नरही, लखनऊ-२२६ ००१

सदस्य :— श्री खत्री शिवराम कपूर
सी-२०-के रोड (मन्दिर मार्ग) महानगर विस्तार-२२६ ००७

सदस्य :— श्री खत्री सुरेश कुमार टण्डन
सर्वश्री आटोएज, नं० ८ बी० एन० रोड, लखनऊ-२२६ ००१

सदस्य :— खत्री विजय नारायन कपूर
बाजार झाऊलाल, अमीनाबाद, लखनऊ-२२६ ०१८

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

उत्तरप्रदेश खत्री सभा

मुख्य संरक्षक–जातिरत्न खत्री विशनचन्द्र सेठ, रमणरेती, चुंगी चौकी के पास, वृन्दावन, मथुरा

उ.प्र. खत्री सभा के सत्र १९८६-८८ के पदाधिकारी गण

नाम	पद	पता	फोन नं० कार्यालय–निवास
खत्री हरिमोहनदास टण्डन	(अध्यक्ष)	५८, रानीमण्डी, इलाहाबाद	५११४२ ५०५१७
जातिभूषण खत्री धर्मपाल मेहरा	(निवर्तमान अध्यक्ष)	नईकोठी, आगरा रोड, हाथरस	८९८ ४१२
जातिभूषण खत्री कालीचरन टण्डन	(वरिष्ठ उपाध्यक्ष)	प्रताप कुटीर, स्टेशन रोड, कन्नौज	— —
खत्री शंकरलाल मेहरोत्रा	(महामन्त्री)	चित्रा, चौक, वाराणसी ६४०९६	६३४२१ ६४५२५
जातिभूषण खत्री सतीशचन्द्र सेठ	(निवर्तमान महामंत्री)	सेठ सदन, विवेक खण्ड २०, राणाप्रताप मार्ग, लखनऊ	३४३१८
खत्री रामलाल खन्ना	(कोषाध्यक्ष)	सर्वश्री मोहनलाल कृष्णचन्द्र, चौक, वाराणसी	६३४८४ ५४०३१
खत्री श्यामसुन्दर मेहरोत्रा	(सहमंत्री)	५४५, मालवीय नगर, इलाहाबाद	५१५५१ पी०पी०
खत्री प्रयाग नारायन कपूर	(संगठन मंत्री)	३६/३४, राममोहन हाता, कानपुर	६२४६९
खत्री डा० आर० एन० वैजल	(सांस्कृतिक मंत्री)	आशीर्वाद प्रभु टाउन गेट के-पास प्रभुटाउन, रायबरेली-२२५००१	२८४९ पी०पी० — —
खत्री नवल खन्ना	(मण्डलीय मंत्री)	५४/२६, नयागंज, कानपुर	६९४९६ ६१०१२

उपाध्यक्ष

नाम	मण्डल	पता	फोन नं० कार्यालय–निवास
जातिगौरव खत्री आर० एन० मेहरा	देहरादून	सुमन विला, वजीर हसन रोड, लखनऊ-१	३४३८४ ४९६९२
खत्री त्रिलोकचन्द्र सेठ	बरेली	३५/७८, सिविल लाइन्स, बरेली	— —
जातिगौरव खत्री त्रिभुवननाथ पुरी	शाहजहाँपुर	मे० पुरी ट्रान्सपोर्ट कं० लहरपुर, सीतापुर	२६
जातिभूषण खत्री सतीशचन्द्र सेठ	लखनऊ	२०, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ	३४३१८ पी०पी०
खत्री मोहननारायन टण्डन	इलाहाबाद	७, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद	— —
जातिगौरव खत्री रामनाथ महेन्द्र	कानपुर	मे० भगतराम जयनारायन बिरहाना रोड, कानपुर	६३३०७ २४१४०५
खत्री प्रकाश नारायन कपूर	वाराणसी	मे० रामनारायन प्रतापनारायन महात्मा गांधी मार्ग, कन्नौज	२४/२७ ७७

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

नाम	मण्डल	पता	फोन नं० कार्यालय–निवास
जातिगौरव खत्री रामभरोसे कपूर	आगरा	४७३, महंतपुरा गली, मथुरा	— —
जातिगौरव खत्री प्रकाशशंकर टंडन	मेरठ	टण्डन विला, ३/२ रामघाट रोड आर०टी०ओ० आफिस के सामने, अलीगढ़	३७५७ ४११३

मण्डल संयोजक

नाम	मण्डल	पता	फोन नम्बर
खत्री किशोर कुमार सेठ	देहरादून	वीरा बिल्डिंग, शेखपुरा कनखल, हरिद्वार	— —
खत्री सी० एल० सरीन, एडवोकेट	बरेली	११६, टिकैतगंज, बदायूं	— —
जातिगौरव जयकारनाथ कपूर	शाहजहाँपुर	महेन्द्र टोला, खैराबाद, सीतापुर	— —
किशोर कुमार टण्डन	लखनऊ	सरायं माली खां, चौक, लखनऊ	८२५०८
खत्री अनूपकुमार मेहरोत्रा	इलाहाबाद	६५, रास मण्डल, जौनपुर	— —
खत्री सुशील खन्ना	कानपुर	३६/१८, राममोहन हाता, कानपुर	— —
खत्री सुभाष मेहरा	वाराणसी	M/s सूखा हारी जानसेनगंज, इलाहाबाद	— —
खत्री प्रदीपकुमार अरोरा	आगरा	अरोरा सदन, ३०१ सीकनापान गली, रुई की मण्डी, हाथरस	— —
खत्री जे० पी० कपूर	मेरठ	जे २/४५, विजयनगर, कानपुर	— —

अध्यक्ष द्वारा कार्यकारिणी समिति के मनोनीत सदस्य

नाम	पता	फोन नं० कार्यालय–निवास
जातिभूषण खत्री काशीनाथ मेहरोत्रा	काशी निवास, काशी नगर, लखीमपुर	२००५
जातिभूषण खत्री पूरनचन्द्र बेरी	९४, कसेरट बाजार, आगरा–३	७२४८९ ७४०७३
खत्री सोहनलाल मेहरोत्रा	मेघदूत इन्जीनियरिंग, मलदहिया, वाराणसी	६५६९१ ६५७५९
खत्री राजेन्द्रनाथ मेहरोत्रा	मे० लाला केदारनाथ खत्री, महात्मा गांधी मार्ग, कन्नौज	५ ९५
खत्री प्रकाशनारायन कपूर	मे० प्रकाश आटोमोबाइल चौराहा बिलग्राम, हरदोई	— —
खत्री सन्तोषकुमार साहनी	तालबेहट, जिला–ललितपुर	— —
श्रीमती कामिनी टण्डन	२२/२२, पटकापुर, कानपुर	— ६१२०७
श्रीमती शान्ति सेठ	१३/१४ मौरावां हाउस, कैंट रोड, लखनऊ	— —
श्रीमती सुधा अरोरा	डी १५/४१, नीची ब्रह्मपुरी, बांस फाटक, वाराणसी	५३६३५ ६२८१८
कु० शोभा टण्डन	७, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद	— —

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

उत्तर प्रदेश खत्री सभा

से

सम्बद्ध सभायें

१ खत्री सभा देहरादून
२ खत्री सभा (बी.ऐच.ई.एल. पंचपुरी) हरिद्वार
३ खत्री सभा सहारनपुर
४ खत्री सभा रुड़की
५ खत्री सभा बरेली
६ खत्री सभा मुरादाबाद
७ खत्री सभा अमरोहा
८ खत्री सभा रामनगर
९ खत्री सभा रामपुर
१० खत्री सभा काशीपुर
११ खत्री सभा शाहजहांपुर
१२ खत्री सभा सीतापुर
१३ खत्री सभा लहरपुर
१४ खत्री सभा बिसवां
१५ खत्री सभा खैराबाद
१६ खत्री सभा लखीमपुर-खीरी
१७ खत्री सभा मोहम्मदी
१८ खत्री सभा हरदोई
१९ खत्री सभा पिहानी
२० खत्री सभा बिलग्राम
२१ श्री खत्री उपकारिणी सभा लखनऊ
२२ खत्री सभा रायबरेली
२३ खत्री सभा अकबरपुर
२४ खत्री सभा बाराबंकी
२५ खत्री सभा प्रयाग
२६ खत्री सभा सुल्तानपुर
२७ खत्री सभा जौनपुर
२८ खत्री सभा प्रतापगढ़
२९ खत्री सभा कानपुर
३० सारस्वत खत्री सभा फर्रुखाबाद
३१ सारस्वत खत्री सभा कन्नौज
३२ खत्री सभा तालबेहट
३३ खत्री सभा झांसी
३४ खत्री सभा कालपी
३५ खत्री सभा कोंच
३६ खत्री सभा इटावा
३७ खत्री हितकारिणी सभा वाराणसी
३८ श्री खत्री सभा मीर्जापुर
३९ खत्री सभा आगरा
४० खत्री सभा अलीगढ़
४१ खत्री सभा हाथरस
४२ खत्री सभा मथुरा
४३ खत्री सभा कासगंज
४४ खत्री सभा मेरठ
४५ खत्री सभा गाजियाबाद
४६ खत्री सभा इटावा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर खत्री समाज को शुभ कामनायें :—

खत्री गोपाल कृष्ण कपूर

फोन— निवास ७४१६१ पी०पी०
प्रतिष्ठान ७८४२६

卐

सर्वश्री सस्ता साड़ी इम्पोरियम

सूटिंग-शर्टिंग एवं हर प्रकार की साड़ी, शाल, ड्रेस मैटीरियल, कम्बल, चादर आदि के विक्रेता

बड़ा बाजार, बरेली

खत्री नरेश कुमार नानक लाल चोपड़ा

सर्वश्री नरेन्द्र स्टोर्स

टी० बी० सेटस एवं टेपरिकार्डर आदि के विक्रेता

मेनरोड चिखली, जिला-बुलडाणा

सहयोगी प्रतिष्ठान — सर्वश्री रमेश हार्डवेयर

कथा रस्सी, नैलोन रस्सी, हार्डवेयर आदि थोक भाव मिलने का स्थान

मेनरोड चिखली, बुलडाणा

स्वामी रमेश लाल नानक लाल चोपड़ा

With best compliments from :

Phone 83246

PRESSTO PUBLISHING HOUSE (Printer)

29, NAPIER ROAD COLONY PART (I), LUCKNOW

• PRINTERS • PUBLISHER • STATIONER

• SCREEN • OFFSET PRINTERS

KHATTRI SUNIL KUMAR BAIJAL

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :—

GOLDEN CRISPIES (INIDA) Pvt. Ltd.

LUCKNOW

INTRODUCING FIRST TIME IN INDIA

INTERNATIONAL QUALITY OF SNACK ROODS.

'MASALA PUFFS'

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

उत्तर प्रदेश खत्री सभा

द्वारा "अलंकार" से सम्मानित "खत्री हितैषी" परिवार के बन्धुओं का परिचय

उ० प्र० खत्री सभा, अन्तर्राष्ट्रीय-राष्ट्रीय अथवा प्रान्तीय स्तर के जाति सेवी, समाज सेवी, राष्ट्र सेवी, वैज्ञानिक, चिकित्सक, शिक्षाविद, अभियन्ता, अधिवक्ता, सैनिक तथा इनके समकक्ष उन खत्री बन्धुओं को जिनके कर्म से राष्ट्र तथा समाज का मस्तक ऊँचा हुआ हो, ऐसे खत्री बन्धुओं को प्रान्तीय स्तर पर "जातिभूषण" तथा जनपद स्तर पर "जातिगौरव" अलंकार प्रदान कर सम्मानित करती है।

हर्ष का विषय है कि "उत्तर प्रदेश खत्री सभा" की कार्यकारिणी समिति ने दिनांक ९ नवम्बर वर्ष १९८६ को शाहजहाँपुर में सम्पन्न अपनी बैठक में प्रदेश स्तर पर "दस" विशिष्ट जाति सेवियों को "जातिभूषण" अलंकार से तथा जनपद स्तर पर "सोलह" विशिष्ट जाति सेवियों को "जातिगौरव" अलंकार से एक-एक शील्ड एवं एक-एक ऊनी शाल भेंट कर सम्मानित किया। इनमें अधिकतर "खत्री हितैषी" परिवार के बन्धु हैं। इन सभी अलंकृत बन्धुओं को अनेकानेक बधाइयाँ। अलंकृत बन्धुओं में से जिनका सहयोग "खत्री हितैषी" को प्राप्त हुआ और उनके चित्र एवं जीवनी उपलब्ध हो सकी, उनका संक्षिप्त विवरण समाज की जानकारी हेतु प्रस्तुत है।

—सम्पादक

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक-समाज एवं जाति सेवा में अग्रणी, स्नेहमय ममत्व धनी स्व० बुद्धू लाल मेहरोत्रा जी का जन्म कानपुर के प्रतिष्ठित मेहरोत्रा परिवार में श्री ज्वाला प्रसाद मेहरोत्रा जी के घर वर्ष १८९६ में कानपुर में हुआ था।

आप जीवन भर राष्ट्रीय चेतना की मुख्य धारा से जुड़े रहे। "सादा जीवन-उच्च विचार" को उन्होंने सदा जीवन में उतारने का प्रयास किया। कानपुर नगर के खत्रियों के जन-सेवारत संस्थान उनके स्मारक के रूप में सदैव याद किये जायेंगे।

सार्वजनिक खत्री धर्मशाला—छोटे लाल गया प्रसाद ट्रस्ट—बुद्धा देवी अस्पताल—खत्री औषधालय—नवजीवन पुस्तकालय एवं अनेक संस्थायें उनके निर्देशन और मार्ग-दर्शन में सफलतापूर्वक संचालित होती रही हैं। उनकी अथक सेवाओं को ध्यान में रखते हुए अखिल भारतीय खत्री महासभा ने उन्हें "जाति-रत्न" अलंकार से सम्मानित करने का निश्चय किया। परन्तु मेहरोत्रा जी की अस्वस्थता के कारण उनके जीवन काल में समारोह यह उपाधि उन्हें दी न जा सकी।

चित्र उपलब्ध नहीं

जातिभूषण
स्व० बुद्धू लाल मेहरोत्रा

इस महान जातिसेवी का लम्बी बीमारी के बाद दिनांक २ अप्रैल १९८६ को कानपुर में निधन हो गया। श्री बुद्धू लाल मेहरोत्रा जी की विशिष्ट सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उ० प्र० खत्री सभा ने मरणोपरान्त आप को प्रदेश के सर्वोच्च सम्मान जातिभूषण अलंकार से सम्मानित किया। आप खत्री हितैषी के "संरक्षक" रहे हैं।

हर्ष की दान दायनी धरा कन्नौज के खत्री श्री राम नारायन कपूर जी के घर १७ जनवरी १९१७ को खत्री श्री प्रताप नारायन कपूर जी का जन्म हुआ। समाज सेवा आप को पैत्रिक गुण के रूप में मिली। अपने पैत्रिक व्यापार के साथ-साथ आप अनेक संस्थाओं की स्थापना तथा संचालन का कार्य बड़ी लगन व निष्ठा के साथ करते रहे हैं। खत्री समाज के उत्थान के लिये आप सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। उ० प्र० खत्री सभा का गठन तथा खत्री समाज के इतिहास का प्रकाशन इस स्वर्ण जयन्ती विशेषांक के रूप में खत्री प्रताप नारायन कपूर जी की प्रेरणा से ही सम्भव हो सका।

आप वर्ष १९८२ से १९८५ तक उ० प्र० खत्री सभा के प्रथम अध्यक्ष के रूप में खत्री समाज की सेवा करते रहे। फरवरी १९८३ में कन्नौज का अविश्मर्णीय ऐतिहासिक खत्री अधिवेशन आप ही की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। १६ मई १९८३ को आप सम्पूर्ण खत्री समाज को रोता बिलखता छोड़ स्वर्ग सिधार गये। खत्री जाति की सेवाओं के उपलक्ष में आप को मरणोपरान्त "जातिभूषण अलंकार" प्रदान कर सम्मानित किया गया।

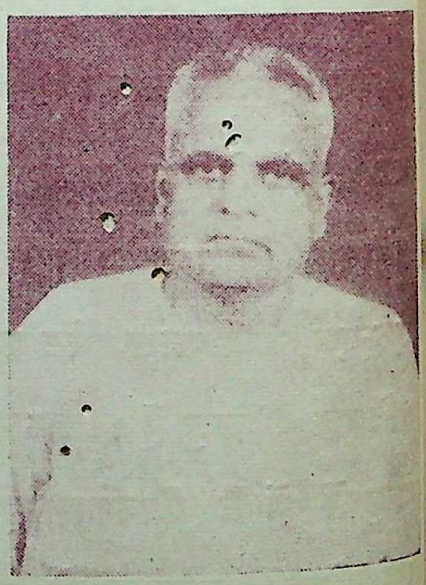

जातिभूषण
स्व० प्रताप नारायन कपूर
भू० पू० संरक्षक खत्री हितैषी
भू०पू० अध्यक्ष उ०प्र० खत्री सभा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

वाराणसी के सम्भ्रांत एवं प्रतिष्ठित खत्री परिवार के खत्री श्री पी० एन० मेहरोत्रा जी के घर १५ अगस्त १९३६ को खत्री श्री कृष्ण चन्द्र मेहरोत्रा जी का जन्म हुआ। प्रतिभावान एवं कर्मठनिष्ठ कृष्ण चन्द्र जी अनेक सामाजिक व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सम्बद्ध रहे तथा जातीयता तो आप में कूट-कूट कर भरी थी। आपने "खत्री जातिगान" को लिखा जिसे आज देश की सारी खत्री सभाओं के कार्यक्रम के आरम्भ में गाया जाता है।

वर्ष १९६६ में आपने पूर्वी एशिया की यात्रा भी की थी। खत्री हितैषी के लिए मेहरोत्रा जी लेख आदि लिखते रहे हैं। आप की जातीय सेवाओं को देखते हुये उ० प्र० खत्री सभा ने आपको मरणोपरान्त "जातिभूषण अलंकार" से सम्मानित किया।

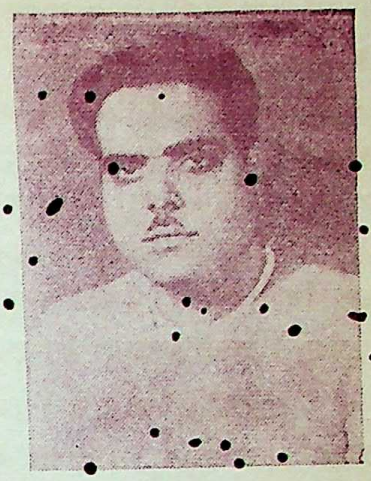

जातिभूषण
स्व० कृष्ण चन्द्र मेहरोत्रा
जातिगान के रचयिता

काशी के प्रतिष्ठित खत्री निहाल चन्द्र बेरी जी के घर १० मार्च १९२० को खत्री कृष्ण चन्द्र बेरी जी का जन्म हुआ। समाज सेवा के क्षेत्र में आप का विशेष योगदान है। १४ वर्ष की अवस्था में आपने "मलाया" तथा "वर्मा" आदि का भ्रमण किया। आप देश की अनेकों संस्थाओं से सम्बन्धित हैं। आपका नाम देश के प्रमुख पुस्तक प्रकाशकों में लिया जाता है। आप वर्ष १९६६ में अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के महामंत्री तथा १९६७ में अध्यक्ष निर्वाचित हुए खत्री कृष्ण चन्द्र बेरी जी अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियों के संयोजक व अध्यक्ष रहे हैं। आप ने राष्ट्रीय स्तर पर ख्यात अर्जित कर खत्री समाज को गौरव प्रदान किया है।

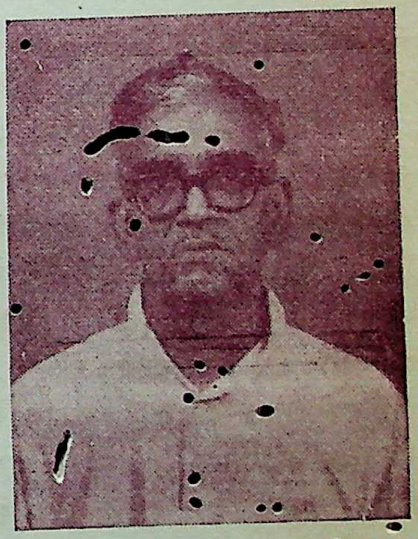

जातिभूषण
खत्री कृष्ण चन्द्र बेरी ..
संरक्षक खत्री हितैषी भू० पू० अध्यक्ष
अखिल भारतीय खत्री महासभा

खत्री समाज की उन्नति के लिए बेरी जी दिन रात प्रयत्नशील रहते हैं। दस वर्षों तक बन्द पड़ी अ०भा० खत्री महासभा के अध्यक्ष पद को ग्रहण कर आपने न केवल उसे प्राणदान दिया अपितु समाज को एक नया कार्यक्रम एवं दिशा दी। आप हृदय से चाहते हैं कि "खत्री हितैषी" की सदस्य संख्या एक लाख तक हो जाय। इसके लिए आप प्रयत्नशील भी हैं। आपके द्वारा समाज के उत्थान के लिए किये गये सराहनीय कार्यों के लिए आपको "जातिभूषण अलंकार" से सम्मानित किया गया है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जातिभूषण
खत्री धर्मपाल मेहरा जी
संरक्षक खत्री हितैषी भू० पू० अध्यक्ष
उत्तर प्रदेश खत्री सभा

श्री खत्री धर्मपाल मेहरा जी का जन्म ७ नवम्बर १९२४ को बटाला जिला गुरदासपुर (पंजाब) के सभ्रान्त मेहरा परिवार में हुआ। आपका प्रारम्भिक जीवन बड़ा ही संघर्षमय रहा है। वर्ष १९४३ में आपने व्यवसाय में पदार्पण किया और अचार तथा मुरब्बे के व्यापार में आपने सारे भारत वर्ष में प्रसिद्धि प्राप्त की। वर्तमान में आप का कार्य क्षेत्र हाथरस (उ० प्र०) है। आप विभिन्न दानशील संस्थाओं तथा स्वजातीय संगठनों के माध्यम से जरूरतमन्दों को हर प्रकार की सहायता देते रहते हैं।

दस लाख रुपये से "धर्मपाल मेहरा चैरीटेबल ट्रस्ट" की स्थापना कर "नई धर्मशाला" का निर्माण कराया जो कि जनपद अलीगढ़ में ही नहीं, उ० प्र० में अपना विशेष स्थान रखती है। खत्री धर्मपाल मेहरा जी हर वर्ष ११ कन्याओं की शादी अपने खर्च से कराते हैं।

आज उ० प्र० में सेवा तथा दान के क्षेत्र में खत्री धर्मपाल मेहरा जी पर्यावाची बन गये हैं। खत्री हितैषी मासिक के उत्थान के लिए आप सदैव चिन्तित रहते हैं। आप की दानशीलता—उदारता-जाति सेवा की लगन तथा वर्ष १९८३ से १९८५ तक उ० प्र० खत्री सभा के अध्यक्ष के रूप में सराहनीय सेवाओं के लिए आपको "जातिभूषण अलंकार" से सम्मानित किया गया।

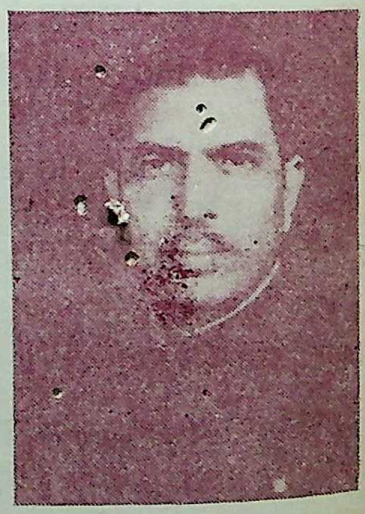

जातिभूषण
खत्री पूरनचन्द बेरी
भू०पू० कार्यवाहक अध्यश एवं
वर्तमान संरक्षक उत्तर प्रदेश खत्री सभा
सरक्षक खत्री हितैषी मासिक

श्री खत्री पूरनचन्द बेरी एक सम्पन्न तथा विश्रुत परिवार के वंशज हैं। उनके पितामह श्री मुन्नालाल बेरी दानशील एवं धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। पूरन जी के पूज्यनीय पिता श्री भगवानदास बेरी जी थे आर्य समाज में पूर्ण निष्ठा थी। श्री पूरनचन्द जी भी विद्यालय तथा आर्य समाज मन्दिरों एवं यज्ञशालाओं के निर्माण में सदा पूर्ण सहयोग देते रहे हैं। अपने पितामह के नाम पर धर्मशालाओं का निर्माण कराया है। अ० भा० खत्री महासभा को पुनः क्रियाशील करने में मुख्य भूमिका रही है। अ० भा० खत्री महासभा के महामंत्री तथा संगठन व प्रचार मंत्री रहे हैं। प्रादेशिक खत्री सभा के गत सत्र में कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में उन्होंने पूर्णनिष्ठा से कार्य किया। आगरा नगर की अनेकों धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष हैं तथा एटा के प्रसिद्ध आर्य गुरुकुल के उप-प्रधानपद भी सम्भाले हुये हैं।

आपकी विशिष्ट सामाजिक एवं जातीय सेवाओं के लिए आपको "जातिभूषण अलंकार" से सम्मानित किया गया है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जातिभूषण
खत्री गोपालदास खन्ना
संरक्षक-खत्री हितैषी मासिक
संरक्षक उ० प्र० खत्री सभा

खत्री गोपाल दास खन्ना जी का जन्म स्व० लाला सांवलदास खन्ना जी के प्रतिष्ठित तथा परोपकारी परिवार में इलाहाबाद नगर में २७ जनवरी, १९२१ में हुआ था। आपके पिता जी तथा ताऊ जी स्व० सदन लाल खन्ना जी ने "सारस्वत खत्री पाठशाला" स्थापित किया। जिसकी कि ख्याति आज सारे प्रान्त में "उच्चत्तर महाविद्यालय के रूप में है।

खत्री गोपाल दास खन्ना जी ने १५ वर्ष की अवस्था में १९३६ में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। अपनी कार्यक्षमता, निर्भीकता और स्पष्ट बोलने के कारण ही वह शीघ्र सबके प्रिय हो गये। आपने वर्ष १९५८ में ५१ खत्री बच्चों का सामूहिक यज्ञोपवीत धूम-धाम से इतिहास में प्रथम बार कराया। आपके सामाजिक कार्यों की प्रशंसा सदैव स्व० राजर्षि टण्डन जी तथा स्व० महादेव प्रसाद टण्डन जी किया करते थे।

महासभा की कार्य प्रणाली से दुःखी होकर १९ सितम्बर १९८२ को आप उ० प्र० खत्री सभा के संस्थापक के रूप में प्रथम संरक्षक बने और तब से आज तक उ० प्र० खत्रीसभा को तन-मन-धन से सहयोग करते हैं। आप खत्री हितैषी के भी सक्रिय संरक्षक हैं। महान सेवाओं के लिए आपको "जातिभूषण अलकार" से सम्मानित किया गया है।

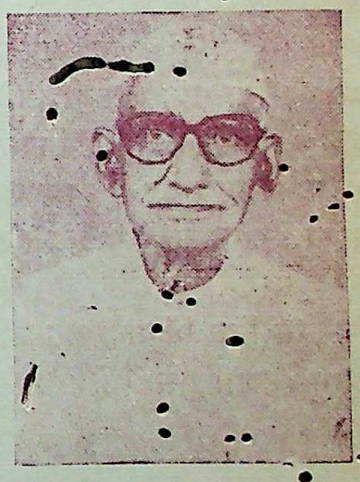

जातिभूषण
खत्री कालीचरन टण्डन जी
वरिष्ठ उपाध्यक्ष उ० प्र० खत्री सभा

खत्री काली चरन टन्डन जी का जन्म कन्नौज के लोकप्रिय श्री सीताराम टण्डन "सराफ" के घर दि० १-११-१९०८ को हुआ। आप जब सातवीं कक्षा के विद्यार्थी थे तभी स्वतन्त्रता के संग्राम में जुट गये अपने निश्चित लक्ष्य पथ पर अडिग रहना और सब कुछ हँसते हँसते सहना उनका स्वभाव जात गुण है। सबका काम सुनने तथा करने की इच्छा रहती है इसीलिए आप "बड़े भइया" के नाम से अधिक लोकप्रिय हैं।

बड़े भइया—अनेक संस्थाओं के संस्थापक व संचालक हैं। १९२५ से १९६९ तक आप नगर स्तर से अखिल भारतीय स्तर तक कांग्रेस दल के अनेक पदों पर रहे। आप अनेक बार जेल गए। बर्ष १९७० से ७६ तक कांग्रेस पार्टी के टिकट पर तथा १९७७ से १९८२ तक जनता पार्टी के टिकट पर विधायक निर्वाचित हुए वर्ष १९८२ में ज्ञानार्जन हेतु इटली, स्वीजरलैंड, फ्रांस इन्डोनेशिया एवं अमेरिका की राजकीय यात्रा की। इतने व्यस्त होते हुए भी आप खत्री सभा की सेवा में लीन रहे तथा वर्तमान में आप उ० प्र० खत्री सभा के वरिष्ठ उपाध्यक्ष हैं। आपकी सेवाओं और लगन का ही फल है कि आपको "जातिभूषण अलंकार" से सम्मानित किया गया खत्री हितैषी को बाबू कालीचरन टण्डन जी का सहयोग प्राप्त है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जातिभूषण

खत्री सतीश चन्द्र सेठ

उपाध्यक्ष उ०प्र० खत्री सभा महामंत्री
खत्री हितैषी मासिक

उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद में स्थित मौरावाँ रियासत के धर्मभूषण रायबहादुर स्व० गणेश प्रसाद सेठ जी के तृतीय पुत्र खत्री अयोध्या नाथ सेठ जी के घर दि० २४ मई १९३७ को खत्री सतीश चन्द्र सेठ जी का जन्म हुआ। संसार में विरले ही ऐसे व्यक्ति पाये जाते हैं जिन्हे अपने समाज की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। उन्हीं में एक भाग्यशाली खत्री सतीश चन्द्र सेठ जी हैं। अल्प आयु में ही माता जी का स्वर्गवास हो जाने के कारण आपका प्रारम्भिक जीवन संघर्षमय रहा। व्यापार का दायित्व आ जाने से आप अपनी स्नातक की शिक्षा-पूर्ण न कर सके। आपके पूज्य ताऊ जी—चाचा जी तथा भाई लोग खत्री उपकारिणी सभा लखनऊ के क्रमशः अध्यक्ष—कोषाध्यक्ष—महामन्त्री तथा प्रबन्धक खत्री हितैषी के पदों पर रहकर समाज की सेवा करते रहे हैं। जाति की सेवा करने की प्रेरणा आपको पारिवारिक विरासत के रूप में मिली। आप वर्ष १९६६ से ६९ तक श्री खत्री उपकारिणी सभा लखनऊ की कार्य समिति के सदस्य वर्ष १९७० से ७३ तक सहमंत्री तथा वर्ष १९७४ से आज तक महामंत्री के पद पर रहते हुए समाज की सेवा कर रहे हैं। वर्ष १९६६ से बराबर आप अखिल भारतीय खत्री महासभा में खत्री समाज का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। दि० १९ सितम्बर १९८२ को आप उ० प्र० खत्री सभा के संस्थापक महामंत्री निर्वाचित हुए। आपके ही परिश्रम से सारे प्रान्त में खत्री सभायें सक्रिय हुई और उ० प्र० खत्री सभा एक शक्तिशाली संगठन बन गया। वर्ष १९८६ में आप को प्रादेशिक उपाध्यक्ष चुना गया। वर्ष १९७६ से आपको देश के खत्री समाज की एकमात्र मासिक पत्रिका "खत्री हितैषी" का भार सौंपा गया। खत्री सतीश चन्द्र सेठ जी की निष्ठा-लगन-और समर्पित भावना का ही यह फल है कि "खत्री हितैषी" निरन्तर नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है। और सेठ जी के ही परिश्रम के फलस्वरूप यह "स्वर्ण जयन्ती विशेषांक" के रूप में खत्री जाति का "इतिहास" प्रकाशित हो सका। खत्री सतीश चन्द्र सेठ का नाम आते ही "खत्री समाज" के लिए एक समर्पित "व्यक्ति का चित्र सामने आ जाता है। ऐसे समर्पित जाति सेवी को उ०प्र० खत्री सभा ने "जातिभूषण अलंकार" से सम्मानित किया। सेठ जी प्रान्तीय स्तर के इस सर्वोच्च अलंकार को प्राप्त करने वाले सबसे कम आयु के जाति सेवी हैं।

नहीं मिलता

लालची को चैन, कमजोर को इन्साफ। कंजूस को सम्मान, शक्की को दोस्त।
पेटू को स्वास्थ्य, डरपोक को नाम। झूठे को विश्वास, आलसी को ईनाम।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री समाज के गगन-स्तम्भ-मृदु-भाषी प्रतिभा के धनी जिनके रोयें रोयें में खत्री के लिए कुछ करने व खत्री के लिए मर-मिटने की भावना है। ऐसे बाबू काशीनाथ मेहरोत्रा जी का जन्म जनपद सीतापुर कसबा लहरपुर में प्रतिष्ठित जमीदार स्व० श्री संकटा प्रसाद मेहरोत्रा जी के घर ८ दिसम्बर १९१२ को हुआ। आप नवी कक्षा में पढ़ ही रहे थे कि आपका विवाह खत्री दाताराम सेठ जी की पुत्री से हो गया। बड़े भाई खत्री जगन्नाथ प्रसाद मेहरोत्रा का स्वर्गवास १९३२ में हो जाने पर आपको पैत्रिक व्यवसाय ठेकेदारी के कार्य को सम्भालना पड़ा जिसका कि आपने सफलतापूर्वक संचालन किया तथा प्रतिष्ठा वा ख्याति अर्जित की। आपके मात्र एक पुत्ररत्न तथा एक कन्या रत्न है।

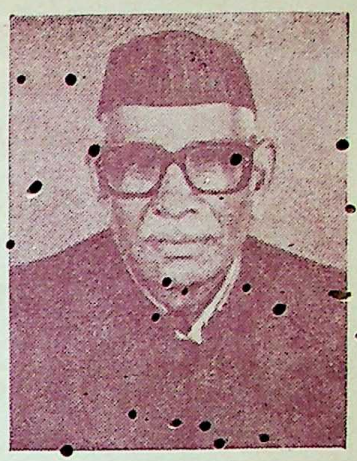

जातिभूषण
खत्री काशीनाथ मेहरोत्रा
संरक्षक खत्री हितैषी एवं
उ० प्र० खत्री सभा

खत्री बाबू काशी नाथ मेहरोत्रा जी को धार्मिक एवं सामजिक कार्यों में बचपन से ही रुचि रही है। धर्म्मपत्नी की अस्वस्थता के कारण व्यापार से सक्रियता त्यागनी पड़ी और लखीमपुर आकर बस गये। और जातिसेवा के क्षेत्र में सक्रिय हो गये। आप खत्री सभा लखीमपुर के अध्यक्ष—उ० प्र० खत्री सभा के संस्थापक संरक्षक तथा खत्री हितैषी के भी संरक्षक हैं। आपने अपने परिवार का सोलह पीढ़ी की वंशावली पता सहित प्रकाशित कर एक अदभुद कार्य किया है। आजकल आप स्व० राजा टोडरमल (टण्डन) पर शोध कर रहे हैं। आप जरूरतमद खत्री बच्चों एवं निराश्रितों की गुप्त सहायता किया करते हैं। खत्री युवा संगठन एवं खत्री शिक्षा सहायता समिति लखीमपुर के भी आप संरक्षक हैं। आप द्वारा किये गये सराहनीय एवं प्रशन्सनीय कार्यों के लिए आपको "जातिभूण अलंकार" से सम्मानित किया गया है।

जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वजाति का प्यार नहीं॥

हम भारतीय पहले हैं खत्री बाद में

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

स्थापित 1955
स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर समाज का
हार्दिक अभिनंदन

फोन दुकान 44301
32368
घर 74251

लखनऊ खत्री समाज के प्रकाश नक्षत्र

स्व० श्री श्याम नारायन कपूर जी

जिनके शुभ आशीर्वाद से सेवारत प्रतिष्ठान

सर्वश्री विद्युत यन्त्रालय

हर प्रकार के विद्युत उपकरणों के विक्रेता

★ एम० एस० स्टोरेज टैंकस ★ विटुमिन टैंकर्स ★ शुगर केन इम्पलीमेन्टस

★ हाट वाटर/मोइस्ट हाट एयर शुगर केनसीड ट्रीटमेन्ट
प्लान्टस आदि के निर्माता

हर प्रकार के घरेलू विद्युत उपकरणों की मरम्मत की एकमात्र
विश्वसनीय एवं पुरानी दुकान

८२, हजरतगंज, लखनऊ-२२६ ००१

खत्री विमल कपूर — खत्री कमल कपूर

ॐ जय श्री राम ॐ

खत्री हितैषी के स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

के सुअवसर पर

शुभकामनाओं सहित

खत्री प्रवीन शंकर कपूर

महामन्त्री

खत्री समाज, दिल्ली (पंजीकृत)

१०५३, गाँधी गली फतेहपुरी, दिल्ली-६

दूरभाष :—२५१३३ - २५१६५०६

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

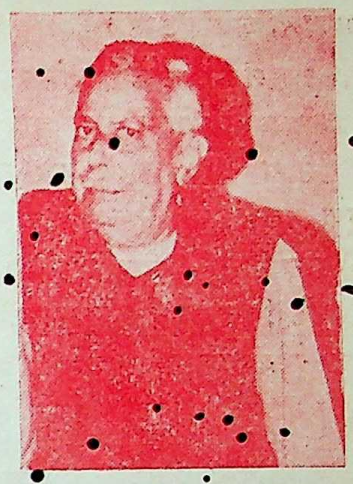

जातिगौरव
स्व० श्री कृष्ण मेहरोत्रा
वाराणसी

वाराणसी के संभ्रान्त खत्री परिवार के खत्री मुन्नी लाल मेहरोत्रा जी के घर १२ अक्तूबर १९०९ को खत्री श्री कृष्ण मेहरोत्रा जी का जन्म हुआ। शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात बनारसी साड़ी के अपने पैत्रिक व्यवसाय में प्रविष्ट हुए। बाल्य काल से ही आप असहाय तथा दुःखी मानव की सेवा में तत्पर रहे। १६ वर्ष की आयु से ३० वर्ष की आयु तक "काशी सेवा समिति" के प्रधान नायक के पद पर रह कर काशी के प्रत्येक मेले में तथा वर्ष १९४८ से निधन के समय तक नसें एवं हड्डी के रोग से ग्रस्त मानव की सेवा आपने की है। आप होम्योपैथिक चिकित्सक भी रहे हैं। आपने हजारों व्यक्तियों की निःशुल्क सेवा की है।

खत्री हितकारिणी सभा के आप ४२ वर्षों से भी अधिक समय तक सदस्य—१० वर्षों तक प्रधान मन्त्री—३ वर्षों तक अ० भा० खत्री महासभा के उपाध्यक्ष रहकर खत्री समाज की सेवा की। आपने लगभग १४ सामाजिक संस्थाओं के विभिन्न पदों पर रहकर तन-मन-धन से मानव मात्र की सेवा की है। आपकी विशिष्ट सेवाओं के लिए उ० प्र० खत्री सभा ने आप को "जातिगौरव अलंकार" से सम्मानित किया।

जातिगौरव
खत्री आर० एन० मेहरा
संरक्षक/उपाध्यक्ष उ० प्र० खत्री सभा
संरक्षक खत्री हितैषी

मुरादाबाद के प्रतिष्ठित खत्री परिवार में १९ अक्तूबर १९३२ को खत्री रामेश्वर नाथ मेहरा जी का जन्म हुआ। आपने आगरा विश्वविद्यालय से १९५३ में एम० ए० इतिहास मे किया एक शिक्षक के रूप में आपने दो वर्षों तक कार्य किया। १९६० से आप व्ययसाय में आ गये—भदोई तथा लखनऊ में हड्डी मिल लगाई। छात्र जीवन मे आप क्रिकेट के अच्छे खिलाड़ी रहे हैं। आपने ४ बार विश्व भ्रमण किया। आप लायन्स इन्टर नेशनल के सभी पदों पर रहे तथा वर्ष १९८१-८३ मे डिस्टिक गर्वनर भी रहे हैं।

आप "खत्री हितैषी" के संरक्षक तथा उ० प्र० खत्री सभा के जन्म काल से संरक्षक एवं उपाध्यक्ष हैं। श्री खत्री उपकारिणी सभा लखनऊ के हर कार्यक्रम में आप सक्रिय सहयोग करते हैं। खत्री जाति के हितार्थ आप गुप्त दान में अग्रणीय हैं। उ० प्र० खत्री सभा ने आप को "जातिगौरव अलंकार" से सम्मानित किया।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mahabalipuram.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जातिगौरव
खत्री प्रकाश शंकर टन्डन
संरक्षक/उपाध्यक्ष
उ० प्र० खत्री सभा
संरक्षक
खत्री हितैषी

आगरा के प्रतिष्ठित स्वतन्त्रता सेनानी स्व० बाबू भवानी शंकर टन्डन के घर दिनांक २२ अगस्त १९२७ को खत्री प्रकाश शंकर टन्डन जी का जन्म हुआ। आपको विरासत मे राष्ट्रीय भावना व देश भक्ति मिली। आप अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ अलीगढ़ आकर बस गये। १० अगस्त १९४२ को एक जलूस को नेतृत्व करते हुए आप जेल गये। आप लगभग तीन वर्षों तक जेल में रहे। खत्री प्रकाश जी ने कांग्रेस सेवा दल के जिला स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक के विभिन्न पदों पर रहकर कीर्तमान स्थापित किया है। आप का नारा है "काम करो या कुर्सी छोड़ो" जिसे आप मूर्ति रूप भी देते हैं।

आप स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी परिषद के अलीगढ के कोषाध्यक्ष हैं। १९७२ मे तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने आपको "ताम्रपत्र" भेंट कर तथा १९८५ में कांग्रेस शताब्दी समारोह में "मान पत्र" देकर सम्मानित किया। आप देश के प्रमुख ताला निर्माताओं में एक हैं। आप के बनाये ताले विदेशों में भारत की शाख बढ़ा रहे हैं। आप "खत्री सभा अलीगढ़" के संस्थापक अध्यक्ष हैं। तथा—अलीगढ़-आगरा-अतरौली आदि नगरों की अनेक सामाजिक व शैक्षिक संस्थाओं के माध्यम से समाज सेवा के क्षेत्र में सेवारत हैं। उ० प्र० खत्री सभा ने आप की विशिष्ट सेवाओं के लिए "जाति गौरव अलंकार" से आपको सम्मानित किया।

जातिगौरव
खत्री गोपी नाथ खन्ना जी
संवाददाता
खत्री हितैषी जौनपुर क्षेत्र

जौनपुर के प्रतिष्ठित खत्री परिवार मे खत्री गोपी नाथ खन्ना जी ने जन्म लिया। युवा अवस्था से ही आप को सामाजिक कार्यों में रुचि रही है। आप कर्मठ एवं उत्साही समाज सेवी हैं। उ० प्र० सरकार के चिकित्सा एवं स्वास्थ विभाग में आप ३६ वर्षों तक सेवारत रहे। अच्छी सेवा एव लगन से कार्य करने के उपलक्ष में वर्ष १९७२ में सरकार ने आपको प्रशस्तिपत्र १०००) रु० नगद तथा अन्य पुरस्कार देकर सम्मानित किया। खत्री गोपी नाथ खन्ना जी "खत्री सभा जौनपुर" से निरन्तत जुड़े रहे जनसम्पर्क अधिकारी एवं महामंत्री के पद पर रहते हुये आपने खत्री समाज की सेवा की और कर रहे हैं। आपको विशिष्ट जाति सेवा के लिए उ० प्र० खत्री सभा ने "जातिगौरव अलंकार" से सम्मानित किया।

Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जातिगौरव

खत्री राम नाथ महेन्द्र

संरक्षक/उपाध्यक्ष
उ० प्र० खत्री सभा

खैरावाद जिला–सीतापुर के सम्भ्रान्त परिवार मे दिनांक १ जून १९३९ को खत्री गोपीनाथ महेन्द्र (संरक्षक उ० प्र० खत्री सभा एवं खत्री हितैषी) के घर प्रथम पुत्र रत्न के रूप में खत्री रामनाथ महेन्द्र जी का जन्म हुआ। स्नातक की उपाधि आपने १९५७ में क्राइस्टचर्च कालेज कानपुर से प्राप्त की। आप अपने पैत्रिक व्यवसाय सर्राफ़े में व्यस्त रहते हुए भी समाज सेवा के कार्यों में रुचि लेते हैं। आपने अपनी स्व० माता जी की स्मृति मे "श्रीमती चमेली देवी महेन्द्र ट्रस्ट" की स्थापना की। जिसके माध्यम से हजारों रोगियों तथा असहाय लोगों की सेवा करते रहते हैं। सचिव एवं अध्यक्ष रोटरी क्लब कानपुर सदस्य–रीजनल एडवाइजरी कमेटी–सेन्ट्रल इक्साइज. एण्ड कस्टम–अध्यक्ष केन्द्रीय नागरिक समिति–संगठन मंत्री–उ० प्र० सर्राफा कमेटी–ट्रस्टी युग निर्माण योजना कानपुर–आदि अनेक अन्य संस्थाओं के विभिन्न पदों पर रहते हुये समाज की सेवा में रत हैं। खत्री सभा कानपुर के अध्यक्ष पद पर रहते हुए–आपने सामूहिक मूंड़न–जनेऊ तथा सामूहिक विवाह सम्पन्न कराये। उ० प्र० खत्री सभा का द्वितीय अधिवेशन आपने कानपुर में आयोजित किया तथा विशिष्ट जाति सेवी खत्री जनों का सम्मान किया। खत्री राम नाथ महेन्द्र जी "खत्री हितैषी के संरक्षक तथा उ० प्र० खत्री सभा के उपाध्यक्ष के रूप में तन-मन-धन से खत्री समाज की सेवा में समर्पित हैं। आप की विशिष्ट एवं जातीय सेवाओं के लिए आप को उ० प्र० खत्री सभा ने "जाति गौरव अलंकार से सम्मानित किया।

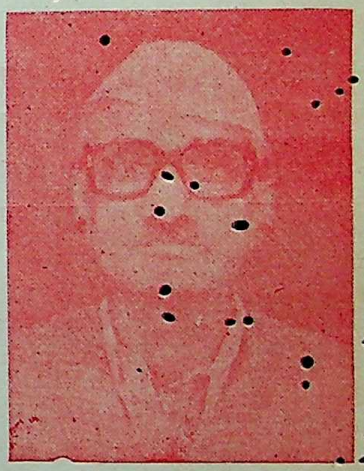

जातिगौरव

खत्री कन्हैया लाल मेहरोत्रा

संरक्षक
खत्री हितैषी मासिक उत्तर प्रदेश

श्री खत्री कन्हैया लाल मेहरोत्रा जी का जन्म १९२४ ई० में शाहजहाँपुर के प्रतिष्ठित खत्री लक्ष्मी नारायन मेहरा जी के घर हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा शाहजहाँपुर में हुई। मैट्रिक बरेली से करने के पश्चात परिवार सहित बरेली में रहने लगे। १९४९ में आपने बरेली में सर्राफे की दुकान कर ली। आप बचपन से ही उदार-धर्म कर्म में आस्था रखने वाले गाँधी वादी व्यक्ति हैं। १९६९ में आप "बरेली सर्राफा मंडल" के अध्यक्ष तद्उपरान्त उ०प्र० सर्राफा एशोशियेशन के कोषाध्यक्ष-मीरगज राजेन्द्र प्रसाद डिग्री कालेज तथा शाही गाँधी हायर सेकेन्ड्री स्कूल की कार्य समिति के सदस्य तथा १९८० में "खत्री सभा बरेली" के महामंत्री चुने गये। आपके ही कार्य काल में "खत्री सभा बरेली" की ओर से "खत्री बाग में कम्यूनिटी हाल" एक छोटा कम्यूनिटी हाल और खत्री मान्टेसरी स्कूल की स्थापना हुई। आप खत्री सभा के हर कार्य में सहयोग देते हैं आपकी सराहनीय सामाजिक सेवाओं के लिए आपको उ० प्र० खत्री सभा ने "जाति गौरव अलंकार" से सम्मानित किया।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

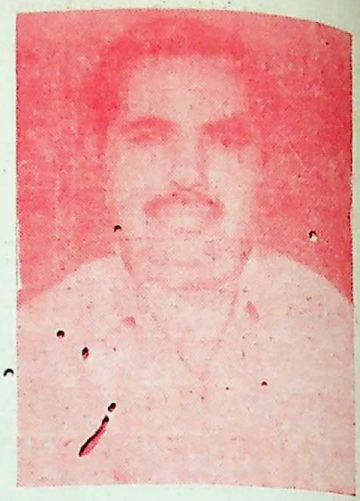

जातिगौरव
खत्री द्वारका प्रसाद कंचन
संरक्षक
उत्तर प्रदेश खत्री सभा
संरक्षक
खत्री हितैषी मासिक, उ० प्र०

ललितपुर जनपद के तालबेहट कसबे में श्री राम जी लाल खत्री के यहाँ दि० २४ दिसम्ब १९४८ को खत्री द्वारका प्रसाद कंचन जी का जन्म हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा तालबेहट में हुई। शिक्षा समाप्ति के बाद पैत्रिक व्यवसाय "सर्राफा" का कार्य सम्भाला। आप बचपन से ही दीन हीन व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति रखते रहे। सर्व साधारण की सुविधा के लिए आपने २० हजार रुपये लगाकर "टीऊन हाल" ५००१) रु० लगाकर "कन्या पाठशाला में कलश शौचालय एवं स्नानग्रह" बनवाया।

आप "खत्री सभा तालबेहट" के अध्यक्ष-लायन्स क्लब तालबेहट के उपाध्यक्ष—आदि अनेक सस्थाओं में विभिन्न पदों पर रहते हुए समाज की सेवा कर रहे हैं। वर्ष १९६४ से आप हर गर्मी में प्याऊ लगवाते हैं। एक पागल का झाँसी में इलाज करा कर उसे जीवनदान दिया। खत्री द्वारका प्रसाद जी दीन-हीन की गुप्त मदद करते रहते हैं। उ० प्र० खत्री सभा ने आपको "जाति गौरव अलंकार" से सम्मानित कर आप की जातीय सेवाओं की सराहना की है।

जातिगौरव
खत्री त्रिभुवन नाथ पुरी
उपाध्यक्ष
उ० प्र० खत्री सभा
सम्वाददाता
खत्री हितैषी मासिक

लहरपुर—जनपद सीतापुर के खत्री सीताराम पुरी जी के घर दि० २९ दिसम्बर १९३२ में खत्री त्रिभुवन नाथ पुरी जी का जन्म हुआ। मिडिल तक की शिक्षा लहरपुर में प्राप्त कर १९५० में बी० एन० एस० डी० कालेज कानपुर से इन्टर किया। १९५० में ही आपको अपने पैत्रिक व्यापार कपड़े व सर्राफे का कार्य भार सौंप दिया गया। १२-९-५८ को आप खाद्य आंदोलन में जेल गये एक माह की सजाकाटी कर आप "खत्री सभा लहरपुर" की स्थापना में जुट गये और संस्थापक सदस्य एवं उपमत्री बने। वर्ष १९५८ से अबतक लगभग १६ सामाजिक-शैक्षिक-सहकारिता-नागरिक एवं राजनैतिक संस्थाओं के विभिन्न पदों पर रहते हुए हर प्रकार से लोगों की सेवा में लगे हैं। खत्री त्रिभुवन नाथ पुरी जी सीतापुर जनपद में लोकप्रिय सामाजिक कार्यकर्ता हैं। आप का ट्रांस्पोर्ट का भी व्यापार है।

उत्तर प्रदेश खत्री सभा के जन्मकाल से ही आप इस के संस्थापक सदस्य एवं उपाध्यक्ष हैं। खत्री सभा लहरपुर के संरक्षक व अध्यक्ष हैं। खत्री हितैषी मासिक पत्रिका से आपको विशेष लगाव है। आप प्रादेशिक सभा की हर बैठक में सम्मिलित होते हैं तथा हर नगर में खत्री हितैषी का प्रचार करते हैं। आप के उत्साह लगन तथा विशिष्ट जाति सेवा को ध्यान में रखते हुए उत्तर प्रदेश खत्री सभा ने आप को "जाति गौरव अलंकार" से सम्मानित किया।

National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

मिर्जापुर के यशस्वी स्वतंत्रता सेनानी मतवाला मंडलाधीश स्व० महादेव प्रसाद सेठ जी के घर खत्री हरगोविन्द सेठ जी का जन्म हुआ। सेठ जी के पिता बाबू महादेव प्रसाद सेठ का जन्म मिर्जापुर के एक संभ्रान्त व्यवसाई खत्री परिवार में हुआ था। जिसे उ० प्र० का खत्री समाज "पत्थर वाले सेठ" के नाम से जानता है। इस परिवार के प्रमुख श्री हजारी लाल सेठ सम्भवत: एरच जिला झाँसी से आकर अपनी ननिहाल मिर्जापुर में बस गये थे।

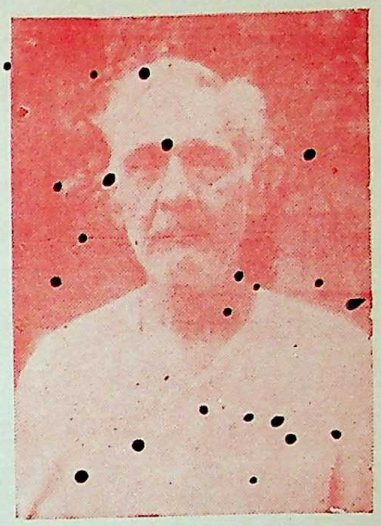

जातिगौरव
खत्री हरगोविन्द सेठ
आजीवन सदस्य
खत्री हितैषी मासिक

महादेव प्रसाद सेठ "मतवाला" ने अपने कृतित्व एवं व्यक्तित्व से न केवल स्वतंत्रता पूर्व भारतीय अंतरिक्ष को प्रभावित किया वरन् संरक्षण और प्रोत्साहन के अपने दिव्य गुणों से हिन्दी साहित्य को–श्री शिव पूजन सहाय, मुंशी नवजादिक लाल पं० सूर्य कान्त त्रिपाठी "निराला" और पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" जैसे देदीप्यमान नक्षत्र भी प्रदान किये। "मतवाला" जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता अर्पित करते हुए "निराला" जी ने लिखा है "न होता 'मतवाला' तो न होता 'निराला'।

ऐसे परिवार में जन्मे खत्री हरगोविन्द सेठ जी को उदारता–त्याग–समाज सेवा–राष्ट्र सेवा पैत्रिक विरासत में मिली। घर के वातावरण के अनुरूप आप बचपन से ही सामाजिक कार्यों में रुचि लेते रहे। आप अनेक स्थानीय सामाजिक संस्थाओं से तो सम्बद्ध हैं हीं साथ ही अखिल भारतीय खत्री महासभा उ० प्र० खत्री सभा तथा खत्री हितैषी के आजीवन सदस्य के रूप में भी खत्री समाज की सेवा एक सिपाही की भाँति करते रहते हैं। वर्ष १९८५ में मिर्जापुर के खत्री समाज के विशेष आग्रह पर आपने खत्री सभा मिर्जापुर का अध्यक्ष पद ग्रहण किया। खत्री सभा द्वारा स्थापित व संचालित "राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन शिशु मंदिर" की आर्थिक दशा सुधारने के उद्देश्य से आपने बड़े परिश्रम से एक "स्मारिका" का प्रकाशन किया। यह स्मारिका खत्री समाज के लिए बड़ी उपयोगी है।

अस्वस्थ रहते हुए भी आप उ० प्र० खत्री सभा की लगभग सभी बैठकों में भाग लेते हैं। तथा खत्री हितैषी को भी सहयोग करते हैं। आप की जातीय सेवाओं के उपलक्ष में आप को उ० प्र० खत्री सभा ने "जातिगौरव अलंकार" से सम्मानित कर उचित कार्य किया है।

शानदार था भूत, भविष्य भी महान है।

अगर सम्भालें आप, उसे जो वर्तमान है।।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जातिगौरव

खत्री जयकार नाथ कपूर

संयोजक

उत्तर प्रदेश खत्री सभा

शाहजहाँपुर-मण्डल

सम्वाददाता

खत्री हितैषी मासिक

खैराबाद (सीतापुर) के खत्री गोविन्द प्रसाद कपूर जी के घर १९३० में खत्री जयकार नाथ कपूर जी का जन्म हुआ। आपने इण्टर तक की शिक्षा ग्रहण की। जब आप डी० जी० कालेज खैराबाद के छात्र थे १९४२ के स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण गिरफ्तार कर लिये गये और सजा मिली। इसके पश्चात् आप सक्रिय रूप से राजनीति में आगए। १९५१ में कपड़े का व्यापार किया परन्तु मन न लगने के कारण १९५४ में कलेक्शन विभाग में नौकरी की। १९५५ में बरेली की कामनी कपूर से विवाह हुआ। १९६६ में नायब तहसीलदार के पद से त्याग-पत्र दे दिया। १९७४ में सारा कारोबार भाइयों को देकर बाग में रहने लगे तथा सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में जुट गये। १९७५ से दरी बनाने का कार्य आरम्भ किया। वर्ष १९८२ में उत्तर प्रदेश खत्री सभा से प्रभावित हो "खत्री सभा खैराबाद" की स्थापना की तथा उस के मंत्री निर्वाचित हुये। १९८३ में खैराबाद में प्रादेशिक सभा आयोजित की तथा "खत्री धर्मशाला खैराबाद" का निर्माण आरम्भ किया। ११०००) रु० स्वय भी दान दिया। आपको उत्तर प्रदेश खत्री सभा ने शाहजहाँपुर मण्डल का सयोजक नियुक्त किया। इस पद पर रहते हुए आपने सराहनीय कार्य किये हैं। खत्री हितैषी के आप सम्मानित सम्वाददाता हैं। आप की विशिष्ट जाति सेवाओं के उपलक्ष्य में आप को उ० प्र० खत्री सभा ने "जातिगौरव अलंकार" से सम्मानित किया।

उपरोक्त के अतिरिक्त खत्री शान्ती नरायन चड्ढा जी (इलाहाबाद), खत्री श्री नारायण टण्डन जी (आगरा), खत्री राम मरोसे कपूर जी (मथुरा), खत्री प्रताप नरायन टण्डन जी (बिसवाँ), खत्री महेश नाथ कपूर जी (कासगंज), तथा खत्री डा० पी० एन० मेहरोत्रा जी (रायबरेली) को भी उत्तर प्रदेश खत्री सभा ने "जातिगौरव अलंकार" से सम्मानित किया है। इन बन्धुओं का सहयोग हमें प्राप्त नहीं हुआ है। ब्लाक व जीवनी उपलब्ध न होने के कारण समाज की जानकरी के लिए प्रकाशित कर सकने में असमर्थ हूँ।

—सम्पादक

...rch Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी

के

स्वर्ण - जयन्ती

विशेषांक प्रकाशन

के अवसर पर

हार्दिक शुभकामनायें

44769

72832

76767

खत्री अशोक मेहरोत्रा

रामा एण्ड कम्पनी

स्टेशनर्स एवं पेपर मर्चेन्ट्स

बुक मार्केट, अमीनाबाद, लखनऊ

पिन कोट नं० २२६ ०१८

जिसको न निज गौरव तथा निज जाति का अभिमान है।
वह नर नहीं—नर पशु निरा और मृतक समान है॥

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी

के

स्वर्ण - जयन्ती

विशेषांक

के सुअवसर पर

हार्दिक शुभकामनायें

लाल जी टण्डन

आशुतोष टण्डन

सुबोध टण्डन

अमित टण्डन

चिकन प्रोडक्ट्स

धर्मशाला मुन्नूलाल मार्केट

रवन-रवुन जी रोड, चौक

लखनऊ-२२६ ००३

फोन :—82231

चिकन परिधान

३२५/६४-ए, सोंधीटोला, चौक

लखनऊ-२२६ ००३

फोन :—83890

आधुनिकतम लखनऊ चिकन वस्त्रों के निर्माता एवं विक्रेता

Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के प्रकाशन पर

हार्दिक शुभ कामनायें

लखनऊ खत्री समाज के "जातिसेवक"

स्व० शम्भूनाथ खन्ना जी

के आशीर्वाद से सेवारत प्रतिष्ठान

स्थापित : 1905 फोन : 44493

सर्वश्री बेनीमाधव शम्भूनाथ

• स्टेशनरी विक्रेता • कागज व्यापारी • मुद्रक

६४, नजीराबाद, लखनऊ-२२६ ०१८

★

फोन : 46451

सर्वश्री ग्रैफिक प्रिन्टर्स

कलात्मक एवं सुन्दर छपाई का केन्द्र

बाजार झाऊलाल, लखनऊ

★

फोन : 31171

सर्वश्री के० के० ट्रेडिंग कार्पोरेशन

हर प्रकार के कागज के थोक विक्रेता

गुईन रोड, अमीनाबाद, लखनऊ

★

फोन : 44859

सर्वश्री राज कार्ड एम्पोरियम

हर प्रकार के निमन्त्रण पत्रों के निर्माता एवं विक्रेता

गुईन रोड अमीनाबाद, लखनऊ

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

"खत्री हितैषी" के "स्वर्ण-जयन्ती" विशेषांक के
सफल प्रकाशन पर हमारी ओर से

शुभकामनायें

★

हर प्रकार के आधुनिक आभूषणों के निर्माता एवं निर्यातकर्ता

फोन :—44969

सर्वश्री कन्हैयालाल गोपालदास (ज्वैलर्स)

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-१८

★

चिकन के वस्त्रों के प्रमुख निर्माता एवं निर्यातकर्ता

फोन :—82951

सर्वश्री कन्हैयालाल कपूर एण्ड सन्स

३०, खुनखुन जी रोड चौक, लखनऊ-३

★

फोन :—82951

सर्वश्री कन्हैया पैकेजिंग्स (प्रा.) लि.

रजि० आफिस
३०, खुनखुन जी रोड चौक, लखनऊ-३

★

फैक्ट्री :
सी-१४ सैक्टर २०
जगदीशपुर इंडस्ट्रियल एरिया
जिला-सुल्तानपुर

फोन :—53

CC-0. National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के
अवसर पर समस्त खत्री बन्धुओं को
शुभ कामनाएँ

फोन २६८

अतुल ब्रदर्स

सिनेमा रोड, हरदोई

उच्चकोटि के कपड़ों की विश्वसनीय दुकान

सह प्रतिष्ठान

अतुल आटो फाइनेन्स

कपूर बस सर्विस

कपूर फाइनेन्स कारपोरेशन

आभा फाइनेन्स कारपोरेशन

कृष्णा फाइनेन्स कारपोरेशन

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर शुभ कामनाएँ :—

श्री खत्री सभा लखीमपुर-खीरी की कार्यकारिणी सदस्यों की सूची व वर्ष १९८७

१ **खत्री जातिभूषण श्री काशीनाथ मेहरोत्रा अध्यक्ष**
काशी निवास, काशी नगर, लखीमपुर-खीरी फोन २००५

२ **खत्री श्री राधेश्याम टण्डन उपाध्यक्ष**
मेसर्स अम्बर लाल राधेश्याम, मेन रोड, लखीमपुर

३ **खत्री श्री राममोहन कपूर मन्त्री**
कपूर क्लाथ स्टोर्स, सदर चौराहा, लखीमपुर फोन २२४९

४ **खत्री श्री गोपीकृष्ण सेठ कोषाध्यक्ष**
शिवनारायन राधाकृष्ण, पुरानी गल्ला मन्डी, लखीमपुर फोन २३६६

५ **खत्री श्री राधेलाल मेहरोत्रा सदस्य**
आर० एम० मेडिकल स्टोर्स, हास्पिटल रोड, लखीमपुर

६ **खत्री श्री जयदयाल कपूर सदस्य**
मेसर्स माँ दुर्गा क्लाथ स्टोर्स, खपरैल बाजार, लखीमपुर

७ **खत्री श्री रामनारायन महेन्द्रा सदस्य**
महेन्द्रा मेडिकल स्टोर, सदर चौराहा, लखीमपुर

८ **खत्री श्री रामनारायन सेठ सदस्य**
मेसर्स जुगुलकिशोर शिवनारायन, वस्त्र विक्रेता, लखीमपुर

९ **खत्री श्री राम जी टण्डन सेठ सदस्य**
मेसर्स रामा वस्त्र भण्डार खपरैल बाजार, लखीमपुर

१० **खत्री श्री अनन्तराम पुरी सदस्य**
मेसर्स अनन्तराम, श्रीनाथ पुरी, वस्त्र विक्रेता खपरैल बाजार, लखीमपुर

११ **खत्री श्री सियाराम शेखर सदस्य**
मेसर्स मनोज होजरी, संकटा देवी मार्ग, लखीमपुर

१२ **खत्री श्री श्यामबिहारी पुरी (शम्भू जी) सदस्य**
मेसर्स जगन्नाथ प्रसाद श्याम बिहारी, वस्त्र विक्रेता संकटा देवी मार्ग, लखीमपुर

१३ **खत्री श्री जगन्नाथ भल्ला सदस्य**
मेसर्स भल्ला क्लाथ एजेन्सी, संकटा देवी मार्ग, लखीमपुर

१४ **खत्री श्री हरी प्रसाद पुरी सदस्य**
मेसर्स कालीचरन काशीराम, वस्त्र विक्रेता, संकटा देवी मार्ग, लखीमपुर

१५ **खत्री श्री सूरज नारायन महेन्द्र सदस्य**
मेसर्स महेन्द्रा पुस्तक सदन, मेन रोड, लखीमपुर

१६ **खत्री श्री डा० हरीशंकर महेन्द्रा सदस्य**
हास्पिटल रोड लखीमपुर

१७ **खत्री श्री हरीराम महेन्द्र सदस्य**
मेसर्स बैशाली पुस्तक भण्डार, तहसील मार्केट, लखीमपुर

१८ **खत्री श्री राजेन्द्र कुमार मेहरोत्रा सदस्य**
मेसर्स मेहरोत्रा आटोस्पेयर पार्ट्स, मेला रोड, लखीमपुर

सम्बन्ध संस्थाएँ —१ श्री युवा संगठन लखीमपुर २ खत्री महिला सभा लखीमपुर

...ic National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक
के अवसर पर
: हार्दिक शुभ कामनाएँ :
卐
बल्देव प्रसाद सीताराम सर्राफ
बैंकर्स एन्ड ज्वेलर्स (१८८७ शताब्दी वर्ष १९८७) • बिलग्राम शाखा
फोन : २७
कन्नौज (प्रताप कुटीर) कानपुर
बिलग्राम, जिला हरदोई

हमारे अन्य सम्बन्धित प्रतिष्ठान

मे० मलयागिरि सन्दल वुड आयल डिस्टिलरी
पो० बा० ३५४ कानपुर
फोन—काल्पी रोड—२४६५७९ किदवई नगर—७३२४४
दादानगर—२४४७२०

★

मे० कास्ट अयरन प्रोडक्टस (इन्डिया) प्रा० लि० रायबरेली
रजि. आ. ११२/२८२, स्वरूप नगर, कानपुर
फोन २५६५

★

मे० मानीमऊ कोल्ड स्टोरेज
जी. टी. रोड, मानीमऊ
फोन १०७-११

★

श्री सीताराम कोल्ड स्टोरेज
नजरापुर तिर्वा रोड, कन्नौज
फोन १८५

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mulukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

With best compliments from :

KORES

The name that represents excellence in office requisites.

Kores are leaders in india and the world over in the field of carbon papers, ribbons for typewriters and computers, duplicating stencils and inks and teleprinter supplies.

Kores are also marketers of the Korestat range of Xerographic Copiers.

KORES–Your guarantee of a good impression.

KORES (INDIA) LIMITED

Worli

Bombay - 400 018.

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

With best compliments from:

SANGHVI CORPORATION

H.O. 109, Regal Industrial Estate

SEWREE (W) BOMBAY

धर्मो रक्षति रक्षितः

Distributers for :—

M/s Apollo Pencils Pvt. Ltd.

M/s Allied Instruments Pvt. Ltd.

M/s Ofipin Pvt. Ltd.

M/s Sandw Trauders

Branch :—

7–A, BALMIKI MARG

LALBAGH

LUCKNOW–226 001

Phone :—48301

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mulukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी की निरन्तर प्रगति एवं
स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर
हमारी शुभ कामनायें :

सर्वश्री भारत टैक्स्टाइल्स

साड़ी व धोती जोड़ों के प्रमुख निर्माता

मऊनाथ भंजन

आजमगढ़

—: अधिकृत विक्रेता :—

मंगल प्रसाद दलाल
नौधडा, कानपुर

卐

बेनी माधव खत्री
पुराना बजाजा, लखनऊ

Remember :

Phone : 44664

SETH
PRINTERS

AT YOUR SERVICE

Contact for :

ALL TYPES OF
QUALITY PRINTING

GWYNNE TANK HOUSE
LUCKNOW-226 018

National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी

की उन्नति को

प्रभु से

कामना

करते हैं।

*

हितैषी के भू० पू० प्रबन्धक एवं प्रकाशक

लखनऊ खत्री समाज में—

जातिसेवा के लिए

चिरस्मरणीय

स्व० बनारसीदास मेहरोत्रा जी

जिनके आशीर्वाद से सेवारत प्रतिष्ठान

सर्वश्री रामा एजूकेशनल ट्रेडर्स

• नक्शे • चार्ट • स्टेशनरी • एजूकेशनल रजिस्टर एवं फार्म

• चाक • इंक • पाउडर • रबर आदि के विक्रेता

खत्री-भवन

डा० गयेन्द्र मार्ग (पुराना नजीराबाद) लखनऊ-२२६ ०१८

खत्री पी० डी० मेहरोत्रा **खत्री सन्तोष कुमार मेहरोत्रा**

निवास 72832 — : फोन :— 45521 प्रतिष्ठान

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mulukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी

के

स्वर्ण - जयन्ती

विशेषांक

के सुअवसर पर

हार्दिक शुभकामनायें

खत्री राम शंकर खन्ना

सर्वश्री बेनी माधव राम शंकर

स्टेशनरी एवं कापी आदि के थोक एवं फुटकर विक्रेता

अमीनाबाद, लखनऊ-२२६ ०१८

फोन :—32295

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर खत्री समाज का हार्दिक अभिवादन :

खत्री सीताराम मेहरोत्रा

सर्वश्री अध्यापक प्रकाशन

फोन
निवास : 31150
प्रतिष्ठान : 46323

पाठ पुस्तकों के थोक विक्रेता

१६, गड़बड़झाला पार्क, अमीनाबाद, लखनऊ-२२६ ०१८

सहयोगी प्रतिष्ठान :—सर्वश्री विशाल प्रकाशन

१६, गड़बड़झाला पार्क, अमीनाबाद, लखनऊ-२२६ ०१८

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के प्रकाशन पर शुभ कामनायें :

लखनऊ खत्री समाज में कर्मठता एवं दानशीलता के लिये चिरस्मरणीय

स्व० लाला श्रीराम कपूर जी

के आशीर्वाद से सेवारत प्रतिष्ठान

श्रीकृष्ण बीड़ी कम्पनी

सोल डिस्ट्रीब्यूटर्स आफ (सेठ मोहन लाल हरिगोविन्द दास-जबलपुर)

खुनखुन जी रोड चौक, लखनऊ-२२६ ००३

खत्री शिवराम कपूर

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

खत्री हितैषी (मासिक) पत्रिका के वर्तमान सम्मानित संरक्षक

जातिरत्न खत्री बिशन चन्द्र सेठ जी—मुख्य संरक्षक

रमणरेती—श्री वृन्दावन धाम जिला—मथुरा—२८११२१

१—खत्री सौभाग्य मल खत्री
मेसर्स रोलर फ्लोर मिल
स्टेशन रोड, जयपुर ३०२००१

२—जाति भूषण कृष्ण चन्द्र बेरी
मेसर्स हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो.बा. ११०६, वाराणसी २२१००१

३—खत्री हरिमोहनदास टन्डन
५७, रानी मंडी
इलाहाबाद २११००१

४—खत्री मूलनारायण मेहरोत्रा
बी–४४/१८७, रामापुरा
वाराणसी २२१००१

५—खत्री नवल किशोर खन्ना
२३/८७, पटकापुर
कानपुर २०८००१

६—खत्री नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा
मेसर्स लाल जी केदार नाथ खत्री
नादानमहल रोड, लखनऊ २२६००३

७—खत्री शिव नाथ कपूर
५१६, कालबा देवी रोड
बम्बई ४००००२ महाराष्ट्र

८—डा० श्रीमती रमा मेहरोत्रा
ए २/२२, माडल टाउन
दिल्ली ११०००९

९—खत्री पूनम चन्द जेठमल खत्री
होटल कृष्णा–आकोट बस स्टैन्ड
अकोला ४४४००१

१०—खत्री डा० एम० के० सेठी
१८ कन्धारी रोड, सिविल लाइन्स
आगरा २८२००२

११—खत्री मोती लाल सहगल
मैसर्स जय भारत स्टोर्स
गाँधी रोड, झाँसी २८४००१

१२—खत्री सीताराम टण्डन
३२९/२८, बागटोला, चौक
लखनऊ २२६००३

१३—खत्री अमर नाथ मेहरोत्रा
३५ खुन खुन जी रोड, चौक
लखनऊ २२६००३

१४—खत्री महेन्द्र कुमार मेहरोत्रा
राजेन्द्र नगर, P.T.C. गेट नं० १
के सामने, मुरादाबाद २४४००१

१५—खत्री किशन चन्द्र टण्डन
नं० २, नेताई हल्धर स्ट्रीट
कलकत्ता ७०००७०

१६—खत्री कन्हैया लाल मेहता
३२, खुन-खुन जी रोड, चौक
लखनऊ २२६००३

१७—खत्री बी० एस० मेहरा
बी० १/१४, अशोक बिहार फेस–२
दिल्ली ११००५२

१८—खत्री अमरनाथ टण्डन
मेसर्स देवी प्रसाद सुन्दर लाल खत्री
गांधी मार्ग, कन्नौज २०९७२५

१९—खत्री हरी नारायण टन्डन
मेसर्स ला० बलदेव प्रसाद सीताराम
प्रताप कुटीर, कन्नौज २०९७२५

२०—जाति गौरव आर.एन. मेहरा
सुमनविला–५२ वजीर हसन रोड
लखनऊ २२६००१

२१—खत्री राजेश कुमार कपूर
मेसर्स कपूर मोटर्स
मसानी, मथुरा २८१००१

२२—खत्री राधा कृष्ण मेहरा
बाजार टोकरियाँ निकट कटरा
भाई संतसिंह, अमृतसर २४३००१

२३—खत्री राजेश्वर टण्डन
मेन रोड
लखीमपुर खीरी २६२७०१

२४—खत्री ओमकारनाथ मेहरोत्रा
मेसर्स जी० डी० जनरल स्टोर्स
बस स्टेशन रोड, लखीमपुर २६२७०१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mulukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

२५—खत्री कन्हैया लाल मेहरोत्रा
मेसर्स आदर्श ज्वैलर्स
बड़ा बाजार, बरेली २४३००१

२६—खत्री मोहन नारायन टन्डन
७, हिन्दी साहित्य सम्मेलन मार्ग
इलाहाबाद २११००३

२७—खत्री डा० एल०बी० टन्डन
गली सीताराम—बी. डी. हाईस्कूल के
सामने अम्बाला कैन्ट १३३००१

२८—खत्री मदन चन्द कपूर
हींगवाला—लाठी मोहाल
कानपुर २०८००१

२९—खत्री ओंकार नाथ सेठ
कोठी काशी नाथ, डायरमेकिन रोड
डालीगंज, लखनऊ २२६००७

३०—खत्री भरत लाल महथा
मे.छेदामीलाल राजकुमार खत्री करना
बाग—सोहसराय (नालन्दा) ८०३११८

३१—जातिभूषण काशीनाथ मेहरोत्रा
काशी निवास—काशीनगर
लखीमपुर—खीरी २६२७०१

३२—खत्री आर० एन० टण्डन
२६/७२-१२ बिरहाना रोड
कानपुर २०८००१

३३—खत्री श्री नाथ दास खत्री
३-ए, गरियाहाट रोड
कलकत्ता ७०००१९

३४—खत्री केशव दास टंडन
मो० तालागारान
कन्नौज २०९७२५

३५—खत्री प्रयाग नारायण कपूर
३६/३४, राम मोहन हाता
कानपुर-२०८००१

३६—खत्री फकीर सरन खन्ना
१०३४, मारु गली—गली सेठ
भीरु चंद मथुरा २८१००१

३७—जातिगौरव रामनाथ महेन्द्र
मे० भगतराम जै नारायन सर्राफ
बिरहाना रोड, कानपुर २०८००१

३८—खत्री डा० प्रेमकिशोर टन्डन
सदर बाजार
हरदोई २४१००१

३९—खत्री पी० के० टन्डन
१९५, साउथ हाउसिंग स्कीम दरियाबाद
इलाहाबाद २११०७३

४०—खत्री श्याम चरन टण्डन
बी ८ पोर्ट कालोनी नया काँडला
कच्छ (काठियावाड़) ३७०२२०

४१—जातिभूषण धर्मपाल मेहरा
नई कोठी—आगरा रोड
हाथरस २०४१०१ (अलीगढ़)

४२—खत्री बब्बन लाल चोपड़ा
जगन्नाथ रोड, होलसेल कपड़ा मार्केट
के सामने, नागपुर ४४००१२

४३—खत्री शिवलाल भालचन्द्र जी
गौतम, मु० पो० मोवाड त०—नरखेड़
जिला नागपुर ४४१३०४

४४—जातिगौरव प्रकाश शंकर टण्डन
मे० ब्रिस्टल एन्ड कम्पनी
किशना पुरी—अलीगढ़ २०२००१

४५—खत्री त्रिलोक चन्द्र सेठ
कोठी काशी नाथ ३५ सी
सिविल लाइन्स, बरली २४३००१

४६—खत्री अमर नाथ टण्डन
मेसर्स अमर कारपोरेशन २२/२२
पटकापुर—कानपुर २०८००१

४७—खत्री राम किशोर खन्ना
२७/१२ महात्मा गाँधी मार्ग
इलाहाबाद २११००१

४८—खत्री विजय कुमार कपूर
३ ए महात्मा गाँधी मार्ग,
इलाहाबाद २११००१

४९—खशी श्याम नरायन कपूर
११ ए, महात्मा गाँधी मार्ग
इलाहाबाद २११००१

५०—खत्री पन्ना लाल कपूर
२७, महात्मा गाँधी मार्ग
इलाहाबाद २११००१

५१—खत्री गोपाल दास खन्ना
(जाति भूषण) १०, चौक
इलाहाबाद २११००३

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

५२—खत्री शिवनाथ चौपड़ा
५५६, मालवीय नगर
इलाहाबाद २११००३

५३—खत्री डा० हरनाथ टण्डन
निकट पुराना पावर हाऊस हनुमान
चौक सतना म० प्र० ४८५००१

५४—खत्री गुरु मेहरोत्रा
निकट पारिजात होटल, रीवाँ रोड
सतना (म० प्र०) ४८५००१

५५—खत्री ओंकार नाथ कपूर
मे० भारत टेक्सटाईल्स
मऊनाथ भंजन २७५००१

५६—खत्री राजेन्द्र मोहन सेठ
होटल पार्क कम्पाऊन्ड
रीवाँ रोड, सतना ४८५००१

५७—खत्री राधाकृष्ण टन्डन
२२, लइया वाली गली
अमीनाबाद, लखनऊ २२६०१८

५८—खत्री कमल कुमार खन्ना
मे० के० के० ट्रेडिंग कारपोरेशन
गुईन रोड, लखनऊ २२६०१८

५९—खत्री दीना नाथ कपूर
१८/२७४ माईथान
आगरा, २८२००३

६०—खत्री जगन्नाथ कपूर
सी २१ के रोड महानगर विस्तार
लखनऊ २२६००७

६१—जाति भूषण पूरन चन्द्र बेरी
९४ कसेरट बाजार.
आगरा २८२००३

६२—खत्री राम चन्द्र अरोड़ा
५/९०.बुरा गली
फर्रुखाबाद २०९६२५

६३—खत्री विनोद कुमार टण्डन
प्रेम भवन १७१/१ सिविल लाईन्स
बरेली २४३००१

६४—खत्री पूरन चन्द्र मेहरोत्रा
मेसर्स कृष्णा काड्र्स
चौक—कानपुर २०८००१

६५—खत्री राम नरायन टण्डन
खजाँची का चौराहा
वासली गंज मिर्जापुर २३१००१

६६—खत्री रमेश चन्द्र मेहरोत्रा
(मुनीम जी) के २२/७७
ब्रह्म घाट—वाराणसी २२१००१

६७—खत्री प्रेम किशोर कपूर
कपूर टाईप राईटर एण्ड रेडियो कं०
बाँस फाटक—वाराणसी २२१००१

६८—खत्री राम लाल खन्ना
मे० मोहन लाल किशन चन्द्र
चौक वाराणसी २२१००१

६९—खत्री शंकर लाल मेहरोत्रा
चित्रा चौक
वाराणसी २२१००१

७०—खत्री राज कुमार टण्डन
नीरा होटल—रेस्टोरेन्ट, गुरहट्टी
बाजार, मिर्जापुर २३१००१

७१—खत्री डा० ललित मोहन सेठ
गऊ घाट,
मिर्जापुर २३१००१

७२—खत्री श्री राम मैनी
(पत्थर वाले)
गऊघाट मिर्जापुर २३१००१

७३—खत्री एस० एन० मेहरोत्रा जी
४५ टैगोर रोड,
कानपुर कैन्ट २०८००४

७४—खत्री डा० बी० डी० कपूर
डा० बी०डी० कपूर मार्ग
विजय लक्ष्मीनगर, सीतापुर २६१००१

७५—खत्री दिलीप चोपड़ा
३१ ताशकन्द मार्ग
इलाहाबाद—२११००१

७६—खत्री राधेश्याम टण्डन एडवोकेट
१९, रानी कटरा, चौपटियां
लखनऊ—२२६००३

७७—खत्री श्रीमती पुष्पा टण्डन
सर्वश्री सोलर इलेक्ट्रिक कम्पनी,
२०/२०० ए, चटाई मो. कानपुर-१

७८—खत्री राधा कृष्ण खन्ना
४२/१४९, मिश्री बाजार,
कानपुर २०८००१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute of Sanskrit Studies.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

७९—खत्री गोपाल दास मेहरोत्रा
२२/३९, फीलखाना,
कानपुर—२०८००१

८०—खत्री आशानरायन टण्डन, जो
५५१, मालवीय नगर
इलाहाबाद २११००१

८१—खत्री सोहन लाल मेहरोत्रा जी
सर्वश्री मेघदूत इन्जी० इण्डस्ट्रीज
मलदहिया, वाराणसी—२२१००२

८२—खत्री तिलक राज धवन
बी—९१, गाँधीनगर
मुरादाबाद—२४४००१

८३—खत्री नरेन्द्र चोपड़ा जी
सर्वश्री नरेन्द्र जनरल स्टोर्स,
मु० पो० चिखली ४४३२०१

८४—श्रीमती रामेश्वरी टण्डन जी
श्री उमेश टण्डन—'आधार' ७/११०
सी., स्वरूपनगर, कानपुर २०८००१

८५—खत्री डा० प्रताप नारायन, टंडन
'प्रताप कुटी'
कन्नौज २०९७२५

८६—खत्री के०के० मेहरोत्रा जी
सर्वश्री इण्डिया इलेक्ट्रिक
मनीराम बगिया, कानपुर—२०८००१

८७—खत्री विश्म्भर नाथ मेहरोत्रा
सर्वश्री सौरभ इन्डस्ट्रीज
सब्जी मंडी रोड—कन्नौज २०९७२५

८८—खत्री राधा कृष्ण टण्डन जी
बाजार—जव
अमरोहा—२४४२२१

८९—जाति गौरव द्वारिका प्रसाद खत्री
सर्वश्री द्वारिका प्रसाद सर्राफ
मुहल्लागंज—तालबेहट २८४१२६

९०—श्रीमती कुसुम टण्डन जी
२३ विजय नगर
मेरठ—२५०००२

९१—खत्री गुरदेव वाधवे
६० नया बास
दिल्ली ११०००६

९२—खत्री वी० के० कपूर
सर्वश्री कपूर मोटर्स, सदर बाजार
शाहजहाँपुर—२४२००१

९३—खत्री जे० एन० मेहरोत्रा
गोपी नाथ एण्ड ब्रदर्स, २३/७०
फील खाना कानपुर २०८००१

९४—खत्री कैलाश नाथ जलोटा
२६६ लक्ष्मी निवास, पहली मंजिल
पाँचवीं गली, निशातगंज, लखनऊ

९५—खत्री जगन्नाथ कपूर जी
कपूर निवास २५/३७
करांची खाना कानपुर—२०८००१

९६—खत्री बद्री विशाल कपूर
४६९ महेत पुरा
मथुरा—२०८००१

९७—खत्री कृष्ण मूर्ती कपूर
४७/८५ हटिया बर्तन बाजार
कानपुर—२०८००१

९८—खत्री सीता राम मेहरोत्रा
सर्वश्री अध्यापक प्रकाशन संस्थान,
१९ गड़बड़झाला अमीनाबाद, लखनऊ

९९—खत्री विजय खन्ना जी
सर्वश्री विशाल बिल्डर्स १११ ए/४०३
अशोक नगर कानपुर २०८०१२

१००—खत्री ब्रिज कृष्ण मेहरोत्रा
सर्वश्री राजा बोतल भण्डार ५८/२३
बिरहाना रोड कानपुर २०८००१

१०१—खत्री महेश नाथ महेन्द्र
सर्वश्री काशी नाथ—ज्वैलर्स
सिनेमा रोड, हरदोई २४१००१

१०२—खत्री श्याम सुन्दर मेहरोत्रा
सर्वश्री त्रिलोकी नाथ—सर्राफ
सिनेमारोड—हरदोई २४१००१

१०३—खत्री संत लाल मेहरोत्रा
सर्वश्री भारत बूट हाऊस
८५ जान्सन गंज—इलाहाबाद—३

जनवरी ८७ से संरक्षक शुल्क ५०१) रु० देय है। आप भी अपनी स्वजातीय पत्रिका के संरक्षक बन यश के भागी बनें।

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक
के अवसर पर
शुभ कामनाओं सहित :

मुजफ्फरपुर खत्री समाज के प्रकाश-स्तम्भ

खत्री अमिताभ मेहरोत्रा

(अध्यक्ष)

खत्री सभा (उत्तर बिहार) मुजफ्फरपुर

जिनकी छत्र छाया में अनवरत प्रतिष्ठान अपने आदर्शों में वृद्धि कर रहा है।

अम्बर

आधुनिक साड़ी एवं वस्त्रों का एकमात्र विश्वसनीय स्थान

अधिकृत विक्रेता

बाम्बे डाईंग, कल्याणी, मुजफ्फरपुर

'जय एकता जय संगठन' 'संगठन ही शक्ति है' जय खत्री जाति

'राजकिशोर उप्पल'
संगठन-मंत्री

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

फोन ४६६५

टंडन इलैक्ट्रिकल्स

हर प्रकार के बिजली के सामान व पंखे, हाकिन्स
प्रेस्टीज प्रेशर कुकर, उपहार में देने योग्य
सुन्दर व टिकाऊ वस्तुओं के विक्रेता

मेन बाजार, काशीपुर

खत्री राजेश कुमार कपूर

श्री कपूर मोटर्स

मसानी, मथुरा–३

फोन ४०, ४५५

मेहरोत्रा इन्टरप्राइजेज

आथोराइज्ड डीलर, हीरो हौंडा
कटोराताल रोड, काशीपुर
(नैनीताल)

खत्री गिरीश मेहरा

डायरेक्टर

खत्री कोपरेटिव अर्बन बैंक लि०, दिल्ली
कोषाध्यक्ष
खत्री उपकारक सभा रजि०, दिल्ली
निवास-स्थान : ७०१, कटरा नील, चाँदनी चौक
दिल्ली-११० ००६

शरद हौजरी

हौजरी निर्माता

खत्रियान स्ट्रीट, काशीपुर-

प्रो० शरद मेहरोत्रा

फोन ५३४४६

सर्वश्री साँवल दास

गनेश प्रसाद

卐 फैन्सी वस्त्र विक्रेता 卐

चौक, इलाहाबाद

खत्री सुकेश कुमार कंचन

सुकेश जनरल स्टोर

बस स्टैण्ड, तालबेहट

रामचन्द्र भानूप कुमार

विक्रेता :—मैचिंग रूबिया पापलीन

निर्माता :—

रश्मि फाल इन्डस्ट्रीज

काशीपुर (नैनीताल)

लोकेश कुमार कंचन

बल्लू बिजली वाला

तालबेहट

मुकुन्द आवला केश तेल

केशों को स्वस्थ, सुन्दर बघना व मुलायम
बनाये रखने के लिये सदैव प्रयोग करें

मुकुन्द एण्ड कम्पनी फोन १२५

खत्रियान स्ट्रीट काशीपुर (जि० नैनीताल)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाएं :

कैलाशचन्द्र
देवेन्द्र कुमार कंचन
तालबेहट, ललितपुर

श्री खत्री सुभाष खत्री
सर्वश्री खत्री कांस्ट्रक्शन
४३, पानमला, पुणे-४११०३०

खत्री महेन्द्र शंकर कंचन
राज श्री इम्पोरियम
तालबेहट (ललितपुर)

खत्री कैलाशचंद्र कपूर
चिप्स एन्ड मार्बल सिन्डीकेट
२९५, हिरण मगरी, सेक्टर-११
उदयपुर-३१३००१

जातिगौरव जयकार नाथ कपूर
खैराबाद हथकरघा उत्पादन केन्द्र
हर प्रकार की दरी के निर्माता
महेन्द्र टोला, खैराबाद, सीतापुर

सर्वश्री खत्री ब्रदर्स स्वीट मार्ट
शिवाजी पुतला
भाऊ सिंगजी रोड
कोल्हापुर-४१६००२

सोनू पान भण्डार
तालबेहट
(ललितपुर)

स्व० श्री महादेव प्रसाद मेहरोत्रा जी
के आशीर्वाद से सेवारत प्रतिष्ठान
M/s तारकनाथ एन्ड कम्पनी
M/s नितिन इलेक्ट्रिकल्स
गया प्रसाद लेन, कानपुर

खत्री मुन्नू लाल कंचन
काका जनरल स्टोर
तालबेहट (ललितपुर)

कक्कड़ टेक्सटाइल्स एजेन्सी
ए-१/२१, गायघाट
वाराणसी
फोन : निवास—६४०२५

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक
प्रकाशन के शुभ अवसर पर
हार्दिक शुभ कामनाओं सहित
खत्री नाथूराम कंचन (सदस्य खत्री हितैषी)

रेमण्ड • दिग्जाम • दिनेश • ओ० सी० एम० मिल्स के

अधिकृत विक्रेता

फोन—१२९

फैशन हाऊस

जवाहर चौक; झाँसी

उच्चकोटि की आधुनिक साड़ियों के लिये प्रख्यात :—

प्योर सिल्क क्रेप्टीशीन प्लेन व प्रिन्ट हैन्डलूम काटन

कांजीवरम तथा नवीनतम बनारसी साड़ियाँ

सामाजिक बन्धुओं को विशेष सुविधायें।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी (मासिक पत्रिका) के आजीवन सदस्यों की सूची

१—खत्री डा० एस० एन० मेहरा
६३/६४, काटजू नगर,
रतलाम (म० प्र०) ४५७००१

२—खत्री सतीश चन्द्र सेठ
२०, राणा प्रताप मार्ग,
लखनऊ (उ० प्र०) २२६००१

३—खत्री नंद नंदन टंडन
विद्या मंदिर प्रेस, रानी कटरा,
चौक, लखनऊ २२६००३

४—खत्री हरी कृष्ण सेठ
१३/१९२ बी० सिविल लाइंस,
कानपुर (उ० प्र०) २०८००१

५—खत्री हरिश्चन्द्र मेहरा
गरीब निवास, सिविल लाइंस,
बाँदा (उ० प्र०) २१०००१

६—खत्री राम स्वरूप कंचन
१६, चतुरयाना, बड़ा बाजार,
झाँसी (उ० प्र०) २८४००१

७—खत्री अनिल कुमार सेठ
घूरन तलैय्या,
शाहजहांपुर (उ० प्र०) २४२००१

८—खत्री श्याम किशोर सेठ
पुत्र स्व० जुगल किशोर सेठ
सदर बाजार—शाहजहाँपुर

९—खत्री राजेन्द्र कुमार टंडन
४४, मंदिर दाऊ जी के पास,
बरेली (उ० प्र०) २४३००१

१०—खत्री महेन्द्र कुमार मेहरा
मेसर्स हिंदी साहित्य भण्डार
५५, चौपटियाँ रोड चौक, लखनऊ

११—खत्री श्रीलाल शंकरलाल अरोड़ा
सी-१०/७५ गाँधी नगर, बांदरा
(पूर्व) बम्बई ४०००५१

१२—खत्री गोपी कृष्ण सेठ
८२५, गल्ला मंडी,
लखीमपुर खीरी २६२७०१

१३—खत्री हरी ओम मेहरोत्रा
रानीखेत रोड रामनगर
(नैनीताल) २४४७१५

१४—खत्री डा० एन० एस० टंडन
टंडन क्लीनिक, मेन रोड,
बाराबंकी २२५००१

१५—खत्री निर्भय चन्द सेठ
कोठी काशी नाथ, मंदिर गज
शाहजहाँपुर २४२००१

१६—खत्री अमेश चन्द्र टंडन
कुंज भवन, चौक,
शाहजहाँपुर २४२००१

१७—खत्री मुरारी प्रसाद सहगल
खत्री टोली,
जहानाबाद (गया) ८०४४०८

१८—खत्री कामेश नारायन खन्ना
खन्ना इलैक्ट्रिक हाउस ३५ डी—९ बी
रामपुर बाग, बरेली २४३००१

१९—खत्री राम खिलावन खत्री
सर्राफ दुकान करना बाग,
सोहसराय नालंदा—८०३११८

२०—खत्री मदन मोहन खत्री
मै० छोटा नागपुर बीड़ी ट्रेडिंग कं०
चाईबासा (बिहार) ८३३२०१

२१—खत्री श्रीमती सुमन लता सेठ
१३३, सेनथम हाई रोड मैलापुर
मद्रास ६००००४

२२—खत्री मोहन प्रसाद खत्री
खत्री मोहल्ला,
पालीगंज (जि० पटना) ८०१११०

२३—खत्री डा० प्रमोद मेहरोत्रा
रायनगर,
(नैनीताल) २४४७१५

२४—खत्री राम नरायन सेठ
मेन रोड
लखीमपुर खीरी २६२७०१

२५—खत्री त्रिभुवन नाथ टंडन
सर्राफ पिहानी
(जि० हरदोई) २४१४०६

२६—खत्री हरीकृष्ण महेन्द्र
महेन्द्र टोला,
खैराबाद (सीतापुर) २६११३१

२७—खत्री केदार नाथ खन्ना
१७८, सिबिल लाइंस
बरेली (उ० प्र०) २४३००१

CC-0. Bhagavad Ramanuja Mutt.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

२८—खत्री वीरेन्द्र कुमार टंडन
मै० जनरल स्टोर्स बड़ा बाजार
नैनीताल (उ० प्र०) २६३००१

२९—खत्री अरुण कुमार तलवार
मै० सेन्ट्रल मिल स्टोर्स, सी० आई०
स्टेट जी. टी. रोड बाई पास, जालंधर

३०—खत्री योगेन्द्र प्रसाद आजाद
रामावतार प्रसाद खत्री पथु, दीवान
मोहल्ला (हमाम), पटना सिटी ८

३१—खत्री छैल नारायन सेठ
मै. लखनऊ प्लास्टिक्स २१, न्यू मार्केट,
पेपर मिल कालोनी, निशातगंज, लखनऊ

३२—खत्री श्री निवास सहगल
मै० श्री निवास पेपर मर्चेन्ट, गांधी
रोड, झांसी (उ० प्र०) २८४ ००२

३३—खत्री गौतम प्रसाद आर्य साहनी
खत्री मोहल्ला,
पालीगंज (जि० पटना) ८०१११०

३४—खत्री सुनील कुमार टंडन
३९२, धर्मशाला रोड
हरदोई (उ० प्र०) २४१००१

३५—खत्री रघुवीर सिंह खन्ना
हिन्दी मराठी प्रकाशन धनवते चैम्बर्स,
सीतावर्डी, नागपुर ४४००१२

३६—खत्री एच० एन० कपूर
मै० एयर केयर इन्जीनियर्स, १३८,
इन्दिरा बाजार, जयपुर–३०२ ००१

३७—खत्री श्री मोहन लाल चोड़ा
म० आजाद पुस्तक भण्डार
मेन रोड, जहानाबाद ८०४४०८

३८—खत्री सत्य प्रकाश सहगल
मै० सहगल स्टोर्स–मेन रोड
लखीमपुर खीरी २६२७०१

३९—खत्री डी० पी० टंडन (गार्ड)
टी–२६ ई रेलवे सिटी कालोनी
बरेली (उ० प्र०) २४३००१

४०—खत्री डा. रमेश कुमार मेहरोत्रा
काशी नगर
लखीमपुर खीरी २६२७०१

४१—खत्री रणछोड़दास ज्ञानप्रकाश अरोड़ा
मै० प्रकाश ब्रदर्स/हाथी पोल बाजार
उदयपुर (राजस्थान) ३१३ ००१

४२—खत्री मुकेश कुमार मेहरोत्रा
मै० मुकेश पुस्तक भन्डार, सलेमपुर
छपरा (सारन) ८४१३०१

४३—खत्री श्रीमती पुष्पा मेहरा
२९/१२ कचहरी रोड बंगाली धर्म-
शाला गली, अजमेर (राज.) ३०५००१

४४—खत्री डा० श्याम लाल कपूर
सी १६६ निराला नगर
लखनऊ (उ०प्र०) २२६००७

४५—खत्री रमेश कुमार मेहरोत्रा
तुलसी पार्क
बलरामपुर २७१२०१

४६—खत्री गोपाल मनोहर कपूर
आनरेरी मजिस्ट्रेट, मिस्टन गंज,
रामपुर (उ० प्र०) २४४९०१

४७—खत्री त्रिभुवन नाथ टंडन
बिहारी आश्रम–सराय माली खां चौ
लखनऊ (उ० प्र०) २२६००३

४८—खत्री मधुर मेहरोत्रा
मै० मधुर स्टेशनर्स, अमरोहा गेट,
मुरादाबाद (उ० प्र०) २४४००१

४९—खत्री अनन्त राम पुरी
खपरैल बाजार
लखीमपुर खीरी २३२७०१

५०—खत्री योगेन्द्र प्रसाद खत्री
अम्बर (पीपल)
बिहार शरीफ (नालन्दा) ८०३१०१

५१—खत्री जगन्नाथ कपूर
स्टेट बैंक कालोनी सिविल लाइन्स,
मुरादाबाद २४४१०१

५२—खत्री हरी किशन महेन्द्रा
मै० कृष्णा पुस्तक भन्डार म्यूनिसिपल
मार्केट, लखीमपुर २६२७०१

५३—खत्री पी० के० मेहरोत्रा
शारदा पावौं सदन ७६, सिविल
लाइन्स, झांसी (उ० प्र०) २८४००१

५४—सत्य नरायन टण्डन
सर्वश्री एस०एन० टण्डन एन्ड ब्रदर्स
४७/६ मनीराम बगिया, कानपुर–१

National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

५५—खत्री हृदय नारायन कपूर
मै० अनिल ड्रिक्स सिविल लाइन्स
रामपुर २४४६०१

५६—खत्री जगदीश कपूर
मै० कपूर मोटर स्टोर्स, नैनीनाल रोड
सिविल लाइन्स, रामपुर २४४६०१

५७—खत्री शिवाकार कपूर
महेन्द्रू टोला
खैराबाद (सीतापुर) २६११३१

५८—खत्री विजय शंकर कपूर
पुरानी चौक (फतुहाँ)
फतुहाँ (बिहार) ८०३२०१

५९—खत्री विनोद नाथ कपूर
घूरन तलइया चौक
शाहजहाँपुर

६०—खत्री ए० के० खरे
मोहल्ला डिगोहा
बहराईच २७१८०१

६१—खत्री हकीम सूरज प्रसाद अरोरा
बकसरिया—चौक
शाहजहाँपुर

६२—खत्री गोपी मोहन कपूर (एडवो.)
मो० खत्रियान
फर्रुखाबाद

६३—खत्री यू० एन० सेठ
१ म २१ विज्ञान नगर
कोटा (राज०)

६४—खत्री राजेन्द्र कुमार मेहरोत्रा
काशी मार्ग—काशी नगर
लखीमपुर खीरी २३२७०१

६५—खत्री राम मोहन कपूर
सर्वश्री कपूर क्लाथ स्टोर्स सदर
चौराहा, लखीमपुर खीरी २६२७०१

६६—खत्री अखिलेन्द्र कपूर
कोठी न० ४ राजापुर
लखीमपुर खीरी २६२७०१

६७—खत्री जे० पी० कपूर जी
जे २/४५ विजय नगर
कानपुर

६८—खत्री अमर नाथ कपूर
मै. आर.के. सेल्स एजेंसी ५६८० कूचा
खान चन्द्र जोर्ग बाड़ा-नईसड़क दिल्ली

६९—खत्री एल० डी० खत्री जी,
ज्वाईन्ट चीफ मे. इ. दि ग्वा. रेयान
सिल्क मैन्यू. (wvg) कंलि. (के० डि०)
बिरला ग्राम नागदा (म० प्र०)

७०—खत्री गोपी मोहन कपूर (एडवो.)
नेहरू रोड
फर्रुखाबाद २०९६२५

७१—खत्री सन्तोष कुमार कपूर जी
१२३ जुगयान्न
झाँसी

७२—खत्री श्याम सुन्दर कपूर
सर्वश्री कपूर आभूषण भण्डार
सिनेमा रोड—हरदोई

७३—खत्री अनिल मेहरोत्रा
सर्वश्री मधुलिका वस्त्रालय
सिनेमा रोड—हरदोई

७४—खत्री मोहन कृष्ण टण्डन
सर्वश्री टण्डन ब्रदर्स
अशराफ टोला—हरदोई

७५—खत्री एम० के० मेहरोत्रा
पर्चेज मैनेजर सिरायकेला ग्लास वर्क्स
(प्रा.) लि. पो. कंदरा (एस. ई. रेलवे)
जि.—सिंहभूमि—बिहार ८३२ ४०२

७६—खत्री कैलाश शंकर टण्डन
बी-१/५३ प्रीती अपार्टमेन्ट
वीरा देसाई रोड—बम्बई ५८

७७—खत्री हरगोविन्द सेठ जी
सर्वश्री मतवाला प्रेस
गऊघाट—मिर्जापुर

७८—खत्री महेश कुमार वत्सल
ए/१०६ तलवड़ी
कोटा—३२४००५

७९—खत्री पी०एन० मेहरा
प्रधानाचार्य राजकीय पालीटेकनिक
द्वाराहाट (अलमोड़ा) २६३६५३

८०—श्री ब्रज किशोर कपूर
१०२ कैन्टून मेन्ट रोड
लखनऊ

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization

खत्री हितैषी के स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक हेतु
शुभ कामनाओं सहित

खत्री गोपाल दास मेहरोत्रा
संरक्षक खत्री हितैषी

फोन निवास ६३७६२
फैक्ट्री ४४२८०
४२६७३

अनिल टैक्सटाइल्स

२३/३६, फीलखाना, कानपुर
होजरी क्लाथ एवं बनियानों के निर्माता
सहयोगी प्रतिष्ठान

गंजी वाला प्रा० लि०

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर शुभ कामनाएँ :—

खत्री उमाचरन वर्मन

सर्वश्री महेशदास कालीचरन
राजाधिराज बाजार, मथुरा
हलो ३७८०
निवास ४८०१

सर्वश्री [illegible] प्राईस
राजाधिराज बाजार, मथुरा
हलो कार्यालय ५३६८
निवास ४८०१

खत्री किशनलाल वर्मन

सर्वश्री वर्मन ब्रादर्स
३१०, कूचामीर, आशिक—चावड़ी बाजार, दिल्ली
हलो कार्यालय २७०६६७
निवास ७४१८६५

खत्री गोपालदास अरोड़ा

सर्वश्री नवीन गारमेन्ट्स
गोल पाड़ा, मथुरा
हलो ४१७०
बच्चों के हर प्रकार के सिले वस्त्रों के निर्माता व थोक विक्रेता

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

खत्री जाति : सिंहावलोकन

—स्वर्गीय रायबहादुर श्री श्यामसुन्दर दास

खत्री जाति का इतिहास बहुत महत्वपूर्ण है अत्यन्त प्राचीनकाल से यह जाति द्विजातियों के द्वितीय वर्ण (क्षत्रिय) की प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित रही है। इसमें बड़े-बड़े शूरवीर, योद्धा, व्यापारी और विद्वान तथा धर्म प्रवर्तक हुए हैं ; जिनके इतिवृत्तों से भारतवर्ष के इतिहास के पन्ने रंजित हो रहे हैं। प्राचीन सूर्यवंश और चन्द्रवंश के ये उत्तराधिकारी हैं। पर समय का फेर किसको तितर-बितर और गिरा नहीं देता। मुसलमानी राज्य में भी ये उच्च पदों पर प्रतिष्ठित रहे। एक अंश दिल्ली में आ बसा और दिलवालिये कहलाया। कुछ आगरे में आ बसे, कुछ फिर आगे बढ़कर अवध में बसे, वहाँ से आगे बढ़ते हुए वे संयुक्त प्रान्त और बिहार में होते हुए बंगाल तक चले गये। इस प्रकार मुसलमानी राज्य ज्यों-ज्यों उत्तर से दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ता गया त्यों-त्यों इस जाति के लोग राज सम्बन्ध अथवा व्यापार के कारण आगे बढ़ते गये।

इस जाति ने देश में विशेष ख्याति प्राप्त की है और वह अपने पूर्व गौरव से गौरवान्वित होकर अपने कर्तव्य तथा महत्व से च्युत नहीं हुई है। अत्यन्त प्राचीनकाल से जो क्षत्रियों का वर्ण चला आता है उसमें इस जाति का प्रमुख स्थान रहा है। इसके प्रमाण में चार महत्वपूर्ण बातें कही जा सकती हैं :—

(१) हमारी आर्य भाषा का जो अब तक अनुसंधान हुआ है उससे पता चलता है कि अत्यन्त प्राचीनकाल में जो भाषा आर्य लोग बोलते थे वह एक प्रकार की प्राकृत थी, जिसका परिमार्जित रूप वेदों की ऋचाओं की रचना में काम में लाया गया। धीरे-धीरे इस भाषा का विकास हुआ और वह आगे चलकर संस्कृत के रूप में प्रतिष्ठित हुई। पर बोलचाल की भाषा पाली कहलाई। बुद्धदेव ने इसी बोलचाल की भाषा को अपना कर अपने उपदेशों का प्रचार किया।

आर्यों का आदि उपनिवेश पंचनद प्रदेश में हुआ और वहीं भाषा के अनेक रूपों का विकास हुआ। प्राकृतों में 'क्ष' अक्षर नहीं है, उसके स्थान पर 'ख' अक्षर का प्रयोग होता है। भाषा विज्ञान के इसी उच्चारण विधान के कारण 'खत्री' शब्द चलन में आया और वह अब तक प्रचलित है। अतएव यह सिद्ध है कि प्राचीनकाल में पंजाब में जो क्षत्रिय वर्ण था वह 'खत्री' नाम से ही प्रसिद्ध हुआ।

(२) यह बात प्रसिद्ध है कि परशुराम जी ने अनेक बार क्षत्रिय राजाओं का नाश कर उनके राज्य ब्राह्मणों को दिये। इस विप्लव में खत्रियों के राज्यों का एक प्रकार से समूल नाश हो गया! जो खत्री बच गये वे अपने पुरोहित सारस्वत ब्राह्मणों की कृपा से बचे। इससे सिद्ध है कि खत्रियों का विनाश विशेष रूप से परशुराम जी के युद्धों से हुआ। बचे-बचाये खत्री या तो छिपकर

[स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

या अन्य उपायों से अपनी रक्षा कर सके। स्त्रियों और बालकों की रक्षा सारस्वत पुरोहितों द्वारा विशेष रूप से हुई।

(३) खत्रियों में सभी संस्कार अब तक शास्त्रोक्त रीति से बराबर आ रहे हैं, यह उनके उच्च कुलोद्भव होने का स्पष्ट प्रमाण है।

(४) सारस्वत ब्राह्मणों का निवास सरस्वती नदी के तट पर था। इसी कारण वे सारस्वत कहलाये। ये पूर्वकाल से खत्रियों के पुरोहित होते आ रहे हैं, ये अपने यजमानों के यहाँ कच्ची रसोई खाते हैं। पंजाब में अब तक हन्दे की प्रथा प्रचलित है। वैष्णव धर्म के प्रभाव से कहीं-कहीं इसमें कुछ परिवर्तन हो गया है, पर मूल आधार अब तक ज्यों का त्यों बना हुआ है। इस सम्बन्ध में खत्री और सारस्वतों के गोत्र भी पुष्ट प्रमाण उपस्थित करते हैं।

ये चार बातें ऐसी हैं जो खत्रियों के उच्च कुलोद्भव होने के और वैदिक क्षत्रियों के वर्तमान पवित्र प्रतिनिधि होने के प्रमाण में दृढ़ता पूर्वक कही जा सकती हैं और जिनका महत्व उपेक्षा योग्य नहीं है।

नृतत्त्वशास्त्र के उद्भट विद्वानों ने अपने विभिन्न निरीक्षणों द्वारा यह प्रतिपादित किया है कि खत्री उच्च कुलोद्भव निर्मल वंश के हैं और इनमें अन्य जातियों के रक्तों का मिश्रण नहीं हुआ है।

सारांश यह है कि खत्री जाति का इतिहास महत्वपूर्ण है, पर समय के फेर तथा अविद्या के अन्धकार ने उसे लुप्तप्राय कर दिया है। (खत्रीजन अपने गौरव को भूल गये तो दूसरों द्वारा उन्हें भूला दिया जाना स्वाभाविक था। खत्रियों के सम्बन्ध में अनेक भ्रमपूर्ण बातें की जाने लगीं जिनका निवारण किया जाना आवश्यक है।)

बरेली में सन् १९०१ में हुए खत्री सम्मेलन ने एक बहुत महत्वपूर्ण काम किया। सम्मेलन के सभापति राजा बनविहारी कपूर ने जो आवेदन-पत्र सेंसर कमिश्नर रिजली साहब को प्रस्तुत किया, उसमें खत्रियों के सम्बन्ध में बहुत-सी प्रामाणिक बातें आ गयीं और यह सिद्ध हो गया कि खत्री वास्तव में पवित्र क्षत्रिय कुल के हैं। इस आवेदन-पत्र में बहुमूल्य सामग्री संग्रहित है।

ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं।

('खत्रिय इतिहास' में लिखी भूमिका का सार-संक्षेप)

स्थापित : १९३० ॐ फोन : ४४११

मोहन होटल

छत्ता बाजार मथुरा-२८१००१

मन्दिर श्री द्वारिकाधीश जी व श्री यमुना जी के पास शुद्ध शाकाहारी भोजन एवं आधुनिक सुविधाओं से युक्त निवास हेतु पधारें।

संस्थापक खत्री कु०हरनाथ सिंह जी सरीन शीघ्र प्रारम्भ हो रहा है-सुमन मार्केट छत्ता बाजार मथुरा

मथुरा प्रिन्ट की छपी साड़ियों का थोक बाजार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

जाति क्या है ?

व्यापक व्यक्तिगत अन्तरों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से ही जाति प्रथा का जन्म हुआ था।

आधुनिक वैज्ञानिक व्याख्या के अनुसार 'जाति' ऐतिहासिक प्रक्रिया में विकसित एक 'जन समुदाय' है। जिसका उदय अपने को अभिव्यक्त करने वाले एक समान मनोवैज्ञानिक बनाव के आधार पर होता है।

जाति अपनी संस्कृति की विशेषताओं से निराली बनती है। उसका निरालापन उसके अतीत की गहराइयों से उद्भूत होता है और उसके तर्ज जिन्दगी को अर्थात उसके प्रधान चरित्रगत विशेषताओं को निर्धारित करता है।

रक्त तथा स्वरूप की एकता ने परस्पर आत्मीयता उत्पन्न की। जितनी आत्मीयता बढ़ती गई उतना ही निजत्व की भावना का क्षेत्र विकसित होता गया। निजत्व की भावना का विकसित क्षेत्र ही जाति अथवा समाज के रूप में प्रगट हुआ।

जाति समाज का प्राण धार्मिक संस्कारों में है। धार्मिक संस्कारों में अनास्था जाति के प्रति अनास्था है।

सुकर्म सुवचन सुविचार और इसके द्वारा जीवन को उच्च होने की प्रक्रिया ही हमारे जाति. जीवन का मूल-मन्त्र होना चाहिये।

सत्य आस्था और लगन जीवन की प्रगति का मूल है खत्री जाति को इसे जीवन के यथार्थ में उतारने का प्रयास सतत करते रहना चाहिए।

हमारी संस्कृति हमारी सभ्यता और हमारे जातीय संस्कार ही हमारे विकास की सतत् प्रक्रिया हैं। हमें अपने अतीत से साक्षात्कार करने, अपने इतिहास को सुरक्षित रखने का प्रयास करना है। यही वर्तमान पीढ़ी का पवित्र कर्तव्य है।

संस्कार वातावरण से अथवा पूर्व जन्म के कर्मफल से बनते हैं। और वह हमें पैतृक सम्पत्ति के द्वारा जातीय संस्कारों के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी मिलते रहते हैं।

सभी को अपनी वर्तमान स्थिति से आगे बढ़ना चाहिए, और जो बढ़ता है उसे देखकर खुश होना चाहिए।

महान् खत्री जाति प्रारम्भ से ही अपार मुसीबतों, संकटों और अपरिमित कठिनाइयों में से गुजर कर जीवन-यापन करती रही है। फिर भी उसने हमेशा स्वर्ण की तरह शुद्ध होकर जातीय स्वाभिमान की रक्षा की।

जब जीना असह्य हो जाय तब भी जीने की क्षमता मनुष्य में होनी चाहिये। यही श्रेष्ठ मानव का लक्षण है।

अपने जीवन को सदैव उपयोगी बनाओ।

समय-समय पर ऐसे आयोजन किये जायें जिससे जातीय विशेषता के चरित्र (कास्ट करेक्टर) का निर्माण और व्यवहार हो।

[स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

खत्री हितैषी १९३६—१९८७]

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जीवन मनुष्य की सबसे प्यारी निधि है। हमें चाहिए कि हम इस तरह जियें कि उसमें कायरता और तुच्छता का धब्बा न लगे। निरुद्देश्य समय गंवाने का पछतावा न रहे और हम यह कह सकें कि मेरा जीवन और शक्ति महान खत्री जाति की सेवा में अर्पित रही है।

हमारी जातीय जीवन पद्धति में कुछ ऐसी विशेषता है कि हमारे समाज का गरीब से गरीब व्यक्ति भी अपनी कठिनाइयों पर विजय पा लेता है।

हमें अपने साधारण बन्धुओं (जनता) का विश्वास नहीं खोना चाहिए। वह कम शिक्षित और कम साधन सम्पन्न हो सकते हैं। परन्तु संस्कृति-शून्य और संस्कार शून्य नहीं हो सकते।

तुच्छता स्वार्थ-लिप्सा एवं संकीर्णता खत्री मानसिकता के विपरीत है। अतः हमें इन प्रवृत्तियों से बचने का प्रयास सदैव करना चाहिए।

खत्री शब्द तो हमारे जातिगत गौरव की निशानी है, जो हमें धर्म से भी अधिक प्यारा है।

विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न अवसरों पर चित्रित चित्रों में से यह शब्द पुष्प मैंने आपके मन मन्दिर की वाटिका सजाने हेतु प्रस्तुत किये हैं। आशा है आपको मेरा यह प्रयास रुचिकर लगेगा।

—सम्पादक

खत्री विष्णू कपूर

सर्वश्री शान्ती इन्डस्ट्रीज फोन ४३०१ PP

मेन्था आयल, जिन्जर आयल तथा अन्य आवश्यक तेलों के व्यापारी

सर्वश्री नीरद इन्टर प्राईजेज फोन ४८६३

कार्यालय—राजद्वारा, रामपुर-२४४ ६०१ (उ०प्र०)

खत्री विजय कुमार कपूर (अध्यक्ष खत्री सभा रामपुर)

सर्वश्री साड़ी संसार फोन ४७७८

आधुनिक डिजाइनों-उच्चश्रेणी के वस्त्रों शूटिंग-शर्टिंग एवं
मनमोहक साड़ियों के व्यापारी

श्याम मूर्ति सरन कपूर एन्ड कम्पनी

सफदरगंज, रामपुर-२४४६०१ (उ०प्र०)

...rch Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

A BRIEF ETHNOLOGICAL SURVEY OF THE KHATTRIS

By
Moti Lal Seth, Agra
(PUBLISHED IN 1905)

THE ORIGIN OF THE KHATTRIS

As far as the origin of the caste, in the true sense of the word, is concerned, we must say, as indeed must everybody else who has any insight into the social and political history of ancient and modern India, that it has been existing as a separate class ever since the discontinuance of the practice of settling a man's *varna* (social position) by the standard of his own personal qualifications and the introduction of the fourfold hereditary caste system among the Aryans. Their modern name is the result of a combination of circumstances, which, to be clearly understood, require a somewhat lengthy treatment. We shall try to sketch them as briefly as possible.

Opening the pages of the sacred texts of the Hindus, we find the Aryans in the first epoch of their history, as conquerors and settlers on the banks of the Sindhu—the Indus of modern Geographers—and its five feeders, which give the country between Kabul and the United Provinces the name of the Punjab. They strike us as a conquering race full of enthusiasm and vigour of a young national life, carving out with their strong arms new possessions and realms, and driving before them the aborigines of the soil, who vainly struggle to maintain their own against the invincible invaders. In the second epoch of their Indian career, they cross the Satlaj, and pouring in numbers in the Gangetic plains, establish many powerful kingdoms from one end of the valley to the other. The Kurus found a kingdom round about the modern Delhi, the Panchalas occupy the modern Kanouj, the Kansalas settle between the Ganges and the Gandak, including the modern Oudh in their dominion, the Videhas take possession of the modern Tirhoot, and the Kasis spread their sway round about the modern Benares.

"The tide of Aryan conquests", says Mr. R. C. Datta, in his History of Civilization in Ancient India, "rolled on"..... "Stream after stream was crossed, forest after forest was explored and cleared, and region after region was slowly conquered," until the Aryans were supreme in the whole of India.

In course of time was laid the foundation of the present caste system. The conquerors divided themselves into hereditary Brahmans, Kshatriyas and Vaishyas, and gave the name Sudra to such of the

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

natives of the land as were taken by them into their service.

Then, in the Epic Age, when probably the caste-system was still in its infancy there arose deadly hostilities between the stalwart priests and the proud Kshatriyas. The former over-came the latter and recklessly slaughtered them, without distinction of age or sex. These massacres of the Kshatriyas, which are ascribed to the well-known Axe-wielder, Parasurama, shook the entire fabric of the Kshatriya society to its very foundation and immensely reduced their numbers. It was not soon that they could recover from the crushing blow But recover they did after all. It is a mistake as will be shown further on to suppose, that the race was totally annihilated; and we find in the Ramayan that Rama Chandra, the great Kshatriya conqueror divided his Empire among his son and nephews in the following manner :—

(*a*) The regions about the Vindhya hills were assigned to Kusha, who made Kushavati his capital.

(*b*) Lava had North Kausala for his kingdom and Sravantic or (Sarabati) for his capital. He subsequently founded another city which be named Lavapur (afterwards called Lahore) after himself.

(*c*) To Rama's nephews, Taksha and Pushkal, (both sons of Bharat) were assigned the territory of Gandahar (Kandahar) where they settled in the cities of Takshashila and Pushkalabati, respectively named after them.

(*d*) To his nephews, Sahabu and Satrugati, (sons of Shatrugun) Ram allotted Mathura and Bidisa respectively.

(*e*) He founded the cities of Chandrakauta and Apgadia in Mallabhum and gave them respectively to Chandraketu and Angad (sons of Lakshman).

Subsequently a branch of the descendants of Kusha is said to have emigrated from Kanouj to the regions known as Rajputana and to have founded the dynasty to which the present ruling family of Marwar claims to belong Similarly, some of the descendants of Lava are said to have left for the south, under the leadership of Kanaksen, and to have conquered Surat and founded a kingdom there. The Chiefs of Mewar connect themselves with these emigrants and trace their descent from Lava.

The next great crisis in the history of the Kshatriyas was the rise of Buddhism, whose founder was born in the caste itself, in the Gangetic plains in about 557 B. C. This ultimately resulted in the separation of a large number of its constituents from the original group. The tenets of the new religion worked their way with remarkable rapidity. Thousands of Kshatriyas and Vaishyas flocked to its standard. In a short time it became a formidable rival of Brahmanism and flourished side by side with

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

it, for more than one thousand years. The Brahmans and the orthodox Kshatriyas had a long and arduous contest with its followers; but nothing could arrest the tide that had set in with an irresistible force. As a *natural* consequence the Kshatriya race was split up into two groups—(1) the Brahaminic or *Vedic* and (2) the Buddhist or *Non-Vedic*.

Time rolled on; and in about 367 B. C. was born Nanda, the illegitimate son of Maharaja Mahanand, (the tenth descendant of Shishu Nag, according to the Vishnu Puran) by a Shudra wife, who also, like his father connected himself with a Shudra woman named *Mura*. This *Mura* gave birth to a son, named Chandra gupta, whose reign formed a new era in the history of the country. The influence of his mother with his father secured for him the throne of Magadh; and he became one of the most powerful princes in the land. His installation was the sounding of a new alarm to the Kshatriyas—the herald of another great crisis in their social and political life, and the opening of a new page in their chronicles The descendants of the proud races who had fought desparately in the Indian epic wars, in the Gangetic plains, the successors of the older and sturdier Aryans, who had founded large dominions in the Indus valley and the sons of those valiant chiefs who had fought and ruled in Tirhoot, all qualied before this mighty monarch. He brought the whole of Upper India, from the Panjab down to Behar, under his sway. Victory smiled upon him wherever he went. This happened in about B. C. 320.

Now approached the critical moment for both the Vedic and the Non-Vedic Kshatriyas. The victorious sovereign of Magadh, elevated by the sense of his brilliant career, pressed the legitimate kindred of his father and the whole race of Kshatriyas – the *Vedic* as well as the *Non-Vedic* group —to hold free social relations of inter-marriage with him and his descendants, and threatened like Parasuram, to extirpate the whole race, if they refused to do so. The result was, that the royal family and the ministers of the court with all their relatives and the *Non-Vedic* Kshatriyas who had hither to no social connection with him, took him into their caste. The Vedic Kshatriyas of the Gangetic Valley managed to sound the alarm of an exodus, fled in large numbers to their brethren in the Punjab and with them, escaped under the plea that they were Kshatriyas of a different type from that of his father's kindred and his court ministers, and therefore beyond the circle with which he was going to associate himself (*Vide* B. Harish Chandra's Origin of the Khattris, page 6). Those that remained behind were naturally merged into the *Non-Vedic* group.

After the death of Chandragupta, Buddhism made still further progress. His grandson Asoka, became the greatest and the staunchest supporter of the creed. In course of time, it was the predominant religion throughout the length and breadth

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Digitized by Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

of the Peninsula. The Vedic party grew very weak, and the military element in it was by no means in a position to undertake a crusade against the powerful followers of Gautama (Buddha).

At last, Shankaracharya was born who undertook the mission of preaching the Vedas and succeeded in bringing back a large number of believers in Buddhism to the Vedic creed: the Brahmans in order to make up the deficiency caused in the ranks of the soldier tribe and to make themselves strong enough to expel the followers of Buddha from their land resorted to the well known conversions at Mount Abu and thus created a new *non-Aryan* and a *non-Vedic* warrior race. These converts, as is the case with all new converts, "espoused the religion of the Vedas with exceptional zeal. They were proud to be called Kshatriyas (descended from the Solar and Lunar race)." Wherever they went they conquered; Buddhist churches and monasteries went down before them; and Brahmanism was once more triumphant in Aryavarta. This was followed by the return of not a few of those Kshatriyas who, had embraced the teachings of Buddha, to the Vedic faith. The English historians fix the date of this event about A. D. 600.

Thus, leaving out of account such persons as still clung to the Buddhist faith, there grew up three distinct groups of Kshatriyas.

(1) The *Vedic Kshatriyas* who, through all the agitation caused by Gautama and Chandragupta, remained firm in their own religion.

(2) *The non-Vedic Kshatriyas* who, having once adopted the tenets of Buddha, re-embraced the Vedic principles.

(3) *The non-Vedic and the non-Aryan Kshatriyas* who had been admitted to the ranks of the military class from among the *non-Aryan* races.

The first group along with their family priests, the Saraswats, settled in the Punjab, and were the founders of the Brahmanical dynasty there, which lasted until it was overthrown by Subuktagin and his successor, Mahmud of Ghazni; the second established themselves in Behar and Oudh, and ruled the Kingdom of Magadh; and the third, along with certain families that could trace their descent from Raja Ram Chandra, colonised in and became the masters of what is now called Rajputana. All the three were admittedly Kshatriyas; but they were all Kshatriyas of different types and constituted three distinct classes to all intents and purposes. The orthodox section refused to readmit the Aryan reconverts to Brahmanism into their society, because they thought they had tainted their social position by going over to Buddhism and admitting Chandragupta to an equality with themselves, while the latter were too proud to have brotherly intercourse with the non-Aryan converts, who had been baptised by the Brahmans at Abu only to meet the exigencies of the occasion.

Centuries again passed away, Sanskrit

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ceased to be the spoken and written language of the predominant races, and in its place sprang up a variety of new dialects now called the vernaculars of the land. This rendered the correct pronunciation of the word Kshatriya more and more difficult every day; corrupt forms of it came to be used in its place; and it was ultimately totally forgotten by the general public. The Brahmans only continued to write it correctly in horoscopes; marriage documents and Sanskrit books and to prononuce it as it should be prononuced in reciting the sacred texts and *Shakhachar, & Co.*, on occasions of ceremonial worship. For every day purposes its exact pronunciation was an impossibility and the corruptions in use satisfied the common people. In due course of time these corruptions took various definite forms, in the various vernaculars of the country and came to be recognized as authorised words by Grammarians and Lexicographers themselves. The Vedic Kshatriyas of the Punjab called themselves 'Khattris'' in their Punjabi dialect, while the non-Vedic groups came to be known as "Chhattris."

Still further lapse of time resulted in the amalgamation of the Rajputana and the Eastern Kshatriyas into one and the introduction of new elements and further new terminology in their ranks.

The Oudh section stuck fast to their newly acquired name "Chhattri," and the Vedic group continued to be called Khattris; but the Royal families of Rajputana and their brethren acquired the modern designations of "Rajput" and "Thakur," for the origin of which terms different theories have been put forward by different writers. Be the truth what it may, this much is certain that the term Rajput is still not held in any high esteem by the Chhattris of Oudh; and those who are called by that name are supposed to be of an inferior descent.

We may not without advantage give here an extract from a very sensible article, written some time ago by a native of Agra, the late master Beni Ram Seth, President of the Khattri Sabha, Ajmer. He writes :—

"If we carefully examine the present constitution of the Hindu Sociology, we shall find, that there are in the present age two distinct groups in each of the four main castes of India – *the Vedic* and the *non-Vedic*. Hence the present day Kshatriyas are also divided into two widely different communities—one, the *Vedic* and the other, the *non-Vedic*. The former in their social life conform to the ceremonial rules and regulations laid down in the sacred books of the Hindus; the latter do not observe these rituals as a universal law and whenever they do so they widely diverge from the prescribed lines. We also find, that the *Vedic* group have the priests of the old Kshatrlya race for their priests and enjoy the same privileges that were allowed to their ancestors in the *Vedic* age, while the members of *non-Vedic* branch fail painfully to exhibit traces of genuine unmixed Aryan

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mahalaxmi Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

blood in them and are not permitted by their so called priests to enjoy the Shastric rights due to true Kshatriyas. Whether the *non-Vedic* Kshatriya classes would not of their own accord adopt the *Vedic* principles in their entirety, in order to keep themselves free from the by-no-means-easy shackles of Brahmanic restrictions, or the Brahmans would not associate them freely with themselves is difficult to ascertain.

"Now as regards the wide gulf existing between *Kshatriyas* and *Kshatriyas*, there are some very important facts to be remembered. After the historically famous recognition of Chandragupta and the manufacturing of a new race of Kshatriyas at mount Abu, followed by the revival of Hinduism and the return of a large number of the descendants of those Kshatriyas, who had adopted the tenets of *Buddhism*, to the religion of the *Vedas*, there sprang up three distinct races, *(1) the orthodox Vedic Kshatriyas, (2) the reconverted Aryan Kshatriyas*, and *(3) the non-Aryan converted Kshatriyas.*

"In course of time the last two groups were amalgamated into one."

In support of the occurrence of this amalgamation, Master Beni Ram quotes the great philosopher and ethnologist, Professor Huxley, who says :—

"I have purposely omitted such people as the Abyssinians and the Hindus, who, there is every reason to believe, result from the intermixture of different stocks. (Huxley's Critiques and Addresses page 153)." And again the Professor observes :—"Offshoots of the Xanthrocroi (fair) stock extend into Spain, Italy and Northern India. The Melonocrol (dark) stock, on the other hand, may be represented as a broad land stretching from Ireland to Hindustan. Following this line of demarcation, it is not improbable that the Xanthrocroi strip extends no further than the Panjnaddesha, so that the amalgamation of the two fair and dark stocks most probably took place in the plains beyond the Punjab."

Meanwhile it must be remembered, that the Vedic Kshatriyas, though deprived of royalty with the overthrow of the Punjab dynasties, continued to pay as strict a regard to their ancestral blood as did the "Chosen People of God." This blood runs in the veins of true Khattris as pure as it did in the veins of their patriarchs. On the other hand, the non-Vedic Kshatriyas have not been so careful of their connubial connections as the Vedic group. A few of their princes cheerfully gave their daughters in marriage to the Moghul emperors.

"In Upper India" on the authority of "Mr. Nes-field and c., the manufacturing of Chhattris is a process still going on before our eyes; and what is happening now has been in operation for the last two thousand years at least."

Hence arise differences in complexion, mode of life religious observances, domestic ceremonies and social relations with

Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

the family priests, between the *Vedic* and the *non-Vedic* groups of Kshatriyas.

As for the unwillingness of the Khattris or the Vedic Brahmans to admit the Chattris, as they are called to an equality with themselves; we must endorse the view taken by Master Beni Ram that whatever their religion, however high the standard of their civilzation, and whatever the age in which they live, no people on the face of the earth can do away with social prejudice. Even the liberal religion of Christ and the world renowned civilization of modern Europe have not proved protent enough to strike at its root. The Christian Missionaries themselves would not tolerate such liberal principles as are likely to abolish ail social distinctions. The following case of a young Punjabi Christian, published in the Lahore Tribune of the 19th October 1892, will be read with interest :—

"Among the theological students at Chestnut is a young Punjabi Christian, who, in his studies and in his preaching has fully held his own with his English competitors He will shortly have completed his term and is wishful to proceed to India for missionary work. But, he will not go as a London Missionary society man unless he is put on an equality in all things with his European brethren. The committee, or at least some members of the committee, demur to this. Of course they admit, that God has made of one blood all nations of the Earth, and would not venture to assert that, an English man's soul: In the eye of the Almighty, is of greater value than a Punjabi's. Probably in Heaven, they will not disdian to sit side by side with an indian, but on Earth the Indian must take a lower Place."

Can there be a better proof of the natural existence of social Prejudicl in all nations than that the Chistians, and among the Christians the Missionaries them selves are not free from it ?

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाएँ :

अे एकाउन्टस ब्यूरो Aey Accounts Bureau

६०, नया बांस
दिल्ली-११०००३

गुरुदेव वधवे (अरोड़ा)
हनो—२३-८८५१

आइये हम और आप सब मिलकर अपनी
"श्री खत्री उपकारिणी सभा (लखनऊ) एवं
अपनी "खत्री हितैषी" की प्रगति में सहायक बनें।
खत्री समाज की उन्नति की आकांक्षा से प्रेरित रहें।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

With best compliments from :

Estd 1933

76295 Kinari Bazar
67279 M. G. Road
66324 Maithan
26571 Kota

KRISHNA

SHOES

KRISHNA SHOE STORE

KINARI BAZAR, AGRA

KRISHNA FOOTWEAR

5 M. G. ROAD Opp. AGRA COLLEGE ROAD, AGRA

KRISHNA SHOE GROUPE

GUMANPURA KOTA, RAJ.

KRISHNA AGENCY

184, BALLAB BARI KOTA; RAJ.

WHOLESALLER, RETAILER, MANUFACTURER & EXPORTER OF QUALITY FOOTWEAR

Distributors of Libory Footwear & Zet Star

KRISHNA SALES CORPRATION

18/7, MAITHAN, RAJ.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

क्षत्री तथा खत्री शब्द

हिन्दू-समाज में खत्रियों की क्या स्थिति है, इस विवाद-ग्रस्त प्रश्न पर आधी शती से पर्याप्त कहा-लिखा जा चुका है। इस प्राचीन सैनिक जाति को तीसरी श्रेणी में रखकर रिजले ने पर्याप्त हानि पहुँचाई। संभव है यह त्रुटि भूल या उपेक्षा से ही हुई हो। यद्यपि बाद में क्षमा माँगते हुए उन्होंने इस त्रुटि को सुधार भी लिया और इस प्रकार से निश्चय ही इस विवाद-ग्रस्त प्रश्न का अन्त हो गया, किन्तु ऐसा लगता है कि रिजले साहब की भूल का दूषित कुप्रभाव पूर्ण रूप से दूर नहीं हुआ। मृत अश्व को कोड़ा मार कर चलाने का भले ही प्रयत्न न किया गया हो, किन्तु यह अत्यन्त न्यायोचित होगा कि इस विषय को हम ऐतिहासिक आवरण पहनाकर भाषा-विज्ञान, मानव-जाति-विज्ञान तथा अन्य आधारों पर सामने लायें। 'दी सेविन मूर्स इंडियन अपील' द्वारा इस विषय पर अधिकार-पूर्ण (कानूनी) दृष्टि-कोण से पर्याप्त प्रकाश डाला गया है और लगभग एक शती पूर्व प्रीवी-कौंसिल द्वारा सदा के लिए ही निर्णय कर दिया गया है कि खत्री लोग प्राचीन फिरकों या जाति में से एक प्रस्फुटित या निर्मित जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय-समाज में अपनी वास्तविक स्थिति निर्धारित करने के लिए यह पूर्णरूपेण पर्याप्त होता; किन्तु ब्रिटिश कूटनीतिज्ञता की कार्यप्रणाली को धन्यवाद। उन्नीसवीं शती के अन्तिम भाग में जन-गणना के कार्य में हाथ लगाया गया। उसमें जान बूझकर यह अपकार किस उद्देश्य से किया गया, यह-वही लोग जानें। 'यदि ट्राइब्ज एंड कास्ट्स आफ बंगाल, के पहले खंड से कुछ उपयोगी वाक्यांश उद्धृत किये जायँ तो अनुपयुक्त न होगा। 'जाति की आन्तरिक व्यवस्था इस बात की द्योतक है कि खत्री न तो ब्राह्मणों के वंशज हैं, न क्षत्रियों के ही। जो सिद्धांत उन्हें क्षत्रियों से सम्बन्धित बताता है उसका अस्तित्व किसी स्थायी नींव पर नहीं है, केवल 'नाम' मात्र की समान रूपता पर ही है जो कि प्रसंग वश हो सकता है। अपने रूप-रंग के कारण वे अधिकार-पूर्ण रूप से आर्यों के पवित्र वंश के अन्तर्गत अपने को रख सकते हैं या वे रखे जा सकते हैं; परन्तु उनके जिन विभिन्न भेदों का उल्लेख हुआ है उनमें से कोई भी [illegible] नाम राजपूत वंश की विशेषताओं के द्योतक नहीं हैं। यदि वे उसी नस्ल से होते जिनसे राजपूतों के विभिन्न कुल हैं, तो उनके भी वही जातीय (वंशीय) नाम होते, और यह समझना कठिन है कि उन्होंने इनका क्यों परित्याग कर दिया होता, उनसे भी कम महत्वपूर्ण पैतृक अल्लों के लिए।' इस अवाच्छनीय मत के प्रति सम्पूर्ण देश में क्षोभ एवं क्रोध की लहर व्याप गई, जिस कारण जनगणना के कमिश्नर ने महाराजा बर्दवान को पत्र लिखकर इस त्रुटि का संशोधन कर दिया। इसमें उन्होंने बताया है 'बिना इस वितर्क पर जोर दिये हुए मैं तुरन्त कह सकता हूँ कि मेरे सन्मुख जो प्रमाण रखा गया है उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कम से कम ब्रिटिश भारत में साधारणतया खत्री हिन्दू-परम्परा के क्षत्रियों के ही सच्चे प्रतिनिधि हैं। जन-गणना के कार्य के लिये यह बात, कि बहुत से लोगों का ऐसा विश्वास है, ही पर्याप्त है और यह पूछना कि किन बातों के आधार पर वे ऐसा कहते हैं, निस्सार होगा। अतः जन-गणना के निरीक्षकों को यह आदेश दिया जाता है कि क्षत्रियों के अन्तर्गत ही जातियों के विभाजन के समय खत्रियों को सम्मिलित कर लिया जाय।'

सर्वप्रथम और विशेष महत्वपूर्ण प्रश्न जिस पर विचार करना अति आवश्यक है, यह है :—

क्या क्षत्री तथा खत्री नामों की समानता प्रसंगवश ही है? या बाद वाला नाम पहले नाम के क्रमिक विकास के सिद्धांत पर हुआ है, जिसमें यह परिवर्तन हुआ है जब कि बोलने तथा लिखने की देश की भाषा में परिवर्तन हुआ अर्थात् संस्कृत से पाली हो गई, और फिर पाली से प्राकृत दो शतियों के अन्दर ही। इस प्रश्न के पीछे एक इतिहास है और इसको भाषा-विज्ञान की कसौटी पर, व्याकरण की दृष्टिकोण से, कसना है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mulukot Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

क्षत्र, क्षत्री या खत्री – मानव-जाति के सर्व-प्रथम ग्रंथ ऋगवेद में क्षत्र शब्द का प्रयोग स्थानीय सर्वसाधारण प्रयोग में आता है जैसा कि देवता-गण तथा मनुष्य करते थे। वह सैनिक या राज्य करने वाली संस्था थी, जिसके सदस्य साधारणतया प्रारम्भ में राजन्य कहलाते थे, न कि क्षत्री-गण। उसी प्रकार अथर्ववेद में राज्य करनेवाले लोग राजन्य कहलाते थे। शत्पथ ब्राह्मण में 'क्षत्र' शब्द राज्य करने वाले या सैनिक-वर्ग का द्योतक होता था। अतः ऐसा लगता है कि राजन्य या क्षत्रिय वास्तव में वह होता था जो क्षत्र या राज्य का अधिकारी होता था। तब क्या यह पर्यायवाची शब्दों का तात्पर्य था, न केवल राज्य करने वाले का, वरन राज्य करने वाले या सैनिक वर्ग के एक सदस्य का भी। अतः इस शब्द का बाजसनेई-संहिता में प्रयोग देखा जा सकता है तथा अथर्ववेद और तैत्रेय-संहिता आदि में भी। सैनिकवर्ग या जाति या जाति की द्वितीय श्रेणी के एक सदस्य के लिए और उसी प्रकार तैत्रेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण और पाणिनि ने क्षत्रिय-गण का उल्लेख किया है, जो राज्यों के अधिकारी थे। सर्व प्रथम मनु ने क्षत्रिय जाति का वर्णन सैनिक वर्ग या जाति के लिये किया है। मनु के अनुसार जो द्वितीय जाति के अन्तर्गत था वह क्षत्रिय कहलाता था। दूसरी जाति के मनुष्य का पुत्र भी क्षत्रिय कहलाता था।

पाणिनि तथा मनु दोनों ने ही एक अन्य शब्द 'क्षत्री' या 'क्षत्रि' का उल्लेख दिया है जिसका अर्थ होता है एक वह मनुष्य जो काटता है या खुदाई करता है या किसी वस्तु को बाँटता है, या एक सेवक, एक द्वार-रक्षक या कुली, जब कि मनु इस शब्द का एक दूसरे अर्थ में प्रयोग करते हैं—अर्थात् एक क्षत्री स्त्री का पुत्र या एक क्षत्रिय पुरुष तथा शूद्र स्त्री का पुत्र—यह 'उग्र' भी कहलाता था या एक शूद्र पुरुष और एक वैश्य स्त्री का पुत्र जिसे अयोगव कहते थे। याज्ञवल्क्य ने जो अपना मत इसके बारे में प्रकट किया है उसके अनुसार इस शब्द के अर्थ एक स्त्री-सेविका का पुत्र (दासी पुत्र) है जबकि महाभारत में इसका तात्पर्य है विदुर का पर्यायवाची-व्यास जी द्वारा एक दासी से उत्पन्न। एक और शब्द 'क्षत्र' है जिसके अर्थ हैं 'अनेक रथी' और जिसका वर्णन शत्पथ ब्राह्मण तथा कात्यायन-श्रुति सूत्र में है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संस्कृत कोष में 'क्षत्रिय' शब्द 'क्षत्रि' शब्द से भिन्न है। बाद वाला शब्द 'एक सारथी', 'रथी' या 'एक सेवक' के अर्थ में प्रयुक्त होता था या मनु द्वारा उसका प्रयोग वर्णसंकर के द्योतक व्यक्तियों के लिए होता था। इस भेद का ध्यान में रखना आवश्यक है क्योंकि पाली साहित्य में प्राचीन शब्द 'क्षत्रिय' में एक परिवर्तन हो गया था और पाली ग्रथों में 'खत्रिय' शब्द के रूप में प्रयुक्त हूआ है।

खत्रिय शब्द खत्तिय से बहुवचन रूप में कर्ता के भाव में आया है। यह खत्या का लघुरूप है और स्त्री-लिंग खत्तिय या खत्री और खत्रिय आर्य वंश की एक जाति या फिरके के सदस्य के भाव में लिया गया है।

ऐसा समझा जाता था कि सामाजिक व्यवस्था या क्रम में एक खत्रिय का स्थान सर्वोच्च था। ऐसे सामाजिक विभागों के प्रश्नों का बौद्धकाल में 'दि डायलाग्ज' में वर्णन किया गया है कि जब कभी उनका उल्लेख अथवा प्रयोग होता है 'खत्रिय' सदा पहले आते हैं (खत्रिय सेय्यो जानेतस्मिन्)। खत्रियों की सामाजिक महत्ता तथा सम्मान का निकाय तथा विनय में भी वर्णन है। उनके स्थान को निर्धारित करने के लिए सम्पत्ति का कोई भी ध्यान नहीं रखा जाता था। क्षत्रियों में बहुत ही कम प्रतिशत मनुष्य धनी थे, जैसीकि उस समय तथा स्थान के लिये सम्मति है, और यह बात 'संयुक्त निकाय' में वर्णित है, परन्तु सभी राजा तथा सरदार खत्रिय थे। वे राजन्य कहलाते थे। वहाँ खत्रिय कुल या खत्रिय जाति के विषय में वर्णन है जो कि 'विनय' में राजघराने के लिए प्रयुक्त है और 'सुमंगल विलासिन' में खत्रिय वंश के धनी मानी वंशजों के लिए प्रयुक्त है। अवगुत्तरा तथा मज्झिम निकाय में भी खत्रिण-स्त्री का वर्णन है इस क्रम में-ब्राह्मनी, खत्रिय, वेस्सी, सुद्दी, नेसादी, वेनी, रथकारी तथा पुक्कुसी।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

इस प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में संस्कृत में क्षत्रिय या क्षत्रि शब्द का, जो कि एक सारथी या सेवक के अर्थ में प्रयुक्त होता था या मनु द्वारा जो वर्ण संकर समाज के मनुष्य के अर्थ में प्रयुक्त होता था, इसका स्थानापन्न शब्द नहीं है।

ऐसा इसलिए किया गया होगा जिससे शुद्ध वंश के क्षत्रियों में जो कि पाली में खत्रिय कहलाते थे और क्षत्रिय शब्द में जिसका प्रयोग प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में दूसरे अर्थ का द्योतक था, उनमें स्पष्ट भेद समझा जा सके। निम्न श्रेणी के लोग दूसरे नामों से सम्बोधित होते थे, जैसा पहले कहा जा चुका है। यह कहना भी यहाँ अप्रासंगिक न होगा कि दूसरी श्रेणी के लोग अर्थात् क्षत्रिय कभी-कभी तो उच्चता की दृष्टि से ब्राह्मणों से भी ऊँचे समझे गये जैसा कि ऊपर देखा गया है।

क्षत्रिय शब्द खत्रिय में क्यों परिवर्तित हुआ, इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं, क्योंकि पाली वर्णमाला में त्र, त्र, ज्ञ तथा श और ष का स्थान नहीं है अतः वरुरुचि के आधार, पर, क्षत्रिय शब्द को पाली में जो रूप दिया गया है, वह किसी जाति परिवर्तन का द्योतक नहीं है :—

स्कष्क क्षां खकारो भवति।
ष्कस्य ।। भुक्खं ।। पोक्खरो ।। स्कस्य ।। खेदो ।।
संघो क्षस्य ।। खदो ।। जक्खो ।।

इसी प्रकार पाकृत में ख अक्षर, संस्कृत के ष्क, स्क और क्ष का रूपान्तर है। यह निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट होगा :—

संस्कृत रूप	प्राकृत रूप
पुस्कर (एक झील)	पोखर
स्कन्ध (कन्धा)	खध
यक्ष (एक प्रकार का देवता)	जक्ख
क्षत (जख्मी)	खद

विक्रमोर्वशी में विदूषक ने अपनी सर्वसाधारण प्राकृत में खत्रिय कुमार या क्षत्रिय कुमार का कथन किया है। अतः यह शब्द 'क्षत्रिय' का द्योतक है। कालिदास के पूर्व भी खत्रिय शब्द का प्रयोग नासिक के एक शिला लेख में मिलता है, जिसमें गौतमी पुत्र श्री शातकर्णि आत्म-प्रशंसा करते हैं कि किस प्रकार उन्होंने खत्रिय लोगों (खत्तिय मान-दर्पमर्दन) के घमंड तथा महत्ता का नाश किया।

इसमें तनिक संदेह नहीं कि खत्रिय शब्द 'क्षत्रिय' का द्योतक है, पर क्या ये क्षत्रिय-गण वही हैं जो खत्री थे या यह शब्द सब सैनिक वर्ग के लोगों के लिए प्रयुक्त होता था? इस के उत्तर के लिए हमें उपलब्ध ऐतिहासिक उदाहरण तथा भाषा विज्ञान का सहारा लेना है।

ईसा से चौथी शती पूर्व उन इतिहासज्ञों ने जो सिकन्दर के साथ आये थे ऐसे प्रजातन्त्र राष्ट्र का उल्लेख किया है जो जथराई (XATHROI) कहलाता था और जो बीच सिंधु की घाटी में था। इस जाति को पहचानना इतना कठिन नहीं रह जाता यदि हम ग्रीक और संस्कृत नामों की तुलना करें। उदाहरण के लिए जरकसीज (XERXES) का संस्कृत में सरलता से खरायवुष, जूद्रक या क्षद्रक रूप हो जाता है, और यह अब निर्विवाद मान लिया गया है कि जथराई शब्द क्षत्री के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह कहना संभव नहीं है कि वे प्राचीन क्षत्रियों से भिन्न थे; परन्तु जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया तब सिंधु की घाटी में अनेक प्रजातन्त्र राज्यों में से एक यह भी था।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

हो सकता है कि इन प्रजातन्त्र राज्यों का सम्बन्ध-मध्य देश के रहने वाले क्षत्रियों से टूट गया हो, या वे स्वयं ही अंतिम खेवे के प्राचीन आर्यों के, जो कि सरस्वती के तट पर भटका करते थे, प्रतीक हों। कदाचित् ये प्राचीन आर्य इतने साहसिक न थे कि पूर्व की ओर जाकर कुरु-पंचाल या कोशल और मिथिला में बस जाते, पर ये दक्षिण-पश्चिम की ओर गये और इस प्रकार से इनका सम्बन्ध पैतृक संस्था से टूट गया। फिर भी हम मान सकते हैं कि ये प्राचीन 'जथराई' ही क्षत्रियों का प्रतिनिधित्व करते हों।

ईसा की दूसरी शती में मिस्र के भूगोल-विशारद टालमी ने प्रथम बार 'खत्रियाओं' का उल्लेख किया। वह लिखता है, दूर पृष्ठ प्रदेश के भाग पोलिन्दे अग्रिओफगोई (Poulindai Agriphagoi) के आधीन थे और उनके बाद खत्रियाओं (Khattraio) थे जिनके आधीन भारत के कुछ पूर्ष और कुछ पश्चिम के ये नगर थे :—

निग्रैन्ग्राम्य	(Nigrangramma)	११४°	२५०.१५
अन्तखेर	(Antakhara)	१२२°	२७.२०
सोन्दसन	(Sondesana)	१२३°	२६०.५०
स्यरनिसिक	(Syrnisika)	१२१°	२३०.३०
पतिस्तम	(Patistama)	१२१°	२५.००
तिसपतिंग	(Tisapatinga)	१२३°	२६.२०

अब पोलिन्दे अग्रिओफगोई (Poilindai Agriophagoi) के विषय में कहा गया है उनका अधिकार उन स्थानों में था जिनका वर्णन किया गया है। हिन्दू ग्रन्थों में पुलिन्द का उद्देश्य कुछ प्राचीन जंगली जातियों से है। अग्रिओफगोई एक ग्रीक शब्द है और यह बताता है कि पुलिन्द एक वह जाति थी जो कि कच्चा मांस, जड़ें या जंगली फल खाकर जीवन व्यतीत करतीं थीं। नक्शों में उनकी स्थिति कच्छ की खाड़ी के उत्तर पूर्व में बताई गई है, जो कि उत्तर में खत्रियाओं तथा दक्षिण में लरिके (Larike) के बीच में थी। इसी नाम की दूसरी जाति विन्ध्य-प्रदेश के मध्य भाग में बसती थी।

यूनानी लेखकों के अनुसार रावी और व्यास के बीच वाले भाग के अधिकारी कठ (Kathaoi) कहलाते थे तथा इनकी राजधानी शाकल थी। महाभारत तथा पाली के बौद्ध ग्रंथों के अनुसार शाकल को मद्र की राजधानी कहा गया है। ये शक्तिशाली लोग वाहलीक कहलाते थे।

इनमें से एक 'खत्रि' नाम की जाति ने जिसका निवास तथा उद्गम कदाचित् पंजाब का निचला भाग था, सौराष्ट्र में अपने को बसाया और गुजरात के बड़े प्रायद्वीप को काठियावाड़ का नाम दिया।

ईसा की तीसरी शती और उसके बाद के समय में खत्रियाओं (Khattraio) का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। अधिकार पर निर्धारित जाति व्यवस्था की रूढ़िवादी शृंखला अब ढीली हो चुकी थी, जिस कारण अन्तर्जातीय विवाह साधारण जातियों में ही नहीं वरन् राजन्य-कुल में भी होने लगे थे। गुप्त सम्राट वैश्य थे। परन्तु उन्हें लिच्छवि वंशज होने पर गर्व था, यद्यपि मनुस्मृति में लिच्छवि वृत्य क्षत्रियों के वंशज माने जाते हैं। उस समय में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह अज्ञात नहीं थे। पहले में तो वर ऊँची जाति का होता था, और दूसरे में कन्या। बहुत से लेखों में ऐसे विवाहों का वर्णन है।

वाकटक राज रुद्रसिंह ने, जो कि एक प्राचीन रूढ़िवादी ब्रह्मण वंशज था प्रभावती गुप्त से विवाह किया, जो गुप्त वंशज चन्द्रगुप्त द्वितीय की कन्या थी। याज्ञवल्क्य स्मृति में एक नीची जाति की पत्नी को धार्मिक कृत्यों में भाग लेने की अनुमति दी गई है, यदि पति की अपनी ही जाति की कोई दूसरी पत्नी न हो। याज्ञवल्क्य ने ऊँची जाति की कन्या के साथ उससे नीची जाति के वर के साथ विवाह को भी मान्यता दी है और ऐसे विवाह प्रायः समाज में होते थे। विभिन्न अन्तर्जातीय विवाह भी अज्ञात नहीं थे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

इन सामाजिक असमानताओं के होते हुए भी ऐसे लोग थे, जिन्हें तब भी अपने रुधिर की शुद्धता पर गर्व था। कदाचित् वे खत्री (क्षत्री) ही थे जिनका अन्य जातियों के साथ अन्तर्जातीय वैवाहिक समागम नहीं हुआ था।

वर्तमान खत्रियों के वाणिज्य पर जो आक्षेप लगाया गया है उसका खंडन तो स्वयं प्राचीन लेख कर सकते है जिनमें यह पूर्णतथा विदित है कि क्षत्री भी वाणिज्य करते थे। उदाहरणार्थ-पाँचवी शताब्दी के एक लेख में इंदौर के तैलिक श्रेणी के प्रमुखों को क्षत्री कहा गया है।

गुप्त शासन के पहले और पश्चात् विदेशी शक और हूण विजेता क्षत्रियों से वैवाहिक संबंध करके क्षत्रिय कहे जाने लगे। परंतु इनकी संख्या बहुत अधिक नहीं रही। अतएव इन नये क्षत्रियों के साथ शुद्ध क्षत्रियों का अस्तित्व भी रहा। जाति-व्यवस्था में अब तक बहुत कुछ शिथिलता आ गई थी। ऊँचे वर्ण के लोगों को अपने से ठीक नीचे वर्ण में विवाह करने की आज्ञा थी और इससे संतान की जाति नीची न होती थी। हर्ष की कन्या ध्रुव भट्ट को ब्याही गई और जब कि हर्ष वैश्य थे, किन्तु जामात्र क्षत्रिय था। हर्ष की बहन का विवाह गृह वर्मन मौखरी से हुआ। हर्ष के वंश वालों के नाभ के अंत में वर्धन होता था जो उनकी वैश्य जाति का द्योतक था, तो मौखरियों के नाम वर्मन में समाप्त होते थे जो इस बात का सूचक था कि वे क्षत्रिय थे। मन्दसौर का शिलालेख जो कि यशोधर्मन के समय का है हमें बताता है कि ब्राह्मण रविकीर्ति ने वैश्य वंशीय भानु-गुप्ता से विवाह किया और उससे तीन पुत्र हुए जिनमें से एक अभयदत्त, सम्राट यशोधर्मन के नेखदा प्रान्त का क्षत्रप था।

हर्ष के पूर्व क्षत्रियों की स्थिति का इतिहासज्ञ वैद्य ने बहुत ठीक वर्णन किया है। वह लिखते हैं 'इस समय क्षत्रियों ने अपने को राजपूतों और खत्रियों में विभाजित नहीं कर दिया था। अब तक क्षत्री ३६ वंशों में न बटे थे और इन ३६ वंशों के नामों में से किसी का भी अस्तित्व न हुआ था। चौहान और सोलंकी, सिसोदिया और राठौर का जन्म अभी नहीं हुआ था और भारतवर्ष के क्षत्री अभी एक संगठित जाति थे और उनके किसी भी विशेष वंश में परस्पर विवाह-सम्बंध की मनाही न थी। वास्तविकता यह है कि जाति-बंधन ढीले थे, क्योंकि क्षत्री लोग स्वतंत्रतापूर्वक उच्च वंशों की वैश्य कन्याओं से विवाह करते थे, पवित्र क्षत्रिय लोग उन तीन बड़े वंशों को तब बहुत अधिक महत्ता नहीं देते थे, जिनके वंशज वे आज अपने को निश्चय रूप से मानते हैं। क्षत्रियों में सूर्यवंश, चंद्रवंश, तथा अग्निवंश का भी अब तक प्राचीन लेखों में उल्लेख नहीं मिलता। क्षत्रियगण एक विशेष शब्द का प्रयोग करते थे जिसका अंत वर्मा में होता था। क्षत्रियों के लिये सेन तथा भट्ट का प्रयोग भी मिलता है। ईसा की सातवीं शताब्दी के लेखों में सिंह शब्द भी जो पूर्व-मुस्लिम-कालीन राजपूतों में, अत्यधिक था प्रायः नहीं मिलता।

सन् ७५० ई० से ईसा की बारहवीं शताब्दी तक का समय बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है क्योंकि इसमें राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं, सामाजिक क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, जिस कारण दोनों क्षेत्रों में उथल पुथल हुई। मुस्लिमों के प्रवेश से समाज में एक नयी स्थिति आ गई क्योंकि उनका भारतीय सामाजिक ढाँचे में मिलाया जाना संभव न था जैसा कि अन्य विदेशी लोगों जैसे यूनानी, शक, पहलवी, यूचीस तथा हूणों के लिए संभव हुआ।

इस स्थिति का सामना करने के लिए जो विरोधी दल समाज में प्रत्यक्ष हुए कट्टरता के पक्षपाती और प्रगतिशील। हिन्दू समाज में पहले पक्ष की विजय हुई और दूसरे पक्ष वाले धीरे धीरे यथेष्ट संख्या में मुस्लिम हो गये। इब्न खुरदा जिसने अपना ग्रंथ लगभग सन् ९०० ईसवी में लिखा, भारतीय जातियों के विषय में इस

CC-0. Bhagavad Pr...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

प्रकार से लिखता है—(१) सब-कुत्रिया (Sabkaturia) जो कि सर्वोच्च जाति के थे और जिसमें से राजा चुने जाते थे। दूसरी श्रेणी के लोग केवल इसी श्रेणी के लोगों के प्रति प्रतिष्ठा प्रदर्शन करते थे (२) ब्राह्मण जो मदिरा से परहेज करते थे। (३) कत्रिया जो मदिरा के तीन प्यालों से अधिक न पीते थे। ब्राह्मण श्रेणी की कन्यायें इस श्रेणी के लोगों को नहीं दी जाती थीं, परन्तु ब्राह्मण लोग उनकी कन्याओं को ग्रहण करते थे। (४) शूद्र जो कि पेशे से किसान होते थे। (५) बैलुरा जो कि पेशे से कलाकार तथा घरेलू नौकर होते थे (६) संन्दलिया जो कि नीचे काम करते थे और अन्तिम (७) लहूद जिनकी स्त्रियाँ बनाव-शृंगार, करके पुरुषों की कामतृप्ति करती थीं। इस वर्णन से स्पष्ट है कि प्राचीन क्षत्रियों में विभाजन था। ऐसा लगता है कि वास्तविक विभाजन की आधार-शिला केवल सर्वव्यापी धर्म थी। किसी जाति पर कोई सामाजिक विभाजन लादा नहीं जा सकता था यदि उसके पीछे न्याय या धर्म की मंजूरी न हो। ऐसा लगता है कि इस विषय में पूरी स्वतंत्रता दी गई थी और यह बात केवल व्यक्तियों तक ही सीमित न थी वरन् विभिन्न क्षत्रिय वर्गों पर भी लागू थी।

अब हम कुछ ऐसे शिला लेखों का उल्लेख करेंगे जिनमें क्षत्रिय वंश का विवरण है। इस शब्द के भिन्न-भिन्न रूपों का भी इससे पता चल जायगा।

एक शिला लेख जो संवत् ९१८ का है जिसे कक्कुका का घारियाल शिला लेख कहते हैं और जो जोधपुर के २० मील उत्तर-पश्चिम में है। उसमें उस हाट के निर्माण का वर्णन है जिसमें विभिन्न रंगों की सड़कें सुशोभित थीं जो कि उन ब्राह्मण क्षत्रियों के घरों तक जाती थीं जिनको कि उस लेख में प्रकृति के नाम से कहा गया है। इसमें वैश्यों का भी उल्लेख है। उस हाट में जीविका कमाने तथा उस स्थान पर महाजन अर्थात् बड़े लोगों की स्थापना का भी बचन दिया था। यहाँ पर क्षत्रियों के लिये प्राकृत शब्द का प्रयोग हुआ जो कि अब व्यापारिक धन्धों में लग गए थे।

पूर्वी बंगाल के विजय सेन और लक्ष्मण सेन देव के शिला लेख विशेष ध्यान देने योग्य हैं। पहले सामंत सेन का उल्लेख होता है जो ब्रह्म-क्षत्रि वर्ग के सैनिकों का नायक था और जिसने करनाट के शत्रुओं को पराजित किया था। उसके पुत्र हेमंत सेन ने महारानी यशोदेवी से विवाह किया। उसके पुत्र विजय सेन थे जिन्होंने दिव्य, नन्यराधव, वीर और गौड़ कामरूप तथा कलिंग के राजाओं को हराया। यह शिला लेख बंगाल के राजशाही जिले के देवपारा में प्राप्त हुआ। करनाट के शत्रुओं के पराजय का वृत्तान्त यह प्रदर्शित करता है कि वास्तव में ब्रह्म-क्षत्रि कर्नाटक से आये थे। दूसरे शिला लेख में जो बंगाल के पवना जिले के मधाई नगर में प्राप्त हुआ है वीर सेन सामंत सेन, जो करनाट क्षत्रियों के राजा थे, के वंश के सम्बंध में वृत्तान्त है। उनके पुत्र हेमंत सेन, उनके लड़के विजय सेन, उनके लड़के भट्टसेन जिस ने चालुक्यवंश की राम देवी से विवाह किया, उसका पुत्र लक्ष्मणसेन जो कि ब्रह्म-क्षत्रियों में सर्वश्रेष्ठ था और जिसने कलिंग पर आक्रमण किया, काशी के राजा को हराया और कामरूप को वश में किया।

प्रश्न उठता है, क्या ब्रह्म-क्षत्रिय वही थे जो वर्तमान समय के गुजरात निवासी ब्रह्म-क्षत्रिय हैं? क्या इन क्षत्रियों की कोई शाखा दक्षिण की ओर रामनाड जिले और रियासतों की ओर तक बढ़ी और तब साहसिक लोग उत्तर-पूर्व की ओर बढ़े यहाँ तक कि उनको पूर्व बंगाल में एक सुरक्षित स्थान में शरण मिली?

इस समय का सब से महत्वपूर्ण लाडनू शिला लेख है जो संवत् १३७३ विक्रमी का है। यह समस्त विवादों का अन्त कर देता है। इसका महत्व इसलिये है कि पहली बार वास्तविक खत्री क्षत्री कहे गए हैं तथा इनके धन्धों का भी उल्लेख है इस लेख के निर्माता ने भाग्यवश अपने गोत्र का भी उल्लेख किया है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

यह शिला लेख लाडनू में मिला जो जोधपुर रियासत में डीडवाना के ८० मील दक्षिण-पश्चिम है। इस शिला लेख में हरिन्त वर्त्तमान हरियाना देश का वर्णन है जिसमें कि ढिल्ली या दिल्ली नामक नगर है। उसमें यवन सम्राट वंशावली का उल्लेख है और दक्षिण भारत के विजेता अलाउद्दीन की प्रशंसा की गई है। १३ वें पद में हमें बताया गया है कि पुरु के अधिष्ठाता सधर्म नामक व्यक्ति, अलाउद्दीन के प्रियपात्र थे और अपनी योग्यता के कारण उनकी कोषाध्यक्ष के पद पर नियुक्ति हुई। सधर्म तथा उसके सम्बन्धियों के पूर्वजों के नामों का बाद के पदों में उल्लेख है और यह वंशावली नीचे लिखे ढंग से दिखाई जा सकती है।

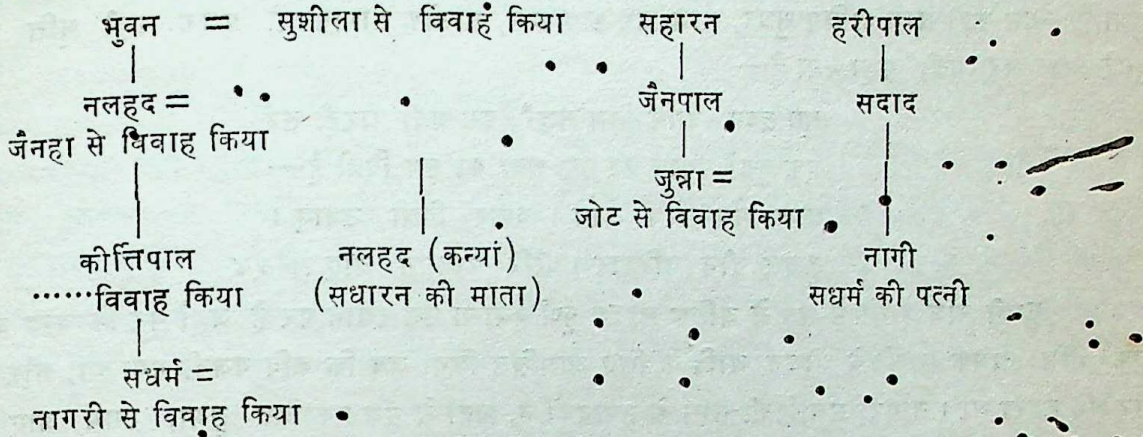

इस लेख में तृतीय लेख १४ पद्य से प्रारंभ होता है और सधारन के तीन पुरखों के नाम हमें मिलते हैं जिनका प्रारंभ काश्यप गोत्र के भुवन पाल से होता है। चतुर्थ भाग में केवल दो पद हैं जिसमें कि सधारन की माता की वंशावली है। दूसरा वंश श्रीपद् गोत्र का है जिसके विषय में कुछ पता नहीं है। सधारन का सम्मान राजाओं द्वारा होता था और वह एक दानशील ईश्वर परायण व्यक्ति था। उन्होंने एक लक्ष दान (एक लाख रुपये की मूल्य की वस्तुओं का दान) किया। पाँचवें भाग में केवल तीन पद हैं जिसमें सधारन के ससुर की वंशावली का विवरण है।

इस शिला लेख में सबसे महत्व की बात यह है कि इसमें क्षत्रियों के तीन वंशों के गोत्रों का भी वर्णन है। भुवन पाल कश्यप गोत्र के क्षत्रिय थे, अपनी माता की वंशावली के अनुसार, वहाँ यह भी विवरण दिया है कि सधारन श्रीपद् गोत्र के क्षत्रिय थे। और फिर उनके ससुर क्षत्रिय कहे गये हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वही क्षत्री शब्द तीनों वंशों के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिसके कारण हमें विश्वास होता है जैसा कि प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डाक्टर डी० आर० भंडारकर ने कहा है कि वह जाति का खत्री था न कि राजपूत क्योंकि सिद्धान्ततः राजपूत वंशों में प्रथम तो ब्राह्मण गोत्र नहीं लगाए जाते; दूसरे, अगर वह एक राजपूत होता तो उसका वंश, जैसे चाहमान, परमार आदि अवश्य ही वर्णित किया गया होता। तीसरे सधारन सम्राट अलाउद्दीन का कोषाध्यक्ष था (और इस पद पर कोई राजपूत कभी नहीं था)। चौथे यवन-सम्राटों के राज्यकाल में खत्रियों की जाति ने नाम और यश दोनों प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया, यह एक सर्व विदित बात है। उस समय खत्री सैनिक तथा शासनसम्बंधी दोनों ही प्रकार की नौकरियों में थे। तेरहवें पद में पुरापति एक शब्द आता है, वह भी बहुत कुछ अर्थ रखता है। उसका अर्थ यह भी हो सकता है कि या तो गाँव अर्थात् पुर का मालिक था या पहले काल का अध्यक्ष था। पत्थर के बाँई ओर श्री सधारन के लिए महथा शब्द का भी प्रयोग हुआ है जो स्पष्ट ही महाठाकुर के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि गाँव का मालिक एक ठाकुर या जागीरदार कहलाता है। इसके सम्बन्ध में डाक्टर भंडारकर का कहना है कि खत्री लोग अब भी ठाकुर शब्द का प्रयोग करते हैं जब कि वे अपने समधियों या अपने दामादों के पिताओं को पत्र लिखते हैं। यह शिला-लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और यदि

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

कोई मतभेद की बात रही भी हो तो उसका अन्त हो जाना चाहिये। इससे प्रकट होता है कि खत्री अलाउद्दीन खिलजी के समय तक क्षत्रिय नाम से पुकारे जाते थे।

महत्व पूर्ण तथा उत्तरदायित्व पूर्ण शासनिक और सैनिक पदों पर मुस्लिम शासन काल में खत्री विराजमान थे। अब हम इस समय के साहित्य को देख सकते हैं जिससे यह प्रतीत हो कि नाम की भिन्नता पाई जाती थी अथवा नहीं।

चंद बरदाई के पृथ्वी राज रासो में इस शब्द के अनेक रूप हैं। 'क्षत्रिय' शब्द का भी इस प्रकार प्रयोग हुआ है—हम कहौ धुम्य क्षत्रिय सुधर, राज ध्रम ध्रत ध्रम, सालोक सामनसज्जो प्रथक कहौ मृत्ति सारुप भर। दूसरे स्थान पर 'पत्री' कहा गया है—

सुष द्रष्ट स्वामि निज सुद्धरै, इस पत्री पारही तरै

एक दूसरे स्थान पर इस शब्द का रूप षित्री है—

पठन मंत्र रिष जाय। च्यार षित्री उघाए।
कुचल दीन परिहार। पौरि रष्हुसत धाए॥ ५४

पृथ्वी राज रासो में सब से अधिक महत्त्व पूर्ण हवाला उस स्थान पर है जहाँ पर कि चन्द बरदाई को एक भीम नामक खत्री ने भोजन आदि के लिए आमन्त्रित किया जब कि कवि गजनी गया था, और जिसके घर पर वह ठहरा था। नागरी-प्रचारिणी-सभा के संपादकों ने, जहाँ से ग्रंथ प्रकाशित हुआ, उसमें आए हुए शब्द को खत्री शब्द नकल किया है।

सुनि भूपि अति आनन्द आय, लग्यो, सुपाई, पत्री सुलघ
हुज्जाव फिरयो कबि प्रिताय, लै गयौ भीम क्रित भेजि काम

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पृथ्वी राज रासो में इस शब्द के अनेक रूप मिलते हैं जैसे छत्रिय, पत्री और षित्री। पत्री शब्द खत्रियों का द्योतक है और दूसरा शब्द छत्रिय संस्कृत के शब्द क्षत्रिय का अपभ्रंश है ऐसा लगता है। जैसे क्षत्रियों और खत्रियों ने यहाँ विभिन्न मार्गों को पकड़ लिया हो और यह भेद स्पष्ट हो चुका था।

यह भेद सरलतापूर्वक समझा जा सकता है क्योंकि लेख स्पष्ट दिखाता है कि खत्री लोग जो कि अपने वंशों तथा पुरखों के विषय में आत्म-श्लाघा करते थे और मिश्रित विवाह की पद्धति पर न चलते थे अब भी अपने को क्षत्रिय कहते थे और ऊँचे पदों पर सुशोभित थे। अपने मौलिक अर्थ में राजपूत शब्द वैदिक राजन् या राजा के लिये प्रयुक्त होता था और उसके बाद उच्च वंश वालों के लिए इस शब्द का एक राजनीतिक महत्व है न कि सामाजिक। यदि वैश्य अपने को महाराजाधिराज कह सकते थे और चार सौ वर्षों तक राज्य कर सकते थे जैसे गुप्त और वर्धमान् राजागण, तो यह गूजर लोग अपने को राजपुत्र या राजागण क्यों नहीं कह सकते। प्राचीन क्षत्रियों के पास इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग न था कि प्रगति के अनकूल सैनिक तथा शासन-सम्बन्धी नौकरियाँ करते या व्यापार अपनाते।

मई या जून १२६० के वारंगल के युद्ध में राज्य के सब नगरों के हिन्दू महाजन तथा रुपये की अदला-बदली करने वाले (व्यापारी गण) राजाज्ञा से मार डाले गए। आर्थिक जीवन में उनका स्थान उत्तरी भारत की खत्री जाति ने लिया, जो कि विभिन्न सेनाओं के साथ आये थे जिसने दक्षिण पर आक्रमण किये थे और वह फीरोजशाह बहमनी (१३६७–१४२६) के राज्य तक व्यापार और महाजनी के धंधों में सर्वेसर्वा रहे।

जो लोग मार डाले गए थे उनकी संतानों को अधिक रुपया दे देने पर फिर से अपने पूर्वजों का व्यापार करने की आज्ञा मिल गई। यह विवरण यह बतलाता है कि वे खत्री जो कि मुस्लिम राजाओं के साथ दक्षिण

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आये थे वे महाजनों के धंधों को अपनाने को बाध्य किए गये क्योंकि पहले के महाजन मार डाले गये थे। रिक्त स्थान की पूर्त्ति व व्यापार को ठीक रखने के लिए ऐसा आवश्यक था।

१४४६ ई० में गुजरात का एक खत्री जो कि अत्यधिक प्रसिद्ध तथा महत्वपूर्ण स्थिति में था, परिस्थितियों वश इस्लाम-धर्म स्वीकार करने पर बाध्य किया गया। यद्यपि वह मुस्लिम हो गया था तो भी उसे अपने प्राचीन वंश पर मान था। गुजरात में शेख स्थान पर शेख अहमद खत्री मसजिद तथा मकबरा गुजराती वास्तु-कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। उससे यह भी प्रकट होता है कि खत्री लोग गुजरात में, पूर्व-मध्य-काल ही से बस गए थे।

प्रमाणों द्वारा निम्नलिखित सारांश पर पहुंचते हैं :—

क्षत्रिय प्राचीन नाम था और जो ईसा की ११ वीं शती तक प्रचलित रहा और राजसी उच्च-वंश के लोगों ने जिनका द्योतक यह शब्द है, तब तक विभिन्न क्षेत्रों में अपने को विभाजित नहीं किया था। परन्तु विभिन्न मार्गों को अपनाने का मार्ग आत्म-महत्ता की भावना से उन क्षत्रियों द्वारा हुआ जो कि अपने को राज पुत्र कहना चाहते थे, जबकि दूसरे क्षत्रिय जिन के राज्य छिन गये थे तब भी अपना सैनिक चरित्र अपनाये रहे। कालांतर में अपनी बुद्धि और योग्यता के कारण देश के व्यावसायिक जीवन के रिक्त स्थान की पूर्ति में भी ये सफल हुए।

ये क्षत्री किसी राज्य के बारे में तो घमंड नहीं करते थे, परन्तु वास्तव में अपने धर्म पर उन्हें मान था और उन्होंने व्यापारिक धंधों को अपनाने में किसी प्रकार की भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। मुस्लिम काल में भी वे ऊंची सैनिक तथा शासन-सम्बन्धी नौकरियों पर सुशोभित रहे। क्षत्रिय या खत्री शब्द केवल भाषा विज्ञान के सिद्धान्तों का फल-स्वरूप है। यह दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार चन्द बरदाई की हिन्दी में भी क्षत्री का प्रयोग कभी नहीं हुआ है। यदि फारसी, अरबी या वर्तमान उर्दू भाषा में क्ष को ख कहा जाता है, और यही बात पाली भाषा के भी संबन्ध में है, तो जाति को क्यों अपने प्राचीन गौरव से वंचित किया जाय।

(डा० बैजनाथ पुरी लखनऊ के लेख के आधार पर)

विश्वास करो

जगत् में कोई ऐसी चीज नहीं, ऐसा कोई स्थान नहीं, ऐसी कोई विद्या नहीं, ऐसी कोई स्थिति नहीं—जिसे तुम नहीं पा सकते। आत्मशक्ति पर विश्वास करो—दृढ़ विश्वास करो, अडिग निश्चय करो; फिर देखो, सफलता तुम्हारे चरणों पर लोटती है। तुम्हारे मन की चीजें तुम्हारे पास आने में ही अपने जीवन को सफल समझती हैं।

* * *

जब तक तुम जगत् के पदार्थों को अपना मानते रहोगे उनमें ममत्व रखोगे, तब तक कभी निश्चिन्त नहीं हो सकोगे; ये नाशवान् क्षणभगुर परिवर्तनशील पदार्थ कभी तुम्हें निश्चिन्त नहीं होने देंगे इन पर से ममत्व आसक्ति को हटा लो; ये जिनकी चीजें हैं, उन्हें सौंप दो। बस, जहां तुमने इनको भगवान् के समर्पण किया कि वहीं निश्चिन्त हो गये; फिर न नाश का भय है, न अभाव की चिन्ता है और न कामना की जलन है।

[स्वर्ण जयन्ती विशेषांक.

खत्री हितैषी १९३६–१९८७]

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर शुभ कामनायें :—

"रजिस्टर्ड" J. S T. फोन—५६४७

बीकानेर डिवीजन् का उत्कृष्ट टाइल्स निर्माता (मोदी परिवार)

जय सन्तोषी टाईल्स फैक्ट्री

फर्श के लिए हाईड्रोलिक प्रेसड द्वारा निर्मित मोजाइक टाइल्स एवं मारवल सप्लायर्स

पट्टी पेड़ा, पुराना औद्योगिक क्षेत्र रानी बाजार, बीकानेर-३३४००१ (राज०)

नोट :—प्रतिष्ठित डीलरों की आवश्यकता है।

खत्री बबन लाल चोपड़ा (संरक्षक) खत्री हितैषी

कपड़े के थोक व्यापारी

कटपीस क्लीथ मार्केट, जगन्नाथ रोड

थोक कपड़ा मार्केट के सामने नागपुर-४४०००२

खत्री आर० पी० टण्डन

स्वामी सर्वश्री टण्डन ब्रदर्स

चौक बाजार भोपाल, म०प्र०

सहयोगी प्रतिष्ठान—भवानी स्टोर्स

बी० एच० ई० एल० भोपाल, म०प्र०

खत्री दिलीप कपूर २६७६ पी० पी०

स्वामी—जागृती प्लास्टिक एन्ड जनरल स्टोर्स

गोल बाजार चंद्रपुर-४४२४०१

निवास—बाला जी वार्ड—चंद्रपुर, महाराष्ट्र

खत्री नानक लाल नारायण लाल बोहरे

फोन २३४३

स्वामी सर्वश्री माणक स्टोर्स

जनरल मर्चेन्ट, गोल बाजार, चंद्रपुर, महाराष्ट्र

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाएं :

Ested : 1962

Phone : Off. 6178
Resi. 6275

NEW BHARAT STORES

DAUJI ROAD, BIKANER

Stockists :—
The Parshuram Pottery Works Co. Ltd.
(Morvi, Than, Wankaner)
The Khodiyar Pottery Work Ltd. Sihor

Our Specialities :
Sanitary Wares Glazed Tiles,
S. W. Pipe, A. C. Pipe, A. C. Sheets
C. I. Pipe & Fitting
Cement Colours Jali, Plaster etc.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर हार्दिक शुभकामनाओं सहित :

हलो : ४८२४४

खत्री ब्रजकिशोर कपूर

आजीवन सदस्य खत्री हितैषी

१०२, कैन्टूनमेन्ट रोड, लखनऊ

'इतिहास, मात्र घटनाओं का सधात नहीं, अपितु अतीत का स्पन्दन है !'

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर शुभ कामनाएँ :—

जातिगौरव खत्री त्रिभुवन नाथ पुरी

सर्वश्री पुरी ट्रान्सपोर्ट कम्पनी

लहरपुर, (सीतापुर) २६११३५

समस्त उत्तर प्रदेश एवं भारत के लिए हर समय मोटर ट्रक व बसें उपलब्ध हैं।

सेवा के लिए फोन नं० २६

With best complimenrs from :

ॐ

Phone Res. 5953
Fac. 5416

MODI FOOD PRODUCTS

★ मोदी फूड प्रोडक्टस ★

Manufacturers of : Tin Pack Rasgulla, Rajbhog, Keshar Bati, Chamcham, Gulub Jamun
& All Types of Bikaneri Sweets, Bhujiya & Papad.

F–200 Bichwal Industrial Area, BIKANER–334002 (Raj.)

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी के स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक हेतु
शुभ कामनाओं सहित
खत्री सतीश साहनी

स्वामी सर्वश्री जे० पी० स्टूडियो

सदर बाजार, झाँसी
फोन :—१००७

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर खत्री समाज को हार्दिक बधाईयाँ :
सतीश खत्री

सर्वश्री ज्योती इलेक्ट्रॉनिक्स

अधिकृत विक्रेता
टैक्सला कलर एवं काला सफेद टी०वी० सेट
जीवन शाह, झाँसी—उ० प्र०

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :
तार—प्लास्टर ॥ फोन ४२७४ ३८१४

मॉडर्न प्लास्टर वर्क्स

१४—बी एवं १५—ए, औद्योगिक क्षेत्र, बीकानेर
सभी प्रकार के प्लास्टर आफ पैरिस के निर्माता

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर हमारी शुभ कामनाएँ :—
शादी एवं मांगलिक कार्यों के अवसर पर
भोजन एवं जलपान की उत्तम एवं उचित मूल्यों पर सुन्दर व्यवस्था हेतु
टण्डन परिवार का एकमात्र विश्वसनीय प्रतिष्ठान

सर्वश्री शिवी कैटरर्स—आउटडोर कैटरिंग के लिए

विशेषता : भारतीय व्यंजन व आईस क्रीम
सम्पर्क करें :—निकट तुलसी सिनेमा, लखनऊ—२२६००१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री सब एक हैं

सभी खत्रियों का मूल स्थान पंजाब ही है और सभी खत्री वे चाहें जिस कुल, उपजाति या अल्ल के हों उनका सम्बन्ध मूल रूप से सूर्यवंश और चन्द्रवंश से ही है। देश काल और अनेक कारणों से अल्लों में परिवर्तन और परिवर्द्धन होता रहा है, जिसके कारण खत्रियों की सैकड़ों 'अल्ल' बन गई हैं। अपने अस्तित्व और पवित्रता की रक्षा के लिए संघर्ष करने वाली एक महत्वाकांक्षी जाति में ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

पन्चनद प्रदेश--पंजाब के महत्वाकांक्षी खत्री इस प्रदेश में ही बंधकर नहीं रह सके, वे आगे बढ़े और उनके कार्य क्षेत्र का विस्तार बढ़ते-बढ़ते गंगा-यमुना प्रदेश तक हो गया। खत्री पंजाब, दिल्ली, उत्तर-प्रदेश, बिहार और बंगाल तक फैल गये। एक विशेष बात यह भी रही कि खत्रियों ने प्रायः प्रमुख नगरों को ही अपना कार्य क्षेत्र बनाया।

अल्ल कैसे परिवर्तित होती हैं इसका एक अच्छा उदाहरण नेहरू परिवार है। श्री जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'मेरी कहानी' में लिखा है कि हमारे जो पुरखा सबसे पहले आये, उनका नाम था राजकौल। राजकौल को एक मकान और कुछ जागीर दी गई। मकान नहर के किनारे था, इसी से उनका नाम नेहरू पड़ गया। कौल जो उनका कौटुम्बिक नाम था, बदलकर कौल नेहरू हो गया और आगे चलकर कौल तो गायब हो गया और महज नेहरू रह गया।

खत्री पंजाब से निकल कर पूर्व की ओर बढ़े और इस बढ़ने के काल और क्रम से इनके तीन प्रमुख भेद भी बन गये—(१) पूर्विये (२) पच्छयें और (३) पंजाबी। इनके ऐतिहासिक काल अनुमानतः इस प्रकार हैं, ईसा की आठवीं शताब्दी से १७०० ईसवी तक जो लोग पंजाब से आगे बढ़कर यमुना-गंगा के प्रदेश के विभिन्न जनपदों में बस गये वह पूर्विये कहलाये। १७०० से १९०० के बीच जो परिवार पंजाब से आगे बढ़कर इन प्रदेशों में बसे उन्हें पच्छयें कहा जाने लगा और जो पंजाब में ही रह गये अथवा और बाद में इन प्रदेशों में आये, वह पंजाबी कहलाये।

पूर्विये

प्रारम्भ में पंजाब से आने वाले खत्रियों के साथ खत्रियों के पुरोहित 'सारस्वत ब्राह्मण' नहीं आ पाये थे और उन्हें अपने संस्कार, यज्ञोपवीत, विवाह आदि के लिए ब्राह्मणों की आवश्यकता थी। संस्कारों को विधिवत सम्पन्न कराने के लिये उन्हें स्थानीय ब्राह्मणों में से ही अपने लिए पुरोहित-पाधा को स्वीकार करना पड़ा। उनकी बोली पर भी क्षेत्र का व्यापक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। अतः खड़ी बोली के साथ-साथ अवधी और ब्रजभाषा का व्यापक प्रभाव उनकी घरेलू बोल चाल पर भी पड़ा। उस समय की राजनैतिक उथल-पुथल के कारण उनका सम्पर्क पंजाब के साथ नहीं रह सका।

पूर्विये खत्रियों ने अपने मूल पुरोहित सारस्वत ब्राह्मणों के अभाव और क्षेत्रीय लोकाचार के कारण पूर्व की अनेक रीति-रिवाज अपना लीं। फिर भी यह खत्री रक्त का प्रभाव था कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वे खत्री जाति के मूलरूप को बनाये रखने में सफल रहे। विवाह संस्कार के शुभ अवसर पर 'घोड़ी', 'तलवार', 'वेदी' और हाथी दांत का 'चूड़ा' आदि खत्री विवाह संस्कार की आवश्यक विशेषताओं को इन्होंने कभी नहीं छोड़ा और अपने जाति गौरव को बनाये रखा।

[स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

खत्री हितैषी १९३६-१९८७]

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

पच्छयें

इनके आगमन का युग और उसके बाद की देश की राजनैतिक अवस्था ऐसी थी जिससे उनका पंजाब के साथ किसी न किसी प्रकार से सम्बन्ध बना रहा। पच्छयें खत्रियों के आगमन के समय इनके पुरोहित सारस्वत ब्राह्मणों का बड़ा दल भी पंजाब से आकर इन प्रदेशों में बस गया। इन्हें अपने संस्कार, रीति-रिवाज सम्पन्न कराने के लिये अपने पुरोहित सुलभ थे। इस कारण ये अपने रीति-रिवाज बनाये रखने में सफल रहे। इनमें क्षेत्रीय परिस्थितियों के कारण आवश्यक कुछ मामूली परिवर्तन ही हुये। देश के बंटवारे के पूर्व तक पच्छयें खत्रियों के अधिकांश बच्चे जीवन में एक बार 'चोटी उतरवाने के लिये '(पंजाब) में 'बाबे के मन्दिर' में जाते थे और इस प्रकार पंजाब से उनका सम्बन्ध भावनात्मक रूप से सदैव जुड़ा रहा। इनके घरों में बोली जाने वाली भाषा शुद्ध खड़ी बोली रही और उसमें भी पंजाबीपन बाकी रहा। उदाहरण के लिए पच्छयें खत्रियों के घरों में नू (बहू), धी (पुत्री), पुत्तर, (पुत्र) भावो (माँ), कुड़ी (लड़की) गुत्त (चोटी) का प्रयोग अब तक होता आ रहा है और विवाह आदि के अवसर पर दोहे-सिटनी में भी बड़ी मात्रा में पंजाबी शब्दों का प्रयोग होता है।

पंजाबी

इनके पूर्व की ओर यमुना-गंगा के प्रदेश में आने का समय व्यापक राजनैतिक चेतना और आजादी की नई लहर और जागृति का युग रहा है। यह लोग बहुत शीघ्र ही अपने पहले आये खत्री भाइयों से घुल मिल गये और इनके विवाह सम्बन्ध आदि भी पूर्विये और पच्छयें दोनों से व्यापक रूप से होने लगे और इस प्रकार देश, काल के कारण पिछड़े भाई पुनः आपस में मिल गये।

पूर्विये खत्रियों ने कुछ प्रगतिशील कदम बहुत पहले से उठा लिये थे, जैसे उन्होंने समस्त 'अल्ल' के खत्रियों के साथ आपस में विवाह सम्बन्ध करना बहुत पहले से शुरू कर दिया था; जबकि पच्छयें चौजातिये (मेहरोत्रे, खन्ने, कपूर और सेठ) अपने घेरे से बाहर जाकर विवाह सम्बन्ध कायम करने में अभी पिछले २०-२५ वर्ष पूर्व तक सकुचाते रहे हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि अब ऐसा युग आ गया है जब समस्त खत्री जाति में संकीर्णता के तमाम बन्धन टूट चुके हैं और अब समूचे खत्रियों के बीच वे चाहें जिस अल्ल के हों—चाहे पूर्विये, पच्छयें, पंजाबी आदि जो भी कहे जाते हों सब में विवाह सम्बन्ध बिना रोक टोक से होने लगे हैं और यह खत्रियों की प्रगति की चिन्ह है।

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर शुभ कामनाएँ :—

खत्री राजनरायन महरोत्रा

फोन ४४०३

सर्वश्री महरोत्रा स्टूडियो

फोटोग्राफिक सेन्टर व कलर लैब

तिलक द्वार मार्ग, मथुरा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री जाति की विशेषतायें

खत्री जाति एक प्राचीन और विशिष्ट जाति है। प्राचीन भारतीय वर्ण व्यवस्था में उल्लेखित क्षत्रीय वर्ण इस जाति विशेष के लिए ही है। ब्राह्मणों एवं खत्रियों के गोत्रों, प्रवरों आदि में जो साम्य है, वह इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है। आज जिन्हें प्रायः क्षत्रीय कहा जाता है, उन ठाकुरों-राजपूतों (चन्देल, चौहान आदि) के गोत्र और प्राचीन ऋषियों के गोत्र में यह समानता नहीं है। मिश्र के लगभग दो हजार वर्ष पूर्व हुए भूगोलवेता टालमी ने भी ईसा की दूसरी शताब्दी में 'खत्रियाओं' राज्य होने का उल्लेख किया है। खत्रियों का मूल स्थान सारस्वत प्रदेश है और आज तक इस प्रदेश के सारस्वत ब्राह्मणों तथा खत्रियों में खान-पान का जो पारस्परिक सम्बन्ध है वैसा भारत के किसी भी प्रदेश के ब्राह्मण का किसी भी दूसरी जाति के साथ नहीं है।

खत्री धर्म और संस्कृति के आधार वेदों को मानने वाली धर्मनिष्ठ जाति है। खत्री मुख्य रूप से शक्ति के उपासक हैं। सभी खत्री किसी न किसी नाम से शक्ति की पूजा करते हैं, शक्ति ही उनकी कुल देवी हैं। वैसे ये गणपति, शिव, सूर्य, शक्ति एवं विष्णु सभी को मानते और उपासना करते हैं।

खत्री धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से परम्परावादी हैं। ये शास्त्रों में वर्णित नैमित्तिक कर्मों संस्कार आदि का पूर्णतः पालन करते हैं। भाषा और बोली में अन्तर होने के कारण संस्कारों के नाम बदल गये हैं; परन्तु सभी संस्कार-अरोये (पुंसवन), भोड़े (सीमन्तोन्नयन), देवकाज एवं मुण्डन, यज्ञोपवीत (उपनयन, वेदारम्भ; समावर्तन) तथा विवाह आदि किये जाते हैं।

खत्रियों में विवाह के सम्बन्ध में कोई करार या लेन-देन की बात तय नहीं की जाती। विवाह सादगी से होता है और दोनों ही पक्ष अपनी सामर्थ्य के अनुसार खर्च करते हैं।

विवाह के अवसर पर कन्या मामा द्वारा मंसा हुआ सौभाग्य का प्रतीक हाथी दाँत का लाल रंग का चूड़ा और साल् (विशेष लाल रंग का कपड़ा) की ओढ़नी विशेष रूप से पहनती है। वर जामा पहन कर, हाथ में तलवार लेकर, मस्तक पर पंचदेव की मूर्तियों से सुशोभित मुकुट और फूलों का सेहरा (गोलवक्र में पिरोई हुई लम्बी माला जिसे 'शेखरः' अथवा 'शिरोमाल' भी कहा जाता है) बाध कर तथा घोड़ी पर चढ़कर वीर वेष में विवाह हेतु जाता है।

विवाह कार्य केले के चार खम्बों और फूलों, खिलौनों आदि से सजी वेदी (मण्डप) जिसके ऊपर 'साल्' और फूलों का चँदोवा तना रहता है, में ब्राह्म विधि से किया जाता है।

कन्या विवाह के पहले वर के गले में जयमाल भी डालती है।

खत्रियों में प्रथम सन्तान के मुण्डन के पूर्व देवकाज का विशेष महत्व है, इस अवसर पर ही प्रथमवार कुलदेवी का दर्शन किया जाता है।

---

१. इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश सरकार के गृह विभाग (पुलिस ब) ने अपने पत्र सं० ३३४४–२/VIII–२१०५१–१७ दिनांक १३ मई १९४८ द्वारा अखिल भारतीय खत्री महासभा को सूचित किया है कि इस सम्बन्ध में आदेश दे दिये गये हैं कि खत्री वरों के पास म्यान में रखी हुई तलवार को आपत्तिजनक न समझा जाये।

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्रियों में महायात्रा में मृतक को आम के पटरे पर श्मशान ले जाते हैं। प्रायः श्मशान घाट पर अन्त्येष्ठी के लिए बनवाये गये पक्के चबूतरों पर ही खत्रियों एवं सारस्वतों का दाह कर्म किया जाता है।

खत्री प्रायः सभी त्योहार-रक्षा बन्धन, विजय दशमी (दशहरा), दीपावली और होली उत्साह से मनाते हैं; परन्तु विजय दशमी पर्व का इनमें विशेष महत्व है। यह शक्ति, विजय और उल्लास का पर्व है। आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर निरन्तर दस दिन चलने वाले इस पर्व पर दुर्गा पूजन और दशमी के दिन अस्त्र-शस्त्र पूजन बहुत प्रेम तथा श्रद्धा से किया जाता है।

दीपावली के पहले अहोई अष्टमी पर किया जाने वाला पूजन वस्तुतः खत्रियों के प्राचीन पराक्रम और वैभव की स्मृति दिलाने वाला है। यह 'कर अष्टमी' प्राचीन काल में इस दिन खत्री कुमार कर वसूल करके लाते थे और उत्सव मनाते थे; परन्तु अब इस 'कर' का नाम भीख हो गया है, फलतः यह भीख लेना धीरे-धीरे बन्द हो रहा है, केवल अहोई का पूजन किया जाता है।

मकर संक्रान्ति के एक दिन पहले 'लोहड़ी' का त्योहार अग्नि में नवान्न डाल कर उत्साह पूर्वक मनाया जाता है। पंचनद प्रदेश में इसका विशेष महत्व है।

भादों के कृष्ण पक्ष की पंचमी को 'भाई भिन्ना' खत्री भाई-बहिनों का पवित्र त्योहार है। भाइयों की कल्याण कामना हेतु बहिनें नागों का पूजन करती हैं और भाइयों के टीका लगाती हैं।

खत्री समाज में स्त्रियों को विशेष सम्मान प्राप्त है, वे घर की प्रबन्धक होती हैं, पति के साथ यज्ञ, पूजन आदि करती हैं। प्राचीन काल से ही प्रायः एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह नहीं किया जाता। स्त्री अथवा पति का परित्याग समाज में अनहोनी बात है। विधवा विवाह को अब मान्यता दी जाने लगी है। कन्या देवी तुल्य समझी जाती हैं।

खत्री आचार-विचार का बहुत ध्यान रखते हैं। ये दान नहीं लेते और गौ बेचना तथा हल चलाना बुरा समझते हैं। ये वैदिक धर्मावलंबी हैं, फलतः धार्मिक दृष्टि से जैन मन्दिरों में नहीं जाते। प्रायः सात्विक भोजन करते हैं, मांस, मदिरा का सेवन बुरा समझा जाता है।

सार्वजनिक जीवन में खत्रियों का दृष्टिकोण सदैव से विशाल रहा।

खत्री धर्मपालक हैं, फलतः धर्म ने भी सदैव इनकी रक्षा की है। यह अमिट जाति है।

धर्मो रक्षति रक्षतः

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर खत्री समाज को हार्दिक बधाईयाँ :

खत्री संतशरन मेहरा,

मे० मेहरा क्लाथ स्टोर सेवका बाजार, आगरा

मे० मेहरा सिल्क स्टोर ,, ,, ,,

बनारसी साड़ी एवम् सब प्रकार के वस्त्रों के विक्रेता

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्रियों की अल्लें

—खत्री हरिमोहन दास टंडन, इलाहाबाद
संरक्षक, 'खत्री हितैषी'

भारत का प्राचीन इतिहास आर्यों का इतिहास है और निःसंदेह खत्रियों के अन्दर आर्य रक्त है। उत्तर भारत में खत्रियों के राज्य का विस्तार चारों ओर फैला हुआ था, परन्तु उनका मुख्य केन्द्र पञ्चनद तथा गङ्गा-यमुना का क्षेत्र था। उनके पुरोहित सारस्वत ब्राह्मण थे। संस्कृत का 'क्ष' प्राकृत और अपभ्रंश में 'ख' हो जाता है यह बात करिदेश्वर ऋषि, वररुचि तथा हेमचन्द्र के ग्रन्थों से प्रमाणित है। पं० हरिश्चन्द्र शास्त्री, पं० श्यामचरण शास्त्री, श्री तलवादमे, मि० जे० सी० नेसफील्ड, मि० सी० एच० इलियट, सर जार्ज केम्बल, मि० ए० एच० विलसन, आदि विद्वानों का मत है कि खत्री क्षत्रिय ही हैं और वह एक सैनिक जाति है।

विदेशियों के आक्रमणों को सबसे अधिक पञ्चनद के निवासियों को झेलना पड़ा और इतिहास साक्षी है कि उन्होंने वीरतापूर्वक देश की रक्षा के लिये युद्ध किया, परन्तु खेद है कि वे सङ्गठित नहीं हो पाये और आपस की फूट के कारण असफल रहे। फलतः उस प्रदेश के निवासी समय-समय पर भारत के अन्य प्रदेशों में प्रवास कर गये। जो पहले गङ्गा-यमुना के किनारे-किनारे कलकत्ते तक फैल गये, वे पूर्वीय खत्री कहलाये और जो बाद में अपने प्रदेश से निकले, वे पछैंये खत्री कहलाये। इसी प्रकार आगरेवाल, दिल्लीवाल, लाहौरिये, आदि उप-भेद बनते गये। राजस्थान और गुजरात में बसने वाले खत्री ब्रह्मक्षत्रिय के नाम से विख्यात हुये। दक्षिण भारत में सहस्रार्जुन प्रसिद्ध सम्राट हुये हैं, उनके वंशज अपने को सोमवंशीय सहस्रार्जुन खत्री कहते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि ब्रह्मक्षत्रिय और सहस्रार्जुन क्षत्रिय दोनों अपने विभेद का कारण प्रसिद्ध परशुराम जी को मानते हैं।

जैसे-जैसे खत्री भारत के विभिन्न प्रदेशों में बसते गये वैसे-वैसे उन्होंने स्थानीय रीति-रिवाज और व्यवहार एवं व्यवसाय को अपनाया और उनकी अनेक उपजातियाँ बन गईं। व्यवसाय, युद्धकौशल, विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति आस्था और रहन-सहन की विशेषता के कारण उपजातियों के नामकरण होते रहे, साथ ही सामाजिक प्रतिष्ठा एवं स्वाभिमान के कारण उनमें से कुछ वर्ग अपने को श्रेष्ठ समझने लगे। ऋषि परम्परा के गोत्र भी विभेद के कारण बने। खत्री जाति के उपभेदों की संज्ञा को 'अल्ल' कहते हैं। अल्लों की उत्पत्ति एवं व्युत्पत्ति का कुछ इतिहास ज्ञात है और कुछ अनुमानित, किन्तु अभी भी बहुत कुछ शोध होना बाकी है।

स्वाभाविक है कि भारतवर्ष के समान विस्तृत भूमि पर फैले हुये खत्रियों का परस्पर परिचय एवं सम्पर्क भली भाँति नहीं हो पा रहा था। यातायात के साधनों तथा पत्र-पत्रिका-पुस्तकों की सुलभता की वृद्धि के साथ अब सम्पर्कसूत्र बढ़ गया है। वर्तमान युग के सिद्धान्तों के प्रभाव से उच्चावच्च की भावना समाप्त हो रही है और परस्पर उपजातियों में विवाह आदि सम्बन्ध भी हो रहे हैं। पहले ढाई घर, चार घर, बारह घर, बावन जाति, खुखरान, सिखरा, सरीन (छोटी-बड़ी), गुजराती, बहुजाति, ब्रह्मखत्री आदि का जो भेदभाव था वह अब मिट रहा है। अतः नीचे लिखे अल्लों की सूची, कोष के क्रमानुसार दी जा रही है। हम सम्भावना करते हैं कि इसमें अनेक भूल होंगी और अपूर्णता होगी, क्योंकि इस प्रकार का कोई अखिल भारतीय प्रयास न होने के कारण जानकारी अभी अधूरी ही है। आशा है कि भविष्य में खत्रियों के अल्लों की उत्पत्ति, व्युत्पत्ति, विस्तार एवं विभेदों पर शोधकार्य किसी विद्वान द्वारा होगा, यहाँ यथाज्ञान सम्मिलित सूची प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

★

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अ से आ

अंखोर, अंगदा, अंगिए, अंगी, अंधिया, अञ्चल, अंचूरिया, अंजानी, अंटाल मर, अंटिया, अंठरेजा, अंतिया, अंद, अंदरानी, अंदेमानी, अंधार, अंधिया, अंब, अंबरीष, अंबाट, अंबे, अंबेकर, अंबेद, अइतार, अइनमार, अइमर, अकरा, (अकरे), अकल, अकारी, अकोला, अक्कल, अखि, 'अखेजे' अगनारा, अगरी, अगिया, अग्गेचल, अग्निजाय, अग्यल, अग्रवाल, अघिरा अघेले, अचरू, अच्छपरानी, अछपानेवामा, अछपोजानी, अजमाती, अजमानी, अजमाशी, अजरी, अझाली, अतई (अताई), अतद (अताद), अतरोवा, अथडेजे, अथणि, अथनी (अथानी, अथिया), अदैन, अधमाखे, अधराने, अधरेजे, अधीरा, अनंद, अनचुरी, अनजानी (अनजाने), अनथाना, अनदाणी, अनपबो, अनवसता, अनादि, अनी, अनु अनस (अनैसा), अनेजा, अपत, अपन, अपनजे, अपरिए, अपहोन, अपोत्र, अप्पल, अप्पर्य, अबधाये, अबराने (अबरानी), अबवा, अबहरे, अबायवादी, अभट, अभवानिए, अमठ, अलत, अमती, अमरीया, अमीन, अम्गा, अयत, अरंगवरंग, अखाल, अररिद्दी, अरिन, अरैलत, अरोमत, अदैन, अर्बल, अलका, अलख, अलग, अलमंग, अलवंद, अलवचे, अलाबाधी, अलिया अलशघे, अवई, अवट, अवत, अवधूत, अवर, अवरोह, अवलसे, अवलिस, अवसाही, अव्वल, असरापो, असरानी, असरो, असल, असलअदवा, असलाचिनवा, असौर, असीचे, अस्ताबाधी, अहूजा (अहोजा), आधमाली, आईनगर, आतू, आद, आदिआतू, आनंद (अनद), आनी, आंबी, आमरे, आरोडा (अरोरा), आलिया, आवंद, आवशाही, आवीराय, आशरा (आसरा), आसनी, आसा, अहरी।

इ से ओ

इंदमनि, इंदर, इकताबिल, इकरा, इकाकंद (इकाकंदे), इचोरा, इच्छापुजारी, इछर, इछोरा, इजमानी, इजराल, इदमानी, इरकल, । उकतावले, उकबहरा, उगर, उग्गल, उग्र, उचखेड़िवा, उच्चटनी, उव्वाले, उठैले, उड़, उतरेजे, उत्तरकुमार, उत्तरे, उत्रिचपुरे, उल्ला, उदरिया, उदरे उदेशीं, उदोबुद्धो, उधरानी, उधेरकी, उनय (उनिया), उपल (उप्पल), उपावेजें, उबोवजे, उबाल, उमते, उमीन, उदरल, उलहरा, (उल्हरा), उलूचा, उवराये, उवल, उहिल, ऊंचकोटि। एघरे, एजियल, एथैना' एरवरी, एलवो, एलानहाविये, एशानी, ऐगिरा, ऐठाना (ऐठिया), ऐड, ऐनक, ऐयार, ऐरवर, ऐरावत, एवाती। ओगी, ओड़ें, ओधी, ओनठ, ओपीसीर, ओरवाल, ओर्धन, ओलडे, ओवराही, ओसार्दा, (ओसद्धा), ओहर, ओहाना, औकल, औघड़ (औघर), औरतींजा, औधरी, औधी, औपारगे, औरंगए, औरधन, औरावत, औल, औलविहार, औसरणी, औसिया।

कं से क्

ककरीला, कंकरेज, कंखाना, कंचन, कंजीनीर, कंडू, कंतोड़, कंदफूली, कंदर, कंदराव, कंदेर, कंधरा, कंधरावाद, कंधारी, कंबूल, कबो, कंसाना, कंसुरा, ककरानी, ककेर, ककरौला, कक्कइया (ककैया), कक्कड़, कग्गर, कघिया, कघोन, कचना, कचरा, कचरील, कचीर, कछर (कछरा) कछवई, कजरल (कजराल), कजरिया, कजरीला, कटवार, कटहोरे, कटारिये (कटियार), कटीला, कठवीं, कठारे (कटारे), कठाला, कठोर, कडतन, कड़हेला, कतरपाल, कतरेजे, कति, कतिमार, कत्थल, कथर (कथरा), कथुरिया (कथोरिये) कदवाने, कनघरे, कनछन, कनड़े (कनाड़े), कनसाना (कन्सुना), कनसूरा, कनोरा, कन्सूता, कपकजे, कपतिला, कपूर (कपूरिये), कपोह, कबाड़ि, कबातजे, कमठेल, कमता, कमपानी, कमराई, कमलारी, कमालपुरे, कमेरिए, कमोदी, कमौर (कमोर), कम्यानी, करंदी, करचला (करचली), करछीया, (कलछी), करतने, करपाल, करया, करवाट, करवे,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

करसीजा, करहेला, कराई, कराछीक, कराट, कराण, करानी, करातन, करारे कराल, करेजे, करेड़े करोंडी, कलगीवाला, कलकला, कलर, कलबुर्गी, कलसारा, कलसिया, कलातरेह, कलीरमा, कलख, कल्पवृक्ष, कस्याणी, कवागर, कविलेतिया, कसरती, कसरल (कसराल), कसी, कहरी, कहिरच (कहीरच), कांकी, कांची, कांजीनीर, काकु, कागड़ा, कांट, काटकीया, काटनामणा, काटवे (काटवा), कटींघर, काठपाल, काठी, काणातेला, कातरकि, कामरे, कामली, कामले, करतेला, (करातेला), कारने, कारी, कारूख, कारूस, कालकला, कालछर, कालड़े, कालसारी, कावड़े, किउली, किकड़िया, किच, किरि (कीरी), किमरा, कुण्डे, कुंकणा, कुन्देराव, कुकर, कुकरेजा, कुकूड़, कुक्कड़, कुच, कुचकुचे, कुचल, (कुच्चल), कुदल (कुदले), कुदवाने, कुदा, कुदालिया (कुदोल), कुब्बे, कुरड, कुरले, कुरहिया, कुरूछिया (कुछिया), कुलपलीजे कुलबुर्गी (कलबर्गी) कुलशिये, कुलहर (कुल्हड़), कुशलिये, कुहर, कुहिरे, कृपाल, कृपालजही, कृपालमुण्डैल, केके, केडिया, केतरे, केरतिये, केवली, केसरे, (केसरा), केसाडही, केहरपोत्रे, केहेरेय, कैशनी, कैसर, कोकी, कोकीताल (कोकितल), कोक्षण, कौचूर, कोछड़ (काछण), कोटवाड़ी, कोड़हाने, कोडीखाने, कोतल, कोनी, कोन्मरे, कोमल, कोर (कोरा), कोरतादी, कोरिया, कोलहपुरे, कोसन्दर, कोसारा, कोहली (कोहिल), कौरव, कौशिल्ये, कौहया, क्वातरे, क्वारजही।

खं से ख्

खंखाल, खंगवाल, खेंगर, खंडकी, खंडपूर (खंडपूरिये), खंडे, खंडेरे, खखने, खरुखर (खखरे), खचिया, खटरल (खटराल), खटवेटे (खटवटे), खड़, खती, खथुरिया, खदसिया, खन्ना, (खन्ने), खपरेजे, खपरैल, खभारी, खमरैल (खमरैला), खरगोश, खरमुनी, खखंडे (खखंदे), खरहल (खरेहाल), खरहुक, खराल, खलखाना, खवानिये, खहया, खांदर, खाकल, खाखूपतरा खातिर (खातिरे), खानखाना, खामौनी, खारल, खारी, खाहरे, खिटियों, खिदरिये, खिन्नी, खिरकी, खीरचट्टे, खुअतिखुआ, खुक्कर, खुखराइन, खुडखुडीया, खुदमते, खुमानी, खुमार (खुमाड), खुवारी, खुराना (खुराने), खुल्लर, खूरेजी, खेकभांजे, खेतरपाल, खेड़ी (खेते), खेरवाह, खेरी, खैरीज, खेरे, खेवजी, खंबर, खैरिया, खेरी, खोंतड़े, खोडे, खोदिया, खोरिया, खोला, खोसला (खोसले), खोहा (खुआ), खारा।

गं से घो

गंग, गंसणेजे, गंगधुलिया, गंगनीचे, गंगादिल, गंगाधर, गंगी, गंगे, गंध (गंद), गन्धार (गन्धीरी), गन्धीर, गउराहा, गउल, गउहाना, गक्खड़, गगनेजे, गंगरीबे, गगला, गगलानी, गग्गे (गग्गो), गजकंद (गजकंध), गजकर्ण, गजपति, गजरिया, गजरौल, गजेजई, गठडी (गठडे), गडोय, गडुद, गढ्डे, गतानी, गधेला, गयंद, गरंथ, गरपिये, गराच (गराछ), गर्गा, गलवटे, गवाकसा, गविद, गवीया, गवैदरे, गहमेर, गहीर, गांगजी, गाँगी, गाँधी (गोकुल गांधी), गाडो, गादीमंद, गावे, गामना, गावड़ी, गिदड़, गिराछ गिलोईगीर, गिलोवा, गीला, गुगलानी, गुगवानी, गुजराती (गुजराथी), गुजराल, गुट, गुटतोल, गुट्टी, गुड़घीला, गुडि, गुबरानी, गुगनारा, गुमरा, गुरजा (गुरजे), गुरजरे, गुरलानी, गुरस्यानी, गुरू गुलाब, गुरूदत्त, गुलबाधर, गुलाटी, गुलालिये, गेरे, गेला, गोदले, गोमबर, गोकरि, गोगले, गोगिये, गोधनी, गोचमर, गोछंजी, गोजर, गोड़हे, गोड़े, गोदेता, गोदडीआ, गोदीया, गोधनी, गोध्या (गोधीया), गोपाली, गोपिया, गोरखगुल, गीरातला (गोरातेला), गोरीचन, गोरे, गोलंदी, गौलखपुर, गोवरकीचड़, गोवरे, गोवल, गोविंदे, गोविना, गोवेल, गोषारो, गोह, गोहल (गोहला), गोहानी, गौड, गौतम, गौवर, गौरी, ग्वोलीपुरवा, ग्रोवर, ग्वाछीर। घंघारी, घंटालिया, घंटालिया, घंड, घइ, घग्गर, घघरवाल, घघेर, घटीमोर, घटकन, घन, घनटलिया, घनुका, घमन्डो, घमाना, घमोआ, घम्मन, घलिया,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

घल्ले, घसझीरी, घसिडान, घहना, घाघरवाल, घामोडा, घारिष्ठ, घारी, घ.वर (घावरे); घासजोहरी, घारीरल, घिवार, घीक, घीया, घूटले, घुटहना, घुड़चड़ (घुरचढ़ा), घुतारा, घुमर, घुलातिए, घुलानिए, घुस्सा, घूरिया, घूमर, घूमी, घेटी, घेई, घेलन, घेयर, घोखना, घोग, घोंघे, घोरे, घोसिल।

चं—छौ

चंड (चंडा), चंडोक, चंदन, चंदरा, चंद्र, चंद्रखोड, चकचक्खी, चकड़, चकदे, चकने, चकरैल, चकल (चकेवाल), चक्कड़वाल, चक्करे, चक्रपाणि, चक्राइये, चचरे, चचा (चच्चा), चटकारे, चटाके, चड्ढा, चढ़े, चतरा, चतुरगोत्री, चतुरान, चतुर्गन, चननपोत्रे, चनोननिए, चप, चमनी, चमरीया, चमोवा, चरकौतरा, चराइए, चराईपात्रे (चराइपोत्रे), चलग (चलगा), चलवगे, चलतर, चलेजे, चलोमा, चवान, (चव्हाण), चहिनेयावाटे, चाँद, चाँदमल, चाँदराना, चांदीफूंक, चांदीहूंक, चाड़े, चानते, चानबाब, चापलू, चाबे, चारकिले, चालकोटरा, चारखंडी (चारखडे), चारफरी, चायली, चारा, चावडीमनी, चवले (चावले), चाहल (चाहले), चाहैतुक, चिगी, चिरवाल, चिल्लागी, चींकत, चुगतिग, चुघ, चुडग, चुनाई, चुरचुट्टे, चुलड़े, चूनरछोर, चूंरा, चेचा, चोंदना, चोकले, चोटमारटे, चोंटलड़, चोटीतप, चोतरे (चोनड़े), चोपड़ा (चोपड़े), चोपे, चोबरे, चौंकने, चौंडे, चौकड़े, चौगुला, चौधरी, चौपट्टे, चौमोहरे, चौरंगे, चोरहवा, चौहज्ड़ा। छगा (छंगे), छंछन, छदकवरे, छंदखोरा, छदना, छंदमल, छंदा, छदीकुंक, छउदा, छकचीर, छकना, छकल, छर्कवाल, छछारे (छछोरिया), छजुआ, छड़ीले, छढ़ैया, छतवाले, छत्तीछिगन, छत्रपाल, छत्री, छनंगपाल, छनना, छनोछरा, (शनिश्चर), छपकी, छबीले, छब्बासी, छमकी, छमगीया, छरदेही, छरीजमा, छलडारह, छलोजे, छांछी, छाकल, छाजा, छाटनी, छाटबार, छात्रिया, छारकिला, छारदान, (छारदन), छावड़े, छाहड़, छाहल, छिकर, छिकाल (छिखाल), छिकोरिया, छिनवत, छिनहट्टे, छिनोछाई, छिपिया, छिरका, छीकड़े, छुंछा (छूंछा), छुछीगांठ; छुछिए, छुदिये (छूदिये), छुमकिया, छुलिया (छूलिया), छूटा, छूड़िये, छूड़ीमार (छूरीमार) छूरछता, छेनछा, छेमदा, छेकड़े, छैकोड़िया; छैदकवरे, छैन, छैये, छैलवार, छैहर छोकरा (छोकरे), छोकल, (छोरे), छोत, छौकना, छौपत्ता, छौमुहरा।

जं से झौ

जंगी, जंड, जंडवाई, जंडवाणी, जखभुवाधुन, जगड, जगधरिये, जगरान, जगरेजे, जगवार्थ जटिय, जटियल, जड्डला, जड़बुत्ते, जडि, जतवानी, जदानी, जनकिया, जनचावला, जनरेजे, जनजें, जन्नी, जप, जपने, जपोड़े, जब्बरशाही, जमकी, जमन, जमरथ, जम्मा (जम्मे), जम्तुका, जयी, जयरथ, जयोरे, जरजी, जरताधर, जरबुते, जरार, जरीपुंज, जलउल, जलहार, जलाली, जलूना, जलोह, जलोटी, जल्ला, जसकी, जसराई, जसवड़े, जसोहुक, जसूत्रे, जहागीरदार, जाँजी, जाधी, जाकज, जागोधर, जाजणाधी, जाजल, जाजुरे (जाजुड़े), जाजे, जार्ड (जाडठक्क) जानभुवाधुन, जानल, जारया, जारेचा, जालनापुरे, जाली, जाबा, जिधान, जितूरि (जित्री), जिवरा (जिवारा), जिहट, जील, जीवटे, जुगलवाया (युगलवाया), जुगे, जुझाने, जुरै, जुहारजीते, जूला, जेखाने, जेठवा, जेनभी, जेसंगढी, जेसंगे, जेसहगी, जेसिधिए, जैतुका, जैमल, जैरथ (जयरथ); जोजर, जोंजीखेल, जोंजीचंद, जोंदनी, जोका, जोखिया, जोगी (जोगिया), जोडा, जोति, जोथे, जोना, जोहर (जौहर) ज्वाला। झंकसिया, झंझर, झझेबाज, झगरा, झजर, झडीला, झनकसिया, जनफनबजे, झमड़े, झमपालर, झरमुरा (झरमुरे), झलकमार, झलवार, झलेर, झल्ला, झांगड़ा, झांझरे, झांझा, झाँझी झांप, झांपादार, झांम, झाखुर,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

झाड, झारिले, झाला, झिंगराने (झिंगराने), झिंगरे, झिउड़ा झिनिंगर, झिनिये (झेलिया), झीझा, झुलवार, झोरमकोई, झोलड़े, झौंकमार, झौआमार ।

टं से ढो

टंकघर, टंगडवाढा, टडन, टई, टकन, टकर, टकसाली, टकहर, टकियार, टगिरा, टटयानी, टटवाना (टुटवाना), टटरा, टठानी, टडवाले, टनकधार, टनाजिए, टनोड़, टमकन, टरहा, टल, टवकेर, टहरी, टांक, टांगरा, टांडरे, टाक, टाटागड़, टाटारीया, टांरिये, टाला, टिकंदर, टिकले, टिकिये, टिहरीबांक, टीटोटन्डन, टुंगरवाही, टुकनिया, टुकरिया, टुनखिया, टुनटुनिया, टुपया, टेटिया, टेक, टेजे, टेढीबांक, टोंगा, टोकल (टोकले), टोनिया, टोरनार । ठंथखेये, ठंडी, ठकनोजिए, ठकर, ठकराल, ठकुरेजा, ठटिये, ठठचारे, ठठागर, ठठामरे, ठठनपाल, ठांड, ठाट, ठाठेरा ठिकथूरा, ठिकपुरा, ठिक्कन, ठिलइनटे, ठिल्लमठिल्ला, ठिवकन, ठीकेदार, ठुकराल, ठुकहर, ठेंठपाल, ठेकरे, ठोकिया, ठोसमल (ठोसमाल) । डंकवन, डंकामार, डंग, डंगगई, डंडवाज, डंडे, डंडोसी, डकण, (डकना), डखना, डगगई, डगबन, डगबरेजे, डगमरीले, डगाडेदश, डटाइए, डडवहे, डडी, डमरिया, डमामघर, डयोरी, ढरवाने, डेरेजे, डलिया, डहंगरे डांगा, डांडी डाक, डाख, डागरी, डाडांगण, डाडेरा, डाबूमल, डामरा, डामराबाढ, डालफूल (डालफूले), डाली, डावरे, डारे, डिगसना, डिसोजा (डसोसा), डुलेरा, डेमी, डेयाणी, डेसर, डैरी, डोंडरा, (डौंडरे), डोंर, डोन, डोगर, डोडिया, डोटे (डौडे), डोडेजे, डोनंबरे, डोमजे, डोमने, ढंकण, ढंगमकूला, (ढंहुमकुला) ढंगर, ढंगरी, ढंढोरिया, ढंकना, ढकी, ढगढेर, ढगले, ढबकर, ढरक, ढल, ढलबाज, ढाईये, ढाकुरायल, ढाढबानिए, ढारी, ढालकरी, ढालबाज, ढिढोरिया, डिलहान, ढीकदार, ढुंढखाल, ढुलका, ढेहारया, ढोंडिला, ढोंढले, ढोकले (थोकणे), ढोलकिया, ढोलकीफुट, ढोलपे (ढोलपा) ।

तं से थो

तंगिये, तकमार, तकोजे, तगड़े, तगतोड़, तग्गिनमनि, तटघर तटवर, तट्रासी, ततरेजे, तचे, तनतिया, तनी, तनेचे, तनेजा, तनोद, तपड़गुड़ा, तपनगर, तपे, तबनोल, तब्र, तमखुरा, तमाकूवाला, तरंदा, तरदा, तरनेजा, तरपके, तरवानी, तरोने, तर्क, तलकी, तलरे, तलवाज (तलवजे), तलवार (तरवार, तलवाड), तलवारमार, तबकिया, तवरेच (तवरेज), तवेया, तहमेले, तहवाला, तांगड़ी, तांगा, तांतिया, तांबड़े, तालंगे, ताखी, तातने, ताता, तानी, तानीओढा, ताने, तानेतली, ताबड़े, तालवाड़ (तालावाड़), तालारार, ताहरी, तिन्ने, तिपुरा, तिब्ब, तिरंदाज, तिरनाल, तिरहुन (तिर्हन), तिरूमल, तिलकिया, तिलवार (तिलवाल), तिल्लीछार, तुंबार, तुतीआ, तुनतुनिया, तुरही, तुरी, तुर्हाई, तुलवीर, तुलसिंद, तुलसीनन्दा, तुलीया, तूल, तूलर, तेंगर, तेजाणी, तेतर, तेन्यओ, तेम, तेहर (तैहर), तोतलानी, तोते, तोबरेज, तोरनार, तोलबाँछरी, तौलिया, त्रिमल, त्रिहन, । थंबा, थंमन, थंरहल, थकवेल, थथेडे, थनथाल, थन्ने, थरहाल, थरीना, थरेजे, थलकिया, थलहिल, थलेर, थागुर, थाथरी, थापन, थापर, थारकर्छी (थालकर्छी), थालर, थिग्गन, थिमन, थुकवन्ते, थूहर, थेगरा, थैलवाल, थोकिया, थोटी ।

दं—धौ

दंगली, दंदोसी, दउयाणी, दगचंद, दगड़, दगभरिला, दगीचा, दगीया, दतड़ा, दत्थल, दधिया, दनड़ा, दमतकरे, दमाम, दमौड़ा, दबकने, दबरैल (दबरल), दयाणी, दरगन, दरज, दरधिया, दरया, दलबंजन, दलही,

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

दलानिया, दलिये, दल्लालिया, दशवाल, दस्सू (दस्सू), दहके, दहगलानी, दहतारिये, दहरानी, दहल, दहिका, दहोचा, दहोजे दहोरी, दांदडा (दंधिड़ा), दाणेज, दादरे, दादसुना, दादीपोता, दानि, दामड़ी, दामन, दामुसा, दास्वहर, दारीला, दावडीहा, दावड़े, दासा, दाहड़े, दाहवले, दिक्कन, दिवरा, (दीवरा), दीक्षण, दीदावन्द, दीदिया, दुबोहल, दुआ, दुखरे, दुगल (दुग्गल), दुत्तल, दुमोहा (दुमोहरा), दुरिच, दुर्गन, दुलिया, दुवण, दुहावन, दूतिया, दूधावने, देंचे, देयाणी, देगरा, देगी, देमला, देरया, देवड़े, देवपाल, देवल, देसर, दोखरे, दोदीय, दोबरेजे, दोलड़े, दोहरा, दोलतमनी, द्रोदीया, द्रोर, । धंकसरी, धंतपूरी, धंधरा (धंधारी), धखाड, धखानी, धडंगे, धडा, धणदै, धतवा, धन, धनकिया, धनदेई (धनदेन्या), धनरिये, धनाक्षरी, धनिया, धनुके, धनुर्धर, धनोरधर, धफंजखत, धमीजे, धरकबंदिये, धरकमार, धररे, धरादे, धरेज, धरेटिया, धरीछ, धर्मदास, धर्मीरे, धरें, धवन, धुवरीया, धवीस्न, धांगड़, धांधा, धारी, धिगड़े, धितिये, धिवाया, धींणीआ (दणीया), धीपे, धीमा, धीरवीर, धीवन, धुतारा, धुनी, धुमन, धुलेरा, धुवाना, धूमन, धूरिया, धेगड़े, धेला, धोकड़े, धोखाया, धोंगडी, धोंडाले, धोना, धोवन, धौन, धौखिल ।

न से न्

नंदचाहत, नदवाने, नंदवार, नंदा (नंदे), नकबेसर, नकतूर (नखतुरा), नखराना, नगरि, नगरानी, नगराया, नगरेजे, नगियर, (नगिए), नगौरा, नचया, नचाती, नजड़ा, नटोरा, नदरा, नमण (नेमण), नरदे, नरूकमरू, नरेश, नलोरा, नवलखा, नशकीड़े, नहछिददा, नहनगनी, नहरानी, नहियन, नहियप, नहिसाबाढ़ (नहिसरबाढ़), नाकूपत, नाकोड, नाग, नागन, नागपाल, नागर (नागरे), नागिम, नागिये, नागे, नागौन, नाजर, नादरा, नान, नानगुरू, नानसी, नारंगे, नारंग, नारोले, नाल, नालवा, नालोरा, नासा, निचाणी, निडरे, निरंजन, निरत्रिया, निर्मण, निर्मणभुत, निशीन, निसात, निहावन, नीमक, नुनहारी (नुनहारा), नूरजे, नृसिंह, नेकूख, नेगू, नेपर, नेमी, नैगल, नेनाथी, नैमहले (नौमहले), नैमिख, नैमिव, नैगर, नैर, नोगरे नौगराही, नौनछोर (नोनछोर), न्याहिए, न्योले ।

पं से फो

पंखी, पंगे, पंचपकानि, पंचवेदी, पंचाल, पंचू, (पंचे), पंच्छे, पंजमने, पंजरंडे, पंजाजड़ी, पंजाबे, पंजाभुत, पंडेचे, पखुरा, पचंडे, पजैला, पटपटिया, पतोला, पट्टीखर, पट्टण, पड़तने, पड्डाल, पडीआ, पडेर, पतमी, पता, पतोला, पथरा, पदवासी, पधीजे, पधौला (पधैला), पनवार (पनवारो, पनवानी), पनहारी, पनेरह, पन्नी, पयोलल्ला, परचंडा, परमली, परासी, परेम, परेयानी, परोथी, पलटा, पलथन, पलपजलते, पलाई (पलाही), पल्लव, पवार, पवेजे, पशीमन, पसरा, पसरेचे, पहलते, पहवा, पहोजा, पहोलर, पहोंवे, पांचरा (पांजड़ा), पांजिया, पांडू, पांदा, पांदी, पाकर (पाखर), पागढे, पाटन, पाटील, पाड़ा, पातलिया, पातार, पाधा, पानागी, पापा, पायलाजी, पायोलल्ला, पारा, पाराशर, पाल, पालसिया, पालेकर, पालोज, पालोय, पाशी, पासंग्या, पिढारी (पिनढारी), पिनाकी, पिशावरे, पीडिकेर, पुंछी, पुछरी, पुडेकर, पुथरेजे, पुनतीजे, पुम्हनी, पुराग, पुरी, पुरोमनी, पुल्याणी, पुशकरी, पुहली, पूजारि, पूल, पृथु, पेंक्ट, पेंटू, पेड़ी, पेतरमेढर, पेनचढुरिया, पेलान, पैंडू, पैंगे, पोंजी, पोखल, पोछक्या, पोजरि, पोथंगा, पोथा, पोपल, पोपलाया, पोपा, पोलपुअर, पोलावल, पोलियार, पोहली, पोहा, पौछच्का, पौहारी, प्रमाणी, प्रोरधा । फक्कर (फक्कड़), फखयार, फटखार, फपणीया, फलकिया, फलचढा, फलदा, फलवहे, फलहारे, फल्ले, फांकिपा, फाडके, फुतीले, फुनकमर, फुरकना (फुरकने), फुलदा,

CC-0. National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and ...

फुलपकार, फुलबालिये, फुला, फुलिया, फुलीभल, फुलोवालिये, फुवलीवाल, फूकमार, फूल, फूलपंखी, फूलमाल, फूलर, फूला (फूले), फेसिमा, फोलती, फोहिया, फौजी, फौलारी।

बं से ब्

बंकापूर, बंकामुख, बंगुठला, बंदराय, बंदीफुंक, बगता, बगरिया, बगाई, बग्गा, बघावन, बघेले, बजबजा, बजाज, बजाह, बटल, बठले, बठेजा, बडेडा, बड़तने, बडवा, बडी, (बदी), बड़होत्रा, बडेडो, बतवनी, बत्तरा (बत्तरे, बतरे), बत्ते, बत्था, बदवा, बदहरे, बदानी, बेदराजे, बद्दी, बधावन, बनासिया, बनिहाना बनेलिसे, बपैत, बबर, बबलनीधू, बम्हौ, बरटोरा, बराठ, बरेंया, बरोपद, बर्धवान, बलंदी, बलगुर, बलाते, बलनिधु, बलवंता (बलवंता), बलवेजे, बलसुहाई, बलहोला, बलिमार, बलिये, बलूचे, बसन्ती, बसव, बसुदे, बसेजे, बस्सी, (बहकी), बहदरिया, बहवी, बहियार, बहालिये, बहुरंगे, बहुरे, बहेण, ब्रह्मवर, बांका, बांगुपाइयें, बांगे, बादा (बांदे), बाबी, बाकले (बांकले), बाखरे, बाखिदे, बारतुरे, बागीचा, बाजरी, बाजूनगे, बाड़ा, बाणिये, बाद, बानथरी, बाबेजी, बावले, बार, बारड (बारडे), बारभी, बारभीया, बारहोत्री, बारे, बालखीरन, बालगीर, बालबीरन, बाल्मीकि (बाल्मीकि), बालाजी, बासल, बासिया, बोरड, बाहगुरू, बाहरी, बाही, बिक्कवा, बिछुवे, ब्रिज, बिदराल, बिद्री, बिनहरा, बिबोडी, बिरंच, बिरमाल, बिलाया, बिल्ले, बिसार, बिष्भा, बिहारी, बीछी, बुंटी, बुखारे, बुखीज, बुधरेजे, बुधवार (बुद्धवार, बुद्धवाल), बुधवला, बुरबुरे, बूचकी, बूछड़, बेगल, बेघर, बेदराल, बेदा, बेविनकट्टी, बेराय, बेराया, बेरी, बेसी, बेहर, बैंदरा, बैनी, बोचगीर, बोटी, बोटे, बोवड़े, बोमरे, बोसिया, बोरी, बोरोच्चा, बोलविहा, बोसमिया, बोहरा (बोहरे, बौहरा), ब्रजमनी, ब्रजसर, ब्रीमि।

भं से भ्

भंडरा, भंड़ारी, भंतडादी, भंबइए, भइडा, भकानी, भकोरी, भगडे, भगत, भगनेजे, भगधारी, भगरेजे, भगाजयी, भगादी, भगेड़ा, भचानी, भछड़ा, भजिये, भटनाई, भटनेरी, भटयानी, भटरिया, भटरेजे, भटेजा, भट्टा, भठेजे, भड़कने, भड़ारिये, भड्डी, भदवा, भद्दे (भद्दा), भधले, भधार, भनेजे, भभबानिये, भभरानी (भभराने), भभरेजे भभेरी, भयहांकी, भरखने, भरवाल, भरत, भरद्वज्जी, (भारद्वाज), भरनी, भरभेदी, भरवाही, भरसनिए, भराडे, भर्सन, भलानी, भलूता, भल्ला, भवाइए, भनेसीजा, भसीन, भहेल, भांडगे, भाखेल, भागजे, भागहर, भाजरतवी, भाजिये भाटिया, भाठरिये, भाठे, भातरखाने, भानजीरे, भानिये, भामदिल, भारत, भारती, भारवाही, भारे, भालेन, भाल्लडोया, भावदस्या, भाबन, भाबरवा, भाहत्यासत्या, भाहांकी, भिरातिये, भीमर, भील, भुच्चड़, भुछड़ो, भुडादी, भुत (भुते), भुरे, भूछडा, भूटानी, भूमकर, भूरिया, भूसरी, भोल्ण, भेडा, भेदानी, भेरी, भेवा, भोगधारी, भोगरा (भोगर), भौछड़ा, भोजगिरि, भोजपन्ने, भोजपत्री, भोजरटनी, भोजराय, भोडे, भोतने, भोरपालने, भोरानिये, भोलाने, भोलासिके, भौंकमार, भौछा, भौरंगे।

मं से म्

मंकोडी, मंगमधरे, मंगल, मंगलवार, मंगलानी, मंगवाने, मंगोटिये, मंगोलिया, मंजीठी, मंदुरा, (मदूरा), मकडीआ, मकबाने, मकर, मकरीया, मकाती, मकानी, मकोडीया, मकोडे, मकोरे, मक्खी, मक्ला, मखना, मखले, मखशाला, मखीचूस, मखुआं, मगजि मगजीकोडी, मगडीया (मकरीया), मगरा, मगरूरा, मगसेर, मगहरा, मगही, मगुरा, मगे मगोभी, मग्गा, (मग्गो), मघखान, मघवन, मधुआ, मच्छर (मछर), मजता (मजने), मजराल, मजाई, मजीरा, मटवीया, मटीजा, मढे, मणियार, मतवके, मदरा, मदान, मधवा, मधवी, मधुक

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

(मधुकने), मनकी, मनकुंडी, मनके, मनचूंदे, मनजाल, मनमोर, मनहरा, मनहारा, मनाहा, मनूवा, मनोज, मनोहरा, ममा, मसूरा, मरकट, मरकनी, मरकर, मरक्तैनी, मरग, मरगाई, मरथक, मरदंती, मरदत्ती, मरदी (मर्दी), मरमुआ, मरवाहे, मरवी, मगोंई, मर्थक, मलक (मलख), मलखन, मलखमंजीरा, मलगढ़, मलगी, मलजि, मलार, मलित (मलीता), मल्ले, मलहोत्रा (मलोतरे, मेहरे), मसाकी, मसाला, महंगी, महंत (महंता), महता (महथा), महरा, महराबीय, महाकुच, महाजन, महान, महाल, महालदार, महिव, महेन्द्र, महेरे, मांटे, मांडजे, मांधु, मागड़े, माटिर, मातपोतरे, माधी, माधुर, मानकटाहल, (मानकटोह), मामतुर (मामतोरा), मामलातुरा, मयनयें, मारी, मामलडि, मालगुर, मालदार, मालन, मालवंती मालवी, मालापुरे, मालिया, माहमी, माही, मित्रा, मिनकती, (मिनकेती) मिनरिया, मिरजकर, मिरैया, मिसकीन, मीनीयाल, मुँह, मुँहचगा, मुंहवंगा, मुकताली, मकेर, मुखाइए, मुगलानी, मुच्छ, मुड़िया, मुरा, मुदिया, मुनहि, मुनारा, मुरगई (मुर्गाई), मुरझाने, (मुर्झाना), मुरल, मुरादाबादी, मुगलन, मुलवीजे, मुलहान, मुलिये, मूँगे, मूचर, मूता, मूलरिया, मेगजी, मेकमदन, मेघराज, मेत्राणी, मेदिया, मेधिया (मेधिआ), मेर, मेलिए, मेहंदी, मेहता, मेहरवाड़े, मेहवीरत्ता, मेहन, मेहरबाड़े, मेहरा, मेहरोत्रा (मिहरोत्र, मिहरोत्रा), मैनराव, मैनरिया, मैलवार, मोंगा, मोइये, मोखाणा, मोगेर, मोछर, मोड़री, मोदन, मोदा, मोदिया, मोदी, मौदे, मोनी, मोरनिया, मोरपखी, मोरे, मोलरे, मोलीवाड़, मोहण, मोहरा (मोह्रे), मौजवर, मौनवार, मौनसिल, मौना म्हेर, म्होणेवाढा।

य से यो

यंगचावने, यंतरयार, यकड़, यती, यरकिने, यरनियगो, यरोरन, यलर, यलतानी यलाबंड़, यहदीरत, यहाना (याहने), यांदा (यांदी), याठ, यारद, याहमे, येंजे, येदाह, योनहे, योरगी, योल, योहंयाल।

रं से लौ

रंगड़ा, रंगपुर, रंगभुजे, रंगरेज, (रगरेच), रऊरेजं, रघुपत्ति, रघुराया (रघुराई), रघुवंशी, रचपातोजी, रचला, रचासेशियान, रछपाल, रजूगल, रजल्ली, रडबोहरे, रडी, रजेडे, रढिहया, रलकनिये, रतकीजिये, रतन, रतनपाल, रतल, रतेवानी, रनचेन्न, रनदेव, रपकजी, रबारा, रबिया, रमली, रलन, रलबाहए, रवस्या, रवासिया (फेरूसेया), रसपुत्रा, रसभुअरा (रसभुदरा), रसवाल, रसान, रसीबट, रहानिया, रहिमान, रहेजे, राइसमानवी, राउत (रावर्त), राखड़ा, राजपाल, राजपुतने (राजपूतोन), राजने, राजमहल, राजवते, राजवाना, राजवाल, राजवे, राजशाही, राजानी, राजाबाढा, राजिया, राजोलि, रातकालजिया, रावड़े, राना, रायेरी, रामगादी, रामदेव, रामिया, रायजादे, रायबागि, रारवीर, रारा, रावल, राहीजे, रिंका, रूआने, रूखे, रूठेजे, रूपकठोर, रूसीदलारने, रेगरा, रेयाई, रेलन, रेली, रेवड़ी, रेहाल, रैहां, रोकबाये, रोकरिया, रोखती, रोचक, रोजा, रोडी, रोडीराम, रोडेगे, रोढ़ा, रोना, रोनिये, रोपरे, रोयड़े, रोरा, रोहनिया, रौद्रि। लकापुरि, लंगठ, लंबा (लुम्बा, लांबा), लई, लकड़े, लकमी, लक्खी, लक्षणे, लंखकेहर, लखड़ी, लखणहार, लखूतूरा (लखतुर्रा), लखदंता, लखनपाले, लखनी (लखानी), लखेजे, लखरिया, लगानी, लजानिए लटकन, लठला, लथिला, लदवा, लानिए, लब्बी, लभरीया, लमलली, लम्हक, ललते, लल्ले, लवाणी, लवेक, लवंया, लहवर, लहेजे, लांडगू, लाखड़े, लातपोतु, लातीपाल, लादवा, लालपागा, (लालपग्गा), लालमुना (लालमुन्ना), लिक्खिए, लिडानी, लीया, लुंड, लग्धे, लुधेरे, लुलजे लुलवाज, लुला, लुलीय, लूथरा, लेखड़े, लेमरीया, लेवा, लेहा, लोइट, लोकपाल, लोगन, लागिया, लोछानी, लोटी, लोटे, लोठफा, लोति, लोपाल, लोबा, लोमटे, लोमड़ (लोमवड़), लोलिए, लोहइहुक, लोहाना, लोहारी, लोहिया, लौगिया।

CC-0. National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Portal

वं से व्

वंगुलठा, वंधवे, वकवादे, वकील, वखेड़े, वग्गा, वधराजी, वच्छ, वजनी, वझारे, वठखाने, वडेरे (वढेरे), बढहेरे, बतराने (वातराने), वतरेज, वधावन, वाधारिये, वधीजे, वनासिया, वनिहेने, वनोचे, ववेजे (ववेजा) वभावाढा, वभियेत, वयानरीजा, वयानी, वरपाली, वरबिये, वरम, वरमानी, वरवाट, वरवामने, वरहिया, वरहीं वरेजे, वरेने, वर्जल, वर्मा, वलवाना, वलवीय, वलड़ी, वलेहटर, वलाजींचे, वलिया, वलीजे, वलियार, वलेया, वशिष्ट, वसन (वसन्नी), वसुदे (वासुदेवे, वासदेव), वसोमा, वस्सी, वहकना, वहदानी, वहदो वहरेअनी, वहारे, वादा, वांदीकुक, वाकले, वाकामुख, वाकी, वागले, वाच्छा, वाटतोर, वाडेल, वाढेर (वाढेल), वाघवा, वानदंदा, वानरी, वामा, वामावाढा, वायतर, वारड, वारजल, वालवेकर, वासन, वासिया, वासिल, वासी, वाहगुरु, वाही, विकरिया, विग्गा, विज (विज्ज), विज्ञमल, विट्ठल, विनकहे, विनायक, विसंभ, वींछी, वीजनीओढा, वीजवीया, वीटा, वीर, वीरासन, वीली, वूट, वेगर, वेगी, वेड़, वेदी, वेनोंवखाली, वेरद्रे, वेर्द, वेरेसहन, वेसी, वहोरखाने, वैंदरा, वैधराल, बोलविहा, व्यास, व्रह्मिक।

शं से श्री

शंकधारी, शंभू, शकरसिधे, शकारि, शखरा, शगुने, शग्लूना, शनपग्गर, शनिश्चरा, शपथ, शब्बार, शमशो, शराज, शराफ, शहवानी, शहवार, शहूत, शादराज, शानकारी, शारा, शालगार, शलूचा, शलोती, शावल, शावानी, शासन, शाह, शाहदुराज, शाहसंज्ञ, शाही, शाहुता, शिरालकर, शिवनी, शिवपुरी, शुक्ला, शुपत, शूरसाही, शेशवाल, शैलोकी (शैलाकी), शोई, शोगरी, शोचर, शोत, शोधे, शोभी, शोरिया, शोशवाल, शोहर, शोहाल, शौकत, शौचहर, शौम्हर, शौरानी, शौलिया, शौशनी, श्रौहर, श्रवण, श्रीगिरी, श्रीधरी, श्रीरलकेर श्रीनमख।

सं से स्

संखचारी, संगड़, संगरवार, संगी, संगोतिए, संचल, संढोजे, संतरायो, संदराज, संदरैया, संदेली, संदेसी, संदीज, (संधोज), संधोरिए, संध्वा, संभरवाल (सबरवाल, सभरवाल), सउडिल, सकड़ा, सकरवाल, सखेर, सगुण, सग्गे (सग्गो), सचदेव, सचहर, सच्चड़, सचदेना, सजपाल सजैया, सटहरे, सटोपा, सठखे, (सठखेरे), सडिकेर, सतजा, सतिए, सती, सतेजे, सदरैया, सदा, सधवरे, सधाणी, सधैया, सनेजे, सपथ, सपरेजा, सपील, सप्परा, सफड़े, सफदनी, सबाहिया, सबीड़, सभी, समरवाल, समी, समीकुक, सबूचा, समात, मरकत, सरेथ, सरनी, सरसी, सराई, सराकी, सरोजे, सरोहरी, सलवाई, सला, सलाई, सलूजे, सलोजये, सलोत्री, सवाई (सवई), सवारेजी, सहगलु, सहजरे, (सहजड़े), सहमनी, सहवरिए, सहहारा, सहारन (सहारण), सांपमार, सा, सागिया, सातपुते (सातेपुणे), साधु, सादीबोटी, सानी, सामह, सारदार, साररद, साखी, साहनी (सहनी), साही, साहु, सिगरी, सिगर सिंदुरिये, सिंधराया, सिंधवड, सिक्के, सिख, सिदलिग, सिदुसा, सिद्ध, सिद्धवर्तो, सिधराया, सिधवानिये, सिधार, सिवरगट्टी, सिरिगिरि, सिल्ली, सींगी, सींधवड, सीकरी, सीके, सुंठिया, सुखरे, सुखेजा, सुचि, सुडीआ, सुदान, सुद्ध, सुधने, सुनना, सुपत, सुबनगी, सुरेपन, सुर्जिया, सुलखी, सुलेगावि, सुवन्ना (सुवन्नी), सुहेला, सूची, सूतड़े, सूती, सूर, सूरशाही, सूरिया, सूरी, सेठ, सेठी, सेता, सेनानी, सेनी, सेनीगंग, सेवकी, सेवी, सेसाड़ीन, सैनी, सोंठी, सोंधी (सोधी), सोचर, सोजी, सोठी, सोडा, सोडिजी, सोडिया, सोडिल, सोडी, सोता (सेता), सोती, सोथिया, सोदनी, सोदान, सोनजी, सोनटक्के, सोनपल (सोनपार), सोनी, सोनेजी, सोनीसोर, सोभरेजे, सोमंधा, सोमो, सोमेश्वर (सोमेसर), सोरठीया, सोरवाल (सोलवार), सोलंकी, सोलटा, सोलापुरकर, सोलिया, सोवांतो, सोहन, सोहराथी, सोहरान, सीहवाथी, सोहारी, स्वता, स्वाती, स्वादा।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

हंजा, हजोजे, हंठा, हंडा, हंडारी, हंडीफोर, हदे, हंस, हंसमुख, हंसराज, हंसरानी, हंसल, हजसी, हटाडी, हूड़, (हड़े), हड़पे, हडे, हड्डा, हतिया, हथपइया (हथपैया), हदिया, हबीब, हमजागर, हरगण, हरजाई, हरजानी, हरजो, हरणेजे, (हरनेजा), हरमसागर, हरजे, हरयानी, हरली, हरवै, हरषण, हरसवाठ हरहदिमा, हरहरिया, हरियन, हरीजा, हरीठे, हरेना, (हरना), हलवानी, हलाली, हल्दवा, हवचातोबई, हवजोतोबई, हसटक्के, हहोजे, हांडीफोर, हांडीसीर, हाली, हावनूर, हावी, हिंदवानी, हिदाना, हिल्ले, हुआ, हुड़, हुबण, हुलेरी, हूँगर, हेकड़, हैहैंया, होजा, होड, होडिये, होमकी, होलीखा, होविया, होवे, होसमनि, हौलियाँ।

खत्री हितैषी

स्वर्ण-जयन्ती

विशेषांक के

अवसर पर हमारी

शुभ कामनाएँ

खत्री मदनचन्द कपूर

किशोर
घाप
बन्धानी हींग
ही सदैव प्रयोग करें।

पैक्ड बाई:
किशोरचन्द मदनचन्द एण्ड कं.
लाठी मोहाल, कानपुर

खत्री कौशल किशोर बर्मन "कौकिब"

(संरक्षक उ०प्र० खत्री सभा) द्वारा रचित काव्य की प्रकाशित पुस्तकें :—

"चंदा मेरी तुझे कसम है"

साहित्यिक श्रृंगार रस का एक अनूठा गीत संग्रह जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है। सुन्दर कागज एवं अत्यन्त आकर्षक गेटअप में—मूल्य केवल १६) रुपया मात्र डाक खर्च सहित।

"भारत घटना चक्र"

सन् १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय राजनीति क्षेत्र में प्रमुख घटनाओं पर आधारित अभिव्यक्ति काव्य के माध्यम से बड़े सुन्दर ढंग से हुई है। ऐतिहासिक महत्व की बन पड़ी है। सुन्दर कागज आकर्षक गेटअप में मूल्य डाक खर्च सहित केवल २०) रु० मात्र। उक्त पुस्तकें पूरा मूल्य अग्रिम होने पर ही भेजी जा सकेंगी। मिलने का पता :—खत्री कौशल किशोर बर्मन,

मुरसान द्वार हाथरस (उ० प्र०)

CC-0. National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and ...

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक
के अवसर पर
शुभ कामनाओं सहित :

नानिक चन्द राम नरायन

सुगन्धं निर्मंता, कन्नौज-२०९७२५
उच्चकोटि के सुगन्धं निर्माता

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्तीय वर्ष पर खत्री समाज को हार्दिक बधाईयाँ :—

खत्री नन्दकिशोर हरीशचन्द्र साहनी

सर्वश्री दि विजय विलास

फोन
कार्यालय २७०४
निवास २६६८

ठहरने, भोजन, जलपान आदि के लिए.
एक बार अवश्य पधारें
मामा चौक, जालना–४३१२०३

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर खत्री समाज को हार्दिक बधाईयाँ :—

खत्री श्रीमती कुसुम टंडन
संरक्षक खत्री हितैषी एवं अध्यक्ष खत्री सभा मेरठ

फ्रेन्ड्स कैमिकल्स एन्ड फर्टीलाइजर्स

रजि० आफिस : ३३ विजय नगर
मेरठ-२५०००२

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाएँ :

खत्री भोला नाथ मेहरोत्रा

(स्पेशल मजिस्ट्रेट)

सर्वश्री मधु इलेक्ट्रोप्लेटर्स

मंत्री वाड़ी, साईनाथ रोड, मालाड (वेस्ट)

बम्बई-४०००६४

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाएँ :

मुरारीलाल आजादकुमार

(पीपल वाली दुकान)

• स्टील • पीतल • फूल के बर्तन • प्रेशर कुकर के विक्रेता

दुकान नं० ६५-६६, हटिया, कानपुर

खत्री मुरारीलाल सेठ

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर खत्री समाज को बधाईयाँ :

खत्री जगन्नाथ कपूर (महामंत्री)

अखिल भारतीय खत्री महासभा

ग्राम : ANUTEX

सर्वश्री अनुज टेक्सटाईल्स

फोन २१२५८८
२१२५४८

एजेन्ट्स

सर्वश्री हरी सिल्क मिल्स बम्बई

कपूर निवास—२५/३७, कराची खाना, कानपुर-२०८००१

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

खत्री सुनील कुमार मेहरोत्रा

सर्वश्री भगवान टेन्ट सर्विस

फोन
कार्यालय ७१२२८
निवास ७५८४५ ३६१९२

६५-शापिंग सेन्टर, अलीगंज स्कीम, लखनऊ-२२६०२०

हमारी विशेषता : आउटडोर कैटरिंग

BARGA-TWO-IN-ONE-WHITE HOUSE APPROVED GOVERNMENT CONTRACTORS

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri. Courtesy: Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

अरोड़वंश की ज्ञात ६६२ अल्ल

संकलनकर्ता : सोहनलाल बजाज

(अ)

अकारी, अखलेजें, अगंदा, अंगी, अघेले, अचरू, अछपानेवाले, अच्छपरांनी, अजायती, अजमानी, अजहाली, अठरेजा, अथडेजे, अथरेजे, अधरेजे, अघलिखे, अन्द (आन्दा), अनन्दा, अन्दरानी, अन्दाहमुखी, अन्देमानी, अनेजे, अपन, अपनेजे, अपूहून, अपनकी, अवरानी, अबयाए, अबहर, अभवानियै, अम्बायवादी, अमरिये, अलूंगिये, अलूचे, अस्तावोधी, असरानी, असीजे अभाणी, अजीडा, अभट्टा, अनदानी, असूंजा, अनरेजा, अधोस ।

(आ)

आकली, आनी, आभाटे, आमरे, आहूजे ।

(इ)

इच्छपुजानी, इलाहाबादी, इस्तानी, इच्छामारणी, इंदराणी, इलफानी ।

(उ)

उत्तराधी उतरेजे, उधरेकी, उबावेजे-उबावेजें ।

(ए)

एघरे, एजियाल, एदानी, एलानहादिये, एलेसवी ।

(ओ)

ओतरेजे, ओपरगे, ओतरेजा, ओरगिये ।

(क)

ककड़े, ककरानी, कगड़ा, कंघरे, कचरा, करेजे, करोड़ी, करोड़े, कटारिये, कठोरे, कतरपाल, कतरेजे, कथल, कंवायर, कामरे, कालड़े, कथूरिये, कंतोड़, कंधारी, कनड़े, कपकजे, कोनी, किरानिये, कुम्हार (कुमर), कमालपुरिये, करवे, करमानी, करपालजही, करवाट, कुक्कड़, कुरलै, कूंमरे, करतने, करसेजे, करंदी, करातु, करानी, केतरे, केसरा, केकड़े, कलड़ा, कलेरमा, कलातरा (कलाटड़ा), कवातड़े, कबारजही, काट, कामली, काठपाल, किमरिये, कीरतिये, कुब्बे, कुलपेलेजे, कुण्डे, कुरड़, कुकरेजे, केतला, केरे, केहर, केसाजही, केहरपोत्रे, कोचर, कोरिया, कोरतानी, कोयल, कबीरिया, कुलात्रा, किन्नड़, कंजरा, काठ, कपूर, कटवानी ।

(ख)

खड़, खण्डपुरिये, खडपुर, खदसेजा, खबानिये, खन्ना, खट्टर, खपरेजे, खब्भानी, खरबंदे, खरेजे, खरोदे, खरगोश, खारी, खाहरे, खेते, खेकभांजे, खेमवाणा, खेरबाट, खोसरे, खोरिये, खोराने, खेरे, खेतो, खोतड़ें, खेत्रपाल, खुम्वारी, खुंगर ।

(ग)

गक्खड़, गरपिये, गंद, गगे, गंगे, गगनेचे, गबरानी, गगवानी, गगनेजे, गगड़, गंध, गम्भीर, गंड, गलोटे, गजेजई, गरगा, गलानिये, गगलानी, गाबड़ी, गावे, गांधी, गाले, गाड़ी, गाडखेल, गागडे, गिदड़ (गिरधर),

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and ...

गिलहरी, गिरहोत, गिलोतरे, गिलोरिया, गीला, ग्रंथ, गुरीजे, गुड्डी, गोरचंदे, गुरिये, गुरकाणी, गुट, गुलकानिये, गुलाटी, गुलरानी, गूजर, गूम्बर, गुट्टी, गुटतोड़, गुलबंर, गेरे, गोचिज, गोट, गोटारे, गोगिये, गोरुनरे, गोरुबाड़े, ग्रोवर, गोरसयानी, गोरायत, गोवारे, गोरतते, गोरे, गोरुवत्ते, ग्रेवल, गिलोटी।

(घ)

घघरे, धावरे, घीक, घुमार, घुलानिये, घुलाटिये, घुंड मोड़, घेही, घोरे, घोग, घोघे, घेटी, घिया, घुनोया, घोका, घला।

(च)

चटकारे, चलतर, चढ़े, चटयानिये, चकदे, चलेजे, चनोनिये, चचक, चचरे, चनन पोत्रे, चराई पोत्रे चगाये, चंदानी, चटाके, चकने, चनन, चाहल, चाबे धावले, चाँदना, चिलड़े, चिलाने, चुघ चुग, चुण्ड, चुगत्तिये, चुटकानी, चुकियारा, चोवरे चोथानी चुटानी, चोतड़े, चोटीकपा, चोटीपट, चोटमुरादे, चहगें, चकड़, चनवाद, चराये, चानने, चौभा, चोपे, चभरा, चोटलद।

(छ)

छलवेजे, छलडारा, छपरे, छकड़, छबीले, छहड़ा, छाबड़े, छूत, छताती, छैल, छोरे, छतोड़ा, छेतीया, छोकरे, छोड़े, छहरीया, छवंका।

(ज)

जमोवे, जनीचावला, जपके, जमरेजे, जगरान, जंडवाई, जदानी, जनवेजे, जतवानी, जन्नी, जाकन, जाका, जाजीखेल, जावा, जाजे, जांदनी, जाँजीचंद, जायखलाड़ी, जुगे, जुलाहे, जुनेजे, जेसिंघिये, जेसगही, जौरबानी, जोथे, जोखाने, जोसींगे, जैसघंडी, जौभी, जेरवाणी।

(झ)

झझर, झाँझरे, झंकारा, झांव, झांम, झाममरा, झमाणी।

(ट)

टक्कर, टक्कर टेक, टक्करेजे, टटयानी, टमोजिये, टाँडरे, टाटरेजे, टाढरा, टारिये, टेजे, टणाका, टंडन, टिकू।

(ठ)

ठक्कर, ठकनोजिये, ठकराल, ठठयारे, ठटई, ठुकरालिया, ठलानीवारे, ठाठभूरे, ठुकरेजा, ठांड, ठुड्डी, ठठरान, ठाकरे, ठोभरे।

(ड)

डड्ढी, डहे, डांग, डागरी, डड्डग, डावरे, डूंगर, ढूमरे, डंगडाई, डूमने, डोडे, डींगरे, डटाईये, डरेजे, डेवरी, डंडीडेजा, डडोहे, डोमेजे, डोडेजे, डोडेचा।

(ढ)

ढटावरजे, ढटावने, ढंगढेरे, ढवराला, ढाढवानिये, ढाभीणा, ढान्ढे, ढोलाणी, ढानिये, ढमला।

(त)

तपंगर, तंचे, तलवार, तकोजे, ततरेजे, तरवानी, तखतोला, तरीकिये, ताँगा, ताबड़े, तानेवली, ताकरा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

तातने, तुरीजे, तेजा, तोलवाटरीन, तरवानी, तनेजे तरपके, तलोजे, तमेजा, तांगिये, तगतोड, तागडे, तरोने, ताने, तांगेल, तारा, तिलुका, तीगरे, तिगडे, तिन्ने, तहरी, तोते, तोतलानी, तोबरेजे, तोतवाणी।

(थ)

थथडे, थरेजे, थाथरी।

(द)

दाहोरा, दरगन, दरजे, दमकतरे, दहरानी, दहोचा, दागडी, दादरे, दाहोले, दाहडे, दारले, दानिये, दावडे, दिगा, दुम्बवाल, दुधावने, दुरीजे, देजे, देमला, दोहुजे, दोबरेजे, दोल, दोए, दोखरे, दोपे, दहूजा, दय, दरगाना।

(ध)

धरमेरे, धमीजे, धगलानी, धरवानी, धरकबंदिये, धरकमार, धगवाली, धरजे, धतूरिये, धुमरे, धुनी, धुड़िया, धीगड़े, धोन (धवन), धरमोहा।

(न)

नचाती, नगई, नगरानी, नहगंदी, नरुले, नगंरेजे, नारग, नागपाल, नागिये, निवाणी, नागे, नागुंरु, नागरे, नालवा, नासवा, नण्देवाने, नासा, निवाहिये, निअेले, नेमके, नोगराही, नोरोजे, नोगरे।

(प)

पसरीचे, पवेजे, पनबाटी, पपडेजे, पंचनदे, परुथी, पजांवे, पजांजही, पंजरदे, पजंमने, परेयानी, पनेरट, परचन्डा, पंजे, पडतने, पनवानी, पहजा, पयलठे, पालसिया, पाहोय, पायेहजी, पाहूजे, पातलिया, पुनतेजे, पुजारे, पुलपलेजते, पुछी, पीडी, पेलानी, पोपले, पोपलाया, पोजे, पोपा, पोहली, पोतरे, पुणेजा, पटोदी, पमणोजा, पास्तोला, पान पोला, प्रियलाणी, पधीजा।

(फ)

फतोहे, फडके, फुटेले, फुलचढ़ा, फोबचे, फलानी, फेरिया, फासेला।

(ब)

बतरे, बठले, बड़ेजे, बजाज, बब्बर, बरेज़, बगाई, वदबेजा, बदानी, बाघले, बांबरी, बांगे, बुट्ढी, बेराया, बुधरेजे, बलुजे, वडयानी (बर्मन), बड़तने, बनेले, बलवानी, बलन्दी, बाचला, बदेराजे, बहदादी, बलाने, बबेजे, बग्गे, पेगानिचा, बलूचे, ब्रह्मबर, बागीचा, बायड, बबेजी, बुधेजा (बुधवार), वांदे, बांगपालिये, बाजूनेगे, बिहीजे, बिल्ले, बागवाती, बोटी, बेहड, बोटे, बोगरे, बोहरा, बटोक, बजाई।

(भ)

भगतानी, भवासनिये, भहकानी, भरमेजे, भडेजे, भत्ताईये, भंगरेजे, भठेजे, भटयानी, भकरिये, भमानी, भसीजे, भमरेजे, भभवानिये, भकनेजे, भनीजे, भवेसेजह, भभंवई, भभरानी, भटनेरी, भभराने, भगडे, भम्भेले, भडनाबी, भडारिये, भाटिया, भागजई, भातेफतहेजा, भानिये, भाठे, भिराणी, भिड, भालिये, भावने, भालने, भारवाही, भुडानी, भूंड्डी, भूतने, भुलाने, भुचानी, भुटेजा, भुड़िया, भूगी, भुड्डी, भूसे, भुसरी, भुटठे, भेदानी, भोरानिये, भोलाने, भोडे, भोरपालने, भादाणी भुसाणी।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R...

Funding: Tattva Heritage and ...

(म)

मरग, मगंचवने, महाबंद, मनगंदे, मनोचे, मगंवाने, मरकने, मलिक, महंदीरते, मगंलानी, मदान, मच्छर, मक्कड़, मनिहारा, मनह, मलूजे, मलहोत्रे, मतोके, मठरे, मणियार, मकरानी, महगड, मक्खीचूस, मनलूजस, मगंमछेर, मरवाईये, मडनेजे; मगलानी, महतानी, मंत्री, मनडे, मलीजे, मलर, मकानी, मानकटाहलें, मओंपोत्रे, मानिये, माटे, माठ, मक्मा, मरानमगों, मिठे, मुरादशादी, मुधीजे, मुखरे, मुझारने, मुरादे, मुहंयाल, मुजाल, मुखीजे, मुजराल, मोरांरण, मणूजा, माणकटेला, मेकमदन, मेदराह, मेंडे, मोलीवाडे, मोहरिये, मोगले, मोलरे, मोले, मोंगे, मोटे, मोरगी, मोरलियाँ, मुटेजा, मुंडा, मुराका, मीठाणी, मुदियाण, मुराला, मुलतानी।

(र)

रसेवट, रतरे, रखीजे, रंगबुले, रहूजा, रतेजा, रसेजा, रडी, रडवोहरे, रतवानी, रपकजी, रखेला, रलवाईये, राजपाल, रसगदी, रावल, राजाणी, राहीजी, रारिये, रायेमानवी, राजदे, रामगढ़ीया, राममलाणी, रखे, रुठीजे, रेलन रेली, रुमेला, रुरेजा, रहेजे, रचपातूनी, रमली, रचासोश्यानी, रहानिये, रमाई, रखरेजे, रढीजे, रजवानिये, रबारे, राजानी, राजवे, रायजेबी, राजोये, रादोढा, राजवेडा, रामदेव, रायवाला, रिछपाल, रिछपटोदा, रेवडी, रोकवाये, रोडी, रोडीराम, रोसीधारने।

(ल)

लकडे, लगांनी, लखानी, लंगड, लटानी, ललेत, लंहीजे, लोखिये, लखीजे (लीखा), लडानिये, लखडी, लमल्ली, लाखुडे, लातीपाल, लुंड (लूणा), लूथड़ा, लल्ले लुघेरे, लूम्बड़, वूमड़े, लुलेजे, लूनिये, लेखडे, लेई, लोटे, लोची, लोहाने, लोहिये, लोपाल, लोगन, लाखेड़ा, लवाणी, लूठेड़ा।

(व)

वकवादे, वरपाली, वधवे, वढ़खाने, वढ़ेरे, वते, वरमानी, वजसीजे, वनोचे, वरदाऊ, वल्हीटियर, वनतरेज, वझारे, वलीजे, वमरेजे वहेड, वधरानी, बयानरेजे, वतराने, वदईये, वखावने, वलडी, वटारे, बतरेजे, वधीजे, वखेड़े, वबीजे, वयानी, वलवेच, वडेरे, वातराने, वाधवा, बरोजा, वासदेव, वासन, वोगर, वेनीवखाली, वेहखाने, विरोजा, बेटा, बधेला, वैंड, वाधवानी, बलेगा, विरमाणी।

(श)

शक्करसिंघे, शेगरीं, शोरे।

(स)

सपडे, सखरे, सबाटिया, सघवानिये, संगीलोडी, संडोजे, सघवरे, सहबाई, सगाई, सवारेजई, सटोपा, सचदेव, सपरेजा, संगोटिए, सला, संदेसी, सटखेरे संगी, सजेया, सडाने, सचदेवा, सती, सजा, सब्बानी, सदा, सतीजे, सनीजे, सबेड, संधोज, सलूजे, सहूरिये, सखीवोटी, सावरी, साखपुरिये, सीकरी, सिक्के, सधूरिये, सुवंगी, सूरी, सुखीजे, सूतड़े, सुनता, सुगंधा, सेठी, सेतिये, सोनीं, सोढ़ी, सोभरेजे, सोसाडीन, सोढ़ा, सतीजा, सिंगी सिधवानी, सुदाना।

(ह)

हजरती, हंस, हफदमी, हडे, हंडोजे, हडप, हहोजे, हरयानी, हरणी, हरनेजे, हतिया हरमेजे, हरली, हुंडिया, हरेजा, हदिया हाडी, हिंदयानी, हिंडुजा, होडईय, होकड़े, होडा, होजे, हुंडे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

के अवसर पर

हार्दिक शुभ कामनाएँ :

सर्वश्री काशी ज्वैलर्स

(सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त)

वेल्थ टैक्स के लिए ज्वैलरी के मूल्यांकनकर्ता

सोने-चांदी आदि आभूषणों

का

एकमात्र विश्वसनीय प्रतिष्ठान

बिरहाना रोड, कानपुर-२०८ ००१

फोन दुकान :—२१२७४५, २१२८८७

निवास :—२१४५१४

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R

Funding: Tattva Heritage and ... Digitization: eGangotri

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषाँक

के अवसर पर

हार्दिक शुभ कामनाएँ

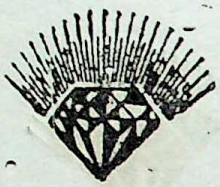

फोन : २१२५०३

卐 श्री नाथ ज्वैलर्स

स्वर्ण एवं चाँदी के आभूषणों

के लिए

विश्वसनीय प्रतिष्ठान

सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त

वेल्थ टैक्स के मूल्याँकन कर्ता

बिरहाना रोड, कानपुर-२० ८००१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सांस का पिंजरा किसी दिन टूट जायगा,
हर मुसाफिर राह में ही छूट जायगा।
हर किसी को प्यार कर लो, प्यारलो सबका,
क्या पता कब प्यार का घट फूट, जायगा।

खत्री हितैषी के स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक हेतु
शुभ कामनाओं सहित

खत्री अमर नाथ टण्डन (संरक्षक खत्री हितैषी)

卐

स्थापित : १८७०

देवी प्रसाद सुन्दर लाल खत्री

"सुन्दर-भवन" महात्मा गांधी मार्ग, कन्नौज (उ०प्र०)

फोन—८

तार—सुगन्ध

सुगन्धित तम्बाकू एवं विभिन्न प्रकार की सुगन्धियों के निर्माता

—: शाखा :—

सर्वश्री सुन्दर लाल श्याम लाल खत्री

अतरवाले

राजादरवाजा, वाराणसी

फोन :—६६८७३

जगत प्रसिद्ध इत्र शमामा प्रयोग में लायें।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Re...

Funding: Tattva Heritage and ...

जो व्यथायें प्रेरणा दें, उन व्यथाओं को दुलारो,
जूझकर कठिनाइयों से रंग जीवन का निखारो।
दीप बुझ बुझे कर जिया है, वृक्ष कट कट वीर बढ़ा है,
मृत्यु से जीवन मिले तो आरती उसकी उतारो है।

संगठन ही शक्ति है

खत्री हितैषी के स्वर्ण-जयन्ती पर खत्री समाज को बधाइयाँ

खत्री गोपीनाथ महेन्द्र (संरक्षक खत्री हितैषी)

नवीन एवं विश्वसनीय आभूषण का एकमात्र स्थान

सर्वश्री भगत राम जय नारायन ज्वैलर्स

बिरहाना रोड, कानपुर

भारत सरकार द्वारा मनोनीत मूल्याँकनकर्ता—वेल्थ टैक्स
एवं स्टेट ड्यूटी के अन्तर्गत

फोन—६३३०७, ४१४०५, ४२३२१

सौजन्य से—जातिगौरव खत्री रामनाथ महेन्द्र जी

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्रियों के गोत्र

—श्री लक्ष्मीनारायन टंडन और श्री प्रेमशंकर टंडन

प्राचीन आर्यों ने अपने को वर्णों में विभाजित कर लिया। यह सुविधा की दृष्टि से किया गया था। वर्णभेद के बाद उप-भेद प्रारम्भ हुए। खत्रियों (क्षत्रियो), सारस्वत ब्राह्मणों तथा अन्य आर्य-वंशीय ब्राह्मणों में पुरातन काल से वर्तमान काल तक एक रूप में मिलने वाले जो गोत्र तथा शाखा के आधार पर विभाजन हुए (जिन्हें हम गोत्रोच्चार या शाखोच्चार के नाम से कहते हैं) खत्रियों की प्राचीनता तथा आर्यों के सच्चे वंशज (क्षत्रिय) होने के पुष्ट प्रमाण हैं। परम्परा से विवाद आदि अवसरों पर गोत्रों का उच्चारण यह प्रमाणित करता है कि हमारा प्राचीन आर्य महर्षियों से उद्भव तथा सम्पर्क है। सम्पूर्ण आर्य जाति विभिन्न गोत्रों में विभाजित हैं। चारों वेदों के विशेष शाखाओं के विशेष सूत्रों को सर्वमान्य रूप से मानने तथा ग्रहण करने और उन विशेष शाखाओं तथा सूत्रों से सम्बन्धित तत्कालीन महर्षियों से सम्बन्ध-परंपरा की निरंतरता को अक्षुण्ण रखने के फल-स्वरूप ही आज खत्रियों की विभिन्न अल्लों के अपने विभिन्न गोत्र हैं। एक अल्ल-विशेष पुरातन-आर्य किस राजर्षि का वंशज है इसका भी ज्ञान हमें अपने गोत्रों से ज्ञात होता है।

प्राचीन आर्यों के वास्तविक वंशजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) का विभाजन गोत्र, प्रकार तथा शाखाओं के आधार पर जो और जैसा पुरातन काल में हुआ था, वैसा ही चला आता है। इससे एक बात और सिद्ध होती है और वह यह कि जिन वर्तमान जातियों का इन गोत्रों आदि से सम्पर्क और सम्बन्ध नहीं है वे प्राचीन आर्यों के वास्तविक वंशज नहीं है। शक, हूण आदि अनेक जातियाँ एक के बाद एक निरंतर बहुत काल तक आती रहीं और एक बार यहाँ आ जाने पर उन्होंने भारतवर्ष को ही अपनी मातृ भूमि बना लिया। यही नहीं, कालान्तर में उन्होंने यहाँ की संस्कृति, सभ्यता तथा रीति रिवाज आदि को अपना लिया और यहाँ के निवासियों से इतना घुल-मिल गए कि फिर अपना पुराना अस्तित्व ही भूल बैठे। इन्हीं प्राचीन जातियों ने आगे चल कर अपने अलग अलग राज्य भी स्थापित कर लिए और वे अपने को क्षत्रिय कहने लगे। इन क्षत्रिय कहलाने वालों के गोत्र आदि खत्रियों के समान तथा अनुरूप नहीं हैं। यह बात भी प्रमाणित करती है कि वास्तविक क्षत्रिय वर्ण, इन्हीं खत्रिय या खत्री लोगों का है। राजपूत तथा ठाकुर आदि क्षत्रिय आर्यों की वर्ण व्यवस्था वाले क्षत्रिय नहीं हैं। इस सम्बन्ध में अन्यत्र गोत्र के माने ही हैं वंश-परिचय या कुल। मनुस्मृति के आधार पर जिन आदि-ऋषियों से जो वंश-परंपरा चली वह उन्हीं मूल-पुरुषों के नाम से 'गोत्र' के रूप में प्रसिद्ध हुई। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जो द्विज थे, उनके भिन्न-भिन्न गोत्र अपने विभिन्न ब्राह्मण गुरु ब्रह्मर्षियों या मूल-पुरुषों के नाम पर चले। विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ तथा कश्यप यह आठ प्रमुख ब्रह्मर्षि थे। इसके अतिरिक्त अन्य ऋषि भी गोत्र-प्रवर्तक हुए हैं।

गोत्र के अतिरिक्त कुछ और शब्द बार-बार आयेंगे। अतः उनके विषय में भी जान लेना हमारे लिए लाभप्रद होगा। हमारे धर्म शास्त्रों के आधार पर एक ही गोत्र में जन्म लेकर भी गोत्रज दो प्रकार के होते हैं। एक तो गोत्रज सपिंड तथा दूसरा गोत्रज समानोदक। गोत्रज सपिंड उसे कहते हैं जब किसी के पूर्वज सात पीढ़ियों तक एक ही हों। अर्थात् सात पीढ़ियों तक को गोत्रज सपिंड तथा सात से ऊपर, अर्थात् चौदह पीढ़ियों तक वाले गोत्रज समानोदक कहे जाते हैं। इसी को गोतियाँ भी कहते हैं। वैसे ही 'प्रवर' शब्द भी आया है। गोत्र-प्रवर्तक महर्षियों की वे संताने जो मंत्र-द्रष्टा ऋषि हुए, वे गोत्रों के प्रवर कहलाए।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R...

Funding: Tattva Heritage and ... Digitization: eGangotri

यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के गोत्र एक होते हैं। बात यह है कि प्रथम दोनों के मूल-पुरुष एक ही थे और दूसरे प्राचीन समय में ब्राह्मण तथा क्षत्रियों में आपस में विवाह-सम्बन्ध होते थे। प्राचीन इतिहास में इसके एक नहीं अनेक उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त अपने कर्मों से भी ब्राह्मण क्षत्रिय तथा क्षत्रिय ब्राह्मण हो सकता था। क्षत्रिय विश्वामित्र ब्राह्मण कर्मा हो गये। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण होते हुए भी परशुराम तथा द्रोणाचार्य आदि क्षत्रिय-कर्मा थे। क्षत्रिय राजा ययाति को ब्राह्मण कुमारी शर्मिष्ठा ब्याही थी। अनेक ब्रह्मर्षियों ने क्षत्रिय कन्याओं को वरण किया था। ऐसे विवाह सम्बन्धों से जो वंश चले उसके मूल-पुरुष तो वही हुए जो गोत्र प्रवर्तक थे। यही कारण है कि ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के गोत्र एक हो सकते हैं तथा होते हैं। यह हम जानते ही हैं कि विवाहोपरान्त कन्या भी पति के परिवार, जाति-गोत्र की हो जाती है और उसकी संतान, पति के वर्ण तथा जाति की होती है।

उदाहरण के लिए भरद्वाज मुनि की वंशावली लिखी जाती है। भरद्वाज बृहस्पति के पुत्र थे, माता ममता थीं। (म० पु० ४६ अ):—

तस्मादेव भरद्वाजाद् ब्राह्मणः क्षत्रिय भुवि। इसी प्रकार भार्गव कुल की दो शाखायें हो गई हैं। (पं० श्याम बिहारी मिश्र का इतिहास) कौशिक गोत्री ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही हैं। ब्राह्मण तथा उपनिषद् भाग से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में ब्राह्मण और क्षत्रियों में घनिष्ठ सम्बन्ध था। क्षत्रियों का प्रवर पुरोहित का प्रवर ही होता था। श्रुति आज्ञा देती है कि :—

'पुरोहित प्रवरा वै राजन्याः।' आश्वालायनादि श्रोत सूत्र भी कहता है :—'पुरोहितस्य प्रवरेण राजा प्रवणीत इति विज्ञायते। पुरोहित प्रावणेन्' यहाँ तो ठीक ही है, किंतु क्षत्रियों के गोत्र के अनुसार भी गोत्र होते हैं।

हरितो युवनाश्वस्य हरितायत आत्मजाः।
ऐते ह्यङ्गिरसः पक्षेः-क्षात्रोपेता द्विजातयः॥

अर्थात् युवनाश्व के पुत्र हरित, उनके हारित अङ्गिरस पक्ष में यह क्षत्रोपेत द्विजाति कहलाते हैं (विष्णु पुराण की टीका ४।३।५)। हारित के विषय में लिखा है कि, "यतो हरिताद्धारिता आंगिरसो द्विजा हरित गोत्र प्रवराः" और हरित के आंगिरस अम्बरीत गण हरित गोत्र के प्रवर हैं। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि पुरुरवा के पुत्र, आयु, उनके राभ, उनके रभस तिनके गम्भीर और अक्रिय उत्पन्न हुए, जिनके यहाँ ब्रह्मवित् (ब्राह्मण) हुए।

राभस्य रभसः पुत्रो गम्भीर श्चक्रियस्तथा।
तस्य क्षेत्रे ब्रह्मजज्ञे शृणु वंशन्नामशः॥ (६।१७।१०)

और राजा पुरु से आगे बारहवें महाराज अप्रतिरथ उत्पन्न हुए। उनके विषय में विष्णु पुराण में लिखा है :—

अप्रतिरथः कण्वः तस्यापि मेधातिथिः यत् काण्वायन द्विजा वभूवुः।

अर्थात अप्रतिरथ के पुत्र कण्व, कण्व के मेधातिथि, जिनसे काण्वायन ब्रह्म की उत्पत्ति हुई। और

सुमति ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः।
तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कारवाद्याद्विजातयः॥
पुत्रोऽभूत्सुमते रैभ्योदुष्यन्तस्तत्सुतो मतः। (श्रीमद्भागत स्क० ६ अ० २०)

अर्थात् रंतिमार के सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ हुए अप्रतिरथ के पुत्र कण्व; तिनके मेधातिथि, उनके प्रस्कादिक क्षत्रियोवेत ब्राह्मण हुए। सुमति के पुत्र रैभ्या उनके दुष्यन्त हुए जो पुरु से १६ वीं पीढ़ी में दुष्यन्त थे। अतः उपर्युक्त लेख के अनुसार अजमीढ़ क्षत्रियके वंश में प्रिय मेधादिक क्षत्रियोवेत हुए। देखिये 'अजमीढिस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयोद्विजाः। (म० भा० ६।२१।२१)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

विष्णु पुराण और मत्स्य पुराण के मत से क्षत्रिय राजा अजमीढ़ की सप्तम पीढ़ी में मुद्गल का जन्म हुआ। उनसे मौद्गल्य नाम क्षेत्रोपेता ब्राह्मण हुए। यथा—

मुद्गलस्यापि मौद्गल्य क्षैत्रोपेता द्विजातयः।
ऐते ह्यङ्गिरसः पक्षे संस्थिताः कण्व मुद्गला॥

इसी प्रकार गर्ग से शिनि, शिनिसे गार्ग्य। यह गार्ग्य गण क्षत्रिय से ब्राह्मण में परिवर्तित हो गये। पुराणों में लिखा है कि गर्ग के भ्राता महावीर्य के उरुक्षय, इनके तीन पुत्र अयरुण पुष्करी और कपि हुए। तीनों क्षत्रिय होकर तप भजन आदि के प्रभाव से ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए।

अंगिरा ब्रह्मा के द्वितीय पुत्र हैं। इनकी भार्या का नाम, शुभा था, जिनके बृहस्पति, भानुमती, एका इत्यादि छः कन्यायें थीं। खत्रियों का गोत्र अंगिरस है। संस्कृत में 'ख' के स्थान में 'क्ष' मिलेगा। देखिये—

सोमया नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः।
सोमयास्तु कवेः पुत्राः हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुता॥ (मनु० अ० ३)

अर्थात् क्षत्रियों के पूर्वज हविर्भुज अङ्गिरस के बेटे हैं और हविर्भुज नाम अग्नि का है।

विधः सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम्।
अन्यासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम्॥
ऋग्वेद भी कहता है "त्वमग्ने प्रथमोऽङ्गिराः॥

अर्थात् हे अग्नि! तू पहिले अङ्गिरस है। अङ्गिरस के वंशवालों का नाम ही अङ्गिरस हुआ है। सारांश यह कि श्रुतिस्मृति आदि के अनुसार आङ्गिरस गोत्री खत्री अग्निवंशी क्षत्रिय हैं। भविष्योत्तर पुराण के ४१ वें अध्याय में अग्नि वंश के विषय में है—

ततः प्रभृति ते सर्व्वे क्षत्रिया द्विजपालितः।
त्यक्त क्षत्रिय धर्म्मणो वणिग्वृत्ति समाश्रिताः॥
ते सूर्य शशि वंशीया अग्नि वंश समुद्भवा।
उत्तमाः क्षत्रियाः ख्याताः तादितोहमः स्मृताः॥

यजमानों के लड़के जो परशुराम के युद्ध में सारस्वतों से रक्षा किये गये थे तथा जो (आपत्ति के कारण) व्यापार करने लगे। वे सूर्य, चन्द्र और अग्नि वंश में हैं तथा वे श्रेष्ठ क्षत्रिय हैं और इनसे इतर मध्यम हैं वा उत्तम क्षत्रिय नहीं हैं।

यहाँ दर्पण की नाईं पुराण ने खोल कर दिखा, दिया कि खत्री, सूर्य, चन्द्र और अग्नि वंश के श्रेष्ठ क्षत्रिय हैं। खन्ने और टन्डन आदि अग्नि वंश में हैं।

कौशाल्य और कौशल्य गोत्र कहने में बड़ी भूल हो सकती है और लोग इन गोत्रों के विषय में पूछ बैठते हैं। अतः प्रमाण दिया जाता है।

अतः परमगस्त्यस्य वक्ष्ये वंशोद्भवान् द्विजान्
अगस्त्यः करम्भयः कौशाल्याः करटास्तथा॥
सुमेधसो मयोभुवस्तथा गान्धार कायणाः। (मत्स्य पुराण)

कौशिल्य ऋषि गोत्र प्रवर्तक हुए हैं। नागर खण्ड १०८।१८। कौशल्य—अगस्त्यगण में हैं (गो० प्र० नि० व० पृ० १२८)। क्षत्रियाणामात्मीय प्रवरः पुरोहित प्रवरश्चोपदिष्टः पुरोहित गौत्रैः पुरोहितप्रवरैश्च सह क्षत्रियाणम् विवाहोनोपदिष्टः। (प्रवर मन्जरी)

पुरोहितों के प्रवरानुसार ही क्षत्रियों के प्रवर होते हैं। मेधातिथि' विज्ञानेम्वरादिकों का भी निचोड़ सिद्धान्त यही है कि "विवाहेतु पुरोहित गोत्र प्रवर ग्रह ऐविति" विवाह में पुरोहितों (जो अपने वंश के हों) के गोत्र का ही ग्रहण और उच्चारण करना चाहिए। अतः जिसे अपना गोत्र याद न हो तो अपने जो पुरोहित हों उनका गोत्र लेना जैसे वत्स कुल के सेठों का गोत्र वत्स और कुमडिये पुरोहित का भी वत्स गोत्र है। वही लेना चाहिये।

[स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

खत्री हितैषी १९३६–१९८७]

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Re...

Funding: Tattva Heritage and ... Bangalore.

गोत्रोत्पत्ति

उत्पत्ति—ब्रह्मा से—भृगु, २ अंगिराः ३ मरीचि, ४ अत्रिः ।

नम्बर (१) भृगुवंश १ च्यवन २ वीतहव्य (कश्यपवंश) ३ मित्रयु (अत्रिवंश) ४ वेन (अत्रिवंश) नम्बर २, ३, ४ भृगोः कृत्रिमपुत्रः च्यवन के—१ आप्नुवान् दूसरे प्रमति । आप्नुवान् के उर्व तिनके ऋचीक; उनके जगदग्नि (गोत्रकार-सप्तर्षि) तिनके १ वत्सः २ विद ३ आर्ष्टिषेण । वेण के अनूप प्रथम वंश चला ।

नम्बर (२) अंगिरावंश—१ उचथ्यः २ अयास्यः ३ बामदेव ४ गौतम ५ संवर्त्तः ६ उशिजः ७ बृहस्पतिः ८ पृषदश्वः ९ कण्वः १० मुदलः ११ संस्कृतिः १२ पुरुकुत्सः १३ अम्बरीषः ।

नम्बर १ के दीर्घात्मा वा गौतम (गो० स०) इनके १ कक्षीवान् इनके कौमंड २ करेणुपाल ३ बामदेव के बृहदकथः ४ गौतम इनके शरद्वान । नम्बर १, ३ और ४ के पृथग्वंश चले ।

नम्बर ७ बृहस्पति—भरद्वाज (गो० स०) इनके १ अग्निवेश २ वान्दनः इनके मातवचसः तिनके ऋक्षः । ३ गर्गः इनके शिनिः । ४ आमहीय इनके कपिः । नम्बर २, ३ और ४ के पृथग्वंश ।

नम्बर ८ पृषदश्वः कृ० पु० मरीचि वंश्यः इनके रथीतर तिनके अष्टादंष्ट्रः पृथग्वंश नम्बर ९ कण्वः कृ० पु० अत्रि तिनके मेधातिथिः (पृ० वं०) नम्बर १० मुद्गल और ११ संस्कृति दोनों के कृ० पु० अत्रिवंश्य । नम्बर १२ पुरुकुत्स कृ० पु० अत्रि, तिनके त्रसदस्यु इनके संभूति इनके विष्णु वृद्धि (पृ० वं०) नम्बर १३ अम्बरीष कृ० पु० मरीचि वंश्य इनके युवनाश्व इनके हरित पृथग्वंश ।

✱ नोट—गोत्र प्रवर निबन्धकदम्ब से ।

गो० गोत्र प्रवर्तक । स० = सप्तर्षि । कृ० = कृत्रिमपुत्र । श्रीमान पण्डित रामयत्न चतुर्वेदी द्वारा संशोधित धन्यवाद !

गोत्र प्रवर निर्णय—(प्रवर मञ्जरी) से

गोत्र	वेद	उपवेद	शाखा	सूत्र	प्रवर	शिखा	पाद	कैफियत
कश्यप	साम	गांधर्व	कौतुमी	गोभिल	कश्यप, अवत्सार, नैध्रुव	बाम	बाम	...
काश्यप	,,	,,	,,	,,	काश्यप, अवत्सार, नैध्रुव	,,	,,	कश्यपवंश
कौशिक	,,	,,	,,	,,	देवरात अघमर्षण, कौशिक	,,	,,	...
कुशिक	,,	,,	,,	,,	कुशिक, कौशिक बन्धुल	,,	,,	...
भारद्वाज	,,	,,	,,	,,	अंगिरा, बार्हस्पत्य, भारद्वाज	,,	,,	भारद्वाजाङ्गिरस
वत्स	,,	,,	,,	,,	भार्गव च्यवन, आप्नवान, और्व, जमदग्न्य	,,	,,	भृगुगण
शांडिल्य	,,	,,	,,	,,	शांडिल्य, असित देवल	,,	,,	...

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

गोत्र	वेद	उपवेद	शाखा	सूत्र	प्रवर	शिखा	पाद	कैफियत
कात्यायन	साम	गांधर्व	कौतुमी	कात्यायन	अत्रि, भृगु, वशिष्ठ	दाम	बाम	...
भरद्वाज	,,	,,	,,	,,	अंगिरा, वार्हस्पत भारद्वाज	,,	,,	...
उपमन्यु	,,	,,	,,	,,	वशिष्ठ, जमदग्न्य, उरमन्यु या भार्गव, वशिष्ठ उपमन्यु	,,	,,	...
गौतम	,,	,,	,,	,,	अंगिरस वात्स, गौतमया गौतम, वशिष्ठ, वार्हस्पत्य	दहिन	दहिन	...
गर्ग	,,	,,	,,	,,	गार्ग्य, कौस्तुभ, माराड्य या मांड्य	,,	,,	भारद्वाजङ्गिरस
मौद्गल	,,	,,	गोभिल	,,	मौद्गल, भार्गव, च्यवन, अप्नवान, जमदग्नि	,,	,,	...
धनञ्जय	,,	,,	,,	,,	धनञ्जय, मधुछन्द, विश्वामित्र	,,	,,	...
सांकृत्य	,,	,,	,,	,,	सांकृत, सांख्यायन, किल अव्याहारात्रि सांकृतयः	,,	,,	धर्म प्रदीप
आत्रि	यजुर्वेद	धनुर्वेद	मध्यन्दिनी	कात्यायन	विश्वामित्र, अघमर्षण, कौशिक, अत्र्यात्रेयशातातयाः	,,	,,	...
वशिष्ठ	,,	,,	,,	,,	एका वशिष्ठा और वशिष्ठ, शक्ति और पराशर	,,	,,	...
पराशर	,,	,,	,,	,,	पराशर, वशिष्ठ, शक्ति	,,	,,	...
हंसलस	,,	,,	,,	,,	भार्गव, वाध्र्यश्व, दिवोदास	,,	,,	...
कौशाल्य	,,	,,	,,	,,	आगस्त्य, महेन्द्र मायोभुव	,,	,,	लौगाक्षी कात्यायनोल्कोः
कौशल्य	,,	,,	,,	,,	अंगिरा, सवचोतंर्थ्य, उशिज	,,	,,	...
कौशल्य	,,	,,	,,	,,	अगस्त्य, माहेन्द्र, मायोभुव	,,	,,	...
आंगिरस	,,	,,	,,	,,	अंगिरस वशिष्ठ, बार्हस्पत्य	,,	,,	...
कुत्स	,,	,,	,,	,,	अंगिरा मानधाता, कुत्स	,,	,,	केवलाङ्गिरस
भार्गव	,,	,,	,,	,,	च्यवन, भार्गव, अप्नवान, और्व जमदग्नि	,,	,,	...
कुशिक	,,	,,	,,	,,	विश्वामित्र, अघमर्षण, कौशिक	,,	,,	...
कपि	,,	,,	,,	,,	आंगिरस, अमहय्यौ, रूक्ष्य	,,	,,	...
असिल	,,	,,	,,	,,	असिल, वाशिल, कौशल्य	,,	,,	...
श्रिगिन्निता	ऋग्वेद	...	अश्वलायन	आश्वलायन	...	बाम	बाम	...
अलोष्य या (औलस)					औतत्थ्य, आंगिरस, औशिज			

CC-0. Bhagavad Ramanuja National P...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

मान्य देवी - देवता

—श्री लक्ष्मी नारायण टंडन (लखनऊ)

वैदिक तथा ब्राह्मण धर्म के मानने वाले मूर्ति-पूजक हिन्दू निम्नलिखित देवी-देवताओं का पूजन करते हैं।

१ ब्रह्मा—सृष्टि तथा ब्रह्मांड के निर्माता ब्रह्मा जी है। त्रिदेवों में इनका प्रथम स्थान है। इनके चार मुख हैं। इन्हीं चारों मुखों से चार वेदो का प्रादुर्भाव हुआ। भगवान की रजोगुणी शक्ति जो निर्माण करती है, वही ब्रह्मा हुई।

२ विष्णु—त्रिदेवों में सबसे अधिक महत्व विष्णु का है। वह संसार के रक्षक हैं। हिन्दुओं में ब्रह्मा जी की पूजा से अधिक पूजा का प्रचार इन्हीं देव का हैं। ईश्वर की सतोगुणी रक्षा करने वाली शक्ति का नाम ही विष्णु है।

३ शिव या महादेव—त्रिदेवों में तीसरे देव शिब हैं। आप संसार के नाश के देवता हैं। ईश्वर की वह तमोगुणी महान शक्ति जो अंधकार अथवा अज्ञान के संहार का काम करती हैं, उसका नाम शिव है। शिव—भक्ति का प्रचार भी भारत के हिन्दुओं में अत्यधिक है।

अस्तु हमने देखा कि परब्रह्म परमात्मा ही सर्जना, रक्षा तथा संहार के स्वामी हैं और उसी ईश्वर के यह तीन नाम ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश हैं। प्रत्येक देव के अलग अलग कार्य की भाँति उनके रंग तथा विशेषताएँ भी भिन्न भिन्न हैं। यह सब ईश्वर के गुणों तथा विशेषताओं के अलंकारिक रूप हैं। ब्रह्मा रक्त (लाल) रंग के, विष्णु श्याम रंग के तथा शिव श्वेत रंग के है। शिव को नीलकंठ भी कहते हैं क्योंकि समुद्र—मन्थन के समय निकले विष का पान करके उन्होंने देव तथा दानवों की रक्षा की है। समस्त दूषणों तथा पापों के शमन करने की शक्ति जिनमें हो वह नीलकण्ठ है। कल्याण—कर्त्ता शिव का निवास स्थान कैलाश पर्वत हैं। सर्प उनके शरीर में लिपटे रहते हैं। उनकी जटा पर गङ्गा जी तथा मस्तक पर चन्द्रमा सुशोभित है। वन्य मूल, फूल फल ही उन्हें प्रिय हैं। लिंग चिन्ह स्वरूप का प्रतीक है। क्योंकि सृजन शक्ति शरीर के इसी अंग में सन्निहित है। शिवजी के अनेक नाम हैं। शैवों का गढ़ काशी है। शिवपुराण तथा उत्तम पुराण शैवों के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। नगर तथा ग्राम के प्रत्येक मुहल्ले तथा बस्ती में अवश्य ही एक आध शिवालय होगा जहाँ समस्त हिन्दू शिव जी की पूजा बेल-पत्र, धतूरा, भाँग फूलों तथा फलों से करते हैं। शिव भक्त रुद्राक्ष की माला धारण करते हैं। द्वादश ज्योर्तिलिंग भारत में हैं। इन पर आगे लिखा जायगा। प्रत्येक धर्मात्मा हिन्दू नर-नारी शिवरात्रि का व्रत रखता है। मन्दिरों में बमभोला शंकर की ध्वनि के साथ घण्टों की ध्वनि आपको सर्वत्र सुनाई देगी।

ऐसा नहीं है कि जो वैष्णव हों वह शिव की पूजा न करें, यह पहले ही कहा जा चुका है। किन्तु वैष्णवों और शाक्तों में कुछ भेद होता है जो विशेष महत्व का होता है। १. वैष्णव कभी मांस का स्पर्श नहीं करेगा; पर शैवों में कुछ को मांस खाने में आपत्ति नहीं। कुछ तो भंग तथा मदिरा तक पान करने में नहीं हिचकते। वैष्णव धर्म में मदिरा पान वर्जित है। २. शैव त्रिपुण्ड लगाते हैं। मस्तक में सीधी रेखायें भस्म या चंदन की लगाते हैं किन्तु वैष्णव यदि रामानन्दी हुए तो सीधी तीन रेखायें और यदि कृष्ण भक्त वैष्णव हुए तो दो रेखाएँ खड़ी मस्तक पर लगाते हैं। ३. शैव रुद्राक्ष की तथा वैष्णव तुलसी की माला का प्रयोग करते हैं। ४. शैवों में रहस्यात्मकता तथा एकान्त या मरघट आदि को अधिक मान्यता दी जाती है जब कि वैष्णवों में उत्सव और आनन्द में भाग लेने का आदेश है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अतिरिक्त वैदिक युग के देवताओं का भी पूजन खत्रियों के यहाँ होता है।

१. इन्द्र या वरुण जल के देवता हैं, समुद्र के मालिक हैं, बिजली, बादल तथा वर्षा के स्वामी है। यह

Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सत्य है कि उनकी पूजा विष्णु तथा शिव की भाँति प्रचलित नहीं है किन्तु विवाहादि शुभ अवसरों पर इन्द्र आदि देवों की पूजा के निमित्त वेद-मन्त्रों का उच्चारण होता है।

१. अग्नि देव भी वैदिक देवता हैं। शुभ कार्यों तथा संस्कारों के समय अग्नि देव की पूजा होती है। यज्ञ तथा हवन तो हमारे यहां प्रत्येक शुभ कार्य में अवश्य ही होते हैं।

प्राचीन समय में प्रकृति के समस्त अवयवों के प्रति कृतज्ञता तथा श्रद्धा का भाव प्रकट करने के लिये हिन्दुओं ने उन्हें देव रूप दिया। यही कारण है कि वायु देवता, सूर्य तथा चन्द्रमा आदि सभी हमारे यहाँ देव हैं।

शक्ति के भक्त, दुर्गा, काली आदि विभिन्न नामों से शक्ति की पूजा करते हैं।

राम तथा कृष्ण के मन्दिरों की तो भरमार प्रत्येक नगर तथा ग्राम में मिलती है।

हनुमान जी की पूजा भी हिन्दुओं में व्यापक है। उनके मन्दिर प्रायः सब कहीं मिलेंगे। वह शक्ति, ब्रह्मचर्य, सेवा भाव तथा वीरता के प्रतीक हैं। उन्हें वायु पुत्र कहा जाता है। प्रत्येक अखाड़े में जहाँ पहलवान कुश्ती लड़ते हैं तथा प्रत्येक कूप के निकट उनका मन्दिर तथा आला होता है। वह भय तथा संकट में हमारी रक्षा करने वाले माने जाते हैं।

गणेश जी हमारे यहाँ विघ्न-हरण, मुद-मंगलदाता, ज्ञान तथा विद्या-दायक, तथा पाप-विनाशक के रूप में पूजे जाते है। कोई भी शुभ कार्य बिना उनकी पूजा के सम्पन्न नहीं हो सकता। बच्चों की पढ़ाई प्रारम्भ करने पर उनकी तख्ती पुजाई जाती है तब उस पर श्री गणेशायनमः लिखा जाता है। यहीं नहीं, प्रत्येक नये खाते या घर में गणेश याद किये जाते हैं। कवि, वेदान्ती, विद्वान सभी अपने कार्यों को सफलतापूर्वक पूरा कर देने के लिये पहले गणेश वन्दना करते हैं। राजा, व्यापारी सभी तो उनकी पूजा करते हैं। प्रत्येक मास की शुक्ल पक्ष की गणेश-चौथ पर स्त्रियाँ व्रत रहती हैं। माघ मास की गणेशचौथ तो अत्यन्त शुभ मानी जाती है। उस दिन संकट तेवता के नाम से उनकी पूजा होती है। उनके चार हाथों में गदा, चक्र, पुस्तक तथा मोदक होता है। मोदक उन्हें बहुत प्रिय है। उनका मस्तक हाथी का है और चूहा उनका वाहन है।

कहीं कहीं भैरव या भैरों जी की भी पूजा होती हैं। कुत्ता उनका साथी है। खत्रियों में उनके भक्त भी हैं। भैरव भक्त माँस मदिरा से परहेज नहीं करते।

नवग्रहों की पूजा संस्कारों के समय होती है। सूर्य, नवग्रहों में प्रमुख हैं। कोई भी धार्मिक कृत्य बिना सूर्य की पूजा के पूर्ण नहीं होता। सूर्य का महत्व पृथ्वी तथा उसके जीवों के लिए कितना है तथा मनुष्यों के भाग्य पर नवग्रहों का प्रभाव ज्योतिष के अनुसार कितना पड़ता है, यह सर्वविदित है। सेठों के यहाँ गर्भवती स्त्री के लिए "बुड्ढे बाबू" की पूजा वास्तव में सूर्य की पूजा है। यों भी प्रत्येक दिन स्नान के बाद हिन्दू सूर्य को अर्घ्य देते हैं। सूर्य प्राणायाम तथा सूर्य नमस्कार भी पूजा तथा व्यायाम के प्रमुख अग हैं। वैसे ही चन्द्रमा का नवग्रहों में द्वितीय स्थान है। जैसे रविवार को हिन्दू व्रत रहते हैं, वैसे ही चन्द्रवार को भी व्रत रखते हैं। प्रत्येक संस्कार में सूर्य की भाँति चन्द्र की भी पूजा अनिवार्य है। करवाचौथ शरद-पूनो, गणेश-चौथ आदि में चन्द्रमा ही का पूजन होता है। सूर्य, बल, शक्ति, प्रताप तथा तेज के दाता हैं। रुद्र या मंगल युद्ध के देवता हैं। बुद्ध बुद्धि तथा विद्या के देवता हैं। वृहस्पति सम्पत्ति समृद्धि तथा वाक्शक्ति के देवता हैं। शुक्र धन, प्रतिभा, प्रेम तथा वैभव के देवता हैं। शनि, राहु तथा केतु अशुभ ग्रह समझे जाते है। संस्कारों के समय इनका पूजन होता है। शनि, राहु तथा केतु का इस भय से पूजन किया जाता है कि इनकी कोप-दृष्टि न पड़े। ये देव रुष्ट न हों।

सप्तर्षियों की भी पूजा होती है। अन्य स्थानीय देवी-देवताओं की भी विभिन्न नामों से पूजा खत्रियों में होती है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

नवग्रहों के अतिरिक्त पंचतत्वों की भी पूजा खत्री जाति के संस्कारों तथा अन्य धार्मिक कृत्यों के अवसर पर होती है। अग्नि तथा जल की पूजा विशेष रूप से होती है। अग्नि देव की संतुष्टि के लिए यज्ञ तथा हवन करना प्रत्येक उत्सव में आवश्यक होता है। केवल खत्री ही नहीं समस्त हिंदू जाति में अग्नि की पूजा होती है। प्रत्येक धर्म-भीरु हिन्दू प्रातः तथा सायं अग्निहोत्र करता है अर्थात् अग्नि की पूजा करता तथा भेंट चढ़ाता है। भोजन करने के पश्चात् एक रोटी तथा थोड़ा सा दाल चावल चूल्हे में डाल दिया जाता है। यह अग्नि देव को समर्पण है। भोजन करने के पूर्व अग्नि में यह अन्न अवश्य हवन के रूप में डाला जाता है। अब भी कुछ पुराने विचारों के वृद्ध धार्मिक कृत्य पंच गहायज्ञ करते हैं। नगरकोट में ज्वाला की ज्योति की पूजा, होलिका-दहन में अग्नि की पूजा, दुर्गाष्टमी आदि दिनों पर प्रचलित पूजा सब अग्निदेव की ही पूजा है। विवाह-संस्कार पर तो केवल हवन और यज्ञ ही नहीं होता है वरन् अग्निदेव पति तथा पत्नी के सम्बन्ध के साक्षी स्वरूप माने जाते हैं। एक विशेष प्रकार की लकड़ी से अग्नि उत्पन्न करके जो 'अग्नि आधान' कहलाती है, अनेक संस्कारों में अग्नि देव की पूजा रूपी हवन होता है। प्राचीन समय में ही ऋषि मुनि नित्य हवन करते थे। और अब भी कुछ धर्मात्मा हिन्दू नित्य हवन करते हैं। हवनों की उपयोगिता के संबंध में हमें कुछ नहीं कहना है। उसमे सभी पढ़े-लिखे परिचित हैं। हमारे धर्म-ग्रंथों में अग्नि पूजा का बड़ा महत्व लिखा है। प्राचीन आर्य तो अग्नि, जल आदि प्रकृति के अवयवों के पूजक थे ही उनके वंशज होने के नाते समस्त रीति रिवाज हम अपनाये हुए हैं।

अग्नि के अतिरिक्त जल की पूजा भी प्रत्येक धार्मिक कृत्य में होती है। इन्द्र की पूजा के संबंध में लिखा ही जा चुका है। इन्द्र, जल तथा मेघों के देवता और राजा हैं। पवित्र मंत्रों द्वारा उनका आवाहन संस्कारों के अवसर पर होता है। गङ्गासागर में स्नान का महत्व (मकर संक्राति) सर्वविदित ही है। गङ्गा जी हमारे यहाँ माता कहलाती हैं। महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा, ताप्ती, यमुना, सरस्वती, सरयू आदि सब नदियाँ हमारे यहाँ पवित्र मानी जाती हैं। बिशेष रूप से गोदावरी, नर्मदा तथा यमुना तो परम पवित्र मानी जाती हैं। संस्कारों के समय वैदिक मंत्रों द्वारा इन पवित्र नदियों का आवाहन किया जाता है। इसका तात्पर्य क्या है? यही कि हम जल की पूजा करते हैं। जल के देवता, वरुण देव की पूजा समुद्र-स्नान का भी हमारे यहाँ बड़ा महत्व है। जगन्नाथपुरी में "समुद्रद्वार" तथा दक्षिण में कन्या-कुमारी आदि में समुद्र-स्नान के महत्व का क्या कहना है। सारस्वत ऋषियों ने सरस्वती नदी के तट पर ही वेदों का पठन-पाठन किया है। गङ्गा-तट पर रह कर प्राचीन ऋषियों ने वेद तथा पुराणादि धर्म-ग्रंथों का प्रचार और प्रसार किया है। सरस्वती नदी के तट पर वेदों का प्रचार हुआ था। इसलिए सरस्वती देवी के रूप में हमारे यहाँ विद्या, ज्ञान तथा कला की देवी मानी गयीं। आज भी वैसे ही गङ्गा तट पर अनेक संस्कार किये जाते हैं। मृत्यु के समय गङ्गा जल तथा तुलसी-दल का प्रयोग होता है। मृत्यु के पश्चात् अस्थियाँ गङ्गा जल में ही विसर्जित होती हैं। गङ्गा से कृषकों का कितना लाभ होता था, गङ्गा आवागमन का उन दिनों कितनी अच्छी साधन थी, गङ्गा-जल कितना स्वास्थ्य वर्धक है, आदि भावों से कृतज्ञता के रूप में हिन्दुओं ने उनकी पूजा प्रारम्भ की। हम कितने उदार तथा महान थे। उपकारी के लिए कृतज्ञता का भाव प्रकट करना हमारी प्रकृति में था, वह जड़ हो या चेतन।

★ विश्वास करो ★

सुख चाहते हो, दूसरों को सुख दो; मान चाहते हो, मान प्रदान करो; हित चाहते हो, हित करो और बुराई चाहते हो तो बुराई करो। याद रक्खो, जैसा बीज बोओगे वैसा ही फल मिलेगा। फल की न्यूनाधिकता जमीन के अनुसार होगी।

Research Institute, Melukote Collection.

गोत्रोत्पत्ति ठीक से समझने के लिये हम चंद्रवंश की वंशावली ब्रह्मा से देते हैं क्योंकि विष्णु पुराण में लिखा है :—

ब्रह्म क्षत्रस्य यो योनिर्वंशे राजर्षि सत्कृतः ।
क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्था प्राप्स्यते कलौ ॥

चंद्रवंश

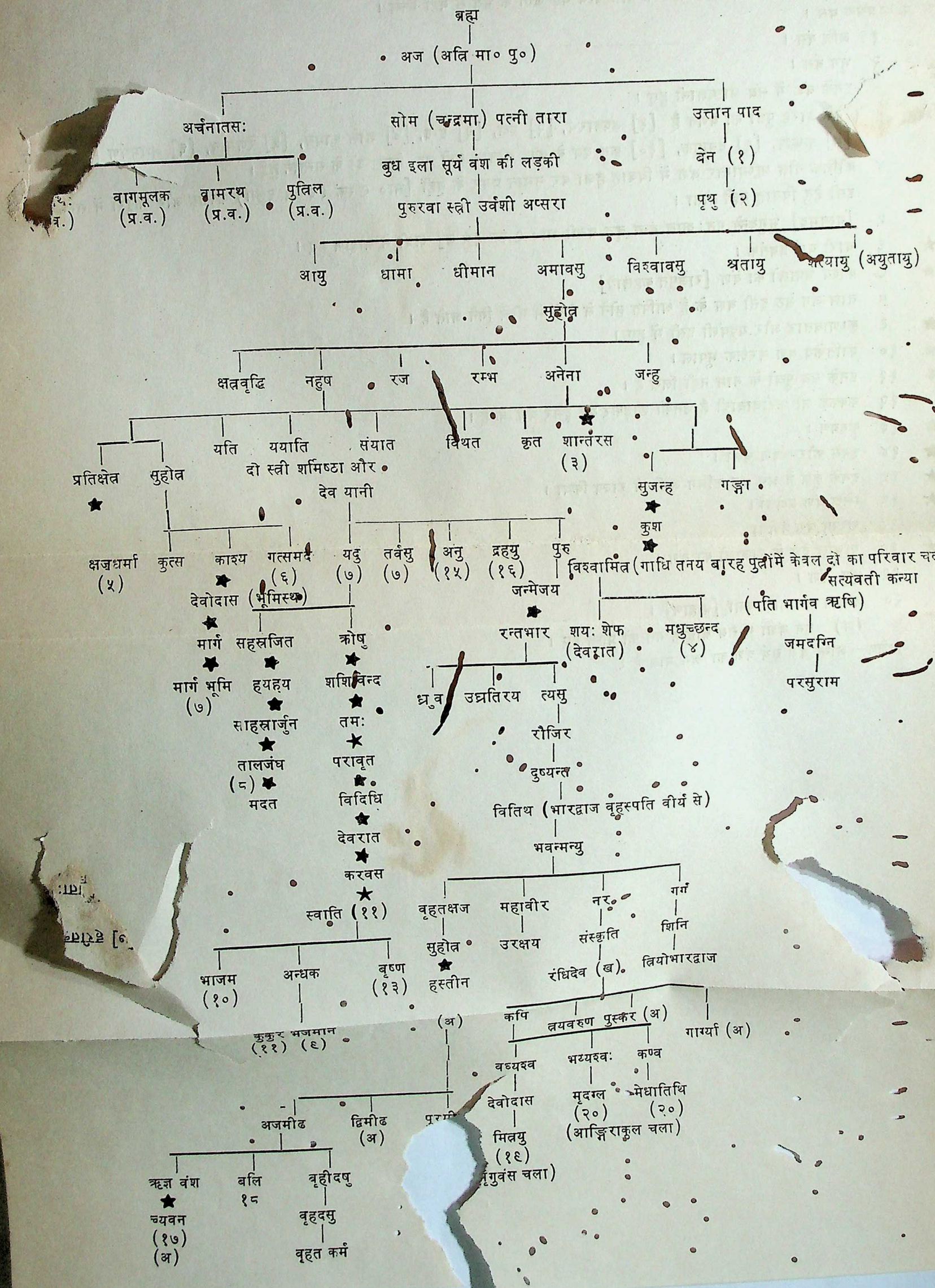

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.
Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सूर्य वंश

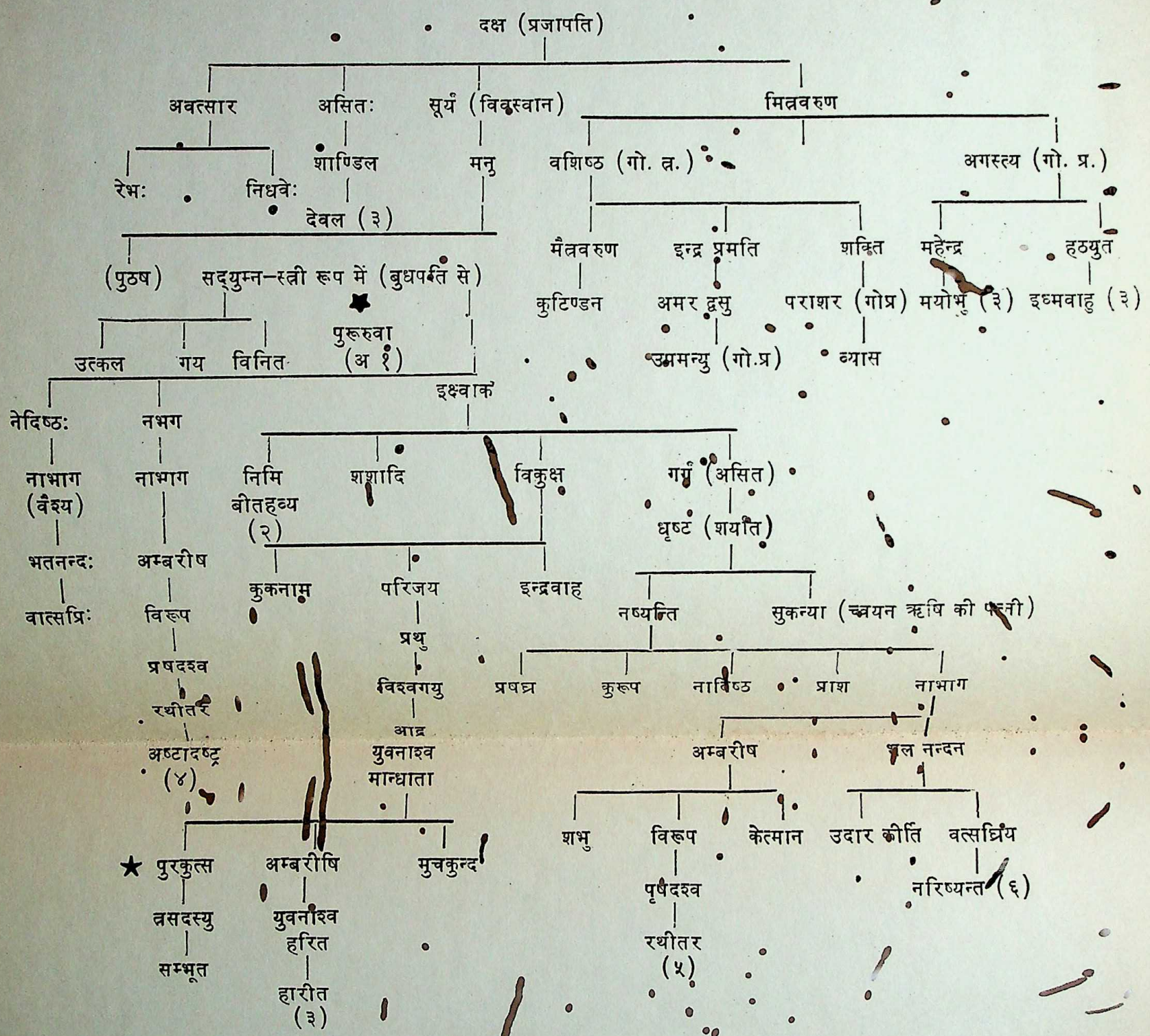

नोट

★ ऊपर की और नीचे की कई पीढ़ियों के बीच के नाम ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से नहीं लिखे ।

(अ) १ इस वंश के आगे के लोग ब्राह्मण हुए (भागवत पु.) ।

२ भृगु कुल वंश में हुए ।

३ प्रथक वंश ।

४ अंगिरा कुल में चले गये ।

★ पुरकुत्स और अम्बरीषि कृत्रिम पुत्र थे

५ इस वंश के क्षत्रिय क्षत्रियों पेत ब्राह्मण कहलाये (मत्स्य और विष्णु पुराण) ।

६ इन्हें अंगिरस ऋषि ने यज्ञ कराया इस वंश के वंशधर खन्ने इस वंश के हैं [भा. स्व. ९ अ २ ।]

उपरोक्त वंशावली श्रीकृष्णदास खेमराज बम्बई में सन् १९५६ की छपी रामायण–विष्णु पुराण और मत्स्य पुराण के अनुसार है किन्हीं-२ पुराणों में एक आध पीढ़ी अधिक या कम है परन्तु ऊपर जो नोट दिये हैं उनमें कोई अन्तर नहीं ।

नोट यह तालिकायें डा० प्रेम शंकर टंडन द्वारा संकलित की गई हैं जिसके लिये संपादक मण्डल उनका आभारी हैं ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.
Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

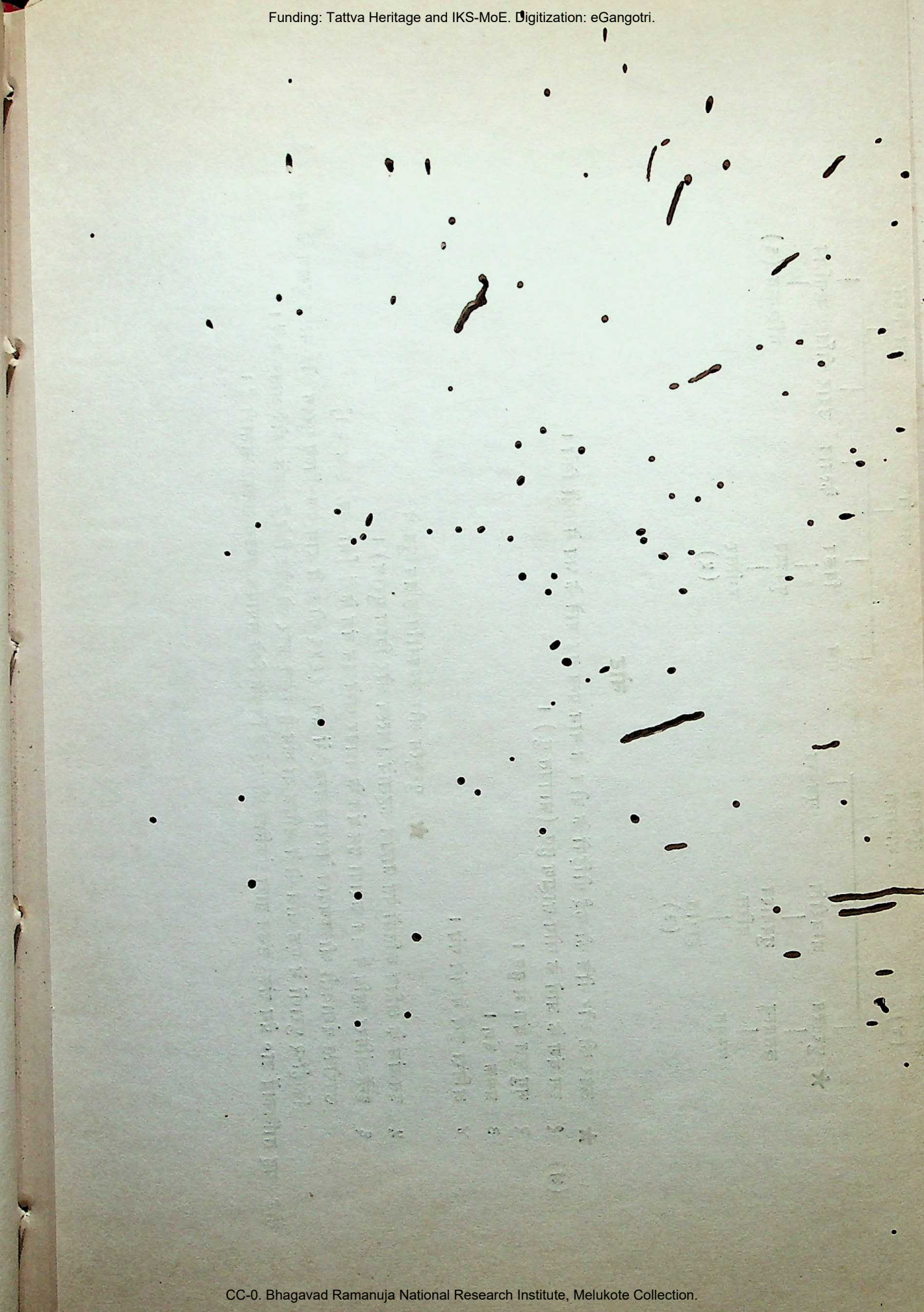

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

...ge and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

तड़बन्दी

'ढाई घर' 'चार चर' 'बारह घर' आदि का भेद अलाउद्दीन खिलजी के समय की घटना से सम्बन्धित बताया जाता है। इसके पूर्व खत्रियों में किसी प्रकार की तड़बन्दी होने का प्रमाण नहीं मिलता है। 'अशरफ-उल-तारीख' में इससे सम्बन्धित घटना का वर्णन किया गया है।

खत्री शूर वीर और योद्धा जाति रही है। जीवकोपार्जन हेतु उस समय अधिकांश खत्री सैनिक-वृत्ति को ही अपनाते थे। पूरी की पूरी सेना खत्रियों की होती थी। अलाउद्दीन खिलजी के समय में गुजरात के युद्ध में दिल्ली प्रदेश के हजारों खत्री मारे गये। किसी स्त्री का पति मारा गया था, तो किसी का पुत्र। हजारों वीरांगनाओं पर वैधव्य दुःख आ पड़ा था। यह दुःखी खत्रानियां जब सूतक शुद्धि हेतु जमुना में स्नान करने गयीं तो वहाँ उनका रोना स्वाभाविक था। इतनी स्त्रियों का एक साथ रोना दिल दहलाने वाला था। अलाउद्दीन ने जब यह बिलाप सुना और इसका कारण पूछने पर जब उसे तथ्य का पता चला तो उसने अपने वजीर ऊधरमल खत्री को हुक्म दिया कि इन विधवाओं की शादी करा दी जाये। ऊधरमल ने खत्रियों के चौधरी मेहरोत्रा बन्धुओं लल्लू तथा जगधर को बुलाकर बादशाह का विधवाओं की शादी कराने का हुक्म सुना दिया। विधवा-विवाह खत्रियों में जायज नहीं है, इसलिए पूरी बिरादरी में हलचल मच गई। जहां-जहां भी खत्री थे, वहाँ यह खबर पहुँची। पंचायतें हुईं सभी ने इसका विरोध किया। अब अलाउद्दीन के सामने यह विरोध—'इन्कार' प्रकट करने की बात थी। ऊधरमल बादशाह का सामना करने में डर रहे थे। एक वृद्धा खत्रानी के जोश दिलाने कि जान जाये तो जाये पर विरोध किया जाये पर सामूहिक विरोध करने की बात तय की गयी। सामूहिक विरोध हेतु मेहरोत्रे, कपूर और खन्ने कुल के जो लोग सबसे पहले आगे आए और विरोध किया, वह 'ढाई घर' कहे गये—(१) मेहरोत्रा (२) कपूर और खन्ने, खन्ने चूंकि खण्ड—आधे कहलाते हैं अतः यह सब मिलकर ढाई कहे गये और इनके वंशज भी 'ढाई घर' कहे जाने लगे।

उसके बाद अन्य खत्री कुलों के दल आये, जिनमें मेहरोत्रा, कपूर, खन्ने तथा सेठ थे; अतः इनके वंशज 'चार घर' खत्री कहलाये। इनके बाद बारह अल्लों के अन्य खत्री वंश आये, यह लोग -बारह घर' कहलाये। क्रमशः विरोध के लिए आने वाले परिवारों और कुलों की संख्या बढ़ती गयी ५२ अल्लों के खत्री विरोध हेतु आये वे बावन जायी खत्री कहे गये। भारत भर के खत्री वंशजों—परिवारों की टोलियां दिल्ली आयीं। अपने-अपने स्थानों में भी खत्रियों ने विधवाविवाह के प्रश्न पर सभायें कीं। बादशाह की आज्ञा के विरोध में दिल्ली में सभायें हुयीं। खत्रियों के दल के दल बादशाह के पास गये और अपनी बात कही।

अन्त में बादशाह ने अपनी आज्ञा वापस ले ली और यह खत्रियों की व्यक्तिगत इच्छा पर छोड़ दिया गया कि पे विधवा विवाह करें या न करें।

बादशाह को अपना हुक्म वापस लेना पड़ा और इससे वह चिढ़ गया। उसने अपनी सेना में खत्रियों के सैनिक पदों को खत्म कर दिया। खत्रियों के जीवकोपार्जन का आधार डगमगा गया। पुरुषार्थी खत्रियों ने नया आधार ढूँढा। वे व्यापार में लग गये।

विरोध समाप्त हो गया—बात आई, गई, हो गई; परन्तु खत्री जाति पर इसका अमिट प्रभाव पड़ा। इसके फलस्वरूप खत्री ढाई घर, चार घर, बारह घर और बहुजाति आदि भेदों में बट गये। जिन लोगों ने बाद-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

शाह की आज्ञा मान कर विधवा-विवाह का पहले समर्थन किया; परन्तु विरोध किये जाने पर इन्होंने भी विरोध किया, वे सरीन (सरह-हीन) कहलाये जाने लगे, इस प्रकार सरीन अल्ल की उत्पत्ति हुई।

दूसरे खत्रियों की सैनिक वृत्ति समाप्त हो गयी, इन्होंने व्यापार-वृत्ति को स्वीकार किया, वे विभिन्न व्यापारों में लग गये, दलाली आदि कार्य करने लगे। इसका परिणाम कालान्तर में १९०१ की जनगणना के समय, खत्रियों को वैश्य लिखे जाने से प्रकट हुआ और तब इस बेबुनियाद बात का विरोध किया गया। बरेली का ऐतिहासिक सम्मेलन हुआ और जाति-सम्मान की रक्षा की जा सकी।

सम्मान की रक्षा एक पवित्र कार्य है, इस हेतु कोई पहले तैयार हो अथवा बाद में, इससे कोई छोटा बड़ा नहीं होता।

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के प्रकाशन पर

हार्दिक बधाइयों सहित

स्टील हाउस

कसेरट बाजार, आगरा

● स्टील ● पीतल ● मुरादाबादी बर्तनों

के प्रमुख विक्रेता

अध्यक्ष—खत्री भोलानाथ अरोड़ा

—: सहयोगी संस्थायें :—

अरोड़ा ब्रदर्स एवम् भारत वाच कम्पनी

जौहरी बाजार
आगरा

कसेरठ बाजार
आगरा

★ विश्वास करो ★

भगवान् सर्वशक्तिमान है। तुम्हारा दुःख चाहे कितना ही प्रबल हो, तुम्हारे संकट चाहे कितने ही पहाड़—जैसे हों और तुम्हारी विपत्ति चाहे किसी से भी न टलने वाली हो, भगवान् की शक्ति के सामने सभी तुच्छ हैं। तुम विश्वास करके सर्वशक्तिमान् को पुकारो—उनकी शक्ति अविलम्ब तुम्हारी सहायता करेगी और तत्काल तुम्हारे पहाड़-से दुःख-कष्ट काजल के ढेर की तरह उड़ जायेंगे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

'खत्री इतिहास'

लेखक :—हाजी यूसुफ अली राख्या पटेल

[भाग १ व २ गुजराती भाषा में करांची (पाकिस्तान) से प्रकाशित भाग १ (सन् १९७५) के 'महान् खत्री कौम के अपील का हिन्दी रूपान्तर —सम्पादक].

महान खत्री कौम की अपील

खत्री कौम की भिन्न-भिन्न जमातों के हिन्दू-मुसलिम माननीय सदस्यों तथा नई पेढ़ी के नवयुवकों को मेरी नम्रता पूर्वक प्रार्थना है कि वे खत्री कौम को प्रगतिमय बनाने तथा उसे सार्वजनिक क्षेत्रों में आगे लाने के लिए सब भाई यथाशक्ति प्रयास करें। तथा इस विषय पर जिस किसी को जो कुछ जमातों में मतभेद हों, वे चाहे बड़े हों या छोटे, व्यक्तिगत हो या सार्वजनिक उन सब को कौम की भलाई एवं उन्नति के लिए दफना देना है और कौम की तरक्की के उपायों की योजना करें। इसके अलावा पंचवर्षीय योजना बनाकर स्थिरता प्राप्त करने के लिए तन, मन और धन से यथा शक्ति प्रयास करना चाहिये जिससे कौम प्रगति के पथ पर अग्रसर होकर नामना प्राप्त कर सकें।

खत्री कौम के जो सदस्य राजनीतिक एवं सामाजिक प्रवृतियों में रस लेते हैं उन्हें चाहिये कि वे अधिक सक्रिय भाग लेकर खत्री कौम के नाम को उज्जवल बनावें। हमें आजादी मिलने के बाद अपने कुछ नवयुवक भाई जरूरत से अधिक स्वतंत्र विचार-धारा के हो गये हैं। वे जमात के अग्रगण्यों तथा बुजुर्गों के प्रति चाहिये वैसा विवेक एवं आदर भाव नहीं रख रहे हैं। यह अफसोस की बात है जो कि उन्हें अपने बुजुर्गों के प्रति मान-प्रतिष्ठा रख कर उनकी इज्जत या सम्मान करना चाहिये। इसमें उनकी ही शोभा है। (हम दूसरों की इज्जत करेंगे तो दूसरे भी हमारी इज्जत करेंगे—यह संसार का नियम है।) इसलिए नवयुवक बुजुर्गों के जमाती कार्यों में अच्छा सहकार देकर जमाती निजाम को सुदृढ़ बनाना चाहिये। जमाती संविधान को क्षति पहुँचे ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये। बुजुर्गों का भी कर्त्तव्य है कि वे जमाती कार्य को क्षति हो ऐसे कार्यों के प्रति सख्त नजर रखें। कौम में एकता बनी रहे ऐसे कार्य प्रारंभ करें जिससे कौम समृद्ध एवं सम्पन्न हो।

खत्री कौम के प्रचार प्रसार एवं सुधार के लिए कौम के प्रामाणिक, सुज्ञ एवं सेवाभावी व्यक्तियों को चाहिए कि वे एक कौमी अखबार निकालने की भी व्यवस्था करें जिससे कौम सुखी एवं समृद्ध बने। इसके लिये भिन्न-भिन्न शहरों में व्यवस्था करनी चाहिये। अखबार साप्ताहिक पाक्षिक या मासिक और किसी भी भाषा में सुविधा अनुसार प्रकट होने चाहिए और कौम को चाहिये कि ऐसे अखबारों को प्रोत्साहन एवं बढ़ावा दे। यह कार्य कौम को अपना कर्त्तव्य समझकर करना चाहिये। जिससे कौमी वारदातों से अन्य शहर या अन्य राज्यों के भाई अवगत हो सकें और कौम को मार्गदर्शन भी प्राप्त हो। जमातों के विषय में कुछ जानकारी इस पुस्तक में मिल सकती है। यह हकीकत है कि जिस कौम का अपना निजी अखबार नहीं है वह कभी प्रगति नहीं कर सकता। अपनी कौम का कोई अखबार न होने से मुझे साहित्य सामग्री एवं जानकारी प्राप्त करने में अत्यधिक कष्ट का सामना करना पड़ा है। पुरानी हकीकतें भी प्राप्त नहीं हो रही हैं। मुझे आशा है कि मेरी इस अपील के प्रति खत्री भाई अवश्य ध्यान देंगे और अमल करेंगे। ईश्वर मेरी कौम का वर्तमान एवं भविष्य उज्जवल बनायें यही कामना है।

[स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

खत्री हितैषी १९३६–१९८७]

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

★ बाबा लालू जसराय ★

यह स्मरणीय सिद्ध पुरुष हुए हैं, आराध्य देव हैं। कोई मत या पंथ इनका चलाया हुआ नहीं है। स्कंद पुराण, हिंगुलाद्रि खंड पूर्व संहिता में इनका उल्लेख है।

श्री लालू नामक सारस्वत ब्राह्मण ने जिस समय खन्ने खत्रियों का वंश नष्टप्राय सा हो रहा था और वंश वृद्धि नहीं हो रही थी, पुरश्चरणों की सिद्धि से ज्वाला जी को प्रसन्न किया और पुनः ज्वाला जी के निर्देश कि तुम श्री हिंगुला जी की आराधना करो, तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा, मां हिंगुला जी की आराधना की। जगदम्बा प्रसन्न हुई, दर्शन दिये और कहा, 'मेरा दिया पुत्र, मेरा अंश ही है, यह लंगूर वीर है, मेरा मानसिक पुत्र है, इसका नाम जसराज रखना, इसको बड़ी प्रतिष्ठा से रखना और दुर्वचन कभी न कहना, अन्यथा दुःख पाओगे।"

श्रावण कृष्ण १० दिन रविवार को जसराज जी का प्रादुर्भाव हुआ खन्ना वंश की रक्षा हुई।

जसराज जी जब पाँच वर्ष के थे, एक दिन घर में ही एक बड़े आले में खेल रहे थे, ध्यान लगाये बैठे थे। उनकी मां ने उन्हे बार-बीर पुकारा वह बोले नहीं। माँ को क्रोध आ गया, वह जगदम्बा हिंगुला के वचन भूल गई—उन्होंने दुर्वचन कह दिये; 'बोलता क्यों नहीं ? क्या आले में घुस गया ?" इतना कहना था कि आला फटता गया और वह आले में समाते गये। माँ चिल्लाई और दौड़ कर उनकी चुटिया पकड़ ली। माँ के हाथ में केवल चुटिया ही रह गई, वह आले में समा गये। कुल पुरोहित बाबा लालू आये, स्तुति की। अवतार-पुरुष जसराज जी ने श्री दुर्गा, चण्डिका, शिवा, सराही विंधवासिनी, भुवनेश्वरी आदि नाम भेद से शक्ति की उपासना का उपदेश दिया और उस स्थान को सिद्धपीठ और शीघ्र फल देने वाला बताया। यह लाहौर से ८० मील पर दिपालपुरा की घटना है।

'बाबा लालू जसराय' के नाम से उस स्थान विशेष का पूजन किया जाने लगा। खत्री विशेषतः खन्ने यहाँ चोटी चढ़ाने लगे। प्रति मास महीने में खत्री बालक अपनी चोटी चढ़ाकर अवतार पुरुष के प्रति अपना सम्मान प्रकट करते हैं।

अरदास

चढ़े जक चन्द्र मकरन्द पूजा करैं, भानु की जोत पर रहें उजालू।
देवी और देवता सिद्ध पूजा करैं, नित्य नारद उठ वेद बोलू ॥
कहें जोधाराय तेरी जोत जागी रहे, सदा, अगम निगम पूरन नहालू।
दूध औ पूत धन लक्ष्मी देत हैं, जागती जोत जसराय लालू ॥
बड़ोई दाता, जाको सुमिरैं परभाता, नाम लेत दुख जाता ऐसे बाबा लालू जसराय जू।
लालि ही घोड़ा-जोड़ा लाल ही मन्दिर सोहे, लाल ही आभूषण रहे मन भाय जू॥
हिंगलाज के सपूत, बैरी मारे सब दूत, ऐसी कहें जोधाराय सो तौ सन्तन सहाय जू।
झिंगरन जै-जै कार करें, खन्ने जी चोटी धरें, भट्ट ठाड़े स्तुति करें भक्तन मन भाय जू॥
बोल लाल मन्दिर वाले बाबा लालू जसराय की जय ॥

---

१. देश के विभाजन से यह स्थान पाकिस्तान में चला गया। कानपुर में खन्ना बंधुओं सर्व श्री विश्वनाथ विशम्भरनाथ खन्ना ने चौक ठठराही में 'बाबा लालू जसराय' के मंदिर की स्थापना की है और अब इस स्थान पर पूजन किया जाता है एवं 'चोटी चढ़ाई' जाती है। पंजाब, देहली एवं उत्तर भारत के लगभग सभी बड़े नगरों में श्री बाबा लालू जी के मंदिरों की स्थापना हो चुकी है।

CC-0. Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री उपजातियों का परिचय

ले० विश्वेश्वर नाथ मेहरोत्रा

भारतवर्ष के पंजाब प्रदेश में बसने वाले आर्य क्षत्रिय ही प्राकृत भाषा के कारण खत्री कहलाते हैं और भाषा के विकास के बाद भी इन्होंने अपने प्राचीन नाम को नहीं छोड़ा है। खत्री आदिकाल से शक्ति के उपासक रहे हैं और आज भी शक्ति के विभिन्न रूपों—श्री दुर्गा, चन्द्रिका, शिवा, सतोषी माता, वैष्णो देवी आदि की उपासना कुलदेवी के रूप में करते हैं।

प्राचीन समय में सूर्य और चन्द्रवंश खत्रियों के दो भेद थे। प्रत्येक वंश में अवान्तर भेद भी थे। लोग मूल वंश नाम से प्रसिद्ध न होकर अपने अवान्तर नाम से प्रसिद्ध थे, यथा सूर्यवंश के परम तेजस्वी अंगिरा ऋषि के नाम पर अग्नि वंश, इक्ष्वाकु के पौत्र विदेह के नाम पर विदेह वश और रघु के नाम पर वंश प्रसिद्ध हुए हैं। चन्द्रवंशी पुरुरवा के पौत्र नहुष और नहुष के पौत्र यदु से यदुवंश चला। इसी प्रकार अवान्तर भेद बढ़ते गये और अनेक नए अवान्तरों का निर्माण होता रहा। कालान्तर में इन्हें 'अल्ल' भी कहा जाने लगा।

महा पद्मनन्द के समय में खत्रियों पर जो अत्याचार हुये, उससे विवश होकर इन्हें अपने रक्त और वैदिक धर्म की रक्षा हेतु, वंश एवं जाति नामों में परिवर्तन करना पड़ा, और इन्होंने अपने वंश-गोत्र के पर्याय-वाची शब्दों को अपनाकर अपने अस्तित्व की रक्षा की। इस ऐतिहासिक तथ्य के प्रमाण में 'मिहिर प्रकाश' का केवल एक पद्य ही लिख देना यथेष्ठ होगा।

अग्नि रवि ते सोम ए जगत होय विख्यात।
जे रखिये एह नाम तां शत्रु करदे घात॥
मिहर - वंशियाँ पौरवाँ कीता आप विचार।
अग्नि वंशियों वो मनो कीता ए निरधार॥
मूल लुकावो नाम नू पता न पावे कोई।
धर्म बीज दे कारणे सिर ते लवो सैजोई॥

सूर्यवंश की एक शाखा ने मेहरोत्रे, चन्द्रवश ने कपूर या कपूर, अग्निवंश ने खन्ने और टण्डन तथा यदुवंश वालों ने श्रेष्ठ—सेठ और कक्कड़ नाम रखकर, प्राचीन वंश परम्परा—नाम और रुधिर की रक्षा की। अन्य जाति के क्षत्रियों (राजपूतों—चन्देल चौहान आदि) से इन्होंने विवाह सम्बंध नहीं किये। समस्त खत्री चाहे वे किसी भी उपजाति, तड़, अथवा अल्ल के क्यों न हों सूर्य अथवा चन्द्रवंशी हैं।

मेहरोत्रा—सूर्यवंशियों का एक दल अपने को मिहरोत्रा कहने लगा। 'मिहिर' शब्द संस्कृत का है। मिहिर का अर्थ है—सूर्य। मेहतीति मिहिर अर्थात् जल को खींचकर मेह बरसाने वाला, मिहिरोत्तर का अर्थ है, मिहिर (सूर्य) जिस वंश का उत्तर अर्थात् प्रधान पुरुष है, वह मिहिरोत्तर है।

सूर्यवंश के लिए मिहिर वंश था मिहिर कुल प्राचीन समय में भी बोला और लिखा जाता था। 'राज तरंगिणी' (६/८७) में लिखा है—

"मिहिर कुल के राजा हस्त।" इसी पुस्तक और इसी वाक्य का प्रमाण 'हिन्दी विश्वकोष में भी देकर इसे पुष्ट किया गया है। यदि सूर्यवंश के लिए 'मिहिरकुल' का प्रयोग न होता तो राजा हस्त के लिये ऐसा कदापि न लिखा जाता। इस प्रकार तिल मात्र का भी संदेह सूर्यवंश के लिए मिहिरोत्रा कहने में नहीं हैं। यह मिहिरोत्रा शब्द ही कालाँतर में मेहरोत्रा, मल्होत्रा और सूक्ष्म रूप मेहरा बन गया।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

'गोत्र' : कौशल्य
'प्रवर' : अंगिरस, औतथ्य, औशनस,
कुल देवी : नील रुद्र की शक्ति 'शिवामाता'
पुरोहित : जैतली सारस्वत ।

कपूर--चन्द्रवंशी खत्रियों ने अपना नाम कर्पूर रख लिया । संस्कृत भाषा के संयुक्त 'र' का पंजाबी भाषा में लोप हो जाता है जैसे ब्राह्मण-बाह्मण, कर्म-कम्म, सर्प-सप्प, कर्चूर-कचूर, कर्पूर-कपूर । आजकल बोलचाल ही नहीं लिखने के समय भी कपूर ही लिखा जाता है ।

'अमर कोष' में कर्पूर के सम्बंध में लिखा है 'अथ कर्पूर मस्त्रियाम । घनसारश्चंद्रसंज्ञसितामो हिमवालुका (अमर २/६/१३) । कर्पूर घनसार, चंद्रसंज्ञ, सिताभ्र और हिमवालुका । चंद्रसज्ञ का अर्थ है-- चन्द्रस्य संज्ञा: संज्ञा: यस्य च चंद्र संज्ञ: ।

चंद्र के नाम कर्पूर के लिए भी प्रयोग किये जाते हैं । चंद्र का नाम कर्पूर होने से यह 'कर्पूर' नाम रखने में अपने मूल चंद्रवंश का भी ध्यान रखा गया है और चंद्रवश न कह कर कर्पूर नाम ले लिया गया है । वह कर्पूर ही कालांतर में कपूर बन गया है ।

गोत्र : कौशिक
प्रवर : कौशिक, देवरात, अघमर्षण;
कुलदेवी : ईश पूज्य माता 'चण्डिका'
पुरोहित : मोहले, कपूरिये सारस्वत

खन्ना--खन्ना (खन्ने) पंजाबी शब्द है । यह संस्कृत शब्द क्षण्य से बना हैं । कहना चाहिये क्षण्य का ही अपभ्रंश खन्ना हैं । सूर्यवंश के अंगिरा ऋषि के नाम पर चले अग्निवंश में ब्राह्मण और खत्रिय दोनों ही हैं अर्थात् एक वंश के दो खण्ड हैं । श्री मद्भागवत के नौवें स्कन्ध में उल्लेख है कि इस वंश के प्रायः सभी ब्रह्मनिष्ठ होकर ब्राह्मण हो गये थे । कदाचित इसी से शेष बचे खत्रियों को क्षण्य कहा जाने लगा । क्षण्य अथवा खण्ड होने के कारण अग्नि वंशी खत्रियों ने क्षण्यखन्न शब्द को अपने लिए स्वीकार कर लिया । इस प्रकार अग्निवंशियों का नाम खन्ना हो गया ।

गोत्र : कुत्स
प्रवर : अकिरा मीनधाता, कुत्स
कुलदेवी : भटयानी चण्डिका भवानी
कुलदेवता : बाबा लालू जसराय (यशराज)
पुरोहित : झिंगण सारस्वत

सेठ--संस्कृत 'श्रेष्ठ' शब्द का अपभ्रंश 'सेठ' है । चंद्रवंश के प्रतापी राजा नहुष के कुल में प्रतापी राजर्षि देवोदास ने जन्म लिया था । देवोदास के पुत्र महाराज 'प्रतर्द्धन' थे । राजर्षि देवोदास पुत्र प्रतर्द्धन को 'वत्स' कह कर पुकारते थे । पिता द्वारा प्रीति पूर्वक 'वत्स' कह कर पुकारने के कारण प्रतर्द्धन राजा 'वत्स' के नाम से ही प्रसिद्ध हुए । प्रतर्द्धन के समय में ही चंद्रवंश के वत्स कुल की 'श्रेष्ठ' संज्ञा का प्रारम्भ हुआ ।

चद्रवश के वत्स कुल की इस श्रेष्ठ संज्ञा की विशेष प्रसिद्धि राजा प्रतर्द्धन से ही हुयी । कादम्बरी में भी ऐसा ही लिखा है । श्रेष्ठ कुलोद्भव इन वत्सों का गोत्र भी 'वत्स' ही है । यह समस्त कुल शिवभक्त ही रहे हैं।

---

१. वंश रर्म्परा के प्रथम अर्थात् मूल पुरुष जिससे वंश चले, का नाम ही 'गोत्र' कहलाता है ।
२. गोत्र को प्रारम्भ करने वाले ऋषि की मंत्र दृष्टा संतानें 'प्रवर' कहलाती हैं ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

इस विशाल वंश के वंशज (वत्स, कौक्कुर और तालजघ) अपने को सेठ ही कहते हैं।

आज भी पूर्व की बात याद दिलाने को नाई-भाट 'सेठक्कन का बंधान पंचराज' कह कर इनके पूर्व प्रताप का गौरव याद दिलाते हैं।

गोत्र : वत्स

प्रवर : भार्गव, च्यवन, आप्नेवान, और्व और जमदग्न्य

कुलदेव : बाबा शिवाउ

पुरोहित : कुमड़िये सारस्वत

कक्कड़, तलवार एवं बैजल

इस सुविशाल वंश में वस्त, कौक्कुर तालजंघ, बैजल वे सभी आज भी अपने को सेठ ही कहते हैं।

कक्कड़--चंद्रवंशी हैं इनके कुल पुरोहित भी जामदग्न्य वत्स गोत्रीय कुमडिये सारस्वत हैं। कुल देवता शिवाउ है।

तलवार--तालजंघ कुल के खत्रीय महर्षि और्व के समय से वसिष्ठ कुल को मानने लगे फिर तालवाड और तलवार कहे जाने लगें। वशिष्ठ वंशज पाराशर गोत्र के तिक्खे सारस्वत इन खत्रियों के पुरोहित हैं। यह सेठ कुल के ही माने जाते हैं।

सेठ बैजल--यह भी सेठ कुल के ही हैं। इनके पुरोहित हंसल (HANSAL) सारस्वत हैं। कुल देवी बराही या बराई है।

सहगल--शुद्ध शब्द शैगल है। काश्यप के नौध्रुवों में ही एक छागल्य गोत्र भी है। इसी का अपभ्रंश शैगल अथवा सहगल हुआ है।

पुरोहित—मोहले सारस्वत है। पुरोहित के अनुसार गोत्र 'छागल्य' है। प्रवर, काश्यप, अवत्सार और नौध्रव हैं। कुल देवी चंडिका हैं।

महेन्द्र—महा + इन्द्र = महेन्द्र यह इंद्र का पूजन करते हैं और चील्ह को मांस खिलाते हैं। एक बार बहुत बड़ा अकाल पड़ा खत्री वंश के एक उदार व्यक्ति ने अपना अन्न भण्डार खोल दिया। वह इंद्र के समान दानी कहलाये और उनके वंशज महेंद्र कहलाने लगे।

यह सूर्य वंशी हैं, गोत्र वत्स, पुरोहित भटूरिये सारस्वत, कुल-देवता शिवा हैं।

भल्ले--यह आर्य क्षत्रिय जो भाला चलाने में निपुर्ण थे भल्ले कहलाते हैं। गुरु अमरदास भल्ले खत्री थे।

चडढे—ये आर्य कौम के घोड़े सवार थे। सदा जिरहबखतर पहनते थे। लोग इंहें चडढे कह कर पुकारते थे। बही नाम इनके वंशजों का प्रसिद्ध हो गया। वहुजाई और खोखरायन दोनों बिरादरीं में यह पाये जाते हैं। खोखरायन इन्हें ढाई घर मानते हैं।

सूरी--सूर्य वंशी हैं। शूरवीर पुकारते पुकारते सूरे और फिर बिगड़ कर सूरी हो गया। इसी वंश के लोग विजय नगर के राजा बलवंत सिंह के दूत थे।

गोत्र--भारद्वाज, पुरोहित कालिया सारस्वत कुलदेवी शिवाय माता।

वेदी और सोढी—खत्रियों के ये दो अलग-अलग अल्ल हैं। गुरु नानक देव वेदी वंश के थे और गुरु गोविंद सिंह जी सोढी वंश के थे।

टन्डन--'टन' शब्द का अर्थ है जो सदा लड़ने को प्रस्तुत रहे। टन के माने हैं 'युद्ध' क्षत्रिय जाति की वह शाखा जो अत्यधिक युद्ध तथा लड़ाका थी टंडन कहलाई। यह सूर्यवंशी हैं। इसी सूर्यवंश के अगिरा ऋषि बड़े तेजस्वी हुये हैं। उनसे जो शाखा चली वह अग्नि वंशी कहलाने लगे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

धवन—धवन शब्द संस्कृत के 'धावन' शब्द का अपभ्रंश है। युद्ध भूमि में एक स्थान से दूसरे स्थान को समाचार ले जाने वाला 'धावन' कहा जाता है। प्राचीन काल में जो खत्री 'धावन' का काम करते थे उनके वंशज धवन कहलाये।

पुरोहित—कौलिया सारस्वत हैं।

चोपड़ा—एक खत्री वंश के पुरखे अत्यंत कुशल जुआरी थे। पाँसा फेंकने में वे इतने प्रवीण थे कि लोग उन्हें राजा नल का अवतार कहते थे। इन्हे 'चौपड़' की पदवी मिली। वही बिगड़ कर चोपड़ा बन गई।
पुरोहित—बग्गा सारस्वत।

कोचर—कवच धारण करने वाले 'कोचर' कहलाये।

	गोत्र	कुल देवता	पुरोहित
बहल	—भारद्वाज	अष्टभुजो	भारत सारस्वत
वाही	— कश्यप	चंडिका	हौसला ,,
बिज	— भार्गव	,,	

बेरी—चोपड़ा का ही भेद है इनके पूर्वज का जन्म बेरी नामक झाड़ के नीचे हुआ इसीसे यह बेरी कहलाये।
पुरोहित हौसला सारस्वत।

★ विश्वास करो ★

भगवान् परम आश्रय है; चाहे सारा संसार तुम्हें भूल जाय, चाहे घर परिवार के सभी तुमसे मुख मोड़ लें, चाहे तुम सर्वथा निराश्रय हो जाओ एक बार हृदय से उनके परम आश्रयत्व पर विश्वास करके मन-ही-मन उनका स्मरण करो। देखोगे तुम्हें कितना शीघ्र और कितना मधुर और निश्चित आश्रय मिलता है।

* * *

तुम दीन-हीन नहीं हो; तुम शुद्ध-बुद्ध हो, तुम अमृत हो, तुम महान् हो; तुम्हारे अन्दर परमात्मा की शक्ति भरी है, तुम चाहो तो सब कुछ कर सकते हो। तुम भगवान् के प्यारे हो, तुमको इस बात का बिश्वास नहीं है, यही कमी है। दृढ़ विश्वास करो और भगवान् के प्यार को प्रत्यक्ष पाकर परम सुखी हो जाओ। स्मरण रक्खो, आत्मविश्वास ही सफलता की कुञ्जी है, विजय का मूल-मन्त्र है और परमात्मा की कृपा को खींचने वाला चुम्बक है।

खत्री प्रवीन कुमार आनन्द

आनन्द इलेक्ट्रिक स्टोर्स

३२/१३५, मनीराम बगिया

कानपुर—२०८००१

खत्री ओंकार कृष्ण कपूर

फोन—४३६३

सर्वश्री वैरायटी सेल्स कारपोरेशन

४७४, महतपुरा, मथुरा

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

के अवसर पर

शुभ कामनाओं सहित :

तार : VINOD

फोन : ४१७, ५६५

ला० काशी नाथ सेठ

जवैलर्स

काशी नाथ चाँदी वाला

काशी साड़ी इम्पोरियम

सिनेमा रोड

हरदोई

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर हमारी शुभ कामनाएँ :—

कपूर टाइपराइटर एण्ड रेडियो कम्पनी

बाँसफाटक, वाराणसी—२२१ ००१

फोन : ६२६०६, निवास : ५६२७६, ६५५८१

हमारे यहाँ उपलब्ध हैं :—

- ब्लू स्टार के एयर कंडिशनर, वाटर कूलर, बॉटल कूलर, डीप फ्रीजर, वोल्टेज रेगुलेटर, गैस के उपकरण।
- लियोनार्ड रेफ्रिजरेटर
- बीनाटोन, वेलटेक, वेवलनिक्को, जौली, हॉटलाइन तथा वाइकिंग के टी० वी० सेट
- गोपी, बूटी, महाराजा, जेक्को के मिक्सर
- खेतान, मिन्नी तथा रैलि के सीलिंग तथा टेबुल के पंखे
- टुल्लू विजय के एक्जास्ट पंखे व कूलर पम्प
- टुल्लू वाटर पम्प
- रेकाल्ड तथा स्वान के गीजर व अन्य घरेलू बिजली के उपकरण
- प्रीमियर तथा जेको की वाशिंग मशीन
- हार्किस तथा प्रेस्टिज के प्रेशर कूकर
- वी० आई० पी० के लगेज तथा स्काइ-बैग

लगातार पिछले ६१ वर्षों से आपकी सेवा में

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाएं :

खत्री मोहित टण्डन

३६/३१, जी, राममोहन हाता

कानपुर-२०८००१

खत्री वीरेन्द्र कपूर

सर्वश्री जनरल मोटर स्टोर्स

फोन ४३६५

मसानी, मथुरा-२८१००३

मे० धवन इण्टर प्राइज, फर्रुखाबाद

वितरक—पान पराग, वेकमैन होमप्रोडक्टस, तोसीबा आनन्द, मार्कफेड प्रोडक्टस, देहली फ्लावर मिल्स एवं डा० कूलज

सहयोगी प्रतिष्ठान—**धवन एसोसिएट्स**

फर्रुखाबाद

Ready-Wears

FANCY SUITS & FROCKS

GANNEY WALI GALI

LUCKNOW

खत्री विनोद कुमार मेहरोत्रा

(कान्ट्रेक्टर)

अशराफ टोला, हरदोई

सूखाहारी लाल तेल व दवा

तथा शास्त्रीय आयुर्वेद औषधियाँ

राजकीय चिकित्सालयों द्वारा मान्यता प्राप्त

निर्माता :— **सूखाहारी** (रजि०) ४७, जानसेनगंज, इलाहाबाद

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी के संरक्षक

व

उ० प्र० खत्री सभा के कोषाध्यक्ष

खत्री राम लाल खन्ना

की

शुभकामनाएँ

आवास : ४३२४५
,, ४३६३१
,, ४३४३५

प्रतिष्ठान : ६३४८४
,, ६२४८४
,, ५५३८६

फोन—दुकान ६३४८४

तार : 'KALANIRMAN'

मोहनलाल किशनचंद

हाथकरघे पर बनी शुद्ध जरी और पक्के रंगों में बनी बनारसी सिल्क तथा
जारजेट साड़ियों के निर्माता

चौक, वाराणसी

卐 फोन ६३४८४ 卐 फोन ५५३८६ 卐

शीको प्रिन्ट्स
उत्कृष्ट, सिल्क, शाटन प्रिन्टेड
साड़ियों के विक्रेता
चौक, वाराणसी

किशको प्रिन्ट्स
नवीन अरगंजा प्रिन्ट
साड़ियों के विक्रेता
चौक, वाराणसी

एम० के० ट्रेडिंग कं०
नवीन सिल्क प्रिन्टेड एवं अरगंजा
प्रिन्टेड साड़ियों के विक्रेता
गोलघर, वाराणसी

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

भारत के इतिहास में खत्रियों का स्थान

लेखक—अशोककुमार अरोड़ा
एम० ए०, बम्बई

लेखक परिचय:—श्री अशोक कुमार अरोड़ा बम्बई में बिजली की उपनगरीय रेल चलाते हैं। इनका काम रेल चलाना है लेकिन शौक इतिहास लिखना है। इन्होंने नौकरी के साथ-साथ अध्ययन भी जारी रक्खा। सन् १९७२ में इतिहास में एम० ए० किया है। अब पूना विश्वविद्यालय के इतिहास के शोध छात्र हैं। शोध का विषय है 'राजपूत मराठा सम्बन्ध १७०७-६०'। 'खत्रिय इतिहास' भी लिख रहे हैं। आपने पश्चिम रेलवे का इतिहास तीन खण्डों में लिखा है।

भारतीय इतिहास के पन्ने खत्री जाति के शौर्य कार्यों से भरे पड़े हैं। इस जाति में वीरता, व्यापार, राजनीति और विद्वता के सभी गुणों का समावेश है और इन सभी क्षेत्रों में खत्रियों ने विभिन्न कांल में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। इस जाति के लोग आज विश्व में सर्वत्र बिखरे हुए हैं। खत्रियों का उद्भव सूर्यवंश, चन्द्रवंश और अग्निवंश तीनों से है। कालान्तर में इनके उपवंश बन गये। उदाहरणार्थ कुश के वंश में राजा परिक्षित के वंशज आरोड़ ने सिंध में अरोड़ कोट की स्थापना की। इसी प्रकार श्री कृष्ण जी और बलदेव जी की मृत्यु के पश्चात् द्वारका का पतन हो जाने पर उनके वंशज सिंध चले गये और इसी वंश में राजा यदु के वंशज भट्टी या भाटी ने विक्रम संवत् १२१२ सावन वदी १२ को जैसलमेर नगर की स्थापना की। इनके वंशज सर्वत्र फैल गये और अब भाटिया खत्री कहलाते हैं। राजस्थान में इन्हें भाटी राजपूत कहा जाता है। यदु के वंश में ही 'जाडेजा' नामक कुमार ने कच्छ में अपने राज्य की स्थापना की। अरोड़ों और भाटियों का राज्य काश्मीर तेहरान तक फैला लेकिन मुसलमानों के उदय के साथ ये अपने राज्यो को खो बैठे। मुसलमानों के हमलों के कारण अरोड़े और भाटिये खत्री राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब आदि प्रदेशों मे बसने लगे।

भारत में जब सुलतानों का राज्य शुरू हुआ तो दिल्ली के सुल्तानों ने इन्हें अपना लिया। दिल्ली के सुल्तान खत्रियों को सबसे अधिक वफादार और व्यवहार कुशल मानते थे। सर्वप्रथम अलाउद्दीन खिलजी ने खत्रियों की शासन प्रबन्ध दक्षता का उपयोग किया। राजपूतों और खत्रियों में सबसे बड़ा भेद यही था कि राजपूत केवल वीर थे लेकिन खत्री वीर और राजनीतिज्ञ दोनों थे। दिल्ली के सुल्तानों का राज्य स्थिर न था इसलिये

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री अधिक आगे न बढ़ सके। शेरशाह के युग में राजा टोडरमल दिल्ली प्रशासन में आये और उन्होंने शेरशाह का शासन प्रबन्ध सुव्यवस्थित किया और भू-नापन किया।

दिल्ली सम्राट अकबर ने राजा टोडरमल का सही मूल्याँकन किया तथा इनका उपयोग रण और शासन दोनों में किया। टोडरमल ने गुजरात, बिहार, बंगाल आदि सूबों का सर्वेक्षण किया तथा राजस्व के कानूनों को सुधारा। इनके प्रबन्ध में सूबों की आय ५० लाख रु० वार्षिक से अधिक थी। टोडरमल की संगति में रहकर अकबर का झुकाव हिन्दू धर्म की तरफ हुआ।

राजा टोडरमल अकबर को गोकुल में श्रीनाथ जी दर्शन कराने ले गये। १५८० ई० में राजा टोडरमल ने बंगाल में एक विद्रोह को दबाया। ६ वर्ष पश्चात् इन्होंने उत्तर पश्चिम की जातियों को काबू किया और सीमा पर अनेक किले बनवाये। टोडरमल अनेक वर्षों तक वित्त और राजस्व मंत्री रहे। कुछ काल तक वह वजीर भी रहे। उनका वजीर बनना मुस्लिम मनसबदारों को न भाया लेकिन अकबर को टोडरमल दक्षता पर पूर्ण भरोसा था। टोडरमल ने राज्य के १८४ जिलों में से ६४ का सर्वेक्षण कराया। इस समय भारत की आबादी १० करोड़ के लगभग थी। टोडरमल की सलाह से अकबर ने अनेक सूबों में टकसाले खोलीं। टोडरमल के प्रतिद्वंद्वी अबुल फजल ने अपने ग्रन्थ अकबरनामा में उनकी प्रशंसा की है। टोडरमल प्रथम हिन्दू थे जिन्हें ७,००० का मनसब प्राप्त था। २१ नवम्बर, १५८९ ई० को लाहौर में टोडरमल का देहान्त हो गया। इनके दाह संस्कार के अवसर पर जयपुर के राजा उपस्थित थे। राजा भगवानदास टोडरमल को छोड़ न सके। पाँच दिन बाद उनका भी देहान्त लाहौर में हो गया। राजा टोडरमल के काल में सैकड़ों खत्रियों को राज्य के विभिन्न सूबों में प्रशासन का कार्य मिला और ये खत्री वहीं बस गये। इन खत्रियों के सहयोग से ही राजा टोडरमल राज्य की सही आमदनी का मूल्याँकन और प्रबन्ध कर सके थे। औरंगजेब ने इन खत्री प्रशासकों की योग्यता को नहीं समझा और इन्हें सरकारी नौकरियों से निकाल दिया।

मुगलों के दक्षिण सैनिक अभियानों में बहुत से खत्री गये थे जो धर्म-परिवर्तन या सैनिक हार के पश्चात् दण्ड के डर से वापस नहीं लौटे। इन खत्रियों को मराठा सरदारों ने जागीरें दीं और ये व्यापार करने लगे। आज भी महाराष्ट्र के खामगाँव, अकोला और नासिक जिले के सिन्नर गाँव में हजारों खत्री परिवार रहते हैं जिनकी भाषा अब मराठी है लेकिन विवाह सम्बन्ध उत्तर में ही करते हैं। ऐसे ही एक मेहरा खत्री की जुन्नर में जागीर है।

सन् १७१७ ई० में जब मुगल बादशाह ने फिर से हिन्दुओं पर 'जजिया कर' लगाया तो साम्राज्य के दीवान रतन चन्द्र खत्री ने इसका कड़ा विरोध किया और सम्राट को 'जजिया' हटाना पड़ा।

१८ वीं शताब्दी में खत्री अपने गौरव की पराकाष्ठा पर थे। मुगल साम्राज्य टूट चुका था। भारत में अनेक रियासतें बन गई थीं और भारत में शायद ही कोई ऐसी रियासत हो जिसका दीवान कोई खत्री न हो। दिल्ली के सम्राट बनाने वाले सैयद बन्धु खत्रियों के संरक्षक थे। १७१७ ई० में राजा मुकम सिंह खत्री सैयद हुसैन अली के दीवान थे और रतन चन्द हुसैन अब्दुला के। १७२० ई० में राजा रतनचन्द खत्री ने अपनी सारी सम्पत्ति गरीबों में बाँट दी।

१७१८ ई० के लगभग लाहौर से राजा आयामल खत्री आये। इनके साथ इनके भाई राजा नारायण दास, राय शिवदास और नन्दराम थे। ये खन्ना खत्री थे। जयपुर के संस्थापक राजा सवाई जयसिंह ने इन खत्री रत्नों के मूल्य को पहचाना। शीघ्र ही राजा आयामल को नारनौल का नायब फौजदार बना दिया गया। १७२४ ई० में जय सिंह ने राय शिवदास को जोधपुर के राजा अभय सिंह की मदद के लिए भेजा। राजा जय-

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सिंह ने राजा आयामल को अपना दीवान बनाया। राजा आयामल मुगल सम्राट मुहम्मदशाह के मित्र भी थे। इसलिए जयसिंह को सम्राट से अनेक लाभ हुये। १७३५ ई० में जब पेशवा बाजीराव की माता राधा बाई जयपुर आईं तो राजा आयामल ने उनकी काशी यात्रा का पूरा प्रबंध किया।

१७३६ ई० में जब पेशवा बाजीराव जयपुर आये तो राजा आयामल ने उदयपुर के समीप उनका स्वागत किया तथा जयपुर आने का निमंत्रण दिया। २६ फरवरी, १७३६ ई० को राजा आयामल जयपुर के समीप बाजीराव से मिले। १७३८ ई० में जब मराठों और निजाम के बीच भोपाल के समीप युद्ध हुआ तो राजा आयामल ने निजाम की मदद की और मराठों से संधि करायी। राजा आयामल शाँति के दूत थे। समस्त भारत के नवाब और राजे इन्हें निर्णायक बनाना पसन्द करते थे।

१७४२ ई० में राजा आयामल खत्री ने नरवड़ के राजा छत्र सिंह को मराठों से लड़ने के लिये प्रेरित किया क्योंकि मराठे आगरा सूबा पर कब्जा करना चाहते थे। १७४३ ई० में दिल्ली सम्राट मुहम्मद शाह ने राजा आयामल खत्री को ५ वस्त्रों की खिलत देकर सम्मानित किया। इन्हीं के भाई शिवदास और नारायण-दास ने जयपुर राज्य के सेनापति के रूप में बूंदी, कोटा, उदयपुर, शाहपुरा और जोधपुर के राजाओं से अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं। राजा नारायण दास इतने दयालु थे कि बूंदी के राजा उम्मेद सिंह को रण क्षेत्र में हराने के बाद भी उसके परिवार को २०० रुपये प्रतिदिन देते रहे और रण क्षेत्र में खेत हुये शत्रु के सैनिकों का स्वयं दाह संस्कार किया। जयपुर के राजा की अनुपस्थिति में जब उदयपुर के महाराणा और कोटा के राजा ने जयपुर पर हमला किया तो राजा आयामल ने मराठों को अपनी ओर मिला लिया और महाराणा को समझा बुझाकर लौटा दिया।

दूसरी ओर लाहौर के सूबेदार जकरिया खाँ के सचिव और परामर्शदाता क्रमशः लाला लखपतराय और जसपतराय लाहौरी खत्री थे जिन्हें 'राजा' का खिताब प्राप्त था। १७३९ ई० में दिल्ली से लौटते समय नादिरशाह ने ५००० हिन्दू और मुसलमानों को लाहौर में बंदी बना लिया। तब लाला लखपतराय खत्री ने ३ लाख रुपये नादिरशाह को देकर इन लोगों को कैद से छुड़ाया। जकरिया खाँ खत्रियों पर बहुत विश्वास रखता था।

इसी समय १७४१ ई० में राजा हरनंद अरोड़ा मुरादाबाद के सूबेदार थे। इनके काल में बहुत से खत्री मुरादाबाद जिले में बसे। आज भी मुरादाबाद, हरदोई, बदायूं, अमरोहा और शाहजहाँपुर में हजारों खत्री घराने हैं।

६ फरवरी, १७४७ को राजा आयामल खत्री का देहान्त हो गया। इनकी मृत्यु पर सारे देश की रियासतों में शोक मनाया गया। अनेक रियासतों के प्रतिनिधि शोक सन्देश लेकर जयपुर पहुँचे। सतारा के छत्रपति शाहू और मराठा साम्राज्य के प्रधान पेशवा बालाजी बाजीराव को भी इनकी मृत्यु से घोर आघात पहुँचा।

राजा आयामल की मृत्यु के बाद उनके पुत्र केशवदास राज्य के दीवान बने। १७४८ ई० में ये जयपुर के समीप नेवाई नामक स्थान पर पेशवा से मिले और जयपुर राज्य को मराठों से बचाया। इसी वर्ष अगस्त में जब बगरू की लड़ाई हुई तो इन्होंने जयपुर के राजा ईश्वर सिंह और इन्दौर के मल्हारराव होलकर के बीच संधि कराई।

राजा आयामल के नाम से जोधपुर में 'राजामल का तालाब' हैं जिसमें कभी पानी भरा रहता था, समीप ही 'राय जी का घेर' नामक स्थान है जहाँ पर राजामलजी की हवेली है। समीप ही 'बादल महल' है

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जो शायद राजामलजी ने ही बनवाया था। हवेली में सूखे हुये फव्वारे आज भी उस युग के खत्रियों के वैभव की याद दिलाते हैं। आज इस हवेली में रायबहादुर शम्भूनाथ जी खन्ना खत्री का परिवार रहता है। 'राय जी के घेर' में अनेक खत्री परिवार रहते हैं।

१७५७ ई० में देवी सिंह मेहता मुगल सम्राट की तरफ से रणथम्भौर के किलेदार थे। जब मराठे रणथम्भोर पर हमले करने लगे तो देवी सिंह ने किला जयपुर महाराजा को सौंप दिया और जयपुर राज्य से सवाई माधोपुर में १२००० वार्षिक की जागीर प्राप्त की। ये जाति के खन्ना थे। अफसोस है कि राज्य सरकार ने इनकी जागीर पर कब्जा कर रखा है। इस तरह से अनेक सेठ परिवार हैं जिनकी हवेलियों, मन्दिरों और बागीचियों पर पंडितों ने कब्जा कर रखा है। ऐसे ही अजमेर में 'खत्रियों की बगीची' खत्रियों के हाथ से निकल चुकी है।

१७५९ ई० में मुगल साम्राज्य के सिपहसालार मुहम्मद अहमद गजनफरूद ने स्वर्गीय केशवदास खत्री के दामाद हरसहाय खत्री को ५००० जाट और ४००० घुड़सवारों का मनसब मय नक्कारे के प्रदान किया। हरसहाय का साला गुरसहाय भी जयपुर की सेना में एक अफसर था।

उधर १७५९ ई० में जब अहमद शाह अब्दाली ने भारत पर हमला किया तो लाहौर के सूबेदार की अनुपस्थिति में सूरतसिंह खत्री ने लाहौर की रक्षा की।

१७६६ ई० में हरसहाय और गुरुसहाय खत्री जयपुर राज्य के सेनापति बनकर भरतपुर के राजा जवाहर सिंह जाट से लड़ने गये। खेतड़ के समीप मावंडा नामक स्थान पर १८ वीं शताब्दी का सबसे भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में हरसहाय और गुरुसहाय खत्री वीरतापूर्वक लड़ते हुये मारे गये। भरतपुर का राजा भाग गया। जयपुर राज्य के लगभग सभी क्षत्रिय युद्ध में काम आ गये। राजपूतों के घरों में केवल १०-१० वर्ष के बालक रह गये। रेवाड़ी-फुलेरा रेलमार्ग पर नीम का थाना स्टेशन से ५-६ मील की दूरी पर हरसहाय और गुरसहाय की छतरियाँ आज भी गाड़ी में से देखी जा सकती हैं। १७६८ ई० में ये छतरियाँ बनी। ये छतरियाँ १५ हाथ चौड़े और २६ हाथ लम्बे पक्के चबूतरे पर संगमरमर की है और जयपुर की सबसे भव्य छतरियों में से हैं।

खत्री मोती लाल चोपड़ा

सर्वश्री चोपड़ा डीजल स्पेयर्स

फोन ५०२७

सिविल लाइन्स रामपुर—(उ० प्र०)

अधिकृत विक्रेता

● भारत-किर्लोस्कर ● बजाज-मैसी ● सत्यजीत डीजल इंजन

तथा भारत जैनरेटिंग सेट

नोट :—हमारे यहां सभी प्रकार के डीजल इंजन के ओरीजिनल पार्ट हमेशा उपलब्ध रहते हैं।

कृपया एक बार सेवा का मौका अवश्य दें।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री और उनके पूर्वज :

"एक विवेचन"

—खत्री विश्वेश्वर नाथ मेहरोत्रा, कानपुर

खत्री जाति का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अत्यन्त प्राचीन काल से यह जाति द्विजातियों के द्वितीय वर्ण की प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित रही है। प्राचीन आर्यों का विभाजन गोत्र, वेद, उपनिषद आदि के आधार पर हुआ था। खत्रियों के जो गोत्र हैं। वे इस बात का प्रमाण हैं कि खत्री प्राचीन आर्यों के वंशज है। श्रेष्ठ सारस्वत ब्राह्मण इनके पुरोहित हैं।

खत्री एवं क्षत्री शब्दों को लेकर अनेक भ्रम उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है परन्तु भाषा विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्राकृत और संस्कृत के उच्चारण भेद के अतिरिक्त इनमें कोई भेद नहीं है। इसी भेद के कारण क्षत्री को खत्री कहा जाता रहा है और इन दोनों शब्दों के अर्थ में प्राचीन काल में कोई भेद नहीं रहा है।

खत्री वीर भी थे और धीर भी, उनकी वीरता में बर्बरता नहीं शालीनता रही है।

कनिंघम अपनी पुस्तक 'सिक्खों का इतिहास' में लिखते हैं 'उत्तर भारत के जिन मैदानों में ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों ने एक अद्वितीय सभ्यता को जन्म दिया था उसके कारण पूरे देश में जातीय उच्चता या धार्मिक उच्चता ही श्रेष्ठ मानी जाती है और भारत ही ऐसा देश है जहाँ जातीय भावना धार्मिक भावना से भी गहरी है। आर्थिक स्थिति की उच्चता का यहाँ कम ही आदर है।'

'पंजाब के शहरों में रहने वाले खत्री तथा अरोड़ा लोग केवल शहरों में ही रहते हैं और श्रेष्ठ व्योपारी होते हैं वे ही लोग देश के लोगों को व्योपार इत्यादि के लिये पैसा देने वाले तथा आय-व्यय का समुचित हिसाब करने वाले हैं, परन्तु एक दिन यह खत्री ही देश में राज्य करते थे और उनका वह जनून कभी उमड़ जाता है।'

वे आगे लिखते हैं 'वे कभी प्रान्तों के गवर्नर कभी-कभी सेनापति भी होते हैं। रणजीत सिंह के सेनापतियों में सर्वाधिक साहसी प्रकृति का सेनापति हरीसिंह खत्री था वह एक सफल शासक भी था। मोहकम चन्द और सावनमल भी खत्री थे निजाम हैदराबाद के मैनेजर पद पर जिसने बहुत दिनों तक सफलतापूर्वक काम किया वह चन्दूलाल भी उत्तर भारत का खत्री था।'

पुनः वे लिखते हैं इनके कुछ वीरतापूर्ण कार्य ऐसे थे, जिनकी तुलना संसार के इतिहास में नहीं मिलती। दारा की शक्ति एवं सिकन्दर के गौरव को इसी देश ने महत्व दिया। ईसा पूर्व नवीं शताब्दी में मनु ने अपना धर्मशास्त्र लिखा। इस युग में हिन्दुओं की प्रतिभा खूब उन्नत थी। इनके रामायण और महाभारत के विवरणों में इतनी शक्ति है कि वे लोगों के मानस को मथ कर रख देते हैं।'

क्षत्रिय और खत्री :

प्रश्न है कि क्या क्षत्रिय और खत्री शब्दों की समानता संयोग मात्र है ? ऐसा नहीं है। यह समानता भाषा विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुरूप हैं। यह रूपान्तरण एक सुपरिचित भाषा विज्ञान सम्बन्धी परिवर्तन है। महाकवि 'कालिदास' ने अपने नाटक विक्रमोर्वशी के पाँचवे अंक में संस्कृत के 'क्षत्रियस्य' शब्दों के लिए प्राकृत के 'खत्रियस्य' शब्द का प्रयोग किया है। इसी प्रकार महाकवि 'भवभूति' रचित नाटकों में संस्कृत 'क्षत्रिय' और उसके प्राकृत रूपान्तर 'खत्रिय' दोनों शब्दों का प्रयोग हुआ है। प्रोफेसर एच. एच. विल्सन ने 'खत्री'

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri. Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है 'खत्री' जिसका बिगड़ा हुआ रूप खत्रिय अथवा खतरी है हिन्दी का शब्द है (संस्कृत क्षत्रिय है) जिसका अर्थ है दूसरी विशुद्ध जाति का व्यक्ति, सैनिक एवं राजकुल का।'

यूनानी लेखकों के अनुसार वे लोग जो रावी व्यास नदियों के बीच के क्षेत्र में राज्य करते थे 'खत्रियाओं' थे। इनकी राजधानी संगल थी। स्पष्ट है कि खत्रियाओं नाम खत्रियों की ओर इंगित करता है। श्री मैक्रिंडल ने भी इसी क्षेत्र के बारे में यह टिप्पणी लिखी है 'रावी और व्यास नदियों के बीच व्याप्त भूक्षेत्र के खत्री शासक थे।' यही क्षेत्र खत्री जाति का मूल स्थान है।

नव क्षत्रिय' (राजपूत इत्यादि) :

इस विषय में कनिंधम अपनी उसी पुस्तक में लिखते हैं 'उस स्थान पर अग्निकुल के चारों परिवारों की ओर संकेत किया गया है। ये चार कुल हैं:— चौहान, सोलंकी, पावर और परिहार। ऐसा सम्भव है कि ये लोग भी आक्रामक रहे हों, जिन्होंने बौद्धों से संघर्ष में ब्राह्मणों का पक्ष लिया हो। इनकी सफलता से प्रभावित होकर ब्राह्मणों ने उन्हें अग्निकुल का बना दिया ताकि वे सूर्य तथा चन्द्रवंशियों से अलग ही रहें।' यह यज्ञ 'माउन्ट बाबू' पर किया गया था।

फारसी में लिखित भारत का इतिहास 'तारीखे फरिस्ता' के लेखक ने लिखा है 'ब्राह्मण और क्षत्रिय वैदिक कालीन वंश हैं। राजपूत एक आधुनिक वंश है यह एक तथ्य है कि महान राजपूतों के किसी वंश का उल्लेख चतुर्थ शताब्दी के पहले नहीं मिलता।

श्री रमेशचन्द्र दत्त ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ सिविलाइजेशन इन इन्डिया' में लिखा है 'राजपूत लोग भारत पर आक्रमण करने वाले 'सिथियानो' के वंशज हैं जो क्रमागत अनेक शताब्दियों तक भारत में आते रहे।'

सिख धर्म के समस्त १० गुरु खत्री ही थे।

पुरोहित गोत्र एवं प्रवर

खत्रियों के पुरोहित निर्विवाद रूप से सारस्वत ब्राह्मण रहे हैं। सूर्यवंश के पारिवारिक पुरोहित वशिष्ट थे इन्ही के आठवें पुत्र 'जीतल' के वंशज 'जैतली' हुये जो सारस्वतों की ही एक उपजाति है और आज भी मेहरोत्रों (सूर्यवंशीयों) के पुरोहित होते हैं।

'सेकन्ड बुक्स आफ दि ईस्ट' में गोत्र तथा प्रवर के सम्बन्ध में कहा है 'गोत्र' शब्द का संकेत ग्यारह ऋषियों अथवा अगस्त्य के वंशजों से है। 'प्रवर' शब्द का संकेत अपने कुल के मंत्राकृत अर्थात् यज्ञ के शुभारंभ पर ब्राह्मणों द्वारा प्रतिष्ठित पूर्वजों में है। गोत्र दो प्रकार के होते हैं लौकिक गोत्र एवं वैदिक गोत्र। लौकिक गोत्र परिवारिक नाम से सम्बन्धित है और वैदिक गोत्र पुरोहित ऋषि से सम्बन्धित है। 'जमदग्नि, भरद्वाज' तथा कुछ अन्य ऋषि गोत्र निर्माता थे। खत्री भी गोत्रों का प्रयोग अपने वंश के प्रिय पुरोहितों का संकेत करने के लिये हीं करते हैं। विभिन्न परिवारों का पुरोहित एक ही ऋषी हो सकता है अतः उनका गोत्र भी एक ही होगा।

मनुस्मृति में कहा गया है दान, श्राद्ध तथा विवाह आदि के अवसर पर संकल्प क्रिया के समय लोगों के नामों के बाद इन नामों का प्रयोग अनिवार्य रूप से वैदिक काल से होता आया है। ब्राह्मण 'शर्मा' क्षत्रिय "वर्मा" वैश्य "गुप्ता"

धार्मिक कृत्यों एवं संस्कारों को कराते समय खत्रियों के पुरोहित उनके नाम के आगे उपनाम वर्मा का प्रयोग अनिवार्य रूप से करते हैं तथा पुरोहित गण खत्रियों के लिये रचित जन्मपत्र, लग्नपत्रिका आदि में अनादिकाल से उनके लिये क्षत्रिय, गोत्र तथा उपनाम वर्मा का प्रयोग करते आ रहे हैं।

खत्री और व्यापार :

बौद्ध धर्म को स्वीकार न करने के कारण महान संकट में पड़ गये खत्रियों ने मनुस्मृति में निर्देशित व्यवस्था के अनुसार वाणिज्य व्यवसाय अपना लिया। यह एक इतिहासिक तथ्य है कि एक युग के सैनिक विजेता दूसरे युग के कुशल व्यापारी बन जावे क्रियाशील मस्तिष्क वाले अपने लिये उचित व्यवसाय खोज ही लेते हैं अतः खत्रियों ने भी औद्योग एवं व्यापार को अपना लिया।

ऊपर के विवरणों को प्रस्तुत करने का उद्देश्य मात्र केवल इतना है कि अपनी नयी पीढ़ी को खत्री जाति के ऐतिहासिक महत्व की कुछ बातें बतलाई जा सकें।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सेठों के यहाँ फागुन अवारन क्यों है ?

—खत्री मूलचन्द सेठ, कानपुर

खत्री जाति उज्ज्वल संस्कार सम्पन्न जाति रही है। "कुल धर्म" पालन की परिपाटी यथासाध्य यह जाति निरन्तर मानती जा रही है। पंजाबी खत्री नित्य पुरोहित और यदि वह न हो तो किसी सारस्वत ब्राह्मण को 'हन्दा' देकर भोजन करते थे। सोलह ग्रास अन्न का दान 'हन्दा' कहलाता था। इसी हन्दे की रोटी के कारण मुसलमानों के जमाने में एक सारस्वत ब्राह्मण को प्राण तक देना पड़ा, जिसकी कथा इस प्रकार है :—

एक योग्य सारस्वत ब्राह्मण को किसी बादशाह ने अपना दीवान या मन्त्री बनाया। फागुन के महीने में दुशाला ओढ़े हाथी पर सवार उपरोक्त दीवान जी की सवारी शहर के अन्दर शाही वैभव के साथ चली जा रही थी। इसी अवसर पर मार्ग में पड़ने वाले एक मुहल्ले की रहने वाली किसी वृद्धा ने 'हन्दे' को दो रोटियाँ हाथ में लिये अपने पुरोहित दीवान साहब को सुनाकर ताना मारा कि अब तो पुरोहित जो दीवान हो गये हैं अब इनको रोटियों की क्या परवाह है ? वृद्धा के मुँह से यह बात निकलते ही दीवान जी ने हाथी को बैठाने की आज्ञा दी और स्वयं हाथी से उतर वृद्ध माता के सामने जा दुशाले को झोली पसार दी और बोले, 'ला दे दे, इन रोटियों को तो मैं अपनी दीवानी से बढ़कर मानता हूँ," उसने भी झोली में रोटी डाल ही तो दी। दीवान जी भी झोली दबाये पुनः हाथी पर सवार हो अभीष्ट स्थान को चले गये।

परन्तु संसार में चुगलखोरों की कमी तो है नहीं, किसी ने बादशाह के कानों तक यह बात पहुँचा दी। सुनते ही बादशाह ने क्रोधित हो दीवान जी को बुलाकर कहा कि ऐसी ऊँची दरबारी नौकरी से भी तुम्हारा पेट नहीं भरता कि राह चलते रोटी के टुकड़े माँग कर, बादशाही ओहदे की मिट्टी खराब करते हो। मैं तुम्हारी लियाकत से अब तक तुम पर मेहरबान रहा, इसी से तुम इतना बड़ा कुसूर करने पर भी इस वक्त तक जिन्दा रहने पाये। खबरदार ! अब कभी ऐसी हरकत न करना। नहीं तो अपनी जान से हाथ धो बैठोगे। अगर खर्च तुम्हारा पूरा न पड़ता हो तो इस शर्त पर तुम्हें दरबार से जागीर मिल सकती है कि इस भीख माँगने के पेशे को हमेशा के लिए कतई छोड़ दो। परन्तु दीवान जी ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की कि 'इस दरबार से मेरा पालन पोषण भली भाँति होता है। अवश्य राह में रोटी लेने का मैं अपराधी हूँ। परन्तु उस बुड्ढी का ताना मैं सहन नहीं कर सका। अपनी जान हथेली पर लेकर मैंने यह काम विचारपूर्वक ही किया था। सच तो यह है कि आपकी दी हुई जागीर और नौकरी दोनों से मैं अपनी कुल-परम्परा की इस वृत्ति को विशेष मूल्यवान समझता हूँ। जिसने जन्म लिया, उसे एक दिन मरना अवश्य है। मौत के डर से मैं सत्य का त्याग नहीं कर सकता। आपकी कृपा से मैंने आज तक आपकी सेवा की, अपने इस कर्तव्य पालन में मैं अपनी योग्यता कुछ भी नहीं समझा, सब आपका ही प्रताप है। परन्तु मेरे मरने के बाद मेरी सन्तति यदि मूर्ख और अयोग्य निकली तो यह पद मिलना तो दूर रहा, आपकी दी हुई जागीर भी या तो उनसे छिन जायेगी, या वे स्वयं कौड़ियों के मोल बेंच डालेंगे और दाने-दाने के लिए दूसरों का मुंह ताकते रहेंगें। परन्तु उस समय पर, मेरी कुल परम्परा की यह यजमानी वृत्ति यदि बनी रहेगी तो वे चार को खिलाकर खाने लायक अवश्य रहेंगें। यजमानों की इस अमूल्य जागीर को हमारे पूर्व पुरुष भोगते आये हैं और भविष्य में जब तक हमारा वंश पृथ्वी पर रहेगा, इसका अधिकारी रहेगा। मैंने भली भाँति विचार कर देख लिया है, इस वृत्ति को तो मैं कभी नहीं छोड़ूंगा। समय के फेर से इस समय आपका दास अवश्य हूँ परन्तु पूर्व पुरुषों की इस अर्जित अनमोल जागीर को खोने का अधिकार धर्मतः मुझको नहीं

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

है। मेरे अपराध का दण्ड आप दे सकते हैं, मैं भोगने को तैयार हूँ।" दीवान जी का यह स्पष्ट गम्भीर उत्तर सुनकर बादशाह ने क्रुद्ध होकर जल्लादों से उनकी खाल खींच लेने की आज्ञा दे दी। उसी समय बात की बात में उनकी खाल खिंच गई। तभी से उनकी सन्तान की 'अल्ल-खलखिंच, कुमड़िये हुई और फागुन का महीना भी इस कुल में तथा उनके यजमान वत्सकुल के सेठ, बैजल, कक्कड़, तलवार आदि में भी अवारन अर्थात् शुभ कर्म मात्र के लिए त्याज्य माना जाता है। आज भी इस महीने में सेठ नया वस्त्र तक नहीं पहनते। विशेषकर पुराने लोग तो फागुन भर अशौच का चिन्ह धारण कर अपने पुरोहित जी के शोक में बिताते हैं।

उपरोक्त सत्य कथा से यह स्पष्ट है कि पुरोहित-यजमान का वह प्राचीनतम सम्बन्ध कितना सुदृढ़ है जिसकी रक्षा के लिए अमूल्य प्राणों को तृणवत समझ त्याग करना भी कोई बड़ी बात नहीं समझी गई।

(यह कथा बाबू बालकृष्ण प्रसाद द्वारा रचित "खत्री इतिहास" के आधार पर प्रस्तुत की जा रही है।)

गीता का उपदेश :

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियत कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ॥

卐 याद रक्खो 卐

किसी गरीब के सामने गर्व भरी वाणी बोलना, उनके साथ रूखा और कठोर व्यवहार करना भगवान् का अपराध है; क्योंकि उस गरीब के रूप में भगवान् ही तुम्हारे सामने प्रकट हैं। अतएव सभी के साथ नम्र होकर मधुर वाणी बोलो; अपनी विनय-विनम्र पीयूषवर्षिणी वाणी तथा व्यवहार के द्वारा सर्वत्र शीतल मधुर-सुधा की धारा बहा दो; दुःख की विष-ज्वाला से जलते हुए हृदयों में सुधा ढालकर उन्हें विष शून्य, शीतल शान्त और मधुर बना दो और यह सब करो केवल भगवान् की सेवा के लिए और करो सब कुछ उन्हीं को शक्ति, प्रेरणा और वस्तु मानकर। तुम्हारी निरभिमान त्यागमयी सेवा से भगवान् बड़े प्रसन्न होंगे और उनकी प्रसन्नता तुम्हारे जीवन को परम सफल बना देगी।

* * *

बदला लेने की भावना कभी मन में मत आने दो। अपना बुरा करने पर, गाली देने पर, निन्दा करने पर, मारने पर भी किसी का कभी न बुरा करो, न बुरा चाहो, न बुरा होते देखकर प्रसन्न होओ, उसको हृदय से क्षमा कर दो। जैसे स्वयं के अपराध पर व्यक्ति अपने को दण्ड देना नहीं चाहता—क्षमा चाहता है, ऐसे ही सब में अपनी आत्मा को समझ कर सबको क्षमा करो। बदला लेने की भावना बहुत बुरी है। बदला लेने की भावना मन में रखने वाला मनुष्य इस जीवन में कभी शांति, सुख और प्रेम नहीं पाता तथा मरने पर पिशाच होता है। वह स्वयं डूबता है और वैर भाव के बुरे परमाणु वायुमण्डल में फैलाकर दूसरों का भी अनिष्ट करता है।

* * *

दुःख मनुष्य के विकास का साधन है। सच्चे मनुष्य का जीवन दुःख में ही खिल उठता है। सोने का रंग तपने पर ही चमकता है।

* * *

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती वर्ष पर
हार्दिक अभिवादन सहित :
श्रीमती खत्री कामिनी टण्डन
फोन
२५२०४१
सर्वश्री आस्था ज्वैलर्स
एवं
अमर शापिंग सेन्टर
८/१२३, आर्यनगर (सब्जी मंडी के पास)
कानपुर

With best compliments from :

Phone : Office : 54292
Resi : 52089

SCIENCE CORPORATION
104, LEADER ROAD, ALLAHABAD-211003

Dealers of :
ALL KIND OF SCIENTIFIC INSTRUMENTS LABORATORY & INDUSTRIAL CHEMICALS

Authorised Stockist :

- B. D. H. Chemicals
- Loba Chemicals
- Qualigens Fine Chemicals
- REMI INSTRUMENTS
- S M. Chemicals
- BOROSIL Glasswares
- Yorco Instrwments
- POLAR Cover Glasses and Micro Slides (Blue Star)
- E. Merck Chemicals
- IDPL Chemicals
- K. ROY Balances

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती वर्ष पर शुभकामनाएँ

खत्री सोमनाथ, बहल

धर्मो रक्षति रक्षितः

मैट्रो शूज़

अधिकृत विक्रेता

बेटी शूज़

आधुनिक डिजाइनों में स्त्रियों एवं बच्चों के जूते, सैन्डिल, चप्पलों के विक्रेता

किनारी बाजार, आगरा-३

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

Phone
77051
77052
76335

M/S DAS MOTORS

Das Buildings
Begum Bridge
Meerut Cantt.

●

Acthorised Dealers for :

CLASSIC, AMBASEDOR CARS, HINDUSTAN
COMMERCIAL VEHICLES, MAHINDRA JEEPS,
MINI TRUCKS AND MINI BUSES

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

के अवसर पर

हार्दिक-अभिनन्दन

स्व. श्री विश्वनाथ प्रसाद टण्डन जी

जिनके आशीर्वाद से

निरन्तर सेवारत प्रतिष्ठान

आधुनिक एवं आकर्षक

साड़ियों का

एकमात्र प्रतिष्ठान

फोन : ६३२५२

सर्वश्री विश्वनाथप्रसाद नन्दलाल

हर प्रकार की बनारसी एवं

जरी सामान के विक्रेता

मच्छरहट्टा चौक

वाराणसी-२२१००१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के
प्रकाशन पर हार्दिक बधाइयाँ :

खत्री पूरन चन्द्र बेरी

आगरा खत्री समाज के नक्षत्र

स्व० श्री भगवान दास बेरी द्वारा स्थापित

प्रतिष्ठान बेरी ब्रादर्स

स्थापित १९२२ ★ स्वर्ण जयन्ती १९७२

हर प्रकार के उच्चकोटि के आधुनिक डिजाइनों में
जूते, सैन्डिल एवं चप्पलों के लिये सेवारत

सहयोगी प्रतिष्ठान

बेरी शूज़ कारपोरेशन

एथलेटिक्स स्पोर्ट शू (रामनाथ प्रोडेक्ट)
के उ० प्र० के लिये अधिकृत थोक बिक्रेता।

किनारी बाजार, आगरा-३

निवास ७४०७३ —: फोन :— ७२४८९

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्रियों की जातीय सम्पत्ति क्या है ?

—खत्री विश्वेश्वर नाथ मेहरोत्रा

हमारी संस्कृति, सभ्यता, संस्कार और जातीय परम्परायें ही हमारी सम्पत्ति हैं। खत्री जाति की इस अमूल्य सम्पत्ति की रक्षा करने और उसे आज के युग में भी अति आधुनिक परन्तु जातीय तौर पर अलग पहचान बनाये रखने में हमारे पूर्वजों को अथक परिश्रम के साथ ही अनेक संघर्षों से होकर गुजरना पड़ा है।

वह कौन सी शक्ति है जिसके कारण खत्री जाति ने हर युग में असाधारण प्रतिभा और स्फूर्ति के लोगों को जन्म दिया और आज भी उसकी सन्तानें जीवन के हर क्षेत्र में उच्चतम पदों पर विराजमान हैं। वह है हमारी सभ्यता और संस्कार।

क्या सभ्यता, संस्कार एवं परम्पराओं की बातें केवल किताबी बातें हैं? नहीं। इनका हमारे जीवन से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम खत्री लोग वैदिक संस्कृति को मानने वाले हैं जो अति प्राचीन होते हुये भी जीवित और गतिशील है। किसी भी संस्कृति को गतिमान बनाये रखने में दो व्यवस्थाओं का बहुत बड़ा हाथ होता है।

१—पिन्ड-गत प्रगति को सुरक्षित बनाये रखना।

२—संस्कार-गत प्रगति को संतुलित रखने का प्रयास।

इनका अर्थ क्या है? पिन्ड की शक्ति की सुरक्षा का अर्थ है—रक्त की श्रेष्ठता को बनाये रखने का प्रयास अर्थात विवाह सम्बन्धों पर प्रभावी नियंत्रण।

विवाह सम्बन्ध साधारणतः तीन प्रकार के होते है :—

१—(EXOGAMY) अर्थात सगोत्र विवाह। (अति निकट के रक्त सम्बन्धों में विवाह करना)।

२—(ENDOGAMY) अर्थात सजातीय विवाह (एक ही प्रकार के रक्त समूह में परन्तु अति निकट के सम्बन्धों को बचाकर विवाह सम्बन्ध)।

३—(HYPERGAMY) अर्थात विजातीय विवाह (बिना किसी प्रकार के रक्त समूह का विचार किये विवाह सम्बन्ध स्थापित करना)।

आज के वैज्ञानिक युग में यह सिद्ध हो चुका है कि अति निकट के विवाह सम्बन्ध सन्तान के मानसिक एवं शारीरिक प्रगति में बाधक होते हैं और विजातीय विवाह विकृतियाँ उत्पन्न करते हैं।

इन्हीं वैज्ञानिक कारणों को ध्यान में रखते हुये हमारे पूर्वजों ने माता की पाँच पीढ़ी और पिता की सात पीढ़ी तक विवाह सम्बन्धों को वर्जित माना तथा अपने ही समूह में विवाह सम्बन्ध स्थापित करने की अनुमति दी जो हमारी जातीय परम्परा बनी जिसके कारण आज भी हमारे यहाँ

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खन्ना-खन्नों में लड़की नहीं देता, मेहरोत्रा, टण्डन, कपूर, सेठ आदि कोई भी परिवार अपनी ही अल्ल की लड़की लेना पसन्द नहीं करता।

विजातीय विवाह सम्बन्धों को हमारे समाज ने कभी स्वीकार नहीं किया।

बहुत से युवा यह कहते सुने जाते हैं कि विवाह हमारा व्यक्तिगत मामला है इसमें परिवार के बड़ों तथा समाज को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। ऐसा नहीं है। विवाह पूर्णतः एक सामाजिक क्रिया है इसके द्वारा हम अपने समाज में एक नये परिवार की स्थापना करते हैं जो आगे चलकर हमारे समाज को नयी पीढ़ी प्रदान करता है। हमारी नयी पीढ़ी मानसिक और शारीरिक तौर पर प्रतिभाशाली हो तथा समाज के बौद्धिक स्तर को ऊंचा बनाये रखने में सफल हो यह देखना और उसी के अनुकूल विवाह सम्बन्धों की अनुमति देना समाज का उत्तरदायित्व है। यह आवश्यक है कि हमारी सीमाओं के अन्दर रहते हुये हर युवक-युवती को अपना जीवन चुनने की पूर्ण स्वाधीनता मिले।

संस्कारगत प्रगति का अर्थ क्या है ?

विधान-नियम, राजनीति, शास्त्र, साहित्य, विज्ञान इत्यादि के क्षेत्र में की गई मानव प्रगति संस्कारगत प्रगति कही जायेगी। इन सभी क्षेत्रों में दूसरी सभ्यताओं से मिलन एवं आदान-प्रदान अनिवार्य है। इन क्षेत्रों में की गई प्रगति में से श्रेष्ठ को ग्रहण करना और अपने सामाजिक जीवन के संतुलन को बनाये रखते हुये विकास क्रिया को गति देना यही संस्कारगत प्रगति को संतुलित बनाये रखने का अर्थ है। जिसे हमारे पूर्वजों ने बड़ी कुशलता से पूरा किया है।

जिस प्रकार किसी भी मकान अथवा महल का बाहरी वैभव उसकी मजबूत बुनियाद पर टिका होता है परन्तु वह दिखाई नहीं देती उसी प्रकार हमारे आर्थिक और सामाजिक वैभव की इमारत पिण्डगत-प्रगति और संस्कारगत प्रगति के संतुलन पर टिकी होती है जो अदृश्य है। मनुष्य के शरीर में छिपे शक्तिशाली रक्त पिण्ड और उसके संस्कार ही उसके वैभव की बुनियाद होती है। इसलिये यदि हमें अपनी आर्थिक और सामाजिक प्रगति को टिकाये रखना है तो हमें अपनी परम्पराओं और संस्कारों की रक्षा करनी होगी तथा अपनी नयी पीढ़ियों को उसकी वैज्ञानिकता और अनिवार्यता बतानी पड़ेगी।

इस हेतु जरूरी है कि हम अपने इतिहास और संस्कारगत पुराने साहित्य को प्रकाश में लायें। महासभा ने इस ओर प्रयत्न शुरू किये हैं। आज हमारी वर्तमान पीढ़ी का यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि खत्री जाति के अपने समस्त प्राचीन ग्रन्थों को पुनः प्रकाशित कर नयी पीढ़ियों के लिये उसे सुरक्षित करें।

'हिन्दी एक जानदार भाषा है वह जितनी बढ़ेगी, देश को उतना ही लाभ होगा।'
यह स्वयं अपनी ताकत से बढ़ेगी। —प० जवाहरलाल नेहरू

यदि हम अपनी मातृ भाषा को खो बैठे तो निश्चय ही हमारी राष्ट्रीयता का भी लोप हो जायगा।' —राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

CC-0. Panmuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

"खत्री दिवस" विजयोत्सव घोष

रचयिता:—स्व० कृष्णचन्द्र मेहरोत्रा
वाराणसी

मैं 'विजयोत्सव' हूँ। वीरता, शौर्य तथा विजय की प्रतीक। सूर्यवंशी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की अजेय क्षत्रिय कुल परम्परा हूँ। सदा सत्य, सदा शिव, सदा सुन्दर महाशक्ति का पुनीत आह्वान-काल हूँ। प्रीति, उल्लास-आनंद का संगम हूँ।

अज्ञान पर ज्ञान की विजय, अंधकार पर प्रकाश की विजय, जड़ता और मोह पर वैराग्य की विजय, अनीति पर नीति की विजय, निष्क्रियता पर सक्रियता की विजय, विघटन पर संघटन की विजय हूँ। इसलिए मैं 'विजयोत्सव' हूँ।

पवित्र भारत भूमि पर हिमालय से कन्याकुमारी तक निवास करने वाली खत्रिय संतानों! उठो! जागो!! परस्पर मिलो, प्रेम से, उत्साह से, आनंद से। तुम्हारा रोम-रोम शौर्य से पुलकित हो। दुख से सुख को, सुख से दुख को बाँटो। धारण करो अपनी भेरी में विजय निनाद और चतुर्दिक व्याप्त सामाजिक चुनौतियों को स्वीकार करो। तुम वीर पुत्र हो, अमृत पुत्र हो। तुच्छ अवरोधों से भयभीत होना कायरता है। जहाँ भी हो, जिस क्षेत्र में हो, गतिमान रहो, श्रेष्ठता का परिचय दो, अकंपित हो निश्चय पूर्वक बढ़ते जाओ, यही विजय संदेश है।

★ जाति - गान ★

अखिल भारतीय खत्री महासभा

ब्रह्म-विष्णु-शिव शक्ति उपासक, निर्कार ओंकार आराधक।
सूर्यवंश तव, चंद्रवंश तव, अग्निवंश जय हे, क्षत्रि जाति जय हे॥
खत्रि जाति जय हे।

शिवा, चण्डिका, जोन वाराही, अष्टभुजी जय विन्ध्यवासिनी।
वैष्णों माता ज्योताँवाली, जय माता दी जय हे, क्षत्रि जाति जय हे।
खत्रि जाति जय हे।

भृगु अंगिरा अत्रिकुल संस्कृति, नानक, श्रीचन्द, गोविन्द, संतति।
सैनिक, शासक, भूपति, पालक, सो निहाल जय हे, क्षत्रि जाति जय हे।
खत्रि जाति जय हे।

ऋद्धि-सिद्धि समृद्धि दिवाकर, पर दुःख कातर, सहज कृपाकर।
जन-जन सेवक, सेवा प्रेरक, आर्यवंश जय हे, क्षत्रि जाति जय हे।
खत्रि जाति जय हे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर खत्री समाज को हार्दिक बधाईयां :
खत्री दीनानाथ कपूर संरक्षक 'खत्री हितैषी'

फोन–६७७७६ तार–राम दरबार

मे० बैजनाथ एण्ड सन्स (स्थापित १८६४) क्लाथ मर्चेन्टस

मे० राममोहन ब्रादर्स (,, १६५७), सेलिंग ऐजेन्ट्स

जयश्री टैक्सटाइल्स रिसड़ा (कलकत्ता)

१७/१२६/३, सेवका बाजार आगरा

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

अरोड़ा ऑटो मोबाईल्स

आइल, जुट, ग्रीस, मोटर व ट्रैक्टर पार्ट्स के विक्रेता

Stockist : G. S. Auto Parts, Franko Hub Drums, Thrishul Shafts, Hella Bulbs

● बाल किशन अरोड़ा
मंत्री, श्री नागौरी खत्री पंचायत
नागौर-३४१००१

● रविन्द्र कुमार अरोड़ा
सदस्य, श्री नवयुवक खत्री मण्डल
नागौर-३४१००१

मे० मंगलाल बालकिशन अरोड़ा–दिल्ली दरवाजा के बाहर, नागौर-३४१००१ राज.

With best compliments from :

ॐ

S. N. TANDON & BROS

Phones
Shop : 69718
Resi. : 52845

Specialist in : GOVT. ORDER SUPPLIERS & CONTRACTORS

Chief Stockists of :
- Shalimar Paints Ltd.
- Goodlass Nerolac Paints Ltd.
- Jenson & Nicholson (India) Ltd.
- Garware Paints Ltd.
- Bombay Paint & Allied Products
- Gillanders Arbuthnot & Co. Ltd.
- Anglo Dutch Paints Etc.

Wholesalers & Retailers in :
All Kinds of Paints, Varnish
Turpentine, Thinner, Coaltar
Bitumen, Trafelt & Dry
Colours Ete.

47/6, BAGIA MANI RAM
KANPUR–208001

With best compliments from :

MECH INDUSTRIAL CONSULTANTS

HEAD OFF. 6, SUBHASH BAZAR MEERUT CITY–250002

Facilities Available

IDENTIFICATION OF PROJECTS PROJECT PROFILES, LOAN FROM U. P F. C.,
P. I. C. U. P. BANKS, I. D. B. I ALSO ERECT, COMMISSION AND
INSTALL MACHINERY.

National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर शुभ कामनायें :—

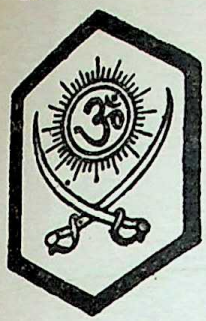

खत्री श्रीमती एवं श्री मणि राम साहनी

के परिवार की ओर से खत्री हितैषी के ऐतिहासिक

स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

के प्रकाशन के अवसर पर

हार्दिक शुभ कामनाएँ

साहनी ट्रेडर्स

तालबेहट

खत्री सभा लहरपुर वर्ष १९८७-८८

कार्यसमिति के पदाधिकारी एवं सदस्यों के नाम :

१—खत्री त्रिभुवननाथ पुरी (अध्यक्ष)
२—खत्री सुशीलकुमार कपूर (उपाध्यक्ष)
३—खत्री कैलाशचन्द्र पुरी (महामंत्री)
४—खत्री अमरनाथ पुरी (कार्यालय मन्त्री)
५—खत्री हरगोविन्द पुरी (संगठन मंत्री)
६—खत्री राम गोपाल पुरी (कोषाध्यक्ष)
७—खत्री रमाशंकर कपूर (सदस्य)
८—श्याम सुन्दर पुरी (सदस्य)
९—रघुवीरशरण मेहरोत्रा (सदस्य)
१०—उमेश कुमार पुरी (सदस्य)
११—वीरेन्द्रनाथ कपूर (सदस्य)

मुनीमजी की मशहूर सट्टी की बनारसी साड़ी की विश्वसनीय आढ़त

मे० शान्ती सिल्क स्टोर्स

सी-के २०/२४, लक्खी चौराहा
चौक, वाराणसी

—उपरोक्त—

मे० बनारसी सिल्क स्टोर्स

ब्रान्च—शाप नं० १ ग्राउन्ड फ्लोर—
यूनियन बैंक बिल्डिंग गोलघर,
वाराणसी (उ०प्र०)

फोन घर:—५२४१९
६६२४९

सहयोगी प्रतिष्ठान :—

मे० जे०जे० एसोसिएट्स

बिल्डर्स व गवर्नमेन्ट कान्ट्रैक्टर
२४, शिवाजी नगर कालोनी
महमूरगंज, वाराणसी
फोन : ५२२११

मे० जे०सी० मेहरोत्रा कान्ट्रैक्टर्स

के-२२/७७, ब्रह्माघाट, वाराणसी (उ०प्र०)

यूनिक कार्मशियल कारपोरेशन

के-२२/७७, ब्रह्माघाट, वाराणसी (उ०प्र०)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

खत्री कमलेश कुमार कंचन

रवि कटपीस कार्नर

तालबेहट (ललितपुर)

कांचन मेडिकल हाल

डा० रघुबर दयाल कंचन

तालबेहट

खत्री श्री बृजभूषण कश्यप

प्रो० साधना साड़ी सेन्टर

तालबेहट

आशीष ट्रेडर्स

तालबेहट

प्रो० नीरज कुमार खत्री

राजेश इलेक्ट्रानिक्स

तालबेहट (ललितपुर)

सुदामा ओंमकार सरन

फोन दुकान १६०
घर ८०

मर्चेन्ट एवं एजेन्ट

काशीपुर–२४४७१३ जि० नैनीताल

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर खत्री समाज को हार्दिक बधाईयाँ :

खत्री भोला नाथ कंचन

भोला किराना स्टोर

तालबेहट

खत्री राकेश कुमार मनोज कुमार कंचन

अंजली परमाल वर्क्स

तालबेहट

खत्री श्रीराम कमलेश कुमार साहनी

शासकीय ठेकेदार

तालबेहट

सर्वश्री सुशील राठी ईश्वरन त्रिवेदी

● ऐडक्रिमेशन ● डिजाईनर्स ● ब्लाक स्क्रीन प्रिंटर्स
● सेल्फ एडहिसिव स्टीकर्स निर्माता

माल्वाड (पश्चिम) बम्बई-४०००६४

Phone : 53119

K. J. SONS

45/62-A, GAYA PRASHAD STREET. KANPUR

Dealers in :---ALL KINDS OF ELECTRICAL GOODS

स्व० श्री राजनारायन टण्डन जी

के आशीर्वाद से सेवारत प्रतिष्ठान

सर्वश्री जी०के० इलेक्ट्रिकल्स

३३/१५०, गया प्रसाद लेन, कानपुर

फोन प्रतिष्ठान
६०२२७, ६७०४१ P P
निवास : २१२३०७

जी.ई.सी., जेनलेक ई.सी.ई.एंकर कोस्टेल मेगी एवं सुपर जेम मेक बिजली की वस्तुओं के बिक्रेता एवं स्टाकिस्ट

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर हार्दिक शुभकामनाओं सहित :

राजेन्द्र मोहन इंडस्ट्रीज एंड संस फोन ५७

● थोक वस्त्र विक्रेता ●

★ राजेन्द्र आयरन एण्ड मिल्क स्टोर

★ राजेन्द्र ब्रिक इंडस्ट्रीज ★ राजेन्द्र होजरी

काशीपुर (नैनीताल)

सहगल प्रोपर्टी डीलर फोन आफिस ५८२ घर २७१

चल व अचल सम्पत्ति, जमीन जायदाद, मकान, दुकान आदि की बिक्री एवं खरीद के लिए सम्पर्क करें :—

रमेश चन्द्र सहगल

खत्रियान स्ट्रीट, काशीपुर (नैनीताल)

सर्वश्री नवीन साड़ी इम्पोरियम

सूटिंग, शर्टिंग, साड़ियों की एकमात्र दूकान

टरनरगंज मेन चौराहा, कालपी

स्वामी-जयकुमार खत्री

खत्री प्रह्लाद प्रसाद मेहरोत्रा (संरक्षक)

स्वतन्त्रता सेनानी भू० पू० उपाध्यक्ष मुजफ्फरपुर नगरपालिका

खत्री सभा, मुजफ्फरपुर (उत्तर बिहार)

राजा ट्रेडिंग सिन्डीकेट, मुजफ्फरपुर

विद्युत सामग्रियों का एकमात्र विश्वसनीय प्रतिष्ठान

खत्री अनूप कुमार कंचन

रशमी इलैक्ट्रिकल्स

तालबेहट

अशोक कुमार मोहनलाल वट्टा

वट्टा रेस्टोरेन्ट

तालबेहट

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

धार्मिक उत्सव तथा पर्व

—खत्री लक्ष्मी नारायण टंडन (लखनऊ)

हमारा नया वर्ष होलिका दहन के पश्चात चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है। हिंदू त्यौहारों के विषय में लोकोक्ति 'सात बार नौ त्यौहार' ठीक ही है। किन्तु हिन्दुओं के चार त्यौहार अत्याधिक महत्व के हैं। १. (रक्षा बन्धन या सलीनों ब्राह्मणों का) २. दशहरा या विजया दशमी (क्षत्रियों का) ३. दीपावली या दिवाली (वैश्यों का) तथा ४ होली (शूद्रों का) इन चारों त्यौहारों को सभी वर्णों के लोग समान उत्साह प्रेम और श्रद्धा से मानते हैं। पर विशेष महत्व का त्यौहार ब्राह्मणों का रक्षा बंधन, क्षत्रियों का दशहरा, वैश्यों का दिवाली तथा शूद्रों का होली होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि हम हिन्दू किस प्रकार एक दूसरे के त्यौहारों के प्रति श्रद्धाभाव रखते थे। इन चारों को हम राष्ट्रीय त्यौहार भी कह सकते हैं।

इन राष्ट्रीय त्यौहारों के अतिरिक्त कुछ वे त्योहार या पर्व हैं जिन्हें हम 'धार्मिक पर्व या उत्सव' कह सकते हैं। इन दोनों में भेद स्पष्ट देखा जा सकता है। यद्यपि राष्ट्रीय त्यौहारों में भी 'धार्मिकता' का अंश है पर ईन दो प्रकार के उत्सवों में कोई विभाजन रेखा खींचनी कठिन है और वास्तव में देखा जाय तो इनमें विशेष भेद है भी नहीं। हां, उपर्युक्त चार त्यौहार देशव्यापी हैं। कश्मीर से कुमारी अंतरीप और पंजाब बम्बई प्रांत से आसाम बंगाल प्रांत तक यह समान भाव से मनाए जाते हैं जबकि 'धार्मिक पर्व' स्थान विशेष पर मनाए जाते हैं। उदाहरणार्थ काशी में शिवरात्रि, अयोध्या में रामनवमी तथा मथुरा में जन्माष्टमी, दक्षिण भारत में गणेश चौथ (विशेष कर महाराष्ट्र में) सबसे अधिक उत्साह से मनाए जाते हैं। पर साथ ही यह भी हम न भूलें कि देश के अन्य स्थानों में भी रामनवमी, जन्माष्टमी आदि किसी न किसी अंश में मनाई ही जाती है।

कुछ ऐसे भी उत्सव या पर्व होते हैं जिनका संबंध हमारे पुरखों से होता है। उदाहरणार्थ पितृ विसर्जन अमावस्या तथा पितृपक्ष, अक्षय तीज, निर्जल एकादशी तथा मकर संक्रांति आदि। राष्ट्रीय त्यौहारों पर भी कहीं-कहीं पितरों के उपलक्ष में पूजा पाठ तथा श्रद्धांजलि दी जाती है, किन्तु 'धार्मिक पर्वों' पर ऐसा कभी नहीं किया जाता।

कुछ पर्वों का संबंध 'गुरु' से होता है। व्यास पूजा, बसंत पंचमी आदि इसके उदाहरण हैं। कुछ पर्व केवल स्त्रियों के होते हैं जैसे कजली तीज। फिर कुछ ऐसे पर्व या त्यौहार होते हैं जो केवल कुछ विशेष जातियों अल्लों या वंशों तक ही सीमित है। वे विशेष पर्व कहला सकते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक अमावस्या तथा विशेष रूप से सोमवती अमावस, प्रत्येक रविवार (सूर्यदेव का दिन), चन्द्रवार (चन्द्रदेव का दिन), मंगलवार (महाबीर का दिन), विशेष रूप से श्रावण मास के चन्द्रवार शिव भक्तों के लिए और असाढ़ मास के चन्द्रवार, शीतला तथा काली जी के भक्तों के लिए पवित्र दिवस हैं। प्रत्येक मंगलवार मंगल चण्डी तथा हनुमान जी के विचार से पवित्र दिन हैं तथा बुधवार शीतला भक्तों के लिए पवित्र दिन हैं। कुछ कृषकों के पर्व बैशाखी, असाढ़ी, नवा, मौनी अमावस आदि हैं। इनमें से कुछ खत्रियों के यहाँ मनाए जाते हैं और कुछ नहीं। महीने में दो एकादशी के तथा दो प्रदोष के व्रत भी हिन्दू रखते है। पूर्णमासी का व्रत भी रखा जाता है। जब कभी पूर्णमासी को चन्द्र ग्रहण पड़ जाता है तथा अमावस्या को सूर्यग्रहण तब उन दिनों विशेष रूप से व्रत, दान पुण्य तथा पूजा पाठ हिन्दू करते हैं।

हमारे यहाँ जब ऋतु परिवर्तन होता है, नया-नया खेत बोया जाता है या पका खेत काटा जाता है तब ही होली, दिवाली, दशहरा आदि उद्देश्य विशेष से रखे गए हैं। अन्य त्यौहारों का भी, भले ही वे छोटे हों या

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

बड़े, कुछ न कुछ उद्देश्य होता है। ये त्यौहार खत्री घरों में किस प्रकार मनाये जाते हैं, इसका मासिक क्रम से विवरण इस प्रकार है।

१—चैत (मार्च)

चैत मास के चारों सोमवारों को तिसुआ सोमवार कहते हैं। तिसुआ सोमवार में जगदीश के पट की पूजा होती है पर उसी घर में जहाँ का कोई जगन्नाथपुरी हो आया हो। जगन्नाथपुरी का जाने वाला व्रत रखता है। पहले सोमवार को फूले हुए देवल और गुड़ से, दूसरे सोमवार को गुड़धनियां से, तीसरे सोमवार को पंचामृत से तथा चौथे सोमवार को गंगभोग या कच्चा-पक्का सब तरह का पकवान बनाकर भोग लगता है।

१. परेवा की धुरेरी। इस दिन १२ बजे दोपहर तक रंग खेलकर फिर नहा धोकर कपड़े पहन कर पुरुष तथा बालक सब परिचितों से गले मिलते है तथा मेला देखते हैं। आज सब लोग पिछले बैर को भूल कर आपस में प्रेमपूर्वक गले मिलते हैं। दामाद तथा कन्यायें धुरेरी के दिन निमंत्रित किये जाते हैं। आज से लोग जाड़ों के कपड़े तहाकर रख देते है और गरमी के कपड़े निकालते हैं। दूसरे दिन भाई-दुईज मनाई जाती है।

२. आठ दिन बाद 'बसिहुड़े' की अष्टमी होती है। यह चार बसिहुड़ों में पहला होता है। देवी जी की पूजा होती है और बासी खाया जाता है। लखनऊ में धुरेरी को कोनेश्वर महादेव का चौक में मेला होता है और अष्टमी को सआदतगंज में टिकैत राय के तालाब तथा शीतला का बहुत बड़ा मेला होता है। दुर्गाष्टमी के दिनू देवी जी की हलवे से पूजा होती है। नारियल की भेंट भी दी जाती है। घर में सब को हलवा, पूड़ी, गरी प्रसादी में मिलता है। सम्बन्धियों तथा मित्रों के यहाँ भी हलवा आदि प्रसाद बाँटा जाता है। देवी जी की अग्नि के रूप में पूजा होती है।

३. ८ दिन बाद परेवा से देवीव्रत प्रारम्भ होता है। घी द्वारा दीपक की 'ज्योति' की पूजा होती है। अष्टमी तथा नौमी को अविवाहित कन्याओं की जो देवी समझी जाती हैं, भी पूजा होती है। उन्हें नये वस्त्र तथा नगदी दी जाती है भोजन कराया जाता है। शुक्ल पक्ष के प्रथम नौ दिन 'नवरात्रि' कहलाते हैं जो देवी भक्तों के लिए अत्यंत पवित्र होते हैं। देवी की प्रत्येक दिन नियमित समय पर पूजा होती है। प्रथम दिन की पूजा 'दुर्गास्थापन' और अंतिम दिन की 'ज्योति बढ़ाने की पूजा' कहलाती है। कुछ खत्री लोग नौ दिन बराबर व्रत रहते हैं। अष्टमी की पूजा सबसे अधिक महत्व की होती है। नवरात्रि का मेला ८ दिन होता है। नवें दिन नवरात्रि होती है। काली, दुर्गा, चण्डिका आदि के मन्दिरों में इन दिनों बड़ी भीड़ होती है तथा मेला लगता है।

४. चैत्र शुक्ला तीज को गुण गौरी या गूने गौर होती है। इसमें गौरी की पूजा होती है। यह त्योहार स्त्रियाँ अपने पति की शुभ कामना के लिये करती हैं। जवान तथा वृद्ध सभी विवाहित स्त्रियाँ घी तले पकवान अपनी सासों तथा उनके न होने पर पति की अन्य बड़ी सम्बंधिनियों को देती हैं। साथ में कुछ नगदी भी देती हैं। आज ही शिव जी ने पार्वती को सौभाग्य का वर दिया था। दोपहर तक व्रत रखती है तब सौभाग्य वस्तुओं से पूजन तथा कथा के पश्चात् माँग में सेंदुर लगाती हैं। कथा का प्रसाद मर्दों को नहीं दिया जाता।

५. मास की अष्टमी को देवी अष्टमी की पूजा होती है तथा ज्योति जगाती हैं।

६. प्रातः काल राम नौमी होती है। आज ही राम चन्द्र जी का जन्म हुआ था अयोध्या में आज मंदिरों में बड़ी धूमधाम रहती है। स्त्रियाँ अपने सौभाग्य के लिए अरुन्धती व्रत करती हैं जो वशिष्ठ जी की पत्नी थी।

७ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को जूनो पूनो भी कहते हैं। जिस घर में कोई लड़का होता है वहाँ पूजा होती है, यदि केवल लड़की होती है तो नहीं होती है। इससे व्रत नहीं रहा जाता। पाँच या सात मटकी और करवा रंग कर पवन कुमार की पूजा होती है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

२—वैशाख (अप्रेल-मई)

पहली अष्टमी को बसिहुड़ा होता है। यह तीसरा हैं। यह देवी का त्योहार है। स्त्रियाँ लोढ़े की पूजा करती हैं। आज बासी खाना खाया जाता है। १. अमावस्या को महुआ दान दिया जाता है। २. शुक्ल पक्ष की तीज को अक्षयतीज होती है। आज मृत पुरुषों की स्मृति में जौ का सत्तू, फल, मिठाई, पंखा पानी से भरा झज्जर तथा कुछ नगदी ब्राह्मणों को पुरखों के नाम पर दिया जाता है। ३. सप्तमी को गंगा सप्तमी होती है। आज गंगोत्पत्ति का दिन है। ४. नौमी को जानकी जी का जन्म दिवस है। ५. चौदस को नृसिंह चौदस होता है। आज ही नृसिंह जी का अवतार हुआ था। आज व्रत में सायंकाल के समय केवल फल और दूध खाया जाता है। २. बैशाख, असाढ़ और माघ इन्हीं तीनों महीनों की किसी तिथि में रविवार के दिन आसमाई की पूजा होती है। यह पूजा किसी कार्य सिद्ध के लिये ही की जाती है। कहीं-कहीं तो वर्ष में दो तीन बार भी पूजा होती है। बारा जीत बारह आदित्यों तथा आसमाई (आशा पूर्ण करने वाली शक्ति की) पूजा एक साथ होती है। प्रायः लड़के की माँ पूजा करती है। नमक नहीं खाया जाता।

३—जेठ (मई-जुन)

१. पहली अष्टमी को बसिहुड़ा। यह तीसरा बसिहुड़ा होता है। २. अमावस्या को बट सावित्री व्रत या बट अमावस का त्योहार है। इसमें बरगद की पूजा स्त्रियाँ अपने पति के कल्याण के लिये करती है। ३. बेझरा भी अमावस्या को ही स्त्रियों का त्योहार है। आज वे 'पोंजा' मंसती हैं। गौरी की पूजा तथा अपने पति की कल्याण कामना के बाद विवाहित स्त्रियाँ घी में तले पकवान अपनी सासों या उनके न होने पर पति की अन्य सम्बंधिनियों कों देती हैं। यही 'पोंजा' कहलाता है। प्रत्येक 'पोंजा' के बाद 'रानी पूजे राज को मैं पूंजू सुहाग को' कहकर पूजा की जाती है। आज के पोंजे में कई प्रकार के अन्न होते हैं। ४. शुक्ल की दशमी को गंगा दशहरा होता है। आज ही गंगावतरण हुआ था। ५. शुक्ल की एकादशी को निर्जला एकादशी होती है। पुरखों की स्मृति में व्रत किया जाता है। स्त्रियाँ तो २४ घंटे का व्रत करती हैं। ब्राह्मणों को पुरखों के नाम पर दान दिया जाता है (सत्तू को छोड़कर)।

४—असाढ़ (जून-जुलाई)

प्रथम अष्टमी को अंतिम बसिहुड़ा होता है। इसे 'दाह बैठउनी' भी कहते हैं। चैत और बैसाख के बसिहुड़े बड़े होते हैं। देवी की पूजा होती है। २. कृष्ण पक्ष की दुइज को रथयात्रा होती है। आज भगवान् जगन्नाथपुरी में आज के दिन बड़ा समारोह होता है। १. असाढ़ के अंतिम दिन व्यास पूजा की गुरुओं की पूजा बड़े धूमधाम से होती है। सभी जगह गुरु पूजा होती है, पर पंजाब में यह पर्व बड़े जोर-शोर से मनाया जाता है।

५—सावन (जुलाई-अगस्त)

१. कृष्णपक्ष में हरियाली अमावस होती है। २. शुक्ल पक्ष की तीज को तिजियाँ होती हैं। यह भी स्त्रियों का त्योहार है जो अपने पतियों की कल्याण कामना में मनाया जाता है। आज आटे शकर के कसार का स्त्रियाँ पोंजा मंसती हैं। ३. कृष्ण पक्ष की नागपंचमी में भाई बहिनों का त्योहार पड़ता है। शुक्ल पक्ष की पंचमी को नागपंचमी पड़ती है। नागों में १२ नाग प्रसिद्ध हैं—अनंत, बासुकी, शेष, पद्म, कंबल कर्कोटक, अस्वतर, धृतराष्ट्र, शंस्याल, कालिया, तक्षक, पिंगल। एक-एक नाग की एक-एक मास पूजा करने का विधान है। आज गुड़ियों का त्योहार है। यह भाई बहिनों का त्योहार होता है। आज साँप की पूजा होती है और बच्चे चौराहों पर लकड़ियों से कपड़े की बनी गुड़ियाँ पीटते हैं। आज के दिन लोग अखाड़ों मे कुश्ती लड़ते हैं। पूर्बिये खत्रियों में यह त्योहार विशेष मनाया जाता है। पंचमी को सायंकाल को ही भोजन करना चाहिये। ४. श्रावण कृष्ण दशमी को बाबा लालू जस्सू राय महोत्सव, केवल खन्ना खत्रियों द्वारा बाबा जस्सू राय की स्मृति में मनाया जाता है तथा उनकी पूजा होती है। ५. श्रावण कृष्ण तेरस को 'मूल माता' की पूजा केवल कपूर खत्रियों के कुछ

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंशों में मनाई जाती है। ६. श्रावण शुक्ला तीज को तिजियाँ या गुड़िया तीज होती है। यह केवल स्त्रियों का त्यौहार है। विवाहित स्त्रियों के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण पर्व होता है। पिछले दिन से ही वे पूर्ण शृंगार से रहती हैं। उत्तमोत्तम भोजन करती हैं, झूला झूलती हैं तथा अपने सौभाग्य के लिए गाना गाती है। प्रसन्नता ही प्रसन्नता मनाती हैं। आज भी वे अपनी सासों तथा पद में बड़ी पति की सम्बन्धिनियों को पोंजा भेजती हैं और जो नव विवाहित होती हैं तथा अपने मैके में होती हैं उन्हें बढ़िया कपड़े, सुन्दर गुड़ियाँ, चाँदी, लकड़ी आदि के सुन्दर खिलौने आदि श्वसुरों से मिलते हैं ताकि वे इस दिन आनन्द मनावें। ७. श्रावल शुक्ला छठ को बाराह अवतार हुआ था। ७. श्रावण शुक्ला १४ को श्री चन्द्रिका महोत्सव केवल कपूरों में होता है। वे अपनी कुल देवी चन्द्रिका की पूजा करते हैं। ६. पूर्णमासी को रक्षाबन्धन या सलीनों होती है। आज बहनें अपने भाइयों और ब्राह्मण अपने यजमानों के हाथों में राखी बाँधते हैं। यह ऐतिहासिक पर्व बड़े महत्व का है। आज सिमाई से पूजा होती है। घर के दरवाजों के दोनों ओर तथा दीवारों पर राम रोली आदि से लिखते हैं। उस पर भात, सेमई तथा राखी आदि चिपकाकर पूजते हैं। कहीं लोग दाल चावल रोटी आदि पुरखों के नाम पर दान करते हैं। भविष्य में भगवान रक्षा करें तथा पूर्व कृत पापों का ह्रास हो जाय, यह आज की पूजा का उद्देश्य होता है। कहीं कहीं माखन, दही, दूध, शहद, गोबर, गो मूत्र तथा कुशा आदि से पूजा होती है। सलीनों के दूसरे दिन दामाद तथा कन्याओं को निमंत्रित किया जाता है। अरुन्धती समेत सप्तर्षियों की पूजा की विधान है। कजरी पूर्णिमा भी आज होती है। नवमी से किया एक सप्ताह का व्रत आज पूरा होता है। लड़के वाली स्त्रियाँ व्रत रहती हैं।

६--भादों (अगस्त-सितम्बर)

१ कृष्ण पक्ष की तीज को कजलीतीज होती है।

२. चौथ को बगुला चौथ, बगलू चौथ या गणेश चौथ होती है। यह लड़कों का त्यौहार है। आज जौ की पूड़ी खायी जाती है और गऊ-बछड़े की पूजा होती है। आज को 'छीक छक्कानी' भी कहते हैं। आज समस्त हिन्दू बालक गुरुओं की चटसाल में जाते हैं। वहाँ फल, मिठाई आदि से गणेश जी की पूजा करते हैं तथा ब्राह्मण को कुछ दक्षिणा देते हैं। प्रत्येक पाठशाला में बालक खूब आनन्द मनाते हैं। वे दिन भर गाते बजाते तथा नाचते कूदते हैं और गणेश जी की पूजा करते हैं। वैसे तो कृष्ण पक्ष की प्रत्येक चौथ को गणेश व्रत होता है, पर श्रावण, भाद्रपद तथा मार्गशीर्ष में गणेश व्रत का विशेष महात्म्य है।

३. प्रातःकाल भाई बिन्ना या नागपंचमी होती है। यह भाइयों का त्यौहार बहिनें मनाती हैं। भाइयों के बहनें टीका काढ़ती हैं और भाइयों से रुपये पाती हैं। सांप की पूजा भाइयों की कल्याण कामना से की जाती है।

४. हरछठ लड़कों का त्योहार है। आज ढाक के डाल की पूजा होती है जिसमें कुशा लगा रहता है। आज तिन्नी के चावल खाए जाते हैं। हल द्वारा बोया अन्न और गाय का दूध दही नहीं खाया जाता है।

५. दो दिन बाद अष्टमी को जन्माष्टमी होती है। आज ही योगेश्वर कृष्ण का जन्म मथुरा में हुआ था। आज दिन भर व्रत, ठाकुर जी शृंगार और १२ बजे रात को भगवान की पूजा करके भोजन किया जाता है। ब्रज में आज का उत्सव बड़े जोरों से मनाया जाता है। यदि इस तिथि रात्रि को रोहिणी नक्षत्र हो तो कृष्ण जयन्ती होती है।

६. प्रातःकाल नन्दोत्सव या दधिकांधो होता है। यह त्योहार मंदिरों में, विशेष कर ब्रज तथा श्रीनाथ द्वारा में बड़े समारोह से होता है।

७. फिर बन द्वादशी या गोवत्स द्वादशी होती है। यह भी लड़कों का त्योहार है। घास की पूजा होती है और लड़कों की जाँघ में मिट्टी लगाई जाती है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

८. शुक्ल पक्ष की तीज को कजली तीज होती है। आज शिव पार्वती पूजा होती है। भादों शुक्ला तीज को 'बेंड़ा तीज' या हरतालिका भी स्त्रियों का त्योहार है। आज भी पोजा मंसा जाता है। तीन तीजों में आज अंतिम तीज होती है। खत्रियों के यहाँ विवाह के प्रथम वर्ष से बहुएँ हरतालिका व्रत करने लगती हैं। मेहरा खत्री अपनी कुल देवी सवाई माता की भी आज ही पूजा करते हैं।

९. प्रातः पथरा चौथ होती है। आज चन्द्रमा नहीं देखना चाहिए। कहते हैं भगवान कृष्ण को चन्द्रमा देखने के कारण ही 'मणि' की चोरी लगी थी, जिसकी कथा प्रसिद्ध ही है। आज रात को लोग पत्थर फेंकते हैं। आज सिद्धि विनायक व्रत भी है। गणेश जी के समस्त व्रतों में यह प्रधान है। श्रावण शुक्ल ४ से भादों शुक्ला ४ तक एक समय भोजन करके कपर्दि गणेश का व्रत होता है।

१०. प्रातः ऋषि पंचमी होती है। आज व्रत रहता है। स्त्रियों का ही व्रत है, पर पुरुष भी स्त्री के साथ व्रत रह सकता है। सप्तर्षि कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वशिष्ठ सपत्नीक पूजा जाता है।

११. तीन दिन बाद राधाष्टमी होती है। आज राधा जी का जन्म दिन है। आज बुड्ढी-बुड्ढा की पूजा होती है और बासी खाया जाता है। महालक्ष्मी का 'तागा बन्धन' आज मनाया जाता है तथा व्रत होता है। कच्चे सूत के १६ तागे होते हैं जिसमें १६ गाँठे लगती हैं। एक दिन पूर्व सप्तमी को संतान सप्तमी का व्रत होता है।

१२. प्रातःकाल 'नया' होता है। आज चने की कढ़ी खाई जाती है और पूजा होती है।

१३. द्वादशी को गऊ बछड़े का त्योहार मनाया जाता है, इसे वामन द्वादशी भी कहते हैं। आज गेहूँ न खाकर बेसन खाया जाता है। गऊ बछड़े की पूजा होती है और लड़कों से गले मिला जाता है।

१४. दो दिन बाद अनन्त चौदश होती है। आज गुड़ भरी रोटी खाई तथा मंसी जाती है। स्त्रियाँ अपने पतियों का त्योहार मनाती हैं। आज परब्रह्म परमात्मा का पूजन होता है। आज रेशम तथा स्वर्ण के धागों में १४ गाँठें लगाकर अनन्त भगवान की पूजा होती है। एक बार अलोना भोजन करते हैं।

१५. पूर्णमासी से पितृ पक्ष प्रारम्भ हो जाता है। यह १५ दिन रहता है। स्वर्गीय संबंधियों की मृतात्मा की शाँति के लिए पूजा होती है तथा ब्राह्मणों को भोजन और दक्षिणा दी जाती है।

७--कुआँर (सितम्बर-अक्टूबर)

१. पहली अष्टमी को महालक्ष्मी की पूजा होती है और व्रत रहा जाता है यह बहुत बड़ी पूजा होती है। आगरेवाले और दिल्लीवाले खत्रियों के यहां विशेष रूप से मिट्टी की मूर्ति बनाकर १६ प्रकार के पकवान, (प्रत्येक पकवान के १६ अदद) से पूजा होती है। राधाष्टमी को हल्दी में रंग कर कच्चे सूत की १६ गाँठों का गण्डा हाथ में पहना गया था, वह आज खोला जाता है।

२. अमावस को 'पितृ विसर्जन' होता है। इन १५ दिनों में ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं। श्राद्ध कर्म आदि होते हैं।

३. पितृ विसर्जन के बाद प्रातःकाल से नवरात्रि प्रारंभ होती है (वर्ष में दो नवरात्रि होती है चैत्र और कुआँर में)।

४. अष्टमी को 'थाल' होते हैं। देवी जी की पूजा होती है। प्रति बालक के लिए मिठाई के १० ठौर रखे जाते हैं। जीवित पुत्रिका नामक निर्जला व्रत पुत्रवती स्त्रियां आज रखतीं है।

५. शुक्लपक्ष की दशमी को दशहरा या विजया दशमी में बच्चों को 'थाल' दिये जाते हैं। यह भी राष्ट्रीय त्योहार है। देशी राज्यों में बड़ी धूम धाम से यह त्योहार मनाया जाता था। अस्त्र-शस्त्र घोड़ा, हाथी आदि युद्ध के पशुओं, तथा कलम, दावात, गजबही आदि की पूजा होती है। आज ही राम ने रावण पर विजय पाई थी। बंगाली लोगों का यह सबसे बड़ा दुर्गापूजा त्योहार है। आज ही सरस्वती जी की प्रतिमा नदी में

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजनोपरांत विसर्जन की जाती है। इन दिनों स्थान-स्थान रामलीला होती है, आज रावण जलाया जाता है और मेला लगता है। रामलीला १५ दिन होती है।

पुरोहित तथा ब्राह्मण मंत्र पढ़कर जौ की बालियों द्वारा यजमानों को आशीर्वाद देते हैं और बदले में दक्षिणा पाते हैं। व्यापारी लोग आज से अपना हिसाब किताब प्रारंभ करते हैं तथा अपने वर्ष का नया दिन मानते हैं। व्यापार, यात्रा तथा अन्य शुभ कार्यों के लिए आज का दिवस परम पवित्र माना जाता है। किसी कारण वंश निषिद्ध तथा वर्जित उत्सव का कुप्रभाव भी आज के दिन रह गया, नहीं माना जाता। आश्विन शुक्ल प्रतिपदा के घट स्थापन से दशमी तक नौ दिन व्रत और शक्ति की पूजा की जाती है। 'दुर्गा सप्तशती' द्वारा भगवती का माहात्म्य प्रकट है। इसी आधार पर देवी नवरात्रि महोत्सव का प्रचार हुआ। देवी नवरात्रि के पूजन का सब मनुष्यों को समान अधिकार है। प्रतिपदा को घट स्थापन करे। घट के पास नौ धान्यों को बोए। पंचमी को उद्योग ललिता व्रत करे। अष्टमी और नवमी को महातिथि कहते हैं। यह 'नवरात्रि' की पूजा है। आश्विन तथा चैत्र मास में प्रत्येक मनुष्य को घटस्थापना से शक्ति की उपासना तथा आराधना करनी चाहिए।

६ आज से पाँचवें दिन शरद् पूर्णिमा होती है। आज ठाकुर जी ओस में बैठाये जाते हैं। पूजा होती है। स्त्रियाँ पति के कल्याण के लिय व्रत रहती हैं।

८--कार्तिक (अक्टूबर-नवम्बर)

१. आज पहली करवा चौथ होती है। आज भी स्त्रियाँ पति के लिए व्रत रहती हैं। सुहाल मंसे जाते हैं। चन्द्रमा देखकर तथा नए मिट्टी के बर्तन से उसे जल देकर, भोजन किया जाता है। पूजा के बाद एक दूसरे से बर्तन बदलती हैं।

२. चार दिन बाद अहोई अष्टमी होती है। यह लड़को का त्योहार है। व्रत रहा जाता है। काली जी की पूजा होती है। चन्द्रमा या तारे को देखकर भोजन होता है। आज सब लड़के (लड़कियाँ नहीं) नए वस्त्र (कम से कम एक तो अवश्य ही) पहनते हैं। व्रत रखकर कच्ची रसोई बनाते हैं।

३. कार्तिक कृष्ण द्वादशी को गोधूलि बेला में गायों की पूजा होती है। दिन भर माता निराहार व्रत रहती हैं। कोदों का चावल, चने की दाल तथा काकुन के चावल, बेसन की अठवाई खाई जाती है। गेहूं और धान के अतिरिक्त चाहे जो खाय कोई श्रावण में चार बार पूजा करते हैं, कोई कार्तिक, माघ, बैशाख और श्रावण के चारों मासों में।

४. (अ) चौदस को नरक चौदस या अंजाझारा होता है। आज दिया जलाकर लड़के नहलाये जाते हैं। हटरी के आगे दिया जलाया जाता है। आज महावीर जन्म दिन है।

४. (आ) प्रातःकाल अमावस्या को बड़ी दीवाली होती है। रात को हटरी के आगे लक्ष्मी गणेश की पूजा खील बताशे और पकवानों से पुरोहित कराते और सबके टीका काढ़ते हैं। घर-घर दिये जलाये जाते हैं। धूमधाम से मेला होता है। रात भर लोग जुआ खेलते हैं। हिंदुओं का यह बहुत बड़ा त्योहार है।

वर्षा ऋतु का अंत हो चुका होता है। शरद ऋतु का आगमन आज से माना जाता है। लोग गरमी के कपड़ों के स्थान पर जाड़ों के कपड़ों का प्रयोग प्रारंभ करते हैं। ऋतुपरिवर्तन के महत्व में यह त्योहार मनाया जाता है। खरीफ की फसल काटी जा चुकती है। घरों की पूरी सफाई की जाती है। सफेदी पुतवाई जा चुकती है। व्यापारियों का विश्वास है कि आज के दिन हाथ में रुपये पैसे आने पर वर्ष भर लाभ होता है। गोवर्धन में बड़ा मेला होता है। कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी से शुक्ला दुइज तक पांच दिन महोत्सव का क्रम रहता है। त्रयोदशी, नरक चतुर्दशी, लक्ष्मी पूजन-तीनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। त्रयोदशी को यमराज का पूजन होता है। धनतेरस को दीपक जला कर सब अपने-अपने द्वार पर रखते हैं और यमराज का पूजन करते हैं। प्रातः दिन निकलने के पूर्व स्नान, पुरखों को तर्पण और यमराज की पूजा। सांय को दीप दान। इन्हीं तीनों दिनों में वामन

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

भगवान ने राजा बलि की पृथ्वी को नापा था। कहते हैं राजा बलि के वरदान माँगने पर वामन जी ने वर दिया था कि जो मनुष्य इन तीन दिनों में दीपोत्सव और महोत्सव करेगा, उसे लक्ष्मी जी कभी न छोड़ेगीं तथा उसे यम यातना न होगी।

५. प्रातःकाल अन्नकूट या जमघट होता है। लड़के दिन भर पतंग उड़ाते हैं। आज ठाकुर जी का भोग लगता है। ब्रज में यह उत्सव बड़े धूम से मंदिरों में मनाया जाता है तथा भाई दुइज को भी। दामाद तथा कन्या निमंत्रित किये जाते हैं। जतीपुरा में बड़ा मेला होता है।

६. प्रातःकाल भाई दुईज होती है। यह बहिनों का त्योहार है। वे भाई के टीका काढ़ती हैं तथा मिठाई आदि देती हैं और भाई रुपया तथा कपड़ा आदि बहिन को देता है। मथुरा में विश्राम घाट के स्नान का बड़ा महत्व है।

७. फिर प्रातःकाल 'मनचिता' होती है। इसमें आटे की मछली की पूजा होती है।

८. कार्तिक शुक्ला अष्टमी को गोपाष्टमी होती है। आज गउओं की पूजा होती है।

९. फिर तीसरे दिन देवोत्थान या देवोठन या देवयनी एकादशी होती है। ऊख से देव की पूजा होती है तथा व्रत होता है। आज वंश के देवता की पूजा होती है। कहते हैं कि चार मास की निद्रा के बाद देव जागते हैं। इन चारों महीनों में उत्तर प्रदेश में कोई शुभ कार्य खत्री नहीं करते यद्यपि पंजाब में यह नहीं माना जाता। वहाँ इन मासों में भी सब शुभ कार्य होते हैं। हो सकता है कि वर्षा ऋतु के कारण पुराने जमाने में खत्रियों ने इन चार मासों में सब धार्मिक कार्य इसलिये स्थगित कर दिये होंगे क्योंकि वर्षा में घर के बाहर तथा परदेश जाने में कठिनाई पड़ती होगी और शुभ कार्यों के लिये प्रायः परदेश जाना ही पड़ता था। पर पंजाब में वर्षा इन चार मासों में नहीं होती, अतः वहाँ निषेध तथा स्थगित करने की आवश्यकता नहीं समझी गयी। लम्बी यात्राओं के लिये ये मास अनुपयुक्त हैं। वर्ष में ये चार मास जलवायु की दृष्टि से निकृष्ट होते हैं। अतः ऐसा लगता है कि इन चार मास में देवों के सोने तथा इनके पश्चात् जागने का यही अभिप्राय था। आज एकादशी को तुलसी विवाह उत्सव भी होता है। तुलसी का दूसरा नाम विष्णु प्रिया तथा बृन्दा है।

१०. कार्तिक पूर्णिमा को गंगा स्नान का पर्व है। लाखों की संख्या में लोग गढ़मुक्तेश्वर, बिठूर, कानपुर आदि में गंगा स्नान करते हैं; अन्यथा अपने २ स्थानों की नदियों में ही। आज बड़ा मेला होता है। कार्तिक शुक्ला एकादशी से आरंभ होकर पूर्णिमा को समाप्त होनेवाला व्रत 'भीष्म पंचक' कहलाता है। पाँचों दिन घी के दीपक जलते हैं, जप होता है तथा १०८ आहुतियां दी जाती हैं। इन्हीं पांच दिनों भीष्म पितामह ने शर शैय्या पर पांडवों को उपदेश दिया था।

९—अगहन (नवम्बर-दिसम्बर)

इस मास में कोई त्योहार नही हैं।

१०—पूस (दिसम्बर-जनवरी)

मासांत में मकर संक्रांति के एक दिन पहले पंजाब में 'लोहड़ी' नाम का त्योहार धूमधाम से मनाया जाता है। रात को अग्नि का पूजन करके प्रसाद में भुने चने और रेवड़ी बाँटी जाती है।

कहते हैं इस मास में शुभ काम नहीं होता, विशेष कर टंडनों के यहाँ। वैसे ही धवनों के यहाँ कार्तिक में कोई शुभ काम नहीं होता; जैसे नई कूड़ी बदलना आदि।

११—माघ (जनवरी-फरवरी)

१. मास की पहली चौथ को सौगर चौथ, सकट या गणेश चौथ कहते हैं। आज गणेश जी पूजा होती है और तिल का भोग लगता है। आज स्त्री पुरुष व्रत रखते हैं। स्त्रियाँ रात्रि को चन्द्र की पूजा करती हैं। विवाहित स्त्रियों का आज पूजा का दिन भी होता है। आज घर में मिठाई पकवान आदि बनाया जाता है जो पूजा में प्रयुक्त होता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

२. मकर संक्रांति के एक दिन पूर्व 'लोहड़ी' का त्योहार बहुत छोटी आयु की कन्याएं मनाती हैं। फल, मिठाई, चबेना आदि कन्याओं के पल्ले में डाला जाता है। यह स्त्रियों का त्योहार हैं।

३. मकर संक्रांति को संकरात या खिचड़ी भी कहते हैं। आज खिचड़ी और पोंजा मंसा जाता है। वर्ष की प्रत्येक १३ या १४ जनवरी को पड़ती है। आज ही से ज्योतिष के हिसाब से सूर्य धन से मकर राशि में आता है। आज भी अक्षय तीज की भांति पुरखों की स्मृति में खिचड़ी का दान (सत्तू के स्थान पर) ब्राह्मणों को दिया जाता है। स्त्रियाँ बर्तन, कपड़े, फल, मिठाई, अनाज आदि ब्राह्मणों, अपनी सासों तथा पति के सम्बन्धियों को देती हैं। आज स्त्रियाँ पोंजा भी मंसती हैं। आज गंगा सागर को स्नान होता है। राजा सगर के ६० हजार पुत्र आज ही भागीरथ की कृपा से तरे थे।

४. अमावस को मौनी अमावस होती है। आज दान पुण्य करके लोग 'मौन' रहते हैं।

५. माघ शुक्ला परेवा को 'पुष्प अभिषेक का पर्व है। रामचन्द्र द्वारा यह उत्सव मनाया गया था। महाराजा बर्दवान के वंश में यह त्योहार मनाया जाता है।

६. शुक्ल पक्ष में बसंत पंचमी होती है। आज आम के बौर का भोग भगवान को लगता है। बालक बालिकाएँ बसंती रंग के कपड़े पहनते हैं। यह भी गुरु का दिन होता है। पंजाब में यह भी व्यास पूनों की भांति बड़े जोरों से मनाया जाता है। आज विष्णु पूजन का विधान है। पितृ तर्पण भी करना चाहिये। कामदेव तथा रति की पूजा का भी विधान है।

७. शुक्ल पक्ष में षटतिला एकादशी होती है।

८. माघ शुक्ला सप्तमी को अचला सप्तमी का व्रत होता है इसे सौर सप्तमी भी कहते हैं।

९. माघ शुक्ला अष्टमी को भीमाष्टमी कहते हैं। आज ही भीष्म पितामह ने शरीर त्यागा था।

माघ मास में गंगा तथा नदी-स्नान का बड़ा महत्व है। प्रयाग आदि में माघ मास पर धर्मात्मा लोग गंगा स्नान करते हैं।

१२—फाल्गुन (फरवरी-मार्च)

१. कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को शिव रात्रि होती है। आज शिव की पूजा बेलपत्र से होती है और व्रत रहा जाता है। आज शिव जी का विवाह हुआ। कुछ लोग रात्रि भर जागते हैं और शिवजी के भजन गाते रहते हैं। कुछ स्त्रियाँ तो शिव रात्रि के बाद वाले दिन भी व्रत रखती हैं किन्तु रात में मंदिरों में नहीं जाती। धतूरा, भंग, बेलपत्र, फूल, फल, बी का दीपक आदि से शिव लिंग की पूजा होती है तथा उस पर जल, चंदन, अक्षत, पुष्प आदि चढ़ाया जाता है। बम बम भोला महादेव तथा घंटा की ध्वनि से मंदिर गूंजते रहते हैं।

२. प्रातः 'बम भोला शिव शंकर नाथ' के साथ शृंगी बजाकर शिव भिक्षुक भिक्षा मांगते हैं। उन्हें रोटी दाल, चावल कढ़ी के साथ तरकारी, पापड़ आदि दिया जाता है। उसे खप्पर भर कहते हैं।

३. पूर्णमासी को होलिका दहन होता है। प्रातःकाल धुर्रेरी से नया वर्ष माना जाता है। आज हिरण्यकश्यपु की बहिन होलिका अग्नि में जल मरी थी। रबी फसल कट जाने तथा जाड़े के समाप्त होने के और ग्रीष्म ऋतु लगने के ऋतु परिवर्तन की खुशी में यह त्योहार मनाया जाता है। नया अन्न उत्पन्न होने की खुशी में कृषक भी खूब गाते बजाते हैं तथा रंग खेलते हैं। होलिका में बूट, गेहूँ आदि की हरी डाली जलाई जाती है। कहीं-कहीं तो एक सप्ताह पूर्व से ही लोग होली और धमार गाते, रंग खेलते तथा खुशियाँ मनाते हैं। कुछ लोग भंग, माजूम की बर्फी आदि खाते हैं। कुछ असभ्य लोग गालियाँ आदि बकते तथा गंदे गीत और कबीर गाते हैं। कहते हैं कि आज सब माफ है। तरह-तरह के स्वांग आदि निकलते हैं। गुलाल अबीर की जगह कीचड़ आदि भी उछालते हैं - इसी से इसे शूद्रों का त्योहार माना गया है। इस बुराई से मुक्त होने पर यह पर्व अत्यंत आनंदमय है। दामाद तथा कन्याये धुरेरी के दिन निमंत्रित की जानीं हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्रियों के जातीय गुण

विवाह—सभी परिवारों में कन्या और पुत्र का विवाह करना माता पिता अपना धार्मिक कर्तव्य समझते हैं। ठहरौनी की प्रथा खत्रियों में नहीं है। इसी कारण कन्या के जन्म को बहुत बुरा नहीं समझा जाता। प्रायः खत्री पिता का स्नेह कन्या के प्रति अधिक होता है। विवाह संबंध की बात स्त्रियाँ आरम्भ करती हैं और कन्या पक्ष वर पक्ष वालों से जन्म पत्र माँगते हैं। खत्री सम्मेलनों के फलस्वरूप पूर्विये, पछईये, पचाधे, दश्ये और चार घरों का भेद उठ गया है और सभी वर्गों के खत्री विवाह संबंध आपस में करते हैं। सगोत्र विवाह नहीं किये जाते। एक स्त्री के जीवित रहते प्रायः दूसरी से विवाह नहीं किया जाता। रखैल अथवा बहुपत्नी रखने वाले पुरुषों को तिरस्कार से देखा जाता है। एक बार विवाह होकर स्त्री या पति का परित्याग इस समाज में अनहोनी बात है - स्त्री धर्म त्याग कर दे अथवा दूषित हो जाय, उसी दशा में बिरादरी और पति परिवार द्वारा त्यागी जा सकती है। विधवा विवाह को अब मान्यता दी जाती है। परन्तु नियोग की उपेक्षा ही की जाती है। पहले विवाह के बाद गौना होता था परन्तु अब प्रायः दोनों रस्में एक साथ हो जाती हैं। विवाह मण्डप के नीचे होता है, केले के खम्भों से बेदी बनाई जाती है और फूलों से सजाई जाती है, मण्डप में जाने के पूर्व जयमाल की प्रथा पहले केवल पछइये खत्रियों में थी। अब प्रायः सभी वर्गों में होती है वर मौर नहीं बाँधता। लाहौरी खत्रियों में मुकुट बाँधा जाता है। तलवार लिये घोड़े पर सवार होकर वर विवाह के लिए जाता है। जयमाल वेदी और वीर वेष खत्रियों की विशेष प्रथा है, जो इनका क्षत्री वर्ग में होने का सूचक है। विवाह में भाँवर, सप्तपदी और शाखोच्चार ब्राह्म-विवाह की रीति से होता है। भाँवर के उपरांत ही कन्या वर के वामांग में आती है और उस समय उसका गोत्र पति गोत्र हो जाता है।

भोजन--प्राचीन काल में खत्री घरों में प्याज, लहसुन, गोश्त नहीं बनता था। अब भी प्रीति भोजों में और संस्कारों के अवसरों पर इनका बहिष्कार किया जाता है।

२--खत्री गाय, भैंस, बकरी आदि का दूध पीते हैं और ऊँटनी तथा अन्य चौपायों के दूध को त्याज्य मानते हैं।

३--प्रायः दिन में कच्ची रसोई और शाम को पूरी खाने की प्रथा है। बुढ़ियाँ प्रायः बहुओं की पकाई कच्ची रसोई नहीं खातीं। कुछ वर्ष पहले तक गंगा-जमुना के मैदान में और दक्षिण में रसोई चौके में ही खाने की प्रथा थी। स्त्रियाँ पुरुषों के बाद भोजन करती हैं।

४--प्राचीन काल में केवल द्विज एक साथ बैठकर पक्की रसोई खाते थे, कच्ची तो खत्री केवल खत्री परिवार में या सारस्वत ब्राह्मणों के यहाँ चौके में खाते थे।

५—स्त्रियाँ अब भी माँस, मदिरा का सेवन बुरा समझती हैं।

सामाजिक व्यवहार

१. खत्री जैन मन्दिरों में नहीं जाते।
२. देवकाज के पहिले अपनी कुल देवी के दर्शन नहीं करते।
३. खत्रानी पति के साथ में ही यज्ञादि करती है।
४. गर्भिणी उसी तल पर खड़े होकर मृतक को नहीं देखती जहाँ लाश पड़ी हो।
५. स्त्रियाँ या बिना जनेऊ हुए बालक श्राद्ध नहीं करते।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

६. पुरुष रजस्वला से भोग नहीं करते। पाँच मास से अधिक गर्भिणी से भी भोग नहीं किया जाता।
७. स्त्री या पुरुष भिक्षा नहीं माँगते, या दान नहीं लेते।
८. खत्री गौ बेचना या हल चलाना बुरा समझते हैं।

स्त्री समाज

१ स्त्रियाँ घर की प्रबन्धक होती हैं। भोजन व्यवस्था, बच्चों की देख-भाल, घर के सामान की देख-भाल और सुरक्षा का स्त्रियों पर दायित्व होता हे। दैनिक खर्च और परिवार की आमदनी के खर्च का हिसाब भी प्रायः स्त्रियाँ ही करती हैं।

२. विधवा रंगीन कपड़े और आभूषण नहीं पहनतीं, बिंदी भी नहीं लगातीं।

३. बालिकाओं का पूजन देवी की तरह किया जाता है।

४. स्त्रियाँ प्रायः पुरुषों से पहले उठती हैं और घर की सफाई करती हैं। भोजन पकाकर पहले पुरुषों को खिलाती हैं; फिर आप खाती हैं। दोपहर में कपड़े आदि संवारती हैं

संस्कार

खत्रियों में वैदिक आर्यों की भाँति १६ संस्कार होते हैं, यद्यपि क्रिया रूपांतर हो गया है। इसमें प्रथम सन्तान के मूंडन के पूर्व देवकाज, चूड़ाकर्म, यज्ञोपवीत, विवाह ये विशेष महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

मृतक को बाँस की टिकटी या पटरे पर श्मशान ले जाते हैं। बालकों को गाड़ा जाता है। यज्ञोपवीत धारियों का अग्नि-संस्कार होता है - युवकों का कफन सफेद और सन्तान युक्त प्रौढ़ों को चादरा उढ़ाया जाता है। पौत्रों और दोहितों से सम्पन्न वृद्धों का विमान बनता है। सुहागिन की महायात्रा सजाकर और चूंदरी उढ़ाकर की जाती है। दामाद शव को नहीं छूते।

याद रक्खो

तुम्हारे पास जो कुछ है, सब भगवान् का है और भगवान् की सेवा के लिए ही है। उसे अपना मानकर उसका केवल अपने भोग में उपयोग करना बेईमानी है। इस बेईमानी से बचो और समस्त प्राप्त साधनों को भगवान् की सेवा में लगाओ।

खत्री श्री राधाकृष्ण मेहरोत्रा
मेहरोत्रा आप्टीशियन
छत्ता बाजार, मथुरा

फोन ६३२
खत्री संजय कुमार मेहरोत्रा
संवाददाता खत्री हितैषी
बड़ा फाटक खत्रियान स्ट्रीट
काशीपुर (नैनीताल)

स्थापित सन् १८८५ फोन ४२३३
मे० चिरंजीलाल फोटोग्राफर्स
मथुरा

खत्री मनोज कुमार वाही
४७, शील नगर कालोनी
महमूर गंज
वाराणसी

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

मान्य तीर्थ स्थान

प्रत्येक खत्री गृही के लिए एक गृह देवता या देवी आवश्यक है। प्रायः प्रत्येक घर में एक कमरा खिड़की या स्थान ऐसा होता हैं जो देव स्थान या ठाकुरद्वारा कहलाता है। प्रायः संध्या, गायत्री तथा पूजन आदि वहीं किया जाता है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि पूजा उसी स्थान पर की जाय। पूजा तथा हवन आदि घर के किसी भी स्वच्छ तथा पवित्र स्थान में हो सकते हैं। ठाकुरद्वारे में भगवान, राम, राधा, कृष्ण तथा शालिग्राम आदि की मूर्तियाँ सिंहासन पर होती हैं जिनको नित्य स्नान कराया जाता है, पुष्पों तथा चंदन से पूजा होती है और भोग लगाया जाता है। घरों में पूजा करने के अतिरिक्त मोहल्लों में स्थित सार्वजनिक मन्दिरों में भी हिन्दू प्रातः सायं दर्शन करने जाते हैं। इसके अतिरिक्त अपने स्थानों या बंश की परम्परा तथा रीति-रिवाज के अनुसार विभिन्न विशेष अवसरों तथा कृत्यों और संस्कारों के अवसर पर विभिन्न मन्दिरों या विभिन्न स्थानों पर पूजा तथा धार्मिक कृत्य पूरा करने जाते हैं। उदाहरणार्थ, बच्चा पैदा होने के कुछ मास पश्चात् पहले माता उसे काली जी या हनुमान जी के मंदिर ले जाती हैं। इसके पूर्व उसे कोई बाजार नहीं ले जा सकता। विवाहोपरांत घर तथा वधू को पहले काली जी के मंदिर में दर्शन कर लेने पड़ते हैं या चेचक ठीक हो जाने के बाद रोगी पहले काली जी के दर्शन कर लेता है और तब अपना साधारण दैनिक जीवन व्यतीत करता है। वैसे ही कपूर विशेषतया आगरे के, देवता-बाग, आगरा में बच्चों के शुभ संस्कारों के लिये जाते हैं। इटावा के खन्ना कानपुर जिले के शिवराज पुर को; बिसवां के सेठ, कन्नौज को; कुछ दिल्ली के लाहौरिया खन्ना मुलतान के निकट दीपालपुर को; फरीदाबाद के कुछ कक्कड़ जिला मेरठ के गढ़मुक्तेश्वर को तथा कुछ पुरानी दिल्ली के लाल किले को जाते हैं। इसका कारण यह है कि जिन वंशों के पूर्वज पहले जिन स्थानों पर रहते थे, उन स्थानों के प्रति ममत्व तथा श्रद्धा का भाव आज भी उनके बंशजों के हृदय में है। जिस देवी-देवता को उनके पूर्वज मानते थे, उनके वंशज आज भी उन्हें मानते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ तीर्थ स्थान अत्यन्त पवित्र समझे जाते हैं। जीवन में उनकी यात्रा करना एक कर्त्तव्य समझा जाता है। कम से कम प्रत्येक हिन्दू के हृदय में यह प्रबल इच्छा होती है कि वह इन तीर्थ स्थानों में जाकर अपना परलोक सुधारे। कुछ प्रमुख तीर्थ स्थान निम्नलिखित हैं।

'चारों धाम' के अन्तर्गत १. उत्तर में बद्रिकाश्रम है। हरिद्वार से यात्रा आरम्भ होती है। प्रायः केदारनाथ होते हुए बदरीनाथ लोग जाते हैं। कुछ लोग गंगोत्तरी तथा यमुनोत्तरी होते हुए भी केदारनाथ बदरीनाथ जाते हैं। यह उत्तराखंड की यात्रा कहलाती है। अनेक यात्री धर्म भाव से न प्रेरित होकर केवल हिमालय के अद्भुत प्राकृतिक दृश्य के अवलोकनार्थ तथा सैर-सपाटों के लिए भी इन स्थानों को जाते हैं। २. दक्षिण में रामेश्वरम् धाम है। इसके आस-पास अनेक तीर्थ स्थान हैं। दक्षिण भारत के प्रायः तीर्थ स्थानों को रामेश्वरम् को जाने वाला जाता है। इन पर विस्तारपूर्वक यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है। ३. पूर्व में जगन्नाथपुरी है। साक्षी गोपाल, भुवनेश्वर तथा कोणार्क प्रसिद्ध तीर्थ स्थान इसके निकट ही हैं। ४. पश्चिम में द्वारकाधाम है। इन चारों धामों के यात्री को यह अनुभव होता है कि समस्त देश हमारी मातृभूमि है। जगत् गुरु शंकराचार्य ने इन धामों पर अपनी गद्दियाँ स्थापित कीं। डाकोर जी, गिरनार, प्रभासक्षेत्र आदि इसके आसपास तीर्थ हैं।

चारों धामों के अतिरिक्त 'सप्तपुरी' के अन्तर्गत १. अयोध्या, राजा रामचन्द्र की राजधानी सरयू नदी के तट पर है। २. मथुरा. योगेश्वर कृष्ण की कार्य भूमि यमुना तट पर है। ८४ कोस ब्रज के अन्दर नन्द गाँव,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri. Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

प्रेम सरोवर, बरसाना, कोसी, छाता, कामबन, डीग, गोवर्धन, जतीपुरा, राधा-कुंड, रावल, गोकुल, महावन, ब्रह्मांड घाट, रमणरेती, बड़े दाऊजी, कुधुबन, गरुण-गोविंद, वृन्दाबन आदि पवित्र तीर्थ हैं। ३. हरिद्वार में कुम्भ क अवसर पर लाखों की भीड़ होती है। गंगा-दशहरा तथा अन्य पर्वों पर भी गंगा-स्नान को यात्री आते हैं। कनखल, चन्डी देवी, भीमगोड़ा सत्य नारायण चट्टी, ऋषिकेश, लक्ष्मण झूला, स्वर्गाश्रम आदि भी अपूर्व दर्शनीय स्थान आस पास हैं। ४. काशी शैवों का केन्द्र बाबा विश्व नाथ तथा गंगा के कारण अत्यन्त पुरातन एवं पवित्र तीर्थ है। बौद्धों का तीर्थ सारनाथ भी निकट ही है। ५. कांजीवरम् दक्षिण भारत में विष्णु-कांची तथा शिव कांची के रूप में प्रसिद्ध है। ६. उज्जैन क्षिप्रा नदी के तट पर महाकालेश्वर शिव लिंग के कारण विक्रमादित्य की राजधानी रहा है। ७. द्वारका भी सप्तपुरियों में एक है। सोमनाथ, सुदामापुरी आदि तीर्थ स्थान भी आस पास हैं।

शैवों के लिए द्वादश ज्योतिर्लिंग अत्यन्त महत्व एवं श्रद्धा के तीर्थ स्थान हैं। १. सोमनाथ गुजरात में से प्रत्येक इतिहास प्रेमी परिचित है। २. त्रयम्बकेश्वर नासिक के निकट है। ३. ओंकारेश्वर नर्मदा तट पर है। ४. महाकालेश्वर उज्जैन में है। ५. केदारनाथ हिमालय पर स्थित है। ६. विश्वनाथ महादेव काशी में है। ७. बैजनाथ धाम बिहार प्रान्त में है। ८. रामेश्वरम् दक्षिण में है। ९. मल्लिकार्जुन १०. नागनाथ। ११. घृष्णेश्वर इलोरा की गुफाओं के पास दक्षिण-हैदराबाद में है। १२. तथा भीमाशंकर पूना के पास है।

इसके अतिरिक्त काश्मीर में अमरनाथ की गुफा भी प्रसिद्ध है। काली भक्तों के तीर्थ वहाँ-वहाँ है जहाँ-जहाँ उनके मठ हैं। उदाहरणार्थ नागर कोट का दुर्गा मन्दिर। यहाँ चैत और कुआर के महीनों में यात्री अधिक आते हैं। जिला मिर्जापुर में विंध्यवासिनी देवी, कलकत्ते में काली माई का मन्दिर, दिल्ली के निकट गुरुगांव की शीतला देवी हैं जहाँ चैतमास में अधिक यात्री जाता है। कांगड़ा की ज्वालामुखी देवी का मन्दिर भी प्रसिद्ध है।

सिक्खों का प्रसिद्ध तीर्थ अमृतसर का स्वर्ण मन्दिर है। पंजाब में अनेक अन्य पवित्र तीर्थ सिक्खों के हैं।

गंगा तट पर १. काशी संस्कृत विद्या का केन्द्र रहा है। २. प्रयाग गंगा, यमुना सरस्वती के संगम पर प्रसिद्ध तीर्थ है। माघ मास में यहाँ बहुत स्नानार्थी आते हैं और कुंभ तथा अर्ध कुंभी के अवसर पर तो लाखों की भीड़ होती है। ३. हरिद्वार ४. जिला एटा में कास गंज के निकट सोरों ५. जिला अलीगढ़ में गंगा तट पर राजघाट ६. जिला मेरठ में गढ़ मुक्तेश्वर ७. ब्रह्मावर्त या बिठूर तथा गंगासागर आदि प्रसिद्ध तीर्थ हैं। वैष्णवों के प्रधान तीर्थ श्री नाथ द्वारा (उदयपुर), मथुरा तथा द्वारका हैं। कुरुक्षेत्र पंजाब में पानीपत के निकट है। गयाजी फल्गू नदी के तट पर मृत पुरुषों के पिंड-दान के लिए पवित्र स्थान है। हरिहर क्षेत्र बिहार में गंगा तट पर अपने मेले के लिए संसार में प्रसिद्ध है। जहाँ-जहाँ प्राचीन ऋषि-मुनियों ने तपस्या की थी, या धार्मिक उद्देश्यों इकट्ठे हुए थे वे भी सब तीर्थ स्थान बन गये है। नैमिषारण्य: मिश्रिक, हत्याहरण चित्रकूट, गोला गोकर्ण नाथ, आदि उत्तर प्रदेश में, जनकपुर, सीतामढ़ी, राजगृह, नालंदा आदि बिहार में, तारकेश्वर नवदीप (चैतन्य महाप्रभु का जन्म-स्थान) बंगाल में, कामाख्या, परशुराम कुंड, ब्रह्मतीर्थपुर आदि आसाम में, पशुपत नाथ महादेव नैपाल में, भेड़ाघाट (जबलपुर), रामटेक (नागपुर), मध्य प्रदश में, श्रीरंगम, मदुरा, देवी पत्तन, तोताद्री, बालाजी, तिरुपति, घिदंवरम्, पक्षी तीर्थ, लक्ष्मण बाला आदि मद्रास प्रान्त में प्रसिद्ध तीर्थ हैं।

हिन्दी भाषा को शक्ति का प्रवाह बदला नहीं जा सकता। —महाना पं० मदन मोहन मालवीय

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

मान्य वृक्ष

खत्रियों के यहाँ बढ़ या बरगद, पीपल, जंड, आम, जामुन, पलाश, खीदर, बिल्व, आमला आदि के वृक्ष पवित्र समझे जाते हैं तथा इनकी पूजा की जाती है। जंड का वृक्ष तो सबसे अधिक पवित्र माना जाता है। बच्चों के मुन्डन तथा अन्य संस्कारों में इस वृक्ष का पूजन अनिवार्य है। एक संस्कार का तो नाम ही इस वृक्ष के नाम पर 'जंडे' पड़ गया है। ज्येष्ठ की सप्तमी को बरसातें त्योहार पर स्त्रियाँ बरगद के वृक्ष की पूजा करती है। पीपल की भी पूजा होती है किन्तु अपेक्षाकृत कम। पीपल की लकड़ी जलाना खत्रियों के यहाँ मना है। केवल मृतक संस्कार तथा विशेष अवसरों को छोड़कर पीपल की लकड़ी कभी नही जलाई जाती।

पौधों में सबसे पवित्र तुलसी या वृन्दा का पौधा है। रामा तथा श्यामा दोनों प्रकार की तुलसी के पौधे हिन्दू घरों में पूज्य हैं। बृन्दा के पौधों की अधिकता के कारण ही कृष्ण की लीला-भूमि वृन्दावन कहलाई। तुलसी के असंख्य लाभों को गिनाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसका ज्ञान प्रत्येक भारतीय को है। धतूरे का फूल तथा बीज और फल भी पवित्र समझे जाते हैं। धतूरा महादेव जी का प्रिय भोज्य है। शिवलिंग पर धतूरा तथा बेलपत्र चढ़ाया जाता है। बेल की पत्तियाँ (बेल-पत्र) भी अत्यन्त पवित्र समझी जाती है।

यों तो भगवान् की पूजा में प्रायः सभी फूल चढ़ाये जाते हैं। किन्तु सबसे अधिक महत्व कमल का माना जाता है। कमल का फूल अत्यन्त पवित्र माना जाता है। कवियों का तो कमल के बिना काम ही नहीं चलता।

अशोक वृक्ष का महत्व भी इसलिए हिन्दुओं में है कि अशोक वाटिका में रावण के यहाँ इसी वृक्ष के नीचे सीताजी रही थी। कहते हैं जब कोई संभवा नवयौवना के चरण अशोक वृक्ष में लग जाते हैं तभी वह पुष्पित होता है।

कुन्द का पुष्प भी पवित्र माना जाता है। श्वेत कुन्द के फूल से ही शिव जी के शरीर की उपमा दी जाती है जैसे नीलकमल से विष्णु, राम तथा कृष्ण के शरीर की। पलाश (टेसू) के फूलों के रंग से ही होली खेली जाती है। अतः टेसू, कुन्द, कमल तथा धतूरे के पुष्प पवित्र माने जाते हैं।

याद रक्खो

तुम पर भगवान् की कृपा नित्य-निरन्तर बरस रही है; वह सदा, सब ओर से तुम्हें नहला रही है। ऐसा कोई क्षण नहीं जाता, जिस समय तुम भगवान् की कृपा से वञ्चित रहते हो। वञ्चित रहते भी कैसे? तुम उनकी अपनी प्यारी-से-प्यारी रचना जो ठहरे! तुम पर वे कृपा क्या करते; उनके हृदय में तो पल-पल में स्नेह उमड़ा आता है। सचमुच विश्वास करो—जब से तुम हुए—न जाने किस अज्ञातकाल से—तभी से उन्होंने तुम्हें अपनी गोद में ले रखा है। एक क्षण के लिए भी कभी उन्होंने तुमको दूर नहीं किया। उनका कल्याणमय कर-कमल निरन्तर तुम्हारे सिर पर रहता है और निरन्तर तुम उनका शीतल-मधुर स्पर्श पा रहे हो।

* * *

दीन-हीन, सरल, असहाय बच्चे माँ को ज्यादा प्यारे हुआ करते हैं; भगवान्-रूपी जगज्जननी को भी उसके गरीब बच्चे अधिक प्रिय हैं। इसलिए यदि तुम माता का प्यार पाना चाहते हो तो माता के उन प्यारे बच्चों से प्रेम करो, उन्हें सुख पहुंचाओ; माता आप ही प्रसन्न हो अपना वरद-हस्त तुम्हारे मस्तक पर रख देगी; तुम सहज ही कृतार्थ हो जाओगे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

मान्य पशु-पक्षी और पवित्र अस्त्र-शस्त्र

गाय समस्त हिन्दुओं की माता है। गाय का बेचना एक महान पाप है। प्रत्येक गृहस्थ के घर में गाय पाली जाती है। मृत्यु के समय भी गोदान सर्वोत्तम होता है। प्रत्येक शुभ संस्कार के अवसर पर गोदान महत्वपूर्ण माना जाता है। मृत्यु के उपरांत गाय की पूंछ पकड़कर ही मृत की आत्मा बैतरणी पार करती है, ऐसी मान्यता हिन्दुओं में है। गोदान में ब्राह्मण को दक्षिणा, वस्त्र, बर्तन, अनाज तथा गाय के खाने के लिए कुछ रुपया आदि भी यथा-शक्ति हिन्दू ब्राह्मण को देते हैं। गोशाला का खोलना तथा चलाना अत्यन्त शुभ और पवित्र कार्य हिन्दू मानते हैं। प्राचीन युग के राजाओं की दंत कथायें, उनका गाय के प्रति श्रद्धा-भाव झलकाता है। गाय यदि रखने की सामर्थ्य गृहस्थ में न हो तो वह उसे किसी ब्राह्मण या गऊशाला में दे देता है। प्रत्येक हिन्दू के लिए अधिक से अधिक गऊओं का दान करना धार्मिक दृष्टि से शोभनीय है। गोदान के बदले में गोदान के नाम पर, निर्धन चार आने से लेकर पाँच रुपए तक यथाशक्ति पुरोहित ब्राह्मणों को दान देते हैं। बछड़ा दान का भी महत्व है। गाय बछड़े की पूजा भी वर्ष में एक बार बड़ी धूम धाम से मनाई जाती है। यह 'गऊ-बछड़ा पूजा' कहलाती है। गाय तथा बछड़े के मस्तक में रोली का टीका लगाते हैं, उस पर अक्षत डालते हैं, पुष्पमाला पहनाते हैं तथा स्वादिष्ट भोजन कराते हैं। नवग्रह-पूजा में भी गोदान तथा पूजा होती है। इसके अतिरिक्त प्रति दिन भोजन बन जाने के बाद पहले गो-ग्रास निकाल लिया जाता है। धर्मात्मा हिन्दू पहले गाय को खिला कर तब खाते हैं। इससे यह प्रकट है कि खत्रियों के यहाँ ब्राह्मण से भी अधिक गाय का महत्व है।

साँप भी हमारे यहाँ पवित्र माना जाता है। नागपंचमी पर नागदेवता की पूजा होती है। बाल्यावस्था के कुछ संस्कारों में, विशेषकर कपूरों के यहाँ, नाग को दूध पिलाया जाता है। भाई-बहिना के अवसर पर भी नाग पूजा होती है। हिन्दू लोग कितने अहिंसक थे, यह इस बात का प्रमाण है। साँप जैसे विषैले जीव के प्रति भी वह दया तथा प्रेम भाव रखते थे। चरित्र की उच्चता का यह प्रदर्शन स्तुत्य है।

हिन्दू की दृष्टि मे तोता एक पवित्र पक्षी है। इसीलिए हिन्दू घरों में तोता पालने का चलन है।

मोर सरस्वती का वाहन है। कुछ घरों में मोर भी पाला जाता है। मोर होने से साँप का भय नहीं रहता। शोभा की खान तो मोर ही है।

दशहरे के दिन नीलकंठ का देखना अत्यन्त शुभ माना जाता है। नीलकंठ भी एक पवित्र पक्षी माना जाता है।

खत्री (क्षत्री) शूर जाति है। अतः प्राचीन अस्त्र-शस्त्र जैसे धनुष, बाण, भाला, कटार, तलवार आदि क्षत्रियों के हथियार थे। अब अस्त्र-शस्त्र सब खत्रियों के यहाँ नहीं मिलेंगे, पर तो भी सिक्खों के यहाँ जैसे कटार (कृपाण) का रखना अनिवार्य है, वैसे ही तलवार खत्रियों का पवित्र हथियार है। दशहरे के दिन अस्त्र-शस्त्र, विशेषकर तलवार की पूजा प्रत्येक खत्री करता है। तलवार न होने पर कटार या चाकू की ही सही। विवाह के अवसर पर वर तलवार लिये घोड़े पर सवार होकर ब्याह करने जाता है और अपनी तलवार से नारियल पर वार करता है।

याद रक्खो

सच्ची सेवा करने वाला जगत में सदा-सर्वत्र-सब में भगवान् के दर्शन करता है। सेवा करना उसका स्वभाव ही है। वह ऊंच-नीच, अपना-पराया, मित्र-शत्रु नहीं देखता। उसे जब सेवा का अवसर मिलता है, तब वह अपना सौभाग्य समझता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक पर हार्दिक शुभ कामनाएं :

खत्री सभा, कानपुर

पदाधिकारी एवं सदस्य कार्यसमिति वर्ष १९८७

१-अध्यक्ष
खत्री सिद्धनाथ कपूर
७/८६ गोविन्द नगर, तिलक नगर, कानपुर
फोन नं० निवास २४४८६४-२४६१०९
कार्य : ६३४८३

२-उपाध्यक्ष
खत्री प्रयाग नारायण कपूर
फोन नं० निवास ६२४६९

३-**खत्री के० के० मेहरोत्रा**
फोन निवास ६६१०५-५४५६३
कार्य० ६४४६५ ६१८९५

४-महामंत्री
खत्री उदय शंकर मेहरोत्रा
६१, गोला घाट, छावनी, कानपुर-४
फोन निवास ६०१६४ कार्य ६८९३५

५-सहमंत्री
खत्री चन्द्र नाथ मेहरोत्रा
३६/२८, हाता राम मोहन, कानपुर

६-संगठन मंत्री
खत्री त्रिलोकी नाथ मेहरोत्रा

७-सांस्कृतिक मंत्री
खत्री वीर कुमार सेठ

८-कोषाध्यक्ष
खत्री शिवनाथ टण्डन
३७/२९, तार घर रोड, कानपुर

सदस्य कार्यसमिति :

९-**खत्री राम नाथ महेन्द्र**
फोन नं० निवास २४१४०५ कार्य० ६३३०७

१०-**खत्री नवल खन्ना**
फोन कार्य ६५१५४

११-**खत्री गुरु प्रसाद टण्डन**
फोन निवास २१०३४१

१२-**खत्री जे० पी० कपूर**
फोन निवास २२१९२६ कार्य ५३२५१

१३-**खत्री मदन चन्द्र कपूर**
फोन निवास ६६३३३ कार्य ६०५२०

१४-**खत्री प्रहलाद नारायण कपूर**
फोन कार्य ७१४३९

१५-**खत्री मुरारी लाल पुरी**
फोन निवास ६००८३

१६-**खत्री जगदीश नारायण मेहरोत्रा**
फोन निवास ६६३९७

१७-**खत्री डा० एस० बी० मेहरोत्रा**
फोन निवास २४०३३२

१८ **खत्री विश्वनाथ कपूर एडवोकेट**
फोन नं० निवास ६३१११

१९ **खत्री जगनन्दन लाल मेहरोत्रा**

२०-**खत्री रवीन्द्र कुमार मेहरोत्रा**

२१-**खत्री गोपाल टण्डन**
फोन निवास ५२८४५ कार्य ६९७१८

२२-**खत्री जे० सी० सेठ** २४२२६०

२३-**खत्री श्रीराम टण्डन** २१२१२६

२४-**खत्री राजेश मेहरोत्रा**
अध्यक्ष खत्री युवा संघ, कानपुर
३६/३१ इ हाता राम मोहन, कानपुर
फोन कार्य ६०८४०

२५-**खत्री विनय माधव खन्ना**
महामंत्री खत्री युवा संघ, कानपुर
३८/४, गिलीश बाजार, कानपुर

२६-**श्रीमती पूनम कपूर**
अध्यक्ष, खत्री महिला सभा, कानपुर
१६/८० बी सिविल लाइंस, कानपुर
फोन निवास २११३९५

२७-**श्रीमती कामिनी टण्डन**
महामंत्री खत्री महिला सभा, कानपुर
२२/२२, पटकापुर, कानपुर
फोन निवास ६१२७

२८-**पं० पुरुषोत्तम जेतली**
(सारस्वत ब्राह्मण)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक पर हमारी अनेकानेक शुभकामनएं :

नेहा बोतल्स इन्डस्ट्रीज

सभी प्रकार के (पी० टी० सी० के) पोली जार के निर्माता

इन्डस्ट्रीज
८, इन्डस्ट्रीयल स्टेट
पीतल मिल चौराहा
विदिशा

आफिस फोन ७०८
नेहा बोतल्स इन्डस्ट्रीज
२३, माधवगंज
विदिशा

खत्री योगेन्द्र प्रसाद आजाद
रामावतार प्रसाद खत्री पथ

दिवान मुहल्ला (हमाम)
पटना सिटी–८०० ००८
आजीवन-सदस्य—'खत्री हितैषी' पत्रिका एवं अखिल भारतीय खत्री महासभा

यशबन्त प्लास्टिक स्टोर

(बिहार सरकार के उपक्रम 'रबड़ एण्ड प्लास्टिक कम्पलेक्स बिहिरा' के अथोराइज्ड स्टाकिस्ट)
सिटी दालान, पटना सिटी–८०० ००८
प्रोपराइटर–खत्री यशबन्त प्रसाद खत्री

सर्वश्री मानक स्टोर्स

टोबैको मर्चेन्ट गोलदरवाजा, चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)
सर्वश्री मानक मिनरल्स—स्टोन क्रशर वरोरा, जि०-चन्द्रपुर
सर्वश्री शिल्पा स्टील फर्नीचर्स—जटपुरा गेट, चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)
खत्री मानक लाल नारायण लाल बोहरे

खत्री किशन लाल नारायण लाल बोहरे

सर्वश्री खत्री टेलीवीजन्स २४/२५, सराई मार्केट जटपुरा गेट, चन्द्रपुर

सर्वश्री आनन्द जनरल स्टोर्स जटपुरा गेट चन्द्रपुर, महाराष्ट्र

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

विवाह एक यज्ञ
विवाह एक संस्कार

–जातिभूषण खत्री सतीशचन्द्र सेठ
उपाध्यक्ष–उ० प्र० खत्री सभा
महामन्त्री–खत्री हितैषी
संयोजक–अलंकार समिति उ० प्र० खत्री सभा

हिन्दू विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है। मनुष्य पशु की भाँति अमर्यादित, स्वेच्छाचारी न हो जाये, उसकी इन्द्रिय-चरितार्थ करने की वासना संयमित हो, भोग लालसा मर्यादित रहे, भाव में विशुद्धि बनी रहे, सन्तानोत्पादन के द्वारा वंश की रक्षा और पितृ-ऋण का शोध हो, भोग का तत्व जानकर संयम के द्वारा मनुष्य क्रमशः त्याग की ओर अग्रसर हो सके, प्रेम को केन्द्रीभूत करके उसे पवित्र बनाने का बल प्राप्त हो 'स्वार्थ का संकोच और परार्थ-त्याग' की बुद्धि जाग्रत होकर वैसे ही परार्थ-त्यागमय जीवन का निर्माण हो और अंत में मानव-जीवन की सफलता रूप भगवत्प्राप्ति हो जाये, इन्हीं सब पवित्र उद्देश्यों को लेकर हिंदू-विवाह का पावन विधान है। विवाह से यथार्थ में विलासवासना का सूत्रपात नहीं होता, अपितु संयम-नियमपूर्ण जीवन का प्रारंभ होता है।

इस छोटे से लेख में विवाह-संस्कार की महत्ता और आवश्यकता, विवाह-संस्कार के पवित्र भाव, विवाह-संस्कार के प्रधान मंत्रों का साराँश, नारी के पवित्र आदर्श, त्याग तथा उसकी कर्तव्यनिष्ठा रूप तपस्या एवं वर और वधू दोनों के लिये अवश्य पालनीय धर्म एव कर्तव्य आदि के सम्बन्ध में सदुपदेश तथा मंगलाशीष के रूप में आदर्श महत् वाक्यों का संग्रह किया गया है। वे सभी पढ़ने, समझने और जीवन में उतारने योग्य हैं। इस पुस्तिका का मर्म समझना कन्या-वर के अतिरिक्त दोनों परिवारों के सभी आदरणीय पुरुषों, महिलाओं तथा वर-वधू की मंगल कामना के लिये विवाह समारोह में आये सभी व्यक्तियों के लिये अत्यन्त लाभदायक होगा, इस आशा से इसे प्रकाशित किया जा रहा है।

विवाह : एक यज्ञ

वैदिक विवाह-संस्कार की पद्धति में तीन मुख्य कृत्य हैं। प्रथम-कन्यादान द्वितीय-अग्नि–प्रदक्षिणा के समय समंत्रक वरकर्तृक कन्या का पाणिग्रहण, तृतीय सप्तपदी कृत्य इन तीनों के सम्पादन होने पर विवाह की सम्पन्नता मानी जाती है। विशेष रूप से वेदविधि का जिसमें वहन किया जाये, पालन किया जाये, उसे विवाह कहते हैं।

कन्यादान के समय दाता अपने पूर्वापर बीस वंशजों के साथ अपने भी उद्धार की कामना करके कन्या का दान देता है, कन्या को लक्ष्मी और वर को विष्णु मानकर इस कृत्य को सम्पन्न करता है। वह सबका उद्धार चाहता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

हिंदू धर्मशास्त्रों में विवाह को यज्ञ कहा गया है। इस वैवाहिक यज्ञ में पति-पत्नी का सम्बन्ध जीवन-पर्यन्त के लिये एक रूप में परिणत हो जाता है। पति-पत्नी को एक सूत्र में सदा के लिये प्रेम रूप में ग्रंथित करने के कारण विवाह-संस्कार का शास्त्रों में बड़ा महत्व है।

माया जगत् में 'पति-पत्नी' का सम्बन्ध सबसे बड़ा कहा जाता है। इसकी उत्तमता पर जीवन का सौष्ठव निहित है। वर और वधू दोनों ही सुयोग्य हों तभी विवाह का यथार्थ आनन्द और महत्व प्रतीत होता है।

वर-वधू की उत्तमता से चिरकाल तक विवाह-यज्ञ यशस्कर होता है, और पुत्री-पुत्रादि पारिवारिक सुखों का अर्जन करता है। वस्तुतः सुयोग्य वर-वधू के सम्बंध को स्थापित करने का एक मात्र श्रेय कन्या के पिता और वर के पिता के ऊपर निर्भर रहता है। विशेष कर, कन्या के पिता का उत्तरदायित्व अधिक होता है।

विवाह-संस्कार

वैदिक धर्म के अनुयायी विवाह को 'संस्कार' मानते हैं। संस्कार का अर्थ है आत्मशुद्धि का उपाय। संस्कार से संयमी एवं विशुद्ध बनी हुई आत्मा ही अपने असली सत् का प्रकाश एवं ज्ञानात्मक स्वरूप का साक्षात्कार कर सकती है एवं विश्वात्मा के साथ एक बन सकती है। वेदों में प्रचलित धर्म में विवाह केवल एक स्त्री एवं पुरुष का परस्पर मिलना और घर गृहस्थी चलाना एवं संतति उत्पन्न करना ही नहीं है, किन्तु विशुद्ध संयमपूर्ण जीवन के द्वारा समाज और राष्ट्र का उत्तम अंग बनना एवं परमार्थ यानी मुक्ति तक पहुँचने की दीक्षा लेना है।

इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही विवाह विधि का निर्माण हुआ, अग्नि, ब्राह्मण, गुरुजन एवं आप्त-जनों के समक्ष स्त्री पुरुष परस्पर के सुख और कल्याण के लिये प्रतिज्ञा लेते हैं, एवं आदर्श गृहस्थ तथा उत्तम संस्कारी संतति द्वारा समाज के अभ्युदय में सहायक बनने का निश्चय करते हैं। विवाह का उद्देश्य भोग नहीं किन्तु सतत जागरूकतापूर्ण उद्यम एवं बलिदान है। विवाह विधि में अग्नि पूजा एवं होम प्रधान है। अग्नि तेजोमयी देवता है एवं अन्य देवताओं का मुख है। अग्नि की प्रार्थना करते हम उनसे यह माँगते हैं—

हे अग्नि, आपके तेज से मैं तेजस्वी बनूं। आपके प्रभावपूर्ण वर्चस से मैं वर्चस्वी बनूं। आप जैसे मलिनता के नाशक हैं वैसे मैं भी अपने आन्तर्बाह्य को मिटा दूं।

कन्यादान

कन्या के माता पिता शरीर एवं मन बुद्धि के स्वास्थ्य से सम्पन्न गुणयुक्त योग्य वर को अपनी गुणवान सुशील पुत्री का सहर्ष दान करते हैं। कन्यादान का अर्थ है समर्पण, जो अत्यन्त पुण्यवान् माना गया है। इसमें उभय पक्ष से धन या वस्तुओं के आनान प्रदान की अपेक्षा नहीं होनी चाहिये। आदान प्रदान सौदा या विक्रय है जिसे वैदिक धर्म ने पाप समझा है। पिता पुत्री को समर्पित करते हुए इस प्रकार संकल्प करता है :—

वेद स्मृति एवं पुराणों में निर्दिष्ट पुण्य प्राप्ति के लिये इस पवित्र दिन में मैं अपनी 'लक्ष्मीरूपा' कन्या को 'विष्णुरूप, इस वर को इष्टजनों के एवं अग्निदेव के समक्ष विवाह विधि से समर्हित करता हूँ आदि—

सप्तपदी

विवाह संकल्प एवं कन्यादान होने के पश्चात् नव वर वधू बनते हुए स्त्री पुरुष अग्नि में होम करते हैं। तदनन्तर अग्नि की प्रदक्षिणा करते हुए सात कदम चलते हैं जिसे 'सप्तपदी' कहा जाता है। इस सप्तपदी के प्रत्येक कदम पर वर एवं वधू परस्पर के प्रति अपनी आकांक्षा एवं कर्तव्य की प्रतिज्ञा करते हैं। इस प्रतिज्ञा में

"We must learn how to combine, to help and to be helped in return."

—रायबहादुर श्री प्राग नारायण सेठ (मौरावाँ) मंत्री, अखिल भारतीय खत्री महासभा (१९२०)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

केवल शरीर ही नहीं अपितु मन, बुद्धि एवं आत्मा का ऐक्य सिद्ध करने की सद्भावना है। अन्यान्य को सुखी करते हुए गृहस्थजीवन को उदात्त बनाने की शुभकामना है।

सप्तपदी इस प्रकार है :—

(१) **वर**—मेरी अन्नादि समृद्धि की रक्षा के लिये भगवान विष्णु ने तुम्हें मुझे दिया है। तुम मेरे घर चलो और मेरा अनुवर्तन करो।

कन्या—यहाँ से तुम्हारे घर आकर कृमि कीटादि जंतुओं से धर्म प्राप्त अन्नादि की रक्षा करूंगी और तुम्हारे अनुकूल बनने को सतत प्रयत्नशील रहूंगी।

(२) **वर**—मेरा बल एवं तेज बढ़े इसलिये विष्णु ने तुम्हें मुझे दिया है। तुम मेरे घर चलो और मेरी बलवृद्धि में सहायक बनो।

कन्या—अन्न से ही प्राण का बल बढ़ता है। अतः मैं तुम्हारे एवं तुम्हारे परिवार के लिये इस प्रकार पाक पकाऊँगी जिससे नाथ! हम सब का बल बढ़े।

(३) **वर** तीसरे पद पर परमात्मा ने तुम्हें मुझे धन वृद्धि के लिये दिया है। कन्ये, तुम मेरे घर आओ और मेरा अनुसरण करो।

कन्या—नाथ! योग्यायोग्य खर्च का विचार करके मैं अपनी शक्ति एवं बुद्धि के अनुसार आपकी धन संपत्ति की वृद्धि करूंगी, ऐसा तृतीय पद में नव वधू वर को विश्वास दिलाती है।

(४) **वर**—हे कन्ये? मुझे और मेरे परिवार को सुख मिले इसलिये भगवान ने मुझे तुम्हें दिया है। मेरे घर को चलो और वहाँ सुख वृद्धि करो।

कन्या—आप और आपके परिवार को सुख मिले इसलिये मैं आऊँगी। 'यह मेरा और यह दूसरे का' ऐसी भेद बुद्धि को छोड़ दूंगी यह मेरी चतुर्थ पद में प्रतिज्ञा है।

(५) **वर**:—हे कन्ये, मेरे पशु (समयानुरूप घर की सब सामग्री) की रक्षा के लिये विष्णु ने तुम्हें मुझे दिया है, तो चलो और मेरे अनकूल बनो।

कन्या :—मैं आपके पशुओं की हर प्रकार से रक्षा करूंगी, और अन्य सब धर्मसाधक साधनों को भी रक्षा करूंगी, इस प्रकार पंचम पद में नव वधू प्रतिज्ञा करती है।

(६) **वर** :—संवत्सर की छहों ऋतुएं अनुकूल हों, इसलिये भगवान ने तुम्हें मुझे दिया हैं। मेरे घर चलो और अनुकूल बनो।

कन्या : —नाथ! आपके दिये हुए ऋतु-अनुसार वस्त्र एवं अलंकार पहन कर, संतोष के साथ आपके साथ रमण करूंगी। जीवन भर हमेशा मन वचन एवं कर्म से आपके साथ रहूंगी। यह मेरी षष्ठ पद पर प्रतिज्ञा है।

(७) **वर** :—आज से इस सप्तपदी के फलस्वरूप तुम मेरी सखी मित्र हुई हो। मेरे घर आकर मेरी अनुवर्तिनी बनो।

कन्या :—इस सातवें पद के अनंतर आप मेरे सखा और मैं आपकी सखी बनी हूं। नाथ! अब मैं आप से बंध गई हूं आपका अनुवर्तन मेरा धर्म है। आप कभी मेरा अतिक्रमण न करे और न मैं कभी आपका अतिक्रमण करूंगी। हमारे इस प्रकार प्रेमपूर्ण विश्वस्त एवं सदाचारी व्यवहार से हमारा घर सदैव प्रीति, सुख एवं शांति से हरा भरा रहेगा।

"I, therefore say, brethren, advance, but advance cautiously"

—महाराजाधिराज बन विजय चन्द्र महताब

अध्यक्ष आगरा अधिवेशन, सन् १९१२ अखिल भारतीय खत्री महासभा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जब धर्म और भार्या परस्पर अनुरूप होते हैं, अर्थात जब स्त्री पति के धर्मकार्य की सहायिका होती है, यर्थार्थ सहधर्मचारिणी बनती है, तब धर्म अर्थ एवं काम ये तीनों पुरुषार्थ एक दूसरे के पूरक एवं संवर्धक बनते हैं।

दाम्पत्य का आदर्श

पति पत्नी परस्पर के परम मित्र हैं, सर्वोत्तम सगे हैं, सब कामनाओं के अधिष्ठान हैं, सबसे मूल्यवान निधि हैं, अधिक क्या कहें एक दूसरे जीवन है,; यह बात उनको, दाम्पत्य के इच्छुकों को, सदा ज्ञात रहे।

जिस परिवार में पत्नी से पति एवं पति से पत्नी संतुष्ट रहते हैं, वहाँ नित्य निश्चय रूप से कल्याण होता रहता है।

पतिव्रताओं के आँसू पृथ्वी पर निरर्थक नही गिरते। अर्थात, पतिव्रता स्त्री को दुःख पहुँचाना भारी अनर्थकारी होता है।

अनुकूल और प्रतिकूल, सुख और दुःख एवं भूत तथा भविष्य के विषय में जो समभाव रखता है धैर्य से च्युत नहीं होता, वही व्यक्ति सर्ब संपति का भाजन बनता है।

शराब खाद्यों का मल है, शराब-मदिरापान यह वस्तुतः 'पाप' पान ही है। इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य लन कभी इसका सेवन न करें।

विवाह-संस्कार के कारण ही गृहस्थाश्रम की महिमा

विवाह संस्कार के कारण ही गृहस्थाश्रम की शास्त्रों में बड़ी महिमा है। मनु के अनुसार, जिस प्रकार नदीनदादि अपनी सुस्थिरता के लिये समुद्र का आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार अन्य आश्रमी भी अपने भरण पोषणादि के लिये गृहस्थ का आश्रय लेते हैं। इसलिये गृहस्थ को ज्येष्ठाश्रमी कहा गया है, क्योंकि वह अन्य तीन आश्रमियों का पोषक है।

पुरुष जाति का कर्तव्य है कि वह सर्वतोभावेन नारी की रक्षा करे। जिस गृह में समाज में स्त्रियों का आदर होता है, वही देवों का निवास होता है। जहाँ उनका अपमान है, वहां के सभी कार्य निष्फल हैं।

जहां स्त्रियों की पूजा आदर संत्कार से होती है वहां देवता प्रसन्न रहते हैं अर्थात कल्याण बरसाते हैं, और जहाँ उनका अनादर होता है वहां सब क्रियाएं निष्फल होती हैं। जिस कुल में पति से पत्नी एवं पत्नी से पति संतुष्ट होते हैं वहां निश्चित ही कल्याण होता है।

पत्नी पतिव्रत्य-धर्म के बल पर ही पति को दीर्घायु प्रदान करती हुई एक मात्र पति की परिचर्या द्वारा ही पतिमयी बनकर कैवल्य की अधिकारिणी बनती है।

हिन्दू विवाह का आदर्श

विवाह इंद्रिय-सुख के निमित नहीं, किन्तु मानव-वंश को आगे चलाने के लिये है। विवाह का भारतीय आदर्श यही है। समाज में उसी प्रकार के विवाह का प्रसार होता है जिससे समाज का अधिक से अधिक कल्याण साबित हो सके। अतएव पति पत्नी को समाज और देश के कल्याण साधन के निमित्त अपने व्यक्तिगत आनंद और सुख की आहुति देने को सदैव तत्पर रहना चाहिए।

जिस स्त्री का लज्जा ही वस्त्र है, विशुद्ध शील स्वभाव ही भूषण है, जिसकी धर्म मार्ग में प्रवृति है, और जिसकी वाणी मधुर है, वह नित्य पति सेवापरायणा धन्य श्रेष्ठ नारी इस पृथ्वी को पवित्र करती है।

"वीर क्षत्रिय हृदय किन्हीं चिन्ताओं और कार्यों में कितना ही ग्रसित तथा व्यग्र क्यों न हो, आर्तनाद सुनते ही वह कार्य क्षेत्र में आन उपस्थित हो जाता है।"

—लखनऊ अधिवेशन (१९१६) अखिल भारतीय खत्री महासभा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक
के अवसर पर

हार्दिक शुभ कामनाएँ

दूरभाष : १११२

ला० केशव दास टंडन

बड़ा बाजार, कन्नौज

संबंधित प्रतिष्ठान

दूरभाष २१२

मे० खत्री संदल बुड आयल-एन्ड एसेंसियल आयल

डिस्टिलर्स, तालवारान, कन्नौज

● चंदन तेल ● चंदन मुठ्ठा ● चंदन पाउडर

के उच्चकोटि के निर्माता एवं विक्रेता

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

के अवसर पर

हार्दिक शुभ कामनाएँ :

卐

खत्री सोहन लाल मेहरोत्रा

संरक्षक खत्री हितैषी उ० प्र०

विशिष्ट फर्नीचर के निर्माता—स्टील तथा लकड़ी सरकारी रेट कान्ट्रैक्ट पर

मान्यता प्राप्त सप्लायर्स

★ बैंक फर्नीचर के अपूर्ति कर्त्ता

★ 'स्टीलएज' के सेक्योरिटी इक्वीपमेन्टस के वितरक

★ 'अजन्ता' स्टील रैक्स के स्टाकिस्ट

★ 'माईना चेयर्स' के स्टाकिस्ट

★ रूम-कूलर्स तथा हर प्रकार के मैट्रेसेज के विक्रेता

श्री मेघदूत एंड कंपनी

मलदहिया, वाराणसी

फोन—४३८९१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

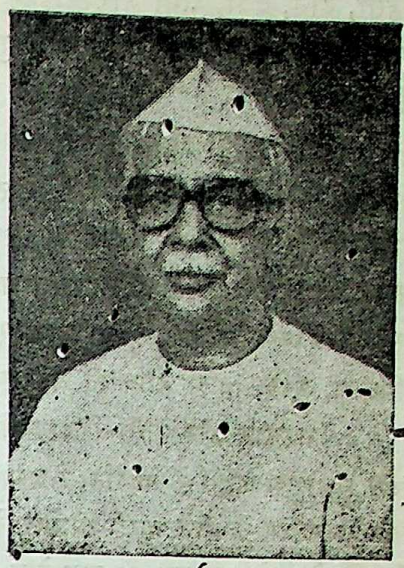

खत्रियों के संस्कार

—खत्री हरिमोहन दास टण्डन

संस्कृत कोष के अनुसार संस्कार का मुख्य अर्थ है शिक्षा, अनुशीलन, मानसिक प्रशिक्षण, अन्तः शुद्धि, पवित्रीकरण, पुनीत कृत्य शृंगार, चमकाना, शुद्धिकरण आदि। मनुष्य का प्रशिक्षण, पवित्रीकरण कर उसको अधिक से अधिक चमकाना, मानव चरित्र को परिमार्जन कर उसके अन्दर सद्भावना, सत्य, अहिंसा, दया, सहनशीलता आदि सद्गुणों का विकास करना संस्कार का उद्देश्य है। यह एक लम्बी कष्टसाधन प्रक्रिया है जिसके द्वारा जाति या समाज की पहिचान बनती है और यही पहिचान संस्कृति कहलाती है।

भारतीय (आर्य) मनीषियों ने चिन्तन, मनन और अनुभव के द्वारा मानव जीवन का उद्देश्य, उसका लक्ष्य तथा उसके स्वरूप का निश्चय किया। पशु जगत में व्याप्त मनोविकारों, मोह आदि के आकर्षणों से मन को हटाकर सत्यानुभूति की ओर उन्मुख करने की चेष्टा ऋषियों ने की अर्थात् मनुष्य को कतिपय संस्कारों से शुद्धकर उसे शास्वत मूल्यों को ग्रहण करने की प्रेरणा दी। सृष्टि सचालन के ध्येय से भौतिकता का महत्व स्वीकार करते हुए परमतत्व की प्राप्ति को जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस तरह नश्वरता से अनश्वरता की ओर बढ़ने का प्रयास अध्यात्मिकता का आधार है। यह भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है, उसकी पहिचान है। सनातन सत्य की खोज और ज्ञान का निरन्तर परिष्कार सनातन धर्म की शक्ति है। श्री हरि भाई उपाध्याय के शब्दों में "जो मार्ग, जो विधि, जो क्रिया हमें ईश्वरत्व की ओर ले जाती है, वह हिन्दू संस्कृति, आर्य संस्कृति, सज्जन संस्कृति, सुस्कृति है।" इसके अन्तर्गत ही आचार, व्यवहार तथा विचार सभी का समावेश होता है।

सत्, चित् एवं आनन्द स्वरूप अनश्वर सत्य का ही नाम मनीषियों ने रक्खा। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि "आकर चार लाख चौरासी" रूपों वाले जीवों का नाश और उत्पत्ति का अविच्छिन्न क्रम तभी संभव है जब पुनर्जन्म का सिद्धान्त माना जाये। कारण, स्थूल और सूक्ष्म शरीर की मान्यता पुनर्जन्म के सिद्धांत पर आधारित है। यही भारतीय आर्य संस्कारों का मूलाधार है। अधिकांश संस्कार चरित्र एवं व्यवहारगत हैं। कतिपय संस्कार जन्म जन्मांतर तक साथ चलने वाले निर्धारित किये गये हैं, उन्हें ही पुष्ट करने के लिये कर्म-सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है—"कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करई सो तस फल चाखा।" कर्म का सम्बन्ध आचार, व्यवहार, मन तथा बुद्धि से है।

मानव जीवन को पवित्र एवं उत्कृष्ठ बनाने वाले अध्यात्मिक उपचार का नाम संस्कार है। वह श्रेष्ठता की ओर बढ़ने के हेतु लिया गया संकल्प है। कर्म सिद्धांत के कारण हमने जीवन में संयम, नियम, त्याग, प्रेम,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

अहिंसा, दान, दया, क्षमा और सहिष्णुता आदि गुणों को आवश्यक मान लिया। संयुक्त परिवार, विश्व बन्धुत्व, विविधता में एकता आदि अनेक ऐसे गुण हैं, भारतीय संस्कृति के जिन्होंने उसे अबाध गति से विकास करने में सहायता दी।

शरीर, इन्द्रियाँ मन बुद्धि, चित्, आदि इन सबके अत्यधिक उत्कर्ष तक संस्कार होते हैं। योग, जप, तप आदि सभी संस्कार ही हैं। मोटे तौर पर संस्कार दो प्रकार के होते हैं—मलापनयन और अतिशयाधान। दर्पण को किसी चूर्ण या साबुन से साफ करने को मलापनयन संस्कार कहते हैं। तेल या रंग द्वारा हाथी के मस्तक या काठ या धातु की वस्तु को चमकाना अर्थवा सुन्दर रूप देने को अतिशयाधान संस्कार कहते हैं। ४८ संस्कारों में कुछ के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक मल, पाप, अज्ञान आदि का अपनयन और कुछ के द्वारा पवित्रता, शुद्धि, विद्या आदि की अतिशयता का प्रयास किया जाता है।

संस्कार और रीति-रिवाज में अन्तर है। रीति-रिवाज परिवार तथा समाज के सुख दुःख, उत्साह, संबंध शुभाशुभ आदि के प्रदर्शन से जन्म लेते हैं। पुत्र जन्म, विवाह आदि अवसरों पर सम्बन्धियों को भेंट देना, तनी या मण्डप के नीचे हल्दी तोड़ना, सेहरा बाँधना आदि और मृत्यु होने पर अगले जन्म में समस्त सामग्रियों की पूर्ति के लिये महापात्र को दान देना, वर्ष भर ब्राह्मण को भोजन कराना, कब्र में मूल्यवान वस्तुओं को रखना इत्यादि रीति-रिवाजों के अन्तर्गत हैं। संस्कारों का विधान शास्त्रों में वर्णित है। वर्णों के अनुसार उनमें यत्किञ्चित भेद तो है, परन्तु मूलभूत विधान में एकता है। देश, काल और परिस्थिति के कारण रीति-रिवाजों में सदा परिवर्तन होता रहा और आगे भी होता रहेगा। सनातन धर्म की रक्षा संस्कारों द्वारा ही होती रही है। संस्कार बदलने या त्याग देने से धर्म अथवा सम्प्रदाय बदल जाता है। वर्तमान काल में आर्य समाज, ब्रह्म समाज, राधा स्वामी, सिख आदि सम्प्रदायों का जन्म इसी प्रकार हुआ है। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पहले और बाद में भी कुछ संस्कार होते हैं, अन्यथा सभी धर्मों के मूलभूत सिद्धान्त एक से हैं। जीव दया, दान, सहिष्णुता, संयम, समता, परस्पर सहानुभूति आदि को ग्रहण करने का उपदेश सभी धर्म देते हैं। वैदिक काल के अब तक प्रचलित हिन्दू धर्म (सनातन धर्म) के स्तम्भ प्रधान रूप से १६ संस्कार है और कर्म की सुविधा के लिये चतुवर्ण की व्यवस्था है।

सनातन धर्म मनुष्य मात्र में समता-भावना की शिक्षा देता है। "सियाराम मय सब जग जानी।" अथवा "सर्वे भवन्ति सुखिना" आदि वाक्य समता के उद्बोधक हैं। समय समय पर बौद्धिक एवं शारीरिक शक्ति सम्पन्न वर्ग के निर्बल वर्ग को हीन भावना से देखा है। फलतः महान व्यक्तियों का प्रादुर्भाव (अवतार आदि) होता है। श्रीराम ने न केवल शक्तिशाली, अत्याचारी रावण से समाज को मुक्ति दिलाई, उन्होंने निषाद, शबरी, वानर, ऋक्ष आदि उपेक्षित जातियों के बीच भाईचारे की भावना पैदा की श्री कृष्ण ने न केवल अत्याचारी कंस, शिशुपाल, जरासंध आदि को विनष्ट किया, उन्होंने ग्रामीण जीवन से जुड़े उपेक्षित समाज को निर्भय कर सम्मान दिलाया। गौतम बुद्धि आदि युग पुरुषों ने राजवैभव को तुच्छ मानकर अहिंसा, दया, समता का प्रचार किया। धर्म की रक्षा निरन्तर होती रहे, समाज और देश में शान्ति बनी रहे और अनाचार पर अंकुश लगा रहे इस उद्देश्य से क्षत्रियों को उसके नियन्त्रण की जिम्मेदारी सौंपी गई। उनके लिये एक सूत्र बना "धर्मो रक्षति रक्षिता" अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है उसकी रक्षा धर्म करता है। क्षत्रियों (खत्रियों) ने अपने कर्तव्य का सदा पालन किया। यदि कभी उन्होंने धर्म की उपेक्षा की तो उन्हें कष्ट झेलना पड़ा, सजा भुगतनी पड़ी। विश्वामित्र की कथा, मोर्यो के उत्कर्ष का इतिहास आदि इस तथ्य को उजागर करते हैं। आज हम पुनः संक्रान्ति काल से गुजर रहे हैं क्योंकि हम अपने धर्म के मूल आधार संस्कारों की उपेक्षा करने में अपना बड़प्पन मान रहे हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

वर्तमान समय में संस्कारों की उपेक्षा में केवलमात्र पाश्चात्य शिक्षा तथा संसर्ग और कलिकाल ही एक मात्र कारण नहीं है। उसका एक प्रमुख कारण पूर्वजों के अज्ञान, आचरण, अशिक्षा एवं अन्ध-विश्वास में भी रहा है। लगभग १२०० वर्ष के विदेशी शासन और उसके कारण उत्पन्न अस्थिरता के फलस्वरूप हमारी शिक्षा तथा सामाजिक व्यवस्था छिन्न भिन्न हो गई। पूर्वजों ने संस्कार, रीति, रिवाज और धार्मिक कट्टरता को एक सूत्र में पिरो दिया। धीरे-धीरे सब कुछ इतना गडमड्ड हो गया कि आर वस्तु को अलग करना बहुत कठिन हो गया, भारतीय मान्यता के अनुसार संस्कार का सम्बन्ध न केवल इसी जन्म से है, वरन् जन्मांतर से भी है और रीति-रिवाज देश, काल तथा परिस्थिति जन्य है और परिवर्तनशील है। हम एक उदाहरण लें। पूर्वकाल में मुंडन और विवाह के अवसर पर एक ठीलाढाला वस्त्र पहनाया जाता था जिसे बागा कहते थे, वह केवल शोभा थी कोई संस्कार नहीं। इसी तरह विवाह के अवसर पर आमोद विनोद के लिए कई रस्में हुआ करती थी, जैसे वर के जूते को छिपा देना, वर से छन्द सुनना, कठौती, कंगना खोलना आदि। आज समयाभाव, आर्थिक विचार आदि के कारणों से ये रीतियाँ प्रायः समाप्त हो रही हैं। संस्कार हिंदुत्व के अभिन्न अंग हैं। उनके त्याग से हिंदू धर्म का ही लोप हो जायेगा।

हिन्दू शास्त्रकारों के मतानुसार जन्म से बच्चे का कोई धर्म नहीं होता है। उसका जब किसी विशेष धर्म के अनुसार संस्कार जाता है, तब वह धर्म के नाम से अभिहित होता है ईसाई, पारसी, मुसलमान, हिन्दू, बौद्ध आदि धर्मों में ऐसे संस्कारों की व्यवस्था है, जिनके कर्मकाण्डों को पूरा करने के बाद ही बालक उसका अंग बनता है। शिक्षा एवं अन्य जीवन पद्धतियों के द्वारा विशिष्ट धर्म पर आँस्था पैदा की जाती और सद्सद् के फलस्वरूप शुभाशुभ फल के प्रति विश्वास पैदा किया जाता है।

हिन्दू शास्त्रों का मत है कि जैसा बीज बोया जाता है ? वैसा ही वृक्ष होता है। उस पर भूमि, जल, वायु, प्रकाश का भी प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार चरित्रवान, विचारवान, सुशिक्षित, स्वस्थ एवं धार्मिक व्यक्ति की सन्तान सुसंस्कृत परिवार और समाज के सहयोग से अधिकाधिक गुणवान एवं प्रतिभाशाली है। जिस तरह कृषक का धर्म है कि दोष रहित बीज को ऋतु एवं मिट्टी का ध्यान रखते हुए आरोपित करे, उसी तरह गर्भाधान में भी काल, अवसर, स्वास्थ्य एवं मानसिक शान्ति का ध्यान रखना आवश्यक होता है। केवल पशुवत वासना तृप्ति ही जीवन का ध्येय नहीं है।

जिस प्रकार कुछ समय बीतने पर बीज से अंकुर निकल कर पल्लवित होता है। उसके बाद फल प्राप्ति होने के पूर्व तक माली को विशेष देखरेख करनी पड़ती है, उसी प्रकार गर्भाधान के बाद सन्तान जन्म के पूर्व दो संस्कार किये जाते है। पुंसवन तीसरे महीने और सीमन्त सीमन्तोन्नयन संस्कार छठे या आठवें महीने सम्पन्न होता है। पुंसवन के बाद से माता के विचार और व्यवहार का प्रभाव निर्माणाधीन शिशु पर पड़ने लगता है। सीमान्त संस्कार के काल से गर्भस्थ में ग्रहण शक्ति आ जाती है। अर्जुन पुत्र अभिमन्यु ने चक्रव्यूह भेदन का ज्ञान और अष्टावक्र ने अध्यात्म ज्ञान उसी अवस्था में ग्रहण किया था। खत्रियों के यहाँ ये दो संस्कार रीति और भोरें या गोद भरने के रूप में प्रचलित है।

जातकर्म, नामकर्म, निष्क्रमण (घर से बाहर निकलना) अन्नप्राशन, विद्यारम्भ और कर्णभेद संस्कार नाम से ही स्पष्ट है। जीवन से सम्बन्धित हर काम धार्मिक दृष्टि से ही इस भावना से इन संस्कारों को करने का विधान है। सुमंगल की दृष्टि से उनके लिये तिथि वार नक्षत्र आदि का विचार करने की व्यवस्था की गई है। षष्ठी पूजन (छठी) संस्कार नहीं एक अनुष्ठान है। वह भगवती षष्ठी (देवसेना) जो स्वामिकार्तिकेय की पत्नी है और बालकों की अधिष्ठात्री देवी हैं, को प्रसन्न करने के लिये किया जाता है। सन्तान की दीर्घायु, सुरक्षा और भरण-पोषण के लिये देवी की पूजा का प्रचलन हुआ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चूड़ा कर्म (मुण्डन) संस्कार के बिना शिशु हिन्दू नहीं बनता। सभी वर्णों के लिये यह अनिवार्य संस्कार है। जन्म से शिशु का कोई धर्म नहीं होता। अतः सभी धर्मों में कतिपय विशेष संस्कार होते हैं, जिसके द्वारा ही बालक विशिष्ट धार्मिक समाज में प्रवेश करता है। ईसाईयों में बातित्मा, मुसलामानों में खतना आदि संस्कार इसी प्रकार के हैं। चूड़ाकर्म के द्वारा बालक के गर्भ के बालों का क्षौर कर चोटी रख दी जाती है। प्रत्येक हिन्दू के लिये शिक्षा (चोटी) की रक्षा करना आवश्यक है, क्योंकि धार्मिक अनुष्ठान, सन्ध्या, श्राद्ध आदि कर्मकाण्डों में उसकी आवश्यकता रहती है। वह हिन्दुत्व की पहिचान भी है।

विद्यारम्भ से लेकर समावर्तन तक के पाँच संस्कार शैक्षणिक संस्कार कहलाते हैं। वे क्रमशः विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त एवं समावर्तन के नाम से प्रसिद्ध हैं। बालक/बालिका को पाँच वर्ष तक आचार, व्यवहार आदि की शिक्षा देना माता का धर्म है। उसके बाद अक्षरारम्भ और आरम्भिक ज्ञान का अवसर आता है। बालक समाज के बीच विचरण करने लगता है तब उसके आचरण और चरित्रिक गुणों का विकास करना पिता का कर्तव्य है।

क्षत्रियों का उपनयन (जनेऊ) संस्कार ११ वें वर्ष में करने का विधान है। उसके बाद बालक/बालिका की उच्च शिक्षा चरित्र निर्माण आदि का भार सुयोग्य गुरू को सौंप देना उसका उद्देश्य है। ब्रह्मचर्य पालन के साथ-साथ यम, नियम आदि का पालन और योग्यतानुसार विद्या का अभ्यास समावर्तन तक चलता रहता है। खत्रियों के लिये उपनयन की अधिकतम आयु २१ वर्ष तक है। उसके बाद व्रात्य संस्कारहीन ब्राह्म कहलाता है। केशान्त उपनयन और समावर्तन दोनों अवसरों पर किया जाता है। शीश पर केश शोभ की वस्तु है, जिसे त्याग करना श्रेयस्कर माना गया है, क्योंकि संसारिकता के मोह का त्याग संस्कारों का लक्ष्य है। समावर्तन वर्तमान दीक्षांत समारोह के समान है, जिसमें गुरू विद्यार्थी को भविष्य के जीवन के कर्तव्यों, विद्या के सदुपयोग तथा बाधाओं से जूझने के लिये उपदेश देता है।

हिन्दू धर्म में उपनयन का महत्व बहुत अधिक है। इस संस्कार को बालक के समझदार होने पर करने का विधान है जिससे वह धार्मिक कृत्य संध्या आदि को सुव्यवस्थित ढंग से कर सके और चरित्र निर्माण सम्बन्धी बातों को समझ पावे। इसके बाद ही उसे धार्मिक कर्म (यज्ञ, पूजन श्राद्ध आदि) तथा शास्त्राध्ययन का अधिकार प्राप्त होता है। उसे द्विजता प्राप्त होती है और वह गायत्री मन्त्र का अधिकारी बनता है। द्विज का अर्थ है दूसरा जन्म। बालक प्रथम जन्म में माता के उदर के अन्धकार से मुक्त होता है और सांस्कारित जन्म में वह अज्ञान से मुक्त होकर ज्ञान के प्रकाश की ओर उन्मुख होता है। उसे गायत्री मंत्र संध्याकृत्य के साथ दिन में दो बार जाप करने का निर्देश किया जाता है। ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहिधियों यो नः प्रचोदयात्" का जाप "तमसो मा ज्योतिर्गमय" के रहस्य को उद्घाटित करने में सहायक होता है। संसार में सबसे ज्योतिर्मय सूर्य है। उससे ही स्थिरता, संयमितता एवं प्रखर बुद्धि के विकास की द्विज कामना करता है। विवेक बुद्धि से मनुष्य प्रतिभाशाली और महान बनता है। उपनयन के समय ब्रह्मचारी को उपवीत सूत्र (जनेऊ) पहनाया जाता है जो कर्मकांड से सम्बन्धित है। उसके तीन गुणे तीन अर्थात् नौ सूत्र सृष्टि के रहस्य से सम्बन्धित है। पहले बालक और बालिका दोनों का उपनयन होता था, परन्तु कालान्तर में बालिकाओं का यह संस्कार बन्द हो गया, क्योंकि उनका गुरुकल में रहकर विद्यार्जन बन्द हो गया। इसी कारण विवाहोपरान्त जोड़ा जनेऊ पहना जाता है क्योंकि सभी धार्मिक कृत्य पति-पत्नी मिलकर करते हैं।

समावर्तन के बाद ब्रह्मचारी को विवाहोपरान्त गृहस्थ जीवन व्यतीत करने का अधिकार मिलता है। हिन्दू धर्म में विवाह को केवल काम योग की कानूनी स्वीकृति नहीं माना गया है। वह स्त्री पुरुष के बीच मिल कर गृहस्थी चलाने का समझौता भी नहीं है, जिसे जब चाहा रद्द कर दिया जा सकता है। यहाँ वह एक समर्पण

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

है, सहयोगी भावना से धार्मिक जीवन बिताने का एक संकल्प है। स्त्री सहधर्मिणी है, अर्द्धांगिनी है। विवाह का बन्धन अटूट है। सुत, शील और धर्म तीनों ही पति-पत्नी के सामंजस्य पर निर्भर है।

जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु भी होती है। हिन्दू धर्म पुनर्जन्म पर दृढ़ विश्वास रखता है। अतः अंत्येष्टि संस्कार में अनेक ऐसे कर्मकाण्ड हैं जिनसे अगले जन्म में शरीर अपंग न होने पाये और व्यक्ति ने यदि कोई पाप किया हो तो उसका प्रक्षालन हो सके, वह शान्ति से दूसरा जीवन बिता सके। पूर्वजों से प्राणी का सम्बन्ध स्थापित कर उसे गौरव प्रदान करने की भावना प्रमुख रहती है। दशगात्र (दस पिंड से पूर्ण शरीर की रचना) सपिंडी तथा पितृ मिलन की क्रिया तदर्थ ही निहित है। वार्षिक श्राद्ध करने की परम्परा आर्य गौरव तथा संस्कृति की रक्षा की भावना से प्रचलित हुई। उसका ध्येय है कि पूर्वजों द्वारा अर्जित धवल यश कीर्ति सदैव आकाशदीप बनकर हमारा मार्ग प्रदर्शन करती रहे।

आजकल ऐसा प्रचलन बढ़ रहा है कि कुछ संस्कार सनातन धर्म के अनुसार करते हैं और कुछ आर्य समाज के अनुसार। यह स्थिति श्रेयस्कर कदापि नहीं है। निजी सुविधा, धार्मिक कृत्य पर अविश्वास और आर्थिक कारणों से यह अव्यवस्था फैल रही है। मनुष्य को एक धर्म अथवा सम्प्रदाय के अनुसार अपनी जीवन प्रणाली निश्चित करनी चाहिये, यह नहीं कि अपनी सुविधानुसार कभी कुछ कर्म किया कभी कुछ। यदि हमारी सनातन धर्म पर आस्था है तो तदनुसार ही संस्कार करना चाहिये और यदि आर्य समाज पर आस्था है तो जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार उसके अनुसार करने चाहिये। गीता में कहा गया है कि "पर धर्म भयावहः"। उसका तात्पर्य यही है। हम सनातन धर्मी हैं और उसी के बल पर संसार की सर्वोत्तम संस्कृति का निर्माण कर सके हैं। अतः सनातन धर्म के अनुसार संस्कार करने में हमारी भलाई है। गीता में कहा गया है कि पिंड क्रिया न करने से कुल और तदनन्तर समाज नष्ट हो जाता है—"पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्त पिण्डोदक क्रिया" (गीता १/४२)

अन्त में एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि संस्कार एक शिक्षा है और कर्मकाण्ड विधि। देश, काल, पात्र और परिस्थिति के अनुसार कर्मकाण्ड में सुधार हो सकता है, परन्तु संस्कार नित्य हैं। कर्मकाण्ड विवेचना एक वृहद् विषय है और उस पर आज की विशेष परिस्थिति में विद्वज्जन ही प्रकाश डाल सकते हैं। इत्यलम।

अपने बच्चो के उत्तम स्वास्थ्य एवं मानसिक विकास के लिए जन्म से ही लगायें

--: निर्माता :--

खत्री डा० नन्दकिशोर प्रसाद आर्य

मेसर्स-आर्य. फार्मेसी

जहानाबाद (बिहार)

प्लास्टिक इम्पोरियम

Plastick Emporiom

गोकुलपेठ, नागपुर-१०.

प्रो० हरीशंकर कौशल

नागपुर-४४००१०

OMPRAKASH B/O JAGDISHRAI CHOPRA

Chopra & Company

Merritt, Rice Radar Sewing Machins

Dealer City Post Office Road

Nagpur-440002

प्रकाश आटो मोबाईल्स

इण्डियन आयल डील

बिलग्राम, हरदोई

प्रकाश सर्विस स्टेशन

चौराहा बिलग्राम, हरदोई

कपूर मशीनरी स्टोर्स

चौराहा बिलग्राम, हरदोई

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Gram : MURABBAWALA

Phone Office 29
Resi. 412

MEHRA FOOD INDUSTRIES

MFGS. & SUPPLIERS OF :

"TIRUPATI BRAND" MURABBA

Gurihawala Pech

HATHRAS

Pin-204 101

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अरोड़ वंश का इतिहास

उत्पत्ति :—

भविष्य पुराण के जिस श्लोक के अनुसार अरोड़ वंशी अपने को त्रेतायुग में हुए महाराजा श्री अरुट का वंशज मानते हैं, वह इस प्रकार है :—

"नाग वंशोद्या दिव्या, क्षत्रियास्म मुदाहृता ।
ब्रह्म वंशोदयवाश्चान्ये, तथा अरुट वंश संभवा ।।"

(भविष्य पुराण, जगत प्रसंग अध्याय १५)

अर्थात् नाग वंश में होने वाले और वैसे ही ब्रह्म वंश में होने वाले तथा अरुट वंश (अरोड़ वंश) में होने वाले श्रेष्ठ क्षत्रिय कहलावे ।

त्रेता युग में श्री परशुराम से सम्मानपूर्वक अभयदान पाकर सूर्य वंशी क्षत्रिय श्री अरुट ने सिंधु नदी के किनारे एक किला बनाकर उसका नाम अरुट कोट रखा जिसे समयानुसार अरोड़ कोट कहा जाने लगा । महाराजा अरुट के साथी और वंशज ही अरोड़ा कहलाये ।

सिकंदर को भी महाराजा अरुट के वंशजों से लड़ना पड़ा था । इतिहास लेखक प्लिनी ने अरोड़ों को 'अरोटुरी' लिखा है । कालांतर में अरोड़ राज्य की गद्दी देवाजी ब्राह्मण के हाथ में आ गई । देवा जी ब्राह्मण के वंशज बौद्ध थे और उनकी राजधानी सिंधु नदी के पूर्वी किनारे पर 'अलोर' या 'अरोड़ कोट' ही थी जिसे आज-कल रोड़ी कहते हैं । अरबों के आक्रमण के समय अरोड़कोट के अंतिम राजा दाहर बड़े प्रतापी थे । उनके शासन काल में अरब आक्रमणकारियों ने समुद्र मार्ग से कई हमले किये, जिन्हें विफल किया जाता रहा । मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के समय आपसी फूट के कारण अरोड़ कोट हमलावरों के हाथ में चला गया । इस भगदड़ में अरोड़ वंशियों का एक दल जो उत्तर दिशा को चला, वह उतराधा कहलाया, दक्षिण दिशा को जाने वाला दक्षिणाधा और पश्चिम दिशा को जाने वाला दाहिरा कहलाया । इसके बाद अरोड़ वंशियों ने व्यापार और खेती को जीवन-निर्वाह का प्रमुख साधन बना लिया ।

ऐतिहासिक तथ्य :

अरोड़ शब्द की व्याख्या के अनुसार अरोड़ प्रांत के राजा या क्षत्रिय अरोड़ा खत्री कहलाये । इतिहासकार टॉड की राय है कि अरोड़ नगर सिंधु नदी के किनारे पर वर्तमान रोड़ी या अरोड़ी नगर से पांच मील पूर्व की ओर था और सिंधु नदी किसी पुराने समय में अरोड़ नगर के नीचे बहती थी ।

लाहौर विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में मौजूद फारसी में लिखी हुई दो हस्तलिखित पुस्तकों के आधार पर बताया जाता है कि अरोड़ सिंध की राजधानी थी । अरबों के आक्रमण के बाद आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में अरोड़ा सिंधु नदी के किनारे-किनारे उत्तर की ओर बढ़ते गये और जहां उन्हें उचित स्थान मिला बसते गये जो व्यवसाय धंधे मिलते गये उन्हीं को अपनाते गये ।

करीब तीन सौ वर्ष बाद जब पंजाब पर आक्रमण हुये तो अनेक अरोड़ वंशी सिंध की ओर लौट गये । कुछ परिवारों के समूह कच्छ और काठियावाड़ में भी जाकर बस गय । जहां उन्होंने स्वयं को लोहा वरना और

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

लोहावर कहा। धीरे-धीरे उच्चारण भेद से वे लोहाने कहलाने लगे। आजकल भी लोहानों में विवाह के समय जो गीत गाये जाते हैं, वे लाहौर की ओर ही इशारा करते हैं।

अरोड़ वंशियों की दिशांतर भेदों के अलावा धीरे-धीरे स्थान और पूर्वजों के आधार पर भी अनेक शाखायें हो गईं जैसा कि उनकी सैकड़ों अल्लों से पता चलता है। अरोड़ वंश की अल्लों का विवरण इसी विशेषांक में अन्यत्र दिया गया है। अरोड़ वंशी स्वयं को कश्यप गोत्र के क्षत्रिय मानते हैं।

अरोड़वंशी और राजस्थान :

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब पंजाब पर विदेशी आक्रमण हुये तो कुछ अरोड़वंशी राजस्थान की ओर भी चले गये थे। चिरकाल तक उनका सम्बंध पंजाबी अरोड़ वंशियों के साथ भी बना रहा। इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि राजस्थान के अरोड़ वंशी पंजाब से होकर राजपूताना में बसे। शव रैलाना निवासी श्री मोतीलाल के पास मौजूद कुछ हस्तलिखित ग्रंथों में इस तथ्य का उल्लेख मिलता है। अरोड़ वंशी खत्रियों द्वारा बनवाया हुआ श्री दरियाव देव जी का मंदिर श्री पुष्करराज में विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त जिन बड़े कस्बों और नगरों में अरोड़ वंशी बिरादरी के घर अधिक हैं, वहाँ भी श्री दरियावदेव जी के मंदिर स्थापित हैं। राजस्थान में अरोड़ वंशी खत्रियों की ८४ अल्लें हैं।

राजपूताना निवासी अरोड़वंशियों में उत्तराधी, दरवने, डाहरे आदि भेदों का कोई समुदाय नहीं है। अधिकांश लोग इन भेदों से भी अनभिज्ञ हैं। लोगों के रीति रिवाज को देखने से राजस्थान के अरोड़ा दरवने प्रतीत होते हैं। राजस्थान के अरोड़ा लोगों में ज्यादातर व्यापार में लगे हैं। इस शताब्दी के प्रारम्भ में राजस्थान के अरोड़ा समुदाय में एक विधवा के विवाह को लेकर फूट पड़ गई और पूरी बिरादरी दो दलों में बंट गई। यह दलबदी अब दखने में आती है। एक दल का नाम जोधपुरी अरोड़ा खत्री पड़ा तथा दूसरे दल वाले नागौरी अरोड़ा खत्री कहलाते हैं।

अरोड़ वंश में पूज्य श्री अमर लाल (श्री झूलेलाल)

सिंध के नसरपुर शहर में अरोड़ वंशी-ठक्कर-भक्त रतन राय के घर सम्वत् १००७ चैत्र सुदी दूज शुक्रवार प्रातः चार बजे श्री वरुण-दरियाव देव (पूज्य अमरलाल—झूलेलाल) साकार स्वरूप में माता देवकी की गोद में प्रकट हुये। उस समय सिंध में मराव नाम का मुसलमान बादशाह का राज्य था। सिंध की राजधानी तब ठटानगर थी। मराव बादशाह को जब इस तेजस्वी बालक के जन्म का पता चला तो उसने अपने वजीर अह्या को नसरपुर भेजा। वजीर ने भक्त ठक्कर राय के घर नवजात बालक को पालने में देखा। श्री अमरलाल जी ने पालने में ही जो चमत्कार दिखाये, उनसे अह्या नतमस्तक हो गया। अह्या की प्रार्थना पर श्री अमरलाल ने नीले घोड़े पर युवक के रूप में जाकर बादशाह का भी अहंकार दूर किया। आज भी सिंध में पूज्य अमरलाल जी के नाम से उड़ेरालाल ग्राम, सुंदर विशाल मंदिर यथा क्षमायाचक मराव बादशाह द्वारा बनवाया हुआ किला मौजूद है।

सावन भादों मासों में अरोड़वंशी पूज्य अमरलाल दरियाव देव जी को अपना इष्ट मानते हुये वरुण—दरियाव देव का जल के किनारे पूजन करते हैं। राजस्थान निवासी अरोड़ वंशी मिति भादों बदी सात को श्री दरियाव देव का पूजन करते हैं। सिंधी भाई चैत्र सुदी दूज को सारे भारत में पूज्य झूलेलाल का उत्सव दो-तीन दिन तक बड़ी धूम धाम से मनाते हैं जिसे चेटी चंड कहा जाता है।

आभार : प्रस्तुत लेख डा० ओम प्रकाश छाबड़ा द्वारा लिखित पुस्तक "अरोड़ वंश इतिहास" में उपलब्ध जानकारी पर आधारित है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अन्त्येष्टि संस्कार में हमारा प्रायः अज्ञान, अदूरदर्शिता, मतभेद एवं भूल-चूक

लेखक—खत्री मदन गोपाल अरोड़ा, मोती नगर, लखनऊ

"ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या" के अंतर्गत जो मूल सत्य है वह यही कि प्रत्येक प्राणी को एक न एक दिन मरना है और उसे कभी न कभी अपने कर्म भोगने के बाद पुनर्जन्म भी लेना है। जहाँ यह सत्य है कि हम हर समय यदि अपनी मृत्यु का ध्यान रक्खेंगे तो अपने जीवन कर्त्तव्यों को उत्साहपूर्वक नहीं कर पायेंगे, वहाँ यह भी कम सत्य नहीं है कि यदि हम इसके विषय में बिल्कुल बेखबर रहेंगे तो भी हम अपने कर्तव्य यथोचित धर्मानुसार पूरा न कर पाएंगे।

विवाह व अन्य संस्कार तो अनेक बार होते ही रहते हैं जिसके बारे में, दक्ष न होते हुए भी हम पर्याप्त जानकारी रखने में रुचि लेते हैं, पर अंत्येष्टि संस्कार हम किसी का एक ही बार करते हैं इसलिए उसके सम्बंध में भी हमें, यथा सम्भव सही जानकारी रखनी चाहिये। यह संस्कार तो किसी न किसी प्रकार हो ही जाता है। क्योंकि यह रोका नहीं जा सकता, पर इसको शास्त्रानुकूल, विधिवत्, श्रद्धा व सामर्थानुकूल करना चाहिये यद्यपि मृतक हमसे शिकायत करने नहीं आता, पर हमारा उद्देश्य उसकी आत्मा को शांतिमय रखने का होता है, अतः हमारी कमियों या भूल-चूक में उसकी शांति भंग होगी और हम अपने कर्म से भी च्युत होंगे।

दो पद्धतियां

इस संस्कार की दो पद्धतियाँ हैं एक सनातनी, दूसरी आर्य समाजी। दोनों में कुछ भेद हैं। पर हम यदि कोई एक सिद्धांत को सदैव के लिये मान लेते हैं तो ठीक है, हमें उसी के अनुसार सभी काम करने चाहिये, पर यदि हम आधुनिक तेज दौड़ने वाले जीवन में, इसी काम के लिये समय का अभाव, सुविधा व चट-पट इसे निपटाकर मुक्त होना चाहें, दो-चार दिन के काम में, पर बाकी दिनों सनातनी रीति से चलते रहें, यह न्याय संगत नहीं है। निसंदेह, आज की माँग है कि बुढ़िया पुराण, रूढ़िवादिता, निरर्थक बातों पर दोनों धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि डालकार, उनमें कुछ परिवर्तन करें परंतु बिना उसकी गहराई समझे उन्हें एकदम समाप्त कर देना उचित न होगा। आज, न तो हमें, हमारे पूर्वजों ने सही मार्ग बताया (क्योंकि वे स्वयं अनभिज्ञ थे), जिन्होंने धर्म ग्रंथों का अध्ययन व सत्संग कर ज्ञान उपार्जित कर बताना चाहा, वह हमने अपनी आधुनिक शिक्षा के कारण लेना न चाहा इसी ढील ढाल से देश की संस्कृति धीरे-धीरे समाप्त होती जाती है इस विषय में हम अधिकांश लोग अज्ञानी हैं, और भूल-चूक करते रहते हैं, प्राणी के मरणासन से लेकर उसके अंतकर्मों तक बहुत कुछ अनभिज्ञता रहती है।

हम सामाजिक गति विधियों को गलत नहीं कहते, हम उतने ही सनातनी हैं जितने वेद, इसलिए हमारी वेदों में कुछ कम आस्था नहीं है। पर प्रश्न यह है कि वेद भगवान् की वाणी होने से श्रुति रूप में सूक्ष्म और

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

गम्भीर है। जिसको हमारे ऋषियों ने भी समझा कि सामान्य मनुष्य को इन्हें पूर्णरूप से समझना व उन पर चलना कठिन होगा, अतः उन्हीं वेदाचार्यों ने उन्हें सरलता व सम्पूर्णता से समझाने के लिये पहले उपनिषद्, फिर स्मृतियाँ व पुराण रचे और उनमें कर्मकाण्ड के विषय में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखा। यदि वेद पर्याप्त थे, तो फिर अन्य शास्त्रों-पुराणों की आवश्यकता ही न थी।

उचित व्यवस्था

जब किसी प्राणी का निधन होता है तो संतप्त परिवार के सदस्य तो कर्तव्यविमूढ़ से हो जाते हैं और अन्य आगंतुक एक दूसरे का मुँह ताकते हैं या अपनी-अपनी पक्की।कच्ची राय देते हैं—जैसा कुछ उन्होंने प्रायः सुना, देखा हैं, या जैसा वह आज के समय में अति सुविधाजनक समझते हैं। सत्य तो यह है कि हममें से कितनों ने वेद पढ़े या देखे भी हैं और किन-किन शास्त्रों व पुराणों का ज्ञान हमें होता है। जिन्हें कुछ अनुभव है भी वे संकोच करते हैं राय देने में कि उनकी बात आधुनिक काल में मान्य न होगी अतः चुप रहना ही बुद्धिमानी है। इसलिए आवश्यक है कि निकट सम्बंधियों, मित्रों में एक दो को चित्त शांत व बुद्धि प्रखर रखनी चाहिये जिससे मृतक के सब संस्कार श्रद्धा व वैज्ञानिक रूप से हो सकें। निःसंदेह, वह हमसे शिकायत करने नहीं आयेगा, उसको अपने कर्मानुसार सुख दुख भी भोगने हैं, परंतु उसकी सुख शांति के लिये जो हमें शास्त्रों ने निर्देश दिया है, हम अपना कर्तव्य अवश्य पूरा कर दें। यदि यह कहा जाय कि शरीर भस्म हो गया, आत्मा अमर है, हमारे कुछ भी करने से सिद्धार्थ समय नष्ट के और क्या होगा तो आखिर वह सूक्ष्म व कारण शरीर जिसे सुख-दुख भोगते हुए पुनः जन्म लेना है, उसके निमित शास्त्र क्यों गढ़े जाते और आज के लिये उपहास बनते? विषय बहुत बड़ा है जिस पर पुस्तक लिखी जा सकती है अतः इस लम्बे लेख में ही बहुत सूक्ष्म में ही सब कृत्यों पर कुछ अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है और हर पाठक को इससे असहमत होने का अधिकार होते हुये उनके विचार आमंत्रित हैं।

अन्तिम समय की व्यवस्था

जब प्राणी मरणासन्न समझा जाता है, भले ही उसे थोड़ा बहुत होश हो, पर यदि उसके बचने की कोई आशा नहीं है तो अनेक बातों पर पहले से विचार कर रखना चाहिये भले ही अपने मन की शांति के लिये औषधियाँ भी चलती रहें। पर अन्त समय की मुख्य-मुख्य औषधियों को न भूलें।

(१) यदि घर में तखत उपलब्ध हो तो बजाए खाट-पलंग के तखत पर ही लिटाया जाय। बीच-बीच में पवित्र गंगा-जल तुलसी-दल देते रहें। (३) बजाए उससे सांसारिक, घर गृहस्थी, व्यवसाय, बाल-बच्चों व मोह जाल की बातें करने, पूछने आदि के उससे भगवन नाम उसके इष्ट का नाम लेते रहने का अनुरोध करें, उसके इष्ट के चित्र का दर्शन कराते रहें यह कह कर कि दर्शन व नाम से कष्ट दूर होगा। (४) यदि वह होश खो बैठा है तो उसके निकट रहने वाला व्यक्ति मन में ही जाप करता रहे। (५) जब तक प्राण हैं कोई एक व्यक्ति वहाँ बैठकर गीता, रामायण आदि का पाठ करे ताकि कुछ ध्वनि उसके कानों तक पहुँच सके क्योंकि शायद बोल बन्द हो गया हो पर कर्ण इन्द्रिय कुछ स्वस्थ हो? (६) यह पहले सोच रक्खें कि प्राणान्त पर उसे कहाँ लिटाना है ताकि उस स्थान को वैज्ञानिक रूप से पवित्र किया जा सके। (७) लिटाने वाले स्थान की भूमि कितनी साफ सुथरी संगमरमरी हो, फिर भी उस पर गोबर का लेप लगाकर कुशा बिछा दें और काले तिल छिड़क दें फिर एक चादर बिछाकर, प्राण निकलने के पूर्व ही लिटा दें ताकि प्राण भूमि पर ही निकलें। उसके पैर दक्खिन की ओर ही रक्खें। चूंकि उत्तर में स्थित ध्रुव के आकर्षण से प्राण आकर्षित होकर पैरों में खिचकर सिर की तरफ होकर ऊपर छिद्रों से ही निकल सकें। (८) सम्भवतः उसके होश रहते, अन्यथा प्राणान्त

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

के पूर्व सामर्थ्यनुकूल कुछ द्रव्य दान करा दें। उपरोक्त बातों का प्रयोजन क्या है? शास्त्रों ने मरण काल में प्राणों की गति ऊर्ध्वमुखी होना श्रेयकर बताया है, अर्थात् मुख, नेत्र, नाक, कान आदि के छिद्रों से प्राणों का निकलना (कपाल से तो प्राण पहुंचे हुए योगियों के ही निकलते हैं) बजाय अधोमुखी रीति (गुदा, लिंग आदि) से। शास्त्रानुकूल अधोमुखी प्राणान्त से पुनः जन्म पशु-पक्षी का होता है या नरकगामी।

स्थान की वैज्ञानिक पवित्रता

इसको बचाने के लिए वैज्ञानिक कारण यह बताया गया है कि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति प्राणी के प्राणों को अपनी ओर खींचने से अधोमुखी कर देती है, अतः गोबर का लेपन व कुशा प्राणों की गति को ऊर्ध्वमुखी करने में सहायक होते हैं क्योंकि यह दोनों विद्युत असंचालक होते हैं। (तभी पूजन पर बैठने के लिये भी पटरे के ऊपर या जमीन में ही पहले कुशासन, फिर मृग चर्म तब कोई वस्त्र (गद्दी) रखने का विधान गीता में बताया है)। तिल प्रेत बाधा नाशक होने से डाले जाते हैं। गंगा जल व तुलसी दल भगवान की प्रिया है अतः उनका सम्मान, भगवान का ही सम्मान होता है और उनकी दया भी प्राप्त हो जाती है। मरते समय प्राणी को प्रायः उसके पाप याद आने पर बड़ा कष्ट होता है इस कष्ट को कम करने के लिये भगवत् नाम से सांत्वना मिलती है। भगवान राम के स्मरण कराने के लिये गीता के ८वें अध्याय के ५वें श्लोक में भगवान ने स्वयं कहा है कि "जो अन्त काल में मेरा स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है—इसमें भी कुछ संशय नहीं है"। यद्यपि होना तो सब कुछ उसके कर्मानुसार ही है—पर यदि उसमें कुछ लाभ मिलने का उपाय न होता तो बताया ही क्यों जाता? आखिर ज्योतिषियों से उपाय पूंछ कर हम क्यों चलते हैं? कर्म मिटते नहीं पर कष्ट कम अवश्य हो सकता है। यथा विधि और यथा समय यथोचित औषधियाँ प्राण बचाने में भी समर्थ हो जाती हैं, इसलिये हमें अपना कर्तव्य करना ही चाहिये।

स्थान की कीटाणु नाशक व्यवस्था

शरीर में और उसके इर्द-गिर्द रोग के कीटाणु तो रहते ही हैं, दिन में मृत्यु होने से दाह के समय तक काफी समय लग जाता है और रात्रि में मृत्यु होने से बहुत अधिक समय तक शव घर पर ही रहता है, अतः दुर्गन्ध भी फैलने लगती है। अतः उसके चारों ओर बीच-बीच में गुलाब जल (जो पहले से मँगा कर रख ले) छिड़का जाया करे, एक कोयले की अंगीठी सुलगा कर उसमें निरन्तर गूगल या लोहवान जैसी औषधियाँ पड़ती रहें, सुगंधित (शिव रंजनी जैसी) अगर बत्तियाँ जलती रहें, ताकि इससे व गोबर के लेपन (जो कीटाणु नाशक होता है) कीटाणु भी मरे और दुर्गन्ध भी कम हो। उस स्थान में एक दीपक दिन रात जलता रहे। क्योंकि प्राण वायु को अन्धकार से गुजरना पड़ता है जैसा कि मरने के कुछ समय बाद जीवित होकर लोगों ने अपने अनुभव बताए हैं।

रात्रि कार्य-क्रम

रात भर बारी-बारी से दो व्यक्ति वहाँ बैठ कर मद्धिम स्वर में कीर्तन किया करें (सबका जागना उचित नहीं) क्योंकि उसका सूक्ष्म शरीर वहीं रमण करता रहता है। रोया पीटी न हो। यदि गर्मी की रात है तो बरफ की एक सिल्ली पर लिटाना आवश्यक है।

अब सूचना मिलने पर सम्बन्धियों का आना आरम्भ होता है। यदि रात को इतना समय हो कि समाचार-पत्रों में सूचना दी जा सके तो अवश्य भेज दी जाए ऐसा लिखकर किसी को समझने में कोई संशय न हो, वरना प्रातः भेज दें और सम्बंधी व मित्र यथा सम्भव अपने फोन, नौकर या अन्य माध्यम से सम्बन्धित लोगों को सूचना भिजवाने में स्वयं ही सहायता करें—करते भी हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आगतुकों का कर्त्तव्य

ऐसे कृत्यों पर सभी शुभ कुछ कृत्यों की तरह वातावरण होते हुए भी कार्य विपरीत तरीकों से ही किये जाते हैं; अर्थात, आने पर किसीको भी नमस्कार आदि से अभिनन्दन नहीं किया जाता, जैसा कि अब करने लगे हैं। आने वालों के लिये बैठने की साधारण सी सुव्यवस्था कर दें, परन्तु उस समय चाय-पानी नहीं देनी चाहिये जैसा कहीं-कही देखा गया है।

देखा गया है कि प्रायः लोग अपने सूट बूट में व महिलाएं छटकीली रंगीली साड़ी में आती हैं। यदि उन्हें हाजिरी देकर बाहर ही-बाहर चले जाना है, तब तो ठीक है, अन्यथा इस पर विचार करें कि अन्य भिन्न-भिन्न स्थानों में अर्थात दफ्तर, उत्सव, किसी बड़े अधिकारी आदि के पास तो उसी तरह के वस्त्र पहने जाते हैं तो क्या इस समय के लिये भी वही ठाठ वाले कपड़े उपयुक्त हो सकते हैं ? साथ में श्मशान तक जाने वालों को बहुत साधारण–पजामा–धोती-कुर्ता (जाड़े में स्वेटर) आदि ही ठीक जान पड़ता है यदि स्वास्थ्य-विज्ञान (हायजनि) का कोई महत्व है तो साथ जाकर कन्धा देकर वहीं नदी में नहा कर घर आना चाहिये (भले ही घर में दुबारा नहा लें यदि चाहे तो) इसलिये साथ में बदलने वाले वस्त्र भी ले जाना चाहिये। इसे एक दुःखोत्सव समझें।

यथोचित दाह विधि का निर्णय

उस समय की यथोचित सामग्री की बहुतों को अनभिज्ञता रहती है भूलें हो जाती हैं (जो यहाँ बताने में लेख बहुत बढ़ जायेगा) पहले निश्चित करना है सामाजिक पं० से कृत्य करवाना है या सनातनी से। निसन्देह मन्त्रों द्वारा आहुति से दाह करना सर्वोत्तम है। समाजी पं० का कहना है कि वह वेद मन्त्रों द्वारा आहुति दिलवाते हैं। सनातनी का कहना है कि (१) वेद में अन्त्येष्टि संस्कार के मन्त्र न होकर पुराणों में है, (२) वेद अत्यन्त पवित्र होने से उनके मन्त्रों को ऐसे कृत्य के लिये उपयोग करना भी उचित नहीं है। हम न वेद के मन्त्रों से परिचित होते हैं न पुराणों के मन्त्रों से। पर यदि पौराणिक मन्त्रों से आहुति द्वारा दाह हो सकता है तो क्या हर्ज है ?

दाह एवं कलाप क्रिया विधि

दूसरे, समाजी लोग कपाल क्रिया को वेदोक्त नहीं बताते। यदि ऐसा है भी तो क्या हम इसके अलावा वेदों की अन्य बातों को मानकर चलते हैं शास्त्रानुकूल व वैज्ञानिक दृष्टि से कपाल क्रिया होनी चाहिये। अन्य अंगों से कड़ी छाती और उससे कड़ा कपाल होता है जो पूर्ण रूप से जलने में बहुत समय लेता है। दूसरे हमारे जीवन भर की व मरते दम तक की इच्छाएं वासनाएं होती हैं वे दिमाग में ही तो रहती हैं। प्राणान्त के बाद भी वासनाएं कपाल में काफी समय तक न रहे इसलिए उसका जलाने के एक घन्टे बाद भेदन कर देना आवश्यक है। इसके न करने में लाभ क्या है ? और करने में हानि क्या है ? करना ज्यादा समझ में आता है। ऐसा निश्चित करके वैसे करें, आचार्य को बुलवाकर या वहाँ जाकर सामान पूंछ ले साधारणतया निम्नांकित सामान होता है–

यथोचित सामग्री-व्यवस्था

प्राणी के वजन के हिसाब मे बांसों की मोटाई, दो ठोस बांस साधारण ७ फिट लम्बे, उनमें जोड़ने वाले २ गोल डन्डे और ७-८ बीच से चिरे हुए, पर्याप्त फूस, लंकलाट लगभग ६ फिट नीचे के लिये, इतना ही ऊपर के लिये, चौड़ाई २॥-३ फिट, वृद्ध के लिये एक सामर्थानुसार शाल, ५ फिट का कपड़ा (मलमल मोटी) प्राणी के गुप्तांग को ढकने के लिये, दो फिट की पट्टी सर पर बांधने के लिये, (स्त्री के लिये पूरी नई धोती, सुहागिन के लिये पूरा शृंगार) एक घड़ा, एक कुल्हड़, हवन सामग्री दाह भर को लगभग १ किलो घी देशी

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

लगभग आधा किलो, चीनी २५० ग्राम, मखाने २५० ग्राम, गोला, चिरौंजी, किशमिश १०० ग्राम, चन्दन आधा किलो, २ जनेऊ, दही १०० ग्राम, बेसन १०० ग्राम, एक शीशी इत्र, एक अद्धा गुलाब जल, मजबूत सुतली व मौली लगभग ४०० ग्राम, फूल जितने भी हों, दो लड़ें लगभग ६ मीटर की तीन चार सुन्दर सुगंधित फूलों की, मालाएं तीन चार छोटे कलकतिया गोले। दाह संस्कार करने वाले के लिये दो धोती, दो बनियान, एक अंगोछा (जाड़े में एक पुलोवर पूरी बांह का)। इसमें जो कुछ कम ज्यादा करना हो पं० जी से व अनुभवी लोगों से पूँछ कर परिवर्तन कर लें तथा निजी कुल की रीति के अनुसार भी कुछ परिवर्तन हो सकता है।

दाह कर्ता कौन हो ?

इस बात को प्रायः सभी मानते हैं कि माता और पिता दोनों का दाह मुख्यतः ज्येष्ठतम पुत्र को ही करना चाहिए (माँ का भी दाह उसका पति नहीं करेगा यदि पुत्र है तो) उसके बाद सबसे छोटे पुत्र को करना होता है सन्तान की उत्पत्ति का मूल उद्देश्य है—माता-पिता को अपने हाथों उनके दैवी स्थान के लिये विदा करना। पुत्र का प्रथम कर्तव्य यही होता है कि अपने माता-पिता की जीवन भर सेवा करने के बाद उनका अन्त्येष्टि कृत्य कर ऋण से उद्धार होना और जो स्वरूप को सबसे अधिक सुन्दर बनाने वाले 'बाल' हैं उनको उस दिन उनके निमित्त मुड़वा डालना (पिता के लिये मूँछ भी)।

बाल मुड़वाने की आवश्यकता

पहले यह संदेह था कि बाल मुंडवाना शास्त्रोक्त न होकर लौकिक व अशुभ सूचना का प्रतीक है और प्रमाण में कहा जाता था कि दशरथ के मरने पर भरत-शत्रुघ्न ने बाल नहीं मुंडवाए और जब वह राम से बन में मिलने गए तो वशिष्ट ने उनसे तर्पण व पिण्ड दान करवाया, बाल नहीं मुड़े। इसका उत्तर यह है कि बड़े भाई राम के होते भरत या शत्रुघ्न बाल देकर उत्तराधिकारी बनना नही चाहते थे (दाह को नहीं रोका जा सकता था) और राम, वन यात्रा में अपने वन की वेष भूषा को बदलने में असमर्थ थे तीसरे वैज्ञानिक दृष्टि से बालों के माध्यम से कीटाणुओं का प्रवेश जल्द होता है। दाह कर्ता निकटस्थ होने से उससे बचने के लिये बाल मंड़वाता है। अन्य भाई दसवें के दिन।

मृतक का स्नान

अतः दाह कर्ता अपना क्षौर करवा कर सर पर दही से सर मलकर उसकी गर्मी शांत करे, स्नान करे, जनेऊ बदले, नई धोती पहन कर अब प्राणी को स्थान कराए। प्राणी के शरीर का वस्त्र हाथ से या चाकू से (कैंची से नहीं) चीर कर निकाल दे। सारे शरीर में बेसन घोल कर मले (जो कीटाणु नाशक है) फिर जल से खूब अच्छी तरह स्नान कर सफाई करे यदि गुदा में मल हो तो उसे भी दूर करे। बदन पोंछ कर गुप्तांक ढके, जनेऊ डाले इत्र शरीर में लगा दे, गुलाब जल छिड़के, फिर तैय्यार अर्थी पर लिटाए। पुष्पों से सुसज्जित कर सुतली व मौली के संयुक्त जड़ से मजबूती से शव को, इस भावना से बांधे कि 'आज हम आपकी अमर आत्मा को, श्रद्धा व प्रेम से सुसज्जित कर, सदैव याद रक्खेंगे और आपके इस पुराने चोले को पंचतत्व में मिश्रित कर देंगे ताकि आपका सूक्ष्म शरीर दूसरा नवीन वस्त्र (शरीर) धारण कर सके। हमारा आपका सम्पर्क अब विभिन्न नाशवान शरीरों से न रह कर आपकी अविनाशी आत्मा से ही रहेगा जिसकी स्मृति को हम प्रत्येक वर्ष (कनागतों में आज की ही तिथि पर) ताजा रक्खेंगे।

लोक रीति

फिर, बहुएं, बच्चे, पोते आदि (जो भी उपस्थित हों) अपने कुल रीति के अनुसार, उनके चरणों में एक गोला रख कर अंतिम प्रणाम द्वारा उनके अचल आशीर्वाद की प्रार्थना करें।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

पत्नी की चूड़ियाँ

कहीं-कहीं मृतक की पत्नी शोक के भावावेष में आकर, पति की मृत्यु पर ही अपनी कांच की चूड़ियां खण्डित कर पटक देती हैं, पर कहीं कुछ कुलों में (जो एक उत्तम प्रथा लगती है) उतार तो तुरन्त देती हैं, परन्तु अर्थी तैय्यार होने के बाद वह उतरी हुई चूड़ियाँ अर्थी में वस्त्र के नीचे, इस मानसिक भावना से दाब कर रख देती हैं कि 'जो आपके कारण मेरे सुहाग की एक प्रतीक मेरे करों में थीं उसे आप के साथ इस प्रतिज्ञा के साथ लौटाती हूं कि अब इस जीवन में यहाँ न पहन कर आपसे मिलने पर आपके हाथों द्वारा ही पुनः पहनूंगी और अंतिम प्रणाम के साथ भगवान से उनकी आत्मा की शांति के लिये प्रार्थना करें (ऐसा तभी चूड़ियों के लिये भावना प्रगट की जाए जब बाल विधवा होने के कारण दूसरे विवाह की सम्भावना न हो)। वह चूड़ियां शरीर के साथ ही भस्म हो जानी चाहिये-(महा-पात्र न ले ले)। (आज कल कहीं-कहीं आधुनिक संस्कृति वाली महिलाएं कांच की चूड़ियाँ पहनती भी नहीं हैं)।

शव वाहन में आध्यात्मिक वातावरण

शव को, शव वाहन तक कन्धे पर ले जाते समय उसके पैर मार्ग की ओर ही होने चाहिये (जिसकी कभी कभी भूल से सर-उधर कर दिया जाता है)।

शव वाहन में बैठ कर, बजाए इधर उधर सांसारिक बातों के केवल राम ध्वनि सब मिल कर श्रद्धा-पूर्वक करते रहें। यदि एक ही ध्वनि से जी ऊबे, तो कोई एक नाम कीर्तन की कड़ी कहें, बाकी सब उसे दुहराएं। १०-२० मिनट का रास्ता आध्यात्मिक वातावरण में कट जाने से उस सूक्ष्म भ्रमित शरीर की सेवा और इसी बहाने, स्वयं कुछ घड़ी भगवत् नाम से लाभ होगा।

दाह संस्कार

श्मशान पर, शरीर के वजंन के अनुरूप लकड़ी ८ से १० मन तक क्रय कर सब उपस्थित लोग टाल से चिता के स्थान तक लाने व शरीर पर रखने की अन्तिम सेवा करते ही हैं।

तत्पश्चात्, आचार्य मन्त्रों द्वारा, दाह-कर्ता से अग्नि प्रज्वलित करवा दाह कर आहुतियाँ छुड़वाएं। इस कार्य में कोई अन्य भाई तक भी हाथ न लगाए केवल दाह कर्ता ही इस कार्य को करे व आहुतियाँ दे।

शान्ति उपदेश आगे के कार्यक्रम का निश्चय व स्नान आदि

जितनी देर शरीर जले, लगभग एक-डेढ़ घन्टा रुक कर आचार्य द्वारा शांति उपदेश सुने ताकि संतप्तो का शोक निवारण हो।

नदी पर ही स्नान

यथा सम्भव, स्वास्थ्य-विज्ञान के अन्तर्गत सभी लोगों को वहीं नदी पर स्नान करना चाहिये (भले ही घर आकर भी यदि चाहें तो दुबारा स्नान कर लें)। क्योंकि शव स्पर्श के बाद अधिक समय तक अपवित्र शरीर रखना स्वास्थ्य विरोधी होगा। स्नान के पूर्व और शांति उपदेश के बाद वहीं घर वाले अन्य कृत्यों की तिथियाँ निश्चित कर उपस्थित जनों को बता दें ताकि फिर उन लोगों के घर दुबारासूचना दिलवाने की असुविधा से बच जाए। जो नहीं पहुंच पाए हैं उस दिन, उनको किसी प्रकार सूचना भिजवाई जा सकती है।

साधारण जल-पान

यदि मृतक वृद्ध जल रहा है, तो श्मशान से लौटते समय किसी उपयुक्त स्थान पर अथवा चाय की दुकान पर रुक कर साधारण चाय-साथ में कोई एक नमकीन या बिस्कुट से थकावट दूर कर दें, अथवा घर पहुंच कर

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

बिदा करने के पूर्व ऐसा करें। इस समय दाह कर्ता सबों को बिदा करते समय धन्यवादी नमस्कार करता है और सब लोग भी प्रति उत्तर देकर लौट जाते हैं।

संतप्त परिवार के लिए भोजन की व्यवस्था

इस बीच घर की अन्य स्त्रियाँ आदि उस स्थान की सफाई कर स्वयं भी नहा चुकती हैं। परन्तु स्वाभाविक है कि उस दिन घर में चूल्हा जला कर खाना नहीं बनाया जाता। ऐसे अवसर पर कोई एक अन्य सम्बन्धी, मित्र, पड़ोसी आदि अपने घर या बाजार से संतप्त परिवार के सदस्यों के लिये भोजन की व्यवस्था कर देते हैं जो करनी भी चाहिये। परन्तु मालूम हो जाए ताकि एक से अधिक लोग खाना दुहरा न दें। ऐसा होना तो उस संध्या के लिये भी अन्य द्वारा चाहिये, पर आमतौर पर दिन का ही किया जाता है।

शान्ति हवन व पिंड दान ?

अब दूसरा एक गंभीर प्रश्न उठता है कि सामाजिक रीति से क्या चावथे (चौथे दिन) हवन शांति कर पूर्ण शुद्धि व अंतिम कामों से मुक्ति पा ली जाए या पिण्ड दान आदि की प्रथा निभाते हुए दसवें के दिन शुद्धि मानी जाए ? पिण्ड करना क्या जरूरी है ? सूतक क्या उस दिन तक माना ही जाए आदि ? पहले चावथे तक की बात कर लें तब आगे समझें।

अस्थि चयन

लेकिन इसके भी पूर्व तीसरे दिन चिता पर जाकर दाह-कर्ता अस्थि चयन करें। यदि कहीं दूर गंगा में प्रवाह कराना है तो उसे किसी पात्र में रख कर के घर के निकट किसी 'पीपल' या अन्य वृक्ष के समीप सुरक्षित रखवा दें ताकि उसे बाहर ले जाने वाला निर्धारित दिन ले जाकर वहाँ मध्य धारा में प्रवाह कर दे, अन्यथा वहीं जो नदी हो, नाव या अन्य साधन से किनारे से कुछ सीमा तक आगे जाकर प्रवाह कर दे और प्रणाम करे। जहाँ से अस्थि चयन की हैं वह स्थान जल से भली भांति स्वच्छ कर वहाँ रोली से सतिया 卐 बनाकर वापस आ जाएँ (वहीं स्नान करने के बाद)।

चावथा

इस दिन नगर से बाहर अथवा दूर रहने वाले सम्बंधियों व मित्रों को औपचारिक सूचना-पत्र भेजने होते हैं। यह कार्य सूर्यास्त से पहले समाप्त हो जाना चाहिये। लोग लगभग चार बजे से आना आरम्भ करते हैं। समय बचाने के लिये कुछ घर के प्राणी पहले से बैठकर पोस्ट कार्ड लिख रक्खें ताकि न तो आने वालों को अधिक रुकना पड़े न कार्य में देर हो। पत्र में कुछ भूलें आजकल लिखने व कोना फाड़ने में होती रहती हैं। इस पत्र में कोई 'सरनामा' जैसे बन्धु, महोदय आदि नहीं लिखना चाहिये। बाईं ओर का कोना फाड़ने की सुविधा के लिये खड़ा (वर्टिकल) पोस्टकार्ड जिसमें पीछे पते का स्थान नीचे की ओर हो, पत्र लिखें जिसमें साधारण पर स्पष्ट मृतक का नाम, मृत्यु की तारीख व दिन और अगले कार्यक्रम की तिथियाँ लिखी हों। इससे भी पूर्व, जो कभी न भूलें, ऊपर दाहिनी ओर अपना स्पष्ट पूरा पता अवश्य लिख दें ताकि किसी को संवेदना पत्र भेजने में असुविधा न हो। (पता लिखने की भी भूल देखी गई हैं)। सबों के एकत्रित होने पर १ पत्र का आलेख सबों को सुना दें, ताकि कोई भूल चूक हो तो मालुम हो जाए तथा आगामी कार्यक्रम की इन्हें भी सूचना मिल जाए। इसके बाद सब विदा हो जाएं।

चूंकि अभी पूर्ण शुद्धि नहीं हुई है, इसलिये दाहकर्ता हवन द्वारा देवताओं को आहुति नहीं कर सकता। परंतु उस स्थान को पवित्र रखने के लिये, रोज धूप, अगरबत्ती आदि बीच बीच में जलती रहें, दीपक भी जला करें और दाह कर्ता उसी स्थान में तखत पर, पवित्रता व ब्रह्मचर्य से दस दिन तक सूतक में रहे। आजकल

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

के व्यस्त जीवन में इतने दिन तक बंधे रहना सबों को खलता अवश्य है—पर इसकी आवश्यकता को अमान्य तभी किया जा सकता है जब शास्त्रों को अमान्य कर दिया जाएं यह कह करू कि इस वैज्ञानिक युग में यह सब अर्थहीन है। पर शास्त्रों ने विज्ञान को भली भांति समझ रक्खा है।

वशिष्ठ और राम क्या वेदाचार्य न थे जो उन्होंने वन में राम से तर्पण व पिण्डदान करवाया? क्या पाण्डव वेद ज्ञाता नहीं थे? गीता में प्रथम विषाद-योग अध्याय श्लोक ४२ में अर्जुन ने क्यों कहा कि पिण्ड और तर्पण की क्रिया लोप हो जाने पितर नरक में गिर पड़ते हैं (पतंति पितरो ह्येषां लुप्त पिण्डोदक क्रिया)। एक ओर हम सनातनी होकर मूर्ति पूजक होते हैं, मित्रों के विषय में यह सब खटराग समझते हैं। कष्ट पड़ने पर बुढ़िया पुराण व टुटका टोना भी मानते हैं--वैसे समाजी विचार रखते हैं। अर्थात सुविधानुकूल जिस समय जो बात अनुकूल होती है वही मान लेते हैं न कि कोई सिद्धान्तानुकूल।

पिंडत्व श्राद्ध की व्याख्या व आवश्यकता

गीता के विषाद योग में ही व्याख्या की गई है कि "पिण्डदोक" क्रिया परम वैज्ञानिक है जो मन्त्रों एवं पदार्थों की अलौकिक शक्तियों के योग से सिद्ध होती है और इसीलिये यह विद्या 'पदार्थ विद्या और 'आत्म विद्या' दोनों से सम्बन्ध रखती है। पिण्ड से अभिप्राय इस शरीर रूप पिंड से है जो रोम, चर्म, रुधिर, मांस इत्यादि के मिश्रण से बना हुआ है, 'उदक' का अभिप्राय जीवात्मा (चेतना) से है। इसलिये इस शरीर और आत्मा दोनों के कल्याण निमित्त जो वैज्ञानिक क्रिया की जाती है उसे 'पिण्डोदक' क्रिया कहते हैं जिस प्रकार ९-१० मास में गर्भ में बच्चा विकसित होता है, उसी प्रकार एक पिंड रोज-दस दिन तक करने से सूक्ष्म शरीर के उसमें प्रवेश हेतु नवीन शरीर का (प्रतीक रूप) निर्माण किया जाता है। (वैसे तो अपने कर्मानुसार उसे कौन से जीव का शरीर धारण करना है किसीको पता नहीं, पर अपने कर्तव्यानुकूल हम उसके पुनर्जन्म को मनुष्य रूप में भी होने हेतु एक प्रक्रिया करते हैं। आज तक नवयुवक वर्ग, कुछ वयस्क वर्ग नवशिक्षित व शास्त्रों से अनभिज्ञ होने के कारण इन कामों से विमुख रहते हैं। चूंकि प्रायः जब लोग बातों में रुचिकर नहीं होते, अतः उनमें कुछ सुनने का भय नहीं रहता, जाने वाला कुछ कहने आएगा नहीं। इसी प्रकार श्राद्ध कर्ता अपनी संकल्प शक्ति से मंत्र शक्ति तथा द्रव्य शक्ति (अर्थात श्राद्ध में समर्पित सामग्री व द्रव्यों की शक्ति से पितरों को सहायता करते हैं जिससे शक्ति संयोग द्वारा प्रेतत्वनाश अथवा पितृलोक वासी पितरों की तृप्ति और उन्नति होती है। इसी कारण सन्तान को ही श्राद्ध करने का अधिकार है क्योंकि पिता माता का आत्मज होने के कारण उनके साथ अपनी आत्मा की समभूमि रहती है। सन्तान के लिये आवश्यक है कि वह जनेऊ का परित्याग कर द्विज से अद्विज न हो वरना श्राद्ध करने का अधिकार नहीं हो पाता। इस लेख में जनेऊ की महत्ता को समझाने का स्थान व अवसर नहीं हैं। यह भी एक हास्यप्रद स्थिति होगी कि जब कभी किसी कर्म करने के लिये जनेऊ की आवश्यकता हो तब पहन लिया जाया करे, बाकी समय उतने बड़े बोझ को उतार फेंक दिया जाए यह समझ कर कि सूत के कुछ तार का महत्व ही क्या हो सकता है। वह पुरुष के वक्षस्थल का एक सुन्दर महत्वपूर्ण एवं शोभनीय आभूषण भी है। खैर मजबूरी में समय पर भी पहन लिया जाए तो कुछ तो सान्त्वना मिलेगी ही।

आर्यों में पिंड श्राद्ध आदि कर्म बहुत प्राचीन काल से चले आ रहे हैं, सारे धर्म सूत्रों और गृह्य सूत्रों में इनका निरूपण है। हम सब आर्य ही तो हैं। कान्य कर्म (वैदिक हो या लौकिक) सांगोपान न करने से वांछित फल नहीं मिलता, उल्टा प्रत्यावाय (विधि के उल्लवन का पाप) ही होता है।

इसके अतिरिक्त यह सभी जानते हैं कि कुछ भी ध्वनि या मुख से शब्द निकलता है वह आकाश में व्याप्त हो जाता है, क्योंकि आकाश का गुण ही शब्द है और इसी आधार पर ही तो वैज्ञानिकों ने आकाश तरंगों

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

से रेडियो के माध्यम से गाने, बात चीत, भाषण दूर दूर तक पहुँचाने में समर्थता प्राप्त की है। तो क्या मंत्रों की शक्ति तथा संकल्प रूप शक्ति हमारी भावनाओं को पितरों तक नहीं पहुंचा सकती बशर्ते विद्वान, सदाचारी, मंत्रों के सही उच्चारण में दक्ष यह सब कर्म कराए ? श्रद्धा से ही श्राद्ध बना है श्रद्धा भी तीव्र होनी चाहिये। सनातनी सिद्धान्त हैं कि हमारा सम्बन्ध केवल शरीर तक ही होने से समाप्त नहीं हो जाता, अपितु आत्मा से निरन्तर सम्बन्ध के हेतु उसकी स्मृति को न भुलाने के लिये ही श्राद्ध द्वारा अपनी श्रद्धा अर्पित करते रहते हैं।

यदि यह सत्य न होता तो शब्द टैलिपैथी की उत्पत्ति व मान्यता–जिसका अर्थ है (Communication between mind & mind otherwise than through known channels of senses) क्यों होती? प्लैन्चेट द्वारा आत्माएं बुलाकर कैसे बातचीत की जाती ? परमहंस योगानन्द जी के गुरू श्री मुक्तेश्वर जी निधन के बाद स्वर्ग से उतर कर सशरीर योगानन्द जी को दर्शन दे गले मिल स्वर्ग का विस्तृत वर्णन कर अन्तर ध्यान कैसे हो गए ? आज हमारे शास्त्रों को समझ कर उस पर चलने वाले अमेरिका, जापान, जर्मनी, लन्दन आदि में बढ़ते जा रहे हैं। ठीक है, बहुत कम हैं, पर ऐसा नहीं कि खोज पर कोई न मिल सके। फिर सच्ची भावना जो हमारे मन की है अर्थात 'संकल्प' वही हमारी मनन शक्ति हमें मनोवैज्ञानिक शान्ति दे सकती है कि हमने अपने पितृ के प्रति कर्तव्य पूरा कर दिया।

अत: बिना विश्वास वाले को, यह सब कुछ, दुनिया दिखावे को या समझ कर कि 'हमारे माता-पिता ऐसा चाहते थे इसलिये कर रहे हैं, नहीं करना चाहिये, क्योंकि इसमें वह शक्ति न होगी जिससे मृत्यु तक भावना पहुंच कर किसी को भी वांछित शान्ति मिले। यदि विश्वास है तो पहला पिंड मृत्यु स्थान पर, दूसरा द्वार पर, तीसरा विश्राम स्थल पर, तीन पिंड चिता पर करने होते हैं। फिर एक पिंड, रोज, दसवें तक किसी नदी पर या पीपल के वृक्ष के नीचे करना होता है जो आचार्य रोज कराता रहेगा। ग्यारहवें दिन का पिंड महा पात्र द्वारा करवाया जाता है।

बाद को सबों के साथ दाह कर्ता किसी मन्दिर में जाए, प्रार्थना करे कि 'उसके पितृ को शान्ति प्राप्त हो तथा उसको अब उनका उत्तरदायित्व सुचारुता से सम्हालने की शक्ति प्रदान करें और उनके उत्तम पथ पर चलने की प्रेरणा दें। फिर कुछ हरा साग या फल खरीद कर घर आकर आगंतुकों को धन्यवाद सहित विदा कर दें।

दसवां

दसवें के दिन इस कृत्य के बाद, अन्य निकटस्थ भाई आदि भी बाल बनवाए (दाह कर्ता तो बनवायेगा ही) और स्नान आदि से पवित्र हो, घर पर विधि पूर्वक उसी स्थान पर हवन करें, आचार्य को भोजन कराके श्रद्धा व सामर्थानुकूल दान देकर बिदा करें (कुछ वस्त्र-कुछ द्रव्य)। उस दिन पूर्ण शुद्धि हो जाती है। पर ग्यारहवें दिन का सूक्ष्म कार्य करके थोड़ा दान, नापात्र को दिया जाए।

पगड़ी

बारहवें दिन हर्षोउल्लास का कृत्य है कि उस दिन आपने जिसे उत्तराधिकारी मान रक्खा है (ज्येष्ठ या कनिष्ठ पुत्र को) उसके सर पर पगड़ी बांधी जाती है। यह उसी प्रकार है जैसा राज भवनों में होता

"खत्री जाति वैदिक कालीन शुद्ध क्षत्रिय जाति की अवशेष है। वह समर विजयी जाति संसार में किसी की ऋणी नहीं रहना चाहती।"

—लखनऊ अधिवेशन (१९१६) अखिल भारतीय खत्री महासभा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

है अर्थात (King is dead, Long Live the King)। राज्य राजा से रिक्त नहीं रहता। इसमें थोड़ा संशोधन यह हो सकता है कि इतनी लम्बी पगड़ी उस समय के बाद फिर किसी काम नहीं आती। यद्यपि आजकल कोई टोपी भी नहीं पहनता, फिर भी टोपी (गांधी कैप) सस्ती, हलकी, समय-समय पर काम आने वाली होने से वह रख ली जाए। दूसरा परिवर्तन कुछ ऐसा हो चला है कि आर्थिक दृष्टि से सबों से पगड़ी के समय भेंट (नकद) नहीं ली जाती क्योंकि जब अन्य नहीं लेते तो हम कैसे लें—यह विचार आ जाता है, ठीक है, अब उत्तराधिकारी नए वस्त्र पहनकर बैठे। निकटस्थ जो उत्तराधिकारी से ज्येष्ठ हैं, वे आचार्य के प्रथम टीके के बाद तिलक कर केवल प्रतीक रूप मे कम से कम १), अधिकतम २) दे दें और अन्य छोटे भाइयों के केवल तिलक लगा दे (भेंट नहीं दें) पगड़ी का समय भी सन्ध्या ही रक्खा गया है। इससे पूर्व दिन में पुनः हवन, कुछ कीर्तन कर, सामर्थानुसार ४ से १२ ब्राह्मणों को भोजन करा दे, कुछ भोजन अनाथालय में भिजवा दें (या घर बुलवाकर खिला दें)।

प्रसाद

सन्ध्या को आगन्तुको को श्रद्धा व सामर्थानुसार कुछ ढंग का प्रसाद रूप में जल-पान-चाय (वृद्ध के विषय में ही) अन्य केस में केवल सूक्ष्म प्रसाद वितरण करे। घर वाले निकटतस्थ सम्बन्धियो-मित्रों को भोजन करवा दे।

वैसे तो वह दसवें के बाद अपने काम-काज पर जा सकता है क्योंकि सूतक हटकर पवित्र हो गया, सब कृत्य पूरे हो गए। पर अच्छा हो यदि और निभा कर पगड़ी के बाद से कार्यरत हो।

सधवा स्त्री का देहावसान

पत्नी के देहावसान पर (यदि पति जीवित है) जो सुहागिन होने के कारण सब कुछ वैसा ही करते हुए; उसे पूर्ण शृंगार से सुसज्जित करना होता है। दाह उसका भी पुत्र ही करेगा (पति नही)। पति बाल भी नहीं बनवाएगा। पगड़ी भी पुत्र के बंधेगी।

छोटे बालक या बालिका का निधन

यदि कोई बालक या बालिका १० या १० वर्ष से कम है तो उसको अच्छी तरह स्नान कराके, साधारण कपड़ों में भली भांति लपेट कर गाड़ने का प्राविधान है। उसका सूतक केवल पांच दिन तक होता है। ६ से छोटे का ३ दिन का सूतक होता है जिसके बाद शान्ति हवन कर कुछ बच्चों को (अनाथालय आदि या ब्राह्मण को भी) भोजन कराके कुछ दक्षिणा सहित विदा किया जाता है। पिंड नही होता।

१० वर्ष से अधिक वाले, जनेऊ हो जाने वाले, विवाहित आदि का बड़ों की तरह ही काम किया जाता है।

शास्त्रों की जानकारी, आचार्यों से परामर्श व निजी अनुभव से उपरोक्त विचार प्रकट किये गए हैं। इसमें किसी पर कोई आक्षेप है न आलोचना। यह व्यक्तिगत विचार हैं। यह लेख किसी को मेरे विचारानुकूल पद्धति पर चलने के लिये बाध्य नहीं करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मान्यता पर चलने के लिये स्वतन्त्र है। उपरोक्त में कुछ कमी, भूलें भिन्नता हो सकती हैं जिसके लिये इच्छुक लोगों के विचार आमन्त्रित हैं।

"अपने को क्षत्रिय समझें और सिंह की भाँति दहाड़ें।"

—राय बहादुर लाला राम शरण दास
अध्यक्ष, कलकत्ता अधिवेशन (१९४१) अखिल भारतीय खत्री महासभा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

जन्म-पत्र एवं विवाह सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर

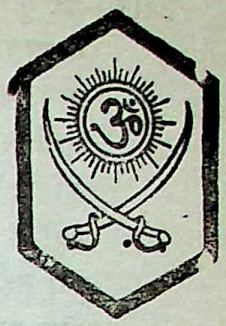

—विद्या सागर महथा

प्रश्न—जन्म पत्र मिलाने की प्रथा कब से चली ? क्योंकि अपने यहाँ भगवान रामचंद्र जी के समय तक तो स्वयंवर होता रहा है ?

उत्तर—वैदिक काल, श्री रामचंद्र जी के समय, महाभारत काल तथा प्राक्-ऐतिहासिक काल में अक्सर ही स्वयंवर हुआ करते थे। जन्म पत्र मिलाने की प्रथा कब से चली इसकी निश्चित तिथि का उल्लेख करना कठिन है, किन्तु इतनी बात स्पष्ट है कि स्वयंवर काल में वर कन्या निश्चित रूप से बालिग और समझदार हुआ करते थे। विवाह सुनिश्चित करने में परिवार के सदस्यों की तुलना में वर या कन्या की भूमिका निर्णायक हुआ करती थी। किन्तु हजार दो हजार वर्षों के भीतर भारत में अनेकों बार विदेशी आक्रमण हुए फलस्वरूप सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ बहुत अधिक प्रभावित हुई। कई बार प्रतिष्ठा की रक्षा के क्रम में बाल विवाह का सिलसिला चला और सम्भवतः इन्हीं दिनों पात्र पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं की जानकारी हेतु कुण्डली मिलाने की प्रथा चल पड़ी।

जन्म पत्र मिलाना कितना आवश्यक—कितना अनावश्यक

एक गोत्र या अल्ल में विवाह क्यों वर्जित है ? गोत्र या अल्ल में क्या अन्तर है ? क्या विवाह चार विवाह फेरों में भी मान्य है ? क्या दिन में भी हो सकते हैं ?

ये वे तमाम ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर जानने की जिज्ञासा खत्री हितैषी के पाठकों के मन में बराबर बनी रहती है और वे अक्सर इस सम्बन्ध में खत्री हितैषी को पत्र लिखते रहते हैं।

इन सभी प्रश्नों का उत्तर दे रहे हैं। पेटरवार—गिरिडीह—बिहार निवासी "ज्योतिष वाचस्पति ज्योतिष रत्न" खत्री विद्यासागर महथा जी—सम्पादक

प्रश्न—जब हम जानते हैं कि जोड़े ऊपर से ही बनकर आए हैं, तब फिर पत्री मिलाने से क्या लाभ है ?

उत्तर—जन्मपत्री मिलाना, जो परम्परा जारी है, बहुत वैज्ञानिक नहीं लगती कारण सभी ग्रहों को नजरंदाज करते हुए एक मात्र चंद्रमा के नक्षत्र के आधार पर विवाह सुनिश्चित किए जाते हैं। किन्तु सभी ग्रहों पर सम्यक् रूप से ध्यान दिया जाए तो वर या कन्या की चारित्रिक विशेषताओं को जाना जा सकता है—कुण्डली मिलाने से यही लाभ है। यों यह बात ज्यादा सटीक है कि जोड़े ऊपर से ही बनकर आते हैं। कुण्डली मिलाने के बहाने दूरस्थ भविष्य की जानकारी होती है, हम जोड़े का चयन करते हैं, वैसी बात नहीं है।

प्रश्न—विवाह रात्रि में ही क्यों होते हैं ? दिन में क्यों नहीं किए जा सकते या फिर विवाह दिन में करना चाहिए ?

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

उत्तर—हर युग में प्राय: वरपक्ष अपने काफिले के साथ कन्या पक्ष के यहाँ जाता रहा है। जिस युग में यातायात की सुविधा नहीं थी और आज जब यातायात की सुविधा हैं, दोनों ही समय प्राय: वरपक्ष को सुबह से शाम तक कई लोकाचार और यातायात में ही व्यतीत हो जाते हैं। आर्य आतिथ्य सत्कार को सबसे बड़ा धर्म मानते थे, जिसमें रात्रि के कई प्रहर व्यतीत हो जाते होंगे। सम्भवत: यही कारण है कि विवाह प्राय: रात्रि में ही हुआ करता था। परिपाटी यही है। किन्तु साज सजावट में यह व्यय साध्य प्रतीत हो, तो शादी दिन में करने में कोई हर्ज नहीं है।

प्रश्न—गोत्र या अल्लों का क्या मतलब है? एक ही गोत्र या अल्ल में विवाह क्यों वर्जित है?

उत्तर—यों तो भारतीय समाज ही पुरुष प्रधान है और हमारा खत्री समाज इससे भिन्न नहीं है। जो समाज बहुत दिन तक अपनी संस्कृति ढोने की क्षमता रखता है, उसकी एक बड़ी विशेषता अपने पूर्वजों को किसी न किसी रूप में याद रखने की होती है। सभी गोत्र का नामकरण ऋषियों के नाम पर आधृत है। इससे स्पष्ट है कि सभी गोत्र वाले अपने पूर्व पुरुषों में किसी तत्कालीन अपने वंशज के ऋषि (वैज्ञानिक) को याद करते हैं। उस महत्वपूर्ण व्यक्ति विशेष का जो अल्ल था, वही उस गोत्र का अल्ल कहलाता है। इस तरह सभी व्यक्ति अपने गोत्र और अल्ल से गौरवान्वित होते हैं। कालान्तर में जब उसी गोत्र या अल्ल में कोई स्मरणीय महत्वपूर्ण व्यक्ति किसी भिन्न खिताब से अलकृत किया जाता है, तो गोत्र के अन्तर्गत कई अल्ल आ जाते हैं कुछ अल्ल कर्मानुसार भी जुड़ते चले आते हैं। संक्षेप में एक वंश की परिकल्पना एक गोत्र और एक अल्ल कभी रहा है अत: परस्पर विवाह वर्जित था, किन्तु इस समय एक ही गोत्र और अल्ल में लोगों की संख्या लाखों में है अत: प्रमुख रक्तधारा की बात केवल काल्पनिक ही हो जाती है कारण भले ही समाज पुरुष प्रधान है, व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो अर्द्धांगिनी के रूप में भिन्न-भिन्न वंशजों की नारियाँ इतनी ही संख्या में सम्मिलित होकर रक्तधारा, सभ्यता, संस्कृति सभी में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर डालती है। अत: एक ही गोत्र और अल्ल में विवाह हो सकता हैं, बशर्ते दोनों के पूर्वज परस्पर परिचित न हों।

प्रश्न—क्या विवाह वैदिक रीति से ही होना चाहिए या आर्य समाज रीति से भी ठीक है?

उत्तर—विवाह वैदिक रीति से हो या आर्यसमाज रीति से दोनों ही मान्य है। दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं।

प्रश्न—क्या विवाह में चार फेरें भी मान्य हैं?

उत्तर—दिनों का नामकरण उस समय तक विदित प्रमुख सात आकाशीय पिंडों के नाम पर हुआ है। सप्तर्षि मंडल में सात सुविख्यात ऋषि को साक्षी रखकर ही सातों की कल्पना या ब्रह्म की भाँति दाम्पत्य जीवन में पूर्णता सात ग्रहों की परिक्रमा का अनुकरण संभावित है अत: सात फेरों में किसी प्रकार की कटौती का कोई औचित्य नहीं लगता।

खर्चीली शादियाँ हमें बेईमान व दरिद्र बनाती हैं। विवाह एक धार्मिक कार्य है इसे दहेज से कलंकित न करें।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

के अवसर पर

हार्दिक शुभ कामनाएँ :

तार :—SOWRABH

दूरभाष :—८७

मे० सौरभ इन्डस्ट्रीज

इत्र एवं नेचुरल ऐसेन्शियल आयल

के निर्माता एवं विक्रेता

मोहल्ला तालवारान रोड, सब्जीमंडी

कन्नौज—२०९७२५

(उ० प्र०)

हमारी विशेषतायें :—

★ रुहखस भरतपुर ★ रुहखस मूसानगर

★ इत्र गुलाब ★ इत्र केवड़ा, मोतिया

★ रौंसा अमरावती ★ रौंसा सौफिया

★ नागरमोथा आयल ★ गुलाबजल

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

क्षत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक
प्रकाशन के शुभ अवसर पर
शुभ कामनाओं सहित

● होजरी ● ऊन ● ऊनी होजरी
एवम्
सभी प्रकार के रेडीमेड कपड़ों का
आधुनिक एवं
विश्वसनीय प्रतिष्ठान

मे. लाल जी गोपाल जी टंडन एंड कं.

एवं

सुमति ट्रैवेल्स

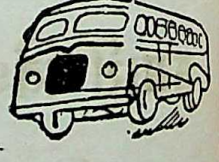

शुभ - विवाह एवं तीर्थ यात्रा के लिए
डीलक्स बसों की उचित व्यवस्था
सदर बाजार, हरदोई
दूरभाष : ५७१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

के पुनीत अवसर पर

समस्त खत्री बन्धुओं को

शुभ कामनाएँ

उपरोक्त के साथ ही मेरा यह दृढ़ अभिमत है

कि समाज को सुसंगठित बनाने में

पत्रिका का प्रकाशन विशेष

उपयोगी रहेगा।

卐

खत्री द्वारका प्रसाद खत्री

संरक्षक खत्री हितैषी प्र० उ०

एवं

उ० प्र० खत्री सभा

*

प्रतिष्ठान

मोहन लाल द्वारका प्रसाद सर्राफ

तालबेहट (ललितपुर)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

के अवसर पर

शुभ कामनाओं सहित :

ग्राम : 'अन्नपूर्णा'

फोन : २४५६५६, २४६७६६

अन्नपूर्णा बिस्कुट

(मैन्यू०) कं०

८४/६७, जी० टी० रोड

कानपुर (उ० प्र०)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

खत्री हितैषी के स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक पर
खत्री समाज को
शुभ कामनाएँ

फोन—५३२६८

सैम्सन्स ड्रेस डिपो

२७, म० गाँ० मार्ग, इलाहाबाद

स्कूल यूनीफार्म व
नवीनतम पोशाकों के विक्रेता

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर हार्दिक शुभकामनाओं सहित :

खत्री राजेश मेहरोत्रा (अध्यक्ष)

उ० प्र० खत्री युवा संघ

फोन ६०८४०

सर्वश्री मेहरोत्रा टेन्ट हाउस

४५/३२, मूलगंज, कानपुर-२०८००१

शादी ब्याह व अन्य शुभ अवसरों पर सेवा के लिये सम्पर्क करें।

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर शुभ कामनायें :—

उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक बिकने वाली :—

• मसहरी •

हर साइज में तैयार— ★ कैलिको ★ टाटा ★ प्लास्टिक ★ नाइलोन ★ सूती

थोक व फुटकर

गोपाल दास खन्ना १०, चौक, इलाहाबाद

फोन—५१६१६

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक
के अवसर पर
शुभ कामनाओं सहित :

फोन : ३२०, ७३८

गोपाल ज्वैलर्स

सदर बाजार
हरदोई
सोने चाँदी के आभूषणों का विक्रय केन्द्र

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक
के अवसर पर
हार्दिक शुभ कामनाएँ :

खत्री राकेश मेहरोत्रा

सर्वश्री दाताराम धनीराम

(सर्राफ)

रेलवेगंज, हरदोई

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के
अवसर पर समस्त खत्री बन्धुओं को
शुभ कामनाएँ

अम्बा प्रसाद जादव जीं एण्ड कं.

विक्रेता (रजिस्टर्ड)

★ रंग ★ रसायन ★ नील ★ ईगंल ★ सोडियम
★ सल्फाइड एवं वाशिंग पाउडर

फोन

२५१ २३५३, २५२७ ६३५

सम्पर्क सूत्र :—
खत्री पूर्णचन्द्र अरोड़ा
कटरा तम्बाकू, तिलक बाजार, खारी बावड़ी, दिल्ली–६

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर शुभ कामनाएँ :—

निर्माता :—

केसरवानी जर्दा भण्डार

सहसों (इलाहाबाद) के विशिष्ट उत्पादन
★ चान्दनी पत्ती तथा
★ भोला छाप ★ पान छाप
(जाफरानी पत्ती)

अधिकृत विक्रेता :—

भारत सेल्स कारपोरेशन

६०, नया बांस, दिल्ली

पाटनर :
खत्री आनन्द अरोड़ा
खत्री अरविन्द अरोड़ा

टेलीफोन
घर २२४१८३१
दुकान २३१६८५

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी के स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक हेतु
शुभ कामनाओं सहित

खत्री प्रेमनाथ खन्ना

गारन्टी युक्त सोने व चाँदी के आभूषणों के
निर्माता व विक्रेता

फोन : ५३४२१
निवास : ५६५२८

खन्ना ज्वैलर्स

३८७/१, मनमोहन दास मार्केट, रानीमंडी,
इलाहाबाद

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के
प्रकाशन के शुभ अवसर पर
शुभ कामनाओं सहित

हलो : २००५

जातिभूषण खत्री काशीनाथ मेहरोत्रा

(राजकीय ठेकेदार, सीतापुर, लहरपुर वाले)

संरक्षक

खत्री हितैषी मासिक एवं उ० प्र० खत्री सभा

प्रतिष्ठान

सर्वश्री वस्त्र लोक 卐 सर्वश्री वस्त्र संसार

बिन्नी एवं रेमण्डस वस्त्रों के—अधिकृत विक्रेता—जियाजी मिल्स के वस्त्रों के

३५ खुशवक्तराय मार्केट—लखीमपुर खीरी उ० प्र०

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

With best Compliments from :

"Jai Khattri Samaj"

Heartiast Congratulation on Celebration of "Golden Jublee" of "KHATTRI HITAISHI"

□□□

JAI DAYAL PRAN NATH KAPUR

Manufacturers Representatives & Paper Merchants

46/1, GWYNNE ROAD, PULL JHAO LAL, LUCKNOW-226 018

Grams : JAIKAPSO

Phone : Offi. 42961
Resi. 48860

□□□

Dealers :

BALLARPUR INDUSTRIES LTD.

(Shree Gopal & Ballarpur Units)

Khattri Sudarshan Kumar Kapur

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री समाज से अपील

क्या आप अपने पूर्वजों की स्मृति में
दान करना चाहते हैं–तो

खत्री महिला सभा, लखनऊ

द्वारा संचालित

दीन हीन निराश्रित महिलाओं के सहायतार्थ

महिला प्रगति केन्द्र

तथा

खत्री युवा संघ, लखनऊ

द्वारा संचालित

निर्धनों एवं जरूरत मन्द लोगों की मदत हेतु

निःशुल्क खत्री होम्योंपैथिक चिकित्सालय

को

तन-मन-धन से सहयोग कर

यश के भागी बनें

प्रधान कार्यालय

खत्री भवन

डा० गयन्द्र मार्ग (अमीनाबाद)

लखनऊ-२२६०१८

श्रीमती शान्ती सेठ (मंत्री)
खत्री महिला सभा लखनऊ

खत्री वीरेन्द्र कुमार धवन (मंत्री)
खत्री युवा संघ लखनऊ

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

स्वर्ण जयन्ती विशेषांक

द्वितीय खण्ड

खत्री समाज की महान विभूतियाँ

जिन पर समाज को

गर्व है ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जाति सेवा एवं संगठन के प्रति समर्पित
खत्री राधाकृष्ण टण्डन

संरक्षक :

१—उत्तर प्रदेश खत्री सभा ।

२—घनश्याम दास टण्डन सरस्वती विद्या मन्दिर, कैलसा ।

३—राधाकृष्ण पब्लिक स्कूल, अमरोहा ।

४—खत्री हितैषी मासिक उ०प्र०

अध्यक्ष :

१—उत्तर प्रदेश खण्डसारी निर्माता संघ ।

२—जगदीश सरन हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अमरोहा ।

३—घनश्याम दास टण्डन रोटरी नेत्र चिकित्सालय, अमरोहा ।

४—घनश्याम दास टण्डन चैरिटेबिल ट्रस्ट, अमरोहा ।

५—श्रीराम कृष्ण सेवा ट्रस्ट अमरोहा ।

६—रोटरी क्लब, अमरोहा ६९-७०, ७३-७४ तथा ८०-८१ ।

७—शान्ती भवन "फ्लैट आनर्स" वैलफिएर एसोसियेशन, हरिद्वार ।

वरिष्ठ उपाध्यक्ष :

१—दयानन्द आर्य कन्या महाविद्यालय, मुरादाबाद ।

२—आल इण्डिया इम्प्रूव्ड खण्डसारी मैन्यूफैक्चरर्स एसोसियेशन ।

प्रतिष्ठान :

१—घनश्याम शुगर फैक्ट्री, अमरोहा । (रामचन्द्र सहगल)

२—कृष्ण शुगर फैक्ट्री, ग्राम कैलसा, अमरोहा । (गोपाल कृष्ण टण्डन)

३—जी० आर० सॉल्वेन्ट्स एण्ड एलाइड इण्ड० प्रा० लि०, अमरोहा । (अजय टण्डन)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

जिन पर समाज को गर्व है

"जिसको न निज कुल, जाति, धर्म, स्वदेश का कुछ ध्यान है।
वह 'मनु' जीवन में पले, फिर भी न होता मान है॥
वह जाति का है लाल, जो नित प्रेम का वर्षण करे।
प्रिय जाति की पीड़ा हरे, निज प्राण भी अर्पण करे॥

★

सम्पादकीय

खत्री जाति एक प्रेरणा स्रोत

वर्ण-व्यवस्था रही हो या जाति-प्रेम, खत्री जाति सदा ही समाज का सिरमौर रही है। इसने सभी को आश्रय दिया। हम राम के वंशज हैं यह निर्विवाद सत्य है। अतः यदि हम उस काल के इतिहास पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होगा कि भगवान राम ने ब्राह्मणों, वैश्यों एवं शूद्रों को प्रश्रय ही नहीं दिया अपितु उन्हें गले से भी लगाया। उन्होंने संसार के समक्ष अपनी विशाल हृदयता का परिचय भी प्रस्तुत किया। समाज के प्रत्येक अंग की उन्नति एवं सुख-सम्पन्नता को बनाये रखने में सदा हमने अपने को अग्रसर रक्खा।

युद्ध का क्षेत्र रहा हो अथवा शांति का साम्राज्य, प्रत्येक अवसर पर हमने स्वदेश-प्रेम का प्रगाढ़ परिचय दिया है। शिक्षा, विज्ञान, युद्ध, राजनीति, आर्थिक क्षेत्र, खेलकूद तथा समाज सेवा में बढ़ चढ़कर हमने अपना अपूर्व योगदान दिया।

स्वयं को उत्सर्ग करके भी समाज के प्रत्येक अंग की रक्षा की। इसके प्रतीक हैं पश्चिम भारत में विदेशियों के आक्रमण जिनका हम क्षत्रियों (खत्रियों) ने शौर्यपूर्वक मुकाबला किया। इसी भाँति अन्य क्षेत्रों में भी हमारे सितारे चमके जिन्होंने संसार का मार्गदर्शन ही नहीं किया अपितु अपना सिक्का भी जमा लिया। ऐसे महापुरुषों की शौर्य गाथाएं आपको इसी विशेषांक में अन्यत्र पढ़ने को मिलेंगी।

कौन सा ऐसा क्षेत्र छूटा है जहाँ हम प्रेरणा के स्रोत नहीं रहे? अपनी सूझबूझ एवं बल-कौशल से संसार को चकाचौंध करने वाले व्यक्ति विशेष खत्री समाज के ही रहे हैं। इतिहास इसका साक्षी है। फिर क्यों न गर्व से हमारा मस्तक ऊँचा हो? हम उन सभी महापुरुषों एवं वीरों के प्रति नत-मस्तक हैं।

★

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

...ding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization...

लेखक

कैलाशनाथ जलोटा

"मंजु"

बी०ए० साहित्यरत्न

सम्पादक एवं

संरक्षक सदस्य

"खत्री हितैषी"

पत्रिका

लखनऊ

किन्तु वर्तमान युग में हमारी जाति के लोग भटक रहे हैं। अपनी आन-बान-शान को हम आज धूलि धूसरित होता देखकर भी अपनी आँखें बन्द किये हैं। जो सफलता हमारे चरण चूमती थी वह आज हमसे कोसों दूर भाग रही है। हम कहाँ से कमजोर हो गये हैं ? यह विचारणीय प्रश्न है। एक छोटा सा उदाहरण दूँ—अपनी जाति की एकमात्र पत्रिका "खत्री हितैषी", जो लखनऊ से प्रकाशित होती है, कितने भाइयों के घरों में पहुँचती है ? सारे भारत में लाखों खत्री भाई हैं और सम्पन्न भी हैं पर उनमें से कितने इस पत्रिका के सदस्य हैं ? यह संख्या नगण्य है और उँगलियों पर गिनी जा सकती है। इस छोटे से उदाहरण से स्पष्ट है कि हम कितने तटस्थ हैं। साथ ही हम अपनी जाति-उन्नति के प्रति जागरूक नहीं हैं। हम अपने इस मुखपत्र के माध्यम से जाति-जागरण का कार्य भली भाँति कर सकते हैं पर आप सभी भाइयों का सहयोग अपेक्षित है। फिर क्यों न हम आगे आयें और आज से ही इसके ग्राहक बनें तथा पत्रिका के माध्यम से अपने विचार जाति भाइयों के समक्ष प्रस्तुत करें और उन्नति के नये मार्ग खोजें।

यह सर्वथा निश्चित है कि यदि हम सभी चाहें तो पुनः सम्पूर्ण भारत में जाति-जागरण का डंका बजा सकते हैं और अपनी खोई हुई कीर्ति को वापस लाने का प्रयास कर सकते हैं। इस प्रकार हम पुनः समाज का प्रेरणा-स्रोत बनकर विश्वकल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में समर्थ हो सकते हैं। यही हमारा जाति के प्रति धर्म एवं त्याग होगा।

तो आइये हम संकल्प लें कि सभी आज से जाति के प्रति निष्ठावान होकर उसके उत्थान एवं सम्पन्नता के लिये जी जान से जुट जायेंगे और अपनी बिखरी शक्ति को बटोरकर एक बार पुनः प्रमाणित कर देंगे कि हम वास्तव में सारे भारतीय समाज के प्रेरणास्रोत हैं। अस्तु।

गर्व से कहो हम खत्री हैं।

CC-0. Panjab National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री समाज की महान विभूतियों का संक्षिप्त परिचय जिन पर समाज को गर्व है

खत्री गुरु गोविन्द सिंह—पंजाब

सिक्खों के सभी गुरु खत्री थे। उनके दसवें और अंतिम गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी व सिक्ख धर्म प्रवर्तक गुरु नानक देव वंशावली "विचित्र नाटक" में प्रस्तुत कर यह सिद्ध कर दिया था कि वे सूर्यवंशी महाराज रामचंद्र के पुत्र लव एवं कुश के वंशज हैं। गुरु नानक साहब कुश के वंशज "वेदी" खत्री थे और गुरु गोविंद सिंह लव के वंशज "सोढी" खत्री।

उन्होंने धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ क्षत्रियोचित सैनिक शिक्षा भी अपने शिष्यों को दी। उन्हें अपनी उत्तम वंशावली पर गर्व था। वे बड़े वीर एवं पुरुषार्थी थे।

खत्री महाराज पुरु—पंजाब

सिकन्दर ने जब ३२६ (बी० सी०) में भारतवर्ष पर चढ़ाई की तो उस समय सिंध प्रदेश पर राज्य करने वाली जाति खत्री थी। महाराज पुरु जिन्होंने सिकंदर के दाँत खट्टे किये थे कपूर खत्री थे। उनका पराक्रम, शौर्य, मनोबल और आत्मसम्मान सदा याद रहेगा।

खत्री पंजाब केसरी महाराज रणजीत सिंह—पंजाब

पंजाब केसरी महाराज रणजीत सिंह खत्री थे। उनके राज्य के प्रबंधकर्ता और उनकी फौज के बीस हजार से अधिक योद्धा खत्री थे। उनके साम्राज्य का विस्तार भारतीय सीमा के पार अफगानिस्तान के कुछ भाग तक था।

खत्री जनरल हरीसिंह नलवह—पंजाब

जनरल हरीसिंह नलवह गुजरानवाला निवासी खत्री थे। उन्होंने उद्दंड अफगानों के हाथ से सन् १९३४ में पेशावर छीन लिया था। इनके नाम से मुसलमानों का कलेजा काँपता था। इनके शौर्य का बोलबाला इतना अधिक था कि अफगान औरतें इनका नाम लेकर बच्चों को भयाक्रांत कर सुला देती थीं।

खत्री दीवान मोहकमचन्द—पंजाब

आप भी खत्री थे तथा महाराज रणजीत सिंह के प्रधान सेनापति थे। आपका सारा जीवन युद्ध में ही कटा। आपने कश्मीर पर चढ़ाई कर शेरगढ़ और हरि पर्वत पर कब्जा किया। भूतपूर्व काबुल के बादशाह शाह सुजाउलमुल्क जो वहाँ कैदी थे, को छुड़ाकर इज्जत के साथ काबुल भेज दिया था। शाह की बेगम ने कोहिनूर हीरा दीवान साहब को इनाम में दिया। दीवान जी ने वह हीरा अपने महाराज रणजीत सिंह को दिया था।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

...nding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization...

खत्री राजा टोडरमल—लहरपुर (सीतापुर)

बादशाह अकबर के नौ रत्नों में राजा टोडरमल टण्डन खत्री थे। वे बड़े वीर एवं पराक्रमी थे। आपका जन्म लहरपुर (सीतापुर) में हुआ था। पहले आप शेरशाह के यहाँ उच्चाधिकारी थे। बाद में शेरशाह के मरने पर बादशाह अकबर ने इन्हें अपने यहाँ बुला लिया। इन्हीं के नेतृत्व में शाही सेना ने बंगाल के विद्रोह को शांत कर उसे शाही सल्तनत में मिला लिया था। राजा साहब दीवान बनाये गये तथा शासन की बागडोर उनके हाथ में आई। अबुल फजल ने लिखा है कि ईमानदारी, सच्चाई, जवांमर्दी, कार्य कुशलता, युद्ध में फौज का संचालन करने की शक्ति, राज्य सँभालने की योग्यता में राजा टोडरमल हिन्दुस्तान में अद्वितीय थे। इन्होंने भूमि को नपवाकर मालगुजारी में नकद या गल्ला लेने की प्रथा चलवाई। भूमि का नियतकालिक बंदोबस्त इन्हीं का चलाया हुआ है जो आज भी चल रहा है।

खत्री राजा आयामल—जयपुर

शाहजहाँ बादशाह की पाँच हजार फौज के कमाण्डर राजा आयामल वाही खत्री थे। इन्हें बहुत सम्मान प्राप्त था। महाराज सवाई सिंह के राज्य में आप मुख्य मंत्री (मदारल मुल्क) थे। इन्हीं के देखरेख में सन् १७२७ में जयपुर बसाया गया था। इनके दिवंगत होने पर महाराज ने आदेश दिया था कि इनका दाह संस्कार उसी स्थान पर होगा जहाँ राजवंश का होता था। इनका इतना मान था कि इनकी अन्त्येष्टि में सर्वप्रथम सारे देश के सभी राज्यों के राजा या प्रतिनिधि उपस्थित हुये थे।

खत्री राजा विक्रमाजीत राय रायाँ हरदास

लाला हरदास खत्री को बादशाह अकबर ने राय रायाँ और बादशाह जहाँगीर ने "राजा विक्रमाजीत" की उपाधि से सम्मानित किया था। बादशाह जहाँगीर ने इन्हें पचास हजार बंदूक चलाने वाले सिपाही और तीन हजार तोपों का सेनापति बनाया था।

खत्री राजा त्रिलोकचन्द—दिल्ली

राजा त्रिलोकचंद, जो बहराइच के राजा थे, ने विक्रमपाल से युद्ध किया। विक्रमपाल मारे गये। राजा त्रिलोक चंद ने दिल्ली को जीतकर अपना राज्य स्थापित किया। इस वंश में दस पीढ़ी तक दिल्ली का राज्य रहा।

खत्री योगिराज श्रीचन्द्र—पंजाब

आप गुरु नानक देव के पुत्र थे। मुसलमान शासकों के समय आपने अपनी यौगिक शक्तियों से जहाँ हिंदुओं में नवीन प्राणों का संचार किया वहीं मुसलमान शासक इनसे इतने प्रभावित हुये कि हिंदुओं पर अत्याचार बंद हो गये।

एक बार योगी जी चम्बा के पहाड़ों पर भ्रमण कर रहे थे। वे रावी नदी के दूसरी पार जाना चाहते थे। अपने शिष्य से नाव का प्रबंध करने को कहा तो किसी और ने कहा कि महात्माओं को नाव की क्या आवश्यकता, वे तो पत्थर भी पानी में तैरा लेते हैं। योगी जी ने एक पत्थर नदी में फेंका जो तैरने लगा और वे उससे रावी के उस पार चले गये।

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

काश्मीर में हिंदुओं पर अत्याचार हो रहे थे। योगी जी वहाँ गये और घोषणा की कि काश्मीर में शीघ्र ही हिंदू राज्य स्थापित होगा फिर उन्होंने मुसलमान शासकों को कहला भेजा कि यदि वे उन्हें मुसलमान बना लें तो सभी हिंदू इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेंगे। मुसलमान शासक ने अपने मंत्री को योगी जी के पास भेजा। उसने जब योगी जी के दर्शन किये तो इतना प्रभावित हुआ कि बिना कुछ कहे वापस चला गया। योगिराज ने एक जलती हुई लकड़ी लेकर जमीन में गाड़ दी जो एक हरे भरे वृक्ष में परिवर्तित हो गई। वह वृक्ष श्रीनगर के पास प्रताप बाग में श्रीचंद्र चुनार के नाम से प्रसिद्ध है। कालांतर में योगिराज की भविष्यवाणी सार्थक हुई और काश्मीर में हिंदू राज्य स्थापित हो गया।

खत्री सुथरे शाह—पंजाब

सिक्खों के छठवें गुरु हरगोविंद साहब सोढ़ी खत्री थे। एक बार उन्होंने जंगल में एक नवजात शिशु को चीथड़ों में लिपटा पाया। शिष्यों ने कहा कि यह कुरूप बालक है। गुरु जी बोले नहीं यह 'सुथरा' है। बालक का जन्म बहिरामपुर में एक नन्हे खत्री के घर में हुआ था। बड़े होकर यही बालक सुथरे शाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ये चमत्कारी जीव थे। सिक्खों के सातवें गुरु हरिराम ने सुथरे शाह को आशीर्वाद देकर दिल्ली भेजा। यह वह समय था जब औरंगजेब की ओर से तिलक और जनेऊ पर जिहाद बोल दी गई थी। सुथरे शाह मस्तक पर गोबर का तिलक और शरीर पर सुअर की आंतों का जनेऊ पहनकर गये उन्होंने काजी से कहा कि मेरा तिलक चाटो और जनेऊ तोड़ो अथवा तिलक चाटना और जनेऊ तोड़ना छोड़ दो। काजी ने तोबा की और उसी दिन से तिलक न चाटने और जनेऊ न तोड़ने की मुनादी करा दी गई।

खत्री बाबा जसराय—पंजाब

बाबा जसराय की कथा स्कंद पुराण हिंगुलाद्रि खण्ड पूर्व संहिता में लिखी है। राजा श्रीचंद्र खत्री के कोई पुत्र नहीं था। उनके पुरोहित लालू नामक सारस्वत ब्राह्मण थे। इन्होंने अपने राजा को पुत्र प्राप्ति हेतु महाशक्ति ज्वाला को प्रसन्न किया। वहाँ से वरदान मिला कि तुम श्री हिंगुला जी की आराधना करो, तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। राज पुरोहित ने ऐसा ही किया। उन्हें जगदम्बा ने दर्शन दिया और उन्हीं की कृपा से बाबा जसराय का प्रादुर्भाव हुआ। एक दिन जब वे पाँच वर्ष के थे एक बड़े आले में ध्यान लगाये बैठे थे। उन्हें उनकी माता ने पुकारा पर चूंकि वे ध्यान में थे सो नहीं सुना। माता बिना सोचे समझे क्रोध में बोली कि क्या आले में ही समा गये। तुरंत आला बड़ा होता गया और वे उसमें समाते गये। माता ने दौड़ कर उन्हें पकड़ना चाहा पर तब तक वे आले में समा चुके थे केवल चोटी बाहर थी सो माँ ने पकड़ ली। वहीं पर उनका मंदिर बना जो लालू जसराय के मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। खत्री परिवार के अनेक बच्चों की चोटी यहीं उतारी जाती थी। ये लोग भारत के अनेक नगरों से आते थे।

खत्री बाबा मलूकदास—इलाहाबाद

आपका जन्म इलाहाबाद में कक्कड़ परिवार में हुआ था। बचपन से ही आप भगवद् भक्ति से ओतप्रोत थे। आप सिद्ध महात्मा और कवि थे। आप १०८ वर्ष के होकर संसार छोड़ गये। आपने मरने से पूर्व बता दिया था और कहा था कि उनका शरीर गंगा में बहा देना। आपका शरीर काशी तक गंगा में बहा। तत्पश्चात् श्री जगन्नाथ में प्रकट हुआ। समुद्र तट पर पुरी में आज भी आपका मंदिर है जहाँ "मलूकदास का टुकड़ा"

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization

नाम से प्रत्येक दर्शनार्थी को प्रसाद दिया जाता है। आपके भजन अत्यंत प्रसिद्ध हैं। एक छटा हुआ दोहे की देखें :—

"अजगर करै न नौकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम।।"

खत्री स्वामी शिवदयाल सिंह—आगरा

आप आगरा निवासी सेठ खत्री थे। आप ही राधा स्वामी मत के प्रवर्तक थे। आपका उपदेश था कि सूरत ध्यान में रखने से ईश्वर मुक्ति मिलती है। इनका दावा था कि इन्होंने मोक्ष प्राप्त करने का उपाय ज्ञात कर लिया है। राधास्वामी मत वाले गुरु की ईश्वर से भी अधिक भक्ति करते हैं। इनका सम्प्रदाय दूर-दूर तक फैल गया है। इसमें सभी जाति के लोग हैं।

खत्री महात्मा हंसराज—पंजाब

खत्री मात्र को महात्मा हंसराज पर गर्व होना चाहिये। उन्होंने निस्वार्थ जाति और समाज सेवा की। आर्य समाज के तो वे प्राण थे हिन्दू धर्म और हिंदू संगठन के वे बड़े हिमायती थे। जो हिंदू मुसलमान बन गये थे उन्हें पुनः उन्होंने हिंदू धर्म स्वीकार कराया।

डी० ए० वी० कालेज लाहौर के वे २५ वर्ष तक प्रिंसिपल रहे। लाहौर आर्य समाज के वे सभापति तब चुने गये जब वह केवल २५ वर्ष के थे। १८९५ में आपने आर्य समाजियों को संगठित करने हेतु आर्य गजट नामक पत्र निकाला। वे लाजपतराय के बहुत निकट थे। १८९६ में जालंधर व १८९८ में होशियार पुर में आपने एक-एक संस्कृत पाठशाला स्थापित की। महात्मा जी संस्कृत व हिंदी के प्रकांड विद्वान थे। वे कई वर्ष तक वेदों के मंत्रों का संग्रह करते रहे। कई संस्थाओं के वे संरक्षक व संचालक रहे और निस्वार्थ सेवा की। डी० ए० वी० कालेज लाहौर के विद्यार्थियों ने एक विशाल हाल कालेज में बनवाया जिसका नाम हंसराज हाल रखा गया। आप डी० ए० वी० कालेज की मैनेजिंग कमेटी के सभापति भी रहे। आप एजुकेशनल कांफ्रेंस तथा राष्ट्रीय सोशल कांफ्रेंस के सभापति रहे। आपने अकाल पीड़ितों के लिये बहुत धन एकत्र किया। क्वेटा में आने वाले भूचालों के पीड़ितों के लिये भी आपने धन एकत्र किया। वे बड़े सज्जन, उदार और महात्मा थे। लोग उनका बड़ा सम्मान करते थे। पंजाब, बिलोचिस्तान और सिंध में महात्मा जी का बड़ा प्रभाव था। उनकी स्मृति में एक टेक्निकल स्कूल, एक कालोनी, हंसराज पुस्तकालय भी खोला गया। बालिकाओं की शिक्षा के लिये आपने एक महिला विद्यालय भी खोला।

खत्री मदनलाल धींगरा—अमृतसर

धींगरा जी का जन्म एक सम्भ्रांत खत्री कुल में अमृतसर में हुआ। जब वे इंगलैण्ड पढ़ने गये तो भारत को स्वतंत्र करने के उत्सुक क्रांतिकारी दल में शामिल हो गये।

धींगरा जी ने १ जुलाई सन् १९०९ को सर कर्जन वाइली को गोली मार दी। अदालत में उन्होंने कहा कि यदि हमारी मातृभूमि के विरुद्ध कोई जुल्म करता है तो वह ईश्वर का अपमान करता है। इस समय भारत-

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

वासी केवल मरना सीखें अपनी मातृभूमि के लिये। यह सीखने का उपाय है कि वे स्वयं मरें। मैं भी मरूंगा और मुझे इस शहादत पर गर्व है।

१६ अगस्त, १९०९ को उन्हें फाँसी दे दी गई। खत्री जाति का मस्तक ऊँचा उठाने वाले इस वीर पुरुष को कोटिशः प्रणाम।

खत्री डा० बीरबल साहनी

देश के गौरव डा. साहनी अपने विज्ञान-कार्यों एवं श्रेष्ठता के लिये केम्ब्रिज विश्वविद्यालय द्वारा D.Sc. की उपाधि से विभूषित किये गये थे। आपका प्रिय विषय वनस्पति विज्ञान था। १४ नवम्बर, १८९१ में आपका जन्म भेड़ा नामक कस्बे में हुआ था।

१९१९ में आप भारत लौटे और तभी आपको हिंदू विश्वविद्यालय काशी में वनस्पति विभाग का मुख्य प्राचार्य नियुक्त किया गया। आपने पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर तथा लखनऊ विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान विभाग में भी कार्य किया। १९३० व १९३५ में इण्टर नेशनल बोटानिकल सोसाइटी के सभापति भी रहे। आप अपने अंत समय तक लखनऊ विश्वविद्यालय के साइंस विभाग के डीन रहे। इण्डियन साइंस सोसाइटी में आप दो बार प्रेसीडेण्ट बनाये जा चुके हैं। वर्ष १९२१, १९२६ व १९३८ में आप ज्योलाजिकल विभाग के प्रेसीडेण्ट बनाये गये।

आपने अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं को जन्म दिया। अपने अमूल्य कार्यों के लिये आपको कितनी ही उपाधियां और पदक प्रदान किये गये।

आप देशोन्नति के अन्य अनेक कार्यों में भी रुचि लेते थे। सार्वजनिक, सामाजिक, शिक्षा सम्बंधी कार्यों के अतिरिक्त देश में होने वाले राष्ट्रीय आंदोलनों में भी आपकी सहानुभूति रहती थी। आप खद्दर को शेरवानी, चूड़ीदार पैजामा तथा गांधी टोपी भी पहनते थे।

आपके मुख्य कार्यों में "दक्षिण पठार की आयु", "हिमालय का इतिहास" "गोंडवाना और अंगारा महाद्वीप" आदि प्रसिद्ध हैं।

३ अप्रैल, १९४९ में आपने "पैलाबाटनी इंसटीट्यूट" की स्थापना की जिसकी नींव स्व० प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने रखी थी।

खत्री दीवान सावनमल, मुलतान

आपका जन्म वर्ष १७८२ में हुआ था। आपको मुलतान का शासक नियुक्त किया गया था तथा साथ ही में डेरा गाजी खाँ का प्रबंध भी सौंपा गया था। आपने जीवनपर्यंत कुशलतापूर्वक अपने दायित्व को निभाया तथा वर्ष १८४४ में स्वर्गवासी हुये। हमें आप पर गर्व है।

खत्री कालिदास कपूर, एम० ए० एल० टी०—लखनऊ

आपका जन्म चौक लखनऊ में ११ अगस्त सन् १८९२ में हुआ। आप हिंदी व अंग्रेजी के प्रकाण्ड विद्वान माने गये। साहित्यिक, सामाजिक व जातीय सेवा में लगे रहे। आप अखिल भारतीय खत्री महासभा की सन्

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

...nding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitiza...

१९१० की (प्रयाग की प्रदर्शिनी के साथ) बैठक में सम्मिलित हुये। आप लखनऊ, फरुंखाबाद, लाहौर, कानपुर, शाहजहाँपुर व सीतापुर के अधिवेशनों में भी सम्मिलित हुये। प्रांतीय सभा के प्रथम मंत्री भी आप रह चुके हैं। खत्री उपकारिणी सभा, लखनऊ, की कार्यकारिणी के आप अनेक वर्षों से सदस्य हैं।

आप काली चरण हाई स्कूल, जुबली हाई स्कूल, लखनऊ व के० डी० जे० हाई स्कूल मौरावां में अध्यापक रहे। कालांतर में आप कालीचरण हाई स्कूल, लखनऊ में हेडमास्टर नियुक्त हुये।

आप १९२५ में हाई स्कूल बोर्ड के मेम्बर, १९२८ में टेक्स्ट बुक कमेटी की हिंदी सब कमेटी के सभापति तथा १९३१ से १९३७ तक बोर्ड की हिंदी कमेटी के सभापति रहे। इसके अतिरिक्त यू० पी० सेकेण्डरी एजूकेशन एसोसिएशन के सभापति (१९२५-२६) व प्रधान मंत्री (१९३४-३५), बोर्ड आफ हाई स्कूल एण्ड इण्टरमीजिएट एजुकेशन में प्रांतीय हेडमास्टरों के प्रतिनिधि (१९२५-३१), टीचर्स कोआपरेटिव सोसाइटी के सभापति (१९३३-४२) में रहे। आपने शिक्षा सम्बंधी उद्देश्य से सन् १९३६ मे जापान यात्रा की।

आपने लगभग १४ पुस्तकें लिखीं जो ज्ञानवर्धक हैं। खत्री समाज को आप पर गर्व है।

खत्री लाला बुद्धूलाल मेहरोत्रा—कानपुर

सच्ची राष्ट्रीय भावना के ज्वलंत उदाहरण, समाज एवं उन्नति सेवा के धनी, स्नेह एवं ममत्व के सजीव स्वरूप लाला जी का जन्म कानपुर में सन् १८९६ में हुआ था। आपके पिता लाला ज्वालाप्रसाद कानपुर नगर के प्रतिष्ठित लोगों में से थे।

आपने अपने को सामाजिक कार्यों में खूब लगाया। फलस्वरूप अनेक ऐसी संस्थायें है जो उनके कर्मठ व्यक्तित्व का ज्वलंत उदाहरण हैं।

कानपुर के अनेक ट्रस्ट व संस्थायें आपके मार्गदर्शन में सदा फली फूलीं।

अखिल भारतीय खत्री महासभा के २९ वें (सन् १९६४) अधिवेशन तथा उसकी सफलता का सेहरा आप के सर पर रहा।

कपड़ा व्यापार में आपने अभूतपूर्व सफलता पाई और इसी कारण तथा अपने सद्व्यवहार के कारण आप सबके सिरमौर रहे।

खत्री समाज आपके समक्ष नतमस्तक है।

खत्री श्री प्रेम किशन खन्ना—शाहजहाँपुर

श्री खन्ना जी उ० प्र० स्वतंत्रता संग्राम सेनानी संगठन के अध्यक्ष बने। आप भूतपूर्व संसद सदस्य भी हैं।

क्रांतिकारियों के पुराने साथी तथा भारत की आजादी के किये कटिबद्ध आपने सभी कार्यों में सहयोग दिया। आप सभी क्रांतकारियों के साथ कंधे से कंधा मिला कर चलते रहे और उनका साथ दिया।

अनेक स्कूल, कालेजों के संस्थापन में आपका पूरा योगदान रहा। आपने अपने जीवन के बहुमूल्य ७० वर्ष देश और सामाजिक सेवा में लगा दिये। आपको कोटि-कोटि प्रणाम।

खत्री स्व० लक्ष्मीनारायण जी टण्डन—लखनऊ

श्री टण्डन जी ने अपना बचपन अभावों में काटा था। अतः अपने सम्पूर्ण जीवन में, सम्पन्न होने पर, वे गरीब बच्चों की तन, मन, धन से सहायता करते रहे।

...Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

वे इलाहाबाद बैंक कलकत्ता में बड़े बाबू के पद पर वर्षों कार्यरत रहे। अत: लोग उन्हें बड़े बाबू के नाम से ही पुकारते थे। अपने बैंकिंग जीवन काल में आपने अनेक गरीब खत्री लड़कों को बैंक में नौकरियाँ दिलवाईं। उनका व्यक्तित्व महान था। वे एक ईमानदार एवं चरित्रवान व्यक्ति थे। उनके साधनाशील जीवन में कर्म, ज्ञान एवं भक्ति का अनोखा संगम था। वे सादगी पसंद प्राणी थे और आडम्बर से दूर रहते थे। वे कहा करते थे कि "कर से कर्म करो विधि नाना, मन राखो प्रभु कृपा निधाना"।

उनका कहना था कि बच्चों को ऐसी उचित व उत्तम शिक्षा देनी चाहिये ताकि वे अपने जीवन में स्वयं अपने पैरों खड़े हो सकें, माता पिता की बैसाखी पर नहीं।

सदग्रंथों के पारायण के साथ-साथ आप साधु संतों का मान सम्मान भी किया करते थे। सम्भवत: यह वर्ष १९०१ या १९०२ का समय था जब गंगा प्रसाद मेमोरियल हाल, लखनऊ में अपने भाषण के बीच स्वामी रामतीर्थ ने उनकी पीठ ठोंककर शाबाशी दी थी।

खत्री स्व० रणछोड़दास जी अरोड़ा, ब्यावर–राजस्थान

तेजस्वी समाज सेवी स्व० रणछोड़दास जी अरोड़ों के अगुआ थे। आप राजपूताना अरोड़वंश महासभा के सदस्य थे। सन् १९२४ में महासभा के नसीराबाद अधिवेशन के आप सर्वसम्मति से सभापति बनाये गये थे। टेढ़े से टेढ़े मामालों को सुलझाने में आप अद्वितीय ज्ञान रखते थे। जाति के मुख्य पंचों में आपका सर्वोच्च स्थान था। आपका सभी मान करते थे।

आप पाली में "आनरेरी मैजिस्ट्रेट" थे। आप जैसे विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति को समाज ब्यावर में आयोजित महा सम्मेलन का सभापति चुना। आपके हृदय में जाति प्रेम की ज्योति सदा प्रज्ज्वलित रही। १५० वर्ष से चली आ रही नागौरी और जोधपुरी अरोड़ों की दलबंदी को आपने इतने अच्छे ढंग से निबटाया कि किसी को कोई दुख न हुआ और बिछुड़े हुये भाई गले मिले। इस कार्य के किये आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। फलस्वरूप युवा वर्ग आगे आया और दूने उत्साह से जाति सेवा में जुट गया।

आप टेनिस के एड अच्छे खिलाड़ी भी थे। आपने एक इतिहास भी लिखा था किंतु दुर्भाग्य, उनके निधन से वह छप न सका।

खत्री स्व० निहालचन्द बेरी, वाराणसी (१८२६-१९७०)

श्री निहालचन्द का जन्म अमृतसर में हुआ था पर आपकी कर्मभूमि वाराणसी थी। आप अच्छे लेखक, कवि, साहित्यकार, उपन्यासकार, नाटककार एवं जासूसी उपन्यासकार के साथ-साथ अच्छे पत्रकार एवं सम्पादक भी थे।

आपने अनेक पुस्तकें, उपन्यास ऐय्यारी के उपन्यास, गीत तथा भजनों की पुस्तकें लिखीं।

आपने एक प्रकाशन संस्था भी खोली थी जो वाराणसी से कलकत्ता चली गई। बड़ी-बड़ी महत्वपूर्ण पुस्तकें कृतियाँ रिपोर्टें एवं राष्ट्रीय पुस्तकें इस संस्था ने छापीं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

...nding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitiza...

खत्री स्व० कुन्दनलाल सहगल—बम्बई

वर्तमान समय के तानसेन स्वर्गीय कुन्दनलाल सहगल ने जो धूम गायन के क्षेत्र में मचाई और अपनी विशिष्ट गायन शैली को संसार के सामने उजागर कर गये उसका जोड़ नहीं। उनकी बराबरी करने वाला कोई दूसरा गायक नहीं है।

उन्होंने अनेक फिल्मों में काम भी किया और अपने गीत स्वयं गाये। वे अमर गायक है। उनके प्रसिद्ध एवं दिल को छूने वाले गीत निम्नलिखित हैं :—

(१) बालम आय बसो मेरे मन में

(२) बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाय

(३) जगमग जगमग दिया जलाओ.

(४) जब दिल ही टूट गया

(५) दो नैना मतवारे तिहारे

खत्री कुल कमल दिवाकर गुरु नानक देव जी—पंजाब

आपका जन्म बहलोल लोदी के समय खत्री वंश के वेदी अल्ल में तलबंडी (लाहौर) में हुआ था। इसे ननकाना साहब भी कहते हैं। इस समय यह पाकिस्तान में है। आपको पहले गुरु जी ने "ॐ" पढ़ाया। पूछने पर गुरु जी ने कुछ अर्थ बता दिये। परन्तु आपने उसकी व्याख्या कुछ और ही कर दी। फारसी के विद्वान मौलवी भी पढ़ाते समय समझ गये कि यह विलक्षण बुद्धि का बालक है। नानक देव जी ने जब देखा कि हिन्दू जाति खतरे में है तो छूत अछूत ऊँच नीच का विचार न करते हुये सभी भारतवासियों को एकता के सूत्र में बाँधने हेतु उपदेश दिया कि "ईश्वर ने मनुष्य को बनाया, उसको मानो, गरूर छोड़ो, मौत की चिन्ता न करो और बनाने वाले को जपो। जो परमात्मा को हृदय में रखे, अपने ईमान को चेते, वही सच्चा है।

अनेकाणिक खत्री सिख थे। सिखों के दसों गुरु खत्री वंशावतंश हैं।

खत्री लाला गयाप्रसाद कपूर—कानपुर

लाला गयाप्रसाद ने सन् १८५७ के विप्लव के पश्चात् लाखो रुपया पैदा किया। अपने मरने से तीन दिन पूर्व अपने वसीयतनामे के द्वारा आपने थोड़ी सम्पत्ति अपनी विधवा पत्नी, अपनी विधवा पुत्रवधू और अपनी बहन व उसके लड़कों, अपने अहलकारों तथा छोटे-बड़े कर्मचारियों को देने के उपरान्त शेष सम्पत्ति को लोक हितैषी कार्यों हेतु दे दिया। "छोटेलाल गयाप्रसाद ट्रस्ट" की स्थापना की जो उत्तर प्रदेश की लोकहितैषिणी संस्थाओं में एक है। ट्रस्ट से होने वाली आमदनी ही केवल खर्च की जायेगी, मूलधन नहीं छुआ जायेगा। इस ट्रष्ट के द्वारा अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये गये हैं। ट्रस्ट के महत्वपूर्ण कार्यों में कानपुर की दो धर्मशालायें "छोटे-लाल गया प्रसाद धर्मशाला" व बेनीमाधव धर्मशाला" विशेषरूप से विख्यात हैं। अनेक कालेजों को दान, कुआँ बनवाना, बच्चों को वजीफें, पुस्तकें, पास, परीक्षाशुल्क आदि प्रदान करना, सरसैया घाट पर पार्क व टट्टियाँ बनवाना "गया प्रसाद लाइफ सेविंग फण्ड" की स्थापना आदि कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री स्व० बाबू माधो प्रसाद जी, धवन–मिर्जापुर (१८५१–१९२२)

जाति सेवक बाबू साहब एक निर्भीक पत्रकार भी थे। आपने सन् १८८८ में 'खिचरी समाचार'–(राष्ट्रीय एवं सामाजिक सुधार हेतु प्रकाशित)—पत्र के प्रकाशक, मुद्रक एवं निर्भीक सम्पादक थे। आप न्यूयार्क (अमेरिका) के 'साइको ससेक्स' क्लब के भारतीय सदस्यों में एक थे।

खत्री स्व० लाला दुर्गाप्रसाद जी सहगल–कानपुर (१८४९–१९२४)

आपने खत्री जाति का बड़ा उपकार किया। आपने अपने पैसे से सैकड़ों खत्री भाइयों की कन्याओं का विवाह करवा दिया। आपने इलाहाबाद में मुहल्ला कल्यानीदेवी में हनुमान जी के मंदिर की स्थापना की। अनेक गरीब खत्री बच्चों को शिक्षा हेतु सहायता की। आपने अपने पैसे से एक मकान बनवाया और उसमें असहाय गरीब खत्री विधवाओं को रहने का स्थान दिया। इन विधवाओं को भोजन और वस्त्र भी वे अपने पास से देते थे। प्लेग के दिनों में मकानों में पड़ी सड़ती लाशों को निकलवा कर आप ही मृतक क्रिया करने वाले थे। शहर के कलेक्टर ने प्लेग की समाप्ति पर आपको धन्यवाद पत्र दिया। आप रोगियों की सेवा के साथ-साथ दवा भी बाँटते थे। पेट की मालिश करने में आप निपुण थे और इससे अनेक रोग दूर कर देते थे।

खत्री लाला दयालीराम जी चोपड़ा–पटियाला

सन् १८८८ में महेन्द्र कालेज के प्रोफेसर की हैसियत से आपने खत्री जाति की सेवा का बीड़ा उठाया। आप उस कमेटी के सदस्य बने जो जातीय सुधार हेतु पंजाब में १८८५ में बनी थी। कालान्तर से आप इसके जनरल सेक्रेटरी बने। आपने सारे भारत के प्रमुख नगरों का भ्रमण किया और बिखरे हुये जाति के लोगों को आपस में मिलाया जिसका फल यह हुआ कि १९३१ की मनुष्य गणना में हमारी संख्या पिछली सख्या से पचास हजार बढ़ गई। इससे प्रेरणा लेकर अन्य प्रांतों में कमेटियाँ बनीं। १८९९ में पटियाले में पंजाबी खत्री सभा हुई। इसके लिये पटियाला महाराज ने सभी खत्रियों को एक सप्ताह की छुट्टी प्रदान की। २६–२७ दिसम्बर १८९९ में अखिल भारतीय खत्री कांफ्रेंस का प्रथम अधिवेशन हुआ जिसे सफल बनाने में लाला जी ने बड़ा प्रयत्न किया। फर्रुखाबाद के १२ वें अखिल भारतीय खत्री सम्मेलन के आप प्रधान रहे।

खत्री लाला हरिचंद बाँबा–लाहौर

आप खत्रिय सेन्ट्रल कमेटी, लाहौर के मंत्री बनाये गये थे। अखिल भारतीय खत्री सम्मेलन के जन्म-दाताओं में आपका नाम भी आदर से लिया जाता है। 'चैरजाति' और 'बाहुजाति' के झगड़े को मिटाकर दोनों वर्ग के खत्रियों में मेल कराने का श्रेय आप ही को है। चूँकि आपको खत्री जाति से बड़ा प्रेम था अतः जातीय इतिहास की खोज के लिये आपने बड़ा परिश्रम किया था। आप सदा जाति सेवा में लगे रहे।

खत्री मास्टर मोतीलाल जी सेठ बी. ए.–आगरा (१८५३–१९११)

बी० ए० में उत्तीर्ण होने के पश्चात् आप डिप्टी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स लगाये गये। आपने एक पुस्तक अँग्रेजी में लिखी जिसका नाम था—'एथनालाजिकल सर्वे आफ द खत्रीज'। इसी के कारण मनुष्य गणना में खत्रियों को उचित स्थान मिला। आपने 'खत्री-हितकारी' पत्र का सम्पादन करते हुये विवादग्रस्त विषयों पर प्रकाश डाला। इन कारणों से सेठ जी खत्री इतिहास में अमर हो गये।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitized

खत्री स्व० लाला कालीचरन मेहरोत्रा-लखनऊ. (१८४२—१९०६)

उन्नीसवीं शताब्दी के अर्द्धांश में लखनऊ चौक क्षेत्राकाश में एक ऐसे दीप्तिमान नक्षत्र का उदय हुआ, जिसने अपने सौम्य व्यक्तित्व की प्रभा से समस्त शिक्षा जगत को चमत्कृत कर दिया, सेवा का एक ऐसा आदर्श उपस्थित किया, जो आज भी वंदनीय है, परोपकार की ऐसी ज्योत्स्ना छिटका दी, जो आज भी धवल-धवला सी आच्छादित है। साधारण से खत्री परिवार में जन्मा होकर, घर में छोटे होने पर, स्वजनों की प्रतारणा को सहन करते हुए, अल्पवय में विवाह जैसे दायित्व-बोझ से लदकर भी जिसने, साहस, उद्यम और जीवन-साधना नहीं त्यागी, वह थे चिरस्मरणीय स्व० लाला कालीचरण जी मेहरोत्रा। आर्थिक कठिनाइयों के झंझावात से जूझने का चरमादर्श उन्होंने प्रस्तुत किया। दान और उदारता की यह सचमुच अद्वितीय मूर्ति बन गये। जो अपने पितृ-श्राद्ध के अवसर पर शत-शत ब्राह्मणों को भोजन करवा प्रत्येक को एक-एक स्वर्ण मुद्रिका दे सकता था, उसके हृदय की विशालता और पूर्वजों के प्रति आदर भाव का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

सन् १८४२ में जन्म लेकर, आर्थिक विषमताओं में पलकर जब श्रद्धेय ला० कालीचरण जी १२ वर्ष के हुए तभी उनका विवाह सम्पन्न हुआ। सुबह-शाम रोटी के लाले पड़ गये। दायित्व बढ़ ही गया था। एक रात वह अपनी पत्नी की नाक की नथ लेकर कहीं चले गये और एक वर्ष तक अज्ञातवास में रहे। बाद में उन्होंने एक पत्र अपनी कुशल क्षेम का मुर्शिदाबाद से घर पर लिखा। वहीं रहकर उन्होंने पर्याप्त धनोपार्जन किया।

लाला कालीचरण खत्री की अंतिम इच्छा पत्रानुसार, जिसका प्रारूप कलकत्ते के प्रसिद्ध एवं वरिष्ठ अधिवक्ता बाबू आपूरला केलार गंगूली द्वारा लिपिबद्ध किया गया था, और जिसपर लाला कालीचरण जी के हस्ताक्षर दिनांक २५ मई १८९९ को बाबू गोपाल दास क्षत्रिय तथा बाबू अविनाश चन्द्र के साक्ष्य में हुये थे, उनकी समस्त चल और अचल सम्पत्ति पर लखनऊ जनपद के डिप्टी कलेक्टर महोदय का नियंत्रण होगा और स्व० लाला कालीचरण जी के नाम पर एक शिक्षा संस्था खोली जाय। इस निमित्त कलकत्ता स्थित बैंक आफ बंगाल में एक लाख रुपये की धनराशि को प्रोमीसरी नोट्स के रूप में जमा थी, का ब्याज शिक्षा संस्था के पोषण में लगाया जाय। स्व० लाला काली चरण जी के मन में जनसेवा की, जनहित की तथा शिक्षा-जगत सेवा की प्रसुप्त चिनगारी विद्यमान थी, जिसको उनके चचेरे भ्राता स्व० श्री नरोत्तम दास जी ने क्रमशः प्रज्ज्वलित किया और उन्हें अपनी सुश्रम अर्जित सम्पत्ति को सत्कार्य में व्ययार्थ संप्रेरित किया।

२५ मई सन् १८९९ ई० में उस उदात्तमना ने अन्तिम इच्छा पत्र पर कलकत्ते में हस्ताक्षर किये थे। शनैः शनैः उनका स्वास्थ्य गिरता गया और सन् १९०६ के ११ अगस्त को, वह दिव्य भावना युक्त महान आत्मा, कलकत्ता स्थित मटियाबुर्ज निवास पर पंचत्व को प्राप्त हो गयी। उनकी मृत्यु के समय उनके दत्तकपुत्र लाला तेजकृष्ण खत्री जिनकी आयु उस समय लगभग १४–१५ वर्ष की रही होगी, अपनी माता जी के साथ कलकत्ता में उपस्थित थे।

खत्री बाबू महेश्वर प्रसाद सिंह-पटना (१८६७–१९१७)

आप में जातीय प्रेम कूट-कूट कर भरा था। बाबू जी १९०० के प्रथम खत्री सम्मेलन, लाहौर में तथा १९०१ के खत्री कांफ्रेंस, जम्बू, में बिहार के प्रतिनिधि होकर गये थे। आपने पटना में खत्री सभा की स्थापना की और मंत्री के रूप में जाति सेवा करते रहे। आपकी पुण्य स्मृति में 'महेश्वर शील्ड' चालू की गई जिसमें सारे भारत के खिलाड़ी भाग लेते हैं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री स्व० राय छोटेलाल जी टण्डन–जालना (१८६२–१९६१)

आप एक अच्छे समाज सेवक तथा गरीबों के भगवान बनकर आये थे। वह चाहते थे कि जिस समाज में वे रह रहे हैं उसका हर अंग हर प्रकार की उन्नति करे। वे सुसम्पन्न परिवार में जन्मे थे किन्तु गरीब की ओर उनका ध्यान भगवान की ही देन थी।

वे मराठी, हिन्दी, गुरुमुखी, उर्दू और फारसी के ज्ञाता थे। अपनी योग्यता से ही उन्होंने निजाम की राजसत्ता का विश्वास प्राप्त किया था और रायसाहब औरंगाबाद की नगर परिषद एवं जिला बोर्ड के सदस्य नियुक्त किये गये।

वर्ष १८९९ में सूखा पड़ने पर आपने अनेक प्रकार से समाज की सेवा की। आपने शिक्षा प्रसार की ओर भी अपना ध्यान लगाया तथा अन्य सहयोगियों के साथ सरस्वती भुवन विद्यालय और शारदा मंदिर संस्था की नींव डाली। वे दोनों संस्थाओं के संस्थापक और निर्देशक रहे।

नियमानुसार तो प्राथमिक शाला खोलने के लिये निजाम की स्वीकृति परमावश्यक थी किन्तु राय साहब ने ऐसा नहीं किया। किन्तु निजाम में इतना साहस नहीं था कि उसे अस्वीकृत कर दें।

राय साहब अनेक संस्थाओं से अंत तक जुड़े रहे और सभी को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने की चेष्टा करते रहे। इन संस्थाओं में वे अध्यक्ष, संस्थापक एवं सलाहकार के रूप में कार्यरत रहे। निजाम राज्य ने भी इनकी नीतिओं की सराहना की तथा इन्हें स्वर्ण पदक, रौप्य पदक एवं ताम्र पदकों से सुशोभित किया। जहाँ आप खत्री समाज के अध्यक्ष रहे वहीं आल इण्डिया खत्री कांफ्रेंस हैदराबाद के वर्ष १९४५ में अध्यक्ष रहे।

खत्री समाज ऐसे उच्च कोटि के समाज सेवक को शतशः प्रणाम करता है।

खत्री स्व० गंगा प्रसाद वर्मा–लखनऊ (१८६३–१९१४)

श्री गंगा प्रसाद जी को यदि लखनऊ शहर का चाँद कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। जहाँ आप सार्वजनिक जीवन में एक उच्चकोटि के समाज सेवी एवं खत्री हितैषी थे वहीं आप एक कर्मठ, विद्वान, निर्भीक पत्रकार भी थे। आपने एडवोकेट व हिन्दुस्तानी नामक समाचार पत्रों का बड़ी कुशलता से सम्पादन किया। अपनी कर्तव्यनिष्ठा, कार्यक्षमता, मातृभूमि एवं जनता की निस्वार्थ सेवा हेतु समर्पित जीवन से उन्होंने उन्नति की और संयुक्त प्रान्त विधान परिषद के सम्मानित सदस्य, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी सिनेट के सदस्य, लखनऊ म्युनिसिपल बोर्ड के वरिष्ठ उपाध्यक्ष, प्रदेशीय सेनेटरी बोर्ड के सदस्य, संयुक्त प्रांत हिन्दू सभा तथा लखनऊ पीपुल्स एसोसिएशन के अध्यक्ष पद पर रहे।

सी० वाई० चिन्तामणि ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन पालिटिक्स सिन्स म्युटिनी' में लिखा है कि लखनऊ से बम्बई तक अपरिचित व साधारण २२ वर्षीय युवा बाबू गंगा प्रसाद वर्मा ने १८८५ में बम्बई में कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में भाग लिया और जीवन पर्यन्त २८ वर्षों तक कांग्रेस व मातृभूमि के महान भक्त रहे और संयुक्त प्रांत कांग्रेस के प्रथम अध्यक्ष रहे।

डा० पट्टाभि सीतारमैइया ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ दि कांग्रेस' में लिखा है कि कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन (बम्बई) में भाग लेने वाले देश भक्तों में लखनऊ से मुंशी गंगा प्रसाद वर्मा थे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

...nding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitiza...

आप जब लखनऊ म्युनिसिपल बोर्ड में अनेक पदों पर कार्यरत थे तो आपने अमीनाबाद में पार्क क्लाक टावर, फब्बारा बाजार एवं पुस्तकालय एवं वाचनालय का निर्माण करवाया था। इस पुस्तकालय की आधारशिला दादा भाई नौरोजी ने रक्खी जिसका श्रेय मुंशी जी को ही जाता है।

बाबू गंगाप्रसाद वर्मा मेमोरियल सोसाईटी आपकी यादगार में चल रही है। इस संस्था ने बुधवार दिनांक १३ अगस्त १९८६ को बाबू जी के जयन्ती समारोह पर गंगा प्रसाद वर्मा मेमोरियल हाल, अमीनाबाद लखनऊ में एक उत्सव मनाया जिसका उद्घाटन एवं अध्यक्षता पं० कमलापति त्रिपाठी जी ने की। इसके मुख्य वक्ता थे श्री जगदीशचन्द्र दीक्षित एम० एल० सी०। इस संस्था के अवैतनिक महामंत्री हैं डा० मदन मोहन सिद्धू तथा अध्यक्ष श्री कैलाश प्रकाश जी हैं।

हम अपने ऐसे महामानव के प्रति श्रद्धा से नमन करते हैं।

खत्री रायबहादुर लाला रामसरनदास जी—लाहौर

आपको सन् १९१४ में 'कैसर हिंद' की उपाधि से विभूषित किया गया। आप अनेक सामाजिक एवं प्रसिद्ध संस्थाओं के सभापति तथा 'खत्री हितैषी' के संरक्षक बने। लखनऊ में होने वाली १८ वीं अखिल भारतीय खत्री कांफ्रेंस के आप सभापति चुने गये थे।

खत्री रायबहादुर कैप्टेन रामरखामल जी भंडारी—लाहौर

आपका जन्म गुरुदासपुर में हुआ। आप पेशे से वकील थे। आप अनेक सामाजिक संस्थाओं से जुड़े रहे। आपने विधवा विवाह को बढ़ावा दिया। आपने कई लेख पत्र-पत्रिकाओं मे लिखे कि 'हिन्दू क्यों कम हो रहे हैं।' जब हिन्दुओं को रियासत भावलपुर में बन्द किया गया तो आपने अथक प्रयास करके उन्हें छुड़ाया। विलायत में रहकर आपने हिन्दू सभा बनाई। हिन्दू पर्व दीवाली, दशहरा आदि त्योहार मनाने शुरू किये। आपने बैरिस्ट्री की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। आप बिलोचिस्तान में रेडक्रास के कमिश्नर नियुक्त किये गये। आपको कप्तान की उपाधि प्रदान की गई। उन्होंने सारी सेवा निःशुल्क की। आप अपनी जान की परवाह न करके युद्ध पर भी गये। आपका पोता जो बहुत बीमार था मर गया किन्तु आप अपने काम पर डटे रहे। रेडक्रास की ओर आप वर्मा, श्याम आदि देशों को गये जहाँ आपका बहुत सम्मान किया गया। आप अखिल भारतीय पंजाबी खत्री कांफ्रेंस, अमृतसर के अध्यक्ष बनाये गये। आप अनेक सामाजिक संस्थाओं से जुड़े रहे।

खत्री माननीय श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन-प्रयाग (१८८३—१९६२)

टण्डन जी जाति सेवा में कभी पीछे नहीं रहे। इसका उदाहरण कानपुर में प्रथम युक्त प्रान्तीय अधिवेशन में दिया गया भाषण। आप हिन्दी के सदा हिमायती रहे। जन सेवक श्रद्धेय टण्डन जी बड़े ही सरल स्वभाव के थे। उनमें आत्माभिमान कूट-कूट कर भरा था।

आपको राजर्षि की उपाधि वर्ष १९४८ में प्रातः स्मरणीय महासन्त ऋद्धि सिद्धि प्राप्त देवरहा बाबा ने प्रदान की थी। उन्हीं की प्रेरणा से ओत-प्रोत टण्डन जी जीवन पर्यन्त अपनी राष्ट्रीयता एवं हिन्दी से जुड़े रहे। ऐसे थे निस्पृह जीव टण्डन जी जिन्होंने सादा जीवन व्यतीत करना और वह भी एक सिपाही के समान स्वीकार किया और उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री पद को अस्वीकार कर दिया।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, आज भी उनका ऋणी हैं। वे इसके अध्यक्ष सन् १९२३ में चुने गये थे। अहिन्दी भाषी दक्षिण से यहाँ हिन्दी पढ़ने आते थे। यह प्रेरणा बाबू साहब ने ही दी थी।

वे किसी से कभी सहायता नहीं लेते थे। गरीबी में साधु जीवन व्यतीत करते हुये आप हिन्दी से जुड़े रहे। राजर्षि जी को 'भारतरत्न' की उपाधि से विभूषित किया भारत सरकार ने। यह उनके असीम तपस्वी एवं निस्पृह व्यक्तित्व का परिचायक था।

आज ऐसे तपोनिष्ठ एवं हिन्दी के प्रति समर्पित व्यक्तित्व की तलाश है जो उनके अधूरे कार्य को पूरा करे।

खत्री रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०—बनारस

कौमुदी काशी नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापन में बाबू शाहब का बहुत बड़ा हाथ था। विश्व विद्यालय में हिन्दी की प्रतिष्ठा कराने का बहुत कुछ श्रेय आप ही को है। आपने हिन्दी पुस्तकें लिखकर बड़ा उपकार किया। हिन्दी साहित्य सेवियों में आपका नाम सदा अमर रहेगा। अपने सदुपयोग का सुफल एवं सुयश जितना बाबू साहब को मिला उतना सम्भवतः अन्य को नहीं मिला होगा। अक्टूबर १९३१ में अखिल भारतीय खत्री इतिहास कमेटी की बैठक जो इसी इतिहास के लिये काशी में हुई थी उसके आप ही सभापति मनोनीत किये गये थे। आप सदा-सदा खत्री जाति के साहित्य शिरोमणि रहेंगे।

खत्री बाबू महाराजकिशोरजी टण्डन—लखनऊ (१८८४-१९३८)

संघर्षमय जीवन ने आपको एक जीवट का योद्धा बना दिया। आप खत्री जाति के प्राणों में व्याप्त थे। जाति के प्रति आपका स्नेह, शीलता एवं दया तथा त्याग खत्री भाइयों में सदा-सदा स्फूर्ति प्रदान करता रहेगा। कृत्रिमता और आडम्बर से दूर निस्वार्थ सेवा भाव अपनी जाति के लिये सदा ही स्मरण किया जायेगा। आपका आत्माभिमान, धैर्य और सदाचार खत्री भाइयों के लिये सदा प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय रहेगा। उन्होंने समाज को अपना कुटुम्ब समझ लिया था। जाति सेवा में वे तन, मन, धन से समर्पित थे। स्थानीय खत्री सभा को स्थापित करने का श्रेय आपको ही है। खत्री भवन की प्रेरणा आपने ही दी और आपके ही कर कमलों से उसकी नींव रखी गई। प्रांतीय कांफ्रेंस हो या अखिल भारतीय कांफ्रेंस आपका सभी में योगदान रहा। 'खत्री हितैषी' के जन्मदाता भी आप ही थे। महिला विद्यालय तथा अनाथालय की कार्यकारिणी के कई वर्ष तक लगातार आप सदस्य रहे। आपने सभी सामाजिक कार्यों में अपना सम्पूर्ण योगदान दिया।

खत्री राजा सर गुरुबख्शसिंहजी—रावलपिण्डी

आप गुरु नानकदेव जी के वंशज हैं। आप आरम्भ से ही धर्मात्मा रहे। सार्वजनिक कार्यों में आप बड़ी रुचि लेते रहे। लाहौर में होने वाली दसवीं अखिल भारतीय खत्री कांफ्रेंस के सभापति आप ही थे।

खत्री राजा बनबिहारीजी—बर्दवान (१८५३-१९२४)

राजा जी बरेली के अखिल भारतीय खत्री सभा के विशेष अधिवेशन के प्रधान थे। आपकी अध्यक्षता में समस्त खत्री जाति की तरफ से जो आंदोलन हुआ उसका फल यह हुआ कि मनुष्य गणना में खत्री जाति का स्थान दूसरे स्थान पर लिखा गया। १८९३ में आपको राजा का, १९०३ में सी० एस० आई० और १९११ में राजा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

...nding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitiza...

बहादुर की उपाधि से विभूषित किया गया। इन्हें १९१४ में "कैसर हिंद" स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। १८७७ में आप बर्दवान के दीवान राज नियत हुये। आप बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर तथा बहुत दिनों तक मैजिस्ट्रेट रहे।

खत्री महाराजाधिराज सर विजयचन्द महताब बहादुर—बर्दवान

१९०९ की अ० भा० ख० का० के आप सभापति रहे। आपकी अध्यक्षता में खत्री नेशनल फण्ड स्थापित हुआ और भण्डार कमेटी बनाई गई। आपने सेण्ट्रल कमेटी अखिल भारतीय कांफ्रेंस को मासिक सहायता देना आरम्भ किया था। अपनी ओर से एक उपदेशक नियुक्त किया। जो खत्री नवयुवक आई० सी० एस० के लिये विलायत जाता था उसे आप मासिक छात्र वृत्ति भी देते थे। १९१८ की अ०भा०क० के आप प्रधान हुये। १९०३ में आप गद्दी पर बैठे थे और आपको महाराजाधिराज की उपाधि दी गई। १९०८ में के० सी० आई० ई० तथा १९०९ के० सी० एस० आई० की उपाधि दी गई। आप कई वर्ष तक बंगाल कौंसिल के सदस्य तथा अन्य सार्वजनिक सभाओं के प्रधान रहे। हिन्दू मुस्लिम समझौते के लिये बनी कमेटी के आप प्रधान थे प्रजा की हित कामना एवं भारतीय हितों की रक्षा का आप सदा ध्यान रखते थे।

खत्री रायबहादुर लाला प्रयागनारायण, एम०एल०ए०—मौरावाँ (१८९७–१९६६)

आप मौरावाँ के प्रसिद्ध खत्री घराने के हैं। आप भूतपूर्व आनरेरी मैजिस्ट्रेट, एडवाइजरी कमेटी कोर्ट आफ वार्डस् और लेजिस्लेटिव असेम्बली के मेम्बर रहे। १९३० में आपको रायबहादुर की उपाधि से विभूषित किया गया। आप एक हाई स्कूल, एक संस्कृत पाठशाला तथा एक आयुर्वेदीय औषधालय का संचालन करते रहे। प्रति वर्ष आप लगभग १५०० रुपये निर्धन बच्चों को छात्रवृत्ति के रूप में देते रहे। विभिन्न विश्वविद्यालयों को भी आपने पर्याप्त धन दान में दिया। उन्नाव में प्रथम प्राइमरी विद्यालय आपने ही खोला था जहाँ निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। आप अखिल भारतीय खत्री सम्मेलन (१९३४) गुरुदासपुर (पंजाब) के सभापति तथा अखिल भारतीय खत्री काँफ्रेंस लखनऊ के स्वागताध्यक्ष भी रह चुके हैं।

विधान सभा एवं विधान परिषद के सदस्य रहने के अतिरिक्त आप स्थानीय कालिवन तालुकेदार कालेज के सदस्य, हाई स्कूल से इण्टर मीजिएट शिक्षा परिषद् के सदस्य, खत्री सभा के सदस्य, अंजुमन हिन्द, अवध की कार्यकारिणी के सदस्य रहे। सामाजिक, धार्मिक एवं जन कल्याण के कार्यों में आपकी विशेष रुचि थी। आप मृदुभाषी, हंसमुख, उदार, सहृदय, कर्मठ तथा महामनीषी थे। समाज का प्रत्येक वर्ग उनसे स्नेह करता था। खत्री समाज से एक ऐसा जाज्वल्यमान नक्षत्र विलुप्त हो गया जिसका सभी को शोक है।

खत्री श्री माधोराम हरप्रसाद (कोकामल) टण्डन—लखनऊ

खत्री श्री माधोराम हरप्रसाद बड़े ही उदार व्यक्तित्व के धनी थे सामाजिक सेवा में लीन, अपने पैसे से समाज की सेवा करना उनके रक्त में था। वे भगवान शंकर के भक्त थे। अतः अपने ही धन से उन्होंने फूलवाली गली, चौक, लखनऊ में एक मंदिर की स्थापना की। इस मंदिर का नाम 'जागेश्वर महादेव' हुआ। इसकी संस्थापना सन् १९११ ईसवी को हुई।

आप समाज में कोकामल टण्डन के नाम से विख्यात थे। उस समय चौक लखनऊ का बच्चा-बच्चा कोकामल जी टण्डन से परिचित था। आपका देहावसान सन् १९४६ को हुआ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री चन्द्रकिरन जौहरी—दिल्ली (१८९४–१९५१)

यद्यपि लाला जी केवल मैट्रिक तक पढ़े थे किन्तु बड़े चतुर एवं दृढ़ संकल्प वाले पुरुष थे। वे सदा खत्री समाज से जुड़े रहे। उन्होंने अपने जीवनकाल में, खत्री कोआपरेटिव बैंक, खत्री उपकारक स्कूल, सरस्वती गर्ल्स स्कूल की स्थापना की। स्वतंत्रता संग्राम के सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में आपने अपनी विलायती कपड़ों की दुकान गांधी जी के विदेशी वस्तु वहिष्कार आन्दोलन पर बंद कर दी। गांधी जी से इनका पत्र व्यवहार चलता रहता था। वे गरीब बच्चों की पढ़ाई हेतु गुप्त दान देते रहते थे। अपने व्यवसाय को दूसरों को सिखाने में वे गौरव का अनुभव करते थे। कुरीतियों के विरुद्ध लड़ना और अपनी गलती न होने पर कभी न झुकना उनके रक्त में था।

खत्री श्रीकृष्ण पहलवान—कानपुर (१८९१–१९७२)

आपका जन्म १२ दिसम्बर १८९१ को ग्राम हड़हा उन्नाव में हुआ था।

खत्री श्रीकृष्ण जी कानपुर के निवासी थे। वे समाज में बड़े लोकप्रिय रहे। अपने उपनाम 'पहलवान' से वे बच्चे-बच्चे में जाने जाते थे। अपने सामाजिक कार्य कलापों के कारण वे राष्ट्रपति जाकिर हुसेन द्वारा पुरस्कृत भी हुये। यह पुरस्कार आपको 'नौटंकी' विधा पर सृजन कार्य हेतु प्रदान किया गया। आपका स्वर्गवास ७ अप्रैल १९७२ ई० को कानपुर में हुआ। उनकी पावन स्मृति में 'श्रीकृष्ण पहलवान स्मृति संस्थान' की स्थापना ४३/८३, चौक, कानपुर में हुई।

खत्री लाला शामलाल चाँदीवाले—दिल्ली

लाला जी बड़े ही दिलेर व्यक्तित्व के धनी थे। दिल्ली के साम्प्रदायिक दंगे में अपने मुहल्ले की स्त्रियों और बच्चों को बचाने हेतु १०–१५ युवकों को लेकर स्वयं लाठी चलाते हुये उनकी रक्षा करते रहे। वे जीवट के बड़े मजबूत थे। अपनी जाति के लिये जी जान से समर्पित थे।

खत्री लालीमल चौधरी—दिल्ली

लाला जी सामाजिक कार्यकर्ता थे। वे सदा मितव्ययता का संदेश देते थे। एक बार किसी ने एक वृद्ध की मृत्यु पर चाँदी का बजरी बनवाने का प्रबन्ध किया। लाला जी ने इस अपव्यय की ओर ध्यान दिलाया। किन्तु न मानने पर इस अनुचित कृत्य के विरुद्ध धरना दिया और अन्ततः उनकी बात सभी को मानना पड़ी। वे सदैव खत्री समाज के समक्ष अपनी सुघड़तम और जनहित की माँगों को ही रखते थे। स्वार्थ तो लेशमात्र भी उनके पास नहीं फटकता था।

खत्री जातिरत्न फकीरचन्द मेहरोत्रा—बरेली–दिल्ली (१८९५–१९८०)

आपने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की और सरकारी नौकरी में आ गये। आप खत्री सभा दिल्ली के लम्बे समय तक अध्यक्ष रहे। आपने खत्री बैंक की स्थापना में अपना सम्पूर्ण योगदान दिया। डा० युद्धवीरसिंह ट्रस्ट के माध्यम से आपने बड़ी जन सेवा की। हर खत्री भाई के दुःख दर्द में शामिल होना आपकी दिनचर्या सी बन गया था। विधवाओं की सहायता एवं गरीब बच्चों को छात्रवृत्ति दिलाना आपने अपना कर्त्तव्य माना था।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

...nding: Tattva Heritage and IKS-MCL Digiti...

खत्री बाबू बालकृष्ण प्रसाद जी—पटना (खत्री इतिहास लेखक)

बाबू साहब पेशे से तो शिक्षाविद थे किन्तु खत्री समाज से सदा जुड़े रहे और यही कारण है कि उससे प्रेरणा लेकर आपने सन् १९२७ में खत्रिय इतिहास का बड़ा पोथा लिखकर तैयार किया। आपने छपरा में सनातन धर्म की १० वर्ष तक सेवा की। आपके कार्यों से प्रसन्न होकर भारत धर्म महामण्डल ने आपको धर्म मानपत्र तथा 'धर्म-विनोद' की उपाधि प्रदान की।

आप १९२१ में, फरुखाबाद में जो खत्रिय इतिहास लिखने हेतु कमेटी बनी थी, बिहार प्रांत से चुने गये थे।

काशी खत्री सभा ने आहको मानपत्र भी दिया तथा पटना खत्री सभा ने जाति-सेवा के लिये स्वर्ण-पदक से सम्मानित किया। 'खत्री जाति का इतिहास' एक अमूल्य निधि है। आपका निधन ९ अक्तूबर १९४५ को हुआ।

खत्री बाबू छैलबिहारी कपूर एडवोकेट—बरेली

आप इतने मेधावी छात्र थे कि आपने बरेली कालेज से इण्टरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। १८९३ से १९०२ तक बरेली कालेज से एक भी विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण नहीं हुआ। इस प्रकार दस साल का रिकार्ड तोड़ने का श्रेय आपको ही मिला। दो बार आप प्रांतीय कौंसिल के सदस्य चुने गये। आप शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में बड़ी रुचि लेते थे। अतः आप शिक्षा के अनेक बोर्डों के मेम्बर रहे। अनेक विषयों में एम० ए० क्लासों को बरेली कालेज में चलवाने का श्रेय आपको ही है। बरेली कारपोरेशन बैंक लिमिटेड के जन्मदाता और चेयरमैन आप ही थे।

खत्री कांफ्रेंस में आपने बड़े महत्वपूर्ण प्रस्ताव रक्खे। राजनीति में आपके विचार बड़े उदार रहे हैं किन्तु आप हाँ में हाँ मिलाने वालों में से नहीं थे। खत्री जाति की उन्नति हेतु समय-समय पर बड़े बहुमूल्य सुझाव देते रहते थे।

खत्री श्री १०८ स्वामी पतितपावनजी महाराज प्रसिद्ध नाम सरकार स्वामी (१८५३-१९१३)

पावन आत्मा ने एक खत्री धवन परिवार में अवतरण किया था। आपका बचपन का नाम कन्हैयालाल था। इसका रहस्य था कि आपके जन्म का समय और नक्षत्र वही था जो महाराज श्रीकृष्ण भगवान के जन्म का था। अतः बाल्यकाल से ही आप में भगवद् भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। जैसे ही आपके माता पिता और पत्नी का स्वर्गवास हुआ वैसे ही मानो आप लौकिक बंधन से मुक्त हो गये। आपने घर बार छोड़ दिया और साधु संतों के मध्य रहते हुये भगवान के चरणों में लीन रहे। जीवन के अंतिम वर्षों में आप लखनऊ लौट आये और अधिकांश समय उपदेश आदि में लगाते रहे। उन्हें देखने से और उनके उपदेश सुनने से ऐसा प्रतीत होता था मानो वैराग्य, योग और भक्ति सम्मिलित होकर उनमें विराजमान हो गई हो। वे बहुभाषी थे। अँग्रेजी फारसी, संस्कृत, अरबी, उर्दू, हिन्दी, बंगला, गुरुमुखी प्रभृति भाषाओं पर उन्हें अधिकार था। वे इस्लाम एवं ईसाई धर्मों पर पूर्ण आस्था रखते थे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

वे अंतर्यामी थे। जो उनसे जिस विषय पर वार्ता करना चाहता था वे उसके बिना कहे उसी विषय पर वार्ता आरम्भ कर देते थे। उनमें विलक्षण शक्ति थी। एक बार किसी व्यक्ति ने अपने भाई की हिचकी बन्द न होने की व्यथा उनसे कही। उन्होंने तुरन्त एक नवयुवक से कहा कि जाओ और हिचकी बन्द कर आओ। जब दोनों घर पहुंचे उससे पहले ही हिचकी बन्द हो चुकी थी।

स्वर्गीया खत्री श्रीमती मेमोबाई—दिल्ली

आप बाल विधवा थीं। वैधत्य जीवन को सकाम प्रयोग में लाने हेतु आप स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ीं। आप बुआ जी के नाम से विख्यात थीं। खत्री समाज की वीरांगना बुआ जी हर समाज सेवा को सदैव तत्पर रहती थीं। इनके निधन पर श्रद्धांजलि अर्पित करने स्व० श्रीमती इन्दिरा गांधी का लाल किले का आजादी का समारोह छोड़कर बीच में ही छोटी २ सी गलियों से होकर निधन स्थल पर पहुँचना, बुआ जी के व्यक्तित्व और कृतित्व की विशालता और महत्व दर्शाता है। उनके हृदय में खत्री समाज के गौरव के लिये सदा उच्च और उत्तम भावनायें निहित थीं।

स्वर्गीय खत्री लाला फकीरचन्द मल्होत्रा—दिल्ली

समाज के निस्वार्थ सेवक जो सदा प्रत्येक प्रकार की सेवा के लिये तत्पर रहते थे। खत्री समाज के पोषक, उसकी बागडोर जीवन पर्यन्त थामे रहे। जाति सेवक जिनमें सेवा भाव कूट-कूट कर भरा हुआ था। दूसरे के दुःख से दुखी ऐसे प्राणी सदा-सदा याद रहेंगे।

खत्री श्यामकिशोर खन्ना—दिल्ली (१८९९–१९७६)

श्रमजीवी खन्ना जी जीवन में अत्यन्त संघर्षरत रहे। अनेक खत्री युवकों को रोजगार दिलाये। खत्री समुदाय की सेवा में लगे रहे। खत्री कोआपरेटिव बैंक की स्थापना में योगदान दिया तथा लोगों को प्रेरित किया कि वे अपना धन इसमें जमा करें। आप १९६५ से १९७६ तक बैंक के अध्यक्ष रहे। आप मृत्यु के समय तक अखिल भारतीय खत्री महासभा की कार्य समिति के सदस्य रहे।

खत्री स्व० लाला पुत्तूलाल जलोटा—फर्रुखाबाद

लाला जी फर्रुखाबाद नगर के एक संभ्रांत खत्री परिवार के थे। आप गृहस्थी में रहकर भी साधु थे। एक समय खाना खाते थ और दूसरे समय गंगा स्नान, साधु संतों से समागम, जनता के दुख दर्द में शामिल होकर उनके कष्टों को दूर करने की चेष्टा में सदारत रहे। जाति आपका मूलमंत्र था। आप कहते थे कि यदि मनुष्य अपनी जाति का ही उत्थान नहीं करेगा तो देश का उत्थान कैसे होगा। आप मुहल्ले के चौधरी कहे जाते थे। मुहल्ले के लोगों के आपस के झगड़े आप आनन-फानन सुलझा देते थे। होली के अवसर पर जाति भाइयों के घर और दूकानों पर जाकर स्वयं मिलते थे और अन्य जाति वालों से गले मिलते थे। वे एकता की प्रतिमूर्ति थे। यद्यपि भगवाम राम उनके इष्टदेव रहे पर वह हर धर्म का आदर करते थे।

जाति के नवयुवकों को सदा प्रोत्साहित करते रहे कि एकता और अखण्डता देश को ऊँचा उठायेगी अतः तुम लोग पहले एक और अखण्ड बनो। उनके पुत्र ने ठीक ही कहा है :—

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digit

"निर्विकार, निश्छल हृदय, अति विनित, निष्पाप ।
रामभक्त, निष्कपट मन, गंगा सेवक आप ।।
जन जन की सेवा करत रहे सदा निष्काम ।
ऐसे पितुहि सुमंजु को शत शत बार प्रणाम ।।"

लाला जी को दूसरों की सहायता करने में अत्यन्त आत्मिक सुख मिलता था। जाति भेद को भुलाकर वे हर वर्ग के मनुष्य से प्रेमपूर्वक मिलते जैसे भगवान ने केवट और निषादराज को अपने गले लगाया। बहुत से जरूरतमंद लोगों की वह चुपचाप मदद करते थे। इसके विषय में परिवार वालों तक को पता नहीं रहता था। यह तो केवल उन्हीं लोगों के मुंह से पता चलता था जो इस मदद से लाभान्वित होते थे। हम ऐसे सच्चे जाति सेवक के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। लाला जी न्यायप्रियता, सिद्धांत, सत्यनिष्ठा, त्याग, कर्मठता, निर्भीकता एवं उदात्त राष्ट्रप्रेम की प्रतिमूर्ति एवं ज्वलंत उदाहरण थे। खत्री समाज उनके प्रति नतमस्तक है।

खत्री स्व० वंशीलाल सिंह एडवोकेट, लखनऊ

आप जाति-सेवा के नाते लखनऊ के खत्रियों के सिरमौर थे तथा वे इनके नेतृत्व में अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करते थे। आप पक्के कांग्रेसी थे तथा १८९९ की लखनऊ काँग्रेस के स्वगताध्यक्ष थे। आपने खत्रियों की विभिन्न अल्लों की एक पुस्तक विस्तारपूर्वक तैयार की थी। १९०१ की मनुष्य गणना सम्बंधी आंदोलन में आपने सक्रिय भाग लिया था।

खत्री स्व० लाला भोलानाथ, लखनऊ

अपने अनेक खत्री भाइयों को उनके व्यापार में वांछित सहायता दी थी। आप जाति-प्रेमी थे। आपने गोमती तट पर एक घाट तथा चौक में धर्मशाला का निर्माण कराया। आप जाति भाइयों की विभिन्न प्रकार से सेवा करते थे।

खत्री रायबहादुर लाला रामचरनदास, प्रयाग

आप प्रयाग के अत्यंत प्रतिष्ठित रईस थे। ३१ मार्च १९०१ को प्रयाग में हुई मनुष्य गणना हेतु सभा की सफलता का सारा श्रेय आपको ही है। प्रयाग में होने वाले सातवें अखिल भारतीय सम्मेलन को स्वागत-कारिणी समिति के स्वागताध्यक्ष भी आप ही थे। आप ही के कठिन उद्योग से यह सम्मेलन सफल हुआ था। इसके अतिरिक्त आप जातीय कार्यों के लिये सदा प्रयत्नशील रहे। आपने काशी हिन्दू विश्व विद्यालय को एक लाख रुपया दान में दिया था। आपने प्रयाग के सी० ए० वी० नाम स्कूल का भवन, यमुना नदी के किनारे एक सुन्दर घाट बनवाया तथा सारस्वत-खत्री विधवाओं के रहने हेतु अपने भवन का एक भाग दे दिया। ऐसे जाति हितैषी महापुरुष हमारा गौरव हैं।

खत्री राजा रघुवरदयाल सेठ, कोटरा (सीतापुर)

जाति सेवी राजा जी ने सीतापुर में राजा रघुवरदयाल हाईस्कूल की स्थापना की। आप अच्छे प्रतिष्ठालब्ध अवध के ताल्लुकेदार घराने से संबंधित थे। जाति सेवा हेतु सदा तत्पर रहते थे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री श्री रामप्रसाद जी टण्डन, प्रयाग

श्री टण्डन नगर के खत्री समाज के एक वयोवृद्ध कीर्ति स्तम्भ हैं। त्याग, परोपकार, सेवा, कर्तव्य परायणता, निर्लोभ, परिश्रम, स्फूर्ति आदि गुण आप में विद्यमान हैं। आप समाज के प्रत्येक वर्ग द्वारा सम्मान पाते हैं। आपके प्रयास से श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर में एक सत्संग भवन का निर्माण हुआ जहाँ आप धर्म चर्चा का विकास करते रहते हैं। आपने गौरी पाठशाला, खत्री पाठशाला को हजारों रुपये दान में दिये। निर्धन बच्चों के लिये छात्रवृत्ति की व्यवस्था की।

आपके मंत्रित्वकाल में महिला विद्या मंदिर में शिशु विहार व महिला उद्योग सदन की स्थापना हुई। आपने खत्री सभा की पूंजी को भी अधिकाधिक बढ़ाया और गरीब बच्चों को आर्थिक सहायता दिलवाई।

श्री टण्डन जी पूर्ण जागरूक और चैतन्य समाज सेवी व जाति हितैषी हैं। आप बच्चों के लिये विकास कार्य, विधवाओं की सहायता और उद्योगों के द्वारा महिलाओं के धन जिनमें गहरी रुचि लेते हैं।

खत्री रायबहादुर लाला बिहारीलाल जी, प्रयाग

लाला जी बड़े ही उदार प्रकृति के पुरुष थे। आपने अपने चाचा रायबहादुर श्री रामचरणदास के साथ मिलकर प्रयाग का मशहूर घंटाघर बनवाया था। आप समाज में इतने लोकप्रिय थे कि आप जीवन भर आनरेरी मैजिस्ट्रेट रहे तथा स्थानीय म्युनिसिपल बोर्ड के मेम्बर तथा बाद म डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन चुने गये। आप अनेकानेक संस्थाओं से जुड़े रहे और सूझबूझ कार्य कुशलता, उदारता एवं व्यवहार कुशलता के कारण जनता जनार्दन के दिलों में बस गये। प्रयाग के खत्री समाज में बच्चा ही क्या सभी बड़े बूढ़े दिल से आपका सम्मान करते थे। हिन्दू समाज के आप कर्णधार थे। आप प्रयाग खत्री सभा के सभापति भी रहे।

खत्री श्रीयुत् शालिचरनजी वर्मन, बिहार शरीफ

श्री बर्मन जी के प्रयास से उनके जन्म स्थल मधड़ा एवं आस पास के ग्रामों में बसने वाले कोई पचास घर खत्रियों के एक सूत्र में बँधे। सबने मिलकर खत्री उपकारिणी सभा का संस्थापन किया और अपनी जाति की उन्नति हेतु विभिन्न कार्य किये जाने लगे। आपने, गरीब, अंधे, अपाहिजों की भक्तिपूर्वक सेवा की। आपको बच्चों से विशेष प्रेम था। स्थानीय स्कूलों में, जहाँ भी वह रहे, विद्यार्थियों को छात्रवृत्तिवाँ दी। वे अपने शील स्वभाव के कारण छूत-अछूत, ऊँच-नीच, हिन्दू-मुस्लिम सभी के प्रेमी हो गये। आपने "प्रेम-पुस्तकालय" नाम से एक पुस्तकालय स्थापित किया। आपका कहना अक्षरशः सत्य है कि जब तक आपस में द्वेष-भाव हटाकर, क्या ऊँच क्या नीच, सभी के साथ गले मिलने की योग्यता प्राप्त न हो तब तक यह घोर अंधकार में पड़ी जाति उन्नत नहीं हो सकती।

खत्री स्व० श्री डालूरामजी बालेचा, बीकानेर

श्री बालेचा जी जयपुर में रहकर खत्री जाति का इतिहास बड़ी छानबीन के साथ लिखा। यह बीकानेरी खत्री भाइयो का इतिहास था। आपने अपनी नौकरी के साथ साथ जाति सेवा भी की।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

खत्री श्री श्यामलाल जी टण्डन, मिर्जापुर

श्री टण्डन जी अपना व्यवसाय करते हुए भी सेवा भाव से जन सेवा करते रहे। मिर्जापुर खत्री समाज से आप सदा जुड़े रहे। आप सन् १९३४ में गवर्नमेण्ट आफिसिएल रिसविर नियुक्त हुये। आपका सरल स्वभाव और समाज हितकारी कार्यों में सहयोग सर्वविदित है। मिर्जापुर खत्री सभा स्थापित करने में विशेष रूप से आपका हाथ रहा है। आप सर्वसम्मति से इस सभा के मंत्री चुने गये। सन् १९४० में आप अखिल भारतीय खत्री सभा के सदस्य चुने गये। प्रांतीय हिन्दू संगठन कमेटी के भी आप सदस्य रहे।

खत्री श्री गिरधारीलाल जी अम्माणी (बालेचा) बीकानेर

आपने खत्री समाज की ऐतिहासिक खोज करके बड़ी सेवायें की हैं। आपने बीकानेरी भाइयों की अल्लों का विस्तृत रूप से वर्णन किया है। आप खत्री मण्डल की सदा सेवा करते रहे।

खत्री रायबहादुर दीवान अमरनाथ, काश्मीर

आप एमनाबाद नंदे खत्रिय हैं। आप काश्मीर में जम्मू के गवर्नर रहे तथा सी० आई० ई० की उपाधि से विभूषित किये गये।

जातीय कार्यों में आप सदा रुचि लेते रहे। रावलपिण्डी, प्रयाग और लखनऊ में होने वाली पाँचवीं, साछवीं और ग्यारहवीं अखिल भारतीय कांफ्रेन्सों के आप सभापति भी रह चुके हैं। आपने रावलपिण्डी की कांफ्रेन्स में खत्री जाति का इतिहास लिखने वालों को रु० ५००) देने का वचन दिया था।

खत्री स्व० लक्ष्मी नारायन कपूर, कन्नौज

कन्नौज साहित्य तथा संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। देश के अन्यान्य भागों में यहाँ के विद्वान आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। असम राज्य के अहोम राजाओं ने कन्नौज से विद्वानों को बुलाकर अपने यहाँ रक्खा था जो राजकाज चलाने में उनको सहयोग देते थे।

कन्नौज के मोहल्ला बुधवारी निवासी स्व० लक्ष्मी नारायन जी कपूर, नगर में 'महाशय जी' के नाम से प्रसिद्ध थे। आर्य समाज के प्रति समर्पित व्यक्ति थे। आपने ही सर्वप्रथम एक पुस्तकालय भवन का निर्माण कराया था। इसमे आर्यसमाज पुस्तकालय की स्थापना सन् १८९७ में की तथा जिसमें बहुमूल्य प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों एवं दुर्लभ ग्रन्थों का विशाल संग्रह किया गया। आप एक अच्छे समाजसेवी थे। खत्री समाज आपकी सेवाओं को सदा याद करेगा।

खत्री रायबहादुर मुंशी गंगा प्रसाद वर्मा, लखनऊ (१८६३—१९६४)

(पिछले पत्रों मे प्रकाशित का शेष भाग)

मुंशी जी के पूर्वज टण्डन खत्री थे। वे पिहानी (हरदोई) में जाकर बस गये थे। उनके वंशज आज पिहानी के टण्डन कहलाते हैं। वे आर्यसमाजी थे और राजनीति के विषय में रुचि लेते थे। वे कांग्रेस के पक्ष में थे और उसके अधिवेशनों में भाग लेते थे। लखनऊ शहर की म्युनिसिपैलिटी के कमिश्नर रहे। लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर रहे। जब आप म्युनिसिपैलिटी के वाइस चेयरमैन थे तो आपने लखनऊ में अमीनाबाद पार्क तथा

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

लाटूश रोड की रूप रेखा बनाई थी। आपने अपने भाई के नाम से ५२ हजार रुपया लगाकर एक धर्मशाला बनवाई जो कि छेदीलाल धर्मशाले के नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने ही कालीचरण हाई स्कूल भी बनवाया था।

मुंशी जी एक योगी थे। मुरादाबाद के मुंशी देवी प्रसाद की कृपा से योग द्वारा आप दिव्य सूर्य के दर्शन तक कर लेते थे।

खत्री लाला मुंशीराम—पंजाब

लाला मुंशीराम का जन्म तलवन ग्राम (जलंधर) में हुआ था। आपने १९१४ में सन्यास ले लिया। गुरुकुल कांगड़ी इन्हीं की कीर्ति है। सन्यास लेने के पश्चात् आपका नाम स्वामी श्रद्धानन्द पड़ा। जब मुसलमानों ने इस्लामीकरण की नीति अपनाई तो खत्री जाति के देदीप्यमान सूर्य स्वामी जी ने इसका मुंहतोड़ जवाब हिन्दुओं में शुद्धिकरण का मंत्र फूंककर किया। उन्होंने देश भर में पांच लाख मुसलमानों को शुद्ध करके हिन्दू बनाया। इसके प्रतिशोध में कायरता व धोखे से स्वामी जी की हत्या कर दी। स्वामी जी का हिन्दू धर्मार्थ बलिदान इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा।

खत्री स्व० श्री मुन्नीलाल जी टण्डन—(१८६८—१९४५)

श्री टण्डन जी का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक संस्थाओं एवं व्यक्तियों को सहायता दी। सुशीला देवी गर्ल्स इण्टर कालेज, कन्नौज आप ही की देन है। आप सादगी, सरलता एवं बुद्धिमत्ता की प्रतिमूर्ति थे। बड़े से बड़ा दान या सहायता देकर भी सम्बन्धित व्यक्ति के सामने उसका उल्लेख नहीं करते थे। आपने हजारों रुपये का गुप्तदान भी किया।

नारी शिक्षा के इतिहास में आपका नाम सदैव गौरव से लिया जायेगा। वर्ष १९१५ के आसपास चण्डिका जी के स्थान पर आपने विशाल भवन निर्माण किया था।

आपने अपना समय धर्म कार्यों में लगाया। आपने आसेतु हिमाचल यात्रा की और हिन्दुओं के धर्म स्थानों के दर्शन किये। आपने कलकत्ता में एक धर्मशाला बनवाई। आपने बहुत बड़ी धनराशि सरस्वती खत्री बालिका विद्यालय, कलकत्ता, के भवन के निर्माण हेतु दान की थी।

अपने अन्तिम दिनों में आप गंगा के तट पर मिर्जापुर में रहने लगे। अनाथों, विधवाओं एवं जरूरतमंदों तथा स्त्री शिक्षा हेतु आपने एक ट्रस्ट बनाया जिसका नाम लाला मुन्नीलाल खत्री ट्रस्ट रक्खा गया।

आप जैसे समाज सेवी एवं दानवीर के समक्ष खत्री समाज गौरव से नमन करता है।

खत्री श्री हृदयनारायण मेहरोत्रा—प्रयाग

श्री मेहरोत्रा जी गिद्दा बाबू के नाम से अधिक जाने जाते हैं। अपनी बहुमुखी सेवाओं और सज्जनता के लिये आप सभी के आदरणीय हैं। आप अनेक कम्पनियों में महत्वपूर्ण पदों पर कुशलता से कार्य करते हुये सन् १९५० में सेवा निवृत्त हुये। अपनी नौकरी के साथ-साथ आप सदा सामाजिक कार्यों में भी रुचि लेते रहे जो सेवा निवृत्ति के पश्चात् और निखर कर सामने आई है।

[स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

खत्री हितैषी १९८६—१९८७]

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

चूंकि पहले आप अध्यापन भी कर चुके हैं अतः आपकी, दूरदर्शिता को देखकर आपको द्वारका प्रसाद गर्ल्स इण्टर कालेज के कार्यवाहक प्रधान नियुक्त किये गये। आप सारस्वत खत्री पाठशाला के भी अनेक वर्षों तक मंत्री रहे। अखिल भारतीय सेवा समिति, डिवाइन लाइफ सोसाइटी, इलाहाबाद शाखा आदि से भी आप सम्बद्ध रहे।

खत्री सभा प्रयाग श्री मेहरोत्रा की सेवाओं के लिये अत्यन्त ऋणी हैं। आप अनेक वर्षों तक इसके मंत्री रहे। आपने स्व० रामकृष्ण सूरी के साथ मिलकर खत्री सभा, प्रयाग का संविधान तैयार किया था। आपने खत्री सभा में रहते हुये अनेक कुरीतियों को दूर कराया।

खत्री स्व० रामनारायन कपूर—कन्नौज

कन्नौज का बच्चा-बच्चा स्व० लाला रामनारायन कपूर से भलीभाँति परिचित था। वे सभी के थे। एक गरीब परिवार में जन्मे परिश्रम को ही भगवान मानने वाले दृढ़ प्रतिज्ञा तथा सहयोगी प्रवृत्ति के धनी एक अनोखे महापुरुष थे। आर्य समाज हो या सनातन धर्म, हिन्दू हो या मुसलमान, कांग्रेस हो या उसका विरोधी लाला जी ने कभी सहयोग देने में कृपणता नहीं दिखाई।

आपने अपने बुद्धिबल एवं परिश्रम से अच्छा धन कमाया और परिवार को बाँधा। ऐसे दानवीर कि अनेक परिवार आज उसी सहायता से वटवृक्ष जैसे सुदृढ़ हो गये हैं और उनकी याद करते हैं। उन्होंने अपने दान का ढिंढोरा कभी नहीं पीटा। केवल पाने वालों की कृतज्ञता ही इसका भान कराती थी। समाज के हर वर्ग के लोगों को अपनी आम की बगिया में बुलाकर पिकनिक मनाते थे। वे ऐसे थे कि जीवन को भी जीवन्तता प्रदान करते नजर आते थे।

अपने अनुज के निधन से उन पर मानो वज्रपात ही हो गया। वे जैसे टूट से गये। पर अपने को सम्हाला और साध्वी देवी तुल्य बहू से प्रेरणा लेकर एक विद्यालय बनवाया जिसका नाम सुशीलादेवी इण्टर कालेज रक्खा गया। राष्ट्रपिता महात्मागांधी के कन्नौज शुभागमन पर सन् १९२९ में उनका आशीर्वाद प्राप्त कर यह कार्य सम्पन्न कराया। यह कालेज एन० सी० सी० का प्रमुख महिला प्रशिक्षण केन्द्र भी है।

अपनी पत्नी के नाम से आपने एक अतिथिशाला "रामगंगा" का भी निर्माण कराया। यह बारातशाला के नाम से भी विख्यात है। इसे "गंगादेवी धर्मार्थ भवन" भी कहते हैं।

ऐसे विनम्र, दानी, परोपकारी, समाजसेवी, परिश्रमी एवं अध्यवसायी को खत्री समाज प्रणाम करता है।

खत्री स्व० बेनीमाधव टण्डन—कलकत्ता

दान तो अनेक करते हैं पर वह दान जिससे सैकड़ों, हजारों नर-नारियों, पशु पक्षियों को सम्बल मिले, महादान की श्रेणी में आता है। ऐसा ही दान है जन साधारण हेतु पीने का जल का प्रबन्ध करना। लोग अस्थाई रूप में तो प्याऊ बिठा देते हैं पर स्थाई रूप से समस्या का समाधान करना और वह भी गुप्तदान के रूप में अपने में महाकार्य है। ऐसे ही महादानी महापुरुषों में थे हमारे पूज्य स्व० लाला बेनीमाधव टण्डन जो रहते तो थे कलकत्ता में पर उन्होंने एक बड़ा सा मीठे पानी का कुआँ अपने पूर्वजों के नाम से मोहल्ला फर्श, कन्नौज में बनवाया जो आज हजारों-हजारों लोगों की प्यास बुझा रहा है। हम इनके प्रति नतमस्तक हैं।

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री स्व० ब्रजबिहारी लाल टण्डन—अमरौधा (कानपुर)

बाबू ब्रजबिहारी लाल टण्डन जी अमरौधा के उन सम्माननीय महापुरुषों में थे जिन्हें वहाँ का बच्चा-बच्चा जानता तथा पूजता था।

टण्डन जी में अपनी एक विलक्षण विशेषता थी कि वह, गुरु पूर्णिमा के दिन अपनी माँ को एक चौकी पर बिठाकर उनकी पूजा करते थे। उनका विश्वास था कि संसार में माँ से बढ़कर दूसरा गुरु नहीं। उनके ये विचार एवं चिन्तनधारा सर्वथा विलक्षण एवं मौलिक थी। वे पुरानी रूढ़ियों से बँधे लकीर के फकीर नहीं थे।

वे सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों क्षेत्रों में लोकप्रिय थे। कानपुर के नेताओं बड़े लोगों एवं सरकारी अफसरों के बीच उनका उठना बैठना तथा अच्छी जान पहचान थी।

किसी गरीब या जरूरत मन्द की चुपचाप सहायता करना उनकी आदत थी। उन्होंने फारसी व हिन्दी धर्म ग्रन्थों का गूढ़ अध्ययन किया था। उनके नाम पर उनके पुत्रों ने एक मान्यता प्राप्त माध्यमिक विद्यालय की स्थापना का। बाबू साहब में स्नेह, मृदुभाषिता, साधु स्वभाव एवं सेवा भावी विनयशील व्यक्तित्व विद्यमान था।

एक साधु ने कहा था कि ब्रजबिहारी टण्डन नामधारी मनुष्य में ईश्वरत्व का अवतरण हुआ है। जगदाचार्य स्व० स्वामी नारदानन्द सरस्वती ने कहा था :

"मैं तो संसार से पलायन कर गया और सन्यास लेकर साधना करने लगा पर टण्डन बाबा ऐसे गृहस्थ सन्त आपके यहाँ मौजूद हैं जो मानवता की महान सेवा में लगे हैं। आप सभी इन्हीं का अनुसरण करें।"

टण्डन जी एक निस्वार्थ जनसेवक तथा सबके प्रिय और आदरणीय, निस्पृह एवं उदारमना सज्जन पुरुष थे। इन्होंने देशसेवक बन आजादी की लड़ाई अन्य साथियों के साथ मिलकर लड़ी।

उन्होंने स्कूल, मंदिर व अनेक संस्थाओ को सहायता दी। उनका जीवन अनुकरणीय था। वे गाँव की सहज सादगी से सिक्त एक गौरवशाली व्यक्तित्व के धनी थे। वे ग्रामोदय के सच्चे हिमायती, अत्यन्त लोकप्रिय एवं ग्रामवासियों के मसीहा थे।

आप जिला बोर्ड तथा कई अन्य समितियों के सदस्य थे। वे स्पेशल जूरी भी रह चुके थे। वे कर्मवीर, दानवीर, निष्ठाधाम एवं नैतिक मूल्यों का आदर करने वाले एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे।

वे जीवन भर अपनी स्वयं की मधुरता अपने रसमय पेड़ों के द्वारा सबको देते रहे। उनके पेड़ों को खाने वाले उन्हें सदा याद रखेंगे। वे निष्काम कर्मयोगी, परोपकारी, दानवीर एवं अतिथि सत्कार के प्रेमी थे।

आप गाँव की रामलीला के प्रेरणा स्रोत थे। आप अमरौधा के कीर्ति स्तम्भ थे।

आपने अंगछपुर मे एक किसान विद्यालय की स्थापना की।

खत्री श्रीमती सुशीलादेवी कपूर—कन्नौज

भारतीय समाज में नारी का एक विशेष स्थान रहा है। वह वीरप्रसवा, वीर माँ, बहिन पत्नी एवं पुत्री रही है। विद्या का क्षेत्र रहा हो या युद्ध का, समाज सेवा का क्षेत्र हो या धर्म, नारी सदा पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चली है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

ऐसी ही पुण्यात्माओं में हैं हमारा पूज्या "चाची जी" श्रीमती सुशीलादेवी कपूर आपकी। उत्कट-प्रेरणा से राष्ट्रीय आन्दोलन काल में कन्नौज में एक "महिला सुधार भवन" की स्थापना हुई सन् १९२९ में। इसी वर्ष पूज्य महात्मा गांधी जी ने उनकी मंगल कामनाओं को अपना आशीर्वाद दिया। इसके फलस्वरूप "चाचा जी" के द्वारा सन् १९३० में सुशीलादेवी गर्ल्स स्कूल का शुभारम्भ हुआ। आज यह इण्टर कालेज सर्व मंगल सर्व अर्थ साधक होकर नारियों की जिस ज्ञान ज्योति का प्रकाश भर रहा है उसके पीछे इन त्यागमूर्ति महिला की सघन तपस्या ही है। समय-समय पर राष्ट्र की महान विभूतियां इस विद्यालय को अपनी उपस्थिति से गौरवान्वित करती रही हैं। इनमें विशेष रूप से पूज्य महात्मा गाँधी तथा श्रीमती इन्दिरा गाँधी हैं।

हम सभी "चाची जी" के जीवन की श्री वृद्धि की कामना करते हैं।

खत्री स्व० गुरु प्रसाद तांगड़ी—लखनऊ (१९०९—१९१४)

आप लखनऊ के चौक मुहल्ले की शान थे। आप थानेश्वर महादेव, बड़ी काली जी व संदोहन देवी के ट्रस्टी रहे। छोटी काली जी मंदिर तो आपका जीवित स्मारक है। आप धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में तन, मन, धन से रुचि लेते थे। चालीस साल तक आप चौक रामलीला समिति के सर्वेसर्वा रहे। १९२३ में आपने खद्दी भंडार चौक स्थापित किया और आजीवन उसके कर्ताधर्ता रहे।

खत्री स्व० लाला खुन्नीलाल टण्डन—कन्नौज

मोहल्ला बुधवारी निवासी, स्व० लाला खुन्नीलाल जी टण्डन धर्म-कर्म को समर्पित व्यवसायी थे। आप प्रायः दरिद्रनारायण भोज (भण्डारा) का आयोजन करते थे। आपने सुशीला देवी गर्ल्स इण्टर कालेज, कन्नौज के मुख्य विद्यालय भवन के निर्माण हेतु भूमि दान में दी। मोहल्ला चौहट्टा तथा ग्वाल मैदान में आपने दो सार्वजनिक कुओं का निर्माण कराया। आप सूखा रोग की औषधि, बच्चों के लिये निःशुल्क वितरित करते थे। उनके द्वारा स्थापित फर्म देवी प्रसाद सुन्दरलाल परफ्युमर्स, कन्नौज के द्वारा आज भी उस दवा का निःशुल्क वितरण किया जाता है। इससे सैकड़ों बच्चे प्रतिवर्ष लाभान्वित होते हैं।

खत्री समाज सदा आपकी सेवाओं को स्मरण करता रहेगा।

खत्री-जगत गोपाल मेंहरा-स्वदेशी, दिल्ली (जन्म मुरादाबाद—१९०० निधन १९७१)

आप सत्रह वर्ष की आयु से ही काँग्रेस के कर्मठ कार्यकर्ता बने। आपके राजनैतिक गुरु श्री शंकरलाल थे। १९२१, १९३० व १९३३ में जेल में आपने बड़ी अमानुषिक यातनायें सहीं। वे कभी अपने ध्येय से नहीं डिगे। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् आप सक्रिय रूप से खत्री समाज से जुड़ गये। आपने दिल्ली में बिखरी खत्री जाति को एक सूत्र में पिरोने हेतु कठिन परिश्रम किया। अखिल भारतीय खत्री महासभा के अधिवेशन हेतु आपने राजस्थान आन्ध्र पश्चिमी उत्तर प्रदेश का दौरा किया और प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया तथा इसे सफल बनाया।

खत्री स्व० बनारसीदास मेहरोत्रा—लखनऊ (१९०९—१९८२)

स्व० बनारसीदास मेहरोत्रा को यदि "रामा बाबू" के नाम से सम्बोधित किया जाय तो कुछ अटपटा न होगा क्योंकि "रामा" ही उनके जीवनाधार बन गये थे तथा इस नाम का उन्होंने जमकर प्रचार किया।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

राजकीय सेवारत श्री मेहरोत्रा ने पिता की आज्ञा मानकर नौकरी छोड़ दी और व्यवसाय में लग गये। इसमें कई उतार चढ़ाव देखे पर अन्ततः लखनऊ में "रामा एण्ड कम्पनी", "रामा प्रेस", "रामा प्रकाशन", "रामा आटो केयर" आदि प्रभृति संस्थानों का बीजारोपण किया।

वे वर्ष १९५१ से सतत् २७ वर्ष तक जाति सेवा हेतु "खत्री हितैषी" पत्रिका के अवैतनिक प्रबंधक रहे तथा अपने प्रेस में ही स्वयं समस्त मासिक व्यय वहन करते हुये पत्रिका का मुद्रण तथा प्रकाशन करते रहे।

वे सदा लोगों से कहते रहते थे कि मनुष्य को चार चीजें कभी शेष नहीं छोड़नी चाहिये—

(१) ऋण (२) शुभ (३) अग्नि (४) रोग

ऐसे विद्वान, जाति सेवक, भगवान के भक्त एवं सूझ-बूझ वाले कर्मठ व्यक्तित्व को नमन।

खत्री श्री राजाराम मेहरा—आगरा (जन्म १९-११-१९०० स्वर्गवास २४-६-१९८७)

खत्री समाज के गौरव श्री मेहरा जी आगरा में जन्मे। आप खत्री पाठशाला आगरा में हेडमास्टर रहे। बाद में वकालत करने लगे किन्तु शीघ्र ही आप पी०सी०एस० (जुडीशियल) में चुन लिये गये और प्रान्त के विभिन्न स्थानों पर अनेक पदों पर कार्य करते हुये जिला सेशन जज बने। इस पद पर भी कई वर्षों तक कार्य किया।

सेवानिवृत्ति के पश्चात् आपको पुनः जज (अपील) सेल्स टैक्स बनाया गया।

आप स्वभाव से नम्र एवं मिलनसार थे। ऊँचे पदों पर रहने के बाद भी नम्रता आप में वैसी ही बनी रही।

खत्री समाज को ऐसी विभूति पर गर्व है।

खत्री लाला रामस्वरूप खन्ना—दिल्ली

खन्ना जी व्यवसायी होते हुये भी जनसेवा में लगे रहे। उन्हें यह शौक था कि गरीबों को छोटे छोटे व्यवसाय कराये जायें और यह कार्य वे जीवनपर्यन्त करते रहे। जन साधारण एवं पूरे समाज के लिये बड़े-बड़े कार्य किये। इनमें मेहरौली का टी०बी० अस्पताल व बनारस विश्वविद्यालय की प्रगति हेतु बड़ी धनराशि देना सम्मिलित है। इनकी विशेष कृपा से काफी खत्री बच्चे इन्जीनियर बने। ये वास्तव में खत्री जाति के स्तम्भ रहे। हमें इन पर गर्व है।

पद्म भूषण खत्री डा० युद्धवीर सिंह—दिल्ली

डाक्टर साहब ने अपने कार्य कलापों के द्वारा जहाँ दिल्ली के खत्री समाज का गौरव बढ़ाया वहीं उनकी निस्वार्थ स्वास्थ्य सेवा भी सराहनीय है। डाक्टर साहब ने कभी पैसे का लोभ नहीं किया। उनके लिये समाज सबसे ऊपर था। अपने निस्वार्थ एवं समाज सेवा के कार्यों के लिये भारत सरकार ने आपको पद्मभूषण से सम्मानित किया।

खत्री श्री हकीम मुकुन्दलाल वर्मन—मथुरा

मथुरा नगर के जनमानस के प्राण हकीम जी बचपन से हीं सार्वजनिक कार्यों में रुचि लेते रहे हैं। १३ वर्ष की अल्पायु में ही आपने अपनी संगठन शक्ति का परिचय दिया और "राष्ट्रीय बाल मण्डल" की स्थापना

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

की। वर्ष १९२१ में केवल १४ वर्ष की आयु में प्रसिद्ध रामलीला केस में आप भी गिरफ्तार हुये थे। आपने शहर की सेवासमिति में अभूतपूर्व कार्य किया और जनता की सेवा की। सेवासमिति के आप मंत्री व अध्यक्ष भी रह चुके हैं। पिछले ४३ वर्षों से आप जनता की सेवा में लगे हुये हैं। वर्ष १९३२ व १९४२ में राष्ट्रीय आन्दोलनों में आप गिरफ्तार हुये थे। आप स्वभाव से बड़े मिलनसार तथा लगनशील, उत्साही और कर्मठ कार्यकर्ता हैं। आप नगर व जिला कांग्रेस कमेटियों के पदाधिकारी भी रह चुके हैं। स्थानीय जानकी बाई जूनियर हाईस्कूल के आप उपाध्यक्ष हैं। हमें आप पर गर्व है।

खत्री श्री विशन नारायण टण्डन–आगरा (१९०९—१९४९)

श्री टण्डन जी आगरा में कलम के योद्धा के नाम से विख्यात थे। देश हित में लड़ाई लड़ने के लिये जो जहाँ है वहीं से अपने काम के द्वारा देश हित में लड़ सकता है किन्तु कलम की लड़ाई बड़ी विचित्र होती है। अंग्रेजों के विरुद्ध निर्भयता से लिखना उस समय बड़ा जीवट का काम था किन्तु टण्डन जी इससे घबराते न थे और निरन्तर अंग्रेजों के विरुद्ध लिखते रहे। ये वास्तव में उनके शौर्य का प्रतीक था। खत्री समाज को उन पर गर्व है।

खत्री स्व० क्रान्तिवीर सुखदेवराज महेन्द्र–लाहौर (७-१२-१९०७—५-७-१९७३)

क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद के साथी श्री सुखदेवराज महेन्द्र बड़े आदर के साथ स्मरण किये जाते हैं।

लाहौर में जन्मे श्री सुखदेव स्वाधीनता संग्राम में अपने छात्र जीवन से ही कूद पड़े। सायमन कमीशन के विरोध में छात्रों द्वारा किये गये प्रदर्शन के दौरान लाहौर षड्यन्त्र काण्ड में आपको ५ वर्ष का कठोर कारावास दिया गया।

आजादी की लड़ाई के जिंदा दस्तावेज सुखदेवराज ने संघर्ष के सारे दौर को भीतर से देखा और भोगा भी।

कारावास की लम्बी सजायें और यातनायें भोगने से उनका शरीर जर्जर हो गया था। अन्ततः वे अधिक दिनों जीवित न रह सके।

अपने उष्ण खून से स्वतन्त्रता की ज्योति को प्रज्ज्वलित रखने वाले, भारतमाता के सुपुत्र, क्रान्तिवीर स्व० सुखदेवराज महेन्द्र को खत्री समाज की विनम्र श्रद्धांजलि।

खत्री मणिराम कंचन–तालवेहट जिला ललितपुर (१० जनवरी १९१०–१६ मार्च १९७५)

आप एक नैष्ठिक समाजवादी थे। स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लेने पर जेल यात्रा की। वे सदा मजदूर यूनियनों से सम्बद्ध रहे। जमींदारी प्रथा की समाप्ति व बेगारी बंद कराने हेतु संघर्षरत रहे। वे हिन्दू मुस्लिम एकता के पक्षधर थे। झाँसी जिला बोर्ड के चेयरमैन रहे। सफल पत्रकार, साहित्यकार, लेखन सर्वहारा वर्गनीति के ओजवान, वक्ता, भारत रूस मैत्री के संस्थापक सदस्य एवं सादा जीवन जीने वाले जाति गौरव महापुरुष थे। जाति ऐसी विभूति के प्रति नतमस्तक है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री श्री श्रीराम मोतीराम खत्री—अमरावती

आप ब्रह्म खत्री हैं। आपको आयुर्वेद में काफी रुचि है। आप बहुत से मरीजों की सेवा शुश्रूषा बिना मूल्य करते रहे। आपकी सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में सदा रुचि रही। आपने पोकरण ग्राम में अपनी जाति के लिये एक स्वतंत्र भवन का निर्माण किया जिससे जाति वालों को काफी सुविधा हो गई है। आप १९१६ में ब्रह्म क्षत्रिय पंचायत के प्रेसीडेण्ट चुने गये।

खत्री श्री पुरुषोत्तम प्रसाद सेठ—पटना

श्री सेठ जी जातीय प्रेम की सजीव मूर्ति रहे। सार्वजनिक कार्यों में विशेष रुचि सदा रही। १९२८ से से १९३३ तक आप खत्री सभा के मंत्री पद को सुशोभित करते रहे। आपने १९३१ में काशी अखिल भारतवर्षीय खत्रिय इतिहास सम्मेलन में अपना पूरा-पूरा सहयोग दिया। पटना में आपने "महेश्वर पब्लिक पुस्तकालय" की स्थापना अपने पिता श्री की पुण्य स्मृति में १९२८ में की। आप इलाहाबाद के अ०भा० खत्रिय सम्मेलन में अ० भा० वर्किंग कमेटी के सदस्य चुने गये थे।

पदमभूषण खत्री रायसाहब डाक्टर महेशप्रसाद मेहरे—(खैराबाद सीतापुर)

देश विदेश में विख्यात डा० महेश प्रसाद मेहरे आँख के बड़े ही सफल चिकित्सक थे। खैराबाद-सीतापुर में रहकर आपने आँख के हजारों रोगी ठीक किये। आपको रायसाहब तथा अन्य उपाधियाँ भारत सरकार की ओर से प्रदत्त की गईं। खत्री समाज में आपका बड़ा मान सम्मान था। आप उत्तर प्रदेश के और शहरों में भी आँख के रोगियों को निःशुल्क देखते तथा उनका उपचार करते थे।

खत्री बाबू राजनरायन जी टण्डन—प्रयाग

आप डिप्टी कलेक्टर के पद से सेवा निवृत्त होने के पश्चात् समाज सेवा में लग गये। आप प्रयाग खत्री सभा के सभापति चुने गये। आप सदा सुधार सम्बंधी योजनायें बनाते तथा उन्हें कार्यान्वित करते रहे।

खत्री रायबहादुर लाला जगतनारायण जी कपूर—प्रयाग

जाति के गौरव लाला जी डिस्ट्रिक्ट तथा सेशन जज के पद से सेवा निवृत्त हुये। आपने खत्री-मात्र की सेवा तो की ही साथ ही में ऐसे-ऐसे जटिल अन्य लोगों के मुकदमे बिना किसी प्रलोभन के निपुणता, निष्पक्षता, प्रेम और ईमानदारी से निपटाये कि लोग उन्हें आज भी याद करते हैं। आपने प्रांविसियल जुडीशियल कान्फ्रेंस की स्थापना की। आप इसके कई वर्ष तक प्रधान भी रहे। आप प्रयाग खत्री सभा तथा खत्री पाठशाला के सभापति भी रहे। आपके समय में सभा में विशेष जागृति उत्पन्न हुई और उसने तरक्की की जिसके फलस्वरूप अ० भा० खत्री कान्फ्रेंस को प्रयाग में आमंत्रित किया गया और इसका २१ वाँ अधिवेशन फरवरी सन् १९४० में रा० ब० श्री कामताप्रसाद जी कक्कड़ की स्वागताध्यक्षता में बड़ी शान से हुआ।

खत्री श्रीमती रानी साहिबा मिसेज डी बरकतराय—हैदराबाद (दक्षिण)

आप खत्री महिला मण्डल हैदराबाद की अध्यक्ष, सेवासदन की संचालिका, महिला मण्डल की उपाध्यक्षा और कई अन्य संस्थाओं की मुख्य कार्यकत्री रही हैं। आपके प्रयत्न से औरंगाबाद महिला संघ का जन्म हुआ। आप खत्री जाति की एक रत्न के समान हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

खत्री स्व० लाला नारायण प्रसाद जी पुरी—चाँदा, सी० पी०

लाला जी स्वनामधन्य नारायण का प्रसाद ही बाँटते थे। आप खत्री जाति की सेवा में सदा लगे रहते थे। गरीबों की सहायता करना आप परमात्मा की सेवा मानते थे। आपने अखिल भारतीय खत्री कांफ्रेंस जबलपुर के अवसर पर तन, मन, धन से काफी सहायता की जो सदा-सदा याद रहेगी।

ख़त्री श्री बालमुकुन्द वर्मा—बनारस

आपने अनेक सार्वजनिक संस्थाओं में सदस्य एवं मंत्री पद को सुशोभित किया। इनमें से प्रमुख हैं—भारती क्लब, सेंट्रल सिटी स्कूल, विद्या बिहार पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, खत्री कांफ्रेंस, सारस्वत खत्री सभा, नागरी प्रचारिणी सभा, खत्री हितकारिणी सभा, कवि समाज, सारस्वत खत्री विद्यालय, संगीत कांफ्रेंस, मठाधीश सम्मेलन, चौक वार्ड पंचायत, भारत सेवा मण्डल, कारमाइकेल लाइब्रेरी, हिंदी साहित्य विद्यालय, नागरी नाटक मण्डली, हिंदू सभा, सनातन धर्म सम्मेलन, खत्री एजुकेशन कमेटी, किंग जुबली चौक वार्ड कमेटी आदि।

आपने ईश्वरीय मेमोरियल अस्पताल व काशी अनाथालय के लिये चंदा जमा किया। चंदा और कपड़ा इकट्ठा करके खत्री भू-कम्प पीड़ितों को मुजफ्फरपुर भेजा।

खत्री इतिहास के लिये आपने वृहद् आयोजन किया। "खत्री हितकारिणी सभा" के आप जन्मदाता हैं।

खत्री आनरेबुल जस्टिस, मनोहरलाल मेहरोत्रा—मुजफ्फरपुर

आपने अपनी नौकरी के साथ-साथ खत्री जाति व सभा और समाज की उन्नति के लिये सदा कार्य किया। आपने अपनी सूझ-बूझ और साहस से समाज की अनेक पुरानी कुरीतियाँ जड़मूल से निकाल फेंकी।

आप यद्यपि लाहौर के रहने वाले थे किन्तु अपने मुजफ्फरपुर में विवाह होने के उपरान्त यहीं आकर बस गये। १९१२ में आपने विलायत में आई० सी० एस० की परीक्षा पास की। कालान्तर से आप पटना हाईकोर्ट के जस्टिस पद पर नियुक्त हुये।

खत्री श्री प्रेमनारायण टण्डन—बिहार

आप अपने महत्वपूर्ण पद पर रहते हुए खत्री जाति की उन्नति हेतु कार्य करते रहे। आपने आई० सी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण की और गया (बिहार) में असिस्टेंट मजिस्ट्रेट और कलक्टर हुये। तत्पश्चात् एस० डी० ओ रहे। बिहार गवर्नमेन्ट के पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट में पहले हिन्दुस्तानी अण्डर सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त हुये।

खत्री स्व० मदनमोहन खन्ना—लखनऊ

बाबू साहब ने अनेक खत्री लड़कों को इलाहाबाद बैंक में नौकरी से लगवाया। आप सदा जाति सेवा में लगे रहते थे। अन्य खत्री जाति भाइयों को आपने रोजगार लगाने में सहायता प्रदान की।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री स्व० माधो प्रसाद जी धवन—मिर्जापुर

जाति सेवक श्री धवन जी हिन्दी के भी कट्टर हिमायती थे। आपने प्रथम हिन्दी साप्ताहिक "खिवड़ी समाचार" का सम्पादन किया तथा इसके संरक्षक भी रहे।

आपको अँग्रेजी पर भी समान अधिकार था और आपने चार ग्रंथ अंग्रेजी भाषा में भी लिखे।

खत्री स्व० महादेव प्रसाद जी सेठ—मिर्जापुर

जहाँ समाज सेवा में जुटे रहते थे वहीं आपने खत्री जाति की भी खूब सेवा की। बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन की विशेष कृपा से आपका रुझान हिन्दी की ओर हुआ और आपने "मतवाला" पत्र का सम्पादन करके हिन्दी की धूम मचा दी।

खत्री राजा बाबू दामोदरदास जी बर्मन—कलकत्ता

राजा बाबू के नाम से आप प्रसिद्ध थे। आप संगीत और साहित्य के प्रेमी थे। आप अपनी दया, दक्षिणा, सच्चरित्रता, धर्मिष्ठता एवं नम्रता के कारण सारे भारत में प्रसिद्ध थे। आपने स्ट्रैण्ड रोड कलकत्ता में गौरी शंकर का एक शिवालय स्थापित किया। आपका सार्वजनिक संस्थाओं और सरकार से घनिष्ठ सम्बन्ध था। आप विशेष रूप से एशियाटिक सोसाइटी, ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन, बंगाल नेशनल चेम्बर आफ कामर्स, पींजरापोल आदि के मेम्बर तथा बड़ी सिख संगत और सारस्वत क्षत्रिय विद्यालय के ट्रस्टी थे।

आपने खूब जाति सेवा की।

खत्री स्व० गोवर्धनदास जी चड्ढा—मिर्जापुर

आप अत्यन्त दानी प्रवृत्ति के पुरुष थे। खत्री जाति की सेवा के प्रतीक स्वरूप आपने खत्री धर्मशाला के लिये भूमि दान में दी।

सुश्री दुर्गा भाभी—इलाहाबाद

क्रान्तिकारियों एवं देशभक्तों में एक अत्यधिक परिचित नाम है दुर्गा भाभी का। अल्पवयस्क अवस्था में आपका निवाह श्री शिवशरण बोहरा जी से हो गया। आप अपने पति के साथ कंधे से कंधा भिड़ा कर देश सेवा में लग गईं। आपके साथी थे भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव आदि क्रान्तिकारी। इनके बीच आप दुर्गा भाभी के नाम से प्रसिद्ध थीं। एक बार भगतसिंह को बचाने हेतु आप उनकी बीबी बनकर अँग्रेजों की आँखों में धूल झोंककर निकल गईं। क्रान्तिकारियों की हर तरह से सहायता करने का आपने व्रत सा ले लिया था। कालान्तर में लाला लाजपतराय की मृत्यु, भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव को फाँसी व चन्द्रशेखर आजाद के बलिदान ने दुर्गा भाभी को तोड़ दिया। अन्त में वे गांधी जी से प्रेरित होकर काँग्रेस अध्यक्ष भी बनीं और देश सेवा में जुट गईं। वर्तमान में आप लखनऊ में एक विद्यालय की संचालिका हैं।

ऐसी निर्भीक, क्रान्तिकारी, देशभक्त, नारीरत्न महिला को देश सदा-सदा स्मरण करेगा।

हम सभी उनके प्रति नत मस्तक हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

खत्री बिन्दूलाल मेहरा—दिल्ली (१६१५—२२-३-१६८३)

कटरा नील, दिल्ली निवासी श्री मेहरा अल्प आयु से ही समाज सेवा से जुड़ गये थे। आपने एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त की और बीस वर्ष तक ब्रिटिश हाई कमीशन में सेवारत रहे। सन् १६३६ में प्रतिष्ठित यंगमैन एसोसिएशन के सदस्य बने। अनेक खत्री युवकों को रोजगार दिलाये। आपने खत्री बैंक तथा डा० युद्धवीर सिंह ट्रस्ट के ट्रस्टी रहकर सराहनीय कार्य किया। आपके कार्यकाल में खत्री सभा ने भी अभूतपूर्व कार्य किया। श्री मेहरा ने खादी प्रचार में अपना योगदान दिया।

खत्री श्री नन्दूलाल मेहरा—दिल्ली (१६२२—६-४-१६८७)

आप खत्री समाज के गौरव स्तम्भ थे। व्यवसाय था कपड़े की दलाली। आप देश प्रेमी थे तथा सदा खद्दर पहनते थे। आप कांग्रेस भक्त थे। आप कैम्प लगाकर शरणार्थियों की सेवा करते रहे। आपने खत्री समाज दिल्ली की स्थापना की। आपको अपने अभूतपूर्व कार्यों के लिये "दिल्ली स्वतंत्रता संग्राम सेनानी संगम" ने सम्मानित किया।

खत्री कैलाशनाथ जलोटा—फर्रुखाबाद

खत्री कैलाशनाथ जलोटा का जन्म १ अगस्त, १६२३ को फर्रुखाबाद के एक सम्भ्रान्त खत्री परिवार में हुआ था। आप बचपन से ही एक मेधावी छात्र थे। हाईस्कूल आपने फर्रुखाबाद से ही किया। पढ़ाई के साथ-साथ आप खेलों में भी रुचि लेते थे और विभिन्न पारितोषिक अर्जित करते रहे। आप जैसे मातृ-पितृ भक्त इस समय में कमही मिलते हैं। आपको तैराकी एवं कुश्ती का भी शौक था। आपने लगभग एक दर्जन डूबते हुए लोगों को अपने जीवन में अब तक बचाया।

जिस समय इम्पीरियल बैंक में नौकरी बड़ी कठिनाई से मिलती थी आपने अपने स्वयं के प्रयत्न से यहां नौकरी प्राप्त की। बैंक में रहकर ही आपने कठिन परिश्रम करते हुए बी० ए० एवं हिन्दी साहित्यरत्न किया। आप जीवन भर परिश्रमी रहे। बैंक में उत्तरोत्तर उन्नति करते हुये आप प्रशासनिक अधिकारी के पद से वर्ष १६८३ में सेवा निवृत्त हुये। अपने कार्यकाल में आप दिल्ली से आसाम तक विभिन्न स्थानों पर विभिन्न पदों पर रहे जिनमें शाखा प्रबन्धक का पद भी शामिल है। आपके साथ कार्य करने वाले कर्मचारियों ने सदा आपका आदर किया और सेवा निवृत्ति के पश्चात् भी आपको बैंक में पूरा सहयोग एवं सम्मान मिलता है।

आप एक स्वावलम्बी एवं मधुर प्रवृति के व्यक्ति हैं तथा सदा दूसरों की सहायता करने हेतु तत्पर रहते हैं। आपने अपने परिवार तथा अन्य अनेक खत्री भाइयों को, उन्हें बैंक में नौकरी दिलवाकर सहायता की। वैसे आप एक कठोर अनुशासन प्रिय, ईमानदार बैंक अधिकारी रहे।

आप हिन्दी के बचपन से ही पक्षधर हैं और जहाँ भी अवसर मिलता है हिन्दी माँ की सेवा करते रहते हैं। आप भारतीय स्टेट बैंक, प्रशिक्षण केन्द्र कानपुर के हिन्दी अतिथि प्रवक्ता हैं। आप एक अच्छे लेखक एवं कवि हैं। अनन्य पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख व कवितायें छपती रहती हैं और पारितोषिक मिलते रहते हैं। किन्तु आप मंच के कवि कभी नहीं रहे। आपका कथन है कि वे सदा स्वान्तः सुखाय ही लिखते हैं। आपने निम्न-लिखित पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से कुछ छप चुकी है और जनता में वितरित हो चुकी हैं और अन्य प्रेस में हैं। यह सभी पुस्तकें आप बिना मूल्य जनता के सुपात्रों को प्रदान करते रहते हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

पुस्तकों के नाम

(१) रामगंगा (२) रामरक्षा दोहावली (अनुवाद) (३) राममहिमा (४) भजन जाह्नवी
(५) नन्हें बच्चे (६) बालमन (७) आओ बच्चों (८) बचपन

"खत्री हितैषी" पत्रिका को आप अपनी निःशुल्क सेवाएं अर्पित करते रहते हैं। आप दूरदर्शन, लखनऊ, के छः माह तक प्रोग्राम समीक्षक रहे। इसके अतिरिक्त जब तब आप दूरदर्शन लखनऊ, के कार्यक्रमों में भाग लेते रहते हैं। आप अन्य राष्ट्रीकृत बैंकों से भी जुड़े हैं और उनकी गृह पत्रिकाओं में आपकी रचनायें छपती रहती हैं। भारतीय स्टेट बैंक की सभी गृह पत्रिकाओं में भी आपकी रचनायें स्थान पाती हैं।

ऐसे सहृदय, जाति सेवी, सहयोगी एवं कर्मठ पुरुष पर समाज को गर्व है। भगवान राम आपको शतायु प्रदान करें।

जातिगौरव खत्री श्री श्रीकृष्ण मेहरोत्रा—वाराणसी

श्री मेहरोत्रा जी का जन्म वाराणसी के एक संभ्रान्त खत्री घराने में १२-१०-१९०९ को हुआ था। आप बचपन से ही समाज सेवा से जुड़े रहे। मात्र १६ वर्ष की आयु से ही आपने सेवा समिति में कार्य करना आरम्भ कर दिया था। आपने लगातार ३० वर्षों तक इस संस्था में प्रधान नायक पद पर रहकर काशी नगरी के प्रत्येक मेले ग्रहण तथा अन्य सामाजिक कार्यों में अपने को लगाये रखा। खोये हुये बच्चों को उनके अभिभावकों तक पहुँचाने में आपको तथा उन अभिभावकों को हार्दिक आनन्द मिलता था।

आप नस बैठाने में माहिर रहे हैं। वर्षों इस प्रकार की सेवा आप समाज को देते रहे हैं। आप होमियोपैथिक चिकित्सक भी हैं और हजारों व्यक्तियों को लाभ पहुँचा चुके हैं।

आप अनेक संस्थाओं से जुड़े रहे और इस प्रकार बराबर जनता की सेवा करते रहे। आपका जीवन अनुकरणीय है।

उ०प्र०खत्री सभा ने आप को ९-११-८६ को जातिगौरव अलंकार से सम्मानित किया। आपका निधन वर्ष ८७ में हुआ।

खत्री स्व० शिवप्रसाद सेठ—शाहजहाँपुर (२२-१०-१९१७—२९-३-८३)

शाहजहाँपुर के लाला काशीनाथ सेठ के प्रतिष्ठित परिवार में आपका जन्म हुआ था। समय पड़ने पर आप पढ़ाई छोड़कर व्यवसाय में हाथ बटाने अपने घर पहुँच गये। अपने अथक प्रयास से आपने व्यवसाय को खूब बढ़ाया और अनेक संस्थान खोले। काशीनाथ सेठ बैंक की स्थापना सन् १९४८ में अपने बड़े भ्राता श्री विशनचन्द्र सेठ द्वारा करवाई।

सेठ जी बचपन से ही सन्त स्वभाव के थे। अपने जीवन काल में जो भी अवसर सत्संग एवं साधु सेवा के मिले वह उन्होंने कभी नहीं छोड़े। दान पुण्य के अलावा आपने जगह-जगह कमरे व स्थान बनवाकर जन सेवा की। गरीब बच्चों, अपंगों एवं जरूरतमन्दों की सदा सहायता की।

यूं तो खत्री समाज की उन्होंने सहायता की किन्तु दूसरी जाति वालों की भी भरपूर सेवा की। परन्तु यह सब सेवा कार्य करते हुये उन्होंने किसी स्थान या कार्य में अपना नाम कहीं भी नहीं लिखवाया।

समाज आपको सदा याद करता रहेगा।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

जातिगौरव खत्री श्री प्रकाश शंकर टण्डन—अलीगढ़ (जन्म २२-८-१९२७)

राष्ट्र भक्त श्री प्रकाश शंकर जी माईथान आगरा में देश भक्त एवं स्वतंत्रता सेनानी स्व० भवानीशंकर टण्डन के घर जन्मे। आपने कांग्रेस सेवा दल के जिला, शहर इंचार्ज के रूप में एक कीर्तिमान स्थापित किया और ऐसा सुदृढ़ संगठन बनाया जिसकी अपनी अलग मिसाल थी।

आपकी कार्यकुशलता से प्रभावित होकर अखिल भारतीय कांग्रेस के मेरठ अधिवेशन के पंडाल का इंचार्ज आपको बनाया गया जिसे आपने बड़ी कुशलता से निभाया।

आप पर सीमान्त गांधी खान अब्दुल गफ्फार खाँ के "लालकुर्तीदल" का प्रभाव है। इसी कारण आप अनुशासन प्रिय हैं। इसे आप अपने सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में बहुत महत्व देते रहे हैं। आपका नारा है कि "काम करो या कुर्सी छोड़ो"।

स्वतंत्रता संग्राम में सन् १९४२ में अल्पायु में ही आप जेल गये और अँग्रेजी शासन की यातनायें सहीं। सन् १९७२ में आगरा में आपको उ० प्र० के गवर्नर द्वारा "ताम्रपत्र" देकर सम्मानित किया गया। सन् १९८५ में काँग्रेस शताब्दी समारोह के अवसर पर शहर काँग्रेस कमेटी ने आपको मानपत्र देकर सम्मानित किया। वर्तमान में आप अलीगढ़ स्वतंत्रता संग्राम सेनानी परिषद के कोषाध्यक्ष हैं। आप अलीगढ़ नगर व जिले की अनेक सामाजिक एवं शैक्षिक संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। अलीगढ़ गाँधी नेत्र चिकित्सालय ट्रस्ट के आप आजीवन सदस्य हैं।

आपने अपनी आगरा की पैतृक सम्पत्ति कस्तूरी बाई जैन इण्टर कालेज, माईथान, आगरा को अपने पूज्य पिता की स्मृति में दे दी।

सन् १९८३ से खत्री सभा अलीगढ़ के आप स्थापना अध्यक्ष होकर अब भी उसी पद पर हैं।

खत्री डा० भँवर अरोड़ा—सुजानगढ़ (राजस्थान) (५-९-१९३५)

डा० भँवरलाल अरोड़ा अपने जीवन के प्रारम्भ से ही शिक्षा जगत से जुड़े रहे। आपने कलकत्ता एवं राजस्थान में अनेकानेक सामाजिक कार्य किये और अनेक संस्थाओं से जुड़े रहे। आप इतने साहसिक विभूति हैं कि आपने अपने परिश्रम से स्टेशन पर यात्रियों को पानी पिलाया। नलों के न होने से आपने कुओं से पानी भरा और यात्रियों की सेवा की। बाल सेना, युवक सेना, आबालवृद्ध नर-नारी सभी की सेवा में आप सदा लगे रहे।

सन् १९८५ में आपने सिंधी, हिन्दी, पंजाबी एवं राजस्थानी खत्री परिवारों को इकट्ठा किया और एक मंच तैयार किया। खत्री वंश युवक संघ की स्थापना की। विजय दशमी का दिन खत्री मिलन दिवस, शस्त्र पूजा एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम के रूप में मनाना आरम्भ किया। खत्री सभा के कार्य को आगे बढ़ाने में आप पूरा योगदान दे रहे हैं। आप अथक प्रयास से जाति सेवा में संलग्न हैं। साथ ही दीन दुखियों की निःशुल्क चिकित्सा भी करते हैं।

खत्री श्री अमरनाथ टण्डन—कन्नौज

कन्नौज सारस्वत-खत्री सभा के वरिष्ठ सदस्य लाला अमरनाथ अपनी सहृदयता के लिये प्रसिद्ध हैं। आप खत्री बालक, बालिकाओं को छात्रवृत्ति देते रहकर उनके उत्थान में सहयोग दे रहे हैं। दीपावली के पश्चात् अपने घर पर "मधुर मिलन" का आयोजन कर समाज के सभी खत्री भाइयों को सपरिवार आमंत्रित करके आपस में भाईचारे की भावना को सुदृढ़ कर रहे हैं।

CC-0. Bhagwad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आप खत्री सभा में विशेष रुचि लेते हैं, तथा उसके प्रति पूरी तरह निष्ठावान हैं। आप सभा के प्रत्येक कार्य में रुचि ही नहीं लेते अपितु सहयोग और सहायता भी करते हैं। कठिनाइयों को आनन फानन में दूर करते हैं और सौहार्द्र स्थापित करते हैं।

आपको धर्म में भी अपार निष्ठा है। आप अपने निवास स्थान पर महामण्डलेश्वर स्वामी भजनानन्द जी महराज के नेतृत्व में संत महात्माओं का वृहत् स्तर पर सम्मेलन आयोजित करते हैं।

आपने स्वर्गीय ज्येष्ठ भ्राता श्री बैजनाथ जी टण्डन एवं पूज्या भाभी की पुण्य स्मृति में बाबा गौरीशंकर मंदिर में एक विशाल कक्ष के निर्माण का कार्य सम्पन्न करा रहे हैं। इसमें धार्मिक पुस्तकों का संग्रह रहेगा।

आपको कोटिशः धन्यवाद।

खत्री श्री महेश प्रसाद जी—कलकत्ता

आपका जन्म कलकत्ता के धनी मानी खत्री परिवार में हुआ। आप हिन्दी, अँग्रेजी, संस्कृत- बंगला, उर्दू एवं मुड़िया भाषा के विद्वान एवं ज्ञाता हैं। आपने वकालत का पेशा अपनाया। आपने अपनी प्रतिभा, आत्मबल, विद्वता और उत्कृष्ट साधना से इस पेशे को चमकाया और एक मूर्धन्य सिविल अधिवक्ता बने।

आप दीर्घकाल तक पश्चिम बंग बार कौंसिल के उपाध्यक्ष, क्रिया समिति के अध्यक्ष तथा प्रभावशाली सदस्य के रूप में सक्रिय रहे हैं। आप प्रेसिडेंसी स्माल कालेज कोर्ट बार एसोसिएशन के सभापति बनाये गये।

कलकत्ते में निम्नलिखित बैंकों के मुसद्दी ही नहीं रहे अपितु इस शहर में उनकी स्थापना एवं संचालन आपका अविस्मरणीय योगदान रहा है।

(क) इलाहाबाद बैंक (ख) हिन्दुस्तान कमर्शियल बैंक (ग) ओरिएण्टल बैंक आफ कामर्स (घ) पंजाब नेशनल बैंक (ङ) भारत बैंक।

राष्ट्रोन्मुखी चेतना एवं शिक्षा प्रचार हेतु आप अनन्य संस्थानों में रक्षक, संरक्षक एवं सदस्य के रूप में निःस्वार्थ, सक्रिय योगदान देते रहे। आप अनेक परिवारों की जीविका के पावन स्रोत हैं।

समाज आपका अभिनन्दन करता है।

खत्री डा० हीरालाल चोपड़ा—कलकत्ता

आपने पंजाब विश्वविद्यालय में एम० ए० की परीक्षा में प्रथम बार लाहौर में प्रथम स्थान प्राप्त कर विश्वविद्यालय को गौरवान्वित किया। आपके सफल निर्देशन में अनेक अनुसंधानियों ने पी-एच० डी० तथा डी० लिट० की उपाधि प्राप्त की।

१९५८ में आप ईरान सरकार के आमंत्रण पर एक वर्ष के लिये ईरान गये और वहाँ परसियन भाषा में श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद किया। ईरान सरकार ने डाक्टरेट की उपाधि से आपको सम्मानित किया। आप अरबी, फारसी, उर्दू एवं पश्तो के विद्वान हैं।

आप सभी जाति, समाज धर्म और संस्कृतियों के बीच महानरूप से देदीप्यमान हैं। पंजाबी संस्कृति के उन्नयन में आपके योगदान के लिये पंजाब सरकार ने आपको पुरस्कृत किया।

खत्री समाज आपके चिरायु जीवन की कामना करता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

खत्री श्री विश्वेश्वरनाथ मेहरोत्रा—कलकत्ता

खत्री समाज के संरक्षक, स्वजाति एवं स्वधर्म उन्नायक, कर्मनिष्ठ एवं सेवाव्रती, प्रेरक समन्वयवादी दृढ़व्रती विद्वान तथा संस्कृति के उन्नायक श्री मेहरोत्रा जी के द्वार प्रत्येक के लिये सदा खुले रहते हैं। आपका जीवन अनुकरणीय है। आप अनेक संस्थाओं से जुड़े रहकर समाज सेवा में लीन हैं।

खत्री समाज आपके प्रति नतमस्तक है।

खत्री श्री पूरनचन्द्र जी वर्मन—कलकत्ता

कर्मक्षेत्र के मर्मज्ञ महारथी, परिबार के गौरव, समाज के आलोक स्तम्भ, कार्यरत मौन सेवाव्रती, विद्या के धनी एव प्रशांत विचार वेत्ता, हम आपके सहयोग के लिये कृतज्ञ हैं। बिद्यादान आपका धर्म है तो जाति सेवा आपका कर्म। इसी कर्म धर्म पर टिका आपका महान जीवन समाज की विलक्षण सेवा कर रहा है।

हम आपके प्रति कृतज्ञ हैं।

खत्री स्व० बेनीमाधव खन्ना—कानपुर

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी स्व० बेनीमाधव खन्ना का राजनैतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में एक प्रमुख स्थान रहा है। आप देश भक्ति तथा स्वतंत्रता संघर्ष की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी काव्य रचनाओं पर "खन्ना पुरस्कार" प्रदान करते रहे। आप शहर कांग्रेस कमेटी, गांधी सेवा समिति, हिंदी प्रचारिणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन आदि विभिन्न संस्थाओं में प्रमुख पदों पर सुशोभित रहे। भारतेन्दु वाराणसी ने तो आपको अपने अग्रलेख में "काव्य कल्पतरु" की उपाधि से विभूषित किया। आपका स्वर्गवास १२-१-१९६० को हुआ था।

खत्री स्व० भीखमचन्द अरोड़ा—जोधपुर (राजस्थान)

अरोड़ा जी निःसंतान थे। अतः आपने अपनी सम्पत्ति को सामाजिक कार्यों में लगाया। आप बड़े ही धार्मिक प्रवृत्ति के महापुरुष थे।

आपने श्मशान घाट भवन तथा स्नान गृह बनवाया। इसे सुचारु रूप से चलाने हेतु आपने अनेक दुकानें बनवाई ताकि किराये की आमदनी से इसकी देखरेख हो सके। साथ ही आपने एक ट्रस्ट भी चला दिया। आपने जागौर में एक धर्मशाला बनवाई और यहाँ भी एक ट्रस्ट का गठन किया ताकि इसका कार्य भी सुचारु रूप से चल सके। नागौर में ही दिल्ली द्वार पर आपने एक स्मारक तथा प्याऊ बिठाया। कुछ दुकानें बनवा दीं ताकि किराये से इसका ठीक संचालन हो सके।

वे इन संस्थानों, भवनों एवं स्मारकों को अपना पुत्र समझते थे।

हम सभी जाति भाई उनके प्रति नतमस्तक हैं।

खत्री रायसाहब गुरुप्रसाद कपूर—दिल्ली

आप बड़े ही उदार प्रवृत्ति के महानुभाव हैं। आपने जैसे बिरादरी की सेवा का संकल्प सा ले रखा है। मुक्तहस्त से सहायतार्थ धन देना आपकी आदत बन गई है। आप खत्री मात्र की सहायतार्थ सदा तत्पर रहते हैं और इसे अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री रायसाहब गिरधारीलाल—दिल्ली

रायसाहब ने अपने स्वभाव को ऐसा उदार बना रखा था कि किसी का भी काम हो अगर आपके किये होता था तो स्वयं जाकर करवा देते थे। शिक्षा के क्षेत्र में आपका बहुत बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने पूरी दिल्ली में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय चलाये जो आज अच्छे स्तर के स्कूल माने जाते हैं।

खत्री लाला हरध्यान सिंह चाँदीवाले—दिल्ली

आप भारत की स्वतंत्रता के सपने सँजोये बहुत ही छोटी आयु में इस संग्राम में कूद पड़े। जहाँ आपने खत्री समाज की सेवा की वहीं वृहद् स्तर पर आपने देश की सेवा की।

खत्री श्री हरषचन्द्रजी (बालेचा)—बीकानेर

खत्री मण्डल की स्थापना में आपका बड़ा योगदान रहा। इस मण्डल की उन्नति करने में आपने बड़े कष्ट उठाये। आप समय-समय पर मण्डल की धन से भी सहायता करते रहे। आप निरंतर अपने काम के साथ खत्री मण्डल की सेवा में लगे रहते हैं।

खत्री लाला दौलतराम सेठी—पटना

आप खत्री जाति प्रेम से ओत-प्रोत सदा जातीय उन्नति के लिये कार्य करते रहे। आप बिहार प्रांत के कृषि विभाग के डाइरेक्टर के पद पर नियुक्त हुये।

खत्री रायबहादुर श्रीनारायण महथा—पटना

आप बिहार प्रांत में खत्रियों में एक बड़े जमींदार थे। आप कौंसिल आफ स्टेट्स के मेम्बर भी बनाये गये। आप सदा जाति तथा खत्री समाज की उन्नति में हाथ बंटाते रहे।

खत्री स्व० जगन्नाथ प्रसाद जी पवाधा—मिर्जापुर

आप सर्वविदित समाजसेवी तथा खत्री समाज के प्राण थे। खत्री समाज मिर्जापुर आपका बड़ा आदर सम्मान करता था। खत्री धर्मशाला मिर्जापुर के सही माने में आप ही निर्माता थे और सदा याद किये जायेंगे।

खत्री स्व० लाला बिहारीलाल मेहरोत्रा—मिर्जापुर

खत्री समाज मिर्जापुर सदा-सदा ऐसी विभूति को याद करता रहेगा जिसने अपने अथक प्रयास से खत्री सभा भवन का निर्माण कराया। आप विभिन्न वर्षों में खत्री सभा के विभिन्न पदों पर रहे तथा सक्रिय रूप से जाति सेवा में लीन रहे।

खत्री श्री श्रीराम मैनी—मिर्जापुर

खत्री जाति के वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री मैनी अनेक वर्षों तक खत्री सभा के कोषाध्यक्ष रहे तथा सभा के कोष को बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे। आप स्वयं भी एक दानी पुरुष रहे। आपने खत्री सभा भवन में एक कमरे का निर्माण भी अपने धन से कराया।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

खत्री स्व० भरतनाथ सेठ (पत्थरवाले)—मिर्जापुर

आप सच्चे जाति सेवक थे। आप खत्री सभा मिर्जापुर के अध्यक्ष भी रहे तथा अपने कार्यकाल में जाति सेवा डटकर की। आप जिला पाषाण व्यवसायी संघ के अध्यक्ष तथा रेलवे स्टेशन मिर्जापुर (उ० रे०) की परामर्शदात्री समिति के कई वर्षों तक सदस्य भी रहे।

खत्री स्व० बाबू महादेवप्रसाद जी सेठ—मिर्जापुर

आप सच्चे जाति सेवक थे। यद्यपि आपने अल्प आयु पाई किन्तु उतनी ही अवधि में आप सदा, जाति सेवा में संलग्न रहे। आप मिर्जापुर के प्रसिद्ध पत्थरवाल सेठों के परिवार के एक सदस्य थे। आपने कलकत्ता से "मतवाला" (हिंदी में हास्य रस का एकमात्र राष्ट्रीय पत्र) का प्रकाशन, मुद्रण और संपादन किया। नमक सत्याग्रह के समय मिर्जापुर के प्रथम डिक्टेटर, अखिल भारतीय एवं प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे।

खत्री जातिरत्न श्री बिशनचन्द सेठ—वृन्दावन

आप अखिल भारतीय खत्री महासभा के संरक्षक हैं। आप बाल्यकाल से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। प्रारम्भ से ही आप राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत रहे। मात्र २० वर्ष की अल्पायु में ही आप एक साहसी सेनानी की भांति स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने हेतु राष्ट्रीय कांग्रेस में आ गये। तत्पश्चात् हिंदुत्व की रक्षाहित आपने १९३८ में हिंदू महासभा में प्रवेश किया। आप हिंदू महासभा उत्तर प्रदेश के महामंत्री थे। हिंदी को राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के लिये सन् १९४७ में आपने पूरे प्रदेश में आंदोलन चलाया और ५०० समर्थकों के साथ जेल यात्रा की।

आपने शाहजहाँपुर में साम्प्रदायिकता की धधकती आग को अपने प्राणों की बाजी लगाकर शांत किया। सन् १९५२ में आप शाहजहाँपुर नगरपालिका के अध्यक्ष निर्वाचित हुये। सन् १९५७ में आप शाहजहाँपुर से हिंदू महासभा के प्रत्याशी के रूप में संसद सदस्य निर्वाचित हुये। अखिल भारतीय खत्री महासभा के अनेक पदों को आपने सुशोभित किया। महासभा के आप अध्यक्ष भी रहे। आपकी संगठन शक्ति, आत्ममनोबल एवं कार्य क्षमता से प्रभावित होकर ही खत्री महासभा ने आपको "जातिरत्न" की उपाधि से विभूषित किया।

आप प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक, अत्यंत धर्मनिष्ठ, सरल स्वभाव एवं उदार प्रवृत्ति, पर सेवालीन महापुरुष की श्रेणी में आते हैं। आप में अभिमान और आडम्बर तो नाम मात्र को भी नहीं। आजकल आप जाति हित और देशहित के अतिरिक्त अपना समय ईश्वर उपासना में देते हुये वृन्दाबन में वास कर रहे हैं।

खत्री जातिरत्न श्री मूलचन्द खन्ना—कानपुर

अपने विस्तृत व्यवसाय में व्यस्त रहने पर भी आप समाज, जाति और देश सेवा के लिये समय निकाल ही लेते हैं। आप अनेक सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। आप गरीब छात्रों को सहायता तथा नवयुवकों का मार्गदर्शन करते रहते हैं।

जाति सेवा कार्यों में आपकी विशेष अभिरुचि है। अखिल भारतीय खत्री महासभा के आगरा अधिवेशन में सन् १९७६ में आप उपाध्यक्ष चुने गये। आपने खत्री जातीय संगठन को मजबूत करने हेतु उत्तर भारत का दूर दूर तक दौरा किया और जाति बन्धुओं से सम्पर्क स्थापित किया। आपकी संगठन शक्ति, कर्मठता, योग्यता, उदारता एवं जाति प्रियता से प्रभावित होकर आपको ३१ वें अधिवेशन में अखिल भारतीय खत्री महासभा के अध्यक्ष पद पर आसान किया गया।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आचार्य नरेन्द्र देव

विख्यात विचारक, समाजवादी नेता और शिक्षाशास्त्री आचार्य नरेन्द्र देव का जन्म ३१ अक्तूबर, १८८९ को सीतापुर में हुआ था। बचपन से ही आचार्य नरेन्द्र देव को संस्कृत तथा धार्मिक ग्रन्थों की शिक्षा मिली। उनकी उच्च शिक्षा इलाहाबाद और वाराणसी में हुई।

इलाहाबाद में बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, बिपिन चन्द्र पाल तथा अरविन्द घोष जैसे नेताओं का छात्र नरेन्द्र देव पर गहरा प्रभाव पड़ा और १९१६ में उन्होंने फैजाबाद में होम रूल लीग की शाखा प्रारम्भ की। पं० जवाहर लाल के आग्रह पर उन्होंने काशी विद्यापीठ में शिक्षण कार्य स्वीकार किया और बाद में वे विद्यापीठ के प्रिंसिपल बने। यहीं से उनके नाम के आगे आचार्य जुड़ गया। आचार्य नरेन्द्र देव स्वाधीनता आन्दोलन से निरन्तर जुड़े रहे। १९४६ में वे उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य चुने गये। वे लखनऊ विश्व विद्यालय के कुलपति भी रहे। समाजवादी चिंतन और बौद्ध दर्शन पर उनकी पुस्तकें भारतीय विचारधारा पर अमिट छाप छोड़ गयी हैं।

जाति भूषण खत्री श्री कृष्णाचन्द्र बेरी—वाराणसी

पारिवारिक जिम्मेदारियाँ होते हुये भी आपने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। आप नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, डा० राम मनोहर लोहिया, सज्जाद जहीर, यूसुफ मेहरअली आदि नेताओं के घनिष्ठ लोगों में से थे। आपने हिन्दी के प्रचार में पूर्ण सहयोग दिया और सन १९४० में भारत विख्यात "हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय की" वाराणसी शाखा की स्थापना की।

सन् १९५९ में वियना की अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेस में आपने भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के सचिव के रूप मे भाग लिया। प्रकाशकों के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के सदस्य होने के नाते आप स्पेन के बारसीलोना नगर में होने वाली बैठक में आमन्त्रित किये गये। आप सन् १९६० में अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के पटना अधिवेशन के व १९६६ में पूना अधिवेशन के व तीसरी बार सन् १९७३ में दिल्ली अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये व उसी वर्ष यूनेस्को की मद्रास में आयोजित दक्षिण पूर्व एशिया के देशों की विचारगोष्ठी में आपने प्रतिनिधि सदस्य के रूप में भाग लिया। सन् १९६५ में नेशनल बुक ट्रस्ट आफ इण्डिया द्वारा लखनऊ में आयोजित "हिन्दी प्रकाशन" विचारगोष्ठी के आप संयोजक रहे। फेडरेशन आफ मास्टर प्रिन्टर्स की गवर्निंग कौंसिल के १५ वर्षों तक आप सदस्य रहे। सन् १९५२ से १९७४ तक आप के संयोजकत्व में पन्द्रह बड़ी-बड़ी पुस्तक प्रदर्शनियों का आयोजन हुआ।

आपने अपने समय में २५ पुस्तकें लिखी हैं जिनमें हिटलर की आत्मकथा "मेनकैंफ" का हिन्दी अनुवाद "मेरा जीवन संग्राम" "चेकोस्लोवाकिया लूटा गया" एवं "बाल महाभारत" उल्लेखनीय हैं।

वाराणसी की खत्री हितकारिणी सभा, खत्री एजूकेशन ट्रस्ट, सरस्वती उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, समाज सेवा संघ, समाज हितकारिणी सभा, अरविन्द सोसाइटी आदि संस्थाओं से आप वर्षों से सम्बद्ध हैं।

आप अखिल भारतीय खत्री महासभा के ३०वें आगरा अधिवेशन में अध्यक्ष चुने गये। अपने कार्यकाल में आपने जाति के सभी वर्गों को एक मंच पर लाने और जातीय संगठन को मजबूत बनाकर समाज में प्रेम व सौहार्द का वातावरण उत्पन्न करने का सराहनीय कार्य किया। एक वर्ष के अल्पकाल में ही आपने "दहेज

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

विरोधी सम्मेलन" "अपूलालन्टल विरोधी गोष्ठी" तथा "विवाह मंच" का आयोजन कर समाज सुधार की गतिविधियों को नई दिशा दी। आप खत्री समाज के सजग प्रहरी और प्रेरणास्रोत हैं। खत्री जाति को अपने इस अमूल्य रत्न पर गर्व है।

श्री गुलज़ारी लाल नंदा

श्री गुलज़ारी लाल नंदा का जन्म ४ जुलाई, १९१४ को स्यालकोट में हुआ। आपके पिता श्री का नाम श्री बुलाकी राम और माता का नाम श्रीमती ईश्वर देवी था। एम० ए० और एल-एल० बी० की परीक्षायें पास की और असहयोग आन्दोलन में शामिल हो गये। नेशनल कालेज बम्बई में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर हुये। स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान श्री नंदा ने अनेक बार जेलयात्रा की। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् १९५१ में केन्द्रीय मंत्री बने और १९७१ तक विभिन्न समयों पर केन्द्रीय मन्त्रिमंडल के विभिन्न पद भार सम्हालते रहे। १९६४ और १९६६ में कुछ समय के लिये कार्यवाहक प्रधानमंत्री का पदभार भी नंदा जी ने सम्भाला।

जातिरत्न खत्री श्री सोहनलाल मेहरोत्रा—प्रयाग

आप बचपन से ही विभिन्न सामाजिक एवं राष्ट्रीय कार्यक्रमों में सक्रिय रहे। सन् १९३६-३७ में आपने हरिद्वार के अचानक अग्निकाण्ड में प्रशंसनीय सेवा कार्य किया। सन् १९५४ में प्रयाग कुम्भ मेले के अवसर पर खत्री सभा का अखिल भारतीय स्तर पर कैंप लगाया। प्रयाग निवासी खत्रियों की रामलीला कमेटी, राइफल क्लब, गान्धी शताब्दी समारोह मलूक चतुरशती समारोह अनेक सामाजिक संस्थाओं एवं समारोहों के लिये आपका योगदान सराहनीय रहा है। सन् १९५५ से १९६२ तक आप अवैतनिक मजिस्ट्रेट रहे। सन् १९६८ में प्रान्तीय रक्षादल के डिप्टी कमाण्डर नियुक्त हुये। सन् १९६० से १९६७ तक केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत अवैतनिक सेना भर्ती अधिकारी रहे।

खत्री जाति के संगठन एवं उन्नति के लिये तो आपने अथक परिश्रम किया है। आप १९६२ से १९७२ तक अखिल भारतीय खत्री महासभा के प्रचारमंत्री तथा सन् १९७२ से १९७६ तक प्रधानमंत्री एवं सन् १९७६ से कार्यवाहक अध्यक्ष रहकर जाति सेवा करते रहे। आप एक कर्मठ एवं निष्ठावान जाति सेवी हैं। आप जातिरत्न की उपाधि से विभूषित किये गये।

डा० श्याम नारायण मेहरोत्रा

इटावा में २ जनवरी, १९२० को जन्मे डा० मेहरोत्रा १९८२ से जोधपुर विश्वविद्यालय के कुलपति हैं। इसके पहले वे आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति तथा उत्तर प्रदेश शासन में शिक्षा विभाग के अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कार्य कर चुके हैं।

खत्री पृथ्वीराज कपूर—बम्बई

श्री कपूर कला प्रेमी, पृथ्वी थियेटर के माध्यम से नाट्य कला को जीवन देने वाले सिनेमा संसार के प्रतिष्ठित कलाकार थे। वे कवि, शायर, गायक, वाहक और लेखक थे। उन्हें अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, गुरूमुखी, बंगला, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू आदि भाषाओं का ज्ञान था। भारत सरकार ने उन्हे पद्म भूषण से विभूषित किया था उनका जन्म पेशावर में हुआ था। उनका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक और प्रभावशाली था। वे

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जरूरतमन्द लोगों की भरपूर सहायता करते थे। वे अपने पिता व विमाता का बड़ा सम्मान करते थे। उनकी विमाता अपने पुत्र त्रिलोक कपूर के पास कम पृथ्वीराज कपूर के पास रहना अधिक पसन्द करती थीं। वे राज्य सभा के मनोनीत सदस्य भी रहे।

वे महान शिव भक्त थे। भगवान पर भरोसा रखना उनकी सफलता का रहस्य है। उन्हें कानपुर से विशेष लगाव था। वे खत्री समाज द्वारा स्थापित नवजीवन पुस्तकालय, हटिया, में भी गये। इस पुस्तकालय और संस्थाओं के लिमे उन्होंने झोली फैलाकर धन एकत्र किया। एक बार होली के अवसर पर अपनी नाट्य मंडली के साथ उन्होंने कानपुर में होली मनाई। वे जाति गौरव थे।

श्री हरि किशन लाल कपूर

जन्म २३ दिसम्बर १९२३ में। १९४३ में वायुसेना में कमीशन प्राप्त किया। बाद में वायुसेना के जज एडवोकेट जनरल बने। खेल जगत से विशेष रूप से सम्बद्ध रहे। परम विशिष्ट सेवा मेडल और पद्म श्री से विभूषित श्री कपूर इस समय दिल्ली के उप राज्यपाल पद पर हैं।

खत्री श्री मुन्नूलाल जी सेठ—प्रयाग

सेठ जी ने खत्री सभा भण्डार की समृद्धि में पूर्ण सहयोग दिया। आप सभा में अनेक पदों पर रहे। आपने जाति की सेवा सभा में रहकर बीस वर्षों तक की। आप रामचरित मानस के अच्छे ज्ञाता हैं। आप खत्री समाज में लगभग ४० वर्षों से मानस का पाठ करते चले आ रहे हैं। भगवान राम के भक्त सेठ जी मानव समाज को उत्थान की ओर ले जाने के लिये अग्रसर हैं। खत्री समाज को ऐसे आध्यात्मिक नेतृत्व पर गर्व है।

श्री प्रकाश मेहरोत्रा

जन्मतिथि २६ फरवरी, १९२५। भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और जेलयात्रा की। १९७६ से ८१ तक राज्य सभा के सदस्य रहे। १९८१ से ८३ तक असम और मेघालय के राज्यपाल और ८४-८५ में भूटान में उच्चायुक्त के पदों का भार सम्भाला।

खत्री श्री महेशप्रसाद टण्डन—प्रयाग

श्री टण्डन राजपत्रित् पद से सेवा निवृत्त हुये हैं। अपनी सज्जनता एवं सेवा भावना से आपने सबके दिलों को जीता है। खत्री सभा के माध्यम से आपने गरीब, असहाय लोगों की अमूल्य सेवा की। आप सभा के मंत्री पद पर अनेक वर्षों तक रहकर सेवा करते रहे।

आप असहाय विधवाओं के लिये अन्न-वस्त्र का प्रबंध करते रहते थे। आपने कभी अपना गुणानुवाद नहीं चाहा।

श्री सुन्दर लाल खुराना

१९ फरवरी, १९२८ को झंग (अब पाकिस्तान में) जन्मे श्री खुराना की शिक्षा-दीक्षा लाहौर में हुई। भारत सरकार के अनेक महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर कार्य करने के बाद दिल्ली के उपराज्यपाल तथा तामिलनाडु के राज्यपाल के पदों पर नियुक्त हुये।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

खत्री श्री मूल नारायण टण्डन, प्रयाग

श्री टण्डन जी ने खत्री सभा, प्रमाग के माध्यम से उल्लेखनीय सामाजिक उपकार किये हैं। आपने भण्डारी, उपमंत्री और दुर्गाप्रसाद ट्रस्ट के संयोजक के रूप में सभा को अपनी सेवायें प्रदान कीं। आप ३० वर्षों से भी अधिक समय से सभा की सेवा कर रहे हैं। आप एक कर्मठ समाज सेवी है।

खत्री श्री ब्रजमोहन टण्डन—प्रयाग

आप १४-१५ वर्ष तक खत्री सभा, प्रयाग के मंत्री रहे। आपके समय में एक भण्डार गृह का निर्माण हुआ ताकि सामान सुरक्षित रखा जा सके। इसके लिये आपने अपने अथक परिश्रम से चंदा इकट्ठा किया। आप खत्री समाज के विवाहों में सभा के लिये दान लेने पहुँचते रहे।

अपने विशेष सेवा कार्यों के लिये अभिनन्दनीय हैं।

खत्री श्री सीताराम कंचन 'मृगेन्द्र'—तालबेहट (ललितपुर)

श्री कंचन जी तालबेहट निवासी, "हिंदी भूषण" बयोवृद्ध खत्री समाज के स्ततम्भ हैं। लगभग सन् १९४० से आप खत्री हितैषी से जुड़े हैं। निरन्तर साहित्य सेवा में लीन आपने अनेक पुश्तकें लिखी हैं। आप सामाजिक कार्यों में भी अपना अधिक से अधिक समय देते रहते हैं। बुढ़ापा आप पर हावी नहीं वरन् आपने बुढ़ापे को जीता हुआ है।

खत्री ब्रिगेडियर पी.सी. पुरी—फतेहगढ़

श्री पुरी सेना में जून १९५७ में आफीसर के पद पर नियुक्त हुये। सन् १९६५ और १९७१ के लड़ाइयों में आपने अपना रण कौशल प्रदर्शित किया। आप राजपूत रेजीमेण्ट, फतेहगढ़ के कमाण्डेण्ट नियुक्त हुये।

आप १९६९-७१ में इथोपिया तथा १९७८-७९ में ईरान प्रतिनियुक्ति पर गये

आपको भारत सरकार ने विशिष्ट सेवा पदक से १९७२ में सम्मानित किया। खत्री जाति को आप पर गर्व है।

खत्री ललित मोहन थापर—कलकत्ता

श्री थापर एक बहुत बड़े उद्योगपति हैं। थापर ग्रुप के आप मालिक हैं। ऐसी अनेक कम्पनियाँ भारत में हैं जिसके श्री थापर चेयरमैन हैं तथा अन्य ऐसी भी कम्पनियाँ हैं जिनमें आप डाइरेक्टर हैं।

आपने अपनी कई कम्पनियाँ विदेशों में भी खोली हैं। भारत के राष्ट्रपति ने आपको सन् १९७३ में आई० आई० टी० कानपुर, के बोर्ड आफ गवर्नर्स का चेयरमैन नियुक्त किया था जिस पद पर आप १९८० तक रहे। आप जाति के गौरव स्तम्भ हैं।

खत्री रायबहादुर एम.ए. ओबेराय—बम्बई

श्री ओबेराय होटलों के राजा कहे जाते हैं। आपका थचपन बड़े कष्ट में बीता। आप गांव के रहने वाले सीधे साधे व्यक्ति थे पर समय के थपेड़ों ने आपको शिमला ला पटका जहाँ आपने एक होटल में मामूली सी नौकरी की।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अपनी सूझबूझ और मेहनत से कालान्तर में आप एक होटल के मालिक बने जो उत्तरोत्तर उन्नति करता गया।

आज ओबेराज जी के अनेक होटल हैं। इसमें ओबेराय इण्टरकॉण्टीनेण्टल होटल, नई दिल्ली तथा ओबेराय शेरटन बम्बई प्रसिद्ध होटलों में हैं।

श्री ओबेराय यद्यपि अस्सी पार कर चुके हैं किन्तु अभी भी आपकी दिनचर्चा प्रातः ५ बजे आरम्भ हो जाती है। वे हफ्ते के सातों दिन कठिन परिश्रम करते हैं। आपमें भारतीय भावना विद्यमान है और अप जरूरतमंद की मदद करते रहते हैं।

खत्री जाति को आप पर गर्व है।

खत्री श्री जगदीश कपूर—सोनीपत

बाइसिकिल व्यवसाय में श्री जगदीश कपूर का नाम जाना माना है। एटलस साइकिल इण्डस्ट्रीज लि०, सोनीपत, के आप एक्जीक्यूटिव डाइरेक्टर हैं। पहले आप अपने पिता के व्यवसाय में हाथ बटाते थे। आप बड़े कुशल और अनुभवी व्यवसायी हैं। आपने देश विदेश की सफल यात्रायें की हैं और आपके व्यवसाय में लगे लोग आपसे बड़े प्रभावित हुये।

आप देश की अनेक कम्पनियों के प्रेसीडेण्ट, डाइरेक्टर, मेम्बर आदि हैं और सफलतापूर्वक अपना मार्ग-दर्शन देते हैं। भारत सरकार ने भी आपको सम्मानित किया है।

इसके अतिरिक्त आप अनेक ऐसी ट्रस्टों व संस्थाओं से जुड़े जो गरीबों और जरूरतमंद लोगों की निरन्तर सहायता करती रहती हैं। इसके अलावा अपनी ओर से आप गरीबों की सहायता करते रहते हैं। उक्त ट्रस्ट व संस्थान कई अस्पताल दाँत व आँख के भी सफलता से चला रहे हैं। कई वाचनालय, पुस्तकालय एवं क्रीड़ा केन्द्र की चला रक्खें हैं। तीर्थ यात्रियों की सुविधा हेतु ट्रस्ट हरिद्वार में तिमंजिला एक आश्रम भी चला रहा है।

आप एक ही साथ बड़े व्यवसायी, उद्योगपति, शिक्षाविद एवं सामाजिक जनसेवी सब हैं। आप रोटरी इण्टरनेशनल के जिला गवर्नर भी रह चुके है। आपने अपने समय में मूलचन्द खैराती राम अस्पताल को एक लाख पचास हजार की एक वैन भेंट करवाई। रोटरी में सेवा करते हुये आपको अनेक पारितोषिक भी मिले।

खत्री जाति को आप पर गर्व है।

खत्री डा० एम० पी० मेहरोत्रा—कन्नौज

डा० मेहरोत्रा का जन्म कन्नौज में हुआ किंतु आप देश विदेश में अपना नाम रोशन कर सके अपने कठिन परिश्रम और लगन से। आपने देश विदेश में अनेक डिग्रियाँ हासिल कीं। यह हमारी जाति का गौरव है। अनेक स्थानों पर कार्य करने के पश्चात् अन्ततः आप आगरा मेडिकल कालेज से जुड़ गये। आपकी सेवाओं से संतुष्ट आगरा कालेज ने सेवा निवृत्ति के पश्चात् भी आपको नहीं छोड़ा और मार्गदर्शन के लिये आपको अपने साथ बनाये रक्खा।

आपको विशिष्ट सेवाओं के लिये डा० बी० सी० राय एवार्ड मिला। इसके अतिरिक्त अनेक पुरस्कार भी आपकी झोली में आ गिरे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

डा० महादेव प्रसाद मेहरोत्रा उन जाने माने नामों में एक हैं जिन्हें अनेक पुरष्कारों से सम्मानित किया गया है। आप सरोजिनी नायडू मेडिकल कालेज आगरा के मेडिसिन विभाग के एनी राइट्स प्रोफेसर रहे। आपको सशस्त्र सेना मेडिकल कालेज, पुणे, के विशेष दीक्षांत समारोह में फिजीशियन एसोसिएशन आफ इंडिया की ओर से फाउण्डर फेलोशिप प्रदान कर सम्मानित किया गया। २३ जनवरी, १९८८ से आप मेडिसिन विभाग के सेवा-निवृत्त निदेशक हैं। नोबुल पुरस्कार विजेता, हावर्ड स्कूल पब्लिक हेल्थ के हृदय रोग विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर डा० वर्नाड लान ने अपने कर कमलों से डा० मेहरोत्रा को पुरस्कार प्रदान किया। आपका नाम "भारत में कौन, क्या १९८८" पुस्तक में दर्ज किया गया है। डा० मेहरोत्रा को निकट भूतकाल में भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद की गवर्निंग वाडी का सदस्य मनोनीत किया गया है।

हम सभी को अपने ऐसे विद्वान जाति भाई पर गर्व है।

खत्री श्री लाल जी मेहरोत्रा—जौनपुर

प्रथम बार जब भारत में आई० सी० एस० की परीक्षा हुई तो श्री लाल जी मेहरोत्रा इसमें उत्तीर्ण हुये। पर उसी के आसपास महात्मा गांधी से प्रभावित श्री मेहरोत्रा आनन्द भवन इलाहाबाद आ गये और अंग्रेजी के अखबार "इण्डिपेण्डेण्ट" के सम्पादक मण्डल में शामिल होकर देश की आजादी की लड़ाई में कूद पड़े।

ब्रिटिश सरकार ने जब इस अखबार पर प्रतिबंध लगा दिया और इसके सम्पादक श्री महादेव देसाई गिरफ्तार हो गये और पंडित जवाहर लाल नेहरू जेल से छूट कर आ गये तो आप नेहरू जी के काफी निकट हो गये। बाद में श्री मोतीलाल नेहरू ने आपको अपना निजी गोपनीय सचिव बना लिया। तब आप बड़े-बड़े दिग्गज राजनीतिज्ञों से परिचित हुये।

कालांतर में श्री हकीम अजमल खाँ द्वारा निर्मित कमेटी के आप सचिव चुने गये। इस संदर्भ में आपने सारे देश का भ्रमण किया और बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों के सम्पर्क में आये।

कुछ समय बाद पं० मोतीलाल नेहरू ने आपको सेठ जमनालाल बजाज के साथ व्यापार सीखने के लिये कर दिया किंतु राजनीति के लिये भी सक्रिय रहने को कह दिया। सेठ जी ने आपको करांची भेजा जहाँ आपने एक शाखा खोली और अच्छा व्यापार किया। साथ ही राजनीति में भी काम करते रहे आप १९४१-४२ में करांची के मेयर रहे तथा १९४०-४२ में इण्डियन मर्चेण्ट चेम्बर के प्रेसीडेण्ट भी।

इनका घर कांग्रेस के सभी बड़े राजनीतिज्ञों का अड्डा था। अपने बीस साल के सिंध प्रवास में रहकर ५ वर्ष जेल में रहे। १९३२ में आप अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के एक सचिव भी नियुक्त हुये।

व्यापार के सिलसिले में आप लंदन में भी रहे जहाँ आप इण्डियन चेम्बर आफ कामर्स के प्रेसीडेण्ट भी रहे। आपने सारे विश्व के देशों में भ्रमण किया और अपनी छाप छोड़ी।

आप बराबर बजाज ग्रुप से जुड़े रहे किंतु १९५६ में आपको इसे छोड़ना पड़ा जब पंडित नेहरू ने आपको राजदूत बनाकर वर्मा भेजा और बाद में जापान जहाँ आप १९६५ तक रहे।

तत्पश्चात् उत्तर प्रदेश शासन के साथ तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय में बाइस चांसलर के पद पर सफलतापूर्वक कार्य सम्पन्न किया।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आप अनेक कम्पनियों के डाइरेक्टर हैं तथा समाज सेवा में लगे हुये हैं। आपने अपने धन से तीन ट्रस्ट खोले। इससे जौनपुर में एक अस्पताल एक संगीत शिक्षा केन्द्र बम्बई में अन्य से गरीब बच्चों की सहायता होती है। आपका निधन २३-२-८८ को हुआ।

आपके कार्यकलापों ने खत्री जाति का मस्तक ऊंचा किया है।

खत्री श्री पुरुषोत्तम दास जलोटा—बम्बई

बाबू पुरुषोत्तम दास जलोटा भजन संसार में एक जाना माना नाम है। आप भजन सम्राट के नाम से जाने जाते हैं। पहले आप लखनऊ में ही निवास करते थे और आकाशवाणी लखनऊ से भजन सुनाया करते थे। तत्कालीन प्रदेश सरकार की गवर्नर सुश्री सरोजिनी नायडू का आप पर वरद् हस्त था। उनके आरक्षण में श्री जलोटा ने दिन दूनी रात चौगुनी उन्नत्ति की। वैसे और भी सभाओं और विशेष कार्यक्रमों में लखनऊ तथा उससे बाहर भी भजन सुनाने जाते थे और अपने सुमधुर स्वर से जनता को मंत्रमुग्ध कर लेते थे। आपके भजनों के अनेक रिकार्ड व कैसेट बन गये हैं। आपका प्रिय भजन जो सभी को पसंद है इस प्रकार है :—

"ठुमुक चलत रामचन्द्र बाजत पैंजनिया"

यह भजन बहुत प्रसिद्ध हुआ और महफिलों में इसकी मांग अवश्य होती है। आजकल आप बम्बई में रहते हैं और एक संगीत विद्यालय चला रहे हैं। इस प्रकार संगीत की सेवा करते हुये उसका प्रचार प्रसार भी कर रहे हैं।

आपके सुपुत्र आपके ही समान प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे हैं। आप हैं श्री अनूप जलोटा जो भजन सम्राट के नाम से जाने जाते हैं। वैसे ये गजल भी गाते हैं। आपकी ख्याति देश विदेश में व्याप्त है। अनेक रिकार्ड व कैसेट बाजार में खब बिक रहे हैं।

खत्री श्री पी० डी० टण्डन—इलाहाबाद

श्री टण्डन मूलत: लेखक एवं पत्रकार हैं। आपकी लगभग ३० पुस्तकें हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी और तमिल व तेलगू में छप चुकी हैं। आप उत्तर प्रदेश सरकार में सूचना, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक अनुसंधान के मंत्री और उच्च शिक्षा के राज्य मंत्री रह चुके हैं। आप उत्तर प्रदेश वर्किंग जर्नलिस्ट फेडरेशन के अध्यक्ष और इलाहाबाद यूनीवर्सिटी की कार्यकारिणी कौंसिल के सदस्य भी रहे हैं।

स्वाधीनता संग्राम से आप बराबर जुड़े रहे। अन्तत: १६ महीने नैनी जेल में बिताये। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने आपको मई १९६० में ६ साल के लिये विधान परिषद का सदस्य मनोनीत किया था। १९६८ में आप फिर ६ साल के लिये नामजद किये गये थे। १९७२ में उन्हें फिर उत्तर प्रदेश विधान सभा ने विधान परिषद के लिये चुना।

१९७१ में उत्तर प्रदेश सरकार ने आपको आपकी पुस्तक "नेहरू—न जानी हुई बातें" के लिये पुरस्कृत किया था।

आपकी पुस्तक "नेहरू आपके पड़ोसी" की प्रस्तावना महात्मा गांधी ने लिखी थी। आप जाति तथा समाज सेवक हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

खत्री गोपाल चन्द्र मेहरोत्रा—मथुरा

आपका जन्म आगरा के प्रतिष्ठित मेहरोत्रा परिवार में १३-८-१९१६ को हुआ। वर्ष १९१७ में आप मथुरा आ गये और तब से सतघड़े मोहल्ले में रहकर समाज सेवा कर रहे हैं।

मथुरा के प्रसिद्ध जाति सेवी स्व० चौधरी गोवंधनदास सेठ के नेतृत्व में आप वर्ष १९३५ से खत्री समाज की सेवा में लगे हुये हैं। वैसे तो बचपने से आप में समाज सेवा की रुचि रही पर वर्ष १९६० से आप खत्री सभा मथुरा के सक्रिय कार्यकर्ता रहे। किसी भी परिवार में किसी के स्वर्गवास हो जाने पर उसके दाह संस्कार की सारी व्यवस्था आप करते थे।

आप खत्री सभा के उपमंत्री, मंत्री तथा बर्तन विभाग के मंत्री के रूप में २० वर्षों तक खत्री समाज की सराहनीय सेवा करते रहे।

वर्ष १९३६ से आप खत्री हितैषी से सम्बंधित रहे हैं। अब भी ७१ वर्ष की आयु होने पर भी आप खत्री हितैषी की रुचिपूर्वक सेवा कर रहे हैं।

खत्री जाति भूषण काशीनाथ मेहरोत्रा—लखीमपुर खीरी

आपने खत्री जाति की अद्वितीय सेवा की जिसके फलस्वरूप शाहजहांपुर की बैठक में ११-११-८६ को आपको "जातिभूषण" की उपाधि से अलंकृत किया गया।

आपने एक ऐसा विलक्षण सामाजिक लेख पत्र तैयार किया और अपने १५० परिवार जनों तथा कुछ विशिष्ट सज्जनों को भेंट किया जिसका कोई जोड़ नहीं। यह है अपने परिवार का वंशवृक्ष जो वर्ष १९५६ से वर्ष १९८५ तक का है। इसे तैयार करने में आपको चार वर्ष तक कठिन परिश्रम करना पड़ा। इसमें कई विशेष सूचनायें भी दी गई हैं। इसे आपने एक कैलेण्डर का रूप दिया। इसी संदर्भ में आप एक निर्देशिका भी प्रकाशित करवा रहे हैं जिसमें अपने परिवार के कार्यरत १५० परिजनों के नाम, उम्र व्यवसाय व पूरे पते सम्मिलित होंगे।

खत्री समाज की सेवाओं के लिये लोग आपको स्मरण करते हैं।

खत्री डा० गुरुप्रसाद कक्कड़, एम० काम० एम० एड० पी० एच० डी०—वर्धा

वर्ष १९३० में हिंगनी ग्राम जिला वर्धा में जन्में डा० कक्कड़ एक मेधावी और जाने माने व्यक्तित्व वाले समाज सेवी सारे महाराष्ट्र में अपने शैक्षिक विचारों एवं योगदान के लिये प्रसिद्ध हैं।

शिक्षा संस्थाओं से जुड़े रहकर अध्यापन कार्य करते हुये आपने अनुभव किया कि भारत में जो अध्यापक तैयार किये जाते हैं वे हमारे उपयुक्त नहीं हैं। अतः आपने अपनी रिसर्च इसी विषय को लेकर की और खोज प्रस्तुत की कि भारत का अध्यापक कैसा होना चाहिये। ये आपका निश्चय ही प्रथम प्रयास था जिसे भूरि-भूरि प्रशंसा मिली और अन्ततः नागपुर विद्यापीठ ने आपको पी-एच० डी० की उपाधि से विभूषित किया। हमारे खत्री समाज के लिये यह बड़े गौरव का विषय है। अपने इस शोध प्रबंध पर आधारित एक अनूठा ग्रंथ "माध्यमिक अध्यापक शिक्षा नये आयाम एवं दिशायें" प्रस्तुत किया।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आप बी० ए० डी० कालेज के प्राचार्य हैं। आप नाटककार तथा निर्देशक भी रहे हैं। अनेक नाटकों को प्रस्तुत कर उसकी आमदनी को आपने पाठशालाओं एवं समाज सेवी संस्थाओं को दान कर दिया। आप शिक्षा से जुड़ी हुई अनेक संस्थाओं के अध्यक्ष अथवा सदस्य हैं। आपने पत्रकारिता के क्षेत्र में भी प्रयास किया है। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर आपके कार्यक्रम प्रस्तुत होते रहते हैं। आप अपने सामाजिक कार्यों के लिये इस क्षेत्र में बड़े लोकप्रिय हैं। वे अखिल भारतीय खत्री महासभा के आजीवन सदस्य तथा कार्यकारिणी में विदर्भ का प्रतिनिधित्व करते हैं। विदर्भ खत्री सभा के आधार स्तम्भ तथा कार्यकारिणी के सदस्य हैं। आपके मार्गदर्शन में खत्री सभा उत्तरोत्तर उन्नति कर रही है।

खत्री देवी दास भगत बेरी—कानपुर

आपने अपने व्यापार से बहुत धन कमाया। आपका पं० मोतीलाल नेहरू, पं० मदन मोहन मालवीय तथा अन्य बड़े-बड़े नेताओं से परिचय था। हिंदू विश्वविद्यालय बनारस की स्थापना के लिये चंदा जमा करने में आपने अपना पूरा सहयोग दिया। कानपुर हिंदू अनाथालय के आप संस्थापक थे। आप स्पष्टवक्ता थे।

खत्री रायसाहब गोपीनाथ मेहरोत्रा—कानपुर

आप कानपुर नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में एक हैं। आपके पिता श्री के प्रयत्न से कानपुर में "गुरुनारायण खत्री इण्टर कालेज" आज भी विद्यमान है। यह खत्री समाज का गौरव है।

आपने अपने व्यवसाय में बहुत उन्नति की और आज प्रतिष्ठित व्यापारियों में आपकी गिनती है।

खत्री लाला छंगामल कपूर—कानपुर

आपने व्यापार में अपनी अच्छी धाक जमाई। सामाजिक कार्यों में आपकी विशेष रुचि रही। आपके ही प्रयास से कानपुर हटिया में "नव जीवन पुस्तकालय" की स्थापना हुई। माता गंगा जी के प्रेमी, कलाकारों का आदर करने वाले तथा राष्ट्रीय आंदोलनों में सहयोग देने वाले आप एक विशेष व्यक्तित्व के धनी रहे।

कानपुर के प्रसिद्ध "तिलक हाल" के निर्माण में आपका हाथ रहा तथा जीवनपर्यंत आप "तिलक मेमोरियल के अध्यक्ष रहे।

खत्री गोपालदास टण्डन—कानपुर

आपके पूर्वज फर्रुखाबाद से आकर कानपुर में बस गये थे। लाला बुद्धूलाल मेहरोत्रा से मिलकर आपने "ज्वालाप्रसाद राधाकृष्ण" नामक फर्म की स्थापना की जिसने उत्तर भारत में अपना नाम उज्ज्वल किया। आप सदा देश भक्त रहे। आप सामाजिक कार्यों में विशेष रुचि लेते रहे। आपके ही प्रयास से "सार्वजनिक खत्री धर्मशाला" व "खत्री होमियोपैथिक डिस्पेंसरी" बनी।

आप के ही प्रयास से फर्म ज्वाला प्रसाद राधाकृष्ण ने निराश्रितों के सहायतार्थ खत्री बेनीफिट सोसाईटी लखनऊ को २००० रु० दान दिए थे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

खत्री श्री विद्यासागर महथा—गिरिडीह (बिहार)

"ज्योतिष वाचस्पति" एवं "ज्योतिषरत्न" जैसी उपाधियों से विभूषित गुणगण युक्त ज्योतिषाचार्य श्री विद्यासागर जी महंथा जी फलित ज्योतिष में विश्वास करते हैं। अतः आपने इसे एक नई दिशा दी है।

विभिन्न प्रांतों से प्रकाशित अनेक पत्र-पत्रिकाओं में आपके गुणकारी एवं आलोचनात्मक लेख निकलते रहते हैं। उदाहरणार्थ दिल्ली से "भारतीय ज्योतिष", सहारनपुर (उ० प्र०) से "ज्योतिष बोध" एवं जयपुर (राजस्थान) से "ज्योतिष मार्तण्ड" कुछ ऐसी जानी मानी ज्योतिष की पत्रिकायें हैं जो इस बात के लिए लालायित रहती हैं कि उनकी पत्रिकाओं में श्री महथा जी का लेख अवश्य हो।

खत्री समाज ऐसी विभूतियों के प्रति नत मस्तक है।

खत्री श्री कृष्ण नरायन मेहरोत्रा—बरेली

बरेली के एक सम्पन्न खत्री परिवार में जन्मे श्री मेहरोत्रा पेशे से एक वकील रहे। किंतु सरकारी नौकरी में आ गये। विशेष रूप से आप सेल्स टैक्स विभाग में उच्च पदों पर प्रांत के विभिन्न नगरों में कार्यरत रहे।

आपके सभी बच्चे अच्छी नौकरियों में लगे हैं और देश की सेवा कर रहे हैं।

खत्री श्री पन्नालाल कपूर—इलाहाबाद

खत्री समाज एवं विशेष रूप से धर्मावलम्बी हिंदू आप पर गर्व करता है। अपने व्यवसाय के साथ-साथ आप धर्म की जो सेवा कर रहे हैं वह अद्वितीय है। आपने अनेक पुस्तकें निकाल कर जहाँ हिंदू समाज का कल्याण किया है वहीं धर्म के निरंतर प्रचार से हिंदू मात्र की सेवा कर रहे हैं।

विशेष रूप से निम्नलिखित पुस्तकें उल्लेखनीय हैं :—

(१) प्रभू दर्शन (२) सन्त दर्शन (३) भजन लहरी (४) दुर्गा लहरी (५) हनुमान चालीसा (६) बजरंग बाण (७) तिथि, पर्व, त्योहार पत्रिका।

आप इस प्रकार जो निष्काम सेवा जनता की कर रहे हैं उसके लिये आप धन्यवाद के पात्र हैं।

भगवान आपको चिरायु करे ताकि अनेक वर्ष आप हिंदू की, धर्म की, खत्री जाति एवं समाज की भरपूर सेवा करते रहे। आप खत्री सभा प्रयाग के उपाध्यक्ष भी हैं।

खत्री डा० गोपालदास सेठ—मथुरा

आपका नाम राजनीतिक क्षेत्र में चर्चा का विषय है। आप १९३० में नमक सत्याग्रह में गिरफ्तार हुये। दिल्ली कांग्रेस में आप मथुरा से जत्था लेकर पहुंचे थे और गिरफ्तार हुये। १९३२ में पुनः गिरफ्तार हुये। सन् १९४० में सत्याग्रह में भाग लिया और १९४१ में गिरफ्तार हुये। १९४२ के आंदोलन में सक्रिय भाग लेने पर पुनः गिरफ्तार हुये।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

देश की स्वतंत्रता के पश्चात् होमगार्डस-ट्रेनिंग पी० आर० डी० के संगठन में आपका प्रमुख भाग रहा। नगर कांग्रेस कमेटी के सभापति, मंत्री, कोषाध्यक्ष आदि पदों को सुशोभित कर चुके हैं। आप निस्पृह जीव निस्वार्थ स्वतंत्रता युद्धो के सक्रिय सेनानी रहे हैं। आप मथुरा नगर की विभूति हैं तथा आप पर गांधीवाद की छाप है।

खत्री श्री सुन्दरलाल अरोड़ा—मथुरा

श्री अरोड़ा जी की शिक्षा दीक्षांत कलकत्ता में हुई किंतु आपने वकालत मथुरा में की। कलकत्ता में रहकर आप पर भी राजनैतिक क्रांति का बड़ा प्रभाव पड़ा और यही कारण था कि वकालत करते हुये आप राष्ट्रीय कार्यक्रमों व आंदोलनों में भाग लेते रहे। अन्ततः १९३२ में आपको जेल जाना पड़ा। वर्ष १९३५ में आप कांग्रेस कमेटी के वाइस प्रेसीडेण्ट रहे। आप जिला अदालत के भी अध्यक्ष रहे। जीवन के अंतिम क्षणों तक आप राष्ट्रीयता के प्रतीक बने रहे। इन्होंने प्रो० चिंतामणि शुक्ल के विरुद्ध (१९५४–५७) में लड़ाई जीती जो नगरपालिका वृन्दावन के विषय में थी। इसमें एक स्वतंत्रता सेनानी का मामला था जिसमें विजय श्री उनके हाथों रही। इसी प्रकार अनेक राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं की सदा सहायता करते रहे।

मथुरा का जन मानस आने वाले समय में वर्षों आपको याद करता रहेगा।

खत्री स्व० हृदयनरायन टण्डन—मथुरा

आपने अपने व्यवसाय के साथ-साथ ३० वर्षों तक समाज की खब सेवा की तथा अन्नपूर्णा देवी ट्रस्ट के अध्यक्ष रहे। वर्ष १९८६ में आपका देहांत हो गया।

खत्री स्व० मौजीलाल साहनी—तालबेहट

महारानी लक्ष्मीबाई झांसी के यहां आप राजकीय स्तर के श्रेष्ठ पहलवान रहे। समय-समय पर आपको राजकीय कोष से पुरस्कार स्वरूप भारी धनराशि मिलती रही जिसे आपने सदुपयोग के कार्य में लगाया। तालबेहट मानसरोवर झील के किनारे बाहरकोट पर पक्का घाट बनवाया जिस पर हजारों की संख्या में आज भी लोग स्नान करते हैं। घाट पर एक भव्य शिवालय भी बनवाया। भगवान का जन्म बिहार उत्सव भी उसी घाट पर मनाया जाता है। ये आपके गौरव का प्रतीक है।

खत्री स्व० बैजनाथ प्रसाद खत्री—चंदाउनी जिला ललितपुर

तालबेहट में तालाब के अंदर कोट में एक हनुमान मंदिर का निर्माण करवाया जो अपनी रमणीयता एवं प्राकृतिक सौंदर्य के लिये आज भी विख्यात है। इसका निर्माण सम्वत् १९७४ वि० में हुआ था।

खत्री स्व० कुंजीलाल उर्फ कुंजे खत्री—गुर्जा (ललितपुर)

हार्दिक प्रेरणा से आपने देव स्थानों एवं रास्तों पर अनेक कुयें बनवाये जिससे राहगीरों एवं जन मानस की प्यास की तृप्ति हो। आपने अपनी अच्छी धनराशि इन कुओं के निर्माण में लगाई।

गुस्सा अकल को खा जाता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

खत्री डा० रामशरण कंचन—तालबेहट

आप तालबेहट के प्रथम सर्जन हैं। आजकल आप मेडिकल कालेज, औरंगाबाद में डीन के पद पर आसीन हैं। आप नम्र, मृदुभाषी एवं सरल स्वभाव के हैं। आप गरीबों की निस्वार्थ एवं निशुल्क सेवा करते हैं।

खत्री स्व० जातिभूषण प्रताप नरायन कपूर—कन्नौज

स्वर्गीय कपूर जी को उनकी उत्तम सेवाओं के लिये खत्री समाज ने "जाति भूषण" की उपाधि से अलंकृत किया था। आप उ० प्र० खत्री सभा के वर्ष १९८२ से १९८५ तक अध्यक्ष रहे। आपके समय में अभूतपूर्व कार्य हुये। आपके नेतृत्व में कन्नौज का ऐतिहासिक खत्री अधिवेशन सम्पन्न हुआ था। गुप्तदानी एवं समाज सेवियों में आपका उच्च स्थान है। अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं से अंत तक आप जुड़े रहे। हम उन्हें सदा याद रखेंगे।

खत्री श्री जातिभूषण कालीचरण जी टण्डन—कन्नौज

जाति भूषण वयोवृद्ध कांग्रेसी नेता एवं खत्री समाज के कर्मठ कार्यकर्ता एवं जाति स्तम्भ बाबू कालीचरण टण्डन जी सदा ही समाज के मार्गदर्शक रहें हैं। भगवान आपको चिरायु करे। आप प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी रहे। महात्मा गांधी के नेतृत्व में आपने खुलकर १९३०, १९३२, १९४१ एवं १९४२ में भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। वर्ष १९४६ से १९५७ तक आप उ० प्र० विधान सभा में कन्नौज क्षेत्र से विधायक, सचेतक एवं कांग्रेस दल के मंत्री रहे। १९६१ से १९७० तक जिला परिषद के अध्यक्ष रहे। १९६३ से अब तक आप अखिल भारतीय पंचायत संघ के पदाधिकारी एवं सदस्य हैं। १९६७ से १९६८ तक आपने गाँव-गाँव में घूमकर विनोबा भावे के भूदान आंदोलन के अंतर्गत ग्राम दान कराया। सन् १९८२ में आपने इटली, स्वीटजरलैण्ड, फ्रांस, इंगलैण्ड एवं अमेरिका की सद्भावना यात्रा की।

खत्री जाति के उन्नयन में आपने स्थानीय, प्रांतीय तथा अखिल भारतीय स्तर पर अनेक हित के कार्यक्रमों द्वारा जाति हित किया। सन् १९८३ में कन्नौज अधिवेशन में स्वागताध्यक्ष के रूप में आपका सहयोग सदा स्मरणीय रहेगा। वर्तमान में आप उ० प्र० खत्री सभा के वरिष्ठ उपाध्यक्ष हैं। आपको "जातिभूषण" से अलंकृत किया गया।

खत्री जातिभूषण पूरनचन्द बेरी—आगरा

आपको "जातिभूषण" की उपाधि से विभूषित किया गया। उत्कट समाज सेवी तथा स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री बेरी को सभी चाहते हैं। आप विभिन्न संस्थाओं में कार्य करते हुये अनेक लोगों को आर्थिक सहायता प्रदान कर रहे हैं। आपने अपने पितामह के नाम पर एक धर्मशाला का निर्माण कराया। आप खत्री समाज के सुदृढ़ स्तम्भ हैं। आप स्थानीय व प्रांतीय एवं अखिल भारतीय खत्री सेभाओं को सदा अपना सक्रिय योगदान देते रहे हैं। आप अखिल भारतीय खत्री महासभा के महामंत्री, संगठन व प्रचार मंत्री भी रहे हैं। आप उ० प्र० खत्री सभा के निवर्तमान कार्यवाहक अध्यक्ष रहे हैं। आप आगरा नगर की अनेक धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं के उपाध्यक्ष व अध्यक्ष हैं। खत्री समाज आपके समक्ष नत मस्तक है।

अहंकार मान को खा जाता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री श्री विनोद कुमार कंचन—तालबेहट

आप इस क्षेत्र के प्रथम भू-वैज्ञानिकी में एम० टेक० हैं। आपके निर्देशन में बँगलोर में स्वर्ण भण्डार प्राप्त हुआ। वर्तमान में आपके संरक्षण में अलवर (राजस्थान) में ताँबे की खुदाई का काम चल रहा है। आप भूटान राज्य में भी प्रति नियुक्ति पर रहे हैं। वहाँ आपने सराहनीय कार्य करके अपने देश को सम्मान दिलाया।

खत्री स्व० श्री कुंजबिहारीलाल जी शिवानी—तालबेहट

आप पेशे से वकील थे। अपने जमे हुये व्यवसाय के साथ ही आपने आजादी की लड़ाई में भाग लिया और कई बार जेल गये तथा यातनायें सहीं।

आप प्रथम बार स्वतंत्र भारत में झांसी क्षेत्र से विधायक बने तथा अपने कार्य कलापों के लिये प्रशसनीय रहे।

खत्री स्व० गौरीशंकर टण्डन—लखनऊ

आप जीवन पर्यन्त अध्यापन कार्य करते रहे तथा कालीचरण हाई स्कूल से सम्बद्ध रहे। आपने डटकर समाज सेवा की। खत्री समाज के तो आप जैसे प्राण थे। आपने द्वितीय सम्पादक के रूप में "खत्री हितैषी" पत्रिका की १९३६ से १९४१ तक अभूतपूर्व सेवा की। आप आजीवन खत्री उपकारिणी सभा के सक्रिय मंत्री रहे। आपने लखनऊ खत्री सभा की भी बहुत सेवा की।

आप एक कुशल सम्पादक, सुयोग्य अध्यापक तथा सच्चे समाज सेवी थे। आपने अंग्रेजी तथा हिन्दी में अनेक पुस्तकें लिखीं।

खत्री स्व० डा० प्रेम नारायण टण्डन—लखनऊ

डाक्टर साहब लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर थे। आपने एम० ए० पी० एच० डी० किया था। जिस समय सरकार कम्पनी ने वर्ष १९३६ में "खत्री हितैषी" पत्रिका का आरम्भ किया तो सरकार कम्पनी के बाबू महाराज किशोर टण्डन जी ने इसके प्रथम अंक का प्रकाशन बड़ी सजधज के साथ कराया। सम्पादक मण्डल के तीन सदस्यों में डा० टण्डन भी एक थे। परंतु सारा कार्य डा० टण्डन जी ने ही सम्पन्न कराया था। आप वर्ष १९४१ तक लगभग पांच वर्ष 'खत्री हितैषी" के सम्पादक रहे।

डा० टण्डन अध्यापक के साथ-साथ हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठ एवं ख्याति प्राप्त लेखक तथा आलोचक थे। आपने लगभग १५० पुस्तकें लिखीं जिनका पूरे भारत तथा विदेशों में व्यापक प्रचार एवं प्रसार हुआ। आपका निधन २० अप्रैल १९७३ को हो गया।

खत्री स्व० श्रीकृष्ण चन्द मेहरोत्रा—वाराणसी

वाराणसी में एक सम्भ्रान्त खत्री परिवार में जन्मे माँ सरस्वती के पुत्र जीवन भर विद्या की ही सेवा में लगे रहे। आपने जीवन पर्यन्त अध्यापन कार्य किया। आपका जन्म राष्ट्रीय पर्व १५ अगस्त १९३६ को हुआ था। सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में आपका विशिष्ट स्थान था। अनेक संस्थाओं से आप सम्बद्ध थे। सन् १९६६ में आपने संघ के सांस्कृतिक मंत्री के रूप में दक्षिण पूर्व एशिया की यात्रा की।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितकारिणी सभा के आप कर्मठ पदाधिकारी तथा खत्री संदेश के सम्पादक थे। आप ही विजया-दशमी पर्व को वर्तमान रूप देने वाले द्रष्टा थे। खत्री जाति की उन्नति के लिये आपने अनेक लेख व गोष्ठियां आयोजित की थीं।

खत्री गोपालदास खन्ना—इलाहाबाद

स्वावलम्बी, निर्भीक एवं स्पष्टवक्ता श्री खन्ना जी का जन्म इलाहाबाद के एक लम्बे प्रतिष्ठित घराने में २० जनवरी वर्ष १९२१ में हुआ था।

आप एक कुशल, कर्मठ, सहृदय समाजसेवी हैं। अपने बाल्यकाल में आपने बड़ी कुशलता से बाल सम्मेलन संस्था का संचालन किया था। स्व० राजर्षि पुरुषोत्तम दास जी टंडन एवं स्व० महादेव प्रसाद टण्डन द्वारा प्रशंसित श्री खन्ना जी ने सूर्वप्रथम ५१ बालकों का सामूहिक यज्ञोपवीत संस्कार बड़ी धूमधाम से करवाया तथा खत्री सभा को कुछ राशि बचाकर ही दी उससे कुछ लिया नहीं।

श्री खन्ना जी उ० प्र० खत्री सभा के प्रथम संरक्षक सदस्य हैं। वर्ष १९८२ में आपने खत्री सभा प्रयाग के तत्वावधान में होली मिलन का सफल आयोजन किया था।

खत्री श्री शान्ति नारायण चड्ढा—इलाहाबाद

कर्मठ, लगनशील एवं जाति सेवी श्री चड्ढा का जन्म इलाहाबाद के एक प्रतिष्ठित घराने में वर्ष १९१३ में हुआ था। आप मृदु भाषी और व्यवहार कुशल व्यक्तित्व के धनी हैं। आपकी ईमानदारी, कार्यक्षमता एवं निःस्वार्थ सेवा भावना की चहुँदिशि चर्चा है।

इलाहाबाद में खत्री सभा के सक्रिय सदस्य रहकर आपने सभा के भण्डार का बहुत दिनों तक भार संभाला था।

स्व० ब्रजमोहन टण्डन, मंत्री, के साथ आप नियमित रूप से साइकिल पर जाकर प्रत्येक शादी के घर में बधाई पत्र देकर सभा के लिये दान प्राप्त करते थे।

आपके ही प्रयास से खत्री सभा के लिये भण्डार भवन की जमीन तथा कुआँ दानवीर स्व० राजेश्वरी नारायन चड्ढा तथा उनके वारिसों से दान में प्राप्त हो सकी था। भण्डार भवन के निर्माण में आपने तन, मन, धन से सहयोग दिया था।

अखिल भारतीय खत्री महासभा के प्रयाग अधिवेशन में आपने समस्त बाहर से आये अतिथियों के रहने तथा खाने का बड़ा ही सुन्दर प्रबंध किया था जिसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की गई थी।

वर्ष १९४२ के द्वितीय विश्वयुद्ध में आपने गरीबों को निःशुल्क अनाज का वितरण कराया था। आपने स्व० श्रीमती विलासो देवी से खत्री सभा के लिये दो मकान दान में प्राप्त करने के लिये बड़ा परिश्रम किया था। खत्री समाज आपके प्रति आभार प्रकट करता है।

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री जातिगौरव श्री नारायण टण्डन—आगरा

अखिल भारतीय समाज सेवी श्री टण्डन जी ने खत्री जाति के उन्नयन हेतु कठिन परिश्रम किया है। जाति चिन्ह व आदर्श वाक्य आपकी ही देन है। अखिल भारतीय खत्री महासभा व प्रादेशिक सभा के संविधान के निर्माण में आपका अपूर्व योगदान रहा।

आप अखिल भारतीय महासभा के कोषाध्यक्ष रह चुके हैं। आजकल आप उसकी कार्य समिति के मनोनीत सदस्य हैं। अगली पीढ़ी आपसे नेतृत्व की भावना प्राप्त करेगी।

ऐसे कर्मठ व निष्ठावान व्यक्ति से समाज को बहुत सी अपेक्षायें हैं।

खत्री श्री रामेश्वरनाथ मेहरा—लखनऊ

श्री मेहरा का जन्म मुरादाबाद के एक प्रसिद्ध खत्री परिवार में १९ अक्टूबर १९३२ को हुआ था। आपने दो वर्ष तक अध्यापन कार्य भी किया।

वर्ष १९६० में आपने भदोही में खाद बनाने का कारखाना स्थापित किया जिसकी एक शाखा लखनऊ में भी है।

आप कुशल खिलाड़ी होने के कारण आगरा विश्वविद्यालय की खेलकूद व क्रिकेट टीम में रह चुके हैं। आपने चार बार विश्व का भ्रमण किया।

आप लायन्स क्लब के सभी पदों पर रह चुके हैं। वर्ष १९८२–८३ में डिस्ट्रिक्ट गवर्नर भी रह चुके हैं। आप लखनऊ में इण्डी जी० डी० आर० स्पार्टस् क्लब के अध्यक्ष हैं।

आप खत्री सभा लखनऊ के तीन बार उपाध्यक्ष रह चुके हैं। खत्री जाति के हितार्थ आप गुप्तदान में अग्रणी हैं।

खत्री जातिगौरव श्री रामनाथ महेन्द्र—कानपुर

खैराबाद (सीतापुर) निवासी श्री गोपी नाथ महेन्द्र, जिनका ज्वेलर्स एवं बैंकर्स का व्यवसाय अब कानपुर में मेसर्स भगतराम जयनरायन के नाम से सुविख्यात है, के प्रतिष्ठित परिवार में श्री रामनाथ महेन्द्र ने ११ जून १९३९ में जन्म लिया।

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत आप पर पूर्णतः चरितार्थ होती है। आपने स्नातक तक की शैक्षिक योग्यता प्राप्त की और तत्पश्चात् अपने पैतृक व्यवसाय को बड़ी कुशलता, कर्मठता; ईमानदारी, सूझबूझ एवं पक्के इरादे के साथ संभाला। इतनी कम आयु में आपने अचरज भरे कार्य कर दिखाये।

आपने अन्तर्राष्ट्रीय संस्था रोटरी इण्टरनेशनल के माध्यम से विभिन्न पदों को सुशोभित करते हुये तथा और भी अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के माध्यम से समाज की सेवा करते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन किया तथा अपने को समाज में प्रतिष्ठित किया।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

आप उत्तर प्रदेश सर्राफा समिति के संगठन मंत्री हैं तथा और भी अनेक पदों को सुशोभित करते हुये कार्यरत हैं।

खत्री सभा कानपुर के आप अध्यक्ष रहे और आपने अनेक सामूहिक विवाह, जनेऊ तथा मुण्डन करवाये। गत् फरवरी १९८६ में आपके कुशल नेतृत्व में उ० प्र० खत्री महासभा का ऐतिहासिक अधिवेशन समाप्त हुआ।

खत्री समाज को आपसे अनेक अपेक्षायें हैं। भगवान आपको चिरायु करे ताकि आप दूने जोश के साथ समाज की सेवा कर सकें। आपकी उत्तम सेवाओं के लिए खत्री सभा ने आपको "जातिगौरव" की उपाधि से विभूषित किया।

खत्री श्री त्रिभुवन नाथ पुरी—लहरपुर

जनप्रिय श्री त्रिभुवन नाथ का जन्म लहरपुर के एक प्रतिष्ठित खत्री घराने में २९ दिसम्बर वर्ष १९३२ को हुआ।

१२ सितम्बर १९५८ को खाद्य आंदोलन में सत्याग्रह करने पर आप जेल में डाल दिये गये। तत्पश्चात् आप सामाजिक जीवन में खुलकर सामने आये। वर्ष १९५८ में खत्री सभा लहरपुर का जन्म हुआ तथा आप इसके सक्रिय सदस्य हुये। आपने उपमंत्री का कार्य भार भी संभाला। वर्ष १९६२ में उ० प्र० में जब होमगार्ड का प्रादुर्भाव हुआ तो आपने कम्पनी सेकेण्ड-इन-कमाण्ड का पद भार संभाला। सहकारी संघ लहरपुर में सदस्यता हेतु चुनाव जीता। आप कालान्तर में नगर सुधार समिति लहरपुर के महामंत्री व ब्लाक कांग्रेस कमेटी के मंत्री नियुक्त हुये।

वर्ष १९८२ में लहरपुर ट्रक अपरेटर्स यूनियन के महामंत्री बने। श्री खेमकरन इण्टर कालेज, लहरपुर की कार्य समिति के सदस्य चुने गये। आप वर्ष १९८४ से अब तक जनपद सीतापुर की सीतापुर बस आपरेटर्स यूनियन के महामंत्री हैं। वर्ष १९८५ में लहरपुर बस आपरेटर्स यूनियन की सलाहकार समिति के सदस्य चुने गये।

वर्तमान समय में आप खत्री सभा में निम्नलिखित पदों पर कार्यरत हैं :—

(१) उ० प्र० खत्री सभा के उपाध्यक्ष

(२) उ० प्र० खत्री सभा के शाहजहांपुर मंडल के मण्डलाध्यक्ष

(३) खत्री सभा लहरपुर के अध्यक्ष।

खत्री समाज को आपसे बड़ी आशायें एवं अपेक्षायें हैं। आप चिरायु हों यही भगवान से प्रार्थना है।

खत्री जातिगौरव राम भरोसे कपूर—मथुरा

खत्री श्री राम भरोसे जी ने अल्प समय में ही खत्री जाति के एक सक्रिय सदस्य के रूप में अपने को प्रतिस्थापित किया है। केवल १७ वर्ष की आयु में आर० एस० एस० के सत्याग्रह में प्रथम जेल यात्रा की थी। वर्ष १९६५ में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन पुस्तकालय की स्थापना की। श्री अन्नपूर्णा मन्दिर ट्रस्ट के आप सदस्य हैं। १९७४ में द्वितीय बार आपात स्थिति में जेल यात्रा की। आप नेशनल मजदूर यूनियन के अध्यक्ष रहे। वर्तमान में आप मध्य रेलवे के स्टेशन अधीक्षक के पद पर कार्यरत हैं।

आप खत्री जाति के उन्नयन हेतु सदा सक्रिय और तत्पर हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

"खत्री हितैषी" की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर
हार्दिक शुभकामनाओं सहित :

शिवनाथ काशीनाथ
५१६, कालका देवी, बम्बई
फोन 318737 आफिस
299490 निवास

गौरीशंकर गोपीनाथ
बड़ा बाजार, बरेली
फोन 74362

विश्वनाथ नंदलाल
रेशम कटरा, वाराणसी
फोन 63252

विश्वनाथ प्रसाद शिवनाथ
मधुरहा फाटक, चौक, वाराणसी
फोन 54071

विश्वनाथ प्रसाद काशीनाथ एजेन्सीज
चौक, वाराणसी

श्री सिद्ध कं० (कानपुर)
५६/५६, काहू कोठी, कानपुर
फोन 53250 68305 आफिस
54565 68988 निवास

काशीनाथ मुकुन्दलाल
नहरम रोड, फर्रुखाबाद
फोन 286 आफिस
540 निवास

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

"खत्री हितैषी" की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर

हार्दिक मंगल कामनाओं सहित :

धर्मो रक्षति रक्षितः

फोन : २३३६४
२६१७५
घर : २५३८६

श्रीराम फूड्स

ऐगमार्क चेतक ब्रांड बेसन के निर्माता

देहली रोड, मुरादाबाद-२४४ ००१

प्रो० खत्री विनोद कुमार खन्ना

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ON OCCASION OF GOLDEN JUBLEE OF

"KHATTRI HITAISHI"

ESTD 1961

BRISTOL

LOCKS

AUTO LOCKS

and

SCOOTERS LOCKS

PIONEER

IN

INDIA

LOCKS AND ACCESSORIES

For

SCOOTERS & MOTORCYCLES

MANUFACTURER—

BRISTOL & Co.

KRISHNA PURI, ALIGARH-202 001

PHONE-3757-4113

CABLE-BRISTOL

FOUNDER-PROPRITER "JATI GAURAV" KHATTRI PRAKASH SHANKAR TANDON.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

...ng and IKS MoE. Digitization: eGangotri.

"JAI KHATTRI SAMAJ"

GOOD WISHES ON GOLDEN JUBLE OF

"KHATTRI HITAISHI"

SHRI V. K. ARORA

Telex : 0591-298 RAVI IN

Cable-"ARORA" Moradabad

Phone : (0591) 23009, (0591) 25578, (0591) 27300

RAVI INDIAN HANDICRAFT

MANUFACTURERS–EXPORTERS

Registered Office—

Dr. Ram Sarup Colony
MORADABAD – 18 Pin 244001
(INDIA)

- BRASS ART WARES
- E. P. N. S. WARES
- HORN GIFT WARES
- WOODEN HONDICRAFTS
- GLASS WARES
- OTHER NOVELTIES

CC-0. Dharmand Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जातिगौरव खत्री जयकार नाथ कपूर (खैराबाद)

सामाजिक कार्यकर्ता श्री जयकार नाथ का जन्म खैराबाद के प्रतिष्ठित कपूर घराने में वर्ष १९३० में हुआ। सन् १९४२ के आंदोलन में आपने सक्रिय भाग लिया और अनेक यातनायें सहीं।

आप सदा ही निस्पृह भाव से समर्पण की भावना रखते हुये व्यापार में सारे परिवार की भलाई के लिये लगे रहे। खैराबाद में खत्री सभा के संगठन का श्रेय आप ही को है। वर्ष १९८३ में आपने खैराबाद में उ० प्र० खत्री सभा की बैठक तथा खत्री धर्मशाला का शिलान्यास जातिरत्न खत्री श्री विशनचन्द जी सेठ व खत्री धर्मपाल मेहरा द्वारा सम्पन्न कराया। आप विश्व हिंदू परिषद के अध्यक्ष हैं। खैराबाद की अनेक संस्थाओं में रहकर आपने सामाजिक उत्थान के ऐसे उत्तम कार्य किये कि जनता उन्हें सदा स्मरण करेगी।

जातिगौरव खत्री प्रताप नारायण टण्डन—बिसवाँ (सीतापुर)

श्री प्रताप नारायण जी पेशे से वकील हैं। अपनी योग्यता स्वरूप लखनऊ विश्व विद्यालय ने आपको स्वर्ण पदक प्रदान किया।

प्रारम्भ से ही वकालत के साथ-साथ आप साहित्यिक, सांस्कृतिक समारोहों से जुड़े रहे तथा स्थानीय शिक्षण संस्थाओं को अपना पूरा योगदान देते रहे।

वर्ष १९८१ से आप खत्री सभाओं में बिस्वाँ, कन्नौज, खैराबाद आदि स्थानों पर सक्रिय रूप से भाग लेते रहे। आप बिसवाँ खत्री सभा में अध्यक्ष पद पर रह चुके हैं। अपने कार्यकाल में आपने वार्षिक अधिवेशन तथा बिसवाँ कचेहरी प्रांगण में समय समय पर विशेष आयोजन करवाये। खत्री सभा के द्वारा आपने खत्री न्यायाधीशों व मंत्रियों आदि का अभिनन्दन करवाया।

जातिगौरव खत्री द्वारिका प्रसाद कंचन, तालबेहट (ललितपुर)-जन्म २४-१२-४८

सामाजिक सेवा की प्रवृत्ति होने के कारण आपने वर्ष १९८२ में खत्री समाज की संस्था उ० प्र० खत्री सभा एवं फरवरी, १९८३ में अखिल भारतीय खत्री सभा की आजीवन सदस्यता ग्रहण की। आप उ० प्र० खत्री सभा के संरक्षक सदस्य भी बने १९८५ में तालबेहट खत्री सभा की अध्यक्षता ग्रहण की। वर्ष १९८६ में उ० प्र० खत्री सभा के द्वितीय अधिवेशन में भाग लिया। वाराणसी स्थित सेण्ट्रल खत्री एजूकेशन कमेटी वाराणसी छात्र-वृत्ति कोष में अपनी पूज्य माता जी स्वर्गीया झुनका देवी की पुण्य स्मृति में रु० २१००) की धनराशि दी। इसी भाँति मिर्जापुर में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन शिशु मन्दिर को यथायोग्य दान दिया।

वर्ष १९८२-८३ में एक टाउन हाल का निर्माण जिसकी अनुमानित लागत रु० ३०,०००) आती है, अपने पूज्य ताऊ जी स्व० रामदास जी खत्री की पुण्य स्मृति में कराया।

जातिगौरव खत्री कन्हैयालाल मेहरोत्रा (बरेली)

शाहजहाँपुर में जन्में श्री कन्हैयालाल जी बरेली में आ बसे और अपना सर्राफे का व्यापार शुरू किया। आप सर्राफा मण्डल के अध्यक्ष हैं। धर्म कर्म में आस्था रखने वाले श्री मेहरोत्रा जी खत्री समाज के प्रति आस्था रखते हुए सामाजिक कार्यकर्ता हैं। आप कथनी की अपेक्षा करनी में अधिक विश्वास रखते हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

आपके ही प्रयास से बरेली में खत्री सभा की स्थापना एवं पंजीकरण हुआ। संविधान तैयार कराने में आपका पूरा योगदान रहा। सन् १९८० में आप खत्री सभा बरेली के महामंत्री नियुक्त हुये। आपके कार्यकाल में समाज के पूर्ण सहयोग से खत्री बाडा में कम्यूनिटी हाल, एक छोटा कम्यूनिटी हाल तथा खत्री माण्टेसरा स्कूल की स्थापना हुई।

ज्ञातिगौरव खत्री डा० पी० एन० मेहरोत्रा—रायबरेली

डा० मेहरोत्रा खत्री समाज के एक उदीयमान अंग हैं। जहाँ आप अपने कार्य में कुशलता से लगे हैं वहीं आप एक प्रसिद्ध समाज सेवी भी हैं। रायबरेली की अनेक संस्थाओं से आप जुड़े हुए हैं और अपना बहुमूल्य समय देकर जनता की सेवा में लगे हैं।

खत्री स्व० दयाराम बेरी—कलकत्ता

यद्यपि श्री बेरी का जन्म अमृतसर में हुआ था परन्तु उनका कार्यक्षेत्र कलकत्ता रहा। वर्ष १९५२, १९६२ व पुनः १९६७ में आप पश्चिमी बंगाल विधान सभा के लिये चुने गये। स्वतंत्रता से पूर्व २२ वर्षों तक आप समय-समय पर जेल में रहकर यातनायें सहते रहे और बीमार होने पर भी पैरोल पर छूटने के लिए आवेदन नहीं दिया।

सम्भवतः श्री वी० वी० गिरि के पश्चात् आप दूसरे प्रभावशाली मजदूर नेता थे। आई० एन० टी० यू० सी० में १९४५ में उपाध्यक्ष रहकर आप सर्वश्री पटेल, कृपलानी व शंकरराव देव के साथ-साथ इस संस्था में मजदूरों की भलाई के लिये कार्य करते रहे। तीस वर्षों तक आप आई० ए० यू० टी० बंगाल के लगातार जनरल सेक्रेटरी रहे। वर्ष १९५२ से अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक आप जूट फेडरेशन के अध्यक्ष रहे। जब भारत में जूट का उत्पादन आरम्भ हुआ तो आपने स्काटलैण्ड के डंडी के जूट के आयात का विरोध किया। किंतु ऐसा करने पर भी जब आप स्काटलैण्ड गये तो जूट के श्रमिकों ने आपका हार्दिक स्वागत किया। वह भी मजदूरों के मसीहा के रूप में।

पहले मजदूरों के लिये रविवार की छुट्टी नहीं होती थी। आपने वर्ष १९३३ में इसके लिये आन्दोलन किया और मजदूरों को भी हर रविवार को छुट्टी दिलाई।

आई० एन० ओ० के अन्तर्गत आपने बीस देशों की यात्रा की और ५७ भाषण दिये।

गंगासागर मेले में बालण्टियर दल ले जाना, सारस्वत खत्री सेवा दल व बंगाल में बच्चों की बानर सेना का गठन कुछ ऐसे महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य थे जिनसे उनका राजनैतिक जीवन का आरम्भ हुआ। आप नेता जी के भी सम्पर्क में आये। बंगाल से जिस रथ पर नेता जी रायगढ़ कांग्रेस में गये थे उसी पर आप बंगाल ज्योति ले गये थे।

हिन्दू मुस्लिम एकता के सराहनीय कार्य जो आपने किये वे समाज को सदा याद रहेंगे। स्वतंत्रता से पहले और बाद में जब साम्प्रदायिकता का ज्वालामुखी फूटा था तब उसके पिघलते लावे से मुसलमानों का जीवन्त निकालने के लिये आपने जो साहसिक कार्य किया और मजदूरों को साम्प्रदायिक सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया और वातावरण बनाने की प्रेरणा दी, वह सदा-सदा याद रहेगा।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जब हिन्दी पत्रों के विरुत्त दमनचक्र चल रहा था तो आपने 'सेनापति' नामक साप्ताहिक निकालकर राष्ट्रीय नव जागरण को मुखर किया। उग्र कवि श्री निराला का आपको पूर्ण सहयोग मिला। अन्ततः आप सरकार के कोपभाजन हुये और बंगाल से निष्कासित किये गये जहाँ आप पुनः वर्ष १९४६ के पश्चात् ही प्रवेश पा सके।

सविनय अवज्ञा, खिलाफत आन्दोलन का विरला योद्धा, भारतीय मददूरों का मसीहा एवं निस्पृह समाज सेवक आज हमारे बीच नहीं है परन्तु उसकी सेवायें सदा-सदा स्मरण की जायेंगी।

खत्री स्व० श्री मिश्रीलाल जी (बच्चा) अरोड़ा "सन्त"—ब्यावर

समाज सेवा के व्रती श्री सन्त जी ने जोधपुरी व नागोरी भाइयों को मिलाकर समाज का बहुत बड़ा हित किया था। समाज सेवा के साथ-साथ अपने विकट अनुभव से वह समाज के भटके हुये लोगों का उचित व सच्चा मार्गदर्शन करते थे।

वे अच्छे पत्रकार थे। उन्होंने अरोड़ा वंश का एक प्रमुख पत्र 'सखा' के नाम से चलाया था जो वे जीवन पर्यन्त चलाते रहे और अरोड़ों का मार्गदर्शन करते रहे। अरोड़ वंश आपका ऋणी है।

वे एक सच्चे और अच्छे अध्यापक थे। वे बच्चों को यही सिखाते थे कि "जाहि विधि राखै राम ताही विधि रहिये।" भगवान राम के अनन्य भक्त का बचपन बड़े सुखों में बीता था किन्तु अपना स्वयं का जीवन होश संभालने के पश्चात् आरम्भ करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा पर यथा नामः तथा गुणः वाली कहावत चरितार्थ करते हुए 'संत' जी ने सुख और दुख को एक समान मानकर जीवन यापन बड़ी प्रसन्नता से किया।

सन्त जी सभी के सुख दुख के साथी थे। खत्री समाज की सेवा में सदा लगे रहे। वे अमर हो गये। आज ही क्या आने वाले अनेक वर्षों तक आपका नाम लोग स्मरण करते रहेंगे ऐसे थे हमारे समाज सेवी पथ-प्रदर्शक, निस्पृह और सतकर्मी, निर्भीक सन्त जी।

राजस्थानी खत्री समाज ही क्यों सारे विश्व के खत्री समाज के व्यक्ति ऐसे महापुरुष के समक्ष नतमस्तक हैं।

खत्री श्री रामचन्द्र मेहरोत्रा—कानपुर

श्री मेहरोत्रा जी ने भूदान आन्दोलन में भाग लिया और बाबू जय प्रकाश नारायण के साथ चम्बल के बीहड़ जंगलों में डाकुओं से आत्म समर्पण कराने के कार्य में लगे रहे।

आप सन् १९७३ से जखिल भारतीय फ्रीडम फाइटर एसोसिएशन के संयुक्त सचिव एवं अखिल भारतीय कौमी एकता संघ के महामंत्री रहे।

समाज सेवा में स्त्री के कारण कोई बाधा न पहुँचे अतः आपने विवाह नहीं किया। कौमी एकता हेतु आपने २७ मई १९८४ से १३ फरवरी १९८५ तक पवित्र गंगोत्री से कन्याकुमारी तक ४५५१ कि० मी० की पदयात्रा कर देश सेवा की। सारे देश में आपका सम्मान हुआ एवं आप समाचार पत्रों की सुर्खियों में आये।

खत्री समाज आपका अत्यन्त आदर करते हुये आभार प्रकट करता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

खत्री श्री बी० एस० बेदी—कानपुर

श्री बेदी का जन्म पश्चिम पंजाब में वर्ष १९३४ में हुआ था। आप पंजाब विश्व विद्यालय में वर्ष १९५७ में अंग्रेजी विभाग में वक्ता थे। तत्पश्चात् आप अखिल भारतीय सेना आई० पी० एस० में चुन लिये गये।

अपने २३ वर्ष के कार्यकाल में आप पुलिस अधीक्षक/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक अलीगढ़, इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा एवं कानपुर में रहे। वर्ष १९८० में आपकी पदोन्नति हो गई और आप डी० आई० जी हुये। इस पद पर आप गोरखपुर, वाराणसी व कानपुर में रहे।

इस समय आप बड़ी कुशलता से इस पद पर कानपुर में सेवारत हैं।

वर्ष १९७४ में आपको मुख्यमंत्री एवार्ड एवं योग्यता प्रमाणपत्र से सम्मानित किया गया। वर्ष १९७८ में राष्ट्रपति एवार्ड आपने ग्रहण किया जो आपको अपनी विशिष्ट सेवाओं के लिये प्रदान किया गया।

अलीगढ़, इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा एवं कानपुर में रहकर आपने अनेक साम्प्रदायिक, मजदूरों तथा छात्रों की समस्याओं को बखूबी सुलझाया। कानून एवं सुरक्षा व्यवस्था को ठीक रखने में आपने सदा अपनी सूझ-बूझ का परिचय दिया जिसे जनता ने सराहा। सेवा और मनुष्यता आपका स्वभाव है। आप एक परिश्रमी, ईमानदार जनसेवक हैं। हमें तथा सारे खत्री समाज को आप पर गर्व है।

खत्री श्री राजकपूर—बम्बई (जन्म १४ दिसम्बर, १९२४)

फिल्म जगत के उदीयमान सितारे जो विश्व में अपनी चमक बिखेर रहे हैं अपने खत्री समाज के जाने माने व्यक्ति श्री राजकपूर हैं। आप जगत प्रसिद्ध श्री पृथ्वीराज कपूर के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपने अनेक ऐसी फिल्में बनाईं जो सबने सराही और अमर हो गईं। आप निर्माता, निर्देशक एवं कुशल अभिनेता हैं। फिल्म उद्योग की जानी मानी हस्ती श्री राज कपूर खत्री समाज का गौरव है। आपका विवाह १२ मई, १९४६ को सुश्री रीता नन्दा के साथ जबलपुर में हुआ था।

सोवियत संघ के लोग पं० जवाहरलाल नेहरू के पश्चात् किसी को जानते और चाहते हैं तो वे श्री राज कपूर ही हैं। वर्ष १९८२ में आपको "नेहरू सोवियत लैण्ड पुरस्कार" से सम्मानित किया गया।

२ मई, १९८८ को दादा साहब फालके पुरस्कार को राष्ट्रपति से लेते समय आप अस्वस्थ हो गए तथा एक माह तक मृत्यु से संघर्ष करते हुए २ जून, १९८८ को आप सारे देश को रोता बिलखता छोड़ गए।

खत्री स्व० मदन पुरी—बम्बई

वर्ष १९१६ में जालंधर में जन्मे श्री मदनपुरी फिल्मों में चरित्र अभिनेता के रूप में आये। आपने अनेक सफल फिल्मों में आकर्षक एवं जानदार अभिनय किया जो सभी ने सराहा। बुरे आदमी के रूप में पर्दे पर दिखने वाले मदन दिल से बड़े अच्छे थे। उनकी सफलता इसी में थी कि सारी जनता उनके रोल को देखकर उन्हें बुरा कहे। चरित्र अभिनेता के रूप में उन्होंने अनेक प्रकार के रोल किये। ऐसे रोल उनकी प्रतिभा को लेकर सचमुच नये पक्ष को उजागर कर गये। वे आज हमारे बीच नहीं हैं किन्तु अपनी प्रतिभा के लिये वे जनता द्वारा सदा-सदा स्मरण किये जायेंगे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री राम भरोसे लाल टण्डन जी—(बरेली) जन्म १०-६-१९१३

श्री मोती राम टण्डन जी के घर खत्री राम भरोसे लाल टण्डन जी का जन्म १० जून, १९१३ को हुआ। आप की माता का नाम श्रीमती गिंदोड़ी देवी टण्डन था। वर्ष १९२८ से आपने एडवर्ड मेमोरियल हाईस्कूल में विद्या अध्ययन आरम्भ किया। इसी समय आप के पिता का पैत्रिक धन्धा सूद पर रुपये देने का रकम डूब जाने के कारण समाप्त हो गया। अतः पिता श्री मोतीराम जी को नौकरी करनी पड़ी। परिवार की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई और इस प्रकार चौथी कक्षा की पढ़ाई आपको बीच में ही छोड़नी पड़ी। आपने मात्र १२ रु० मासिक पर मुनीमी की नौकरी की। बाद में साझेदारी में कपड़े का व्यापार किया जिसमें अस्वस्थ हो जाने के कारण हानि हुई। वर्ष १९३० में आपने आगरा के शीरे के व्यापार की फर्म चुन्नीलाल मंशाराम में १५) माहवार पर नौकरी की। वहाँ पर ईमानदारी और लगन से काम करने के कारण १९३३ में आप का वेतन २५ रु० माहवार कर दिया गया। इसी दौरान १९३४ में आप के पिता जी का स्वर्गवास हो गया।

वर्ष १९३५ में हाथरस निवासी स्व० घनश्याम दास जी मेहरोत्रा जी की सुपुत्री हीरो देवी से आप की शादी हुई। आप के अनुभवों के कारण ही आपके मालिकान को ४० हजार का लाभ हुआ जिस पर १२ प्रतिशत का लाभ देने के वायदे से मालिक झूठ बोल गये। इससे आप को बड़ा धक्का लगा। परन्तु बाबू रामभरोसे लाल टण्डन जी धुन और इरादों के पक्के थे। संघर्षों का सामना करते हुए आपने अनेक नौकरियाँ भी कीं साझेदारी तथा व्यक्तिगत व्यापार भी किया और अन्त में आपको सफलता मिली तथा लक्ष्मी की कृपा हुई। इस समय आप की गिनती करोड़पतियों में की जाती है तथा आपके निम्न प्रतिष्ठान सेवारत हैं :—

१-राम भरोसे लाल राजेन्द्र कुमार टण्डन २—सट्टरपुर इंडस्ट्रीज ३-टण्डन ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन ४-बल्क कैरियर्स ५—ड्रम सेल्स एण्ड सर्विस ६—आर० बी० टण्डन एजेन्सीज प्रा० लि० आदि ये सारे प्रतिष्ठान—बरेली—दिल्ली व गुडगाँव में स्थित हैं।

प्रसन्नता की बात है कि जैसे-जैसे बाबू जी की तरक्की होती गई—आप में जनसेवा व दान की प्रवृत्ति भी बढ़ती गई। आपने बहुत से निर्धन छात्र-छात्राओं को शिक्षा दिलाई तथा निराश्रितों की सहायता की। वर्तमान में आप खत्री सभा बरेली के अध्यक्ष पद से खत्री समाज की सेवा कर रहे हैं तथा मई ८८ से अपने एक विद्यालय का शुभारम्भ कर रहे हैं जिसकी पूरी योजना पर लगभग एक करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है।

स्व० खत्री बलराज साहनी—बम्बई

फिल्मों में अविस्मरणीय भूमिका निभाने वाले खत्री समाज के चहेते स्व० बलराज साहनी सदा याद आते रहेंगे। वे लोकप्रिय चरित्र अभिनेता एवं रंगमंच के कलाकार थे। फिल्म जगत में उनके उल्लेखनीय योगदान के लिये भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया था।

श्री साहनी योग्य, विद्वान एवं अच्छे पढ़े, लिखे लोगों में से थे। वे स्वभाव से निर्मल किन्तु कर्म से हठी एवं परिश्रमी थे। उनमें अटूट लगन थी जिसके कारण वे कभी काम से जी नहीं चुराते थे। फिल्म जगत में सभी उनका नाम लेते हैं और सम्मान देते हैं। वे संयमी, अनुशासनप्रिय और देश प्रेमी थे, मजदूरों व गरीबों के मसीहा थे। हम उनके प्रति नत मस्तक हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खत्री समाज ने और भी अनेक कलाकार फिल्म जगत को दिये हैं। इनमें से विशेष उल्लेखनीय हैं—शम्मी कपूर, शशि कपूर, ऋषि कपूर, रणधीर कपूर, विनोद खन्ना, राजेश खन्ना, विनोद मेहरा, अजय साहनी, पद्मा खन्ना, ऊषा खन्ना, बी० आर० चोपड़ा, ओ० पी० मेहरा, महेन्द्र कपूर, अनिल धवन, अनिल कपूर, शक्ति कपूर, प्रेमनाथ, इत्यादि। ये सभी खत्री समाज के गौरव हैं।

खत्री स्व० बाबू हरिद्वारीलाल टण्डन—कानपुर

भारतीय स्टेट बैंक की कर्मचारी यूनियन में हरिद्वारीलाल टण्डन जी का नाम बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ लिया जाता है। उनके निस्पृह कार्यकलापों ने उन्हें अमर कर दिया। अच्छे स्वास्थ्य एवं उज्ज्वल चरित्र के धनी टण्डन जी सभी के श्रद्धेय रहे। वे जीवन पर्यन्त खत्री समाज के प्रति नत मस्तक रहे और जो सेवा उनसे बन पड़ी की।

टण्डन जी ने अपना जीवन बड़े संघर्षों के मध्य आरम्भ किया किंतु अपने परिश्रम, लगन, कर्मठता एवं ईमानदारी से उन्होंने रोटी कमाई और सदा सम्मानित हुए। अपने बच्चों को अच्छी और उच्च शिक्षा दी। उन्ही के पुण्य प्रताप एवं आशीर्वाद से आज उनके सभी बच्चे भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय स्टेट बैंक एवं सेन्ट्रल बैंक में उच्च पदों पर कार्यरत हैं।

उन्होंने अपने जीवन में अनेक गरीब और जरूरतमंद लड़कों को बैंक में लगवाया और उनकी रोटी का साधन दिलाया। यही नहीं समाज में अन्य किसी को भी जब भी उनकी सहायता की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने तन, मन, धन से सहायता की। उनकी उदारता, सहृदयता, कृपालुता एवं ईमानदारी को आज भी लोग स्मरण करते हैं।

वे यूनियन के आरम्भ से पहले चेयरमैन थे। कानपुर यूनियन का गढ़ था। बैंक का हर कर्मचारी, उनका आदर करता था। वह भी हर व्यक्ति के काम आते थे। अनेकों उलझे हुये मसलों को वे आनन-फानन सुलझा देते थे। वे परिश्रम में विश्वास करते थे।

वे कुशल खिलाड़ी भी थे। अपनी अधिक आयु के बावजूद वे खिलाड़ियों की टीमों के साथ बाहर जाते रहते थे और उन्हें प्रोत्साहन देते थे। वे बड़े हँसमुख और मुक्त हास्य के धनी थे। उनका आनन रोबीला, गोरा एवं अरुणिमा लिए हुए था। सामने वाला उनके इस व्यक्तित्व से ही प्रभावित हो जाता था और आधा काम बिना कहे हो जाता था। वे बड़े निर्भीक, दबंग एवं स्पष्टवक्ता थे। डरना तो जैसे उनके शब्द कोश में था ही नहीं। वे इतने ईमानदार और परिश्रमी थे कि उनके मन में भय नाम की कोई वस्तु परिलक्षित ही नहीं होती थी। उन्होंने कभी किसी के समक्ष हाथ नहीं फैलाया।

जाति सेवा भी उन्होंने भरपूर की। अपने क्षेत्र में रहकर न जाने कितने युवकों को सहायता दी और भूल गये। आज सभी उन्हें याद करते हैं। खत्री समाज उनके प्रति नत मस्तक है।

खत्री स्व० ले० कर्नल दीवान रणजीत राय—निलोर (आंध्र)

कर्नल रणजीत के पिता एक निर्भीक और धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष थे। उनके घर में रामचरितमानस का नित्य पाठ होता था। जिस दिन उनके घर में लंकाकाण्ड का पाठ हो रहा था तो रणजीत का जन्म हुआ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

अतः उनका नाम रणजीत रक्खा गया। इनकी माता जी सदा चाहती थीं कि उनका बेटा शूरवीर, रणधीर और देश सेवक बने। अतः वे उसे इसी प्रकार की लोरी भी सुनाकर सुलाया करती थीं इस सबका प्रभाव शनैः शनैः बालक रणजीत पर पड़ा। वह बाल्यावस्था से ही सिपाहियों की कवायद देखता था। स्वयं फौजी वर्दी पहनता था। इसके पिता फौज में बड़े सर्जन थे।

कालांतर में इन बातों का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा और वे सैनिक अधिकारी हो गये। चूँकि ये निर्भीक एव सूझ बूझ वाले अधिकारी थे अतः आनन फानन आपकी उन्नति होती गई। काश्मीर में जब पाकिस्तानी उपद्रवियों ने गड़बड़ी मचा रक्खी थी तो काश्मीर सरकार ने भारत सरकार से सहायता माँगी और अपने को भारत में विलय कर दिया। इस समय ले० क० दीवान रणजीतराय के नेतृत्व में तीन कम्पनियाँ हवाई जहाज द्वारा वहाँ भेजी गईं।

ले० कर्नल जब बारहमूला की ओर बढ़े जहाँ पाकिस्तानियों ने कब्जा कर रखा था तो इनके पास सेना कम थी। ऐसे समय यदि ये पीछे से सेना मँगाते तो देर हो जाती। अतः आप अपने बचे खुचे सैनिकों को लेकर आगे बढ़ गये। वहाँ उन्होंने बड़ी बहादुरी से पाकिस्तानियों को आगे बढ़ने से रोक दिया किन्तु इनके बहुत से सैनिक मारे गये थे क्योंकि पाकिस्तानियों के पास बहुत अधिक फौज थी। जब इनके घिर जाने की नौबत आई तो आपने फौज को पीछे लौटने के आदेश दिये। इस समय ये सबसे पीछे थे। अतः दुश्मन ने इन्हें गोली मार दी और ये वीरगति को प्राप्त हुये। इन्होंने देशहित में अपना बलिदान दिया। भारत सरकार ने इन्हें मरणोपरांत महावीर चक्र प्रदान किया जिसे इनकी पत्नी श्री शीला ने शोक संतप्त होते हुये भी ग्रहण किया। यह पुरस्कार तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने दिया। हम अपने ऐसे महान वीर पुत्र के प्रति नत मस्तक हैं।

खत्री स्व० मेजर सत्यपाल चोपड़ा—पंजाब

मेजर सत्यपाल का इरादा सेना में कभी जाने का नहीं था। वे तो आई० सी० एस० होना चाहते थे पर "मन चीती नहि होत है, प्रभु चीती तत्काल" की तरह आपके भी सपने पूरे नहीं हुये।

दूसरा महायुद्ध छिड़ा और सरकार ने आई० सी० एस० की परीक्षा प्रतियोगिता बन्द कर दी। अतः बरबस आप सेना में भरती हो गये। जब आप २१ वर्ष के थे तो कैप्टेन हो गये। उन्होंने वर्मा युद्ध में भाग लिया। जापानियों से जब युद्ध चल रहा था तो आप फिर गये। यह स्थिति एक महीने चली। अन्ततः जापानियों ने आत्म समर्पण किया। उस समय मेजर चोपड़ा आसाम वर्मा मोर्चे पर लड़ रहे थे।

एक बार अंग्रेजों के दुर्व्यवहार के कारण आपने फौज की नौकरी छोड़ने का इरादा किया किन्तु इनके पिता ने समझाया कि देश के हालात तेजी से बदल रहे हैं। अतः नौकरी न छोड़ो।

लड़ाई समाप्त होने पर बहुत से सैनिकों व अफसरों की छटनी हो गई किन्तु चूँकि आपका रिकार्ड बहुत अच्छा था अतः आपको सेना में रख लिया गया।

पश्चिमी पंजाब के गुजरात जिले में जो लोग फँसे थे उनको निकालने का काम आपको सौंपा गया। आप जब इस काम में लगे थे तो स्वयं हथियार बंद पठानों के घेरे में आ गये। उन्हें अफसर के पास ले जाया गया। ये अफसर उनका पुराना परिचित था। उसने इन्हें पहचान लिया और इस तरह यह बच गये।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्पश्चात् खबरें मिलीं कि कश्मीर में कबाइली घुसने की फिराक में हैं। वे चार महीनों तक उस मोर्चे पर रहे। अन्ततः वीरता से लड़ते हुये उन्होंने उन्हें खदेड़ दिया भारत सरकार ने उनके इस शौर्य के लिये महावीर चक्र देने की घोषणा की किन्तु वे इसे पा न सके क्योंकि झंगड़े क्षेत्र में असाधारण शौर्य का परिचय देते हुये वीरगति को प्राप्त हुये।

खत्री स्व० ले० कर्नल मदनलाल चड्ढा—पंजाब

रणबाँकुरे मदन सैनिक वातावरण में जन्मे, पले और बड़े हुए। इनके पूज्य पिता स्व० काशीराम चड्ढा सेना में सूबेदार मेजर थे। आपका जन्म ३१ अगस्त वर्ष १९२७ को केबलपुर के ग्राम में हुआ था। ये तेजस्वी बालक बाल्यकाल से ही प्रतिभाशाली था। मैट्रीकुलेशन तथा इण्टरमीडिएट की परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा सर्वश्रेष्ठ कैडेट माने जाकर पुरस्कृत भी हुये। ये देहरादून की इण्डियन मिलिटरी अकादमी में भर्ती हुए और वर्ष १९४७ के दिसम्बर मास में इन्हें कमीशन मिला।

आप पहले भारतीय थे जिन्हें गुरखा रेजीमेण्ट में कमीशन मिला था। तत्पश्चात् आपने पैराट्रूपर का प्रशिक्षण लिया जो बहुत ही जोखिम भरा था। जब गोआ पर भारतीय आक्रमण हुआ तो ब्रिगेड मेजर मदनलाल चड्ढा ही के नेतृत्व में सैनिकों ने सर्वप्रथम गोआ पर अधिकार किया।

तत्पश्चात् आपने पर्वतीय रणकला का प्रशिक्षण लिया। अलास्का के प्रशिक्षण केन्द्र के लिए दो सैनिक अधिकारी चुने गए जिनमें एक थे हमारे चरित्रनायक। इस संस्था में पर्वतीय रणकला का विलक्षण प्रशिक्षण दिया जाता था। आपको यहाँ से बड़ा महत्वपूर्ण प्रशस्ति पत्र दिया गया आप पर्वतीय रणकला के प्रमुख भारतीय विशेषज्ञ माने जाने लगे।

कालान्तर में जब अगस्त, १९६५ में पाकिस्तान घुसपैठिये श्रीनगर लेह के महत्वपूर्ण मार्ग पर भारतीय सेना और रसद पर छापे मारने लगे तो सरकार की ओर से आपको नियुक्त किया गया। आपने अपने बुद्धिबल से उन घुसपैठियों को खदेड़ा ही नहीं वरन् इन इलाकों को निरापद करके कब्जा ले लिया ऐसे ही समय जब वह अपने सैनिकों को उचित निर्देश दे रहे थे कि बैरी की ओर से उनके एक गोली लगी जिसने इस रणवीर को धराशायी कर दिया।

संयोग की बात है कि जिस तिथि, वार और समय पर इन रणवीर का जन्म हुआ था, सन् १९६५ की उसी तिथि, वार और समय पर इनका प्राणान्त हुआ। ये सदा कहते थे कि ईश्वर उन्हें वीरगति दे सो मिली। राष्ट्रपति ने इन्हें वीरचक्र से पुरस्कृत किया जो चड्ढा परिवार की अमूल्य निधि है।

खत्री स्व० ले० कर्नल नरेन्द्रनाथ खन्ना—लरकाना (सिंध)

लेफ्टिनेण्ट कर्नल नरेन्द्रनाथ खन्ना का जन्म २० मई; १९२८ को लरकाना (सिंध) में हुआ था। ये बचपन से ही लड़ाई के खेल खेलते थे। एक बार खेल खेल में स्कूल की छत से नीचे पत्थरों पर गिर गये और इनकी दाईं बांह कई जगह से टूट गई। बायें हाथ से इसे पकड़े आप माँ के पीछे आकर खड़े हो गये और उन्हें बताया कि बाँह टूट गई है। वे हमेशा की भाँति समझी कि यह झुठला रहा है। पर जब इन्होंने पुनः कहा कि सच माँ मेरी बाँह टूट गई है तो माँ ने पलटकर देखा खून टपक रहा है और ये शांत बिना रोये खड़े हैं। तुरन्त अस्पताल की दौड़ हुई और हाथ ठीक होने में छः माह लग गये।

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ON OCCASION OF GOLDEN JUBLEE OF

"KHATTRI HITAISHI"

Phone : Factory : 26280
24103
Resi. : 24157

ORIENTAL METALKRAFTS

MANUFACTURERS EXPORTERS SUPPLIERS
of
EXPORTABLE BRASS SHEETS PLANTERS
(HANDICRAFTS)

Khattri T. N. Mehrotra

Factory of Show Room :
GAL SHAHEED ROAD
MORADABAD-244001
INDIA

HEARTIEST CONGRATULATION ON GOLDEN JUBLEE OF

"Khattri Hitaishi"

Fact. 24707
Phone : Offi. 24768, 28058
Res 26911, 27891

Telex : 0591–229 ALID IN
Cable : ALLIED

Allied Industrial Enterprises

(Govt. Recognised Export House)
Manufacturers & Wholesale Exporters
BRASS DECORATIVE ART WARES, SILVERPLATED TABLE WARES,
SOLID BRASS DOOR & CABINET FITTING & OTHER
HANDICRAFTS PRODUCTS

Khattri M. K. Mehrotra
Khattri S. K. Mehrotra

Mehbulla Ganj, Katghar,
MORADABAD – 244001
INDIA

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर

हार्दिक शुभ कामनाएं :

राष्ट्र के निर्माण में सेवारत सेठ परिवार के प्रतिष्ठान

सर्वश्री गोविन्द ब्रिक फील्ड – महौली (सीतापुर)

सर्वश्री हिन्दुस्तान ब्रिक फील्ड इन्डस्ट्रीज–नैपालापुर (सीतापुर)

उत्तम श्रेणी की ईंट एवं सुर्खी आदि के निर्माता

खत्री मोटनदास सेठ 206-बी, आर्यनगर सीतापुर

"खत्री हितैषी" की स्वर्ण-जयन्ती की पावन बेला पर

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

जातिगौरव खत्री कन्हैयालाल मेहरोत्रा जी (संरक्षक)

खत्री हितैषी की छत्रछाया में

सेवारत प्रतिष्ठान

सर्वश्री आदर्श ज्वैलर्स

फोन 4461
निवास 4373

बड़ा बाजार, बरेली

खत्री सन्तोष कुमार मेहरा **खत्री अनूप कुमार मेहरा**

खत्री प्रमोद कुमार मेहरा

Congratulation to "Khattri Samaj" on Golden Jublee of "Khattri Hitaishi"

U.P.S.T. No. 0057544
C. S. T. No. 5036986

With best compliments from :

Show Room : 77993
Phones Res : 77892
Works : 75250

KHANNA SAFE WORKS

25, SUBHASH MARKET, BAREILLY (U.P.)

Manufacturers of :

Steel Almirah, Iron Safe Racks, Filing Cabinet, Office Tables, Chairs, Hospital Furniture, Poultry Equipments & every Kind of Steel Furniture Office & House use.

KHATTRI KEDAR NATH KHANNA–Life Member "Khattri Hitaishi"

CC-0. National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Telegram :
BREWERY-LUCKNOW

Phones 73215 73709
74835 75615

MOHAN MEAKIN LTD.

Regd. Office : SOLAN BREWERY (SIMLA HILLS)
POST BOX 6 DALIGANJ, LUCKNOW-226001 (U.P.) INDIA

SINCE 1985

Mohan Nagar	**(Ghaziabad U. P.)**
Lucknow	**(U. P.)**
Kasauli	**(H. P.)**
Solan	**(Simala Hills)**

खत्री हितैषी के स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर खत्री समाज का हार्दिक अभिवादन

लखनऊ खत्री समाज के प्रकाश स्तम्भ स्व० श्री गुर प्रसाद तांगड़ी जी

के आशीर्वाद से सेवारत प्रतिष्ठान

सर्वश्री भगवान दास गुर प्रसाद

लखनऊ चिकन कुर्ता, साड़ी तथा हर प्रकार के चिकन वस्त्रों के निर्माता–निर्यातकर्ता एवं थोक व्यापारी

चौक, लखनऊ-२२६ ००३

स्वामी—खत्री सोम नाथ तांगड़ी

स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर खत्री समाज को शुभकामनाएं

खत्री लक्ष्मी शंकर टण्डन–अध्यक्ष

सारस्वत खत्री सभा कन्नौज

फोन १०५

सर्वश्री बी० एम० मोटर्स

अधिकृत विक्रेता

भारत पेट्रोलियम कार्पोरेशन लि०

जी० टी० रोड, सराय मीरा, कन्नौज-२०९ ७२५

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

खत्री हितैषी की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर हमारी शुभकामनाएं :—

सर्वश्री खत्री बूट हाउस

रीवां — सतना

(मध्य प्रदेश)

मोहन स्टोर्स

कपड़ा दुकान

मेन रोड, चन्द्रपुर

(महाराष्ट्र)

खत्री गोपाल प्रेमराज सोडा (नागोरी)

S. T. उपहार गृह

S. T. बस स्टैन्ड कलमेश्वर

जिला नागपुर (महाराष्ट्र)

(बंगाली मिठाई और दोसा स्पेशलिस्ट)

चोपड़ा एण्ड कम्पनी

चश्माघर रायपुर (M. P.)

चश्मे के होलसेल चिल्लर विक्रेता

मालवीय रोड, बाबूलाल टाकीज के पास

RAIPUR (M. P.)

खत्री चन्द्रशेखर टण्डन

सर्वश्री टण्डन साइकिल स्टोर्स

फोन—२८७३

अधिकृत विक्रेता :—ऐटलस तथा एवन साइकिल

नई साइकिलें स्पेयर पार्ट्स के विक्रेता

चन्द्रलोक बिल्डिंग—वर्धा, महाराष्ट्र

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

इनके पिता अच्छे शिकारी थे और वन विभाग के अधिकारी थे। ये अपने पिता के साथ शेर के शिकार पर भी जाया करते थे। एक बार खेलते-खेलते इन्होंने एक डेढ़ गज लम्बे साँप को कोठरी के किनारे नाले के भीतर जाते देखा। दौड़कर घर से बन्दूक ले आये और नाले से साँप के सिर निकालते ही बन्दूक से नरेन्द्र ने उसका सिर उड़ा दिया और अपनी हाकी स्टिक पर लटकाये हजरत अपनी माँ को दिखाने पहुँचे। ऐसे थे शूरवीर श्री नरेन्द्र।

आप १९४७ में देहरादून की मिलिटरी एकैदमी में भर्ती हो गये और १९४८ में कमीशन पर गये। अपनी स्वेच्छा से आप पाकिस्तानी लड़ाई के समय कश्मीर के लिये रवाना हुये। पिता को जब टेलीफोन से सूचना दी तो पिता ने कहा कि बेटा गोली पीठ पर न लगे। मेरा आशीर्वाद है ईश्वर तुम्हारी रक्षा करेगा। किन्तु ये लड़ाई पर नहीं भेजे गये। इन्हें पहाड़ों पर शारदीय युद्धकला का प्रशिक्षण दिया गया। तत्पश्चात् ये वहीं प्रशिक्षक नियुक्त हो गये। बाद में आपने "स्कीइंग" का भी कुशल प्रशिक्षण लिया और आपको आपके मित्र "अलपायिनी" कहा करते थे। १८ नवम्बर को आपको सिख पल्टन का नेतृत्व सौंपा गया जहाँ आपको अपने सिपाहियों का प्यार और बहुत आदर मिला।

आपका विवाह कर्नल आनन्द की पुत्री सावित्री से हुआ। ये अपनी पत्नी को अपने पत्रों में अंग्रेजी कवितायें बनाकर लिखते थे। कभी-कभी पत्नी व बच्चों से मिलने भी आते थे। बड़ी सुन्दर कवितायें लिखते थे।

आप युद्ध इलाके में पाकिस्तानी सैनिकों से लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हुये। राष्ट्रपति ने मरणोपरांत आपको महावीर चक्र से सम्मानित किया जो इनकी पत्नी श्रीमती सावित्री को दिया गया।

हम सभी खत्री बंधु अपने इस वीर भाई को नमन करते हैं।

खत्री स्व० मेजर मनमोहन चोपड़ा—जम्मू

जम्मू के अवकाश प्राप्त गवर्नर श्री चेतराम चोपड़ा के सुपुत्र मेजर मनमोहन चोपड़ा को १९४६ में कमीशन प्राप्त हुआ। आप कार्मड्कोर के सैनिक अधिकारी थे। १९ सितम्बर १९६५ को जब चाथनवाला स्थान पर पाकिस्तानियों से घमासान युद्ध चल रहा था तो मेजर चोपड़ा अपने तीन टैंकों से बैरी पर हमला कर रहे थे कि इनके टैंक दलदल में फँस गये। टैंकों को दलदल से निकालने में तो ये सफल हो गये पर तभी बैरी की ओर से एक गोला इनके टैंक पर पड़ा जिससे ये घायल हो गये। अस्पताल पहुँचाये गये पर बच न सके।

वीरगति के पश्चात् आपको वीर चक्र से पुरस्कृत किया गया जो इनकी पत्नी श्रीमती सुधा जी ने लिया। हम इनके प्रति नतमस्तक हैं।

खत्री बबन लाल चोपड़ा जी—(नागपुर) जन्म ६ जनवरी १९३४

महाराष्ट्र के बुलडाना नगर में प्रतिष्ठित चोपड़ा परिवार में खत्री बबन लाल चोपड़ा जी का जन्म हुआ। बाल्या अवस्था में ही वर्ष १९४० व ४१ में माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। बड़ी बहन व बहनोई के पास नागपुर आ गये। प्रारम्भिक जीवन बड़ा ही संघर्षमय रहा। स्वाभिमानी होने के कारण आपने अकेले ही अपनी छोटी सी कपड़े की दुकान नागपुर में कर ली। चोपड़ा जी वर्ष १९८० से खत्री समाज की सेवा में लीन हैं। व्यापार की व्यस्तता के होते हुए भी आप अ० भा० खत्री महासभा की कार्य समिति की हर बैठक में विदर्भ क्षेत्र का नेतृत्व करते हैं। बैंगलौर—जगन्नाथपुरी आदि स्थानों पर आप अपने क्षेत्र के अनेक खत्री जनों के साथ अधि-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

वेशन में सम्मिलित हुये। आप विदर्भ खत्री सभा के लगभग ६ वर्षों से अध्यक्ष एवं खत्री हितैषी मासिक के सम्मानित सम्वाददाता के रूप में समूचे महराष्ट्र में खत्री समाज को संगठित करने में लगे हैं। आप में अद्भुत सहनशीलता एवं संगठनात्मक शक्ति है। आप जाति सेवा के लिए समर्पित हैं।

खत्री स्व० श्री राम नाथ जी खन्ना—(लखनऊ) जन्म १९०५ निधन १९७४

आपका जन्म लखनऊ के प्रतिष्ठित खन्ना परिवार के श्री बेनी माधव खन्ना जी के परिवार में हुआ था। आपने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय योगदान करते हुए नमक आंदोलन में ६ माह का कठोर कारावास झेला। आपने झण्डा आंदोलन में अमीनाबाद पार्क से गिरफ्तार होकर तीन माह का कारावास भोगा। और अनेक बार स्वतंत्रता आंदोलन में जेल यात्रा की।

आप जीवन पर्यन्त सेवा की लोलुपता से दूर रह कर समाज सेवी कार्यों में संलग्न रहे, अमीनाबाद घंटाघर पार्क स्थित (कक्कड़ जी द्वारा निर्मित) शिवजी मंदिर के जीवन पर्यन्त कोषाध्यक्ष रहे।

भारत सरकार की प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के द्वारा स्वतंत्रता की पच्चीसवीं वर्षगांठ पर आपको ताम्रपत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया। आपके सुपुत्र खत्री अशोक खन्ना जी भी पिता जी के पद चिन्हों पर चलते हुये अनेक सामाजिक संस्थाओं में सम्बद्ध होते हुए भी "खत्री हितैषी" के मंत्री पद का दायित्व बहन करते हुए खत्री समाज की सेवा कर रहे हैं।

स्व. श्रीमती हीरा देवी खन्ना—(लखनऊ) जन्म १९१० निधन १९८४

आपका जन्म कलकत्ता के एक प्रतिष्ठित खत्री परिवार में श्री चन्दन लाल खत्री के यहाँ हुआ था आपका विवाह लखनेऊ में श्री राम नाथ खन्ना के साथ हुआ आप भी अपने पति के साथ देश सेवा कार्यों में संलग्न रहीं। आपका पुत्र जब ६ माह का था उस समय नमक आंदोलन में आपको गिरफ्तार किया गया आप लखनऊ शहर से गिरफ्तारी देने वाली पहली महिला कांग्रेसी कार्यकर्ता थीं। दोबारा आप चौक से विदेशी वस्त्र बहिष्कार आंदोलन में गिरफ्तार हुई और ३ माह का कारावास प्राप्त किया। आपने स्वामी नारदानन्द जी के आश्रम में एक भवन का निर्माण धार्मिक भावना से प्रेरित होकर किया। आपको भारत सरकार की प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा देश की आजादी की पच्चीसवीं वर्षगांठ पर भारत सरकार द्वारा ताम्रपत्र से सम्मानित किया गया।

खत्री डा० बैजनाथ पुरी-(लखनऊ) इतिहास मनीषी से सम्मानित जन्म २५-१-१९१६

भारतीय इतिहास—पुरातत्त्व और संस्कृति के सूर्द्धन्य विद्वान भारतीय मनीषी को अंतर्राष्ट्रीय अभिस्वीकृति प्रदान कराने में सक्षम-गुणिषु प्रमोदं-प्रबुद्ध प्रेरक "इतिहास विशेषज्ञ" खत्री डा० बैज नाथ पुरी जी का जन्म लखनऊ के प्रतिष्ठित पुरी परिवार में २५ जनवरी १९१६ को लखनऊ में हुआ था। लखनऊ विश्वविद्यालय से बी०ए० (ऑनर्स) एम० ए० तथा एल० एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण कर आपने इंगलैंड स्थित आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से एम० लिट० और डी० फिल-की उपाधियाँ प्राप्त की। १९४५ से १९६० तक लखनऊ विश्वविद्यालय में इतिहास एवं पुरातत्व के प्रवक्ता के पद पर--१९५०-५१ में आक्सफोर्ड में संस्कृति के बड़ेन प्रोफेसर के डिप्टी के रूप में--जनवरी १९६१ से नेशनल एकेडेमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, मसूरी में भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के प्रोफेसर पद पर--मार्च १९७१ से लखनऊ विश्वविद्यालय में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफेसर के पद पर तथा १९८१ तक रिसर्च प्रोफेसर के रूप में सेवारत रहे।

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri. Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० पुरी श्री खत्री उपकारिणी सभा लखनऊ के बहुत निकट रहे। खत्री हितैषी से आपको विशेष लगाव है। बचपन से ही आप इसके लिये लेख लिखते रहे हैं। आपने खत्री जाति का इतिहास भी लिखा देश-विदेश की सैकड़ों ऐतिहासिक पुस्तकों में आपके लेख प्रकाशित हुये हैं। तथा अनेक विषयों—धर्मों—संस्थाओं जातियों और महापुरुषों का इतिहास आप लिख चुके हैं। डा० पुरी का कार्य क्षेत्र विशद है। पातञ्जल महाभाष्य-गुर्जर-प्रतिहारों और कुषाणों के इतिहास तथा भारतीय प्रशासन के इतिहास के वह विशेषज्ञ हैं। सम्प्रति वह "खत्रियों का इतिहास" नवीन भारत एवं उसका अतीत और भारतीय प्रवृति में धर्म निरपेक्षता पर ग्रथों का प्रणयन कर रहे हैं।

"इतिहास-मंजूषा-अनंत-ज्योति विद्यापीठ" ने डा० बी० एन० पुरी जी को दि० १० मई १९८७ को लखनऊ के रवीन्द्रालय में विशाल जन समूह के सम्मुख "इतिहास-मनीषी" उपाधि से अलंकृत कर तथा श्री खत्री उपकारिणी सभा लखनऊ ने आपके नाम की संस्तुति "जातिभूषण अलंकार" हेतु कर के सम्मानित किया है।

जातिगौरव खत्री श्री महेशनाथ कपूर (एडवोकेट)—आगरा

श्री कपूर इस समय सहायक अभियोजन अधिकारी के पद पर हाथरस में कार्यरत हैं।

वर्ष १९५८ से जबसे खत्री सभा मथुरा, जो आपकी जन्म भूमि है, की स्थापना हुई, आप निस्वार्थ भाव से खत्री समाज की सेवा कर रहे हैं। तब से सन् १९७२ तक आप खत्री युवा संघ मथुरा के मंत्री पद पर कई सालों तक कार्य करने के उपरांत खत्री सभा मथुरा के महामंत्री पद पर तीन सालों तक रहे। आपने विशेष लगन एवं परिश्रम से अपने कार्यकाल में सराहनीय कार्य किये।

खत्री सभा कासगंज को संगठित करने का श्रेय आपको ही है। वर्ष १९८३ में उ० प्र० खत्री सभा के मथुरा अधिवेशन में आपने कासगंज खत्री सभा का प्रवेश करवाया। खत्री सभा अलीगढ़ ने आपको निर्वाचन अधिकारी बनाया और आपने १९८७ में बड़ी सुन्दरता से इस कार्य को सम्पन्न कराया। आपने युवा वर्ग का सदा प्रतिनिधित्व किया। उ० प्र० खत्री सभा ने आपको जातिगौरव से सम्मानित किया।

खत्री तेजनारायण टंडन—लखनऊ (जन्म १-७-१९२४, निधन २४-२-१९८८)

साहित्यकार स्व० डा० प्रेम नारायण टंडन के लघु भ्राता खत्री तेजनारायण टंडन अपने प्रारंभिक काल से ही परिश्रमी रहकर अपने अग्रज भ्राता के मार्ग दर्शन पर दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को उद्देश्य लेकर एक कर्मठ प्रकाशक बने। अपने जीवन काल में आपने लगभग २५०० पुस्तकों का प्रकाशन किया। अपने सफल प्रकाशन व्यवसाय के साथ-साथ खत्री समाज के प्रत्येक कार्य में समय-समय पर योगदान देते रहे। स्व० डा० प्रे० ना० टंडन के निर्देशन में प्रकाशित खत्री हितैषी का कार्य बड़ी लगन से वर्ष १९४२ से वर्ष १९४७ तक चलाते रहे। अपने व्यापारिक दौरों के अन्तर्गत अनेक सदस्यों को बनाकर खत्री हितैषी की सदस्य संख्या में महत्वपूर्ण योगदान दिया—आपकी अथक मेहनत को देखकर उ० प्र० खत्री सभा ने आपको लखनऊ मंडल के लिये वर्ष १९८३ में संयोजक नियुक्त कर दिया समय-समय पर आयोजित उ० प्र० खत्री सभाओं के सम्मेलनों में भाग लेने में विशेष रुचि रखते थे। धार्मिक प्रवृत्ति के श्री तेज नारायण जी टंडन का विशेष लगाव संतोषी माता से आजीवन रहा—इस सम्बंध में विज्ञापन दाताओं के सहयोग से समय-समय पर स्मारिकायें प्रकाशित कर संतोषी माता की महिमा का अधिक से अधिक प्रचार किया। वर्ष १९८० में बंगलौर शहर में आपने लगभग १.२५ लाख रुपया लागत से संतोषी माता के मन्दिर का निर्माण करवाया। आप वर्ष १९८५ से फरवरी ८८ तक खत्री हितैषी के राष्ट्रीय सम्वाददाता रहे हैं। खत्री समाज को आपकी विशिष्ट सेवाओं पर गर्व है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री राधा कृष्ण टण्डन जी—(लखनऊ) जन्म वर्ष १९२४

लखनऊ के कुलीन टण्डन परिवार में कार्तिक कृष्ण पक्ष—अहोई अष्टमी के पर्व पर श्री बेनी माधव खत्री के घर खत्री राधा कृष्ण टण्डन जी का जन्म हुआ। पिता श्री के त्याग मय एवं परिश्रमी जीवन तथा घर के धार्मिक वातावरण का आप पर प्रभाव पड़ा। जब आप डी० ए० वी० कालेज लखनऊ के छात्र थे तभी से राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने लगे वर्ष १९४२ में भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने तथा पोस्ट आफिस जलाने में आपको विद्यालय से निशकाशित किया गया।

छात्र जीवन में ही खत्री राधा कृष्ण जी हिन्दू महा सभा से सक्रिय रूप से जुड़े रहे। आपने सरोजनी देवी धर्मशाला के प्रांगण में "महावीर सेना" का गठन किया। भारत विभाजन का विरोध करने के लिये "स्वातंत्र वीर सावरकर" के आवाहन पर "काला दिवस" मनाने की योजना बनाते समय १४ अगस्त १९४७ को आपको गिरफ्तार कर लिया गया।

खत्री राधाकृष्ण टण्डन जी ३४ वर्षों तक उ० प्र० सरकार की सेवा में रहे। आपने सचिवालय कर्मचारी संघ के गठन में विशेष भूमिका निभाई तथा संघ की कार्यकारिणी के सदस्य रहे। वर्ष १९७६ में पिता जी का देहावासन हो जाने के कारण कपड़े के पैतृक व्यवसाय का भार आपके कंधों पर आ गया। उसमें आपने बड़े परिश्रम व लगन से कार्य कर उत्तरोत्तर उन्नति की ओर कर रहे हैं। आप परिवार के प्रति समर्पित हैं तथा सभी के दुख सुख में समान रूप से सहभागी हैं। यही कारण है कि न केवल आपके भाई आपका पूर्ण सम्मान करते हैं वरन नगरवासी तथा खत्री समाज आपके प्रति बड़ी श्रद्धा रखता है और छोटे बड़े सभी बड़े आदर से आपको "रधू भइया" के नाम से ही सम्बोधित करते हैं।

इतने व्यस्त होते हुये भी आप खत्री समाज के कार्यों में तन-मन-धन से सहयोग करते हैं। आप वर्ष १९६७ से श्री खत्री उपकारिणी सभा की कार्यकारिणी समिति के सदस्य वर्ष १९७४ से भण्डार मंत्री वर्ष १९८० से खत्री हितैषी के संरक्षक एवं कार्यवाहक प्रबन्धक, फरवरी ८८ से प्रबन्धक के रूप में समाज की सेवा कर रहे हैं। आप अखिल भारतीय खत्री महासभा—उत्तर प्रदेश खत्री सभा तथा अनेक अन्य संस्थाओं के आजीवन सदस्य हैं। आप खत्री युवा संघ लखनऊ के संरक्षक तथा खत्री महिला सभा लखनऊ द्वारा आयोजित होने वाले दीपावली मेले में आपका सदैव विशेष योगदान रहता है। आजकल आप "खत्री भवन" लखनऊ के विस्तार में जुटे हैं।

खत्री सतीशचन्द्र सेठ—लखनऊ (जन्म २४ मई १९३७)

खत्री समाज के कीर्ति स्तम्भ एवं जातिभूषण श्री सेठ जी मौरावाँ के राज घराने के हैं। यह आपका बड़प्पन है कि आपने अपने को जाति सेवा हेतु समर्पित कर दिया है। अब तो जाति सेवा आपके नित्यकर्म में शामिल है। उत्तर प्रदेश खत्री सभा के जन्मदाता महामंत्री होकर आपने जाति का गौरव बढ़ाया है। एक बात और—आपको पद लोलुपता का कोई ध्यान नहीं है। आप तो सेवा भाव से सभा में आये।

"खत्री हितैषी" पत्रिका जब से आपके हाथ में आई है उसकी उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी हो रही है। यद्यपि अभी तक इसके निखरे रंगरूप और नये कलेवर को नये आयामों के साथ भाइयों की सेवा में नहीं लाया जा सका किंतु सेठ जी इस ओर सतत प्रयत्नशील हैं। अभी तो आपने इसे डूबने से बचाया है और इसी का परिणाम है कि यह अपने ५० वर्ष पूर्ण कर सका और इसका स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक आपके कर कमलों में है। सेठ जी निरन्तर एक हाथ से इसे अपने बल पर लेकर आगे बढ़ रहे हैं। इसमें यदि कोई हृदय से सहयोग दे सका है तो भाई खत्री राधाकृष्ण जी टण्डन एवं भाई खत्री महेन्द्र कुमार जी मेहरा भगवान आपको चिरायु करें ताकि आप भविष्य में दूनी ताकत से इस कार्य में अग्रसर होकर खत्री जाति का हित करते रहें।

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी के संरक्षक विशेषांक के आरम्भ के पन्नों में मुद्रित से आगे के

१०४—खत्री विजय मेहरोत्रा
११७/एच १/१२४ पांडूनगर
शिव सदन, कानपुर

१०५—खत्री देवेन्द्रनाथ टण्डन
सर्वश्री लाल जी गोपाल जी टंडन
सुमति भवन-सदर बाजार, हरदोई

१०६—खत्री नरेश नाथ कपूर
११०-ए, सरायं माली खाँ
चौक, लखनऊ-२२६ ००३

१०७—खत्री मोटन दास सेठ
२०६-बी, आर्यनगर
सीतापुर-२६१ ००१

१०८—खत्री अमर नाथ सेठ
फाईनेन्सर
चौक, शाहजहांपुर

१०९—खत्री प्रह्लाद नरायन खन्ना
संस्थापक निदेशक योग संस्थान
बलम्म स्ट्रीट, मुरादाबाद-२४४ ००१

११०—खत्री महेश नरायन कपूर
कपूर सदन
१३३, ख्वाजा कुतुब, बरेली-२४३ ००१

व्यापार की उन्नति के लिये
खत्री हितैषी
में
विज्ञापन देकर लाभ उठाइये

आजीवन सदस्यों की सूची विशेषांक के आरम्भ के पन्नों में मुद्रित से आगे के

८१—खत्री गिरीश मेहरा
६०६, कटरा नील
चांदनी चौक, दिल्ली-११० ००६

८२—खत्री सूरज प्रसाद चड्ढा
३४, गुजराती मोहल्ला
इलाहाबाद-२११ ००३

८३—खत्री दुर्गेश वर्मन
कोठी बालमुकुन्द, मुरसान गेट
हाथरस, जि० अलीगढ़

८४—खत्री राजेन्द्र नाथ मेहरोत्रा
लाला केदारनाथ खत्री
महात्मा गांधी मार्ग, कन्नौज

८५—खत्री श्याम नाथ महेन्द्र
भगतराम जयनारायन ज्वैलर्स
बिरहाना रोड, कानपुर-२०८ ००१

८६—खत्री गोपी नाथ मेहरोत्रा
मैनेजर ए०बी० हरीगंज,
कालपी (जालौन) २८५ २०४

८७—खत्री धनीराम मेहरोत्रा
८/११, आर्यनगर
कानपुर

८८—खत्री राजा घनश्याम मेहरा
'बैजनाथ धाम' मेंहदी टोला
अलीगंज, लखनऊ-२२६ ०२०

८९—खत्री सुरेश कुमार चोपड़ा
पुजारी स्कूल के पीछे
राजा का तालाब, रायपुर म० प्र०

९०—खत्री अशोक कपूर
इम्पीरियल इलेक्ट्रिक वर्क्स
सिविल लाईन्स, मुरादाबाद-२४४००१

९१—खत्री राजेन्द्र कुमार खन्ना
सर्वश्री खन्ना ब्रदर्स
सदर बाजार, बिजनौर

९२—खत्री आर०एन० टण्डन
५४२, व्यवहार बाग
जबलपुर, म०प्र०

९३—खत्री नित्य गोपाल टण्डन
एडवोकेट
१९-सी, एलगिन रोड, इलाहाबाद

९४—खत्री डा० आर०सी० मेहरोत्रा
अधीक्षक, अपग्रेडेड, कम्यूनिटी
हैल्थ सेन्टर, बबीना (झाँसी)

९५ - खत्री बी०के० कपूर
नरायन साड़ी इम्पोरियम
२ मंजिल न्यू मार्केट चौक, वाराणसी

९६—खत्री ध्रुव कुमार खन्ना
१९, बेलदारान रोड, दीवान का
बाजार, मुरादाबाद-२४४ ००१

९७—खत्री लक्ष्मण प्रसाद खन्ना
चौराहा गली
मुरादाबाद-२४४ ००१

९८—खत्री अशोक कुमार खन्ना
सर्वश्री फाईन बटन स्टोर
टाउन हाल, मुरादाबाद-२४४ ००१

९९—खत्री पी०एन० कपूर-प्रबन्धक
इलाहाबाद बैंक, सिविल लाइन्स
मुरादाबाद-२४४ ००१

१००—खत्री जयशंकर मेहरोत्रा
मोहल्ला अताई
मुरादाबाद-२४४ ००१

१०१—खत्री गणेश प्रसाद टण्डन
मोहल्ला अताई
मुरादाबाद-२४४ ००१

१०२—खत्री श्याम बिहारी टण्डन
श्याम भवन, खन्ना मुहल्ला
बरेली-२४३ ००१

१०३—खत्री श्यामचन्द्र मेहरोत्रा
४ चौधरी स्वायर
फैजाबाद रोड, लखनऊ-२२६ ००६

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के सुअवसर पर हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ :-

खत्री हेमन्त कुमार कृष्ण कुमार ठाकुर (सेठी)

सर्वश्री हेमन्त जनरल स्टोर्स

गाँधी चौक, मु० पो०–शिवनी मालवा, जिला–होशंगाबाद

खत्री जय प्रकाश कपूर

सर्वश्री अम्बोका जनरल स्टोर्स

स्टेशनरी – रेडीमेड आदि के विक्रेता

मेनरोड देवली, जिला–वर्धा, महाराष्ट्र

खत्री मोती लाल कपूर

सर्वश्री शोभा प्रिंटर्स

देवली, जिला–वर्धा, महाराष्ट्र

खत्री रमाकान्त रामचरण लाल महेन्द्रु

सर्राफा की दुकान

मारवाड़ी चौक, यवतमाल–एम०एस०

सर्वश्री अंबीका स्टोर्स फोन—6565

थोक एवं फुटकर विक्रेता

• छाते • रजाई खोल • सूटकेस • मसेहरी • चादरें • कालीन आदि

जवाहर रोड, अमरावती–४४४ ६०१ महाराष्ट्र

स्वामी देवी प्रसाद खत्री

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी के स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के शुभ अवसर पर

हमारी शुभ कामनायें

रामनगर, काशीपुर खत्री समाज़ गगन के नक्षत्र

स्वर्गीय

श्री बालक राम सिंह मेहरोत्रा, एडवोकेट

(२-६-१८९५ — २३-२-१९७७)

जिनके पद चिन्हों पर चल अनवरत सेवारत प्रतिष्ठान अपने व्यवसायिक आदर्शों में वृद्धि कर रहे हैं। उनकी पुण्य स्मृति में हम सादर नत मस्तक हैं।

रजि० १९४५ फोन—३९

सर्वश्री कुमाऊँ नर्सरी

बागवानी एवं खेती के यन्त्रों के निर्माता एवं निर्यातक, सब्जी, फूलों फलों के बीजों तथा पेपेन के उत्पादक, दवा एवं खाद के विक्रेता।

रामनगर (नैनीताल)

सर्वश्री कुमाऊँ नर्सरी एण्ड गार्डन

फल, फूल, सजावटी पोधों के उत्पादक एवं विक्रेता

चिल्कया रोड, रामनगर (नैनीताल) २४४ ७१५

सर्वश्री कुमाऊँ एपियरी

मौन पालन उद्योग एवं शुद्ध मधु के सप्लायर तथा एगमार्क मधु के थोक विक्रेता

रामनगर (नैनीताल)

सर्वश्री कुमाऊँ केनिंग इन्डस्ट्रीज

फलों के मुरब्बे तथा आचार के निर्माता

काशीपुर, रामनगर (नैनीताल)

तार—
नर्सरी

कलकत्ता आफिस

१६१/१, महात्मा गाँधी मार्ग, कलकत्ता-६

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती के सुअवसर पर हमारी हार्दिक शुभ कामनाएँ :—

खत्री जवाहर लाल सहगल

सर्वश्री लाला ट्रांसपोर्ट फोन : 2345 2420

बुकिंग – फारवर्डिंग – क्लियरिंग एजेन्ट

काटेन मार्केट रोड, खामगाँव महाराष्ट्र

खत्री देवेन्द्र चन्द्र लाल कपूर – खत्री आर०के० कपूर

खत्री देवेन्द्र इम्पोरियम बस स्टैन्ड, मु० पो० चिखली, बुल्ढाना

सहयोगी प्रतिष्ठान :

सर्वश्री राजेश जनरल प्रोविजन बस स्टैन्ड, खामगाँव, बुल्ढाना

सर्वश्री बेंगाल रेस्टोरेन्ट फोन—4271

एस० टी० कैन्टीन शेरगाँव जिला बुल्ढाना

तथा

एस० टी० कैन्टीन वासीम जिला अकोला

स्वामी—बेनू प्रसाद खत्री एवं राम खत्री

शादी व पार्टी आदि के लिये सम्पर्क करें :—

सर्वश्री कृष्णा कैटरर्स फोन—4271

आकोट स्टैण्ड—अकोला, महाराष्ट्र

पो०—पूनमचंद जेठमल खत्री

श्री खत्री समाज के लिये शुभकामनाएं :—

खत्री हर गोपाल खन्ना

मुफ्ती टोला

मुरादाबाद

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के प्रकाशन पर टण्डन बन्धुओं की
हार्दिक शुभकामनायें :

मफत लाल मिल्स

का अधिकृत शो रूम

फोन : ४५६७०

सर्वश्री लखनऊ क्लाथ सेन्टर

मिल की दूकान, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ

एवं

सर्वश्री लखनऊ स्वदेशी स्टोर्स

ऊनी कपड़ों के लिए विख्यात विक्रेता

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ

ग्राहक की सन्तुष्टि ही हमारा ध्येय है !

"खत्री हितैषी" के "स्वर्ण-जयन्ती" विशेषांक के
सफल प्रकाशन पर हमारी ओर से

शुभकामनायें

८३५०८

खत्री महेन्द्र कुमार मेहरा

श्रीमती ऊषा मेहरा

हिन्दी साहित्य भण्डार

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

५५, चौपटियाँ रोड, सरांय मालीखाँ पो० आ०

लखनऊ-२२६ ००३

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

स्वर्ण - जयन्ती

के

अवसर

पर

हार्दिक

शुभकामनाओं

सहित

फोन :—४३८४५

खत्री रामदास बैजल

—: कृपया पधारें :—

आधुनिक मशीनों से नजर की जांच कराने तथा

हर प्रकार के आधुनिक एवं आकर्षक

नजर के चश्मों, फ्रेमों तथा धूप के चश्मों के लिए

वर्ष १८८८ से आपकी सेवा में रत

सर्वश्री बी० एन० बैजल

चश्मों के विशेषज्ञ एवं निर्माता

चौराहा (कैसरगंज) बहराइच

ग्राहक की सन्तुष्टि ही हमारा ध्येय है !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के विमोचन के शुभ अवसर पर

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित

खत्री अशोक कुमार खन्ना

सर्वश्री बेनीमाधव रामनाथ होलसेल

स्टेशनरी एवं कागज के थोक विक्रेता

गुईन रोड अमीनाबाद, लखनऊ

निवास 73375 —: फोन :— 32370 प्रतिष्ठान

★

सर्वश्री गौरव एजेन्सीज

सी० एन्ड एफ० एजेन्ट कैम्लीन लि० (ए-डिवीजन, बम्बई)

२०, डा० बी० एन० वर्मा रोड, लखनऊ

फोन :—47323

★

खत्री दयानन्द खन्ना

सर्वश्री बेनीमाधव रामनाथ

स्टेशनरी, कागज एवं कम्प्यूटर स्टेशनरी के विक्रेता

अमीनाबाद तथा प्रिंस काम्पलेक्स

हजरतगंज, लखनऊ

निवास 71050 —: फोन :— 44776 प्रतिष्ठान

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

FOR HOUSE AND PLOTS IN

ANSALI

AASHIANA

LUCKNOW

THE MODERN RESIDENSIAL MINI CITY

—: Contact :—

K. K. Property Dealer

67, Shivaji Marg, LUCKNOW

Phone :—43826

AVILABLE SHOP, GODOWNS AND RESIDENSIAL PLOTS

AT HEART OF THE CITY

NEAR BALRAMPUR HOSPITAL

GOLAGANJ, LUCKNOW

—: Contact :—

PAPER CENTRE

56, GUYNE ROAD, LUCKNOW

Phone :—49735 P. P.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक
के अवसर पर
शुभ कामनाओं सहित :

इलाहाबाद के आभूषणों की दुनियाँ के आधुनिकतम एवं
नये फैशनों के सोने चांदी के आभूषणों के
निर्माता एवं विक्रेता

दूरभाष ५३४२१
निवास ५६५२८

खन्ना ज्वैलर्स

३८७/१, मनमोहनदास मार्केट, रानी मन्डी
इलाहाबाद

खत्री हितैषी के स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक पर
शुभ कामनाएँ
खत्री सन्त लाल मेहरोत्रा
फोन ५२५२४

सपना टेक्सटाइल्स

८३, जानसेनगंज, इलाहाबाद
हर प्रकार की सूटिंग, शर्टिंग, शाल, दुशाले, ऊनी कपड़े, कम्बल एवं
फैन्सी साड़ियाँ और स्कूल ड्रेस के कपड़े
एवम्
नये फैशन के चप्पल, सैण्डिल व जूतों के लिए

सपना शूज
८३, जानसेनगंज
इलाहाबाद

भारत बूट हाउस
८५, जानसेनगंज व कटरा चौराहा
इलाहाबाद

कल्पना शूज
४४-ए, घंटाघर, चौक
इलाहाबाद

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के शुभ अवसर पर
राजस्थान के समस्त खत्रियों की ओर से
शुभ कामनाएँ :

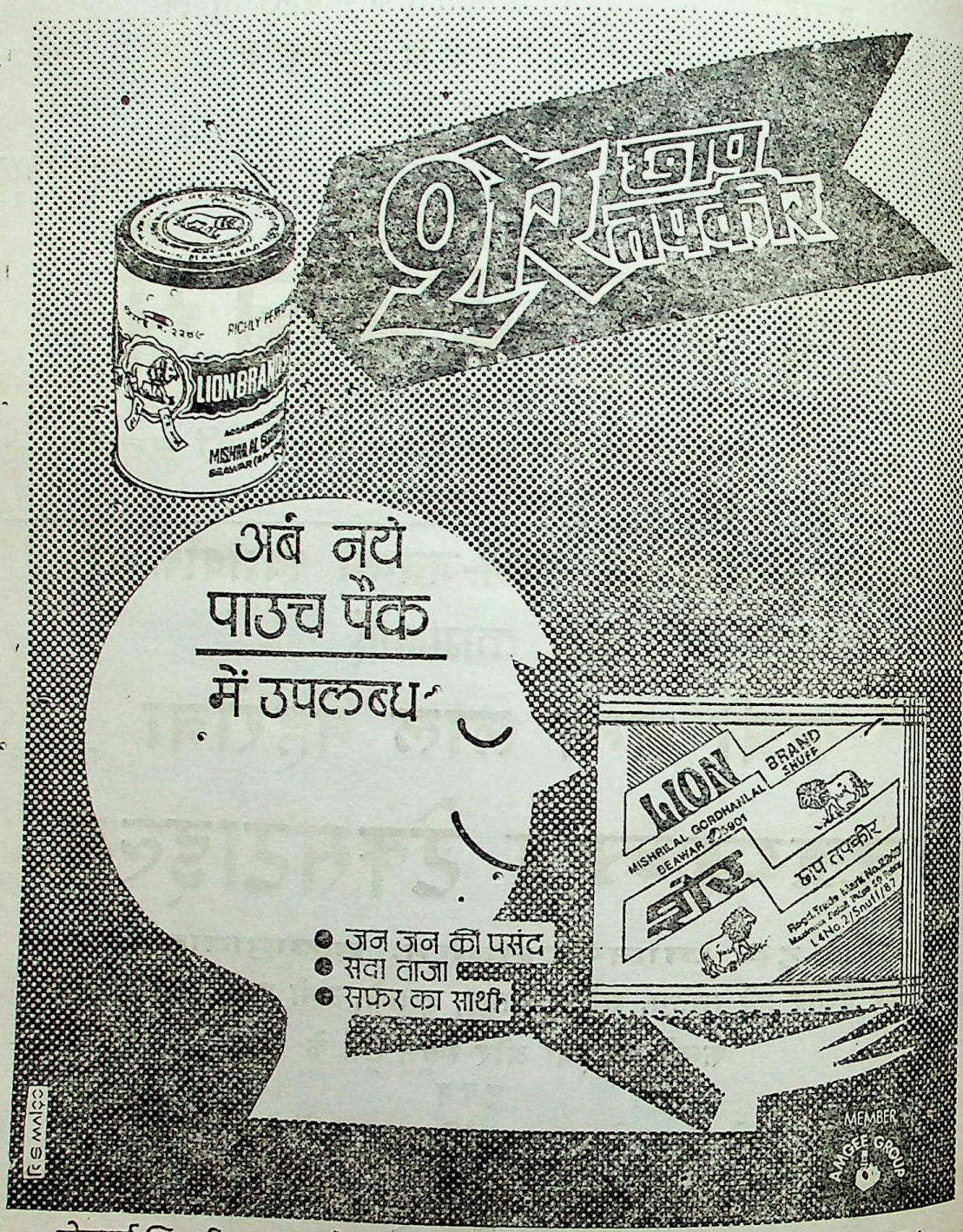

मेसर्स मिश्रीलाल गोरधनलाल स्टेशन रोड, ब्यावर (राज) 305901
Phones: 21364, 20398

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

WHEN YOU'RE LOOKING
FOR QUALITY
LOOK FOR THIS
SYMBOL
BECK'S"

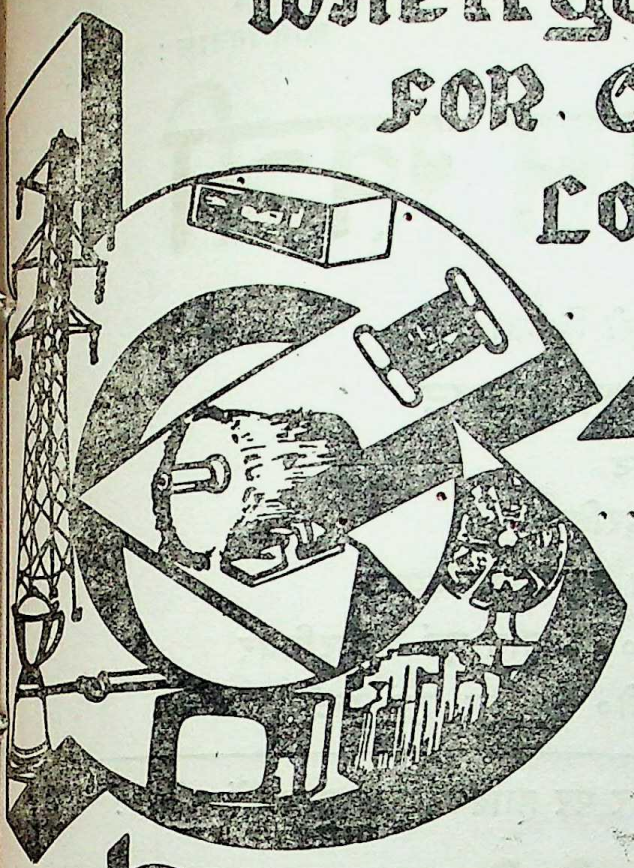

Varnishes, Thinners, Epoxy
Resins Epoxy Compound
&
DOBECKOT 505C/
Hardeners EH 411

dr. beck+co.(india)ltd.

India Electricals

(A HOUSE THAT INSPIRES CONFIDENCE)
47/10. BAGIA MANI RAM KANPUR-208001
GRAM : INSUKING PHONE : 61895, 64465, 62589

VERMA...

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर
समस्त खत्री बन्धुओं को शुभकामनाएँ

फोन निवास : ५२५६६

बिशन दास खत्री

होल-सेल होजरी विक्रेता

१८, बौक, इलाहाबाद

स्टाकिस्ट

- जैट बनियान एवं अण्डरवियर
- गेलार्ड बनियान एवं अण्डरवियर
- टी० टी० बनियान एवं अण्डरवियर
- टी० टी० ब्रा एवं पैन्टी

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर हार्दिक शुभकामनाओं सहित :

मौडर्न होटल रेस्टोरेन्ट एवं ब्रार

खत्री डा० मोहन लाल सरीन

मथुरा पधारने पर उत्तम आवासीय सुविधायुक्त

- प्रत्येक कमरे में इन्टर कौम सुविधा
- कमरों में शीतलता हेतु कूलर
- जनरेटर की सुविधा
- रेलवे स्टेशन व बस स्टैन्ड के निकट
- सफाई की विशेष व्यवस्था
- चैक आउट टाइम–२४ घन्टे

बस स्टैन्ड के सामने

फोन—घर : ५०५७
होटल : ४७४७

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी

के

स्वर्ण - जयन्ती

विशेषांक प्रकाशन

के अवसर पर

हार्दिक शुभकामनायें

खत्री हितैषी के भूतपूर्व प्रबन्धक

स्व० श्री बनारसी दास मेहरोत्रा जी

जिनके पद चिन्हों पर चलकर अनवरत सेवारत प्रतिष्ठान

अपने व्यवसायिक आदर्शों में वृद्धि कर रहे हैं।

उनकी पुण्य स्मृति में हम सादर नतमस्तक हैं।

卐

फोन : दुकान : 44836
निवास : 72832

सर्वश्री रामा बुक डिपो

हाईस्कूल, इन्टर, विश्वविद्यालय स्तर की तथा

इन्जीनियरिंग, मेडिकल, कानून आदि की

पुस्तकों के थोक व फुटकर विक्रेता

झन्डे वाला पार्क, अमीनाबाद

लखनऊ-२२६ ०१८

खत्री राज कुमार मेहरोत्रा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Futiva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के विमोचन के शुभ अवसर पर
हार्दिक शुभ कामनाओं सहित

ॐ धर्मो रक्षति रक्षितः

खत्री अशोक कपूर

सर्वश्री इम्पीरियल इलेक्ट्रिक वर्क्स

अधिकृत सरकारी ठेकेदार (प्रथम श्रेणी) एवं मशीनरी सप्लायर

अधिकृत वितरक

सर्वश्री क्रामटन ग्रीव्ज-किरलोस्कर जरनेटिंग सेटस

सिविल लाइन्स, मुरादाबाद-२४४ ००१

29297 —: दूरभाष :— 23139

With Compliments from

K. C. MEHROTRA

Phone : 83053

KAHA AGENCIES

Purani Kothi Jagdishpur, Surangi Tola

CHOWK, LUCKNOW-226 003

Manufacturets of :

• TURST & DEMON BRAND • FIBRE BOARD FILES • INDEX FILES

• ALL TYPES OF OFFICE FILES • FILE TAGES

• LACES CLIPS, BOARD Etc.

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी के स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के प्रकाशन पर हार्दिक शुभकामनायें :

खत्री अशोक टण्डन (एजेन्ट) फोन—310

यूनिट ट्रस्ट आफ इन्डिया

मोती हारी, (बिहार)–८४५४०१

सर्वश्री गुलमर्ग स्टूडियो

चौक, लखनऊ–२२६ ००३

गुलशन खत्री — जगदीश खत्री

निवास 83789 — फोन :— 83355 स्टूडियो

सर्वश्री चश्माघर

छन्नू लाल बिल्डिंग

मालवीय रोड

रायपुर, म० प्र०

आधुनिक, कलात्मक सौन्दर्य व सौभाग्य की प्रतीक

बनारसी साड़ियाँ

एवम्

सिल्क प्रिन्टेड साड़ियों

के

निर्माता व विक्रेता

तार :—नम्रता

नारायण साड़ी इम्पोरियम

पो० बा० नं० ११५७, दूसरी मंजिल न्यू मार्केट

चौक, वाराणसी-२२१ ००१

टेलीफोन नं० दूकान 54055 निवास 54572, 54168

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अति प्रज्वलनशील केमीकल्स व आयल के परिवहन की समस्याओं का समाधान कीजिये

हमारे द्वारा

जो अति आधुनिक उपकरणों से
युक्त टैंकरों का बेड़ा रखते हैं और इस
कार्य में दक्षता रखते हैं।

विभिन्न कीमती तेल, केमिकल्स,
एसिड व अन्य पदार्थ भरने के
लिए

खाली डिरम (बैरेल्स)
हर आकार और हर प्रकार के
किसी भी मात्रा में उपलब्ध

शीरा

विभिन्न प्रयोजन के लिए, स्टील
टैंकों में संचित विभिन्न प्रकार का शीरा
किसी भी मात्रा में उपलब्ध

लिखें या सम्पर्क करें :

मेसर्स टंडन ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन
मेसर्स रामभरोसे लाल राजेन्द्र कुमार टंडन

पश्चिमी दरवाजा
मारवाड़ी गंज, बरेली।

रामभरोसे लाल टंडन
राजेन्द्र कुमार टंडन
प्रभात कुमार टंडन
राकेश कुमार टंडन

ग्राम :—'शीरावाला'

दूरभाष :—कार्यालय :—72578, 72405
निवास :—75259; 72855
गोदाम :—75422

National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक
के अवसर पर
हार्दिक शुभ कामनाएँ

साँवल दास
राम किशोर खन्ना

२७/१२, एम०जी० मार्ग, सिविल लाइन्स
इलाहाबाद

● फैन्सी कपड़ों ● साड़ियों ● मैचिंग एवं ऊन के विक्रेता

खत्री राम किशोर खन्ना—संरक्षक—खत्री हितैषी

खत्री हितैषी स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर
हार्दिक शुभ कामनाएं :

जब शहनाइयाँ बजें, खुशियों के मौके पर
आपके संग 'पहलवान परिवार' की तृतीय पीढ़ी
आपकी सेवा के लिये तत्पर उत्तर भारत में अग्रणी
('मेहरोत्रा परिवार' का प्रतिष्ठान)

फोन आफिस ५२६६१
निवास ६४८४०

कृष्णा कार्ड्स

चौक, कानपुर की सेवा स्वीकार करें।

खत्री पूरन चन्द्र मेहरोत्रा—संरक्षक—खत्री हितैषी

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

के अवसर पर

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

खत्री राज कुमार टण्डन

संरक्षक

खत्री हितैषी मासिक उ० प्र०

दूरभाष : २८८३

नीरा होटल एण्ड रेस्टोरेन्ट

गुरहट्टी बाजार, मिर्जापुर-२३१००१

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर शुभ कामनाएँ :-

खत्री श्रीरंग प्रसाद मेहरा-खत्री हरी मोहन प्रसाद मेहरा
खत्री महेन्द्र प्रसाद मेहरा,- खत्री सुरेन्द्र प्रसाद मेहरा

सर्वश्री मेहरा एण्ड कम्पनी

फोन २०६५ २४१६

इंजीनियर्स एंड कन्ट्रेक्टर्स

कांग्रेस भवन, सरोजनीदेवी रोड, जालना-४३१२०३

निवास :—शास्त्री मोहल्ला, पुराना जालना हेलो-२२३०

With best compliments from :—

Phone : 694984

M. B. BHATIA

M. Com. (Bom.)

(ACCOUNTS & TAX PRACTITIONER)

Offi. : 10-A, PIRAMAL NAGAR,
Block No. 7, GOREGAON (West),
BOMBAY-400 062

Resi : 10/D, PIRAMAL NAGAR,
Block No. 30, GOREGAON (West),
BOMBAY-400 062

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के प्रकाशन पर
हार्दिक बधाइयों सहित

ॐ

स्थापित : सन् १९५०

दूरभाष : दुकान ६२१९०
घर ६७२११

राधाकिशन खन्ना एण्ड सन्स

४२/१४९, मिश्री बाजार, कानपुर

● हर प्रकार के झोले ● हैण्ड बेग ● स्कूल बेग ● वर्मी बेग ● होलडाल
● लेदर अटैची ● फाइल बेग ● पोर्ट फोलियो ● ब्रीफ केस
इत्यादि के निर्माता व विक्रेता

खत्री राधा किशन खन्ना—संरक्षक—खत्री हितैषी

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के प्रकाशन पर
हार्दिक शुभ कामनाएँ

स्थापित सन् १९५२

फोन : ६४४८७ पी०पी०

छन्नूलाल प्रमोद कुमार
४८/२९२, जनरलगंज, कानपुर
गो व बंधानी हींग के
प्रमुख विक्रेता

विनोद एण्ड कम्पनी
४८/२९२, जनरलगंज, कानपुर
सभी प्रकार के ईगुर, सेन्दुर के
निर्माता एवं विक्रेता

卐 सहयोगी प्रतिष्ठान 卐

छन्नू लाल एण्ड सन्स

४७/४८, जनरलगंज, कानपुर
रंग, हींग, सेन्दुर, नील, चमकी, फ्लोरेसेन्ट, सुनहला, रूपहला
एवं डिटरजेन्ट पाउडर के विक्रेता।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

स्वर्ण-जयन्ती

विशेषांक के
अवसर पर हमारी

शुभ कामनाएँ

खत्री मदन चन्द कपूर
संरक्षक-खत्री हितैषी

हर समझदार गृहणी की पसन्द

उत्कृष्ट चूरा **MK** TRADE MARK बन्धानी हींग बन्धानी हींग

मदनचन्द कपूर एण्ड कम्पनी नौघड़ा, कानपुर-208001

दूरभाष-42020 ESTIMATE प्रचार सामग्री

WITH BEST WISHES FROM

BSHPS BUILDERS

Engineers and Contractors
2-DHIRPUR, DELHI-3
Branch 449 C. P. MISSION
JHANSI

With best compliments from :—
Phone 60585, 60372 KHATTRI CHANDULAL A GARACH Gram KOLMINAR

SRINATH MEDICAL AGENCY
Distributors/Stoctests :—
ALEMBIC, ARESTO, COMET, DUCKBILL, MAPRA, PCI, SANDOZ, SOL
VINOD MANSION MAIN ROAD, JHARIA-828111 DHANBAD)
&
COAL MINERS OF INDIA
COAL/COKE HANDLING AGENTS
Post Box. No. 92 P.O. JHARIA-828111 (DHANBAD)

खत्री हितैषी स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक के अवसर पर शुभ कामनाएँ :—

छोटे लाल खत्री

वस्त्र विक्रेता

तालबेहट, जिला-ललितपुर

आपकी बेटी भी किसी की बहू है, अतः बहू को बेटी समान समझें

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

१९२० के पुस्तकों के दाम में आज भी पुस्तकें प्राप्त करें प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना के अन्तर्गत प्रकाशित तीन ग्रन्थावलियां महज एक सौ रुपये में ।

भारतेन्दु समग्र

— सं.-हेमन्त शर्मा

केवल भारतेन्दु ग्रन्थावली ही नहीं, वरन-अबतक की प्रकाशित सामग्रियों के अतिरिक्त अनेक अप्रकाशित एवं अलभ्य कविताएं, लेख, भारतेन्दु के पत्र विज्ञापन एवं सूचनाएं भी जिनमें प्रमुख हैं : लेखक और नागरी लेखक, कविता की भाषा, एजूकेशन कमीशन के समक्ष गवाही, परिहासिनी ।. . . और अनेक अलभ्य चित्र साथ ही मनुशर्मा की लम्बी भूमिका

ऐसा ही है

बंकिम समग्र

(बंकिम की सभी रचनाओं का संग्रह)

— सं. निहाल चन्द्र वर्मा

और

देवकीनन्दन खत्री समग्र

(देवकी नन्दन खत्री द्वारा रचित सभी ग्रन्थों का संग्रह)

सं.-डॉ युगेश्वर

बिना किसी काँट छाँट के

१२ सौ रुपये से भी अधिक की पुस्तकें फोटो कम्पोजिंग और आफसेट से छपी मात्र एक सौ रुपये में १४ सितम्बर ८७ तक सौ रुपये भेज कर पंजीकृत ग्राहक बने डाक व्यय आप द्वारा देय होगा

विशेष जानकारी के लिये लिखें:

प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो. बा. ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी २२१ ००१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

कुरीतियों को हटाओ

समाज को बचाओ

क्या यह आवश्यक है :—

१—विवाह जैसे पवित्र एवं मांगलिक कार्य के अवसर पर शराब का पीना तथा सड़कों पर अभद्र प्रदर्शन करना।

२—बारात निकलते समय व्यर्थ रुपयों का लुटाना तथा आडम्बर पूर्ण प्रदर्शन (नाच) करना।

इसका परिणाम है :—

धन की तबाही—समय की बरबादी

और

समाज के सामान्य वर्ग में मानसिक विद्रोह

विवाह एक धार्मिक संस्कार है :—

इसे उपरोक्त बुराईयों से तथा दहेज से

कलंकित न कीजिए और न करने दीजिए।

निवेदक :—

उत्तर प्रदेश खत्री सभा

★ कृपया इसे छपवा कर अपने नगर में चिपकवा दें। ★

CC-0. National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

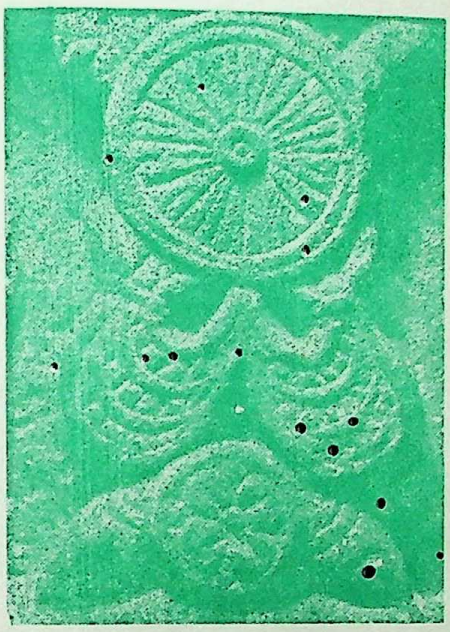

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ

अभिनन्दन पत्रिका

१९८७ ई०

ANANTA-JYOTI VIDYAPITHA

Felicitation Journal

1987 A.D.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सम्पा

सम्पा

मार्ग द

प्रकाश

द्वै भाषि

सर्वाधिक

प्रकाश

मुद्रक

प्राप्ति

मूल्य :

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ अभिनन्दन पत्रिका
Ananta-Jyoti Vidyapitha Felicitation Journal

सम्पादक : कु० अलका जैन
एम० ए०, बी० एड०

सम्पादन-सहयोगी :
अंशु जैन 'अमर'
एम० ए०

कु० शेफाली कान्त
एम० ए०

मार्ग दर्शक : डा० शशि कान्त

प्रकाशन : मई १९८७ ई०

द्वैभाषिक : हिन्दी-अंग्रेजी

Editor : Miss Alka Jain
M. A., B. Ed.

Co-Editor :
Anshu Jain 'Amar'
M. A.

Miss Shephali Kant
M. A.

Guide : Dr. Shashi Kant

Published : May 1987 A.D.

Diglot : Hindi-English

सर्वाधिकार सुरक्षित : अनन्त-ज्योति विद्यापीठ

Copyright : Ananta-Jyoti Vidyapitha

प्रकाशक : नलिन कान्त जैन
सचिव,
अनन्त-ज्योति विद्यापीठ

Publisher : Nalin Kant Jain
Secretary,
Ananta-Jyoti Vidyapitha

मुद्रक : रत्न-ज्योति प्रेस

Printer : Ratna-Jyoti Press

प्राप्ति स्थान :
अनन्त-ज्योति विद्यापीठ,
ज्योति निकुंज,
चारबाग,
लखनऊ–२२६ ०१९
(उ० प्र०, भारत)

Can be had from :
Ananta-Jyoti Vidyapitha
Jyoti Nikunj,
Charbagh,
Lucknow--226 019
(U. P., India)

मूल्य : रु० ३०

Price : Rs. 30

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

विषय-सूची

समर्पण

सम्पादकीय

इतिहास-विमर्श

विमोच्य पुस्तक

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ

सम्मानित विद्वान-मनीषियों का परिचय

चयनिका

स्वागत-सम्बोधन

प्रधानाध्यापिका का प्रतिवेदन

Contents

Dedicatory	
Editorial	1
Musings on History	3
The Book Being Released	5
Ananta-Jyoti Vidyapitha	23
Biographical sketches of the honoured Scholars & Intellectuals	41
Anthology of Poems	65
Welcome Address	171
Report	180
	182

कु० अलका जैन　　कु० शेफाली कान्त　　अंशु जैन　　नलिन कान्त जैन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

To the sacred memory

of

Mrs. Anant Mala Jain

श्रीमती अनन्त माला जैन

को

श्रद्धांजलि

जिनकी सत्प्रेरणा और आशीर्वाद के आश्रय से

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ की स्थापना हुई

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्रीमती अनन्त माला जैन का जन्म २१ नवम्बर, १९१३ ई०, को मेरठ में हुआ था। उन्होंने ५ अप्रैल, १९८६ ई०, को लखनऊ में इस असार संसार से विदा ली। उनके पिता स्व० श्री उग्रसेन कंसल व्यवसाय से एक अध्यापक थे, अत: उनका लालन-पालन एक शिक्षित वातावरण में हुआ था। उन्होंने वर्नाकुलर फ़ाइनल परीक्षा तथा संस्कृत में प्रथमा की परीक्षा उत्तीर्ण की थीं जो कि उनके समय में लड़कियों के लिए उपलब्ध उच्चतम संस्थागत शिक्षा थी। उनका विवाह १२ फरवरी, १९२९, को डा० ज्योति प्रसाद जैन से हुआ था, और वह अपने पीछे अपने दो पुत्र शशि कान्त और रमा कान्त तथा उनके परिवार को शोकग्रस्त छोड़ गयीं।

उन्हें शिक्षा से प्रेम था और जब तक उनके स्वास्थ्य ने साथ दिया वह बराबर कुछ समय स्वाध्याय के लिये निकालती थीं। **अनन्त-ज्योति विद्यापीठ** की स्थापना के प्रेरकों और संस्थापकों में वह थीं और उनकी कामना थी कि विद्यापीठ समय के साथ अपने वांछित स्तर को प्राप्त कर ले।

विद्यापीठ प्रवर समिति उनकी स्मृति में श्रद्धावनत है और उनके पादपीठ पर अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करती है ताकि उनके आशीर्वाद और शुभकामनायें सदा हमारे साथ रहें।

Mrs. Anant Mala Jain was born on Nov. 21, 1913 A. D., at Meerut and left this carnal world on April 5, 1986 A. D., at Lucknow. Her father, the late U.S. Consul, was a teacher by profession and she was brought up in an educated environment. She did the Vernacular Final Examination and also the Prathama Examination in Sanskrit, the highest institutional education available to the girls in those times. She was married to Dr. Jyoti Prasad Jain on Feb. 12, 1929, and left behind her two sons Shashi Kant and Rama Kant and their families in solemn bereavement.

She had a love for education and so long her health permitted, would always find some time for studies. She was one of the prime movers and founders of the **Ananta-Jyoti Vidya-pitha**, and her wish was that the Vidyapitha should in course of time acquire the desired stature.

The Vidyapitha Pravara Samiti bows in reverence to her memory and places its tributes at her pedestal so that her blessings and good wishes be always with us.

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

सम्पादकीय

प्रस्तुत पत्रिका अनन्त-ज्योति विद्यापीठ द्वारा प्रकाश्य जर्नल का प्रवेशांक है। यह विद्यापीठ द्वारा आज आयोजित तृतीय विद्वान-मनीषी अभिनन्दन समारोह के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है और उक्त अवसर की गरिमा के अनुरूप विद्यापीठ द्वारा सम्मानित सभी तैंतालिस विद्वान-मनीषियों का परिचय जो उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है, इसमें विशेष रूप से दिया गया है। परिचय खण्ड में दो वर्ग किए गये हैं यथा इतिहास-मनीषी तथा अन्य विद्वान-मनीषी, और इन दोनों ही वर्गों में परिचय काल-क्रम से दिया गया है।

विमोच्य पुस्तक के संबंध में परिचय एवं विवरण को एक पृथक खण्ड में दिया गया है। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ के उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण भी एक पृथक खण्ड में दिया गया है।

उपरोक्त के अतिरिक्त दो मौलिक खण्ड "इतिहास-विमर्श" और "चयनिका" शीर्षकों के अंतर्गत दिये गए हैं। "इतिहास-विमर्श" में इतिहास-मनीषी और इतिहास-मंजूषा के भाव को स्पष्ट किया गया है, तथा इतिहास पर शोध परिचर्चा का समाकलन, और इतिहास-सन्देश कविता रूप में, प्रस्तुत हैं। "चयनिका" में आठ विशिष्ट रचनाओं को संकलित किया गया है तथा एक टिप्पणी द्वारा उनके अन्तर्निहित भाव को भी स्पष्ट किया गया है।

इस प्रयास में मुझे अपने पिताश्री डा० शशि कान्त से अपेक्षित मार्गदर्शन और बहन शेफाली तथा भाई अंशु से आवश्यक सहयोग प्राप्त हुआ। भैया नलिन कान्त ने इसकी मुद्रण और प्रकाशन व्यवस्था बहुत श्रम, सुरुचि और सूझ-बूझ के साथ की। आवरण-सज्जा एवं इतिहास-मंजूषा के चित्रांकन को अंतिम रूप देने के लिये मैं उ० प्र० शिक्षा विभाग के श्री कन्हैयालाल वर्मा की आभारी हूँ।

यह प्रयास किया गया है कि समस्त सामग्री एक सुनियोजित व्यवस्था से और सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत की जाए, सामग्री ठोस और उपयोगी हो, और सम्मानित विद्वान-मनीषियों के विवरण में उनका मूल्यांकन वस्तुपरक एवं सही हो, तथा मुद्रण में त्रुटियाँ न रहें, तथापि कुछ गलतियाँ और कमियाँ रह जाना स्वाभाविक है। सुज्ञ पाठकों से हमारा निवेदन है कि अनावधानतावश जो त्रुटियाँ रह गयी हैं उनको कृपया सहज भाव से लेंगे और हमें क्षमा करेंगे। हमारा यह भी निवेदन है कि आपके अभिमत एवं प्रतिक्रिया हमारे लिए अगले प्रयास के संबंध में मार्गदर्शक का कार्य करेंगे।

जिन संस्थाओं, संस्थानों और प्रतिष्ठानों ने विज्ञापन देकर इस प्रयास में हमारे साथ आर्थिक दृष्टि से सहयोग किया है उन सभी के प्रति हम अनुग्रहीत हैं।

१०-५-१९८७

—कु० अलका जैन

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Editorial

The instant issue is the introductory number of the Journal to be published by the Ananta-Jyoti Vidyapitha. It is being issued on the occasion of the Third Celebration to felicitate scholars and intellectuals par excellence, organised this day by the Vidyapitha, and in accordance with the dignity of the occasion it specially includes the biographical sketches of all the forty-three scholars and intellectuals honoured by the Vidyapitha. The biographical sketches have been classified into those of the historians par excellence and of the other scholars and intellectuals par excellence, and they have been mentioned in a chronological order in both the categories.

The book being released, has been treated in a separate section. There is also a section on the Ananta-Jyoti Vidyapitha wherein the objects and programmes of the Vidyapitha have been briefly narrated.

Besides the above, there are two sections : 'Musings on History' and 'Anthology of Poems' which contain original material. Under the 'Musings on History', the meaning of Historian Par Excellence and the concept of the Casket of History have been explained, and the discussions pertaining to research on history, and the message of history, have been presented. In the Anthology eight specific compositions have been included, and a note specifying the underlying theme, has also been given.

In this endeavour I received due guidance from my father Dr. Shashi Kant and necessary co-operation from my sister Shephali and brother Anshu. My elder brother Nalin Kant arranged its printing and publication with great diligence, care and interest. For the cover-design and for giving final touches to the drawing of the Casket of History, I am thankful to Mr. K. L. Verma of the U. P. Education Department.

It has been our endeavour that all the material should be presented in a systematic manner and pleasing style, the matter should be solid and useful, and the appreciation of the honoured scholars and intellectuals should be objective and correct in the biographical sketches, and that there should be no printing errors, but some errors and shortcomings are bound to remain. We request the enlightened readers that they may kindly take easy the errors or shortcomings left due to inadvertance and kindly excuse us for the same. We would also like to submit that your opinion and reaction will act as a guide for our next attempt.

We are grateful to all those institutions, institutes and establishments who have extended their financial co-operation by giving advertisement.

10-5-1987

Ms. Alka Jain

CC-0. Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

इतिहास - विमर्श
Musings on History

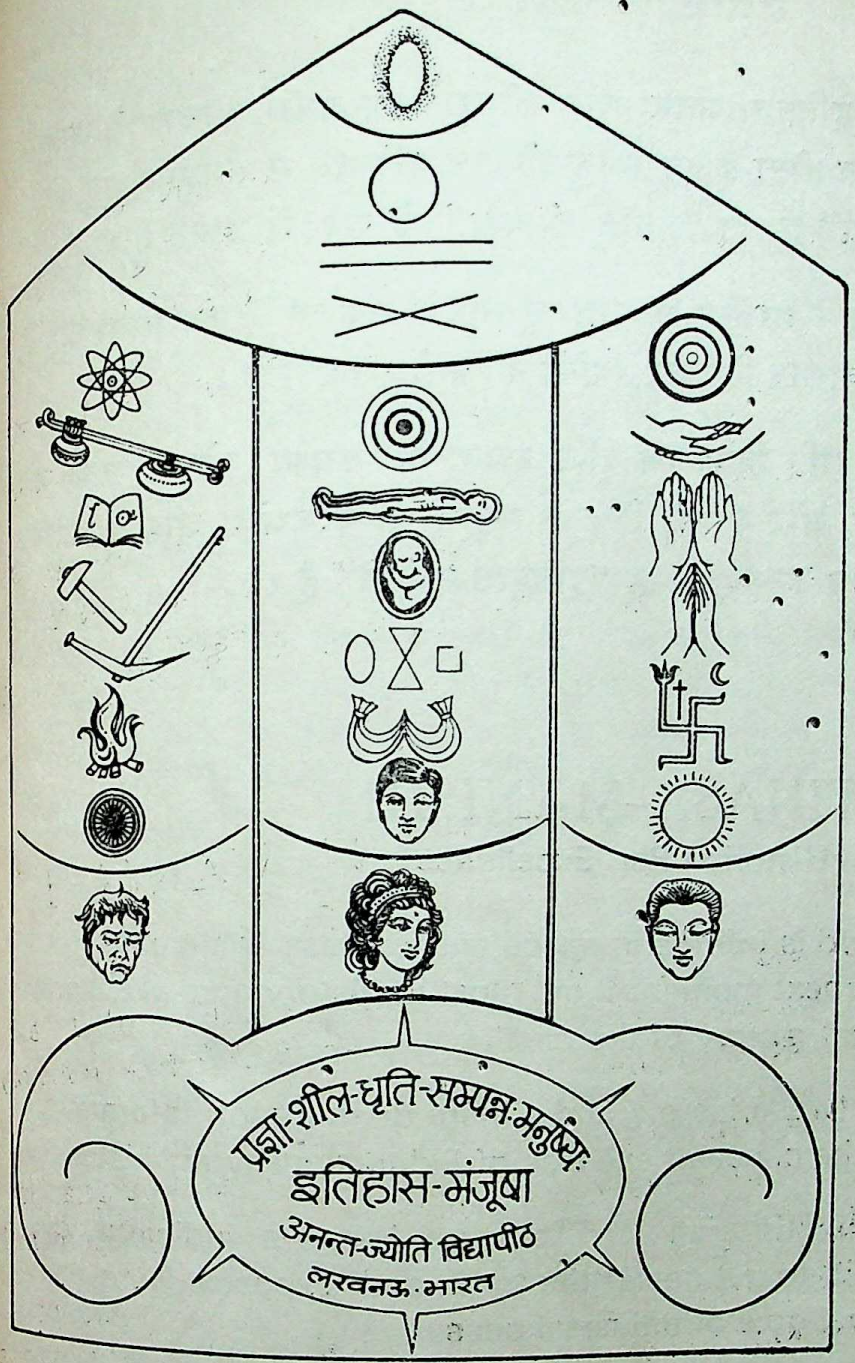

इतिहास-मनीषी
Itihasa-Manishi
(Historian Par Excellence) 6

इतिहास-मंजूषा 7
Itihasa-Manjusha 9
(Casket of History)

इतिहास-संदेश 11
Message of History 12

इतिहास पर शोध : परिचर्चा 13
Research on History: Discussion 18

-डा० शशि कान्त

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

इतिहास-मनीषी

इस चराचर जगत का इतिहास अनन्त काल की धुरी पर असीम आकाश से आवृत्त है। जो कुछ भी यहाँ घटित होता है वह अगले ही क्षण इतिहास में समाहित हो जाता है और हम उसे "ऐसा हुआ" अथवा "अतीत की कथा" के रूप में जानते हैं।

इतिहास में और अतीत के सम्बन्ध में मात्र सूचना के संकलन में एक अन्तर यह है कि इतिहास-लेखन में इतिहासकार निरन्तर विवेक का प्रयोग करता है।

जो व्यक्ति इतिहास के प्रति विवेकपूर्ण दृष्टि रखता है, उसका शोधन सत्य की निकटता के लिए करता है, और उसका विवेचन मनुष्य को परमश्रेय शाश्वत शान्ति की ओर उन्मुख करने के लिए करता है, वह "इतिहास-मनीषी" है।

ITIHASA-MANISHI

(Historian Par Excellence)

History of this world is infinite in space and endless in time. Whatever happens, the very next moment it gets lost in history and we know it as 'it so happened' or 'a story of the past'.

One distinction between history and a mere quantity of information about the past lies in the constant exercise of judgement by the historian.

An Itihasa-Manishi (Historian Par Excellence) keeps a judicious eye on history, researches it to get nearer the truth, and exposes it to take the mankind to the final goal of universal peace.

CC-0. National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

इतिहास - मंजूषा

इतिहास काल की धुरी पर प्रवर्तित होता है। सभी क्रिया-कलाप समय से प्रेरित और नियंत्रित होते हैं। मंजूषा के पादमूल में जो अंड का आकार पट रखा हुआ है और जिसमें छः आरे हैं, वह काल के चक्र को सूचित करता है। उसके छः आरे ऋतुओं के प्रवर्तन को सूचित करते हैं।

इस संसार में मनुष्य एक विशिष्ट प्राणी है। मनुष्य के आश्रय से ही इतिहास और संस्कृति का विकास होता है। प्रज्ञा, शील और धृति मनुष्य के विशिष्ट संस्कार हैं और इन मानवीय लक्षणों का उल्लेख उक्त अंड में किया गया है– प्रज्ञा-शील-धृति-सम्पन्नः मनुष्यः। हमारी प्रगति का इतिहास उस सभी पर अधारित है जो मनुष्य ने अपने इन संस्कारों के उपयोग से भौतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में प्राप्त किया है।

बायीं ओर की पट्टिका में भौतिक क्षेत्र में मानव की यात्रा का चित्रण है। वह प्रकृति के ऊपर आधिपत्य पाने के लिये दौड़ता चला जा रहा है, जिसका निकृष्ट ध्येय यह है कि वह जो कुछ भी उसकी दृष्टि में आये उसका अधिपति बन जाये और उत्कृष्ट ध्येय यह है कि वह सभी के लिए जीवन को अधिकाधिक सुविधाजनक बना दे। लाखों वर्षों से चली आ रही यह यात्रा अभी समाप्त नहीं हुयी है, वास्तव में यह यात्रा अनन्त है। मानव इस यात्रा के दौरान थक गया है, घायल हो गया है और बौरा भी गया है तब भी उसे अभी दौड़ते ही जाना है। पट्टिका के तल पर जो एक थके परन्तु निराश नहीं होते, मनुष्य की आकृति है वह भौतिक प्रगति के पीछे भौतिक सभ्यता के चरमोत्कर्ष की ओर मानव की दौड़ को चित्रित करती है।

ऊर्ध्व क्रम में इस दौड़ की विभिन्न स्थितियाँ निम्नवत हैं :–

१– समय और गति का भान जिसका चित्रण २४ आरों के एक चक्र द्वारा किया गया है,

२– अग्नि अथवा ऊर्जा, जिसका चित्रण अग्नि की लपटों के द्वारा किया गया है,

३– कृषि तथा आवासित जीवन का प्रारम्भ, जिसका चित्रण हल द्वारा किया गया है,

४– उद्योग तथा नगर एवं नैगमीय जीवन का प्रारम्भ, जिसका चित्रण हथौड़े द्वारा किया गया है,

५– साहित्यिक प्रवृत्तियाँ ताकि अवकाश के समय को लाभप्रद एवं जीवन को उपयोगी बनाया जा सके, जिसका चित्रण पुस्तक ('पोथी' जो कि प्राचीनतम ब्राह्मी लिपि के अक्षरों में लिखा है) द्वारा किया गया है,

६– कलात्मक अभिरुचियाँ ताकि अवकाश को आनन्ददायी और जीवन को हँसी व खुशी से भरपूर बनाया जा सके, जिसका चित्रण वीणा के द्वारा किया गया है जो कि सर्वप्राचीन ऐसा संगीत वाद्य है जिसे कौशल पूर्वक बजाया जा सकता है, और

७– वैज्ञानिक आविष्कार, खोज एवं शोध ताकि प्रकृति के ऊपर अंततः आधिपत्य एवं नियंत्रण प्राप्त किया जा सके, जिसका चित्रण परमाणु द्वारा किया गया है जो कि ऐसी अपरिमित ऊर्जा के स्रोत के रुप में अति-अर्वाचीन खोज है जो ज्ञात जगत को संघर्षण के माध्यम से नष्ट कर सकती है और संघटन के माध्यम से कदाचित् एक नये जगत की सृष्टि भी कर सकती है।

मध्यवर्ती पट्टिका बौद्धिक स्तर को चित्रित करती है। प्रज्ञा सूक्ष्म रुप से कार्य करती है, हमारे उन गुणों को विकसित करती हैं जो जीवन को उपयोगी, जीने योग्य और ललित बनाने में सहायक होते हैं, तथा हमारे विवेक को भले और बुरे में विभेद करने एवं जीवन की यथार्थता को समझने के योग्य बनाती है। पट्टिका के तल पर लावण्यमयी ललितांगी हमारी बौद्धिक संस्कृति के उद्भव एव विकास को चित्रित करती है। पट्टिका में नीचे से ऊपर दो रूपक प्रदर्शित हैं।

प्रथम रुपक में तीन मानवीय गुण चित्रित हैं जो मनुष्य को अन्य जीवधारियों से अलग करते हैं। ये हैं :– प्रज्ञा, जिसे अंड के आकार से प्रदर्शित किया गया है; शील, जिसे दो पास आकर मिलते हुए त्रिभुजों से प्रदर्शित किया गया है; और धृति जो एक चतुष्टय से प्रदर्शित किया गया है, जिसकी सभी भुजायें समान हैं और सभी कोण भी समान हैं। प्रज्ञा हमें विचार करने की क्षमता प्रदान करती है, शील हमें शांति पूर्वक मिल-जुल कर रहने के योग्य बनाता है, और धृति हमें विचार-वैभिन्य, विरोध तथा असफलता में स्थिर रहने की क्षमता प्रदान करती है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

दूसरे रूपक में जीवन का क्रम चित्रित है। यह एक वास्तविकता है कि मनुष्य का जन्म होता है, उसकी मृत्यु होती है और फिर वह भुला दिया जाता है। भ्रूण जन्म की स्थिति को चित्रित करता है, शव मृत्यु की स्थिति को लक्षित करता है, और वृत्त जिसके वाह्य वृत्त धीरे-धीरे दूर और धूमिल होते जाते हैं, यह प्रदर्शित करता है कि इसी प्रकार समय के साथ हम अतीत के गर्त में चले जाते हैं और इतिहास के झंखाड़ में खो जाते हैं।

दाहिनी ओर की पट्टिका मनुष्य के ऊहा-पोहात्मक चिन्तन तथा आध्यात्मिक खोज को सूचित करती है। यह एक ऐसे व्यक्ति की शान्त एवं स्मितपूर्ण मुखाकृति में परिलक्षित होता है जो अपने को सांसारिक मोह-जाल से छुड़ा चुका है, और भय, तृष्णा एवं राग-विराग से ऊपर उठ चुका है। पट्टिका के तल पर ऐसे व्यक्ति की मृदु, शान्त एवं स्मितपूर्ण मुखमुद्रा जो कि आत्मतुष्ट है और शांत-गंभीर है, मनुष्य के आध्यात्मिक श्रेयस् की प्राप्ति के लिये प्रयास को चित्रित करती है। आस्था और ऊहा-पोहात्मक चिन्तन में यह प्रयास प्रकट होता है।

धार्मिक चेतना का केन्द्र आस्था है। आस्था का चित्रण प्रभामंडल के रुप में किया गया है। जब किसी प्राकृतिक तत्त्व को या किसी लाक्षणिक चित्र को या किसी व्यक्ति को प्रभामंडल से अलंकृत दिखाया जाता है तो वह उसे चमत्कारी अमानवीय शक्ति से समन्वित कर देता है जो भय उत्पन्न करती है और आस्था को चालित करती है। स्वस्तिक, त्रिशूल-त्रिदंड-त्रिरत्न, क्रूश और अर्द्धचन्द्र विश्व के बहुजन-प्रिय आस्थागत धर्मों के प्रतिमान हैं जिनमें से प्रत्येक अंतिम सत्य का निरुपण करने का दावा करता है और मानव के दुखों का अन्यतम समाधान निर्धारित करता है, और यद्यपि वे सभी मानव को अंतत: मुक्ति की ओर ले जाना चाहते हैं, परन्तु उन्होंने इतने पथ बना दिये हैं और उन पथों पर क्रियाकाण्ड, हठधर्मिता और धर्म-स्थानों के रूप में इतने अतिक्रमण उपस्थित कर दिये हैं कि वे पथ संकीर्ण और संकीर्णतर होते गये हैं और उन पर कचड़ा व कीचड़ के गड्ढे बनते गये हैं कि विशाल मानव जाति राह में ही खो जाती है।

ऊहा-पोहात्मक चिन्तन पथ का कूड़ा-कचड़ा हटाकर उसे स्वच्छ करने का प्रयास करता है। अर्चना जिसका चित्रण जुड़ी हुई हथेलियों के रुप में किया गया है, शंका-समाधान जिसका चित्रण खुली हथेली द्वारा किया गया है, और चिन्तन एवं ध्यान जिसका चित्रण एक के ऊपर एक रखी हुयी हथेलियों से किया गया है, ऊर्ध्वगत क्रम में तीन प्रक्रियायें हैं जो परम नि:श्रेयस् की स्थिति की ओर ले जाती हैं। परम नि:श्रेयस् की स्थिति परस्पर पास आते हुए वृत्तों के आकार द्वारा चित्रित की गयी है जो कि सम्पूर्ण ऊर्जा के बिन्दु पर केन्द्रित हो जाती है जो दु:ख और सुख के प्रति एक समान उदासीन होता है।

ऊपर के भाग में मानव सभ्यता के संदर्भ से इतिहास के क्रम का चित्रण है। पहले संघर्ष और विवाद होता है, जिसका चित्रण एक क्रूश के द्वारा किया गया है। तत्पश्चात् शांति और समझौता होता है, जिसका चित्रण दो पट पड़ी हुयी समानान्तर रेखाओं द्वारा किया गया है। पुन: आंदोलन एवं क्रान्ति होती है, जिसका चित्रण एक वृत्त के माध्यम से किया गया है।

शीर्षभाग में एक अंड का आकार है जो ऊर्ध्वगत रखा है और अमृतकणों से वेष्टित है। यह अंतिम परम प्राप्तव्य शाश्वत शांति एवं चिरंतन उदासीन स्थिति जो असीम आकाश और अनन्त काल से अब आबद्ध नहीं है, को लक्षित करता है।

संक्षेप में यह मंजूषा मानव की स्थूल से सूक्ष्म की ओर, सांसारिक से दिव्य की ओर, और क्षणिक से चिरन्तन की ओर, यात्रा की परिकल्पना को चित्रित करती है। इस यात्रा के दौरान इतिहास-क्रम के उतार-चढ़ाव आते हैं, परन्तु फिर भी मानव काल और आकाश के परे परम प्राप्तव्य तक पहुंचने का प्रयास करता रहता है। भौतिक प्रगति, बौद्धिक संस्कार और आध्यात्मिक संस्कृति एक प्रकार से मनुष्य की सत्यं, शिवं और सुन्दरं की कल्पना को क्रमश: प्रस्तुत करते हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ITIHASA-MANJUSHA

(Casket of History)

History moves on the orbit of time. All the activities are actuated and controlled by time. The oval, put horizontally, with six phalanges, at the base of the casket represents the cycle of time. The six phalanges indicate the rhythm of seasons.

The homo-sapien is a distinct animal in this world. The development of history and culture runs around the homo-sapien. Intelligence, harmony and equanimity make a human, and these human characteristics are noted on the oval. The history of our progress is based on whatever the human achieved in the material, intellectual and spiritual fields through the exercise of these three faculties.

The left panel symbolises the man's journey in the material field. He is running madly to get mastery over the elements – to be the lord of all he surveys, at its worst, or to make life more comfortable for all, at its best. The journey through millions of years is not yet at end – it is *ad infinitum;* he is tired, bruised and baulked, but still he must run on. The fatigued but undaunted man at the bottom of the panel symbolises the racing mankind in pursuit of physical progress heading towards the culmination of material civilisation.

The stages in ascending order are : 1. a sense of time and momentum, symbolised by wheel with 24 axles; 2. fire or energy, symbolised by flames; 3. agriculture and beginning of settled life, symbolised by plough; 4. industry and beginning of city and corporate life, symbolised by hammer; 5. literary pursuits to make leisure fruitful and life useful, symbolised by book; 6. artistic accomplishments to make leisure enjoyable and life mirthful, symbolised by flute, the earliest intricate organ to be played with dexterity; and 7. scientific inventions, discoveries and researches to ultimately gain mastery and control over the elements, symbolised by atom, the latest discovery as source of infinite energy which can destroy the known world through fission and may also create a new world through fusion.

The middle panel depicts the intellectual plane. Intellect works subtly, develops the faculties which make life useful, agreeable and graceful, and enables the discretion to differentiate between good and bad and to discern the realities of existence. The graceful lady in fine beauty, at the bottom of the panel, best symbolises the growth and cultivation of the culture of intellect. The panel shows two symbolisms from below.

Firstly, the three human faculties which distinguish the homo-sapien from other living creatures, are depicted. These are intelligence represented by an egg-shape, harmony represented by converging triangles, and equanimity represented by a square which has all the four sides of equal dimension and all the four angles of the same degrees. Intelligence makes us think, harmony enables us to live in peace, and equanimity gives us poise to bear with differences, diversities and adversities.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Secondly, the cycle of existence is depicted. The reality is that a man is born, he is dead and he is forgotten. The embryo depicts birth, the corpse symbolises death, and the circle with receding and fading outer circles shows how in course of time we would recede into the oblivion and get lost into the morass of history.

The right panel indicates the speculative and spiritual quest. It is epitomised in a serene but smiling countenance of a person who has detached from the mundane and is above fear, craving and passion. The soft, serene and smiling face of a person satisfied inwardly and pacified outwardly, at the bottom of the panel, represents man's quest for spiritual quintessence. Faith and speculative meditation are its manifestations.

Religious consciousness is centred around faith. Faith is symbolised by halo or aura. The halo or aura attributed to any element, symbol or person fills it with miraculous super-natural which inspires awe and generates faith. Svastika, trident, cross and crescent symbolise the major systems of faith, each feigning the final truth and prescribing the last recipe, and though all are seeking to take the mankind to the ultimate redemption, they have created so many paths and put up so many encroachments in the shape of rituals, dogmas and shrines that the paths have grown narrower and narrower with cesspools of mud and slush, and the vast humanity is lost on the way itself.

Speculative meditation tries to cleanse the path. Obeisance represented by folded palms closed together, speculation represented by open palms joined together, and meditation represented by overlapping palms placed one above the other, are the three processes in an ascending order, which lead to the stage of final redemption symbolised by concentric circles, centring into an all energy orbit which would be neutral to pain and pleasure alike.

The upper section depicts the cycle of history in the context of human civilisation. First there is struggle and conflict, symbolised by a cross; then there is peace and compromise, symbolised by a pair of horizontal parallel lines; and again, there is movement and revolution, symbolised by a circle.

On top is an egg, put vertically, immersed in nectar. It symbolises the ultimate desideratum – universal peace and permanent calm, no longer bound by the limits of infinite space and endless time.

In substance, this casket thus symbolises the mankind's journey from the gross to the subtle, from the mundane to the supernal, and from the ephemeral to the eternal, passing through the vicissitudes of historical cycle, and racing to reach the ultimate beyond time and space. Material progress, intellectual cultivation and spiritual culture, in essence, represent the human concept of realism, well-being and grace, respectively.

CC-0. Dharmapuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

इतिहास-संदेश

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा ।।
शक्ति का निरंकुश प्रवर्तन
मानवता को कुचलता रहेगा ।
दानव का मुखोटा नोचकर
फिर भी मानव संभलता रहेगा ।।१।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा ।।
काल की धुरी पर युगों का
याम क्षणों में बदलता रहेगा ।
व्यक्ति का अहंकार और अन्ध स्वार्थ
उसे ही कुचलता रहेगा ।।२।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा ।।
संचितो वंचितों का संघर्ष
क्रान्ति का सूत्रपात करता रहेगा ।
मूल्यों का अवमूल्यन
नव मूल्यों का सृजन करता रहेगा ।।३।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा ।।
काल की सीमा असीम
व्यक्ति को निस्सीम करती रहेगी ।
क्रान्ति के बाद विश्रान्ति
और पुन: क्रान्ति होती रहेगी ।।४।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा ।।
स्वार्थ के पक्षधर भ्रमजाल
और भक्ति का नाटक रचाते रहेंगे ।
तो भी शोधक छलावों से उबर
सत्य की ओर बढ़ते रहेंगे ।।५।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा ।।
समय रुकेगा नहीं,
इतिहास बढ़ता चलेगा ।
व्यक्ति झुकेगा नहीं,
पद-चिन्ह छोड़ता चलेगा ।।६।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा ।।
ऐसे पद-चिन्ह छोड़ना
जो बटोही को रास्ता दिखाते रहेंगे ।
ऐसी ठोकरें बनाना नहीं
जो आने वाले को गिराते रहेंगे ।।७।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा ।।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

MESSAGE OF HISTORY

The cycle of time will move on, And every moment history will go no.
The tyranny of despots
Will keep on crushing the humanity.
Yet, tearing off the mask from the devil
Man will keep on rising.. (1)
The cycle of time will move on, And every moment history will go on.
On the axis of time, the ages
Will keep on turning into moments.
The arrogance and self-aggrandisement
Of manswill keep on crushing him itself.. (2)
The cycle of time will move on, And every moment history will go on.
The struggle between the haves and the have-nots
Will keep on generating revolution.
Devaluation of the old values
Will keep on creating new values.. (3)
The cycle of time will move on, And every moment history will go on.
The limitless bounds of time
Will keep on transporting man into the beyond.
Compromise after confrontation, and then
Revolution - thus the cycle will move on.. (4)
The cycle of time will move on, And every moment history will go on.
The vested interests will keep on
Creating confusion and playing sycophancy.
But the researchers will get over the pitfalls
And keep on keeping track of the reality.. (5)
The cycle of time will move on, And every moment history will go on.
Time will not stop,
History will go on marching ahead.
Man will not bend,
He will walk on leaving foot-prints behind.. (6)
The cycle of time will move on, And every moment history will go on.
Leave such foot-prints behind
Which may keep on showing the way to the oncomers.
Don't make such stumbling blocks
Which would keep on the oncomers stumble and fall.. (7)
The cycle of time will move on, And every moment history will go on.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

इतिहास पर शोध : परिचर्चा

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ के तत्त्वावधान में इतिहास के क्षेत्र में शोध से संबंधित समस्याओं पर पाँच परिचर्चाओं का आयोजन क्रमशः ७ नवम्बर, १९७७, ७ नवम्बर, १९७८, ७ नवम्बर, १९७९, ६ फरवरी, १९८२ और ७ नवम्बर, १९८२ को किया गया।

प्रथम संगोष्ठी चर्चा का विषय था - शोध एक अनवरत प्रक्रिया है। चर्चा इस प्रस्तावना पर प्रारम्भ हुयी कि जिज्ञासु और शोधार्थी को प्रायः उचित मार्गदर्शन और अपेक्षित साधनों का अभाव रहता है जिसके कारण यद्यपि शोध ग्रंथों का परिमाण बढ़ गया है और शोधशालाओं की संख्या काफ़ी बढ़ गयी है, शोध का स्तर नहीं उठ पाया है। प्रायः शोधार्थी मौलिक उद्भावनाओं को नहीं प्रस्तुत करता – क्यों ऐसा है, यह एक ज्वलंत प्रश्न है और भारतीय बौद्धिक जगत इससे आन्दोलित है।

परिचर्चा में दिशाबोध वरिष्ठ पत्रकार और लेखक, श्री ज्ञानचन्द जैन ने किया। उन्होंने बताया कि शोध का स्तर न उठ पाने का एक कारण उसका अर्थ महत्त्व है। हिन्दी में विशेष रूप से स्तर गिरा है और शोध का हास्यास्पद रूप मुखर हुआ है। प्रायः खानापूरी, पुनरावृत्ति और साहित्यिक चोरी भी शोध ग्रन्थों में देखने को मिलती है। शोध का माध्यम मातृभाषा होना अभीष्ट है। शोध की प्रक्रिया सत्य के समान अनवरत है और इसमें दृष्टि की गम्भीरता अभीष्ट है। स्तर ऊंचा होने के लिए शोधार्थी का स्वतंत्र और पक्षधरता से मुक्त होना आवश्यक है।

परिचर्चा में डा० नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी ने यह प्रतिपत्ति प्रस्तुत की कि शोध सम्यक् शोधन की प्रक्रिया है जिसमें प्रारम्भ से खोजना अभीष्ट है। अतएव पहले खोज का विषय होना चाहिए। पहले समस्या हो, तब समस्या का समाधान होगा। सामान्य विषय भी खोजी के लिए बड़े महत्त्व के होते हैं और उनका प्रतिपादन स्वयं लेखक ही नहीं वरन् पाठक के लिए भी विशेष रोचकता प्रस्तुत कर सकता है। उन्होंने स्वयं "खिचड़ी" पर शोध की और डा० परशुराम केशव गोडे ने "जलेबी", "इडली", 'बिन्दी" जैसे विषयों पर बड़े रोचक शोध पत्र लिखे।

परिचर्चा में यह बात उभरी कि शोध का सम्बन्ध सेवायोजन से नहीं होना चाहिए; शोध के लिए जिस एकाग्रता एवं साधना की आवश्यकता है उस दृष्टि से शोध कार्य को अध्यापन कार्य से स्वतंत्र रखा जाना चाहिये। यह अनुभूत किया गया कि शोध के लिए एकाग्रता और चयन की दृष्टि आवश्यक है, तथा शोधकार्य टीम के रुप में अधिक साध्य है। शोध प्रक्रिया पर एक ग्रन्थ भी अपेक्षित है जिसके माध्यम से शोध छात्र जान सके कि उसे क्या करना चाहिये।

चर्चा का समापन करते हुये डा० ज्योति प्रसाद जैन ने बताया कि शोध एक प्रक्रिया है जो समाप्त नहीं होती। इसमें पक्ष विशेष का आग्रह सम्भव नहीं है। आज तक की सूचना के अनुसार जो सही ज्ञात होता है, नये प्रमाण उपलब्ध होने पर उसमें संशोधन आवश्यक हो सकता है। शोधार्थी की स्वयं की दृष्टि और उसका स्वयं का श्रम उसको शोध में सहायता देते हैं। मार्ग-दर्शक उसे विधा बताता है, विषय नहीं। जब इसके विपरीत होता है तो शोध कार्य नहीं वरन् अधिकतम एक विष्टपेषण प्रस्तुत करने में ही वह समर्थ हो सकता है।

दूसरी संगोष्ठी विषय था–इतिहास की विधा। परिचर्चा इस प्रस्तावना को लेकर हुयी कि इतिहास को लेकर कुछ भ्रम है। वह सूचना का संकलन मात्र नहीं है वरन् सामग्री के वस्तुपरक विश्लेषण और भावपरक विवेचन

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

का अद्भुत सम्मिश्रण है। अतः उसका उपयोग जनता का मनोबल बढ़ाने और गिराने, दोनों ही रूपों में किया जा सकता है। भारत के इतिहास का जो स्वरूप ब्रिटिश शासन काल में मुखर हुआ और जिसका प्रतिपादन देशी-विदेशी शोध-शालाओं में किया गया, वह बहुधा भारतीय जनता का मनोबल गिराने, उसे विभ्रमित और विभाजित करने, तथा उसे ब्रिटिशसत्ता की श्रेष्ठता से अभिभूत करने का था। खेद की बात है कि स्वतंत्र भारत में इतिहास की शोध उन प्रवृत्तियों से मुक्त नहीं हो पायी है जो परतंत्रता में इसके लिऐ अनिष्टकर थी। इतिहास के प्रति समीचीन दृष्टि क्या हो, इतिहास शोधन का मापदण्ड क्या हो, शोध के लिए विषय का चयन कैसे हो – ये प्रश्न आज बौद्धिक जगत को आन्दोलित किये हैं और जिज्ञासु और शोधार्थी दोनों ही इन का समाधान पाने को आतुर हैं।

परिचर्चा में दिशाबोध लखनऊ विश्वविद्यालय के कला संकाय के भूतपूर्व डीन और प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग के प्राचार्य एवं अध्यक्ष स्वर्गीय डा० रामकुमार दीक्षित ने किया था। उन्होंने इस बात पर सन्ताप व्यक्त किया था कि शोध का स्तर गिर रहा है और इतिहास को भ्रष्ट करने का प्रयत्न यथावत है। शोध-दर्शक का कार्य विशेष रूप से शोधार्थी को विषय का चयन, स्रोत सामग्री के साधन और चयन, एवं विषय के प्रस्तुतिकरण की विधा में मार्गदर्शन करना होना चाहिए। यदि यह मार्ग-दर्शन अपेक्षित श्रम एवं सावधानीपूर्वक किया जाय तो परिणाम अवश्य ही उन्नत होगा। इतिहासकार का मुख्य कार्य तथ्यों को उचित परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना है, तथ्यों को झुठलाना नहीं है।

चर्चा में यह बात उभरी कि इस प्रकार के इतिहास-लेखन से सतर्क रहना है जिसमें पूर्ण मिथ्याकथन या मुख्य तथ्यों का पूर्ण दमन तो नहीं होता परन्तु तथ्यों का परीक्षण विभिन्न मानदण्डों से किया जाता है और परिश्रमपूर्वक अर्ध-सत्यों का संकलन किया जाता है, कुछ तथ्यों को उभारा जाता है और कुछ को दबाया जाता है, कथानक को स्वतः स्पष्ट न होने देकर घटनाओं और तथ्यों को विशेष प्रकार से ऐतिहासिक संदर्भों में प्रस्तुत किया जाता है, और इस सबका उद्देश्य एक दूषित या भ्रामक कथानक प्रस्तुत करना होता है। हमें जनता के स्रोतों का भी उपयोग करना चाहिए और राजकीय अभिलेखों के कथ्यों की जनस्रोतों के आधार से परीक्षा करनी चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में इतिहास का कोई उपयोग नहीं होगा यदि वह मात्र शासक वर्ग के कार्यकलापों की ही गाथा हो।

चर्चा का समापन करते हुए डा० ज्योति प्रसाद जैन ने कहा कि शोध-दर्शक का प्रथम कार्य शोधार्थी में शोध कार्य के लिए अपेक्षित दृष्टि जागृत करना है। उन्होने इस बात पर खेद व्यक्त किया कि जो लोग शिक्षण अधिष्ठानों में प्रतिष्ठित हैं और प्रबुद्ध होने का दावा करते हैं उनकी गम्भीर अध्ययन और बौद्धिक आयोजनों में किंचित् ही अभिरुचि है वरन् उनका उपयोग धनोपार्जन एवं स्वपक्ष साधन में ही विशेष रहता है।

तीसरी संगोष्ठी विषय था– इतिहास की शोध के पथ में छलावे। परिचर्चा इस प्रस्तावना को लेकर प्रारम्भ हुई कि जिन साधनों पर हमें निर्भर करना पड़ता है उनमें से कितनों का आधार एकांगी, एक-पक्षीय, स्वयंप्रशंसामूलक, सयत्नप्रचार-मूलक और सत्य को ढकने वाला है, इसको कैसे जाँचा जाय। इतिहास के शोधार्थी का यह दायित्व है कि वह पक्षधरों द्वारा प्रस्तुत भ्रमजाल को काट डाले और उन छलावों को प्रकट करे जो स्वार्थ-लोलुपों ने समय-समय पर सत्ता के सहारे और धर्म, सम्प्रदाय, जाति, भाषा, प्रदेश आदि के बहाने बनाये हैं। जो मिथक (मिथ्या-कथ्य) निहित स्वार्थों ने प्रचारित कर दिये हैं उनको अनावृत्त करने के लिए कैसे साहस जुटाया जाय– यह बौद्धिक चिन्तकों के लिए एक ललकार है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

चर्चा में दिशाबोध राज्य संग्रहालय, लखनऊ, के तत्कालीन निदेशक डा० नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी ने किया। उन्होने इस बात पर बल दिया कि शोधार्थी को स्वयं मूल स्रोतों का अध्ययन करना चाहिए, और मात्र उद्धरणों के अधार पर ही या मात्र पल्लवग्राही पाण्डित्य के आधार पर निष्कर्ष पर पहुँचने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए। यह आवश्यक है कि शोधार्थी के पास शोध के लिए समुचित साधन हों और शोधी में स्वयं अपनी सामग्री का परीक्षण करने के लिए धैर्य एवं निष्कर्षों को प्राप्त करने के लिए विवेक हो।

चर्चा में यह बात उभरी कि कथा साहित्य के आधार से जो मिथक प्रसार पा गये हैं उनकी विवेचना की जाय ताकि सत्य का लोप न हो जाय। यदि हम तथ्यों को काल्पनिक कथ्यों से अलग नहीं कर सकेंगे तो इतिहास पुराणगाथा बनकर रह जायेगा, घटनायें आस्था, अन्ध-विश्वास और कल्पना से आवृत्त हो जायेंगी, और स्वयं इतिहास के तथ्य डूब जायेंगे।

चर्चा का समापन करते हुए डा० ज्योति प्रसाद जैन ने बताया कि इतिहास एक व्यापक विषय है और इसमें सभी पक्षों पर विचार किया जाना अभीष्ट है। जब हम स्रोत सामग्री का विश्लेषण करें तो हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि ऐतिहासिक विवरण प्रायः साम्प्रदायिक उत्साह या निहित स्वार्थो के प्रचार के कारण दूषित कर दिये जाते हैं; इतिहास के शोधार्थी में सामग्री का सम्यक् विश्लेषण करने की सामर्थ्य होना अपेक्षित है।

चौथी संगोष्ठी विषय था– भारत के इतिहास के स्रोत्रों का मूल्यांकन। परिचर्चा इस प्रस्तावना को लेकर प्रारम्भ हुई कि यह बात निर्विवाद है कि भारत का इतिहास प्रायः छः हजार वर्ष से एक अनवरत क्रम में उपलब्ध है। इतना लम्बा इतिहास विश्व के किसी अन्य भूखण्ड का अभी नहीं है। इतिहास के साधन बहुल हैं। विगत दो सौ वर्षों में प्राचीन साहित्य का अध्ययन और विश्लेषण, पुरातात्त्विक उत्खननों से प्राप्त सामग्री, पुरालेख, सिक्के और मुद्रायें, भारत के बाहर भारत के सम्बंध में लिखा गया साहित्य और पुरालेख - यह सब इतनी सामग्री है कि जो हमारे देश का इतिहास प्रस्तुत करने में हमें सहायक हो सकती हैं। परन्तु इस सब विविध साधन-सम्पदा का हमारे शोधार्थी और इतिहासकार उचित मूल्यांकन नहीं कर रहे हैं। आवश्यक यह है कि इस संबंध में पक्षधरता का निषेध किया जाय और विवेकशीलता पर बल दिया जाय। परन्तु खेद की बात यह हैं कि जिन लोगों पर शोध निर्देशन का दायित्व है वे अपना दायित्व निष्ठापूर्वक नहीं निभा रहे हैं। प्राचीन इतिहास की शोध में कुछ मिथक साम्प्रदायिक पक्षधरता के कारण जुड़ गये और स्रोतों का मूल्यांकन इस दृष्टि से किया जाता रहा कि किसी सम्प्रदाय विशेष की श्रेष्ठता तथा प्राचीनता का उससे प्रतिपादन हो सके। मध्ययुगीन इतिहास के निरुपण में कुछ पक्ष शामिल हो गये। जिन साधनों को उस युग के इतिहास के लिए आधार बनाया गया वे प्रायः सरकारी संरक्षण में लिखे गये विवरण हैं जिनका मुख्य उद्देश्य सम्प्रदाय-विद्वेष को प्रोत्साहित करना था। दरबारी साहित्य के अतिरिक्त जनता के साहित्य का बहुत ही कम उपयोग उस युग का इतिहास संजोने में किया गया है। आधुनिक युग में प्रायः ब्रिटिश शासन की श्रेष्ठता, ब्रिटिश बौद्धिकता का अनुसरण और भारतीयत्व के प्रति एक प्रकार की अवमानना का प्रस्तुतिकरण ही इतिहासकारों का प्रिय विषय रहा है। इस बात को निरुपित करने में हमारे इतिहासकार अपने को असमर्थ पाते हैं कि वे क्या परिस्थितियाँ थीं जिनके कारण मुट्ठी भर यूरोपियन, विशेषकर अँग्रेज, इस महादेश पर अपनी सत्ता स्थापित करने में समर्थ हुए। जो प्रतिपत्ति देश के स्वतंत्रता आंदोलन की दृष्टि से प्रस्तुत की गयी वह और भी भ्रामक रही। स्वतंत्रता के बाद के इतिहास के साथ तो बराबर उपाहासास्पद व्यवहार किया जा रहा है। आज के युग में ऐसे मिथ्या-कथ्य सत्ताधारी लोगों द्वारा बच्चों की पाठ्य पुस्तकों में प्रसारित कर दिये गये हैं जो तथ्य तो हैं ही नहीं, बुद्धिग्राह्य भी नहीं है। यह सब ऐसी स्थिति उत्पन्न करता है जिसमें भारतीय इतिहास के सभी युगों के स्रोतों का सम्यक् मूल्यांकन कैसे

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

किया जाय और ऐसा मूल्यांकन करते समय सत्तारूढ़ निहित स्वार्थों को किस प्रकार इतिहास को भ्रष्ट करने से रोका जाय–यह एक ज्वलन्त प्रश्न है जिस पर भारत के सभी बौद्धिक चिन्तक चिन्तित एवं आन्दोलित हैं।

दिशा-बोध राज्य संग्रहालय, लखनऊ, के तत्कालीन निदेशक डा० रमेश चन्द्र शर्मा ने किया। उन्होंने बताया कि कठिनाई यह है कि आजकल शोधार्थी प्राय: मौलिक स्रोतों तक पहुंचते ही नहीं और साहित्यिक संदर्भों का तात्कालिक सामाजिक परिस्थितियों से सामंजस्य जानने का प्रयत्न नहीं करते। 'रघुवंश' के संदर्भ से बयाना से प्राप्त गुप्तवंशीय सिक्कों का रहस्य समझा जा सकता है। मथुरा में बुद्ध की मूर्ति केवल ध्यान मुद्रा में हैं क्योंकि वहाँ बुद्ध को दिव्यास्पद पारलौकिक रुप में देखा गया जबकि गन्धार में उन्हें लौकिक मानव रुप में अंकित करने का प्रयास किया गया; यह दोनों स्थानों के उपासकों की भिन्न प्रवृत्ति का परिचायक है। शिलालेखों के सही अर्थ को जानने के लिए प्राचीन लिपि और भाषाओं का सम्यक् ज्ञान और तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है। आलमगीरपुर में पेन्टेड ग्रे वेयर ट्रेन्च में लोहा मिल गया परन्तु तत्कालीन पुरातत्त्व अधिकारी अपने दुराग्रह से बद्ध थे कि "पेन्टड ग्रे वेयर" के साथ लोहा नहीं मिलना चाहिए, जो बाद में उन्हें बदलना पड़ा। शोध के मार्ग में दुराग्रह सबसे बड़ा कंटक है। मार्गदर्शक का कार्य शोधार्थियों की सुप्त प्रवृत्ति को जगाना है ताकि अग्नि ज्वाला की तरह शोध की प्रवृत्ति बराबर प्रज्वलित रहे।

चर्चा में यह बात उभरी कि पक्षधरता से विरत हुआ जाय और विवेकशीलता पर बल दिया जाये, ऐतिहासिक पुनर्निर्माण में विभिन्न विधाओं का यथावश्यक उपयोग किया जाये, राजनैतिक या साम्प्रदायिक दृष्टि से प्रतिपादित गलत कथ्यों को उजागर किया जाये, और स्रोतों के मूल्यांकन में तुलनात्मक समीक्षा की दृष्टि अपनायी जाये।

चर्चा का समापन करते हुए डा० ज्योति प्रसाद जैन ने इस बात पर बल दिया कि शोधार्थी के लिए लोक-जीवन की परम्पराओं का सम्यक् ज्ञान होना अभीष्ट है। यह कहना गलत है कि एक अनुश्रति तो ठीक है और दूसरी पूर्णत: कल्पित। जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उनसे अंतिम निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता क्योंकि सब कुछ एक साथ ही प्रकाश में नहीं आ जाता। उन्होने कहा कि इतिहास-लेखन एक तपस्या है जिसके लिए एक निष्पक्ष तटस्थ वैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक दृष्टि तथा तुलनात्मक मूल्यांकन अपेक्षित है। किसी साहित्य को मात्र धार्मिक या साम्प्रदायिक कहकर उसकी उपेक्षा किया जाना अनुचित है।

पंचम संगोष्ठी विवेच्य विषय था– इतिहास और पुराण में अंतर्भेद। परिचर्चा इस प्रस्तावना को लेकर प्रारम्भ हुयी कि आज बौद्धिक चिन्तकों के सामने यह एक ज्वलन्त प्रश्न है कि किस प्रकार इतिहास और पुराण में भेद किया जाए, आगे आने वाली पीढ़ी द्वारा मूर्तिभंजक बनकर मिथ्या-कथ्यों का भण्डा-फोड़ किया जाये और समस्त समीचीन दृष्टि का विकास किया जाये।

दिशा-बोध काशी विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के अवकाश-प्राप्त प्राचार्य एवं अध्यक्ष डा० ऐन० के० देवराज ने किया। उन्होने इस बात पर बल दिया कि मिथक से लड़ने की बराबर आवश्यकता है। किसी काल विशेष को गौरवपूर्ण दिखलाने का कदाग्रह समीचीन नहीं है। प्राचीन काल में भारत में गणतन्त्र था, परन्तु वह भारत में क्यों नहीं पनप सका, इसके स्वरुप का विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है। आधुनिक जनतांत्रिक प्रणाली से उस प्रणाली की समता किया जाना मिथक ही कहा जायेगा। इतिहास ही नहीं, दर्शन में भी परम्परा के प्रति कदाग्रह लक्षित होता है। स्वामी दयानन्द तथा अन्य धर्म सुधारक जो पिछली एक शताब्दी में हुए एक प्रकार की हीन भावना से ग्रस्त थे, परन्तु हम उनके कृतित्व को तर्क एवं तथ्य की कसौटी

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

पर कसने के बजाय भावनाओं और पूर्वाग्रह से प्रभावित होते हैं। ऐसी वैज्ञानिक शोध बुद्धि की आवश्यकता है जो सत्य की खोज और मिथक को अनावृत्त करके वास्तविक स्थिति को सामने लाये, तभी सार्वजनिक नैतिकता के स्तर में भी उन्नति होने की सम्भावना है।

चर्चा में यह बात उभरी कि यह क्षोभ की बात है कि हमारे देश में धर्म की इतनी अधिक चर्चा के बावजूद नैतिक स्तर में बहुत गिरावट परिलक्षित होती है। सत्य भावात्मक है और धर्म सत्य का आचरण में अनुपालन है। पुराण कथाओं और परम्परागत अनुश्रुतियों का विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है ताकि कल्पना और वास्तविकता का निदान किया जा सके।

चर्चा का समापन करते हुए डा० ज्योति प्रसाद जैन ने भारतीय अनुश्रुतिगम्य साहित्य में इतिहास की परिभाषा का उल्लेख करते हुए बताया कि पूर्वाग्रह से असम्पृक्त रहते हुए हमें परम्परागत अनुश्रुतियों का और आधुनिक साहित्य एवं समाचारों का भी शोध-परक वैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार विश्लेषण करना चाहिए कि हम तथ्य के निकट पहुँच सकें और इतिहास को उसके सही रूप में प्रस्तुत कर सकें।

सभी संगोष्ठियों में चर्चा की प्रस्तावना डा० शशिकान्त द्वारा प्रस्तुत की गयी और उन्होंने परिचर्चा का समाकलन भी किया। डा० नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी, डा० अमर पाल सिंह, डा० रामकुमार दीक्षित, डा० श्यामलाल पाण्डेय, डा० रमेश चन्द्र शर्मा, डा० नन्द किशोर देवराज, डा० (कु०) उषा माथुर, डा० (कु०) किरन मराल, श्रीमती प्रियम्वदा जिन्दल, तथा सर्वश्री नर्बदेश्वर चतुर्वेदी, अजित प्रसाद जैन, खुशाल चन्द गोरावाला, रमाकान्त जैन, काशीनाथ गोपाल गोरे, वीरनन्दन जिन्दल, जगजोत सिंह, कैलाशनाथ पाण्डे, ए० सेन गुप्ता, बिद्युत बरन सरकार, शैलेन्द्र रस्तोगी और ज्ञान चन्द जैन ने परिचर्चा में भाग लिया।

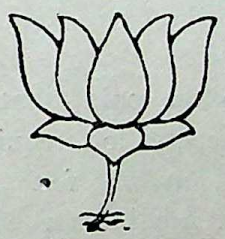

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Research on History : Discussion

Five symposia were held under the auspices of the Ananta-Jyoti Vidyapitha on Nov. 7, 1977, Nov. 7, 1978, Nov. 7, 1979, Feb. 6, 1982 and Nov. 7, 1982, on the problems of conducting research in matters pertaining to history.

First Symposium : The theme was- Research is a continuous process. The discussion began on the note that although the number of research publications has gone up and there is also a good number of research institutes, the quality of research work has not improved and the scholars are shy of presenting original propositions, possibly because they are unable to get proper guidance and are short of necessary equipment.

Mr. Gyan Chand Jain, veteran journalist and author, initiated the discussion. In his opinion, one of the reasons for non-improvement in research work was its linking with monetary gains. The standard has particularly deteriorated in Hindi and research has been reduced to mockery. Irrelevant matter, repetition and plagiarism are often seen in research publications. It is desirable that the medium of research should be the mother-tongue. The process of research is a continuous one like that of truth and it requires in-depth vision. The standard can be raised if the researcher is free to think and is above bias and prejudice.

Dr. N. P. Joshi, the then Director, State Museum, put in that research is a process of proper search and the search should start from the beginning. First of all there should be a subject for search. A problem can be resolved only after it has been presented. Ordinary subjects are also of much importance to a researcher, and their treatment can be very interesting not only for the writer but also for the readers. He himself wrote a paper on 'Khichadi', and Dr. P. K. Gode wrote very interesting papers on subjects like 'Jalebi', 'Idli' and 'Bindi'.

The discussion veered round to the point that research should not be linked with employment, and in view of the concentration required for research work, it should be kept independent of teaching work. It was felt that concentration and discretion are essential for research work, and it needs team work. A manual on the methodology of research also seemed a desideratum so that research scholar may know how he should proceed.

Summing up, Dr. J. P. Jain said that research is a process which never comes to an end. It does not have a room for dogmatism. Whatever appears correct on the basis of information available to date, may have to be revised when new evidence comes to the fore. A researcher's own vision and own hard work alone help in research work. The guide would tell him only the method, and not the subject-matter. Otherwise the researcher would only produce a reproduction and not a research work.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

Second Symposium : The theme was- Approach to history. The discussion began on the note that there is some misunderstanding about history. It is not a mere collection of information, but it is a curious mixture of objective analysis and subjective discussion of the available material. Hence it can be used to boost the morale of the people as well as to demoralise them. The format of Indian History presented, and developed in the Indian and foreign research institutes, during the British rule, was designed to demoralise the Indian people, to mislead and divide them, and to overawe them with the superiority of the British authority. It is a matter of regret that in independent India the research on history has not been able to get rid of the obnoxious and evil tendencies of the dependence period. The student and researcher, both are eager to know as to what should be the proper approach to history, what should be the standards for research on history, and how should the subject for research be selected.

The late Dr. R. K. Dikshit, formerly Professor of Ancient Indian History and Archaeology and Dean, Faculty of Arts, Lucknow University, had initiated the discussion. He was worried over the falling standard in research and about the efforts to corrupt history as before. The job of the guide is primarily to advise the research scholar on the selection of topic, the source material and mode of sifting it, and the method of presentation of the thesis. If such guidance is rendered with due diligence and care, the result would certainly be good. The primary job of a historian is to present facts in the correct perspective and not to falsify them.

The discussion veered round to the point that we should beware of such historiography in which neither patent falsehood is resorted to nor the principal evidence is fully suppressed, but different standards are applied in the examination of known facts and half-truths are assiduosly planted, some facts are highlighted and some are suppressed, the narrative is allowed to be vague and events and facts are presented in a curious historical context, and all this is done to project a completely misleading narrative We should also use the common man's sources and verify the official records from the people's sources. Under the present circumstances history will be of no use if it is merely a chronicle of the rulers' doings.

Summing up, Dr. J. P. Jain said that the primary duty of a research guide is to inspire the required vision for research in the research scholar. He was sorry to see that the egg-heads in the academic field are hardly interested in serious study and intellectual work and are more given to earning money and developing vested interests.

Third Symposium : The theme was- Pitfalls in the path of research on history. The discussion started on the note as to how we should evaluate how much of the source material available to us is solitary, unilateral, self-praising, propagandist and fallacious. It is the bounden duty of a researcher that he should cut across the myths created by the vested interests and should expose the pitfalls dug by the selfish under the cover of authority or under the guise of religion, community, race, language or region, etc. It is a challenge to the

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

enlightened thinkers how they should muster courage to expose the myths publicised by the vested interests.

Dr. N. P. Joshi, the then Director of the State Museum, initiated the discussion. He emphasised that the researcher should himself study the original sources and should shun the tendency of jumping to conclusions on the basis of secondary references or superficial knowledge. It is necessary that the researcher should have sufficient resources, and should have patience to examine the material himself, as also discretion to draw conclusions.

The discussion veered round to the point that the myths which have got currency through fiction, should be duly checked up so that the truth may not be lost. If the facts are not separated from fiction, history will be reduced to mythology. Events in that case will be so much smeared with faith, superstition and imagination that the facts of history will be lost for ever.

Summing up, Dr. J. P. Jain said that history is an extensive subject, and all the aspects of human endeavour should be taken into account while writing history. While analysing the source material we should keep in view that historical accounts are often distorted due to sectarian zeal or propaganda of vested interests. A researcher on history must have the capacity to properly analyse the available material.

Fourth Symposium : The theme was– Appraisal of the sources of the history of India. The discussion started on the note that the history of India for nearly last six thousand years is known in a chronological sequence. No other land in the world can claim such a long history. The sources of history are multifarious. Study and analysis of ancient literature, material turned out by archaeological excavations, epigraphs, seals and coins, literature and epigraphs about India found outside – all this material brought out during the last two hundred years is helpful in depicting the history of our land. But all this varied source material is not being duly appraised by our researchers and historiographers. It is necessary that in this appraisal bias should be shunned and stress should be on discretion. But it is regrettable that those who are charged with guiding research, are not doing their job sincerely. In the research on ancient history certain myths are being cultivated due to sectarian bias with a view to establish the superiority of a particular sect or to project its oldness. Certain interests have played a part in the presentation of mediaeval history. The sources depended upon for the history of that period are mostly chronicles written under official partronage, the principal object of which was to whet communal passions; the people's literature has only been scarcely used in the reconstruction of history of that period. As regards the modern period the favourite theme of the historiographers has been to depict the superiority of British rule, to follow the British norms and to denigrate Indianism. Our historiographers are shy of analysing the circumstances which enabled the handful of Europeans, specially the British, to fix their rule over this vast land. Whatever hypotheses were presented in view of the freedom struggle, are

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

even more misleading. The history of post-independence period is being dealt with in a pathetic and ridiculous manner. Those in power are planting such myths even in school text-books which are not facts and also do not stand to reason. All this makes us think as to how we should properly appraise the source-material of all periods of the history of India and while appraising it how we should prevent the vested interests in power from corrupting history.

The discussion was initiated by Dr. R. C. Sharma, the then Director of the State Museum. According to him, the difficulty is that the researcher does not take to original sources and also does not try to reconcile the contemporary social scene from the literary references. The Gupta coins of the Bayana hoard can be best deciphered with reference to the Raghuvamsa. The image of the Buddha at Mathura is found only in meditation pose because the Indian genius looked upon the Buddha as divine and supernatural, whereas he was portrayed as a man of this world at Gandhara, and this difference in depiction denotes the difference of mental traits in the devotees of the two places. To properly interpret the epigraphs it is necessary to have proper knowledge and comparative study of ancient scripts and languages. Iron was found in the trench exhuming Painted Grey Ware at Alamgirpur but the then Archaeological Officer was adamant that iron should not be found with P. G. Ware; the greatest impediment in the path of research is adamancy. The guide should kindle the passion for research in the researcher so that the process of research may keep going.

The discussion veered round to the point that bias and prejudice should be shunned and stress should be on discretion, different methods should be used, as necessary, in the reconstruction of history, falsehoods propagated in political or communal interest should be exposed, and comparative assessment should be made while appraising the source material.

Summing up, Dr. J. P. Jain said that the researcher should have proper knowledge of the different traditions. It is wrong to say that one tradition is historical and the other is fiction. It is also not possible to draw a final conclusion from the antiquities now available because all the material does not come out at once. Writing history is a discipline which requires a detached, scientific and analytical approach and comparative appreciation. It is not proper to ignore any literature by branding it as sectarian.

Fifth Symposium : The theme was – Distinction between myth and history. The discussion began on the note that the challenge before the enlightened thinkers today is as to how history should be distinguished from myth, the coming generation should become iconoclast to expose the myths, and a wholesome vision be developed.

Dr. N. K. Devraj, formerly Professor of Philosophy at the Banaras Hindu University, initiated the discussion. He emphasised that it is always neecessary to fight the myths. It is not proper to be biased to call a particular period glorious. There was republicanism in Ancient India, but it could not grow here – its causes should be analysed. It would be a myth to equate modern democratic system with ancient republicanism. Not

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

only as regards history but prejudice is noticed also in the case of philosophy. Swami Dayanand and other reformers who lived in the past one century suffered from an inferiority complex, but we are influenced more by sentiments and biases than by reason and reality while appraising their work. It is possible to improve the standard of public morality only if we develop such a scientific research temperament which would bring forth the reality by discovering the truth and exposing the myth.

The discussion veered round to the point that it is a matter of regret that despite so much talk of religion in our country, the moral standards are falling. Truth is subjective and religion lies in following the truth in one's conduct. The puranic lores and traditional accounts should be properly analysed so that fact may be sifted from fiction.

Summing up, Dr. J. P. Jain referred to the definition of history in the Indian traditional literature, and said that we should, keeping away from prejudices, analyse the traditional accounts and modern literature and news-chronicles with a research-based scientific approach so that we may get to the facts and present history in proper perspective.

In all the symposia, the subject was introduced by Dr. Shashi Kant, who was also the reporter. Dr. N. P. Joshi, Dr. A. P. Singh, Dr. R. K. Dikshit, Dr. S. L. Pandey, Dr. R. C. Sharma, Dr. (Miss) Usha Mathur, Dr. (Miss) Kiran Maral, Mrs. Priyamvada Jindal and Messrs. Narbadeshwar Chaturvedi, A. P. Jain, K. C. Gorawala, R. K. Jain, K. G. Gore, V. N. Jindal, J. S. Jain, K. N. Pandey, A. Sen-Gupta, B. B. Sircar, Shailendra Rastogi and G. C. Jain participated in the discussions.

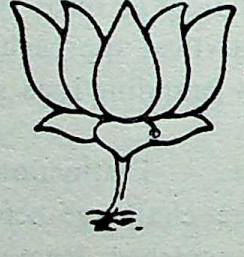

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

The Book being released

विमोच्य पुस्तक

Political and Cultural History of Mid-North India (From earliest times to 1248 A.D.)

The Work	24
पुस्तक परिचय	25
Summary	26
सार-संक्षेप	32
Appreciation	37
समीक्षा	38
The Author	39
लेखक	40

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Project. Funding: Pattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The Work

POLITICAL AND CULTURAL HISTORY OF MID-NORTH INDIA covers the journey of man from palaeolithic stage to 13th century A.D., in the terrain around the confluence of the Ganga and Yamuna, conventionally known as the Vatsa Janapada with its base at Kausambi.

It was presented as a thesis for the degree of DOCTOR OF PHILOSOPHY in the department of Ancient Indian History and Archaeology at the Lucknow University, and has been approved for publication by the Indian Council of Historical Research.

The study has been divided into 12 chapters, dealing with historical geography, political history, religion, civilisation, art, numismatics and epigraphy. Each chapter has the abstract at the beginning, and notes and references at the end. It takes into account relevant literary notices and archaeological discoveries as well as the researches made till now.

Determination of the territorial limits of ancient Janapadas with reference to topographical landmarks,
Date of the Mahabharata War,
Chronological tangle of 6th-4th centuries B.C.,
Dismemberment of the Maurya Empire,
The Mitras and the Maghas of Kausambi,
The Ranakas,
Sacrificial ritualism, and
Growth of civilisation,

are some of the important factors which transgress the regional limits and are crucial to the history of India as a whole. Detailed treatment of art forms, coin types, seals and sealings, and inscriptions, found in the region, is also helpful in greater understanding of the Indian panorama.

Exhaustive bibliography presents the available source material in shape. Chronology, summary and index are useful additions.

Two Maps, illustrating Ancient Mid-North India and Ancient India respectively, with notes, help in tracking the topography and getting a spectrum of sequences.

108 Illustrations, with descriptive notes, portray important antiquities.

Language - English

First edition 1987

Published by : Neha Prakashan, 1415, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110 009 (India)
Ph. 7110689

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digit...

पुस्तक परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ में मध्य-उत्तर भारत के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का पाषाण युग से १३वीं शती ई० तक विवेचन किया गया है। यह गंगा-यमुना के संगम के आस-पास का प्रान्तर है जो पारम्परिक रूप से वत्स जनपद जिसका केन्द्र विन्दु कौशाम्बी नगरी थी, के नाम से अभिज्ञात है।

लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग में इसे डाक्टर ऑफ़ फिलास्फी की उपाधि के लिये शोध-प्रबंध के रूप में प्रस्तुत किया गया था, तथा भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद ने इसे प्रकाशन हेतु अनुमोदित किया है।

अध्ययन को १२ अध्यायों में विभक्त किया गया है जिनमें ऐतिहासिक भूगोल, राजनैतिक इतिहास, धर्म, सभ्यता, कला, सिक्कों एवं मुद्राओं, तथा अभिलेखों, का विवेचन किया गया है। प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में उसकी रूपरेखा है और अंत में टिप्पणी एवं संदर्भ हैं। सुसंगत साहित्यक संदर्भ तथा पुरातात्त्विक खोजों एवं अब तक हुयी शोधों को इस में संदर्भित किया गया है।

प्राचीन जनपदों की प्रादेशिक सीमाओं का भौगोलिक चिन्हों के संदर्भ से विनिश्चितीकरण,
महाभारत युद्ध का समय,
छठी से चौथी शती ईसा-पूर्व के काल-क्रम का समाधान,
मौर्य साम्राज्य का विघटन,
कौशाम्बी के मित्र एवं मघ राजे,
राणक सामंत,
याज्ञिक क्रिया-काण्ड, और
सभ्यता का विकास,

कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण विन्दु हैं जो क्षेत्रीय सीमाओं से बाधित नहीं हैं और समग्र भारत के इतिहास के लिये महत्त्व रखते हैं। कला शैलियों, सिक्कों के विभिन्न प्रकार, मुद्राओं एवं मुद्रिकाओं, और अभिलेखों, जो कि इस क्षेत्र में पाये गये हैं, का विशद विवेचन भी भारतीय ऐतिहासक दृश्य को सुबोध बनाने में सहायक है।

उपलब्ध स्रोत साधनों को एक क्रम से ग्रन्थ/संदर्भ सूची में दिया गया है। कालानुक्रमणिका, सार-संक्षेप और नामानुक्रमणिका, उपयोगी परिशिष्ट हैं।

प्राचीन मध्य-उत्तर भारत (वत्स जनपद) और प्राचीन भारत (भारतवर्ष) को क्रमशः चित्रित करने के लिये दो मानचित्र दिये गये हैं जिन पर टिप्पणियां भी दी गयी हैं। मानचित्र स्थानों को चीन्हने में और ऐतिहासिक क्रम का दृश्यांकन करने में सहायक हैं।

१०८ चित्र जिनका विवरण भी दिया गया है, महत्त्वपूर्ण पुरावशेषों को चित्रित करते हैं।

भाषा - अंग्रेजी
प्रथम संस्करण १९८७
प्रकाशक : नेहा प्रकाशन, १४१५, डा० मुकर्जी नगर, दिल्ली–११०००९ (भारत)
फोन–७११०६८९

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri. Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Chapter-Scheme

Chapter I – The Vatsa Janapada
II – Early History
III – Mahajanapada Vatsa
IV – The Kingdom of Kausambi
V – The Maghas and other pre-Gupta Rulers
VI – Later Hsitory (till conquest by the Turks)
VII – Religion
VIII – Civilisation
IX – Art
X – Numismatics
XI – Epigraphy
XII – The Place of Vatsa in Indian History

अध्याय-विन्यास

अध्याय – १–वत्स जनपद
२–प्रारम्भिक इतिहास
३–महाजनपद वत्स
४–कौशाम्बी राज्य
५–मघ और गुप्त-पूर्व राजे
६–परवर्ती इतिहास (तुर्कों द्वारा विजय तक)
७–धर्म
८–सभ्यता
९–कला
१०–सिक्के एवं मुद्रायें
११–अभिलेख
१२–भारतीय इतिहास में वत्स जनपद का स्थान

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE: Digit...

SUMMARY

The aim and scope of the present study is to reconstruct the political and cultural history of Mid-North India, in essence the Vatsa Janapada of ancient India, from the earliest times to about the middle of the 13th century A.D., on the basis of the archaeological and literary evidence available.

The Vatsa Janapada was situated in the Madhyadesa of Bharatavarsha, with its capital at Kausambi (mod. Kosam in the Allahabad district) on the northern bank of the Yamuna. On the basis of the political map of India in the 6th century B.C. as known from the Buddhist and Jain sources and the dramas of Bhasa, it may be inferred that it lay along the banks of the Yamuna in the lower Ganga-Yamuna Doab extending westward up to the Pandu-Ganga and Sengar-Yamuna junctions and eastward up to the Sangam itself, bounded on the north by the Ganga, on the east by the Karamnasa, on the south by the Son and on the west by the Ken, and covering parts of the modern districts of Kanpur Dehat, Fatehpur, Allahabad, Banda, Mirzapur, Varanasi, Ghazipur and Rewah, between the parallels of lat. 24° 4' and 26° 2' N. and long. 80° and 84° E. It was surrounded by the Janapadas of Kosala, Kasi, Magadha, Anga, Kalinga, Chedi, Avanti, Kuru and Panchala, in a rather cyclic order, and was well connected with important political and trade centres of ancient India through highways and inland waterways.

Nearly a hundred sites of historical importance have already been brought to light as a result of explorations during the past one hundred years or so, and they have yielded sufficient material to enable reconstruction of the ancient history of the region. Kausambi and Bhita have responded most generously to the spade of the excavator and have proved to be rich mines of valuable information.

The ancient sites discovered so far suggest that this region formed one of the earliest habitats of man and saw the successive evolution of Palaeolithic, Mesolithic, Neolithic and Chalcolithic civilisations in India. Its Chalcolithic people were in frequent communication with their counterparts in Western India. It appears from the traditional accounts that Vatsa was under the Kasi Kingdom for the most part in the times of yore. The archaeological evidence brought forth at Kausambi seems to suggest that the Aryan tribe of the Vasas should have settled here within a century or two prior to the Mahabharata War which took place in the 15th century B.C.

On the destruction of Hastinapur, the Kuru king Nichakshu, sixth in descent from Parikshit, shifted his capital to Kausambi in *c.* 13th-12th century B.C., and henceforth twenty-three more Kuru kings ruled from Kausambi till it was absorbed in the Magadhan empire. Of them, Satnanika II and his son Udayana lived in the 6th century B.C.

Bits of information about the personality and performances of Udayana can be gleaned from the classical Sanskrit literature as well as from the sectarian literature of the Jains,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Buddhists and Brahmins. His romance with Vasavadatta, the daughter of King Pradyota of Avanti, finds a popular echo in the ancient Indian literature. Udayana seems to have ascended the throne in *c.* 555 B.C. The regrouping of the then existing states began swiftly thereafter and within a decade or so, an all-powerful Magadha emerged to the east, and an equally powerful Avanti to the west, of Vasta. His marriage with the sister of King Darsaka of Magadha, suggests that he lived through the reign of Ajatasatru. The excavations at Kausambi have revealed that the rampart and the palace were rebuilt during his time.

The Kuru king of Vatsa seems to have been made a vassal by Mahanandin in *c.* 467 B.C., whose son Mahapadma in 424 B.C. even ended the vassalage and made Vatsa a province of the Magadhan empire. Under the Mauryas the defences of the city and palace of Kausambi seem to have been rebuilt on the pattern laid down by Kautilya. The edicts of Asoka suggest that officers of the rank of Mahamatra held the charge of the city of Kausambi and possibly his second queen Kaluvaki had made that city her residence.

The Maurya empire began to disintegrate soon after the death of Asoka in *c.* 236 B.C. The Pataliputra and Ujjayini branches seem to have united under Samprati for some time but on his death they again tore asunder and it gave an opportunity to some of the servants of the empire to assert their independence, *e.g.*, at Mathura, Ahichchhatra, Kausambi and Yugasaila, or to gain in influence, as did the Senapati in Vidisa and the Sachiva in Vidarbha. A correlation of the different traditions and numismatic evidence suggests that the Satavahanas were the successors of the Mauryas in the Suvarnagiri province, and the Sungas, in the Ujjayini province, while the Kanvas succeeded the Sungas in the Vidisa region, and that these successors of the Maurya empire had hardly anything to do with Pataliputra and Kausambi. Cogent evidence is yet to be found to connect the rulers with *mitra*-ending names known from coins from Mathura, Ahichchhatra, Ayodhya and Kausambi, with the Sungas.

The independent kingdom of Kausambi, seems to have been founded by Sudeva in *c.* 219 B.C. on the death of Samprati. Twenty-eight rulers, known from coins and inscriptions, seem to have ruled this kingdom in the post-Samprati and pre-Kanishka period. Of them, Bahasatimita, possibly a prince of the Mathura house, was the most important as he in league with the king of Ahichchhatra who was his maternal grandfather, ended the Maurya dynasty in Pataliputra and also seized Kausambi from the successor of Sudeva early in the 2nd century B.C. Another important ruler was Rajamitra who lived in the 1st century B.C. and performed seven Soma sacrifices possibly including the Purushamedha on the Syenachiti the remains of which have been uncovered at Kausambi.

The Kushana king Kanishka I appears to have led a campaign of conquest in the east soon after his accession in 78 A.D. and encamped for some time in Kausambi, but early in Huvishka's reign, by the year 40 (A.D. 118), Asvaghosha seems to have asserted his independence in the Kausambi-Varanasi area. A decade or so later, Bhimasena from the

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization

Baghelkhand tract replaced Asvaghosha. Bhimasena's descendents, the so-called Magha kings, then held sway over Kausambi and the region around till the close of the 3rd century A.D. Thereafter the Naga king Ganendra of Padmavati appears to have held sway for some time, and finally, Sri Rudra or Rudradeva occupied it on the eve of the Aryavarta Wars waged by Samudragupta in *c.* 330 A.D.

After its conquest by Samudragupta, Kausambi and the region around continued to be a part of the Gupta empire till the last days of the empire except for the brief spell of devastation by Toramana Huna. After the finishing off of the Gupta power by Yasodharman, the destiny of this region was linked with that of the masters of Kanyakubja (Kannauj) and successively, the Maukharis, Harsha, Yasovarman, the Ayudhas, the Gurjara-Pratiharas and the Gahadavalas held sway over it. The intrusions of Muktapida from Kashmir in the time of Yasovaraman, and of the Kalachuris and the Palas in the interregnum between the Pratiharas and the Gahadavalas, were short-lived. After the Gahadavala power had been finished by the Turks towards the close of the 12th century A.D., the fight was continued by the Ranaka chiefs with their strongholds at Kara and near Kausambi till 1248 A.D. when the region finally passed into the hands of the Turkish Sultan of Delhi. The region around Kalinjar continued to be a part of the Chandella kingdom since its seizure by Yasovarman in the second quarter of the 10th century A.D.

There is sufficient literary and archaeological evidence to show the important part played by the Vatsa region in shaping the major religious systems of India, as also bearing on the worship of Mother Goddess, Yaksha and Naga. After Nichakshu had shifted to Kausambi, a sort of academy of Vedic learning seems to have been set up there, and Proti Kausurubinda Auddalaki, a Vedic teacher, possibly belonged to it. An unmistakable evidence about the prevalence of sacrificial ritualism at Kausambi has been found in the shape of a Syenachiti used for performing the Purushamedha towards the beginning of the Christian era. The megaliths at Kotia also seem to remind of some sacrificial rites. There is also evidence of syncretism between Vedic ritualism and Saivism, as well as of association of Saivism with the Naga cult; and one of the oldest lingams comes from Bhita. The Vaishnava remains at Garhwa provide interesting evidence of syncretism between Vaishnavism and Saktism, between the cults of Rama and Krishna, and between Vaishnavism and Buddhism.

Kausambi finds much mention in the Jain traditional accounts, and some of the important events in Mahavira's life also refer to that city. The place was frequented by the Jain teachers in the post-Mahavira period, and it also seems to have been connected with the early literary activity of the Jains.

The Buddha had spent three rainy seasons in the Vatsa region, and some of his important discourses were delivered here. The Kausambi monks were also the cause of several important rules of monastic discipline. The Ghositarama at Kausambi continued to be an important centre of Buddhism for about one thousand years since the days of the Buddha; its ruins have been excavated in the 1950's. Besides Kausambi, Bhita, Deoriya, Mankuar, Ahraura, Bharhut and Bandhogarh also appear to have been important centres of Buddhism.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

With the help of the stone implements, pottery, and miscellaneous clay, stone, metal, bone and shell objects, brought to light so far, the growth of civilisation can be traced in this region and the cultural strains detected to our own times. Kausambi and Sahajati (Bhita) were the main trade centres, and the trade was well organised through different categories of traders and guilds of artisans and producers. The Sreshthis occupied an important position. The affairs of guilds and of cities and villages were regulated through corporate bodies, with which official functionaries were only occasionally associated. The usual male attire consisted of a dhoti, scarf and turban, but the warriors wore tunic or tight-buttoned coat and long boots. The women wore sari, a garment to cover the upper part, and a veil over the head. They also bedecked the different parts of their body with various items of jewellery, and were form-conscious, fond of cosmetics and refined in tastes. Life was generally gay, and the cities were beautifully planned and full of merchandise, edibles and entertainments.

The gradual evolution of the city defence-complex from the middle of the 2nd mill. B. C. to the middle of the 1st mill. A. D. may be observed at Kausambi as a result of the excavations of the rampart. The fort at Kara and the hillfort at Kalinjar are the typical examples of the post-Gupta fort architecture. The excavations at Kausambi have also revealed the evolution of the palace-complex in ancient India. The excavations at Kosam and Bhita also throw interesting side-light on building of private and public houses and market places. The stupas uncovered in the Ghositarama and the one at Bharhut, provide typical examples of the Buddhist stupas. The plan of the Ghositarama uncovered during the excavations at Kausambi shows a gradual evolution for over one thousand years and is the earliest most complete and preserved picture of a Buddhist monastic establishment. Among the typical examples of rock-cut architecture may be noted the Jain nishidya at Pabhosa datable early in the 2nd century B. C., the Buddhist cave-dwellings at Bandhogarh relating to the 2nd century A. D. and the Saiva shrine (Nilakantha Temple) at Kalinjar dating back to the Gupta period but finished in 1090 A. D. The typical examples of masonry temples are furnished by the Vaishnava temple at Garhwa and the Saiva temples at Barha Kotra and near Mau, all datable in the 12th-13th centuries A. D.

Of the sculptures, the Asokan pillars marked with lustrous polish are the earliest. The wide assortment of sculptures includes Jain Ayagapatta, asanapatta and images, Buddhist productions at Bharhut, tablet of homage, Bodhisattva images and Buddha images, Siva lingams and images of Siva-Parvati, and images of Vishnu and his incarnations, and of the Trinity of Gods, as well as the Krishna legends in relief, besides some miscellaneous objects of interest.

The terracotta, both figurines in round and mouldings in relief on plaques, have been found in large numbers, belonging to *c.* 1000 B.C. —A.D. 1000, mostly from Kosam and Bhita. They provide a fine mirror of society, and show a gradual evolution of the technique of clay modelling from early hand-made to mould-made and finally to hand-made with natural mouldings.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

Ornaments were made of copper, bronze, gold, shell, glass, semi-precious stones and precious stones, but not of silver, as the available objects seem to suggest. A wide variety of ornaments were used by both men and women. Beads, which were used for various purposes, were made of shell, glass, coral, carnelian, topaz, agate, lapis-lazuli and gold, and were sometimes painted by means of a chemical process.

The coins found in the region include punch-marked coins of silver and copper, uninscribed cast coins, coins bearing the name of a city or a trade guild, and those bearing the name of a ruler. The names of most of the rulers of the post-Asoka and pre-Kanishka period, as also of the post-Kanishka and pre-Samudragupta period, are known only from these coins.

The seals and sealings of clay, semi-precious stone, metal and ivory have also been found in large numbers, often inscribed with the name of the owner and bearing certain symbols in the field. They range in time from *c.* 3rd century B.C. to 10th century A.D. and include religious, corporate, official and private seals which throw important sidelight on the political and cultural history.

More than a hundred inscriptions have also been found, dating from *c.* 260 B.C. to 1248 A.D., and they help solve many a problem in the history of not only Vatsa, but of India generally. The Ahraura Edict of Asoka has made it possible to correctly interpret his Minor Rock Edict I. His Schism Edict corroborates the literary accounts about his patronage of Buddhism. The Pabhosa Cave Inscriptions of Ashadhasena throw valuable light on the post-Asoka history of Northern India. The Yupa Inscription of Rajamitra indicates the performer of the Purushamedha at Kausambi. The Allahabad *prasasti* of Samudragupta is the only full account of that ruler's achievements. The inscription of Uddaladevi provides a most welcome clue to the identification of Rana Dalki-wo-Malki of the Muslim chroniclers. Lastly, the copper-plate grant of Lakshmana provides an interesting instance of the use of the Gahadavala era.

Taken as a whole, the Vatsa Janapada with its amazing variety of evidence, its pivotal position in political developments which were vital in shaping the political history of ancient India due to its peculiar geographical situation, its contribution to the growth of Indian religions, and its continuous efforts at enriching the cultural facets of Indian life from the very dawn of civilisation to the last days of our period under study, holds a place in Indian History which can be called distinguished and can well be envied by some of the other ancient Janapadas.

—

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

सार-संक्षेप

प्रस्तुत अध्ययन में उपलब्ध पुरातात्त्विक और साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर मध्य-उत्तर भारत जो प्राचीन भारत में वत्स जनपद के नाम से अभिज्ञात था, के प्राग्-ऐतिहासिक काल से १३वीं शती ई० तक के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास को व्यवस्थित कर प्रस्तुत किया गया है।

वत्स जनपद भारतवर्ष के मध्यदेश में अवस्थित था और इसकी राजधानी यमुना नदी के उत्तरी तट पर स्थित कौशाम्बी नगरी थी जिसकी पहचान इलाहाबाद जिले के कोसम ग्राम से की जाती है। बौद्ध एवं जैन साहित्य तथा भास के नाटकों में प्राप्त ज्ञातव्य के अनुसार भारत के छठी शती ई० पू० के राजनैतिक मानचित्र के आधार पर यह प्रतीत होता है कि वत्स जनपद यमुना नदी के उभय तटों पर गंगा-यमुना दोआब के निचले भाग में स्थित था। दोआब में पश्चिम की ओर इसका प्रसार पांडु-गंगा और सेंगर-यमुना संगम तक था, और इसकी सीमाओं को उत्तर में गंगा, पूर्व में करमनासा, दक्षिण में सोन तथा पश्चिम में केन नदियां आवृत्त करती थीं। अक्षांश २४°४' व २६° २' उ० तथा देशान्तर ८०° व ८४° पू० के मध्य स्थित कानपुर देहात, फतेहपुर, इलाहाबाद, बांदा, मिर्जापुर, वाराणसी, गाजीपुर और रींवा के वर्तमान जिलों का अधिकांश भूभाग इसके अन्दर समाविष्ट था। कोसल, काशी, मगध, अंग, कलिंग, चेदि, अवन्ति, कुरु और पञ्चाल जनपद उसे प्रायः वृत्ताकार व्यूह में घेरे हुए थे और थल मार्गों एवं अन्तर्देशीय जल मार्गों द्वारा प्राचीन भारत के महत्त्वपूर्ण राजनैतिक एवं व्यापारिक केन्द्रों से इसका व्यवस्थित सम्पर्क था।

प्रायः गत सौ वर्षों में की गयीं खोजों के फलस्वरूप इस प्रदेश में ऐतिहासिक महत्त्व के लगभग एक-सौ स्थल प्रकाश में आ चुके हैं, और उन स्थलों से ऐसी काफी सामग्री मिली है जिसकी सहायता से इस प्रदेश के प्राचीन इतिहास का पुनर्निर्माण किया जा सकता है। कौशाम्बी और भीटा में बड़े पैमाने पर पुरातात्त्विक खुदाई की गई है और वहां खुदाई द्वारा ऐतिहासिक दृष्टि से अति मूल्यवान विविध सामग्री प्राप्त हुई है।

अब तक प्रकाश में आये प्राचीन स्थल यह सूचित करते हैं कि यह प्रदेश मानव के प्राचीनतम आवास-स्थलों में से एक था और यहां भारत की पूर्व-पाषाण युगीन, मध्य-पाषाण युगीन, नव्य-पाषाण युगीन एवं ताम्र-पाषाण युगीन सभ्यताओं का क्रमिक विकास हुआ था। यहां के ताम्र-पाषाण युगीन लोगों का पश्चिम भारत में बसे अपने समवर्तियों से भी सहज सम्पर्क था। पौराणिक अनुश्रुतियों से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में वत्स प्रदेश प्रायः काशी राज्य के अधीन रहा। कौशाम्बी में प्रकाश में आया पुरातात्त्विक साक्ष्य यह सूचित करता प्रतीत होता है कि वत्सों की आर्य जाति यहां महाभारत युद्ध (१५वीं शती ई० पू०) के सौ-दो-सौ वर्ष पहले ही आकर बसी होगी।

हस्तिनापुर के विनाश के उपरान्त लगभग १३वीं-१२वीं शती ई० पू० में परीक्षित् के छठे वंशज कुरुराज निचक्षु ने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया और तत्पश्चात २३ अन्य कुरु राजाओं ने कौशाम्बी से ही राज्य किया जब तक कि उसका विलय मगध साम्राज्य में नहीं हो गया। उक्त राजाओं में से शतानीक द्वितीय और उसका पुत्र उदयन छठी शती ई० पू० में विद्यमान थे।

लौकिक संस्कृत साहित्य एवं जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मणीय धार्मिक साहित्य में उदयन के व्यक्तित्व एवं कार्य-कलापों से सम्बन्धित कितने ही प्रसंग मिलते हैं। अवन्ति के राजा प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता के साथ उसके प्रणय की कथा प्राचीन भारतीय साहित्य में विशेष रूप से लोकप्रिय थी। उदयन लगभग ५५५ ई० पू० में सिंहासनारूढ़ हुआ प्रतीत होता है। तत्पश्चात ही उस समय विद्यमान राज्यों का विघटन तेजी से प्रारम्भ हो गया

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

और प्राय: एक दशक के भीतर ही वत्स के पूर्व में सर्वशक्ति-सम्पन्न मगध राज्य का उदय हुआ और पश्चिम की ओर उतने ही शक्तिशाली अवन्ति राज्य का। मगध-राज दर्शक की बहन के साथ उसका विवाह यह सूचित करता है कि वह अजातशत्रु के राज्यकाल की समाप्ति के बाद भी विद्यमान था। कौशाम्बी में किये गये उत्खनन यह प्रकट करते हैं कि उसके राज्यकाल में नगर प्राचीर तथा राजप्रासाद का पुनर्निर्माण किया गया था।

लगभग ४६७ ई० पू० में मगधराज महानन्दिन् ने वत्स के कुरु राजा को अपना करद राजा बना लिया प्रतीत होता है। ४२४ ई० पू० में उसके पुत्र महापद्म ने करद राजा की व्यवस्था भी समाप्त कर दी और वत्स प्रदेश को मगध साम्राज्य का प्रत्यक्ष अधीनस्थ एक प्रान्त ही बना लिया। मौर्यों के राज्यकाल में कौशाम्बी की नगर-प्राचीर एवं प्रासाद-प्राचीर का कौटिल्य द्वारा निर्णीत प्रणाली के अनुसार पुनर्निर्माण हुआ प्रतीत होता है। मौर्य सम्राट अशोक के शासनादेश यह भी सूचित करते हैं कि कौशाम्बी नगर के प्रशासक महामात्र पदवी के अधिकारी होते थे और उसकी द्वितीय रानी कालुवाकी ने इस नगर को अपना निवास-स्थान भी बना लिया था।

लगभग २३६ ई० पू० में अशोक की मृत्यु के तुरंत बाद ही मौर्य साम्राज्य विच्छिन्न होने लगा। सम्प्रति के राज्यत्व में कुछ समय के लिए मौर्यवंश की पाटलिपुत्र और उज्जयिनी शाखाओं का एकीकरण हो गया प्रतीत होता है परन्तु उसकी मृत्यु के बाद पुन: वे अलग-अलग हो गईं जिससे साम्राज्य के कुछ सेवकों को यह अवसर मिल गया कि वे अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर लें यथा मथुरा, अहिच्छत्रा, कौशाम्बी और युगशैल में, अथवा अपना प्रभाव बढ़ा लें जैसा कि विदिशा में सेनापति और विदर्भ में सचिव ने किया। विभिन्न अनुश्रुतियों एव मुद्रा सम्बन्धी साक्ष्य के समन्वय से ऐसा सूचित होता है कि सुवर्णगिरि प्रान्त में सातवाहन और उज्जयिनी प्रान्त में शुङ्ग मौर्यों के उतराधिकारी हुए, और यह भी कि मौर्य साम्राज्य के इन उत्तराधिकारियों का पाटलिपुत्र एवं कौशाम्बी से शायद ही कोई सम्बन्ध था। मथुरा, अहिच्छत्रा, अयोध्या एवं कौशाम्बी से प्राप्त सिक्कों के मित्र-नामान्त वाले राजाओं का शुङ्गों से सम्बन्ध स्थिर करने योग्य सुनिश्चित साक्ष्य अभी उपलब्ध नहीं है।

सम्प्रति की मृत्यु के उपरान्त लगभग २१९ ई० पू० में सुदेव द्वारा कौशाम्बी के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की गई प्रतीत होती है। सम्प्रति-पश्चात और कनिष्क-पूर्व काल में, जैसा कि सिक्कों और अभिलेखों से विदित होता है, २८ राजाओं ने इस राज्य पर शासन किया प्रतीत होता है। उनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बहसतिमित था। वह सम्भवत: मथुरा के नवोदित राजवंश का कुमार था और उसने अपने नाना अहिच्छत्रा के राजा के साथ मिलकर पाटलिपुत्र से मौर्य वंश का उच्छेद किया था तथा दूसरी शती ई० पू० के प्रारम्भ मे ही सुदेव के उत्तराधिकारी से कौशाम्बी छीन ली थी। एक अन्य महत्त्वपूर्ण राजा राजमित्र था जो पहली शती ई० पू० में विद्यमान था; उसने सात सोमयज्ञ किये थे जिनमें कौशाम्बी के उत्खनन में प्रकाश में आये श्येनचिति के अवशेषों से सम्बद्ध पुरुषमेध यज्ञ भी सम्भवत: सम्मिलित था।

७८ ई० में अपने राज्यारोहण के तुरंत बाद ही कुषाणवंशी राजा कनिष्क प्रथम ने पूर्व दिशा में विजय अभियान किया प्रतीत होता है और उसने कुछ समय कौशाम्बी में भी बिताया प्रतीत होता है। परन्तु हुविष्क के राज्यकाल के प्रारम्भ में संवत् ४० (११८ ई०) के पहले ही कौशाम्बी-वाराणसी क्षेत्र में अश्वघोष ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली प्रतीत होती है। एक दशक अथवा उसके कुछ ही बाद बघेलखंड प्रान्तर से भीमसेन ने आकर अश्वघोष को भी अपदस्थ कर दिया। कौशाम्बी तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश पर भीमसेन के वंशजों, तथाकथित मघ राजों, का आधिपत्य तीसरी शती ई० के अन्त तक रहा। तत्पश्चात कुछ समय के

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

लिए पद्मावती के नाग राजा गणेन्द्र का आधिपत्य रहा प्रतीत होता है और अन्ततः लगभग ३३० ई० में समुद्रगुप्त द्वारा आर्यावर्त्त युद्धों में विजय प्राप्त करने के समय यह प्रदेश श्रीरुद्र या रुद्रदेव के आधिपत्य में था।

समुद्रगुप्त द्वारा विजय किये जाने के पश्चात तोरमाण हूण द्वारा किये गये विनाश के अल्पकालीन अन्तराल को छोड़कर कौशाम्बी तथा निकटवर्ती प्रदेश गुप्त साम्राज्य के अन्तिम दिनों तक उसी का अंग बना रहा। यशोधर्मन् द्वारा गुप्त सत्ता की समाप्ति के पश्चात इस प्रदेश का भाग्य कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजवंशों के इतिहास के साथ जुड़ गया और यहां एक-दूसरे के बाद क्रमशः मौखरियों, हर्ष, यशोवर्मन्, आयुधों, गुर्जर-प्रतिहारों तथा गाहडवालों का आधिपत्य रहा। यशोवर्मन् के समय में कश्मीर के राजा मुक्तापीड़ का अभियान तथा प्रतिहारों एवं गाहडवालों के मध्य अन्तराल में कलचुरियों और पालों के अभियान अल्प-कालिक थे। १२वीं शती ई० के अन्त में तुर्कों द्वारा गाहडवाल सत्ता के समाप्त कर दिये जाने के उपरान्त १२४८ ई० तक जब कि यह प्रदेश अन्ततः दिल्ली के तुर्की सुलतानों के अधिकार में चला गया, कड़ा और कौशाम्बी के निकट अपने गढ़ों से राणक सामन्तों ने स्वातन्त्र्य समर जारी रखा। १०वीं शती ई० के द्वितीय चतुर्थांश में कालिंजर पर यशोवर्मन् द्वारा अधिकार कर लिये जाने के बाद कालिंजर का निकटवर्ती प्रदेश चन्देल राज्य का ही अंग बना रहा।

समुचित साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक सामग्री उपलब्ध है जो यह सूचित करती है कि भारत के प्रधान धर्मों के विकास में वत्स प्रदेश का विशिष्ट योगदान रहा और वह यह भी संकेत करती है कि वहां अम्बा, यक्ष और नाग पूजा का प्रचलन भी था। निचक्षु द्वारा कौशाम्बी को अपनी राजधानी बना लिये जाने के बाद वैदिक विद्या की कोई पीठ भी वहाँ स्थापित हो गई प्रतीत होती है और वैदिक गुरु प्रोति कौसुरबिन्द औद्दालकि संभवतः उसी पीठ के स्नातक थे। कौशाम्बी में याज्ञिक कर्मकाण्ड के प्रचलन के स्पष्ट प्रमाण के रूप में श्येनचिति के अवशेष प्रकाश में आये हैं। ईस्वी सन् के प्रारम्भ के लगभग इस चिति का प्रयोग पुरुषमेध यज्ञ करने के लिए किया गया था। कोटिया में प्राप्त मेगालिथ भी किसी याज्ञिक क्रिया से ही सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। इस प्रदेश में वैदिक कर्मकाण्ड एवं शैवमत के पारस्परिक समन्वय तथा शैवमत के नागपूजा से सम्बन्धों के प्रमाण भी मिले हैं। प्राप्त प्राचीनतम शिवलिंगों में से एक लिंग भीटा से मिला है। गढ़वा में प्राप्त वैष्णव अवशेष वैष्णव मत एवं शाक्तमत, राम-पूजा एवं कृष्ण-पूजा तथा वैष्णव मत एवं बौद्ध धर्म के बीच पारस्परिक समन्वय के संकेत सूचित करते हैं।

जैन पौराणिक अनुश्रुति में कौशाम्बी का बहुधा उल्लेख आता है, और महावीर के जीवन की कतिपय मुख्य घटनाओं के प्रसंग से भी इस नगर का उल्लेख आता है। महावीर के बाद के युग में भी यहां जैन गुरुओं का काफी आवागमन रहा, और ऐसा भी प्रतीत होता है कि जैनों के प्रारम्भिक साहित्य प्रणयन से भी इसका सम्बन्ध रहा।

बुद्ध ने वत्स प्रदेश में तीन वर्षावास किये थे। उनके कुछ महत्त्वपूर्ण प्रवचन भी यहीं हुए थे। विनय के कितने ही महत्त्वपूर्ण नियमों का हेतु भी कौशाम्बी का भिक्षु संघ ही था। बुद्ध के बाद भी लगभग एक हजार वर्ष पर्यन्त कौशाम्बी में स्थित घोसिताराम बौद्धधर्म का एक प्रमुख केन्द्र बना रहा। इस विहार के अवशेषों का उत्खनन १९५० ई० के दशक में किया गया है। कौशाम्दी के अतिरिक्त भीटा, देवरिया, मानकुंअर, अहरौरा, भारहुत और बान्धोगढ़ इस प्रदेश में बौद्ध धर्म के अन्य महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे।

अब तक प्रकाश में आये पत्थर के विविध उपकरणों, मिट्टी के पात्रों और मिट्टी, पत्थर, धातु, अस्थि एवं शंख-सीपी के बने भांति-भांति के व्यंजनों की सहायता से इस प्रदेश के मानव सभ्यता के विकास के क्रम को जाना जा सकता है और यह भी देखा जा सकता है कि वर्तमान काल में भी उस संस्कृति के कौन से अंश प्रतिभासित हो रहे हैं। कौशाम्बी और सहजाति (भीटा) यहाँ के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे तथा व्यापारियों के विभिन्न

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

वर्गों एवं कारीगरों व उत्पादकों की श्रेणियों के माध्यम से व्यापार की सुव्यवस्थित योजना थी। श्रेष्ठि सम्मानित थे। व्यवसायिक श्रेणियों तथा नगरों एवं ग्रामों के निगमों का संचालन पंचायती व्यवस्था के अनुसार होता था और उनके मामलों में राज्य के अधिकारियों का हस्तक्षेप यदा-कदा ही होता था। पुरुषों का परिधान सामान्यत: धोती, चादर (उत्तरीय) और पगड़ी (उष्णीष) थे परन्तु योद्धा लोग कसा बटनदार कोट और लम्बे जूते पहनते थे। स्त्रियां साड़ी पहनती थीं, अपने वक्ष पर अंगिया धारण करती थीं और सिर पर पल्ला ढंकती थीं। अपने शरीर के विभिन्न अंगों को वे विविध आभूषणों से अलंकृत करती थीं, शारीरिक सौष्ठव के प्रति सजग थीं, शृगार-प्रसाधनों की शौकीन थीं और उनकी रुचि परिष्कृत थी। जन-जीवन सामान्यत: आमोद-प्रमोदमय था। नगर सुनियोजित थे और उनमें व्यापारिक माल, भोज्य पदार्थों एवं मनोरंजन के साधनों की प्रचुरता थी।

कौशाम्बी में नगर-प्राचीर की खुदाई के परिणामस्वरूप लगभग द्वितीय सहस्राब्द ई० पू० के मध्य से प्रथम सहस्राब्द ई० के मध्य के बीच हुए नगर की किलेबन्दी के क्रमिक विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। कड़ा का किला और कालिंजर का पहाड़ी किला गुप्त-पश्चात युग के दुर्ग-स्थापत्य के विशिष्ट उदाहरण हैं। कौशाम्बी में हुए उत्खनन से प्राचीन भारत में प्रासाद-स्थापत्य के विकास पर भी प्रकाश पड़ता है। कोसम और भीटा में की गई खुदाई से निजी एवं सार्वजनिक भवनों तथा बाजार-हाट के निर्माण की विधि पर भी प्रकाश पड़ा है। घोसिताराम के अवशेषों में प्रकाश में आये स्तूप तथा भारहुत का स्तूप बौद्ध स्तूप-स्थापत्य के विशिष्ट उदाहरण हैं। कौशाम्बी में खुदाई के फलस्वरूप घोसिताराम का जो नक्शा प्रकाश में आया है वह उक्त विहार के हजार वर्षों में हुए क्रमिक विकास को प्रकट करता है और यह बौद्ध विहारों का प्राचीनतम अत्यधिक पूर्ण एवं संरक्षित अधुनाज्ञात चित्र प्रस्तुत करता है। शैलकृत (चट्टान में काटकर बनाये गये) स्थापत्य के विशिष्ट उदाहरणों में लगभग दूसरी शती ई० पू० में निर्मित पभोसा स्थित जैन निषिद्या, दूसरी शती ई० में बनी बान्धोगढ़ स्थित बौद्ध आवास-गुफायें और गुप्त काल में निर्मित परन्तु १०९० ई० में अन्तिम रूप प्राप्त कालिंजर स्थित नीलकण्ठ मन्दिर के नाम से विख्यात शिवालय को गिना जा सकता है। ईंट-चूने से बने मन्दिरों के विशिष्ट उदाहरण गढ़वा का वैष्णव मन्दिर और बड़ा कोटरा में एवं मऊ के निकट स्थित शैव मन्दिर हैं जो सभी १२वीं-१३वीं शती ई० में निर्मित हैं।

मूर्ति कला के अवशेषो में चमकीली पालिश वाले अशोक के पाषाण स्तम्भ प्राचीनतम हैं। जैनों के आयाग-पट्ट, आसनपट्ट और मूर्तियां, बौद्धों के आर्यपट्ट, बोधिसत्त्व एवं बुद्ध की मूर्तियाँ तथा भारहुत से प्राप्त प्रस्तरांकन, शिवलिंग और शिव-पार्वती की मूर्तियां, विष्णु और उसके अवतारों की मूर्तियां, त्रिदेवों की मूर्तियाँ और कृष्ण की लीलाओं का प्रस्तरांकन इस प्रदेश में प्राप्त मूर्तिकला के विविध उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

विशेष रूप से कोसम और भीटा से लगभग १००० ई० पूर्व से १००० ई० के बीच निर्मित बहुत सी मृण्मूर्तियाँ मिली हैं जिनमें कुछ तो स्वत: पूर्ण मूर्तियाँ हैं और कुछ सांचे द्वारा बनाये गये पट्ट हैं जिन पर विविध आकृतियाँ अंकित हैं। ये मृण्मूर्तियाँ सामाजिक जीवन की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत करती हैं। इनसे मिट्टी में मूर्ति ढालने की कला के क्रमिक विकास का भी परिचय मिलता है कि किस प्रकार प्रारम्भ में मूर्तियाँ हाथ से बनाई जाती थीं, फिर साँचे से बनाई जाने लगीं और अन्तत: हस्त-कौशल द्वारा स्वाभाविक गढ़न प्रदान की जाने लगी।

अब तक प्राप्त वस्तुओं से ऐसा प्रतीत होता है कि आभूषण तांबे, कांसे, सोने, शंख-सीपी, हाथी-दांत, कांच, मूल्यवान पाषाणों ओर रत्नों के बनाये जाते थे परन्तु चाँदी के नहीं बनाए जाते थे। विभिन्न प्रकार के आभूषणों का प्रयोग स्त्री और पुरुष दोनों ही करते थे। मनकों (गुरियों) का कितनी ही प्रकार से प्रयोग किया जाता था और

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mululkote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

वे शंख-सीपी, कांच, मूँगा, कार्नेलियन, टोपाज, अगेट (सुलेमानी पत्थर), वैडूर्य (नीलम) और सोने के बनाए जाते थे तथा कभी-कभी रासायनिक प्रक्रिया द्वारा उन्हें चित्रित भी किया जाता था।

जो सिक्के इस प्रदेश में प्राप्त हुए हैं उनमें चाँदी व ताँबे के आहत (पंच-मार्क) सिक्के, बिना अभिलेख के ढले हुए सिक्के, नगर-निगम या श्रेणी के नाम से अंकित सिक्के तथा राजा के नाम से अंकित सिक्के सम्मिलित हैं। अशोक-पश्चात व कनिष्क-पूर्व तथा कनिष्क-पश्चात व समुद्रगुप्त-पूर्व युग के अधिकांश राजाओं का नाम केवल इन्हीं सिक्कों के माध्यम से ज्ञात हुआ है।

मिट्टी, जवाहिरातों, धातु और हाथी-दाँत की बनी बहुत सी मुद्राएं भी मिली हैं जिन पर प्रायः मुद्रा के स्वामी का नाम उत्कीर्ण है और कुछ चिह्न भी अंकित हैं। ये मुद्राएं लगभग तीसरी शती ई० पू० से १०वीं शती ई० तक की हैं और इनमें धार्मिक, नैगमिक, राजकीय एवं निजी, सभी प्रकार की मुद्राएं सम्मिलित हैं जो राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालती हैं।

लगभग २६० ई० पूर्व से १२४८ ई० तक के एक-सौ से भी अधिक अभिलेख यहां मिले हैं जो वत्स के ही इतिहास की नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतीय इतिहास की कितनी ही गुत्थियों को सुलझाने में सहायता प्रदान करते हैं। अशोक के अहरौरा से प्राप्त अभिलेख ने उसके प्रथम लघु शिलालेख का सही आशय स्पष्ट करने में सहायता दी है। उसके संघ भेद अभिलेख ने उसकी बौद्ध धर्म को संरक्षण प्रदान करने से सम्बन्धित साहित्यिक अनुश्रुतियों की पुष्टि की है। आषाढ़सेन के फ्भोसा की गुफा में उत्कीर्ण लेखों ने अशोक-पश्चात उत्तरी भारत के इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है। राजमित्र का यूप-अभिलेख कौशाम्बी में सम्पन्न पुरुषमेध यज्ञ के होने की सूचना देता है। समुद्रगुप्त की इलाहाबाद-प्रशस्ति ही उसके कार्यकलापों का एकमात्र पूर्ण विवरण प्रस्तुत करती है। मुसलमान इतिहासकारों द्वारा उल्लिखित राजा दल्कि-वो-मल्कि को चीन्हने के लिए उद्दलदेवी का अभिलेख एक अत्यन्त वांछनीय सूत्र प्रस्तुत करता है। लक्ष्मण का अभिलेख गाहडवाल संवत् के प्रयोग का एक अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है।

अपनी विविध प्रचुर सामग्री, भौगोलिक अवस्थिति से उद्भूत प्राचीन भारत के राजनैतिक इतिहास के निर्माण में अपनी आधारिक स्थिति, भारतीय धर्मों के विकास में अपने योगदान, और सभ्यता के प्रारम्भ से ही हमारे शोधाधीन समय के अन्तिम दिनों तक भारतीय जन-जीवन को समृद्ध करने के लिए अपने निरन्तर प्रयास के कारण समग्र दृष्टि से देखने पर भारतीय इतिहास में वत्स जनपद का अपना एक विशिष्ट एवं स्पृहणीय स्थान है।

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Appreciation

The thesis is excellent. It is very well planned and admirably executed. It takes into account all the archaeological discoveries recently made as well as the researches made till now.

The material at the author's disposal and examined by him has enabled him to solve many a knotty problem as well as to modify some of the current views, adding at the same time much useful new information. He has presented the whole in a choronological sequence in an eminently readable manner.

The division into chapters, sub-headings and marginal titles is logical. It is at the same time helpful to the reader in following and remembering the facts presented.

It is a worthy piece of scholarship, a valuable addition to the existing literature on the subject and a distinct contribution to the history of Ancient India.

—Dr. B. Ch. Chhabra
formerly Joint Director-General of the Archaeological Survey of India, and Professor & Head of the Department of Ancient Indian History, Culture & Archaeology, Punjab University, Chandigarh

Interpretations of the facts are scientific. This is the first work in which the political and cultural history of the ancient Vatsa Janapada has been attemped in an exhaustive and critical manner.

—Porf. K. D. Bajpai
formerly Tagore Professor & Head of the Department of Ancient Indian History, Culture & Archaeology, University of Saugar, Sagar

A comprehensive work dealing with the history and culture of the region was a desideratum. The author has accomplished the task very creditably. It makes a valuable contribution to Indological Studies.

—Dr. R. K. Dikshit
formerly Professor & Head of the Department of Ancient Indian History and Archaeology, and Dean, Faculty of Arts, Lucknow University

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mel...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

समीक्षा

शोध-प्रबंध उत्कृष्ट है। यह बहुत सुनियोजित है और सराहनीय रुप से लिखित है। इसमें हाल में हुयी पुरातात्त्विक खोजों एवं अब तक हुयी शोधों का समाकलन किया गया है।

लेखक को जो सामग्री उपलब्ध थी और जिसका उन्होंने परीक्षण किया है उसने उन्हें बहुत सी ऐतिहासिक समस्याओं का समाधान करने में तथा प्रचलित धारणाओं को संशोधित करने में और साथ ही बहुत सी नयी एवं उपयोगी सूचनायें प्रस्तुत करने में सहायता दी है। उन्होंने अपने प्रबंध को एक कालानुक्रम तारतम्य में एवं अत्यंत पठनीय शैली में प्रस्तुत किया है।

अध्यायों में, उपशीर्षकों में एवं पार्श्व-शीर्षों में विभाजन युक्ति-युक्त है। साथ ही यह पाठक को जो तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं उनका अनुसरण करने और उन्हें याद रखने में सहायक होता है।

यह विद्वत्ता का एक सुयोग्य उदाहरण है, विषय पर उपलब्ध साहित्य में एक उपयोगी सम्पूर्ति है और प्राचीन भारत के इतिहास में एक विशिष्ट योगदान है।

—डा० बहादुर चन्द छाबड़ा
भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण के भूतपूर्व संयुक्त महानिदेशक, एवं पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के भूतपूर्व प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष

तथ्यों का निर्वचन वैज्ञानिक है। यह पहला ग्रन्थ है जिसमें प्राचीन वत्स जनपद के राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास का विवेचन समग्र रुप में एवं समीक्षात्मक शैली में किया गया है।

—प्रो० कृष्ण दत्त बाजपेयी
सागर विश्वविद्यालय, सागर, के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के भूतपूर्व टैगोर प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष

इस क्षेत्र के इतिहास एवं संस्कृति पर एक विशद ग्रन्थ अपेक्षित था। लेखक ने यह कार्य बहुत ही सराहनीय ढंग से सम्पादित किया है। भारतीय विद्या के अध्ययन में यह एक महत्त्वपूर्ण योगदान है।

—डा० राम कुमार दीक्षित
लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग के भूतपूर्व प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, तथा कला संकाय के भूतपूर्व अध्यक्ष

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The Author

Dr. SHASHI KANT (b. 1932) had a brilliant academic career, winning S. Vardachariar Gold Medal and Dr. Radha Kumud Mookerji Endowment Scholarship in his University days, and excelling at the Public Service Commissions' examinations. He did M.A. in History in the first division and Diploma in Russian with distinction in 1953, and was awarded Ph.D. by the Lucknow University in 1969.

Since 1952 he has contributed a number of articles on historical and cultural subjects, and initiated discussions, in reputed journals, periodicals and newspapers, Indian as well as foreign, in English and Hindi; participated in seminars and workshops; and himself organised symposia and seminars.

His work – **The Hathigumpha Inscription of Kharavela and the Bhabru Edict of Asoka – A Critical Study**, published in 1971, was widely acclaimed and extensively reviewed in India as well as outside, and it finds a place in the curriculum of the Australian National University and the Magadha University. The only authoritative work on the subject, it has run out of print.

His other work – **Kausambi** (in Hindi), is also out of print.

Presently a Joint Secretary to the Government of Uttar Pradesh, he belongs to that minority of civil servants who combine scholarship with administration, and is a recipient of State honour. Under his direction the Itihasa-Manishi honour for eminent historians was instituted in 1979 by the Ananta-Jyoti Vidyapitha.

An erudite scholar, with a keen sense for sifting the right material, Dr. Shashi Kant combines the artifice of a researcher with fluidity of diction that makes the subject highly intelligible. He seldom sets his pen upon anything unless there is some thing original to contribute.

Address : Jyoti Nikunj, Charbagh, Lucknow–226019 (U.P., India)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mel

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

लेखक

डा० शशि कान्त (ज० १९३२ ई०) एक प्रखर विद्यार्थी थे और विश्वविद्यालय में अध्ययन के समय उन्हें श्रीनिवास वर्दाचारियर स्वर्णपदक तथा डा० राधा कुमुद मुकर्जी इन्डाओमेन्ट स्कालरशिप से सम्मानित किया गया था, और लोक सेवा आयोगों द्वारा आयोजित प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं में उन्होंने सफलता प्राप्त की थी। उन्होंने १९५३ में इतिहास विषय में एम०ए० प्रथम श्रेणी में और रुसी भाषा में डिप्लोमा विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण किये थे, तथा लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें १९६९ में पी-एच० डी० की उपाधि से सम्मानित किया गया था।

१९५२ से ही वह ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर लेख लिखते रहे हैं और उन्होंने लब्ध-प्रतिष्ठ भारतीय एवं विदेशी पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार-पत्रों में अंग्रेजी और हिन्दी में परिचर्चाओं का सूत्रपात किया है, विचारगोष्ठियों में भाग लिया है और स्वयं संगोष्ठियों एवं विचारगोष्ठियों को आयोजित किया है।

खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख और अशोक के भाब्रू लेख के समीक्षात्मक अध्ययन पर १९७१ में उनकी पुस्तक अंग्रेजी में प्रकाशित हुयी थी जिसका विद्वत समाज में प्रभूत समादर किया गया और उसकी समीक्षायें भारत एवं बाहर की पत्र-पत्रिकाओं में विशद रुप से प्रकाशित हुयीं। यह पुस्तक आस्ट्रेलियन नेशनल यूनीवर्सिटी और मगध विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित है। अपने विषय पर प्रामाणिक यह ग्रन्थ अब अनुपलब्ध है।

उनकी दूसरी पुस्तक "कौशाम्बी" हिन्दी में प्रकाशित हुयी थी जो भी अब अनुपलब्ध है।

वर्तमान में वह उत्तर प्रदेश शासन में संयुक्त सचिव के पद पर कार्यरत हैं, और राज्य कर्मचारियों के उस अल्प समुदाय के हैं जो विद्वत्ता एवं प्रशासन का सहयोग करते हैं; उन्हें राज्य सरकार द्वारा सम्मानित भी किया गया है। उनके निर्देशन में विशिष्ट इतिहासकारों को सम्मानित करने हेतु इतिहास-मनीषी सम्मान का प्रारम्भ अनन्त-ज्योति विद्यापीठ द्वारा १९७९ में किया गया था।

सही सामग्री की छानबीन करने की दृष्टि से युक्त डा० शशि कान्त एक तीक्ष्ण विद्वान हैं जो शोधकर्त्ता की क्रिया के साथ शैली की सहजता को संयुक्त करते हैं ताकि विषय अधिकाधिक सुबोध बन सके। वह किसी विषय पर तभी लिखते हैं जब कुछ मौलिक योगदान अपेक्षित होता है।

पता : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ०१९ (उ०प्र०, भारत)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ
Ananta-Jyoti Vidyapitha

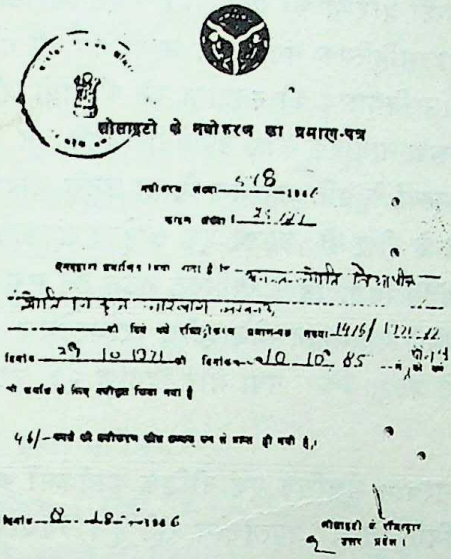

उद्देश्य एवं कार्यक्रम	Objects and Programmes	42
विश्व-जिज्ञासा क्लब	Vishva-Jijnasa Club	46
कान्त बाल केन्द्र	Kant Bal Kendra	48
विद्वान-मनीषी अभिनन्दन	Felicitation of Scholars and Intellectuals	54
प्रवर समिति	Executive Committee	62

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mulabagal

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ

उद्देश्य एवं कार्यक्रम

लखनऊ नगर के कतिपय मनीषी चिन्तकों द्वारा वार्ता, चर्चा, एवं साहित्य के अनुशीलन के माध्यम से बौद्धिक जिज्ञासा की प्रवृत्ति को प्रेरित, व्यवस्थित और परिपुष्ट करने के उद्देश्य से २५ मार्च, १९६१ ई०, को **विश्व-जिज्ञासा क्लब** के नाम से एक गोष्ठी प्रारम्भ की गयी थी। इस गोष्ठी के अंतर्गत विभिन्न सामयिक और सांस्कृतिक विषयों पर चर्चायें तथा साहित्यिक संगोष्ठियां आयोजित की गयीं। २३ जुलाई, १९७० ई०, को **कान्त बाल केन्द्र** के नाम से एक बाल विद्यालय की स्थापना भी की गयी और उसमें इस बात पर विशेष आग्रह रखा गया कि हमारे बच्चे जागरूक नागरिक और उपयोगी मानव बन सकें, उनमें अपनी भाषा और संस्कृति के लिये गर्व हो, और नैतिक मूल्यों के प्रति अपेक्षित निष्ठा उनके चरित्र का सहज अंग बन जाये। जो भावना इन कार्यक्रमों को प्रारम्भ करने के पीछे थी, उसको एक सोद्देश्य संस्थागत रूप देने की दृष्टि से दिनांक ६ अक्तूबर, १९७१ ई०, को **अनन्त-ज्योति विद्यापीठ** के विधिवत गठन हेतु एक ज्ञापन तैयार किया गया और उसमें १५-सूत्रीय उद्देश्य स्थिर किये गये। यह ज्ञापन सोसाइटीज़ रजिस्ट्रेशन ऐक्ट के अधीन पंजीकरण हेतु समितियों के निबंधक, उत्तर प्रदेश, को प्रस्तुत किया गया और दिनांक २९ अक्बतूर, १९७१ ई०, को निबंधन सम्पन्न हुआ।

विद्यापीठ के विधिवत गठन के पश्चात शैक्षणिक एवं बौद्धिक कार्यक्रमों को एक सुनियोजित आयाम देने के लिये अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति निरंतर प्रयत्नशील रही है। विद्यापीठ के उद्देश्य विशद हैं, और वह शिशु स्तर से शोध स्तर तक के बौद्धिक क्रियाकलापों को आवृत्त करते हैं। संस्थापकों का यह मूल आग्रह है कि विद्यापीठ के क्रियाकलाप धन अथवा सत्ता से प्रभावित नहीं होंगे, और शिक्षा, शोध, चिन्तन, साहित्य एवं कला के क्षेत्र में राष्ट्रीय अपेक्षाओं एवं अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना तथा विशुद्ध मानवीय मूल्यों के आधार से नये प्रतिमान प्रस्तुत करेंगे।

कान्त बाल केन्द्र के नाम से जो विद्यालय स्थापित किया गया है उसमें उपरोक्त भावना के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का माध्यम हिन्दी रखा गया है। अंग्रेजी भाषा अनिवार्य विषय है और उसका स्तर भी वही है जो तथाकथित अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में होता है, परन्तु 'इंगलिश मीडियम' इस स्कूल में नहीं थोपा गया है। नैतिक शिक्षा, सुलेख, सांस्कृतिक अभिरुचि और स्वाभिमान एवं अनुशासन पर आग्रह है। यह संताप का विषय है कि जनता का वह वर्ग जो सम्पन्न है और स्वयं को प्रबुद्ध कहलाना चाहता है, शिक्षा के इस प्रकार के पक्ष में नहीं है वरन् वह अपने बच्चों को ऐसी संस्थाओं में भेजने के लिये आतुर रहता है जहां शुद्ध व्यवसायिकता के आधार पर और ऐसे वातावरण में शिक्षा दी जाती है जहां राष्ट्रीय चेतना तथा सांस्कृतिक मूल्यों का स्खलन होता है और अभिभावकों को अवहेलना एवं अवमानना भी सहनी होती है।

१२ फरवरी, १९७९ ई०, को विद्यापीठ द्वारा विद्वान-मनीषियों के अभिनन्दन का एक विशिष्ट कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। यह निश्चय किया गया कि इतिहास की शोध के साधक विद्वानों को **इतिहास-मनीषी** के सार्थक विशेषण से सम्मानित किया जाये और इतिहास-मंजूषा एवं शाल तथा श्रीफल भेंट करके उनका अभिनन्दन किया जाये। इस अभिनन्दन के लिये अर्हता के निम्नलिखित मापदण्ड निर्धारित किये गये: अभिनन्दनीय विद्वान भारतीय मनीषा के ऐसे विशिष्ट प्रतिनिधि हों जिनका समस्त जीवन इतिहास शोधन में लगा हो, जो

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

वयोवृद्ध हों, जिनका कृतित्व विशद भी हो और सारभूत भी हो, जिनका व्यक्तित्व प्रेरणादायक हो, और जो वृद्ध-वय में भी शोध कार्य एवं साहित्य साधना में स्वान्त: सुखाय लगे हों। इस योजना की विशिष्टता यह निर्धारित की गयी कि यह विद्वानों का विद्या-प्रेमियों द्वारा सम्मान किये जाने का आयोजन हो जिसमें धन और सत्ता के व्यामोह से परे विशुद्ध स्नेह और गुणानुराग का आधार हो। १२ फरवरी, १९७९ ई०, को प्रथम अभिनन्दन समारोह आयोजित किया गया और उसमें भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के वयोवृद्ध अधिकारी विद्वान डा० ज्योति प्रसाद जैन और डा० राम कुमार दीक्षित को सम्मानित किया गया। १२ फरवरी, १९८२ ई०, को द्वितीय अभिनन्दन समारोह में प्रोफ़ेसर चरन दास चटर्जी, डा० बहादुर चन्द छाबड़ा और प्रोफ़ेसर कृष्ण दत्त बाजपेयी को सम्मानित किया गया।

विद्यापीठ के उद्देश्य मात्र इतिहास तक ही सीमित नहीं हैं, अत: प्रवर समिति द्वारा यह निश्चय किया गया कि अन्य विषयों के विद्वानों एवं अन्य मनीषियों को भी विद्यापीठ द्वारा सम्मानित किया जाना चाहिये तथा उदीयमान प्रतिभाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। यह भी निश्चय किया गया कि भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रति समर्पित विदेशी विद्वानों का भी सम्मान किया जाये। तदनुसार इस वर्ष इतिहास-मनीषी-सम्मान के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट मनीषियों का अपने-अपने क्षेत्र में विशिष्ट उपलब्धियों के लिये अभिनन्दन किया जा रहा है और उदीयमान प्रतिभाओं की अभिशंसा की जा रही है, तथा दो विदेशी विद्वानों को भी सम्मानित किया जा रहा है।

विद्यापीठ के अभीप्सित भावी कार्यक्रम :—

१- इतिहास पर एक द्वैभाषिक (हिन्दी एवं अंग्रेजी) जर्नल का प्रकाशन जो वर्तमान में इतिहास विषयक किसी स्तरीय पत्रिका के अभाव को पूरा करने में उपयोगी हो; प्रस्तुत अंक उसका प्रवेशांक है।

२- भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व, कला एवं संस्कृति से संबंधित शोध साहित्य की पंचवर्षीय संदर्भ-सूची का प्रणयन एवं प्रकाशन जो द्वैभाषिक (हिन्दी-अंग्रेजी) होगी और पांच वर्ष की निर्दिष्ट अवधि में प्रकाशित सम्पूर्ण सामग्री को संदर्भित करेगी।

३- इतिहास, संस्कृति, साहित्य, कला और पुरातत्त्व से सम्बंधित शोध प्रायोजनाओं पर मार्गदर्शन, जिसके लिये भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं तद्प्रभृति संस्थाओं से सम्बद्धता प्राप्त की जायेगी।

४- इतिहास-मनीषी विद्वानों के कृतित्व के वर्गीकृत संकलन का सम्पादन एवं प्रकाशन जिसके अन्तर्गत डा० ज्योति प्रसाद जैन के अंग्रेजी में शोध-पत्रों का संकलन सम्प्रति प्रकाश्य है।

५- शोध-परक ग्रन्थों का प्रणयन, सम्पादन और प्रकाशन जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित ग्रन्थ सम्प्रति प्रकाश्य हैं : डा० शशि कान्त कृत— **संस्कृति के आयाम**, और A Critique on India, तथा उनके द्वारा सम्पादित- Mahavira-Jainism-Ahimsa; एवं डा० (श्रीमती) बीना जैन का शोध-प्रबन्ध- Guild Organisation in Northern India.

६- विद्यापीठ के उद्देश्यों के अनुरूप विद्यालयों का प्रसार जिसके अन्तर्गत गोमती-पार क्षेत्र में एक बाल विद्यालय विचाराधीन है।

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mulabagal

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ANANTA-JYOTI VIDYAPITHA
Objects & Programmes

An association under the name of Vishva-Jijnasa Club was started by some intellectuals of the city of Lucknow on March 25, 1961, with a view to promote, regulate and inspire intellectual curiosity through talks, discussions and studies. Discussions were held on various topical and cultural topics and literary sittings were also held. An infants' school under the name of Kant Bal Kendra was also set up on July 23, 1970, with the emphasis that our children may develop into awakened citizens and useful human beings, they should have legitimate pride in their language and culture, and sincerity to the moral values should be a natural part of their character. With a view to give a purposive institutional form to the objects underlying the initiation of these programmes a memorandum was prepared for the formal constitution of the Ananta-Jyoti Vidyapitha on Oct. 6,1971, and 15-point objects were defined in it. The memorandum was presented to the Registrar of Societies, Uttar Pradesh, for registration under the Societies Registration Act, and the society was duly registered on Oct. 29, 1971.

Since the formal constitution of the Vidyapitha, the Ananta-Jyoti Vidyapitha Executive Committee has been endeavouring to give a well organised form to its educational and intellectual programmes. The objects of the Vidyapitha are wide and they cover educational and intellectual activities from the infant stage to the research stage. The primary insistence of the founders is that the activities of the Vidyapitha will not be influenced by money or authority, and they will set new standards in the field of education, research, thought, literature and art on the basis of national requirements and international good-will, as also pure human values.

In view of the above objective the medium of education is Hindi and cultural environment is purely Indian in the school set up under the name of 'Kant Bal Kendra'. English is a compulsory subject and its standard is also similar to that in the so-called English medium schools but the English medium has not been imposed in this school. There is emphasis on moral education, hand-writing, cultural background, self-respect and discipline. It is a matter of concern that many of those who are well-off and deem themselves to be enlightened are not in favour of such education, instead they are eager to send their children to such institutions where education is imparted on purely commercial lines and in an atmosphere where national spirit and cultural values are dissipated and the guardians have also to suffer indifference and humiliation.

The Vidyapitha started a specific programme to felicitate scholars and intellectuals on Feb. 12, 1979. It was decided that the scholars devoted to research on history should be honoured with the meaningful appellation of Itihasa-Manishi and should be felicitated by presenting the Itihasa-Manjusha, shawl and coconut. The following criteria were laid down for eligibility : the scholar should be a distinguished representative of Indian

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

intelligentsia who has devoted all his life to research pertaining to history, who is elderly, whose work is vast as well as substantial, whose personality can be a source of inspiration, and who is engaged in research work and studies even at the elderly age for the very pleasure of it. The distinguishing feature of this programme was laid down that it should be an act of giving honour to the scholars by the lovers of learning on the basis of pure affection and appreciation of virtue, without being tainted with the power of money or authority. At the first felicitation programme held on Feb. 12, 1979, Dr. Jyoti Prasad Jain and Dr. Ram Kumar Dikshit, reputed authorities on Indian history and culture, were accorded this honour. At the second felicitation programme held on Feb. 12, 1982, Prof. Charan Das Chatterjee, Dr. Bahadur Chand Chhabra and Prof. Krishna Dutt Bajpai were accorded this honour.

The field of the Vidyapitha is not restricted to history alone and therefore the Executive Committee decided that scholars and intellectuals in other disciplines should also be honoured by the Vidyapitha and upcoming talents should be duly encouraged. It was also decided that foreign scholars devoted to the study of Indian history and culture, should also be honoured. Accordingly, this year, besides conferring the honour of Itihasa-Manishi, intellectuals in other disciplines are also being honoured for distinguished contribution in their respective field and new talents are being given appreciation for their specific achievements, and two foreign scholars are also being honoured.

The sought-after future programmes of the Vidyapitha are :—

1. Publication of a bilingual journal (Hindi and English) on History, which should make up for the deficiency of a standard journal on history; the instant issue is its introductory number.
2. Preparation and publication of quinquennial bibliography of Indian history, art, archaeology and culture; it will be in Hindi and English, and will give a reference index of all the published material during a specified period of 5 years.
3. Guidance on research projects pertaining to history, culture, literature, art and archaeology; affiliation will be sought from the Indian Council of Historical Research, University Grants Commission, and similar authorities.
4. Editing and publication of classified compilation of the works of scholars who are honoured as Itihasa-Manishi; to begin with, a collection of Dr. J. P. Jain's research papers in English will be published.
5. Preparation, editing and publication of research-oriented works; the following works will be shortly published :— 'संस्कृति के आयाम' and 'A Critique on India', written by Dr. Shashi Kant, and 'Mahavira-Jainism-Ahimsa', edited by him, and 'Guild Organisation in Northern India', the thesis of Dr. (Mrs.) Beena Jain.
6. Opening of schools in conformity with the Vidyapitha objectives; one more infants' school will be opened, preferably in the trans-Gomti area.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

विश्व-जिज्ञासा क्लब

क्लब की प्रथम बैठक २५ मार्च, १९६१, को हुई थी। इसका उद्देश्य बौद्धिक जिज्ञासा को जागृत करना था और उसमें किसी भी विषय पर चर्चा किये जाने पर प्रतिबन्ध नहीं था। जिन वक्ताओं ने वार्तायें दी उनमें डा० श्यामलाल पाण्डेय, श्री अमृतलाल नागर, डा० हर्ष नारायन, डा० राम सुशील सिंह, डा० ज्योति प्रसाद जैन, श्री आनन्द झा, डा० (श्रीमती) सरला शुक्ला, कु० मालती चटपार, श्री ई० टी० पिन्च, श्री रामगोपाल, श्री श्रीराम श्रीवास्तव, फ़ादर लियो डिसूज़ा और डा० शशिकान्त उल्लेखनीय हैं। जिन विषयों पर चर्चा की गयीं उनमें निम्नलिखित विषय उल्लेखनीय हैं :

१- मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं को सीखने की आवश्यकता,
२- एकता की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि,
३- विविधता में एकता,
४- भारतीय संस्कृति का त्रैविध्य,
५- भारतीय संस्कृति में जैनधर्म,
६- भारतीय संस्कृति में सूफ़ी विचारधारा,
७- भारतीय भौतिकवाद,
८- उत्तरी सीमान्त के निर्धारक प्राचीन आश्रम,
९- वेश्यावृत्ति - कारण और निदान,
१०- नारी की अदृष्यता,
११- अहिंसा की उपादेयता,
१२- संयुक्त राज्य अमरीका में सामाजिक जनतंत्र,
१३- पाकिस्तान की समस्या,
१४- स्वास्थ्य चर्चा,
१५- नक्षत्रों का प्रभाव, और
१६- साहित्य में चन्द्रमा के संबंध में परिकल्पनायें।

कुछ बैठकों में लघु कथाओं और हिन्दी एवं उर्दू में काव्य रचनाओं के रूप में रचनात्मक साहित्य भी प्रस्तुत किया गया। काव्य गोष्ठियों में भाग लेने वालों में सर्वश्री बलवीर सिंह 'रंग', प्रसन्न कुमार दीक्षित 'शेखर', दुलारेलाल भार्गव, जगदीश प्रसाद सक्सेना 'पंकज', श्यामनारायन गुप्ता, अब्दुलसत्तार खाँ 'बेदिल', इफ्तिखार आजमी, बशीर फारुकी, सुरेश कुमार, देवेन्द्र मुर्ति, उमर अन्सारी, रमाकान्त जैन, राजीवकान्त, श्रीमती गिरजा देवी 'निर्लिप्त', डा० केशरी किशोर, डा० शशिकान्त, डा० मलिक ज़ादा मन्ज़ूर और डा० बली-उल-हक़ अन्सारी के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्री श्रीराम श्रीवास्तव, डा० श्याम लाल पाण्डेय, श्री दुलारेलाल भार्गव, श्री जगदीश प्रसाद सक्सेना 'पंकज', श्री बलवीर सिंह 'रंग' और डा० केशरी किशोर का इस बीच निधन हो गया है। विद्यापीठ प्रवर समिति उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजली अर्पित करती है तथा बौद्धिक संस्कृति में अभिरुचि के लिये सभी महानुभावों जिन्होंने चर्चा और गोष्ठियों में भाग लिया, के प्रति अपना आभार प्रकट करती है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Vishva-Jijnasa Club

The club had its first sitting on March 25, 1961. Its object was to whet intellectual curiosity, and there was no embargo on any subject for discussion. The speakers included Dr. S. L. Pandey, Mr. Amrit Lal Nagar, Dr. Harsh Narain, Dr. Ram Sushil Singh, Dr. J. P. Jain, Mr. Anand Jha, Dr. (Mrs.) Sarla Shukla, Miss Malti Chatpar, Mr. E. T. Pinch, Mr. Ram Gopal, Mr. S. R. Srivastava, Fr. Leo De Souza and Dr. Shashi Kant. Some of the subjects discussed were :—

1- Need to learn other Indian languages besides the mother-tongue,
2- Cultural background of unity,
3- Unity in diversity,
4- The triad of Indian culture,
5- Jainism in Indian culture,
6- Sufi thought in Indian culture,
7- Indian materialism,
8- Ancient Ashramas as determinant of northern frontiers,
9- Prostitution - its causes and cure,
10- Incorruptibility of woman,
11- Utility of non-violence,
12- Social democracy in the USA,
13- The problem of Pakistan,
14- Way to health,
15- The influence of stars, and
16- Imageries about moon in literature.

In some of the sittings creative literature in the form of short stories and poetry in Hindi and Urdu was presented. The participants in the poetic symposia included Messrs, B. S. 'Rang', P. K. Dikshit 'Shekhar', Dulare Lal Bhargava, J. P. Saxena 'Pankaj', S. N. Gupta, A. S. Khan 'Bedil', Iftikhar Azmi, Bashir Farooki, Suresh Kumar, Devendra Muni, Umar Ansari, R. K. Jain, Rajiv Kant, Mrs. Nirlipt, Dr. K. Kishore, Dr. Shashi Kant, Dr. M. Manzoor and Dr. W. H. Ansari.

Mr. S. R. Srivastava, Dr. S. L. Pandey, Mr. Dulare Lal Bhargava, Mr. J. P. Saxena 'Pankaj', Mr. B. S. 'Rang' and Dr. K. Kishore are no longer with us. The Vidyapitha Pravara Samiti takes this opportunity to pay its humble tributes to their memory, and to thank all the participants for their interest in intellectual culture.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri. Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

कान्त बाल केन्द्र

चारबाग, लखनऊ, में इस मान्टेसरी-प्राइमरी स्कूल की स्थापना 'ज्योति निकुञ्ज' में २३ जुलाई, १९७०, को की गयी थी। इसका आशय शिक्षा के व्यवसाय में एक और मान्टेसरी दुकान बढ़ाना नहीं था वरन् इसका उद्देश्य विद्यापीठ के उद्देश्यों के अनुरुप शिक्षा के क्षेत्र में नये प्रतिमान प्रस्तुत करना था। इसका मुख्य उद्देश्य हमारे बच्चों में भारतीयता के प्रति गौरव की भावना विकसित करना और उनमें एक स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक के योग्य अपनी संस्कृति के प्रति आत्म-सम्मान की भावना प्रतिस्थापित करना है।

स्कूल एक बड़े भवन में स्थित है, जिसमें काफी खुली जगह है और एक वाटिका भी है, और यह सुसज्जित है। यह व्यवस्थित रुप से संगठित है और प्री-प्राइमरी तथा प्राइमरी शिक्षा के क्षेत्र में जो भी व्यवस्था नगर के किसी भी उच्चकोटि के स्कूल में सम्भव है वह यहाँ है। इस सबका श्रेय प्रधानाध्यापिका श्रीमती मंजरी जैन और उनकी साथी अध्यापिकाओं को जाता है।

इस विद्यालय में अंग्रेजी भाषा का माध्यम नहीं लागू किया गया है क्योंकि वह राष्ट्रीय भावना के विपरीत है, यद्यपि मान्टेसरी कक्षा से ही अंग्रेजी पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग है। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है और हमारे बच्चों को उसका आदर करना तथा उसमें सशक्त एवं सहजता के साथ अभिव्यक्ति सामर्थ्य सम्पादित करना, सीखना आवश्यक है।

विशिष्टतायें :-

१- कक्षा में शिशुओं की संख्या २५ रखी गयी है।
२- पाठ्यक्रम इस प्रकार नियोजित किया गया है कि स्थानान्तरण की दशा में शिशुओं को कठिनाई न हो।
३- प्रत्येक शिशु पर व्यक्तिगत ध्यान दिया जाता है और इस उद्देश्य से डायरी की व्यवस्था की गयी है।
४- सुवाच्य लेखन पर बल बिया जाता है; सुलेख प्रतियोगितायें प्रतिवर्ष आयोजित की जाती हैं और पुरस्कार दिये जाते हैं।
५- बाल सभा के माध्यम से जनतांत्रिक भावना को विकसित किया जाता है।
६- सांस्कृतिक कार्यों में अभिरुचि जागृत की जाती है।
७- आचरण द्वारा नैतिक मूल्यों को सहज करने पर बल दिया जाता है।
८- स्वतन्त्रता दिवस तथा गणतन्त्र दिवस को विशेष समारोहपूर्वक आयोजिन करके राष्ट्रीय भावना को पुष्ट किया जाता है।

प्रतिष्ठित शिक्षाविद्, सहित्यकार और प्रशासकों को विद्यालय में आमंत्रित किया गया है और उन्होंने शिशुओं को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान किया है। इन महानुभावों में भारतीय-सेना के ब्रिगेडियर के० पी० दुबे और ले० क० डा० ज्ञानेन्द्र चन्द्र जैन; उ० प्र० शिक्षा विभाग के श्रीमती आशा श्रीवास्तव, श्रीमती विद्या अवस्थी और श्री श्रवण कुमार श्रीवास्तव; आकाशवाणी के श्री गौरा सेन और श्रीमती चन्द्र किरण सोनरेक्सा; दूरदर्शन के श्री रफीक खान; श्री रामगोपाल (सदस्य, विधान परिषद), डा० दाऊ जी गुप्त (नगर प्रमुख), श्रीमती ब्रज कुमारी

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

मुल्ला, (अध्यक्ष, राज्य समाज कल्याण परामर्शदात्री परिषद); शिक्षाविद् श्रीमती स्वरुप कुमारी बख्शी, डा (कु०) साबिरा हबीब, डा० (श्रीमती) उषा गुप्ता, डा० श्यामलाल पाण्डेय, कु० संतोष दत्त, डा० (श्रीमती) प्रेमवती, डा० पुरु दधीचि, भिक्षु के० चन्द्र रत्न, डा० रमेश चन्द्र शर्मा, श्रीमती हेना बाजपेयी, डा० लक्ष्मी शंकर मिश्र 'निशंक', श्रीमती प्रेमप्यारी श्रीवास्तव और श्रीमती प्रियम्वदा त्रिवेदी; कलाकार श्री रमेश चन्द्र साथी; साहित्यकार श्रीमती शशि जैन और श्रीमती निर्मला साथी; उच्च न्यायिक सेवा के श्री श्रीनाथ सहाय और श्री अखिलेश्वर नाथ गुप्ता; तथा प्रशासनिक सेवाओं के सर्वश्री शांति प्रकाश जैन, रामअधीन सक्सेना, श्याम मोहन श्रीवास्तव, सत्याचरण श्रीवास्तव, रामसरन सक्सेना, नरेश चन्द्र जैन, अजित प्रसाद जैन, कमल किशोर मिश्रा और रमेश चन्द्र रस्तोगी, उल्लेखनीय हैं।

श्री गोरा सेन, श्रीमती शशि जैन, श्री रामअधीन सक्सेना और श्री श्याम मोहन श्रीवास्तव का इस बीच निधन हो गया है। विद्यापीठ प्रवर समिति उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती है। समिति उन सभी अभिभावकों के प्रति जिन्होंने अपने बच्चों की शिक्षा का दायित्व हमें सौपा, उन सभी अध्यापिकाओं और अन्य कर्मचारियों के प्रति जिन्होंने समय-समय पर निष्ठापूर्वक कार्य किया, और उन सभी सम्माननीय महानुभावों के प्रति जिन्होंने विद्यालय के समारोहों के लिये अपना बहुमूल्य समय दिया, अभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझती है। इस विद्यालय के कुछ शिशुओं ने माध्यमिक शिक्षा परिषद की परीक्षाओं में तथा विश्वविद्यालय की परीक्षाओं और प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं में सराहनीय स्थान प्राप्त किये हैं, और वे सब भी हमारी बधाई के पात्र हैं।

कान्त बाल केन्द्र के शिशुओं ने आकाशवाणी से प्रसारित बच्चों के कार्यक्रम में भी भाग लिया है। फरवरी १९८२ में राज्य संग्रहालय के सौजन्य से भारतीय इतिहास शिक्षण प्रदर्शनी का आयोजन भी विद्यालय में किया गया था। प्रागऐतिहासिक काल से १२०० ई० तक का भारत का इतिहास प्रतिनिधि पुरावशेषों के माध्यम से इस प्रकार प्रदर्शित किया गया था कि देखने वालों में इतिहास के प्रति अभिरुचि जागृत हो। संग्रहालय के सहायक निदेशक श्री शैलेन्द्र रस्तोगी और गाइड लेक्चरर श्री शिव बिलास बाजपेई ने स्कूली बच्चों तथा सामान्य जनता को इन पुरावशेषों का महत्त्व स्पष्ट किया। श्री राजीवकान्त जो इस विद्यालय के ही पूर्व-कालीन छात्र थे, ने डाक टिकटों और सिक्कों का अपना संग्रह भी प्रदर्शित किया जो भी दर्शकों के लिये विशेष रुचि का था। चारबाग क्षेत्र में स्थित सभी स्कूलों के विद्यार्थियों और अध्यापकों ने इस प्रदर्शनी से लाभ उठाया।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

इतिहास-शिक्षण प्रदर्शनी ६-१० फरवरी, १९८२
The History Educational Exhibition Feby. 6-10, 1982

प्रागैतिहासिक पाषाण-युग और सिन्धु घाटी की सभ्यता के पुरावशेष
The antiquities of the pre-historic Stone Age and Indus Valley Civilisation

डाक-टिकट और सिक्कों का संग्रह; दाहिने संग्रहकर्त्ता राजीव कान्त
The Philatelic and Coin Collection; the collector Rajiv Kant is on extreme right

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

गणतन्त्र दिवस १९८७ पर शिशुओं द्वारा प्रस्तुत सांस्कृतिक कार्यक्रम
Cultural Programme by the pupils on Republic Day 1987

विभिन्न प्रादेशिक वेशभूषा में राष्ट्रीय एकता का भाव 'सबसे पहले हम हिन्दुस्तानी हैं' प्रस्तुत करते हुए
Donning different regional costumes, the tiny-tots are depicting the national integration theme - We are Indians first.

'एकता ही शक्ति है' भाव पर रूपक को प्रस्तुत करते हुए Presenting the feature - Unity is strength

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Kant Bal Kendra

This Montessori-Primary School was opened on July 23, 1970, in Jyoti Nikunj at Charbagh, Lucknow. It was not to add one more montessori shop to the trade of education, but it was to set up new norms in the field of education in accordance with the objects of the Vidyapitha. Its primary object was to develop in our children a sense of pride about things Indian and to inculcate in them the spirit of self-respect for their culture as behoves the citizens of a sovereign nation.

The school is housed in a commodious building with enough open space and a garden, and is well furnished. It is systematically organised and gives all that the best school in the city can provide in the field of pre-primary and primary education. For this the credit goes to the Head-Mistress Mrs. Manjari Jain and her team of teachers.

English medium has not been introduced in this institution as it militates against the national spirit, although English is taught from the Montessori standard. Hindi is our national language and our children must learn to respect it and to express themselves forcefully, and with ease, in it.

Important features :

1- The number of pupils in a class is restricted to 25.
2- The courses are so devised that the pupils may not face difficulty on transfer.
3- Individual care is given to each pupil, and diary system has been introduced for the purpose.
4- Emphasis is given on developing good hand-writing; annual competitions are held and prizes awarded.
5- Democratic spirit is developed through Bal Sabha.
6- Interest is created in cultural activities.
7- Stress is laid on cultivating moral values through practice.
8- National spirit is cultivated by celebrating the Independence Day and Republic Day with great eclat.

Prominent academicians, literateurs and administrators have visited the school, and given inspiration and encouragement to the pupils. The visitors include: Brig. K. P. Dube and Lt. Col. Dr. J C. Jain, from the Armed Forces; Mrs. Asha Srivastava, Mrs. Vidya Awasthi and Mr. S. K. Srivastava, from the Uttar Pradesh Education Department; Mr. Gora Sen and Mrs. C. K. Sonreksa, from the All India Radio; Mr. Rafiq Khan, from the Doordarshan; Mr. Ram Gopal (MLC), Dr. Dauji Gupta (Mayor), Mrs. B. K. Mulla (Chairman, State Social Welfare Advisory Board); Academicians : Mrs. S. K. Bakshi, Dr. (Ms.) S. Habib, Dr. (Mrs.) Usha Gupta, Dr. S. L. Pandey, Km. S. Dutt, Dr. (Mrs.) Premvati, Dr. P. Dadhichi, Bh. K. Chandraratna, Dr. R. C. Sharma, Mrs. Hena Bajpai,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. L. S. Mishra 'Nishank', Mrs. P. P. Srivastava and Mrs. Priyamvada Trivedi; Artist: Mr. R. C. Sathi; Litterateurs: Mrs. Shashi Jain and Mrs. Nirmala Sathi; Mr. S. N. Sahai and Mr. A. N. Gupta, from the Higher Judicial Service; and Messrs. S. P. Jain, R. A. Saksena, S. M. Srivastava, S.C. Srivastava, R.S. Saxena, N.C. Jain, A. P. Jain, K. K. Misra and R. C. Rastogi, from the Administrative Services.

Mr. Gora Sen, Mrs. Shashi Jain, Mr. R. A. Saksena and Mr. S M. Srivastava, are no longer with us. The Vidyapitha Pravara Samiti takes this opportunity to pay its humble tributes to their memory. It also deems its duty to thank all the guardians who trusted us with the care of their wards, the teachers and other staff who faithfully served from time to time, and all the respected visitors who spared their time for the functions of the school. Some of its pupils have made their mark at the Board examinations, University examinations and competitive examinations, and they all deserve our congratulations.

The pupils of Kant Bal Kendra have been on the AIR in the Children's Programme. The Indian History Educational Exhibition was also arranged in the school in February 1982 by courtesy of the State Museum. The history of India from pre-historic times to 1200 A.D. was shown through representative antiquities in a way that it may arouse the curiosity of the viewer in history. Mr. Shailendra Rastogi, Assistant Director, and Mr. S. B. Bajpai, Guide Lecturer, of the Museum, explained it to the school children and general public. Mr. Rajiv Kant, an ex-pupil, also exhibited his collection of postage stamps and coins which was also of much interest to the visitors. The students and teachers of the schools of Charbagh area benefitted from this exhibition.

कान्त बाल केन्द्र की अध्यापिकायें और कर्मचारी
Teachers and servants of the Kant Bal Kendra

प्रथम पंक्ति : कु० किरन लता सिंह, कु० ममता तलवाड़, श्रीमती मंजरी जैन (प्रधानाध्यापिका), श्रीमती सुधा पंडित, कु० मीरा राय
द्वितीय पंक्ति : श्रीमती मीना चटर्जी, कु० रेशमा परवीन, श्रीमती नीलम रानी, कु० उषा मिश्रा
नीचे बैठी : आया श्रीमती जमुना और श्रीमती बिसुन देई

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R...

Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

विद्वान-मनीषी अभिनन्दन

प्रथम अभिनन्दन समारोह दिनांक १२ फरवरी, १९७९, को विद्यापीठ के मुख्यालय ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में सम्पन्न हुआ था। इसमें वरिष्ठ मनीषी तथा भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के अधिकारी विद्वान डा० ज्योति प्रसाद जैन और डा० राम कुमार दीक्षित को उनके जीवनभर ऐतिहासिक अध्ययन एवं शोध के प्रति समर्पित कार्य तथा सारभूत योगदान के लिये **इतिहास-मनीषी** सम्मान से सम्मानित किया गया था। समारोह की अध्यक्षता राज्य संग्रहालय के तत्कालीन निदेशक डा० नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी ने की थी। अभिनन्दनीय विद्वानों को पारम्परिक भारतीय शैली में प्रशस्ति-पट्ट, इतिहास-मंजूषा, शाल और श्रीफल भेंट किये गये थे।

श्री रमा कान्त जैन ने 'डा० ज्योति प्रसाद जैन कृतित्व-परिचय' पुस्तक डा० जैन को समर्पित एवं भेंट की। श्री सतीश द्विवेदी ने इतिहास-मनीषी और इतिहास-मंजूषा का महत्त्व स्पष्ट किया। मास्टर राजीव और कु० शेफाली ने ऐतिहासिक प्रक्रियाओं पर कविता प्रस्तुत की। कु० सुप्रिया चौधरी, शिखा घोष, इन्दुबाला और अलका कान्त ने संगीत प्रस्तुत किया।

डा० शशि कान्त ने इतिहास-मनीषी सम्मान के लिये विद्वानों के चयन के लिए मापदन्डों का निरुपण किया, और बताया कि डा० ज्योति प्रसाद जैन और डा० राम कुमार दीक्षित उक्त मापदन्डों को समुचित रुप से पूरा करते हैं क्योंकि वे भारेतीय मनीषा के अति विशिष्ट प्रतिनिधि हैं. उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन इतिहास के अध्ययन और शोध के प्रति समर्पित किया है, वे वयवृद्ध हैं, अपने क्षेत्र में उनका कार्य विशद भी है और सारभूत भी है, तथा उनका व्यक्तित्व प्रेरणा का स्रोत है क्योंकि वे इस वृद्धवय में भी अपने कार्य के प्रति समर्पित हैं। सर्वप्रथम उनकी ओर ध्यान आकर्षित होने की हेतु यह भी है कि लखनऊ उनके प्रति विशेष रुप से ऋणी है क्योंकि विगत ४० वर्षों से वह उनका कार्यस्थल रहा है, और विद्यापीठ के प्रति उनका विशेष अनुराग है तथा उनके आशीर्वाद एवं प्रेरणा के आश्रय से वह अपने उद्देश्यों के कार्यान्वयन में सक्रिय है। उन्होंने यह भी बताया कि इस अभिनन्दन कार्यक्रम की विशिष्टता इस तथ्य में निहित है कि यह विद्या के प्रेमियों द्वारा विशुद्ध स्नेह तथा गुणानुराग के आधार पर विद्वानों का सम्मान करने के लिए आयोजित किया गया है और यह धन अथवा राजनीति या शासन-तंत्र की सत्ता से प्रभावित नहीं है। उन्होंने प्रशस्ति का वाचन भी किया।

डा० रामनारायन मिश्रा, डा० किरन कुमार थपलियाल, डा० शिवनन्दन मिश्रा, डा० (श्रीमती) सरला शुक्ला, श्री ज्ञानचन्द जैन, पं० रामचरित पाण्डेय, डा० महावीर प्रसाद जैन, श्री नर्बदेश्वर चतुर्वेदी, श्री सुमेर चन्द पाटनी, श्री सलेक चन्द जैन, श्री नरेश चन्द्र जैन, श्री अजित प्रसाद जैन और श्री प्रसन्न कुमार दीक्षित ने विद्वत्द्वय के प्रति अपने भावभीने श्रद्धा-सुमन अर्पित किये।

डा० जोशी ने कहा कि डा० जैन और डा० दीक्षित जीवित विश्वकोष हैं जो प्राचीन साहित्य एंव कला के मर्मज्ञ तो हैं ही, आधुनिक शोधों से भी सुपरिचित हैं। उन्होंने यह भी कहा कि विद्वानों की इस सभा में उनको सम्मानित कर वास्तव में लखनऊ के विद्वत्ता एंव ज्ञान के प्रेमी स्वयं को सम्मानित कर रहे हैं। डा० जैन और डा० दीक्षित ने भाव-विह्वल वाणी से अभिनन्दन स्वीकार किया और यह आशीर्वाद दिया कि ज्ञान तथा शोध के पिपासु अपने प्रयास में सफल होवें और विद्वत्ता के कोष में अभिवृद्धि करते रहें।

द्वितीय अभिनन्दन समारोह दिनांक १२ फरवरी, १९८२, को बाल-रवीन्द्रालय में सम्पादित हुआ। प्रो० चरन दास चटर्जी, डा० बहादुर चन्द छाबड़ा और प्रो० कृष्ण दत्त बाजपेयी को ऐतिहासिक अध्ययन एवं शोध के प्रति उनके जीवन पर्यन्त समर्पण तथा सारभूत योगदान के लिये इतिहास-मनीषी सम्मान से सम्मानित किया गया। समारोह की अध्यक्षता डा० ज्योति प्रसाद जैन ने की।

प्रो० चटर्जी का अभिनन्दन पारम्परिक भारतीय शैली में प्रशस्ति-पट्ट, इतिहास-मंजूषा, शाल और श्रीफल भेंट कर किया गया। डा० छाबड़ा और प्रो० बाजपेयी अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण उपस्थित नहीं हो सके तथा उन्हें भेंट-वस्तुयें बाद में प्रदान की गयीं।

डा० शशि कान्त ने अभ्यागतों का स्वागत किया और प्रशस्ति का वाचन किया। श्री रमा कान्त जैन ने इतिहास-मनीषी और इतिहास मंजूषा के महत्त्व को स्पष्ट किया। कु० अल्का और शेफाली ने इतिहास का

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

काव्यात्मक निरूपण किया। कु० सुतपा मुकर्जी, देवी मुकर्जी और श्रीमती उषा राय ने संगीत प्रस्तुत किया, तथा कान्त बाल केन्द्र के शिशुओं ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। श्रीमती शाहीन सुल्ताना ने ग़ज़ल प्रस्तुत कीं। डा० अमर पाल सिंह ने आभार व्यक्त किया।

डा० बीरेश्वर नाथ श्रीवास्तव, डा० शिवनन्दन मिश्रा, डा० रमेश चन्द्र शर्मा, डा० जगदम्बा प्रसाद सिन्हा, भिक्षु ग० प्रज्ञानन्द, श्री जगदीश प्रसाद मिश्रा और श्री विद्युत बरन सरकार ने प्रो० चटर्जी के प्रति भाव-भीने श्रद्धा-सुमन अर्पित किये। डा० शर्मा ने डा० शशि कान्त को इसलिये साधुवाद दिया कि उन्होंने विशुद्ध विद्वानों का सम्मान करने के लिये इस समारोह का आयोजन करके लखनऊ के बुद्धिजीवियों को स्वयं को सम्मानित करने का अवसर प्रदान किया।

डा० ज्योति प्रसाद जैन ने तीनों ही सम्मानित विद्वानों के प्रति अपना समादर निवेदित किया। उन सभी से उनका सम्पर्क दीर्घकाल से रहा था और कई दशकों से उनमें आपस में विचारों का आदान-प्रदान चलता रहा था। जहां तक प्रो० चटर्जी का संबंध है, उन्होंने कहा कि उनसे १९४५ से ही सम्पर्क रहा है और बौद्ध साहित्य के विशेषज्ञ होने के साथ ही वह जैन साहित्य से भी सुपरिचित हैं जिसके आधार पर उन्होंने चन्द्रगुप्त मौर्य और चाणक्य के जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है। डा० जैन ने यह आशा व्यक्त की कि अनन्त-ज्योति विद्यापीठ द्वारा प्रदत्त इतिहास-मनीषी सम्मान समय के साथ अंतर्राष्ट्रीय अभिस्वीकृति अर्जित करेगा और विद्वानों के लिये अभीप्सा का विषय होगा।

प्रो० चटर्जी ने यह आशीर्वाद दिया कि विद्यापीठ अपने रचनात्मक कार्य में सफलता प्राप्त करेगी। वह आश्वस्त थे कि विद्यापीठ शिक्षा और ऐतिहासिक शोध के क्षेत्र में अपने लिये स्पृहणीय स्थान बना सकेगी और उसका योगदान सदैव ही सराहनीय एवं महत्त्वपूर्ण होगा।

प्रस्तुत समारोह इस श्रृंखला में तृतीय है। इस समारोह में निम्नलिखित ५ विद्वानों को इतिहास-मनीषी सम्मान से सम्मानित किया जा रहा है :—

डा० श्याम लाल पाण्डेय, डा० ए० एल० बाशम, डा० जनार्दन दत्त शुक्ला, डा० बैज नाथ पुरी और डा० नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित ३५ मनीषियों का भी अपने क्षेत्र में विशिष्ट उपलब्धियों के लिए अभिनन्दन किया जा रहा है :—

पं० राम रतन, श्री मानिक लाल घोष, श्री आनन्द स्वरूप मिश्रा, श्री राम गोपाल, श्री रामेश्वर प्रसाद दुबे, श्री वीर नन्दन जिन्दल, डा० भगीरथ मिश्र, श्री महेश्वर पाण्डेय, डा० हरबर्ट गुन्थर, डा० नन्द किशोर देवराज, श्री लक्ष्मी कान्त श्रीवास्तव, श्री अजित प्रसाद जैन, श्री ज्ञान चन्द जैन, श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा, डा० अमर पाल सिंह, डा० गिरिजा शंकर मिश्रा, डा० हर्ष नारायन, डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल, श्री राम निहोर चतुर्वेदी, श्री कैलाश नाथ गोयल, डा० नासिर अली खान, डा० सुधांशु कुमार जैन, श्री विश्वम्भर नाथ, श्री नरेश चन्द्र जैन, [redacted], श्री काशीनाथ गोपाल गोरे, डा० रमेश चन्द्र शर्मा, डा० (श्रीमती) प्रभा गुप्ता, डा० (कु०) उषा माथुर, डा० विनय कुमार जैन, डा० (कु०) इन्दु राय, श्रीमती सुधा जिन्दल, डा० (कु०) सुधा जैन, और डा० (श्रीमती) बीना जैन।

उपरोक्त मनीषियों में डा० बाशम और डा० गुन्थर विदेशी विद्वान हैं जिन्हें भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विषयक शोध के प्रति समर्पण हेतु सम्मानित किया जा रहा है।

यह सन्ताप का विषय है कि डा० श्याम लाल पाण्डेय, डा० ए० एल० बाशम, डा० जनार्दन दत्त शुक्ला और पं० राम रतन इस बीच हमारे मध्य नहीं रहे, और अब हमें उनकी पवित्र स्मृति के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करके ही संतोष करना पड़ रहा है। डा० राम कुमार दीक्षित और प्रो० चरन दास चटर्जी, तथा डा० राम नारायन मिश्रा और श्री जगदीश प्रसाद मिश्रा भी, अब हमारे बीच नहीं है। विद्यापीठ प्रवर समिति दिवंगत मनीषियों के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करती है, और सभी सम्मानित विद्वान-मनीषियों के प्रति अपना उत्कट समादर निवेदित करती है, और उन सभी के प्रति अपना आभार व्यक्त करती है जिनके सहयोग से समारोह उचित रीति से सम्पादित हो सके।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National P

Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

१२ फरवरी, १९७९, को सम्पन्न अभिनन्दन समारोह
Felicitation Function held on Feb. 12, 1979

डा. ज्योति प्रसाद जैन को डा. नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी इतिहास-मंजूषा भेंट कर रहे हैं; पार्श्व में डा. आर. के. दीक्षित।
Dr. N.P. Joshi presenting the Itihasa-Manjusha to Dr. J.P. Jain, Dr. R.K. Dikshit is looking on.

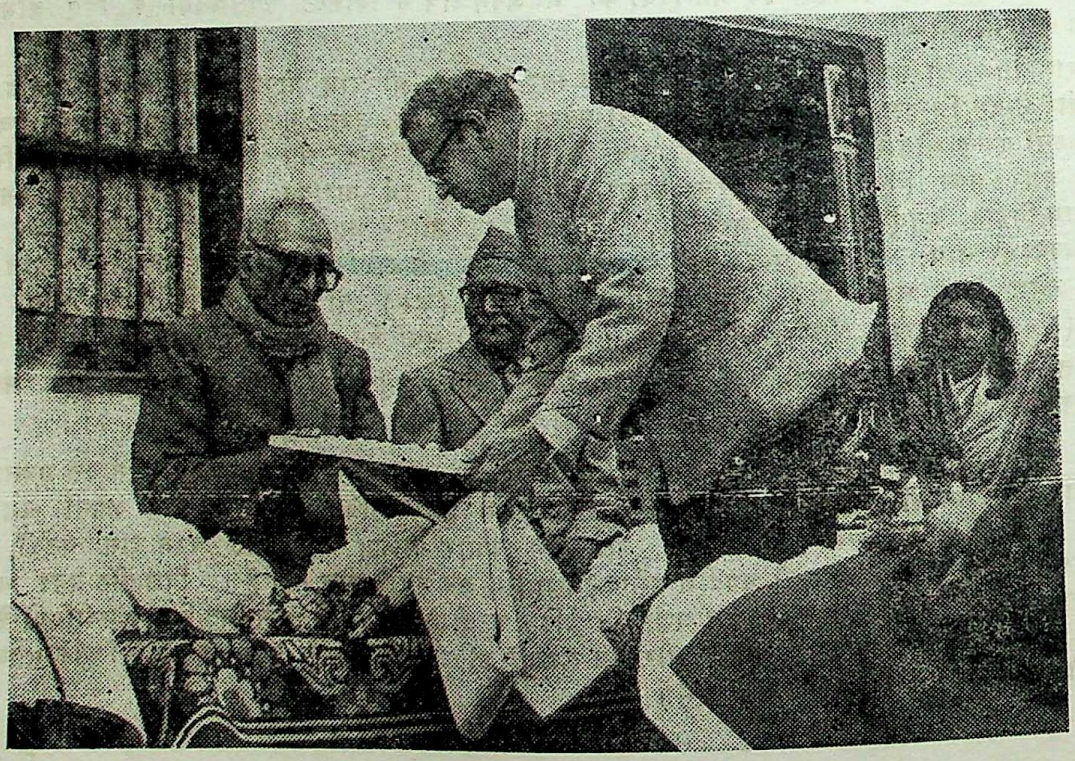

डा० राम कुमार दीक्षित को डा० जोशी इतिहास-मंजूषा भेंट कर रहे हैं; डा० ज्योति प्रसाद जैन बीच में हैं।
Dr. N.P. Joshi presenting the Itihasa-Manjusha to Dr. R.K. Dikshit, Dr. J.P. Jain is looking on.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

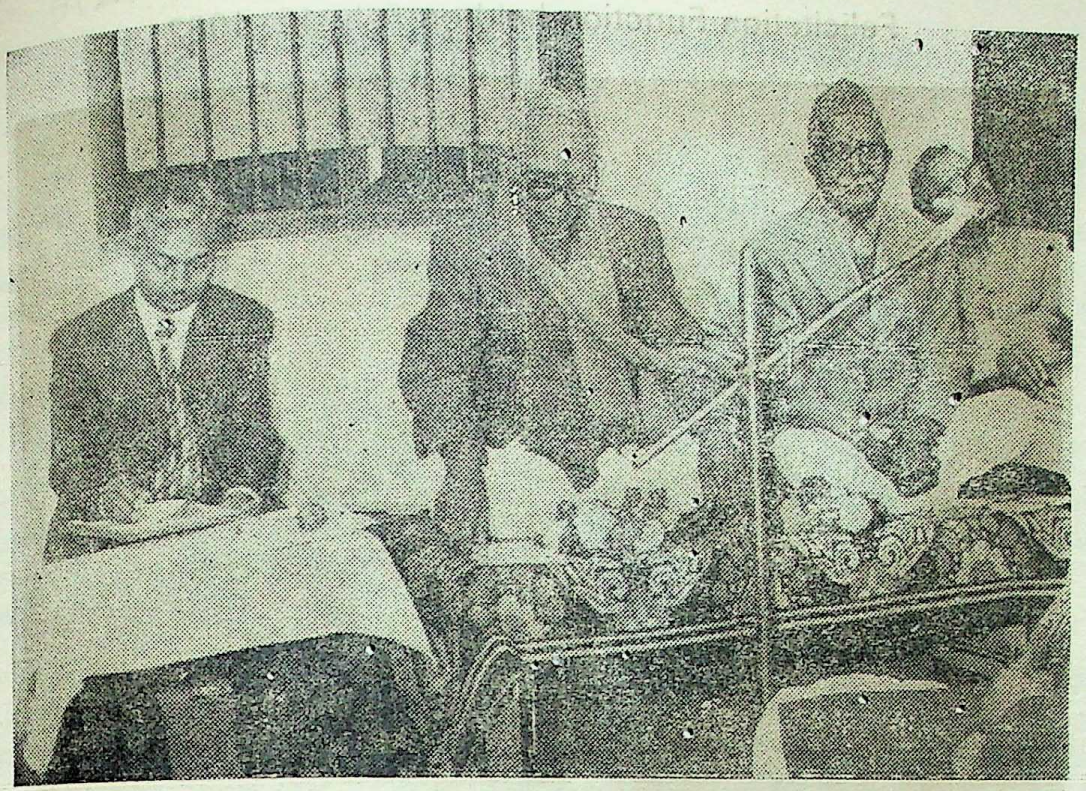

डा० जैन आशीर्वचन कह रहे हैं ।

Dr. Jain is giving his blessings; on extreme left Dr. Shashi Kant taking notes.

डा० दीक्षित आशीर्वचन कह रहे हैं । Dr. Dikshit giving his blessings.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R...

Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

१२ फरवरी, १९८२, को सम्पन्न अभिनन्दन समारोह
Felicitation Function held on Feb. 12, 1982

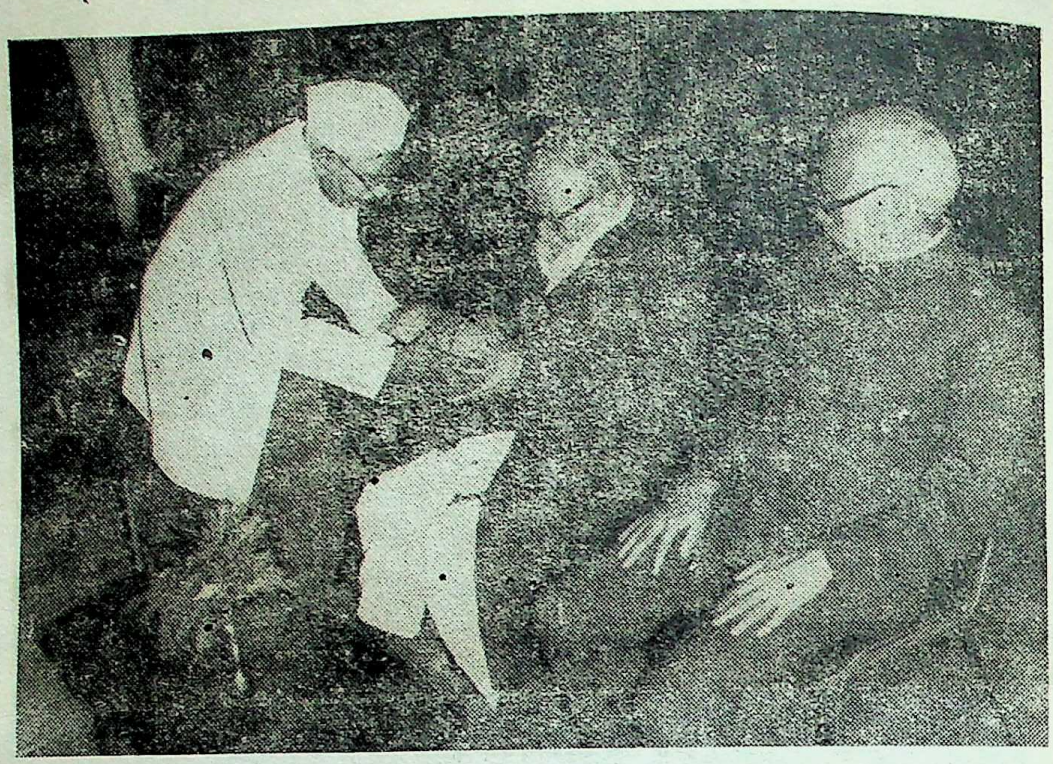

प्रो० चरन दास चटर्जी को डा० ज्योति प्रसाद जैन श्रीफल भेंट कर रहे हैं; डा० अमर पाल सिंह पार्श्व में हैं।
Dr. J. P. Jain presenting the coconut to Prof. C. D. Chatterjee, Dr. A. P. Singh is looking on.

प्रो० चटर्जी आशीर्वचन कह रहे हैं। Prof. Chatterjee is giving his blessings.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Felicitation of Scholars and Intellectuals

The First Felicitation Function was held on Feb. 12, 1979, at the headquarters of the Vidyapitha at Jyoti Nikunj, Charbagh, Lucknow. Dr. J. P. Jain and Dr. R. K. Dikshit, the two elderly scholars and authorities on Indian History and Culture, were conferred the honour of **Itihasa-Manishi** for their life-long devotion and substantial contribution to historical studies and research. It was presided over by Dr. N. P. Joshi, the then Director of the State Museum. The felicitants were presented the scroll of honour, Itihasa-Manjusha, shawl and coconut, in the traditional Indian style.

M. R. K. Jain dedicated and presented the book– 'Dr. Jyoti Prasad Jain Krititva-Parichaya' to Dr. Jain, Mr. Satish Dwivedi explained the meaning of Itihasa-Manishi and Itihasa-Manjusha. Mr. Rajiv and Ms. Shephali gave poetic exposition of historical processes. Ms. Supriya Chowdhry, Shikha Ghosh, Indu Bala and Alka Kant rendered musical notes.

Dr. Shashi Kant explained the criteria for selecting the scholars for the Itihasa-Manishi honour, and said that Dr. J. P. Jain and Dr. R. K. Dikshit fulfilled the criteria aptly because they were very distinguished reprsentatives of the Indian intelligentsia, they had dedicated their entire life to historical studies and research, they were elderly, their work in the field was vast as well as substantial, and their personality was a source of inspiration as they were still devoted to work at this advanced age. They attracted the attention first also because the city of Lucknow was specially indebted to them because for the last 40 years it had been their place of work, as also they had a special love for the Vidyapitha and with their blessings and inspiration it was going ahead to implement its objects. He also mentioned that the distinctiveness of the felicitation programme lay in the fact that it had been arranged by lovers of learning to honour scholars out of pure affection and admiration of virtue, and is not affected by the influence of monetary, political or official authority. He also read out the citation.

Dr. R. N. Misra, Dr. K. K. Thaplyal, Dr. S. N. Misra, Dr. (Mrs.) Sarla Shukla, Mr. G. C. Jain, Pt. R. C. Pandey, Dr. M. P. Jain, Mr. Narbadeshwar Chaturvedi, Mr. S. C. Patni, Mr. S. C. Jain, Mr. N. C. Jain, Mr. A. P. Jain and Mr. P. K. Dikshit paid glowing tributes to the two scholars.

Dr. N. P. Joshi said that Dr. Jain and Dr. Dikshit were living encyclopaedias, being well versed in ancient textual literature and art, and, at the same time, well acquainted with modern researches; and added that by honouring them in this assembly of scholars the lovers of scholarship and learning at Lucknow have, in fact, honoured themselves Dr. Jain and Dr. Dikshit acknowledged the greetings with an emotion-charged voice, and gave their blessings that the pursuers of knowledge and research may be successful in their learned pursuits and keep on adding to the treasures of schorlarship.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R...

Digitized by Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The Second Felicitation Function was held on Feb. 12, 1982, at Mini-Ravindralaya. Prof. C. D. Chatterjee, Dr. B. Ch Chhabra and Prof. K. D. Bajpai were conferred the honour of Itihasa-Manishi for their life-long devotion and substantial contribution to historical studies and research. It was presided over by Dr. J. P. Jain.

Prof. Chatterjee was felicitated in the traditional Indian manner by offering the scroll of honour, Itihasa-Manjusha, shawl and coconut. Dr. Chhabra and Prof. Bajpai could not attend because of unavoidable circumstances and they were later presented with these honorifics.

Dr. Shashi Kant welcomed the guests and read out the citation. Mr. R.K. Jain explained the meaning of Itihasa-Manishi and Itihasa-Manjusha. Ms Alka and Shepbali gave poetic exposition of history. Ms. Sutapa Mukherjee, Devi Mukherjee and Mrs. Usha Rai presented musical notes, and the pupils of the Kant Bal Kendra presented cultural items. Mrs. Shaheen Sultana also rendered ghazals. The vote of thanks was presented by Dr. A. P. Singh.

Dr. B. N. Srivastava, Dr. S. N. Misra, Dr. R. C. Sharma, Dr. J. P. Sinha, Bh. G. Pragyanand, Mr. J. P. Misra and Mr. B. B. Sarkar paid glowing tributes to Prof. Chatterjee. Dr. Sharma also thanked Dr. Shashi Kant for arranging this function to honour real scholars and thus providing an opportunity to the intellectuals of Lucknow to honour themselves.

Dr. J. P. Jain expressed his regards for all the three honoured scholars. They had been known to him for a very long time and there had been much communion with them over the decades. As for Prof. Chatterjee, he had known him since 1945 and besides being an expert on Buddhist literature, he was also well-versed with the Jain literature on the basis of which he had thrown valuable light on the life of Chandragupta Maurya and Chanakya. Dr. Jain expressed the hope that the honour of Itihasa-Manishi conferred by the Ananta-Jyoti Vidyapitha will in course of time earn international recognition and will be coveted by scholars.

Prof. Chatterjee gave his blessing that the Vidyapitha would be getting success in its constructive work. He was convinced that the Vidyapitha would be able to make a place for itself in the field of education and historical research and its contribution would always be admirable and important.

The Instant Function is the third in the series. The following 5 scholars are being conferred the Itihasa-Manishi honour :

Dr. S.L. Pandey, Dr. A.L. Basham, Dr. J.D. Shukla, Dr. B.N. Puri, and Dr. N.P. Joshi. Besides, the following 35 intellectuals are also being felicitated for distinguished achievement and contribution in their respective field :

Pt. Ram Ratana, Mr. M. Ghosh, Mr. A. S Misra, Mr. Ram Gopal, Mr. R. P. Dube, Mr. V. N. Jindal, Dr. Bhagirath Mishra, Mr. Maheshwar Pandey, Dr. Herbert Guenther, Dr. N. K. Devraj, Mr. L. K. Shrivastava, Mr. A. P. Jain, Mr. Gyan Chand Jain,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. G. M. Sinha, Dr. A. P. Singh, Dr. G. S. Misra, Dr. Harsh Narain, Dr. S. P. Agrawal, Mr. R. N. Chaturvedi, Mr. K. N. Goyal, Dr. N. A. Khan, Dr. Sudhanshu Kumar Jain, Mr. V. Nath, Mr. N. C. Jain, Mr. K. G. Gore, Dr. R. C. Sharma, Dr. (Mrs.) Prabha Gupta, Dr. (Ms.) Usha Mathur, Dr. V. K. Jain, Dr. (Ms.) Indu Rai, Mrs. Sudha Jindal, Dr. (Ms.) Sudha Jain and Dr. (Mrs.) Beena Jain.

Of the above, Dr. Basham and Dr. Guenther are foreign scholars who arebeing honoured for their devotion to research on Indian History and Culture.

It is a matter of profound sorrow that Dr. S. L. Pandey, Dr. A. L. Basham, Dr. J. D. Shukla and Pt. Ram Ratan have left for heavenly abode in the meantime, and we have to be content only by paying our homage to their sacred memory. Dr. R. K. Dikshit and Prof. C. D. Chatterjee, as also Dr. R. N. Misra and Mr. J. P. Misra, are also no longer with us. The Vidyapitha Pravara Samiti offers its humble tributes to the departed scholars and places on record its profoundest appreciation for all the honoured scholars and intellectuals, and also thanks all those who contributed to the holding of these felicitation functions in a befitting manner.

पीठ-प्रमुख डा० शशि कान्त
प्रशस्ति वाचन कर रहे हैं ।
The President Dr. Shashi Kant
reading out the citation

सुप्रसिद्ध आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं सिने कलाकार
श्रीमती शाहीन सुल्ताना ग़ज़ल प्रस्तुत कर रही हैं ।
The famous AIR, TV and Cine artist
Mrs. Shaheen Sultana rendering ghazals

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति
Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti
Governing Body & Executive Committee

अध्यक्ष	इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन एम.ए., एल-एल.बी., पी-एच.डी.	Chairman	Itihasa-Manishi Dr. Jyoti Prasad Jain M. A., LL. B., Ph. D.
पीठ-प्रमुख	डा० शशि कान्त एम. ए., डी. आर., पी-एच. डी.	President	Dr. Shashi Kant M. A., D. R., Ph. D.
उप पीठ-प्रमुख	डा० अमर पाल सिंह एम.ए., एल-एल.बी., पी-एच.डी.	Vice-President	Dr. Amar Pal Singh M. A., LL. B., Ph. D.
पीठ-कोषाध्यक्ष	श्री रमा कान्त जैन बी.ए., साहित्य रत्न, तमिल कोविद	Treasurer	Mr. Rama Kant Jain, B. A., S. R., Tamil Kovid
पीठ-सचिव	श्री रतन चन्द गुप्ता बी. काम., एल-एल. बी.	Secretary-General	Mr. Ratan Chand Gupta B. Com., LL. B.
सचिव	श्री नलिन कान्त जैन बी. एस-सी., एल-एल. बी.	Secretary	Mr. Nalin Kant Jain B. Sc., LL. B.
पीठ-व्यवस्थापक	श्रीमती मंजरी जैन, विशारद	Manager	Mrs. Manjari Jain, Visharad
पीठ-प्रवर	श्रीमती विद्यावती जैन	Members	Mrs. Vidyavati Jain
	श्रीमती आशा जैन		Mrs. Asha Jain
	इं० शिरीष कान्त बी.एस-सी. (इंजी०)		Er. Shirish Kant B. Sc. (Engg.)
	इं० राजीव कान्त जैन, बी.टैक.		Er. Rajiv Kant Jain, B. Tech.
सम्परीक्षक	श्री काशीनाथ गोपाल गोरे बी.ए., एल-एल.बी., सा.र., ते. को.	Auditor	Mr. Kashinath G. Gore B.A., LL.B., S.R., Tel. K.

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

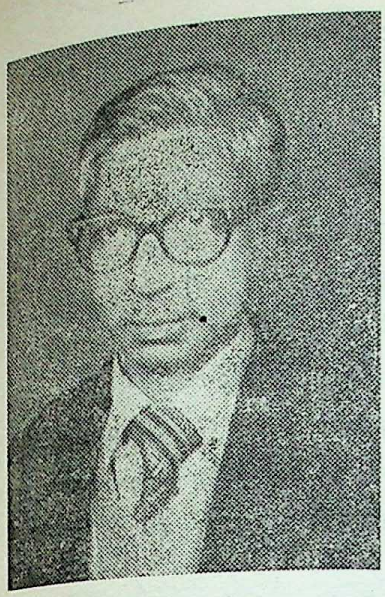

पीठ-कोषाध्यक्ष श्री रमाकान्त जैन का जन्म दिनांक १० फरवरी, १९३६ ई०, को मेरठ नगर में हुआ था। उनकी प्राय: सभी शिक्षा लखनऊ में हुयी। १९५४ में उन्होंने लखनऊ विश्व-विद्यालय से बी० ए० किया और उसी वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन से साहित्य रत्न की परीक्षा उत्तीर्ण की। वर्ष १९६३-६७ के दौरान उन्होंने तमिल भाषा का अध्ययन किया और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की 'तमिल कोविद' परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा प्रथम स्थान प्राप्त किया। तमिल भाषा में उच्च अध्ययन के लिये उत्तर प्रदेश शासन द्वारा उन्हें मद्रास भी भेजा गया।

१९५४ में उन्होंने उ० प्र० शासन के अन्तर्गत सचिवालय में सेवा प्रारम्भ की और वर्तमान में वह अप्रैल १९७७ से अनुभाग अधिकारी के पद पर कार्यरत हैं।

श्री जैन की सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक कार्यों में गहन अभिरुचि रही है। वह अनन्त-ज्योति विद्यापीठ के संस्थापक सदस्यों में से हैं, 'डा० ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट' के न्यास-सचिव है और उ० प्र० कर्मचारी लेखक परिषद के उपाध्यक्ष हैं। वह प्रारम्भ से ही अध्येता रहे हैं और उन्होंने अपने लिखने-पढ़ने की अभिरुचि को बनाये रखा है। अब तक उनके ५५ लेख आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये हैं। विचार गोष्ठियों में भी उन्होंने शोध-पत्र प्रस्तुत किये हैं और आकाश-वाणी से वार्तायें भी प्रसारित की हैं। सचिवालय हिन्दी परिषद की पत्रिका के वह एक नियमित लेखक रहे हैं और सचिवालय हिन्दी परिषद द्वारा इसके लिये उनको सम्मानित भी किया गया है। उन्होंने भूले-बिसरे अथवा उपेक्षित विषयों को अपने लेखन में प्रधानता दी है और उनके सभी लेखों में गहन अध्ययन एवं समीक्षात्मक मूल्यांकन की छाप स्पष्ट है।

Treasurer **Mr. Rama Kant Jain** was born on February 10, 1936 A.D., at Meerut. He had nearly all his education at Lucknow. He did B.A. from the Lucknow University in 1954 and also Sahitya Ratna from the Hindi Sahitya Sammelan the same year. During 1963-67 he studied Tamil and passed the Tamil Kovid examination of the 'Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha' in first division with first position, and was also sent to Madras for advance studies by the U.P. Government.

He joined the U.P. Government Service in the Secretariat in 1954, and is presently working as Section Officer since April 1977.

Mr. Jain has been keenly interested in cultural and educational activities and is one of the founder members of the Ananta-Jyoti Vidyapitha. He is also the Trustee-Secretary of the 'Dr. Jyoti Prasad Jain Trust' and the Vice-President of the 'U. P. Karamchari Lekhak Parishad'.

He has been a keen student and has kept up his passion for reading and writing. So far he has published 55 papers/articles in different journals and periodicals, presented papers in Seminars and broadcast talks from the All India Radio. He has been a regular contributor to the Sachivalaya Hindi Parishad magazine since it came into being, and was duly honoured by the Sachivalaya Hindi Parishad for this. His writings bring out the forgotten or ignored subjects and bear the impress of deep study and critical appreciation of these subjects.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

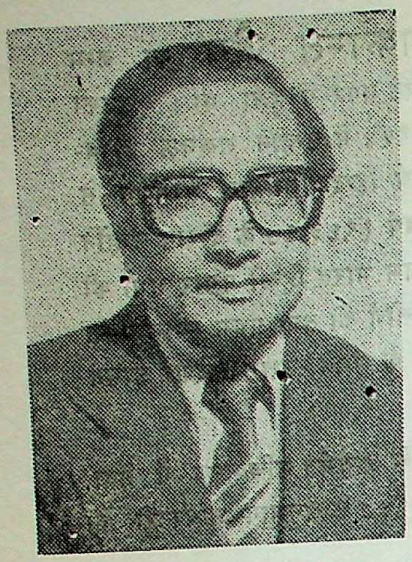

पीठ-सचिव श्री रतन चन्द गुप्ता का जन्म १ जून, १९३६ ई०, को अलीगढ़ जिले के सिकन्दराराव नामक कस्बे में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा सिकन्दराराव में ही हुयी। उन्होंने १९५५ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० काम० की परीक्षा उत्तीर्ण की और १९६१ में लखनऊ विश्वविद्यालय से एल-एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। वह १९५६ से उ० प्र० सचिवालय में सेवारत हैं और वर्तमान में विधायिका विभाग में वरिष्ठ शोध अधिकारी एवं सहायक विधि परामर्शी के पद पर कार्यरत हैं।

अपने विद्यार्थी जीवन से ही वह समाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक कार्यक्रमों में रुचि लेते रहे हैं। विगत २५ वर्षों में अनन्त-ज्योति विद्यापीठ के सभी कार्यकलापों से वह सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे हैं और विद्यापीठ के संस्थापक सदस्यों में से हैं।

Secretary-General **Mr. Ratan Chand Gupta** was born on June 1, 1936 A. D., at Sikandra Rao in the Aligarh district. His early education was at the place of his birth. He did B. Com. from the Allahabad University in 1955 and LL. B. from the Lucknow University in 1961. He joind the U.P Secretariat in 1956 and he is presently working as Senior Research Officer and Assistant Legal Rememberancer to Government in the Legislative Department.

From his student days he has been interested in social, cultural and educational activities. During the last 25 years he has been actively associated with all the activities of the Ananta-Jyoti Vidyapitha and is one of its founder members.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ द्वारा सम्मानित विद्वान-मनीषियों का परिचय

Biographical Sketches of the Scholars and Intellectuals honoured by the Ananta-Jyoti Vidyapitha

इतिहास-मनीषी	**Historians Par Excellence**	
१. प्रो० चरन दास चटर्जी	Prof. C. D. Chatterjee	67
२. डा० श्याम लाल पाण्डेय	Dr. Shyam Lal Pandey	70
३. डा० बहादुर चन्द छाबड़ा	Dr. B. Ch. Chhabra	73
४. डा० राम कुमार दीक्षित	Dr. R. K. Dikshit	76
५. डा० ज्योति प्रसाद जैन	Dr. Jyoti Prasad Jain	79
६. डा० आर्थर लेवेलिन बाशम	Dr. A. L. Basham	84
७. डा० जनार्दन दत्त शुक्ला	Dr. J. D. Shukla	86
८. डा० बैज नाथ पुरी	Dr. B. N. Puri	89
९. प्रो० कृष्ण दत्त वाजपेयी	Prof. K. D. Bajpai	93
१०. डा० नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी	Dr. N. P. Joshi	96
अन्य विद्वान-मनीषी	**Other Scholars & Intellectuals**	
११. पं० राम रतन	Pt. Ram Ratan	99
१२. श्री मानिक लाल घोष	Mr. M. Ghosh	101
१३. श्री आनन्द स्वरुप मिश्रा	Mr. A. S. Misra	103
१४. श्री राम गोपाल	Mr. Ram Gopal	106
१५. श्री रामेश्वर प्रसाद दुबे	Mr. R. P. Dube	109
१६. श्री राम निहोर चतुर्वेदी	Mr. R. N. Chaturvedi	111
१७. श्री वीर नन्दन जिन्दल	Mr. V. N. Jindal	113
१८. डा० भगीरथ मिश्र	Dr. Bhagirath Mishra	115
१९. श्री महेश्वर पाण्डेय	Mr. Maheshwar Pandey	117

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

२०. डा० हरबर्ट गुन्थर	Dr. Herbert Guenther	119
२१. डा० नन्द किशोर देवराज	Dr. N. K. Devaraja	122
२२. श्री लक्ष्मी कान्त श्रीवास्तव	Mr. L. K. Shrivastava	126
२३. श्री अजित प्रसाद जैन	Mr. Ajit Prasad Jain	127
२४. श्री ज्ञान चन्द जैन	Mr. Gyan Chand Jain	129
२५. श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा	Mr. G. M. Sinha	132
२६. डा० अमर पाल सिंह	Dr. Amar Pal Singh	134
२७. डा० गिरजा शंकर मिश्रा	Dr. G. S. Misra	136
२८. डा० हर्ष नारायन	Dr. Harsh Narain	138
२९. डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल	Dr. S P. Agrawal	141
३०. श्री कैलाश नाथ गोयल	Mr. K. N. Goyal	143
३१. डा० नासिर अली खान	Dr. N. A. Khan	145
३२. डा० सुधांशु कुमार जैन	Dr. S. K. Jain	147
३३. श्री विश्वम्भर नाथ	Mr. V. Nath	150
३४. श्री नरेश चन्द्र जैन	Mr. Naresh Chandra Jain	152
३५. श्री काशीनाथ गोपाल गोरे	Mr. K. G. Gore	153
३६. डा० रमेश चन्द्र शर्मा	Dr. R. C. Sharma	155
३७. डा० (श्रीमती) प्रभा गुप्ता	Dr. (Mrs.) Prabha Gupta	158
३८. डा० (कु०) उषा माथुर	Dr. (Ms.) Usha Mathur	160
३९. डा० विनय कुमार जैन	Dr. V. K. Jain	162
४०. डा० (कु०) इन्दु राय	Dr. (Ms.) Indu Rai	164
४१. श्रीमती सुधा जिन्दल	Mrs. Sudha Jindal	166
४२. डा० (कु०) सुधा जैन	Dr. (Ms.) Sudha Jain	168
४३. डा० (श्रीमती) बीना जैन	Dr. (Mrs.) Beena Jain	170

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

प्रो० चरन दास चटर्जी

प्रो० चटर्जी का जन्म १५ अगस्त, १८९७ ई०, को कलकत्ता में हुआ था और वह २४ दिसम्बर, १९८६ ई०, को दिल्ली में स्वर्गवासी हुए। उनकी समस्त शिक्षा कलकत्ता में हुई थी। १९२२ में लखनऊ विश्वविद्यालय में नियुक्त होने पर उन्होंने लखनऊ को अपना आवास स्थल बनाया। उन्होंने १९१९ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ और पालि में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण की तथा उन्हें जुबली पोस्ट-ग्रेजुएट स्कॉलरशिप और विद्यासागर पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उसी विश्वविद्यालय से उन्होंने १९२१ में एम० ए० की परीक्षा पालि साहित्य, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरालेख, तथा लंका और बर्मा के प्राचीन इतिहास, विषयों को लेकर प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण की और उन्हें स्वर्ण-पदक तथा विश्वविद्यालय पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

१९२२ में उनकी नियुक्ति लखनऊ विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरालेख के प्रवक्ता के पद पर हुयी और १९५८ में अपनी अधिवर्षता तक वे इस विश्वविद्यालय में सेवारत रहे। १९४५ में उनकी पदोन्नति रीडर के पद पर हुई और वह प्राचीन भारतीय इतिहास प्रभाग के प्रभारी नियुक्त किए गए। १९५५ में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग का गठन हुआ और वह प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष नियुक्त किए गये। १९६२ में उन्हें गोरखपुर विश्वविद्यालय ने प्राचीन भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति के प्रोफ़ेसर तथा विभागाध्यक्ष के पद पर आमंत्रित किया और वहाँ उन्होंने दो वर्ष कार्य किया।

उनके मार्गदर्शन में आठ शोध-छात्रों ने पी-एच० डी० की उपाधि और दो ने डी०लिट्० की उपाधि अर्जित की। एक अध्यापक के रूप में वह अपने विद्यार्थियों के शैक्षणिक कार्यकलापों से सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहते थे और विभागीय एसोसिएशन में रुचि लेते थे। वह श्रमण कल्चर स्टडी सर्किल के सत्र १९५२-५३ में अध्यक्ष भी थे।

वह यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी और न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑफ़ इन्डिया से भी सम्बन्धित थे। यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी के जर्नल के १९५२ से १९७० तक सम्पादक रहे थे तथा १९७५ में वह न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑफ़ इण्डिया के अध्यक्ष निर्वाचित किए गये थे।

त्रिपिटक में निष्णात होने, पालि भाषा के अधिकारी विद्वान होने और भारतीय विद्या सम्बन्धी मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण शोध कार्यों के लिए श्री लंका की विद्योदय पिरिवेन द्वारा अक्तूबर १९८१ में उनका तेपिटक-भारती-इस्सरचारिय मानद उपाधि से सम्मान किया गया था। प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व के अति वयवृद्ध अधिकारी विद्वान होने जो इस वृद्धवय में भी कार्यशील थे, की अपेक्षा से अनन्त–ज्योति विद्यापीठ द्वारा उन्हें सार्वजनिक समारोह में १२ फरवरी, १९८२, को इतिहास-मनीषी सम्मान से सम्मानित किया गया।

प्रो० चटर्जी, जो कि शिक्षा जगत में सी० डी० चटर्जी के नाम से प्रसिद्ध थे, अपने क्षेत्र में एक मौन साधक और निष्ठावान कार्यकर्ता थे। उनकी विशेषज्ञता का क्षेत्र विस्तृत था, और प्राचीन भारत के इतिहास, पुरालेख एवं मुद्राशास्त्र, प्राचीन भारत में वाणिकी तथा प्रतीकवाद, संस्कृत और पालि वाङ्मय, आरामायिक भाषा और लिपि, सिंहली भाषा का भाषा-विज्ञान, तथा थेरवाद बौद्ध दर्शन, को आवृत्त करता था।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. M

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० राधा कुमुद मुकर्जी द्वारा अपने ग्रन्थों में प्रो० चटर्जी के पांडित्यपूर्ण सुझावों और संदर्भ-सूचनाओं की बहुधा अभिस्वीकृति की गयी है। वह एम० ए० कक्षाओं में पुरातत्त्व, अशोक के अभिलेख तथा अन्य प्राचीन भारतीय पुरालेख, और प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्यापन करते थे। उनकी पाठन एवं व्याख्या शैली गहन परन्तु सुबोध थी और जिज्ञासु विद्यार्थियों को इन शुष्क गम्भीर विषयों में पैठने की प्रेरणा प्रदान करती थी।

यह उनकी विनयशीलता थी कि विद्यापीठ द्वारा अभिनन्दन के पश्चात उन्होंने यह उद्‌गार अभिव्यक्त किए कि १२ फरवरी को जब उनका सत्कार किया गया और सार्वजनिक रूप से उनका सम्मान किया गया उससे वह वास्तव में अभिभूत हुए थे। उन्होंने यह भी कहा कि विश्वविद्यालय के एक निर्धन सेवानिवृत्त अध्यापक का जो सम्मान किया गया उसके लिए अपनी भावना व्यक्त करने के लिए उनके पास शब्द नहीं हैं। वास्तव में वह किसी प्रकार भी निर्धन नहीं थे, परन्तु उनके यह उद्‌गार **विद्या ददाति विनयं** का प्रतिफल थे।

एक अध्यापक के रूप में, एक विद्वान के रूप में और एक भद्रजन के रूप में प्रो० चटर्जी उन सभी के लिए चिरस्मरणीय रहेंगे जो उनके सम्पर्क में आए हैं। यह दुःख का विषय है कि वह अब हमारे बीच नहीं हैं। विद्यापीठ प्रवर समिति उनकी पवित्र स्मृति के प्रति अपनी विनयावनत श्रद्धांजलि अर्पित करती है।

Prof. C. D. Chatterjee

Prof. Chatterjee was born on Aug. 15,1897 A. D., at Calcutta, and left for heavenly abode on Dec. 24, 1983 A. D., at Delhi. All his education was done at Calcutta. In 1922, on his appointment in the Lucknow University, he made Lucknow his abode.

He did B. A. in 1919 in the first divison with first position, with honours in Pali and winning the Jubilee Post-Graduate Scholarship and the Vidyasagar Prize, from the Calcutta University, and then M. A. in 1921, with Pali, Ancient Indian History and Epigraphy, and Ancient History of Ceylon and Burma, as elective subjects, in first division with first position, winning Gold Medal and University Prize.

In 1922 he was appointed in the Department of History in the Lucknow University as Lecturer of Ancient Indian History and Epigraphy, and served the University till his superannuation in 1958. He was promoted as Reader and was appointed Incharge of the Ancient Indian History Section in 1945. In 1955 a full-fledged Department of Ancient Indian History and Archaeology was created and he was appointed Professor and Head of the Department. In 1962 he was called to the Gorakhpur University as Professor and Head of the Department of Ancient Indian History, Archaeology and Culture, and worked there for two years.

Under his guidance 8 scholars did Ph. D. and 2 were awarded D. Litt. As a teacher he was actively associated with the academic activites of his students and took active interest in the Departmental Association. He was also the President of the Sramana Culture Study Circle during 1952–53.

He was also associated with the activities of the U. P. Historical Society and the Numismatic Society of India. He was the Editor of the Journal of the U. P. Historical Society from 1952 to 1970, and was elected President of the Numismatic Society of India in 1975.

For his high proficiency in the Tripitaka, mastery over the Pali language, and the originality and importance of his Indological research, he was conferred the Degree of

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Tepitaka-Bharati-Issarachariya (Honoris Causa) by the Vidyodaya Pirivena of Sri Lanka in October 1981. Being the eldest living authority on Ancient Indian History and Archaeology, who was still active, the Ananta-Jyoti Vidyapitha conferred on him the honour of Itihasa-Manishi on Feb. 12, 1982, at a public function.

Prof. Chatterjee, was a quiet and sincere worker in his field. His field of specialization was extensive and covered history, epigraphy and numismatics of Ancient India, forestry and symbolism in Ancient India, Sanskrit and Pali literature, Aramaic language and script, philology of the Sinhalese language and the Thervada Philosophy of Buddhism.

His scholarly suggestions and reference notes have often been acknowledged by Dr. Radha Kumud Mookerjee in his works. He taught Archaeology, edicts of Asoka and other Ancient Indian epigraphs, and Ancient Indian Numismatics to the M. A. classes. His style of teaching and interpretation was in-depth but intelligible and inspired the students to take interest in these dry and serious subjects.

It was his modesty to say–"I was indeed overwhelmed by the kind of reception given to me on the 12th evening and the academic honour publicly bestowed upon me. What you have done to me on that day, was highly appreciated by the University teachers and my ex-students. Words fail to express my sentiments and feeling for the honour accorded to me – a poor ex-teacher of the University." Indeed he was not poor in any way but it was his humility born of learning that he expressed such sentiments. As a teacher, as a scholar and as a gentleman Prof. Chatterjee will be long remembered by all those who have come in contact with him. It is sad that he is no more with us. The Vidyapitha Pravara Samiti takes this opportunity to pay its humble tributes to his sacred memory.

Important Contributions महत्त्वपूर्ण कृतियां

Numismatic Data in Pali Literature
Some Unique Gold and Brass Coins of the Imperial Guptas
Ancient Indian Forestry
Role of Forest in Defence in Ancient India
Ahar Stone Inscription
New Numismatic Terms in Pali Texts
Gold Coins of the Standard Type Class I of Chandragupta II
Studies in the Inscriptions of Asoka (The so-called Queen's Edict)
Early Life of Chandragupta Maurya
A Historical Character in the Reign of Asoka Maurya
The Aramaic Language and its Problems in the Early History of Iran & Afghanistan
Takshasila (Taxila)
Some Sinhalese Words Traced
Panchkhanda and Nibbana
Some Observations on Brihatkatha
Evolution of the Avadana Texts with special reference to Asokavadana
Some Problems in the History of Harshavardhana
Jewish Colony at Taxila during the Ist Century A. D.
The Yonas (Greeks) in Pali Canon
Yava-Yavana
Domiciled Foreign Nationals at Taxila and their Educational Problems

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० श्याम लाल पाण्डेय

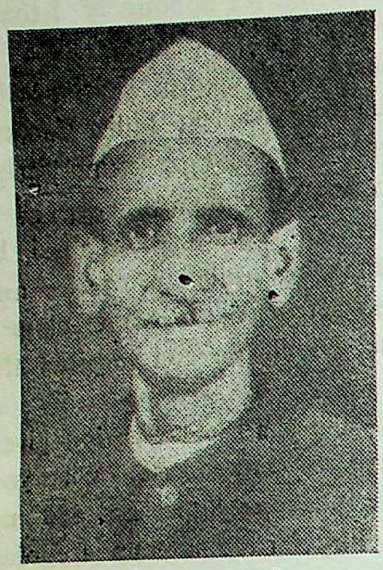

डा० पाण्डेय का जन्म ९ जून, १९०६, ई० को हरदोई जिले के पेड़ाहथा ग्राम में हुआ था तथा १८ जनवरी, १९८७ ई०, को लखनऊ में निधन हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुयी। माध्यमिक स्तर से आगे की शिक्षा लखनऊ में हुई और अन्त समय तक यहीं उनका आवास भी रहा। लखनऊ विश्वविद्यालय से उन्होंने इतिहास और राजनीति-शास्त्र विषयों में एम० ए० किया तथा पी-एच० डी० और डी० लिट्० की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

१९२८ में ही वह अध्यापन कार्य में लग गये थे और १९४५ से १९६५ के बीच तीन उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के प्राचार्य के रूप में उन्होंने कार्य किया। एक निष्ठावान अध्यापक के रूप में उन्होंने विद्यार्जन जारी रखा और अध्यापन के साथ ही साथ उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की।

राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति उनकी विशिष्ट सेवायें हैं। लखनऊ विश्वविद्यालय के कोर्ट के सदस्य के रूप में उन्होंने यह प्रस्ताव पारित कराया था कि डॉक्ट्रेट की उपाधि के लिये शोध-प्रबन्ध भाषा से इतर विषयों में हिन्दी में भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं। उन्होंने स्वयं अपना शोध-प्रबन्ध राजनीति-शास्त्र में पी-एच० डी० की उपाधि के लिये हिन्दी में प्रस्तुत किया तथा विश्वविद्यालय की कार्य-कारिणी समिति ने १९४९ में सर्वप्रथम हिन्दी में शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने के लिये उनको बधाई दी। उस शैक्षणिक सत्र में सर्वोत्तम शोध कार्य के लिये उन्हें सिल्वर जुब्ली स्वर्ण-पदक भी प्रदान किया गया। पुनः डी०लिट्०के लिये भी उन्होंने अपना शोध-प्रबन्ध प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग में १९६३ में हिन्दी में ही प्रस्तुत किया, और इस शोध-प्रबन्ध पर भी उन्हें गोपालदास मेमोरियल स्वर्ण-पदक प्रदान किया गया।

हिन्दी में प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारों पर प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रणयन का कार्य उन्होंने उत्साहपूर्वक उठाया और भारत सरकार द्वारा हिन्दी में शब्दावली बनाने के लिये नियुक्त विशेषज्ञ समिति के सदस्य के रूप में राजनीति-शास्त्र से संबंधित शब्दावली निर्णीत कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

अध्यापन और लेखन कार्य के अतिरिक्त वह नगर की सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक गतिविधियों में भी सक्रिय रहे। आर्य समाज के अध्यक्ष के रूप में, डी० ए० वी० कालेज और बालिका विद्यालय की प्रबन्ध समितियों के सदस्य के रूप में, और गीता सत्संग, गांधी भवन और रामायण समिति के माध्यम से नगर की सांस्कृतिक गतिविधियों में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

भारत में उपलब्ध राजनैतिक विचारों के अध्ययन और वस्तुपरक मूल्यांकन तथा भारतीय राजनयिक विचारकों के काल-क्रमानुसार मूल्यांकन का कोई व्यवस्थित प्रयास नहीं किया गया था। डा० पाण्डेय ने सर्वप्रथम समस्त सामग्री का संकलन, विश्लेषण और मूल्यांकन एक वैज्ञानिक वस्तुपरक शैली में और कालक्रम के आधार पर भारतीय राजनीति शास्त्र प्रणेताओं पर अपने ग्रन्थ में किया है। अतीतकालीन मनु से लेकर १७ वीं शताब्दी के अनन्तदेव तक सभी भारतीय राजशास्त्र प्रणेताओं के राजनीतिक चिन्तन का समाकलन इस ग्रन्थ में किया गया है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

उनके द्वारा विषय का प्रस्तुतिकरण मात्र शास्त्रीय नहीं है वरन् उन्होंने सामान्य पाठक के लिये भी विषय को सहज बनाने का प्रयास किया है। उनके ग्रंथ विद्वानों और विषय के गंभीर अध्येताओं के लिये महत्त्वपूर्ण संदर्भ-ग्रन्थ हैं। पुस्तकों के अतिरिक्त हिन्दी और अंग्रेजी में उन्होंने प्रायः ५५ शोध-पत्र/लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किये हैं। अपने अंग्रेजी के लेखों में उन्होंने हिन्दी के अपने मूल ग्रन्थों में प्राप्त निष्कर्षों को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया है। हिन्दी में वैज्ञानिक और वस्तुपरक शैली में इस विषय का प्रस्तुतिकरण डा० पाण्डेय की एक बहुत ही श्रेयपूर्ण उपलब्धि है।

डा० पाण्डेय का मार्गदर्शन अनन्त-ज्योति विद्यापीठ के शैक्षणिक और बौद्धिक कार्यक्रमों में प्रारम्भ से ही प्राप्त होता रहा। वह एक मनस्वी अध्येता, गहन चिन्तक और सौम्य व्यक्ति थे तथा लेखन-चिन्तन के क्षेत्र में उदीयमान प्रतिभाओं को सदैव प्रेरित और प्रोत्साहित करते थे। उन्हें इतिहास-मनीषी सम्मान से सम्मानित करने का निर्णय लिया गया था परन्तु यह हमारा सौभाग्य नहीं रहा कि उनके जीवन-काल में उनका अभिनन्दन कर पाते। आज विद्यापीठ प्रवर समिति डा० पाण्डेय का मृत्योपरान्त इतिहास-मनीषी सम्मान से सत्कार करती है और उनकी पवित्र स्मृति के प्रति अपनी विनयावनत श्रद्धांजलि निवेदित करती है।

Dr. Shyam Lal Pandey

Dr. Pandey was born on June 9, 1906 A.D., in Village Pedahatha in the Hardoi district, and left for heavenly abode on Jany. 18, 1987 A. D., at Lucknow. He had his early schooling in the village. From secondary stage onwards he had his education at Lucknow, and he also made this city his abode. He did M. A. in History and also in Political Science, and also took Ph. D. and D. Litt. from the Lucknow University.

He entered the teaching profession in 1928 and from 1945 to 1965 he worked as principal of three Higher Secondary Schools. As a conscientious teacher he continued his pursuit of learning and his higher education attainments were supplementary to his teaching career.

He has rendered singular services to the cause of the National Language – Hindi. As a Member of the Court of the Lucknow University he moved the resolution that dissertations for doctorate may also be submitted in Hindi in subjects other than the languages. He himself presented his thesis for Ph. D. in Political Science in Hindi and the Executive Council of the University congratulated him for presenting the first thesis in Hindi in 1949. He was also awarded the Silver Jubilee Gold Medal for the best research work in that academic session. Again, he presented his thesis for D. Litt. in Hindi in the Department of Ancient Indian History and Archaeology in 1963, and was also awarded the Gopaldas Memorial Gold Medal for this work

He took up with missionary zeal the task of producing authentic works on Ancient Indian Polity in Hindi, and as a member of the Expert Committee appointed by the Government of India for drafting a lexicon in Hindi, he made valuable contribution as regards the terms relating to Political Science.

Besides his scholastic contribution, he also took active interest in the social, cultural and educational activities of the city, e. g., he was president of the Arya Samaj and member of the D. A. V. College and Balika Vidyalaya managing committees, and was also associated with the Geeta Satsang, Gandhi Bhawan and Ramayana Samiti.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

There had not been a systematic effort to study and appraise the political thought in India and to make a chronological assessment of the Indian political thinkers. Dr. Pandey for the first time made a substantial effort to collect, analyse and appreciate all this material in a scientific objective style and on a chronological basis in his work on the Indian Political Thinkers. It seeks to cover the entire gamut of political thought from Manu of the hoary past to Anantadeva who lived in the 17th century A. D.

His presentation of the subject has been not mere pedantic, but he has tried to make the subject lucid for the lay reader as well, and his works are important reference books for scholars and serious students of the subject. Besides books, he also contributed some 55 papers in Hindi and English to different journals. In his papers in English he summed up his conclusions made in the original works which are all in Hindi. The presentation in a scientific and objective manner of this subject in Hindi is a very creditable achievement of Dr. Pandey.

The Ananta-Jyoti Vidyapitha had been receiving the guidance of Dr. Pandey in its educational and intellectual programmes from the very beginning. He was a serious student, a profound thinker and a gentleman who always inspired and encouraged the youngsters to think and write. It had been decided to confer on him the Itihasa-Manishi honour but it was not our privilege to felicitate him during his life-time. This day the Vidyapitha Pravara Samiti confers the Itihasa-Manishi honour on Dr. Pandey posthumously and pays its humble tributes to his sacred memory.

Works कृतियां

१- जनतंत्रवाद (रामायण महाभारत कालीन) (१९५०)
२- शुक्र की राजनीति (१९५२)
३- मनु का राजधर्म (१९५४)
४- भीष्म का राजधर्म (१९५५)
५- कौटिल्य की राज्य-व्यवस्था (१९५६)
६- भारतीय राजशास्त्र प्रणेता (१९६४)
७- वेदकालीन राज्य-व्यवस्था (१९७१)
८- वैदिक ऋषि
९- वैदिक ब्रह्मवादिनी
१०- कणिक

Select Opinions विशिष्ट अभिमत

"शुक्र की राजनीति" :- A study made for the first time with a balanced view and attempt to properly assess the material.

—Dr. Vasudev Sharan Agrawal

After the establishment of Indian Republic it has become necessary that not only the Indians but the world at large should be acquainted with the culture and multi-lateral progress of Ancient India. This book of Dr. Pandey is admirable in this respect.

—Dr. B. M. Sharma

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० बहादुर चन्द छाबड़ा

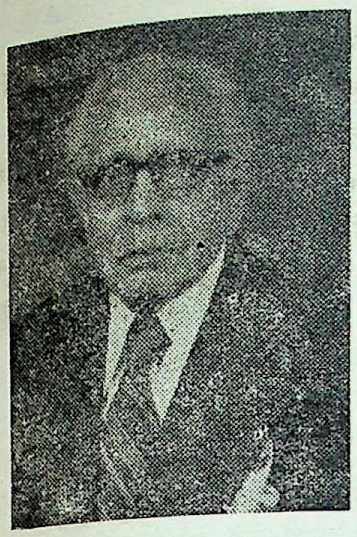

डा० छाबड़ा का जन्म ३ अप्रैल, १९०८ ई०, को पेशावर के निकट कोहाट नामक स्थान (जो कि अब पाकिस्तान में है) में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा हाफ़िज़ाबाद, गुजरांवाला और हरीपुर हज़ारा में हुयी थी। उनकी उच्च शिक्षा पंजाब विश्वविद्यालय के अंतर्गत लाहौर कालेज, लाहौर, में हुयी थी। उन्होंने १९२६ में संस्कृत में शास्त्री परीक्षा सम्मान सहित उत्तीर्ण की, १९३० में हिन्दी में प्रभाकर परीक्षा सम्मान सहित उत्तीर्ण की तथा १९३१ में एम० ए० और एम० ओ० एल० की परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। १९३४ में डा० जे० पी० वोगेल के मार्गदर्शन में उन्होंने हालैन्ड के लीडेन विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी।

अगस्त १९३५ में उन्होंने भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण में सेवा-योजन किया और उनकी प्रथम नियुक्ति ऊटकमण्ड में एसिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट (एपिग्राफी) के पद पर हुई। १९६५ में सेवानिवृत्त होने तक वह क्रमशः सुपरिन्टेन्डेन्ट, गवर्मेन्ट एपिग्राफिस्ट और पुरातात्त्विक सर्वेक्षण के संयुक्त महानिदेशक के पदों पर पदोन्नत हुए। १९४९ में वह कुछ समय के लिए दि हेग में भारतीय दूतावास में सांस्कृतिक अटैची भी रहे। चंडीगढ़ स्थित पंजाब विश्वविद्यालय ने उन्हें प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्त्व के विभाग का गठन करने के लिए १९६५ में आमंत्रित किया और चार वर्ष वह वहां पर प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहे। उन्होंने काफी भ्रमण किया है और वह रोम विश्वविद्यालय के, इन्डोनेशिया के जकार्ता, बान्डुंग, सुर्बाया और डान पिसार विश्वविद्यालयों के, हवाई विश्वविद्यालय के, सेवेन सीज़ विश्वविद्यालय के और सान डीगो विश्वविद्यालय के विज़िटिन्ग प्रोफेसर रहे हैं।

अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन के १९५५, १९६५ और १९७५ के अधिवेशनों में वह क्रमशः पुरातत्त्व एवं भारतीय इतिहास, वृहत्तर भारत और दक्षिण एशियाई अध्ययन प्रभागों के अध्यक्ष रहे। वह लीडेन के कर्न इन्स्टीट्यूट तथा पेरिस के एकोले फ्रान्काई द एक्सट्रीम-ओरिएन्ट के अवैतनिक संवाददाता और पांडिचेरी के अशोक मौर्य एण्ड पल्लव हिस्टॉरिकल ट्रस्ट के अवैतनिक निदेशक भी रहे।

शोध छात्र उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते रहे हैं और प्रायः एक दर्जन विद्यार्थियों ने उनके मार्ग-दर्शन में डॉक्ट्रेट की उपाधियाँ प्राप्त की हैं।

डा० छाबड़ा ने लगभग २०० लेख और शोध-पत्र अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत में, पुरातत्त्व, पुरालेख, मुद्राशास्त्र, इतिहास और वृहत्तर भारत के सम्बन्ध में, भारत में तथा विदेशों में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में, प्रकाशित किए हैं। प्रमुख विषय पुरालेख और दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रसार रहे हैं। पल्लव राज्यकाल में भारतीय संस्कृति के प्रसार पर शोध ग्रन्थ के अतिरिक्त उनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ गुप्त राजाओं के शिलालेखों पर है जो 'कॉरपस इन्स्क्रिप्टोनम इन्डीकेरम' के खण्ड तीन के पुनरीक्षित संस्करण के रूप में प्रकाशित हुआ है। उन्होंने संस्कृत में बहुत सी कविताएं लिखी हैं जिनका संकलन पुष्पहासः के नाम से प्रकाशित हुआ है।

एशियाटिक सोसाइटी, एपिग्राफिकल सोसाइटी ऑफ़ इन्डिया और सान डीगो की एपिग्राफिक सोसाइटी द्वारा वह फ़ेलो के रूप में सम्मानित हैं। ३ फरवरी, १९७९, को उन्हें ताम्रपत्र भेंट किया गया था तथा ८ अगस्त,

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

१९७९, को पुरातत्त्व-विशारद की उपाधि उन्हें बंगलौर में प्रदान की गयी थी। उन्हें १९८४ में उनके मित्रों और प्रशंसकों द्वारा "स्वस्ति श्री" अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया था।

डा० छाबड़ा का भारतीय विद्या के अध्ययन में योगदान बहुत ही सारभूत रहा है जो विषय के गम्भीर अध्येताओं को नयी दिशा प्रदान करता है। संस्कृत के प्रति उनका अनुराग और एक पुरालेखविद् के रूप में उनका दीर्घकालीन अनुभव उनके लेखन को विशिष्ट प्रामाणिकता प्रदान करते हैं। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ का यह सौभाग्य था कि उसके द्वारा उन्हें १२ फरवरी, १९८२, को इतिहास-मनीषी सम्मान से सम्मानित किया गया। वह अभी भी साहित्य साधना में संलग्न हैं। वह एक विनयशील व्यक्ति हैं और जैसा कि सभी महान विद्वानों का स्वभाव है उन्हें उक्त सम्मान स्वीकार करने में संकोच था जो कि उनके द्वारा निम्नलिखित श्लोक में निवेदित है:

केयंरीतिमीषामधमासत्कारहतकानाम् ।
उपदीसन्ति मनुष्यं यदास्यतेषुस्पृहानास्ति ।।

पता : पी-६, हौज खास एन्क्लेव, नई दिल्ली–११० ०१६

Dr. B. Ch. Chhabra

Dr. Chhabra was born on April 3, 1908 A. D., at Kohat near Peshawar (now in Pakistan). He had his early education at Hafizabad, Gujranwala and Haripur Hazara. He had his higher education at the Lahore College, Lahore, under the Punjab University. He did Shastri in Sanskrit, with honours, in 1926, Prabhakar in Hindi, with honours, in 1930, and M. A. and M. O. L. in 1931, with first position. He did Ph.D. in 1934 from the State University of Leyden, Holland, under the guidance of Dr. J. Ph. Vogel.

He joined the Archaeological Survey of India in August 1935 as Assistant Superintendent (Epigraphy) at Ootacamund, and rose to the positions of Superintendent, Government Epigraphist of India, and Joint Director-General of the A. S. I. before he retired in 1965. He also served as Cultural Attache in the Embassy of India at The Hague in 1949. He was called by the Punjab University at Chandigarh to organise its Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology in 1965 and worked there for four years as Professor and Head of the Department.

He has widely travelled and has been Visiting Professor to the University of Rome, Universities of Djakarta, Bandung, Surabaya and Dan Pisar in Indonesia, University of Hawaii, University of the Seven Seas and University of San Diego (U. S. A.).

He had been President of the Archaeology and Indian History, Greater India and South-East Asian Studies, sections of the All India Oriental Conference in 1955, 1965 and 1975 respectively. He was also honorary correspondent of the Kern Institute, Leiden (Holland), and the Ecole Francaise D' Extreme-Orient, Paris (France). He was honorary Advisor of Shri Jaya-Chamarajendra Art Gallery, Mysore, and honorary Director of the Asoka Maurya and Pallava Historical Trust, Pondicherry.

Research scholars have been receiving his guidance and more than a dozen scholars have received Doctorate degrees.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. Chhabra has contributed nearly two hundred articles and research papers in English, Hindi and Sanskrit, on Archaeology, Epigraphy, Numismatics, History and Greater India in journals and periodicals published in India and abroad. His major contribution is in the field of epigraphy and expansion of Indian culture in South-East Asia. Besides the **Expansion of Indo-Aryan Culture During Pallava Rule**, his major contribution is the revised edition of the **Corpus Inscriptionum Indicarum Volume III (Inscriptions of the Early Guptas).** He has composed several poems in Sanskrit and they are collected in the **Pushpahasah.**

Dr. Chhabra has been conferred the fellowship by the Asiatic Society, the Epigraphical Society of India and the Epigraphic Society of San Diego. On Feb. 3, 1979, he was presented a Copper-Plate and on August 8, 1979, was conferred the title of Puratattva-Visharada at Bangalore. He was presented the Felicitation Volume Svasti Sri by his friends and admirers in 1984.

The contribution of Dr. Chhabra in the field of Indological studies has been very substantial, which gives new direction to the serious students of the subject. His love for Sanskrit and his life-long experience as an epigraphist have invested his contributions with authenticity. It was the privilege of the Ananta-Jyoti Vidyapitha to confer on him the **Itihasa-Manishi** honour on Feb. 12,1982. He is still active with his literary pursuits. He is a modest man and was shy of accepting the honour, as do all great man of learning.

Address : P-6, Hauz Khas Enclave, New Delhi-110 016

Important Publications महत्त्वपूर्ण कृतियां

1- Expansion of Indo-Aryan Culture during Pallava Rule (as evidenced by inscriptions) (enlarged edition, 1965)
2- Antiquities of Chamba States (Vol. II)
3- Diplomatic of Sanskrit Copper-plate Grants
4- An Anthology of Sanskrit Inscriptions
(साहित्यरत्नकोशे अभिलेखसंग्रहः)
5- Bhojacharita of Sri Rajavallabha (edited jointly with S. Sankara-Narayanan with English introduction, notes and appendices)
6- Museums and Democracy
7- Epigraphia Indica, Volumes XXVI & XXVII (edited and prepared indices)
8- Annual Reports on Indian Epigraphy for 1945-1946, 1946-47 and 1947-48
9- Inscriptions of the Early Guptas (revised Vol. III of the Corpus Inscriptionum Indicarum) (Collab. Dr. D. R. Bhandarkar and G. S. Gai) (1982)
10- Catalogue of the Gupta Gold Coins in the National Museum, New Delhi (1986)
11- पुष्पहासः (Anthology of Sanskrit poems) (1985)
12- लोकोक्तियाँ और मुहावरे (हिन्दी)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० राम कुमार दीक्षित

डा० दीक्षित का जन्म १३ मई, १९०८ ई०, को पेशावर (जो अब पाकिस्तान में है) में हुआ था और वह ५ दिसम्बर, १९७९ ई०, को लखनऊ में दिवंगत हुए। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा पेशावर में हुयी थी तथा माध्यमिक स्तर से आगे की समस्त शिक्षा लखनऊ में हुयी। १९३३ में उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान पर उत्तीर्ण की तथा गोपाल चन्द्र मुकर्जी स्वर्ण-पदक अर्जित किया और एल-एल० बी० की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उक्त विश्वविद्यालय द्वारा १९५३ में उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी तथा गोपालदास स्मारक स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। वह १९३३-३६ में लखनऊ विश्व-विद्यालय के इतिहास विभाग में रिसर्च फ़ैलो रहे, तत्पश्चात बीकानेर स्थित डूंगर कालेज में १९३६-४० में प्राध्यापक रहे, १९४०-४१ में लखनऊ विश्वविद्यालय में अस्थायी प्रवक्ता रहे, और १९४१-४३ में कानपुर में कान्यकुब्ज इण्टर कालेज के वाइसप्रिंसिपल रहे।

१९४३ में उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्यापन प्रारम्भ किया और इतिहास विभाग में प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रवक्ता के पद पर नियुक्त हुए, तथा १९५५ में रीडर के पद पर प्रोन्नत हुए। १९५८ में वह प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग में प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष नियुक्त किये गये, तथा १९६८-७० में वह कला संकाय के अध्यक्ष भी रहे। १९७० में अधिवर्षता प्राप्त करने के पश्चात् विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा उन्हें तीन वर्ष के लिये रिसर्च प्रोफेसर नियुक्त किया गया।

उनके मार्गदर्शन में १७ शोध-छात्रों ने पी-एच० डी० की उपाधि और तीन ने डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की।

वह शैक्षणिक क्रिया-कलापों से सक्रिय रूप से सम्बद्ध थे और यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी के १९५४ से १९७९ तक अवैतनिक सचिव रहे। वह मध्य प्रदेश इतिहास परिषद के संस्थापक भी थे तथा गोरखपुर अधिवेशन में आल इण्डिया न्यूमिस्मेटिक कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष निर्वाचित किये गये थे। वह उ० प्र० संग्रहालय परामर्शदात्री परिषद, उ० प्र० राज्य पुरातत्त्व परामर्शदात्री परिषद, उ० प्र० मुद्रा समिति, सेन्ट्रल एडवाइज़री बोर्ड ऑफ आर्कलॉजी, भारत सरकार की वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली की स्थायी समिति, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑफ़ इण्डिया, और आल इण्डिया ओरिएन्टल कान्फ्रेन्स, के सदस्य थे।

डा० दीक्षित ने शताधिक लेख एवं शोध-पत्र प्रकाशित किए थे और कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें भी लिखी थी। कन्नौज और कुशीनगर पर उनकी लघु-पुस्तिकायें तथा सह-लेखन में लिखित उत्तर प्रदेश के बौद्ध केन्द्रों का परिचय, सूचनावर्धक है। उनका वृहद् शोध-ग्रन्थ जेजाकभुक्ति के चन्देलों के इतिहास पर है और दो भागों में है। भाग-एक में राजनैतिक इतिहास पर प्रकाश डाला गया है तथा भाग-दो में प्रशासन एवं संस्कृति पर। अपनी मृत्यु के दिन तक वह कार्यरत थे और स्मृति ग्रन्थों में राजनैतिक व्यवस्था के ऊपर ग्रन्थ का प्रणयन कर रहे थे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० दीक्षित एक स्नेहशील अध्यापक थे जो सदैव ही अपने विद्यार्थियों को अध्ययन और लेखन के लिए प्रोत्साहित करते थे। उनकी पाठन शैली चित्रात्मक एवं रोचक थी ताकि जिज्ञासु विद्यार्थी की अभिरुचि प्रतिमा शास्त्र तथा प्राचीन भारतीय स्मारक और भूगोल जैसे शुष्क विषयों में जागृत हो सके। यह अनन्त-ज्योति विद्यापीठ का सौभाग्य था कि वह १२ फरवरी, १९७९, को उन्हें इतिहास-मनीषी सम्मान से सम्मानित कर सकी। यह दुःख की बात है कि वह अब हमारे बीच नहीं हैं। विद्यापीठ प्रवर समिति उनकी स्मृति के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलिनिवेदित करती है।

उनके एक शिष्य, श्री रमाकान्त जैन, के उनके मृत्यु-दिवस पर उद्गार :—

आज एक इतिहास-मनीषी स्वयं इतिहास हो गया।
कल तक जो वर्तमान था आज अतीत हो गया।
किन्तु क्या हम उसे भुला बैठेंगे ?
उसकी स्मृति को बिसरा बैठेंगे ?
नहीं, नहीं, यह इतना आसान नहीं हैं।
उनकी सौम्य स्नेह मूर्ति मन मन्दिर में प्रतिष्ठित रहेगी,
इतिहास अध्ययन की सतत प्रेरणा देती रहेगी।
राम की तरह "राम कुमार" अमर होंगे इतिहास में,
"राम" की ज्ञान ज्योति जगती रहेगी संसार में।

Dr. R. K. Dikshit

Dr. Dikshit was born on May 13, 1908 A. D., at Peshawar (now in Pakistan), and left for heavenly abode on Dec. 5, 1979 A. D., at Lucknow. He had his early education at Peshawar, but from the secondary stage onwards all his education was done at Lucknow. He did M. A in History in first division with first position, winning Gopal Chandra Mookerjee Gold Medal, and also LL. B. in the first division, in 1933, from the Lucknow University. He was also awarded the degree of Ph. D. in 1953 by that University and was also presented the Gopal Das Memorial Gold Medal for his thesis.

He was a Research Fellow in the Department of History in the Lucknow University during 1933-36, then a teacher in the Doongar College at Bikaner during 1936-40, a temporary lecturer in the Lucknow University during 1940-41, and Vice-Principal, Kanyakubja Inter College, Kanpur during 1941-43, before he finally joined the Lucknow University teaching faculty in 1943.

In 1943 he was appointed Lecturer of Ancient Indian History in the Department of History, and was promoted as Reader in 1955. In 1958 he was appointed Professor and Head of the Department of Ancient Indian History and Archaeology, and was also Dean, Faculty of Arts. during 1968-70. On his superannuation in 1970 he was appointed Research Professor by the Univerity Grants Commission for three years.

Under his guidance 17 scholars got Ph. D. and 3 got D. Litt.

CC-0. Bhagavad Ramanuja N...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

He was actively associated with academic activities, and was Honorary Secretary of the U.P. Historical Society from 1954 to 1979. He was also the founder of the Madhya Pradesh Itihasa Parishad, and was elected President of the All India Numismatic Conference at its Gorakhpur session. He was also a member of the U. P. Museums Advisory Board, U. P. State Archaeological Advisory Board, U. P. Numismatic Committee, Central Advisory Board of Archaeology, Standing Committee on Scientific and Technical Terminology (Government of India), Indian History Congress, Numismatic Society of India, and All India Oriental Conference.

Dr. Dikshit had written more than a hundred articles and research papers, and some important books. His monographs on **Kannauj** and **Kushinagar**, in Hindi, and **Buddhist Centres in Uttar Pradesh** (Co-authored), are informative. His *magnum opus* **The Candellas of Jejakabhukti** is in two parts, Part I dealing with Political History and Part II, with Administration and Culture. At the time of his death he was still working on the **Political System in the Smritis**.

Dr. Dikshit was an affectionate teacher who always encouraged his students to study and write. His method of teaching was illustrative and interesting so that the student could develop interest in such obtruse subjects as Iconography, Ancient Indian Monuments and Geography.

It was the privilege of the Ananta-Jyoti Vidyapitha to confer the honour of Itihasa-Manishi on him on Feb. 12, 1979. It is sad that he is no longer with us. The Vidyapitha Pravara Samiti takes this opportunity to pay its humble tributes to his sacred memory.

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० ज्योति प्रसाद जैन

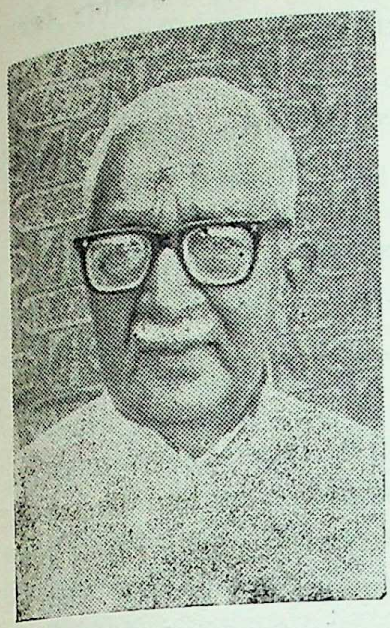

डा० जैन का जन्म ६ फरवरी, १९१२ ई०, को उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के ग्राम ख्वाजा नगला में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा मेरठ में हुयी और उच्च शिक्षा मेरठ तथा आगरा में। उन्होंने १९३३ में सेंट जान्स कालेज, आगरा, से बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और मेरठ कालेज, मेरठ, से १९३५ में एल-एल० बी० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा १९३६ में इतिहास एवं राजनीति शास्त्र विषय में एम० ए० की परीक्षा प्रथम स्थान पर उत्तीर्ण की। यह दोनों कालेज आगरा विश्वविद्यालय के अंतर्गत थे। १९५६ में आगरा विश्वविद्यालय ने प्राचीन भारत के इतिहास के जैन स्रोतों पर उनके शोध-प्रबंध पर उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

उन्होंने विविध प्रकार के व्यवसाय किये यथा वकालत, अध्यापन, व्यापार और राजकीय सेवा, परन्तु अध्ययन, शोध तथा लेखन के प्रति उनका उत्साह कभी भी कम नहीं हुआ। उनके अध्ययन का क्षेत्र जैनविद्या के संदर्भ से भारतीय विद्या रहा है और वह इतिहास, संस्कृति, साहित्य, कला, धर्म और दर्शन को आवृत्त करता है। वह प्रारम्भ से ही सामाजिक कार्य के प्रति आकृष्ट हो गये थे और १९२८ में कांग्रेस सेवा दल की सदस्यता स्वीकार कर राष्ट्रीय आंदोलन में सम्मिलित हो गये थे। १९३१ में असहयोग आंदोलन के बाद उन्होंने अपना ध्यान पूरी तरह अध्ययन की ओर लगाया क्योंकि राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये ज्ञान और शिक्षा को प्रथम प्राथमिकता दिया जाना अभीष्ट था। उन्होंने पुन: राजनीति की ओर ध्यान नहीं दिया परन्तु अपने समय और शक्ति को समाज सुधार के आंदोलनों में लगाया। राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति उनका प्रेम और उसको समृद्ध करने के लिये उनके प्रयास कभी भी शिथिल नहीं हुये, उसके बाद से जब कि वह आगरा में हिन्दी प्रचारिणी सभा के संपर्क में आये थे और उन्होंने १९३२ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्य-विशारद परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी।

१९५८-७२ में उत्तर प्रदेश के डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर्स के संकलन अधिकारी एवं उपसम्पादक के रूप में उन्होंने गज़ेटियर्स की रूपरेखा सुनिश्चित की और प्राय: १५ गज़ेटियर्स के इतिहास - अध्याय को स्वयं ही लिखा।

वह बहुत सी अखिल भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक और शोध संस्थाओं से सम्बंधित रहे हैं। वह भारतीय ज्ञानपीठ मूर्ति देवी ग्रंथमाला के सम्पादक हैं, भारतीय ज्ञानपीठ के न्यासी सदस्य हैं, वैशाली के प्राकृत शोध संस्थान के पार्षद हैं और वाराणसी के श्री स्याद्वाद महाविद्यालय के उपाध्यक्ष हैं। वह तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के संस्थापक सदस्य हैं और उसकी कार्यकारिणी के सदस्य तथा उसके शोध कार्यक्रमों एवं पुस्तकालय के निदेशक हैं। अपने स्वयं के पुस्तक-संग्रह की व्यवस्था तथा साहित्यिक कार्यक्रमों के व्यवस्थित संचालन के लिये उन्होंने स्वयं भी एक ट्रस्ट बनाया है। शोध छात्रों को मार्गदर्शन प्रदान करने में वह सदैव ही तत्पर रहते हैं और कितने ही छात्रों ने अपने शोध कार्य में उनका मार्गदर्शन एवं सहायता प्राप्त की है।

भारतीय विद्या के क्षेत्र में उनके विद्वत्तापूर्ण योगदान के लिये ७ फरवरी, १९५७, को लखनऊ में श्री जैन धर्म प्रवर्द्धिनी सभा द्वारा उनका सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया था। पुन: अखिल विश्व जैन मिशन के भोपाल अधिवेशन में इतिहास-रत्न की मानद उपाधि से उनका २९ अप्रेल, १९५८, को सम्मान किया गया था

CC-0. Bhagavad Ramanuja M...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

और १९७४ में श्री वीर निर्वाण भारती द्वारा मेरठ में उनको विद्यावारिधि की उपाधि प्रदान की गयी थी। १४ दिसम्बर, १९८६, को दिल्ली में अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा उन्हें डिप्टीमल जैन पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। वह कितनी ही अखिल भारतीय संस्थाओं के सदस्य हैं जैसे कि दिगम्बर जैन परिषद, जैन महासमिति और जैन मिलन, तथा विभिन्न स्थानीय संस्थाओं से सम्बद्ध हैं।

उन्होंने एक सहस्त्र से भी अधिक लेख तथा शोध पत्र हिन्दी और अंग्रेजी में, भारत में और भारत के बाहर प्रकाशित किये हैं, और आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारण किये हैं। उन्होंने ८० से भी अधिक पुस्तकों का प्रणयन किया है, जिनमें से कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उनका प्रथम लेख १९३२ में जब वह विद्यार्थी ही थे, प्रकाशित हुआ था। १९५४ से १९८३ तक जैन संदेश के शोधांक का उन्होंने सम्पादन किया और ५१ शोधांक प्रकाशित किये। वह अभी भी क्रियाशील हैं और दी 'जैना एन्टीक्वेरी/जैन सिद्धान्त भास्कर के सम्पादक हैं तथा उनके सम्पादकत्व एवं निर्देशन में लखनऊ से एक त्रैमासिक शोध-पत्रिका **शोधादर्श** भी प्रकाशित की जा रही है।

भारतीय इतिहास और संस्कृति तथा इतिहास के जैन स्रोत और जैन धर्म पर डा० जैन एक अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के अधिकारी विद्वान हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास के जैन स्रोतों पर उनका अकेला प्रामाणिक ग्रन्थ है और विद्वत् जगत में उस का प्रभूत समादर किया गया है। उनका दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ **भारतीय इतिहास : एक दृष्टि** है जो भारतीय इतिहास के अध्ययन को दक्षिण भारत के प्रति और बौद्ध एवं ब्राह्मणीय स्रोतों के अतिरिक्त अन्य स्रोतों के प्रति न्याय करके नया आयाम प्रदान करता है। जैनों के धर्म एवं संस्कृति पर अंग्रेजी में उनकी पुस्तक बहुत ही लोकप्रिय हुयी है और उसके तीन संस्करण समाप्त हो गये हैं।

उनके आशीर्वाद से ही विभिन्न बौद्धिक और शैक्षणिक कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये थे जिन्होंने बाद को अनन्त-ज्योति विद्यापीठ के रुप में संस्थागत स्वरूप धारण किया। एक विद्वान के रूप में गहन, एक शोधक के रुप में वस्तु-परक और चिन्तक के रुप में प्रगतिशील परन्तु पारम्परिक दृष्टिकोण से विच्छिन्न नहीं, ज्ञान के कोष में डा० जैन का योगदान बहुतों के लिए स्पृहा अपितु प्रेरणा का स्रोत है। वह विद्यापीठ के अध्यक्ष हैं और उसके मार्गदर्शक हैं। विद्यापीठ प्रवर समिति ने अपने प्रथम अभिनन्दन समारोह में १२ फरवरी, १९७९, को उन्हें इतिहास-मनीषी सम्मान से सम्मानित करने का निश्चय किया था और पर्याप्त संकोच के पश्चात वह इसके लिये तैयार हुए थे।

डा० जैन की कृतियों की एक संदर्भसूची फरवरी १९७९ में **डा० ज्योति प्रसाद जैन कृतित्व परिचय** पुस्तक में प्रकाशित की गयी थी और पंचवर्षीय अनुपूरक १९८४ में प्रकाशित किया गया था। ६ फरवरी, १९८७, को उनके अमृत महोत्सव पर प्रकाशित **पुष्पांजलि** में एक अर्धशताब्दी से अधिक के उनके कृतित्व की समीक्षा की गयी है।

उनके एक प्रशंसक श्री प्रसन्न कुमार दीक्षित 'शेखर' के उद्‌गार

प्रखर मनीषी हैं इतिहास के, संस्कृति के हैं ज्ञानी।
उन ज्योतिर्मय ज्योति प्रसाद की वन्दनीय है वानी ।।
मानव के मानस को देकर भारतीय चिर दर्शन।
किया सतत आलोकित युग को करके विद्या-अर्जन ।।
जिनका ज्योतिर्मय है जीवन, उनका है प्रिय अभिनन्दन।
उनके ज्ञान ध्यान अरु तप को शतशत चिर वन्दन ।।

पता : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६०१९

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. Jyoti Prasad Jain

Dr. Jain was born on Feb. 6, 1912 A. D., at village Khwaja Nagla in the Meerut district of Uttar Pradesh. He had his early education at Meerut and higher education at Meerut and Agra. He did B. A in 1933 from the St. John's College, Agra, and LL. B. in 1935 in first divison and M. A. in History-cum-Political Science with first position, in 1936, from the Meerut College, Meerut, under the Agra University. In 1956 he was awarded Ph. D. by the Agra University on his thesis– "The Jaina Sources of the History of Ancient India."

He had a variety of vocations, *e. g.*, law, teaching, business and government service, but his passion for study, research and writing never ebbed. His field of specialisation has been Indology with particular reference to Jainology, and covers history, culture, literature, art, religion and philosophy.

Early in his life he was drawn to social work and in 1928 he also joined the National Movement by enrolling himself in the Congress Seva Dal. After the Non-co-operation Movement in 1931 he devoted himself to study because knowledge and education ought to be the first priority in any national upsurge. He never looked back to politics, but he gave his energies to movements of social reform. His love for the National Language, Hindi, and efforts at enriching it, never mellowed down ever since he was associated with the Hindi Pracharini Sabha at Agra and his taking the Sahitya–Visharada examination of the Hindi Sahitya Sammelan in 1932 and passing it in the first division.

As Compilation Officer and Sub-Editor of the District Gazetteers of Uttar Pradesh during 1958–72, he set the pattern for the Gazetteers and wrote History chapter of some fifteen Gazetteers.

He has been associated with several all-India social, cultural and research institutions. He is the Editor of the Bharatiya Jnanapith Moorti Devi Granthmala, Member-Trustee of the Bharatiya Jnanapith, Member of the Executive Council of the Prakrit Research Institute (Vaishali) and Vice-President of Sri Syadvada Mahavidyalaya (Varanasi). He is also a founder member of the Tirthankara Mahavira Smriti Kendra Samiti, U. P., and a member of its executive and Director of its research activities and library. He has himself set up a Trust to manage his personal library and carry on his academic activities. He is always helpful to the research scholars and many scholars have availed of his guidance and assistance in their research work.

For his scholarly contribution to the field of Indology he was accorded a public ovation by the Jain Dharma Pravardhini Sabha at Lucknow on 7.2.1957, was decorated with Itihasa-Ratna at the Bhopal Session of the World Jain Mission on 29-4-1958, was conferred the Vidyavaridhi title by Sri Veer Nirvana Bharati at Meerut in 1974, and was presented the Deputymal Jain Award by the Ahimsa International at Delhi on Dec. 14, 1986.

He is a member of several all-India bodies such as the Digambar Jain Parishad, Jain Mahasamiti and Jain Milan, and is associated with several local associations and institutions.

He has written more than a thousand articles/research papers in Hindi and English in journals, periodicals and newspapers published in India and abroad, and has broadcast from

CC-0. Bhagavad Ramanuja M...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

the AIR and TV. He has also written more than 80 books, some of which are very important. His first article was published in 1932 when he was a student. From 1958 to 1983 he edited the research supplement of the Jain Sandesh and brought out 51 Shodhanka. He is still active and is the editor of The Jaina Antiquary/Jain Sidhanta Bhaskar. A research quarterly, Shodhadarsh, is being published under his editorship and guidance from Lucknow.

Dr. Jain is the internationally reputed authority on Indian history and culture with particular reference to the Jaina sources and Jainism. **The Jaina Sources of the History of Ancient India** is the only authentic work on the subject and has been widely acclaimed in the academic circles. His another important work **Bharatiya Itihasa : Ek Dristi** gives a new dimension to the study of Indian History by doing justice to South India and to sources other than the Buddhist and Brahmanical. His **Religion and Culture of the Jains** has been very popular and its three editions have run out; it is an epitome on Jainism, simple and lucid in style but comprehensive in treatment.

It was with his blessings that the various intellectual and educational activities were initiated which took the institutional form of the Ananta-Jyoti Vidyapitha. Thorough as a scholar, objective as a researcher, and progressive as a thinker though conventional in his approach, his contribution to the fund of knowledge is a matter of envy, albeit of inspiration, to many. He is the Chairman of the Vidyapitha and its guiding force. The Vidyapitha Pravara Samiti took the opportunity of honouring him and prevailed upon him to accept the Itihasa-Manishi honour, despite his great reluctance, on Feb. 12, 1979, at its first felicicitation function.

A bibliography of Dr. Jain's works and writings was published in the **Dr. Jyoti Prasad Jain Krititva Parichaya** in February 1979 and its quinquennial supplement was issued in 1984. The **Pushpanjali** issued on his Amrita Mahotsava on Feb. 6,1987, contains appreciation of his work over the past more than half-a-century.

Address : Jyoti Nikunj, Charbagh. Lucknow–226019

Important Works महत्त्वपूर्ण कृतियां

1. The Jaina Sources of the History of Ancient India, 100. B. C.–900 A. D. (1964)
2. Religion and Culture of the Jains (1975, 1977, 1983)
3. Bhagwan Mahavira : Life, Time and Teachings (1983)
4. Jainism through the Ages
5. हस्तिनापुर (1955)
6. प्रकाशित जैन साहित्य (प्रस्तावना तथा सम्पादन) (1958)
7. भारतीय इतिहास : एक दृष्टि (1961, 1966)
8. तीर्थंकरों का सर्वोदय मार्ग (1974)
9. प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें (1975)
10. भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ (सम्पादित) (1975)
11. आदितीर्थ अयोध्या (1979)
12. युग-युगों में जैन धर्म

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Select Opinions विशिष्ट अभिमत

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री—

डा० ज्योति प्रसाद जैन जी ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें गुणीजनों के प्रति प्रमोदभाव है और गुणीजनों का उनके प्रति प्रमोदभाव है। किन्तु वे गीता के उस स्थितिप्रज्ञ की तरह हैं जिसका कार्य करने में विश्वास है, किन्तु उसके फल की ओर से उदासीनता है। साहित्य-सेवा भी एक व्यसन है और वह व्यसन जिसे लग जाता है वह छूटता नहीं है। फिर वह "स्वान्तः सुखाय" हो जाता है। डा० ज्योति प्रसाद जी भी उन्हीं साहित्य व्यसनियों में से हैं।

पं० अमृत लाल शास्त्री—

आप लिखते हैं, खूब लिखते हैं, अच्छा लिखते हैं और जो भी लिखते हैं वह प्रमाणों पर आधृत रहता है—यह सोचकर मैं मन ही मन सदा प्रसन्नता का अनुभव करता हूं। जैन समाज के वरिष्ठ लेखक स्वनामधन्य प्रेमी जी, मुख्तार साहब, उपाध्ये जी और डा० हीरालाल जी अब नहीं रहे। उनके रिक्त स्थानों की पूर्ति आप सफलतापूर्वक कर रहे हैं।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल—

शोधांक देखकर आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। आपने ३२ पृष्ठों के इस अंक को उपयोगी सामग्री से भर दिया है। इसे देखकर पुराने जैन भास्कर पत्र का स्मरण हो आया। जैन सामग्री का सुसमीक्षित सम्पादन इस पत्र के द्वारा सुलभ होता रहा तो निस्सन्देह आप जैन विद्या की महती और स्थायी सेवा करेंगे। जैन भण्डारों में हस्तलिखित ग्रन्थों की और भारतीय संग्रहालयों में पुरातत्त्व की जो अथाह सामग्री भरी है, उन दोनों पर आपने ध्यान दिया है। निस्सन्देह इस पत्र के पीछे बहुत ही सुलझा हुआ मस्तिष्क कार्य कर रहा है।

Dr. B. Ch. Chhabra—

The contribution of the Jaina sources to the making of the history of our great nation during the epoch-making millennium of 100 B. C. to A. D. 900, is of vital importance. But it has only lacked proper research and application. Dr. J. P. JAIN, who is an erudite scholar of Indian history and culture, makes good the loss and applying his scholarship to this hitherto neglected yet important field, he has indicated, classified and objectively assessed the Jaina sources of the history of India. He has fixed the dates of the Mahavira Era, the Vikrama Era, the Earlier Saka Era and the Saka Era as well as the dates of important Jaina authors and literary works, and thus cleared much of the fog that masks Indian chronology, both political and cultural.

Prof. G. Brahmappa—

I read thrice your monumental **Religion and Culture of the Jains.** The language you have adopted in this work is picturesque. The style is simply attractive. The subject matter is clear. Your book is a rainbow among modern works regarding Jainism.

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja Math

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० आर्थर लेवेलिन बाशम

डा० बाशम का जन्म १९१४ ई० में इंगलैन्ड में एसेक्स में लिटन नामक स्थान पर हुआ था और उनका स्वर्गवास २७ जनवरी, १९८६ ई०, को भारत में कलकत्ता नगर में हुआ। उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्कूल ऑफ़ ओरियेन्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज से प्रो० एल० डी० बारनेट के मार्गदर्शन में आजीवक सम्प्रदाय के इतिहास और दर्शन पर १९५० में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। १९६५ में लंदन विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया था। १९६९ में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय ने डी० लिट्० की मानद की उपाधि से और १९७५ में नालन्दा महाविद्यालय ने विद्यावारिधि की मानद उपाधि से उन्हें सम्मानित किया था। १९७५ में बी० सी० लॉ स्वर्णपदक उन्हें प्रदान किया गया था और १९८५ में एशियाटिक सोसाइटी द्वारा उन्हें ऑनरेरी फेलो के रूप में अंगीकार किया गया था।

१९४८ से १९६५ तक डा० बाशम ने लंदन विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। तत्पश्चात् वह आस्ट्रेलिया चले गये और वहाँ आस्ट्रेलियन नेशनल यूनीवर्सिटी, कैनबरा, में प्राच्य सभ्यता (एशियाई सभ्यता) विभाग का व्यवस्थापन किया तथा उक्त विभाग में १९६५ से १९८० तक वह प्रोफेसर एवं अध्यक्ष रहे। सेवानिवृत्ति के बाद वह भारत आगये और १९८५ में एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, में स्वामी विवेकानन्द प्रोफेसर के पद पर प्रतिष्ठित रहे।

वह प्राय: भारत आते रहते थे। अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन के कई अधिवेशनों में उन्होंने भाग लिया था तथा अखिल भारतीय संस्कृत परिषद में व्याख्यान देने के लिये वह लखनऊ भी आये थे। कुषाणकाल से संबंधित सम्मेलनों में भी उन्होंने भाग लिया था।

डा० बाशम "दि वन्डर दैट वाज़ इन्डिया" नामक अपने ग्रन्थ से सुविख्यात हैं। भारतीय इतिहास और संस्कृति में उनकी अभिरुचि निरंतर बनी रही। एक समय था कि भारतीय विश्वविद्यालयों में प्राचीन भारतीय इतिहास के बहुत से प्रोफेसर लंदन विश्वविद्यालय में उनके विद्यार्थी रहे थे। वह सदैव ही प्रोत्साहन देते थे, इतिहास के ब्रिटिश पक्ष की आलोचना का समादर करते थे, और विचार-विनिमय तथा साक्ष्य एवं तर्क से पुष्ट मतभेद का स्वागत करते थे। इसका एक उदाहरण डा० शशि कान्त की खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख और अशोक के भाब्रु लेख पर पुस्तक है जिसकी प्रस्तावना उन्होंने लिखी है।

भारतीय इतिहास और संस्कृति के गंभीर अध्ययन, इतिहास लेखन के प्रति समर्पण तथा इस देश के प्रति प्रेम के लिये डा० बाशम को इतिहास-मनीषी सम्मान से सम्मानित करने का निश्चय अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति ने किया था। परन्तु उनके जीवन काल में उनका अभिनन्दन करने का सुयोग हमें नहीं मिल सका। आज विद्यापीठ प्रवर समिति डा० बाशम का मृत्योपरान्त इतिहास-मनीषी सम्मान से सत्कार करती है और उनकी पवित्र स्मृति के प्रति अपनी विनयावनत श्रद्धांजलि निवेदित करती है।

Dr A. L. Basham

Dr. Basham was born in 1914 A. D. at Lytton, Essex, in England, and he left for heavenly abode on Jany. 27, 1986 A. D., at Calcutta in India. He did Ph. D. from the School of Oriental and African Studies, London University, under the supervision of Prof. L. D. Barnett, on the History and Doctrines of the Ajivakas, in 1950. The University of London awarded him the Degree of D. Litt. in 1965. He was conferred Hon. D. Litt.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

by the Kurukshetra University in 1969 and Vidyavaridhi by the Nalanda Mahavidyalaya in 1975, was awarded the B. C. Law Gold Medal in 1975, and was adopted as Hony. Fellow by the Asiatic Society in 1985.

Dr. Basham taught at the University of London from 1948 to 1965. He moved to Australia and orgnised the Department of Oriental Civilisations (Asian Civilisation) at the Australian National University, Canberra, as Professor and Head of the Department from 1965 to 1980. On retirement, he made India his home and in 1985 chaired the Swami Vivekananda Professorship at the Asiatic Society, Calcutta.

He had been often to India, had participated in several sessions of the All India Oriental Conference, and had also visited Lucknow to deliver lecture at the Akhil Bharatiya Sanskrit Parishad. He also participated in the conferences on the Kushana Age.

Dr. Basham is widely known for his 'The Wonder that was India'. His interest in Indian History and Culture sustained throughout. Many professors of Ancient Indian History in the Indian Universities at one time, had been his students at the University of London. He was always encouraging, appreciated criticism of the British view of history, and welcomed discussion and honest difference of opinion backed by evidence and reason. His Foreword to Dr. Shashi Kant's 'The Hathigumpha Inscription of Kharavela and the Bhabru Edict of Asoka – A Critical Study' is a case in point.

The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti had decided to confer on Dr. Basham the honour of Itihasa-Manishi for his indepth study of Indian history and culture, his devotion to historiography and his love for this country, but the Supreme Will did not allow us the privilege of honouring him in person. This day the Vidyapitha Pravara Samiti confers the Itihasa-Manishi honour on Dr. Basham posthumously and pays its humble tributes to his sacred memory.

Works कृतियां

1- History and Doctrines of the Ajivakas (1951)
2- The Wonder that was India (1954)
3- The Indian Sub-continent in Historical Perspective (1955)
4- Studies in Indian History and Culture (1964)
5- Aspects of Ancient Indian Culture (1966)
6- Papers on the Date of Kanishka (ed.) (1968)
7- The Civilisations of Monsoon Asia (ed.) (1974)
8- A Cultural History of India (ed.) (1975)
9- Evolution of Hinduism from the Rigveda to the Bhagavadgita

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja M...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० जनार्दन दत्त शुक्ला

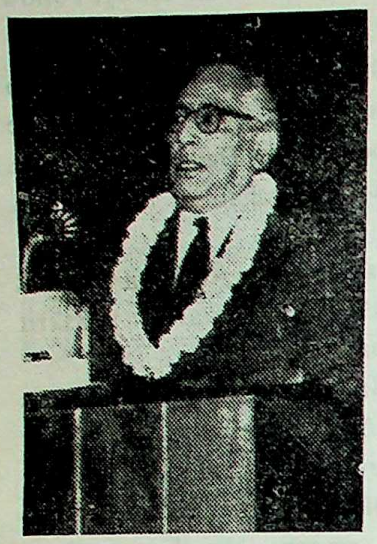

डा० शुक्ला का जन्म १ जुलाई १९१५ ई०, को बाँदा में हुआ था और वह १९ अप्रैल, १९८५ ई०, को लखनऊ में स्वर्गवासी हुये। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा बाँदा में हुयी और उच्च शिक्षा उन्होंने इलाहाबाद, लंदन और आक्सफोर्ड के विश्वविद्यालयों में प्राप्त की। उन्हें १८३४-१९४७ के बीच अखिल भारतीय सेवाओं के भारतीयकरण तथा उसके प्रशासन पर प्रभाव विषयक शोध-प्रबन्ध पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० की उपाधि प्रदान की गयी थी।

१९३९ में उनकी नियुक्ति इन्डियन सिविल सर्विस में हुयी और वह यू० पी० संवर्ग को आवंटित किये गये। अपने सेवाकाल में उन्होंने विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य किया। वह कितने ही जिलों में जिलाधिकारी रहे, गोरखपुर, फैजाबाद और इलाहाबाद मंडलों में आयुक्त रहे, आई० ए० एस० ट्रेनिंग स्कूल के वाइस प्रिंसिपल रहे, भारत सरकार में सप्लाईज एण्ड डिस्पोजल के उप-महानिदेशक रहे, लंदन स्थित भारतीय दूतावास में स्टोर्स के महानिदेशक रहे, और राजस्व परिषद तथा उ० प्र० कृषि-औद्योगिक निगम के अध्यक्ष रहे। १९७३ में वह सेवानिवृत्त हुये। अपने सुदीर्घ प्रशासनिक अनुभव के कारण उन्हें १९८० में राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल का सलाहकार नियुक्त किया गया। तत्पश्चात् उन्हें जिलास्तरीय प्रशासन सुधार आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया और अपनी मृत्यु के समय वह उसी पद पर कार्यरत थे।

उन्होंने भारत भर में भ्रमण किया था और कोई १५ विदेशों में भी यात्रा की थी। इतिहास में उन्होंने अपनी अभिरुचि को बनाये रखा, इसके अतिरिक्त वह समाजशास्त्र, नृशास्त्र, तुलनात्मक धर्म, दर्शन, तत्त्वज्ञान, जीवनी और यात्रा-संस्मरणों में भी रुचि रखते थे तथा उन्होंने इस्लाम का विशेष अध्ययन किया था। वह रामचरितु मानस से भक्तिपूर्वक जुड़े थे। समय-समय पर उन्होंने इन विषयों पर लेख लिखे, आकाशवाणी और दूरदर्शन पर वार्तायें प्रसारित कीं तथा पुस्तकों की समीक्षा की। भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि को समझने के लिये उन्होंने संस्कृत का भी अध्ययन किया और वह उर्दू शायरी का भी आनन्द लेते थे।

रोनाल्ड हन्ट और प्रो० हैरिसन द्वारा संपादित 'दि डिस्ट्रिक्ट आफिसर इन इन्डिया' में उनका योगदान है। उन्होंने भारत में राज्य एवं जिला प्रशासन पर और अखिल भारतीय सेवाओं के भारतीयकरण एवं प्रशासन पर उसके प्रभाव पर प्रामाणिक ग्रन्थों का प्रणयन किया। उनके संस्मरण एवं समीक्षाओं से संबंधित पुस्तक उनके जीवनकाल में प्रकाशित नहीं हो सकी।

वह सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गतिविधियों से सक्रिय रूप से सम्बद्ध थे। १९७५ में उन्होंने 'भारतीय संस्कृति पर जैन धर्म का प्रभाव' विषयक संगोष्ठी में लोक-संस्कृति से संबंधित सत्र की अध्यक्षता की थी और 'भारतीय संस्कृति पर महावीर का प्रभाव' पर आकाशवाणी से वार्ता प्रसारित की थी। वह इलाहाबाद यूनीवर्सिटी हिस्टॉरिकल सोसाइटी के तथा रामायण मेला समिति के अध्यक्ष थे। वह सर्वधर्म मिलन के भी संरक्षक थे और उसके द्वारा प्रकाशित "वे टु पीस" का सम्पादन उन्होंने किया था जिसमें भारत में प्रचलित महत्त्वपूर्ण धर्मों के विषय में प्रामाणिक लेखों का संग्रह है और उसमें उन्होंने स्वयं भी हिन्दू धर्म पर अपना विद्वतापूर्ण लेख दिया है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

कठिन शासकीय दायित्वों के बावजूद डा० शुक्ला ने अपनी बौद्धिक अभिरुचि को बनाये रखा और वह इतिहास, दर्शन तथा धर्मों के एक सुप्रसिद्ध विद्वान थे। अखिल भारतीय सेवाओं के भारतीयकरण से संबंधित उनका वृहत् ग्रन्थ एक बहुत ही प्रमाणपुष्ट और सहजतापूर्वक लिखा गया ग्रन्थ है जिसकी उपेक्षा आधुनिक इतिहास अथवा लोक प्रशासन का कोई विद्यार्थी नहीं कर सकता।

उनमें आई० सी० एस० की तमक अवश्य थी परन्तु उन्होंने उसे कभी भी व्यक्तिगत संबंधों में नहीं आने दिया। डा० शुक्ला एक भव्य एवं गरिमामय व्यक्तित्व के धनी थे। वह कभी मान नहीं करते थे परन्तु सदैव ही विनम्रता एवं विशालहृदयता प्रदर्शित करते थे। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति ने उनका इतिहास-मनीषी सम्मान से सम्मानित करने का निश्चय किया था, परन्तु हमें उनके जीवन-काल में उनका अभिनन्दन करने का सुयोग नहीं मिल सका। आज विद्यापीठ प्रवर समिति डा० शुक्ला का मृत्योपरान्त इतिहास-मनीषी सम्मान से सत्कार करती है और उनकी पवित्र स्मृति के प्रति अपनी विनयावनत श्रद्धांजलि निवेदित करती है।

Dr. J. D. Shukla

Dr. Shukla was born on July 1, 1915 A. D., at Banda, and left for heavenly abode on April 19, 1985 A. D., at Lucknow. He had his early education at Banda, and prosecuted higher studies at the Universities of Allahabad, London and Oxford. He was awarded D. Phil. on his dissertation on 'Indianisation of All India Services and its impact on Administration (1834-1947)', by the Allahabad University.

He Joined the Indian Civil Service in 1939 and belonged to the U. P. Cadre. He held various charges as District Magistrate and Collector of several districts, Commissioner of Gorakhpur, Faizabad and Allahabad divisions, Vice-Principal of the I. A. S. Training School, Deputy Director-General of Supplies and Disposals in the Government of India, Director-General of Stores at the Indian High Commission (London), and Chairman of the Board of Revenue and the U. P. Agro-Industrial Corporation before he retired in 1973. Because of his long administrative experience he was called back and appointed Adviser to the Governor during the President's Rule in 1980, and was later assigned the Chairmanship of the District Level Administration Reforms Commission and died in harness.

He had travelled widely all over India and visited some 15 foreign countries. He kept up his interest in History, was interested in sociology, anthropology, comparative religion, philosophy, metaphysics, biography and travellogue, and had made a special study of Islam. He was devoutly attached to the Ramacharit Manasa. Occasionally he wrote articles, gave talks on the Radio and Television, and reveiwed books on these subjects. He studied Sanskrit to get at the root of Indian Culture, and relished Urdu poetry.

He contributed to 'The District Officer in India', edited by Ronald Hunt and Prof. Harrison, and wrote the following works :

1. State and District Administration in India (1976), and
2. Indianisation of All India Services and its impact on Administration (1982).

CC-0. Bhagavad Ramanuja M...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

His 'Reminiscences and Reviews' could not be published during his life-time.

He was actively associated with cultural and literary activities. He presided over the Folk-culture session of the Seminar on 'The Impact of Jainism on Indian Culture', and also gave a talk on 'The Impact of Mahavira on Indian Culture' on the AIR, in 1975. He was president of the Allahabad University Historical Society, and of the Ramayana Mela Samiti. He was also a Patron of the Sarva Dharma Milan and edited its 'Way To Peace' which is a compilation of authentic articles on major religions in India, besides contributing his own masterly piece on Hinduism.

Despite onerous official responsibilities Dr. Shukla kept up his intellectual pursuits, and was an eminent scholar of history, philosophy and religions. His magnum opus 'The Indianisation of the All-India Services' is a very well documented and thoroughly written work which no student of Modern History or Public Administration should ignore.

There was an I. C. S. hauteur no doubt, but he never allowed it to intervene in personal relations. Dr. Shukla was a man of grace and dignity; he was never arrogant but always exhibited a sense of humility and magnanimity. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti had decided to confer on him the honour of Itihasa-Manishi, but we could not have the privilege of doing it during his life-time. This day the Vidyapitha Pravra Samiti confers the Itihasa-Manishi honour on Dr. Shukla posthumously and pays its humble tributes to his sacred memory.

—

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० बैज नाथ पुरी

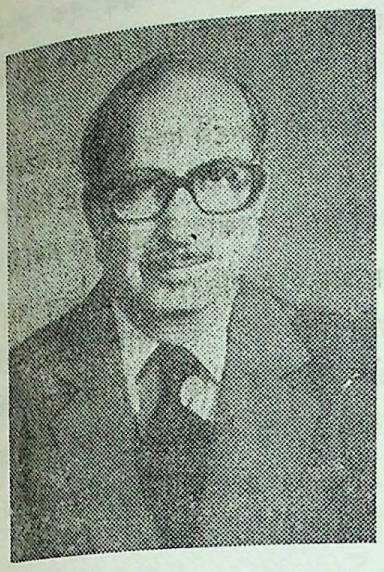

डा० पुरी का जन्म लखनऊ में २५ जनवरी, १९१६ ई०, को हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा भी लखनऊ में ही सम्पन्न हुयी। लखनऊ विश्वविद्यालय से उन्होंने इतिहास विषय में बी० ए० (ऑनर्स) और एम० ए० किया तथा एल-एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की, और इंगलैन्ड स्थित आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से एम० लिट्० और डी० फिल० की उपाधियां प्राप्त कीं।

लखनऊ विश्वविद्यालय में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व के प्रवक्ता के रूप में उनकी नियुक्ति १९४५ में हुयी और १९६० तक वहीं पर उन्होंने अध्यापन कार्य किया। इस बीच १९५०-५१ में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के बोडेन प्रोफ़ेसर के डिप्टी के रूप में भी कार्य किया। जनवरी १९६१ में उनकी नियुक्ति नेशनल एकेडेमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, मसूरी, में भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के प्रोफ़ेसर के पद पर हुयी और वह वहां मार्च १९७१ तक कार्यरत रहे। मार्च १९७१ में लखनऊ विश्वविद्यालय में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफ़ेसर के पद पर उनकी नियुक्ति हुयी। १९७६ में अधिवर्षता प्राप्त करने पर वह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योजना के अंतर्गत १९८१ तक रिसर्च प्रोफ़ेसर के रूप में कार्यरत रहे।

उनके मार्गदर्शन में एक शोध-छात्र ने डी० लिट्० और पाँच शोध-छात्रों ने पी-एच० डी० की उपाधि लखनऊ विश्वविद्यालय से प्राप्त की।

१९५९ में इन्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के प्राचीन भारतीय प्रभाग की, १९६६ में अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन के दक्षिण-पूर्व एशिया प्रभाग की, और १९७५ में 'भारतीय संस्कृति में जैन विचारधारा' संगोष्ठी के कला सत्र की, उन्होंने अध्यक्षता की। यूनेस्को की 'मध्य एशिया का इतिहास एवं सभ्यतायें' नामक प्रायोजना के सम्पादक मंडल के सदस्य के रूप में उनकी नियुक्ति १९८० में हुयी और १९८३ में वह सम्पादक मंडल के उपाध्यक्ष नियुक्त किये गये। वह १९८१ में भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद के फ़ेलो निर्वाचित हुये और १९८४ में उसकी कार्य-पालिका के सदस्य नियुक्त हुये। वह कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर एमेरिटस भी हैं।

यूरोप और भारत मे उन्होंने काफी भ्रमण किया है और विभिन्न विश्वविद्यालयों में भारतीय इतिहास एवं संस्कृति पर व्याख्यान दिये हैं, तथा कुषाण काल में मध्य एशिया के इतिहास से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लिया है।

डा० पुरी एक विपुल लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त हैं। 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' (१९७४) में उनके दो लेख प्रकाशित हैं और २०० से भी अधिक शोध पत्र/लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं, तथा अंग्रेजी और हिन्दी में प्रायः दो दर्जन पुस्तकें भी उन्होंने लिखी हैं।

उनका कार्य क्षेत्र विशद है। पातञ्जल महाभाष्य, गुर्जर-प्रतिहारों और कुषाणों के इतिहास, तथा भारतीय प्रशासन के इतिहास के वह विशेषज्ञ हैं। सम्प्रति वह खत्रियों का इतिहास, नवीन भारत एवं उसका अतीत, और भारतीय प्रवृत्ति में धर्मनिरपेक्षता पर ग्रन्थों का प्रणयन कर रहे हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja M...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० पुरी के सभी ग्रन्थ ठोस विद्वत्ता, वस्तुपरक मूल्यांकन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पूरित हैं। विद्वत् समाज में उनका समादर हुआ है और युवा पीढ़ी के लिये वे प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। ये सभी ग्रंथ एक सहज शैली में लिखे गये हैं और विद्यार्थियों, राजनीतिक विश्लेषकों तथा इतिहासज्ञों के लिये उपयोगी हैं। डा० पुरी के संस्मरण उस काल और समाज जिसमें वह रहे हैं, पर एक रोचक टीका है।

उनके ग्रंथों की समीक्षा रायल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल, स्कूल ऑफ़ ओरियेन्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज़ के बुलेटिन तथा अन्य विदेशी और भारतीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं और इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वानों यथा डा० ए० एल० बाशम, प्रो० आर० घीर्षमान और प्रो० के० ए० निज़ामी द्वारा उनकी अभिशंसा की गयी है।

भारतीय मनीषा को अन्तर्राष्ट्रीय अभिस्वीकृति प्रदान कराने में सक्षम, भारतीय इतिहास के उपेक्षित पक्षों को उजागर करने में समर्थ, अपने कार्य के प्रति निष्ठावान और अपने विद्यार्थियों के प्रति स्नेहशील, डा० पुरी सदैव ही स्मरणीय रहेंगे। भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व और संस्कृति के क्षेत्र में उनके विद्वत्तापूर्ण योगदान के लिए डा० पुरी को आज इतिहास-मनीषी सम्मान से सम्मानित करते हुए अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति स्वयं को गौरवान्वित अनुभूत करती है।

पता—बी-५८, सेक्टर-ए, महानगर, लखनऊ-२२६००६

Dr. B. N. Puri

Dr. Puri was born on January 25, 1916 A.D., at Lucknow. He had his early schooling as well as higher education in the city of his birth. He did B.A (Hons.) and M.A. in History and LL.B. from the Lucknow University, and took M. Litt. and D. Phil. from the Oxford University in England.

He joined the Lucknow University in 1945 as Lecturer in Ancient Indian History and Archaeology, and taught there till 1960. In the meantime he also worked for a year (1950-51) at the Oxford University as Deputy to the Boden Professor of Sanskrit. He was appointed Professor of Indian History and Culture at the National Academy of Administration, Mussoorie, in January 1961, and worked there till he came back to his *alma mater* to head the Department of Ancient Indian History and Archaeology in March 1971. On his superannuation in 1976 he continued to be Research Professor under the University Grants Commission scheme till 1981.

Under his guidance, one scholar obtained D.Litt. and five scholars obtained Ph.D. from the Lucknow University.

He presided over the Ancient India section of the Indian History Congress (1959), the South-East Asia section of the All India Oriental Conference (1956) and the Art session of the Seminar on Jain Thought in Indian Culture (1975); was appointed Member in 1980 and Vice-Chairman in 1983 of the Board of Editors of the UNESCO Project on the History and Civilizations of Central Asia; was elected fellow in 1981 and Member of the Governing Body in 1984 of the Indian Council of Historical Research and is Professor Emeritus of the Kurukshetra University.

He has extensively travelled and lectured at various Universities in Europe and India,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

and participated in international conferences on the History of Central Asia in the Kushana period.

Dr. Puri has been a prolific writer, contributed two articles to the **Encyclopaedia Brittanica** (1974) and over two hundred research papers/articles in different journals, and written more than two dozen books in English and Hindi.

His field of specialisation encompasses a wide range. He is an authority on the Patanjala Mahabhashya, the history of the Gurjara-Pratiharas and the Kushanas, and the history of Indian Administration. Currently he is working on : History of the Khattries, The New India and the Past, and Secularism in Indian Ethos (ICHR Project).

The works of Dr. Puri bear the mark of sound scholarship, objective assessment and scientific approach. They have been very well received in the scholarly world and have been a source of inspiration to the younger generation. They have been written in a lucid style and have been useful for students, political analysts and historians. His Memoirs would be remembered as an interesting commentary on the times and society he has lived in.

Dr. Puri will always be remembered as a scholar who could get international recognition for Indian scholarship, who has been competent to bring forth certain ignored aspects of Indian History, who has been sincere to his job and who has been affectionate to his students. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti feels honoured in conferring on Dr. Puri this day the honour of Itihasa-Manishi for his scholarly contribution to the cause of scholarship in Indian History, Archaeology and Culture.

Address : B-58, Sector-A, Mahanagar, Lucknow - 226006.

Works कृतियां

(1) India in the time of Patanjali (1957, 1968)
(2) History of the Gujara-Pratiharas (1957, 1981)
(3) India as described by Early Greek Writers (1939, 1966)
(4) India in Classical Greek Writings (1962)
(5) India under the Kushanas (1965)
(6) Kusahana Bibliography (1977)
(7) Early History of Indian Administration in Assam (1968)
(8) Histoy of Indian Administration, Vol. I (1968)
(9) History of Indian Administration, Vol. II (1975)
(10) History of Indian Administration, Vol. III (1981)
(11) Some Aspects of the Evolution of Indian Administration (1980)
(12) Cities of Ancient India (1966)
(13) Indian History - Review (1960)
(14) A Study of Indian History (1970)
(15) Social, Cultural and Economic History of India (in collaboration) (1974)
(16) The Changing Horizon – A Professor's Memoirs (1983)
(17) History of the Indian Freedom Movement, 1857-1947
(18) Buddhism in Central Asia

CC-0. Bhagavad Ramanuja M...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

(19) पुरातत्त्व विज्ञान (1952, 1964, 1973)
(20) भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व (1958)
(21) भारतीय इतिहास एवं संस्कृति (1958)
(22) भारत और कम्बुज (1958)
(23) दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रसार (1962, 1964, 1975)
(24) मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति (1981)

Select Opinions विशिष्ट अभिमत

INDIA IN THE TIME OF PATANJALI is solid piece of research work and welcome as a very useful volume on life in Ancient India as depicted in the Mahabhashya.

—Journal of the Royal Asiatic Society, London, 1959

HISTORY OF THE GURJARA-PRATIHARAS is marked by thoroughness, impartiality and critical acumen, and will long remain the standard study of the subject.

—Prof. A. L Basham, London

INDIA UNDER THE KUSHANAS is an exceedingly well written and well documented book throwing fresh light on the Kushanas.

—Prof. R. Ghirshman, Paris

HISTORY OF INDIAN ADMINISTRATION, Vol. I, is certainly the best extant work on the subject of Ancient Indian Administration.

—Bulletin of the School of Oriental & African Studies, London, 1970

HISTORY OF INDIAN ADMINISTRATION, Vol. II, is most exhaustive and well documented work on the subject of Mediaeval Indian Administration.

—Prof. K. A. Nizami, Aligarh

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

प्रो० कृष्ण दत्त वाजपेयी

प्रो० वाजपेयी का जन्म १० दिसम्बर, १९१७ ई०, को रायबरेली जिले के ग्राम रायपुर में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा रायबरेली में हुयी और उच्च शिक्षा वाराणसी में। उन्होंने इतिहास विषय में एम०ए०परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से १९४२ में उत्तीर्ण की थी और दयाराम साहनी स्वर्णपदक प्राप्त किया था। १९४५ में उन्होंने टैक्सिला स्कूल ऑफ़ आर्कियोलॉजी से पुरातत्त्व में डिप्लोमा प्राप्त किया था।

१५ जनवरी, १९४४, को उन्होंने संयुक्त प्रांत सरकार (अब उ०प्र० शासन) के अंतर्गत प्राविन्शियल म्यूज़ियम (अब राज्य संग्रहालय) लखनऊ, में कस्टोडियन के पद पर सेवा योजन किया। अप्रैल १९४६ में वह आर्कियोलॉजिकल म्यूजियम (अब राजकीय संग्रहालय) मथुरा, के क्यूरेटर नियुक्त किये गये और वहां क्यूरेटर/निदेशक के पद पर सितम्बर १९५८ तक वह कार्यरत रहे। १९५१-५३ में लगभग दो वर्ष वह उत्तर प्रदेश के पुरातत्त्व अधिकारी रहे। सितम्बर १९५८ में उनकी नियुक्ति सागर विश्वविद्यालय में प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष पद पर हुई और सितम्बर १९६३ में वह टैगोर प्रोफ़ेसर नियुक्त किये गये जिस पद पर वह दिसम्बर १९७७ में सेवानिवृत्त होने तक कार्यरत रहे। १९६६-६८ में वह कला संकाय के अध्यक्ष भी थे तथा फरवरी १९७३ में उनकी प्रोन्नति सीनियर प्रोफ़ेसर के पद पर हुयी। सेवानिवृत्ति के पश्चात भी एक वर्ष वह विज़िटिंग प्रोफ़ेसर रहे।

उनके मार्गदर्शन में ४८ शोध छात्रों ने पी-एच० डी० की उपाधि और दो शोध-छात्रों ने डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की।

वह शैक्षणिक जीवन में बहुत ही सक्रिय रहे हैं और एपिग्राफिकल सोसाइटी ऑफ इन्डिया, न्यूज़िस्मेटिक सोसाइटी ऑफ़ इन्डिया, इण्डियन आर्किलॉजिकल सोसाइटी, तथा इण्डियन हिस्टॉरिकल एण्ड कल्चरल सोसाइटी के अध्यक्ष रहे हैं। १९७८ से वह भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद के सदस्य हैं। भारत के सांस्कृतिक केन्द्रों पर पुस्तक-माला के वह सम्पादक हैं और भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के विश्वकोष की प्रायोजना के परामर्शदाता हैं।

उन्हें मुद्राशास्त्र के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिये न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑफ़ इण्डिया द्वारा नेलसन राइट पदक प्रदान किया गया और मानद फ़ेलों के रूप में अंगीकार किया गया। मध्य प्रदेश में पुरातत्त्व के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य के लिये एशियाटिक सोसाइटी द्वारा उन्हें रामप्रसाद चान्दा पदक से सम्मानित किया गया। उन्होंने मध्य प्रदेश में ऐरन, त्रिपुरी, तुमैन और मल्हार में पुरातात्त्विक उत्खनन कराया तथा प्रदेश भर में विस्तार से पुरातात्त्विक सर्वेक्षण कराया और सागर विश्वविद्यालय में उन्होंने हरि सिंह गौड़ आर्किलॉजिकल म्यूज़ियम की भी स्थापना की।

उनकी विशेषज्ञता का क्षेत्र विस्तृत है और छठी शताब्दी ईसा-पूर्व से ६०० ई० तक का प्राचीन भारतीय इतिहास, गुप्त कालीन एवं उसके पूर्व कालीन मुद्राशास्त्र, प्राचीन भारतीय कला एवं स्थापत्य, प्राग्ऐतिहासिक

CC-0. Bhagavad Ramanuja M...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

पुरातत्त्व, भारत का ऐतिहासिक भूगोल तथा प्राचीन पुरालेख, को आवृत्त करता है। उन्होंने ६२ पुस्तकों का प्रणयन किया है और ८०० से भी अधिक लेख एवं शोधपत्र विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किये हैं। प्रोफ़ेसर वाजपेयी प्राचीन भारतीय इतिहास, कला, मुद्राशास्त्र, पुरालेख तथा पुरातत्त्व के लब्ध-प्रतिष्ठ अधिकारी विद्वान हैं। इस वृद्ध वय में भी वह कार्यशील हैं और व्याख्यान देने तथा संगोष्ठियों में अध्यक्षता करने के लिये यात्रा करते रहते हैं।

प्रो० वाजपेयी ने सदैव ही अपने विद्यार्थियों को और युवा पीढ़ी को आगे बढ़ने तथा ज्ञान के क्षेत्र में योगदान करने के लिये प्रेरित और प्रोत्साहित किया है। स्वयं अपने कार्य क्षेत्र में तथा युवा पीढ़ी को प्रेरित करने में उनका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। यह अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति का सौभाग्य रहा कि उसने प्रो० वाजपेयी को १२ फरवरी, १९८२, को इतिहास-मनीषी सम्मान से सम्मानित किया।

पता : एच-१५, पद्माकर नगर, मकरोनिया, सागर–४७० ००४

Prof. K. D. Bajpai

Prof. Bajpai was born on Dec. 10, 1917A.D., in village Raipur in the Rae Bareli district. He had his early education in Rae Bareli and higher education at Varanasi. He did M.A. in History in Ist division with Ist position, winning Dayaram Sahni Gold Medal, in 1942 from the Banaras Hindu University. In 1945 he took Diploma in Archaeology from the Taxila School of Archaeology.

He joined service under the U.P. Government on January 15, 1944, as Custodian of the Provincial Musem (now State Museum), Lucknow. He was appointed Curator of the Archaeological Museum (now Government Museum), Mathura, in April 1946 and worked as such till September 1958, when he switched over to University service. For about 2 Years during 1951-53 he also worked as Archaeological Officer, U.P. In September 1958 he joined the University of Saugar as Head of the Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology, and was appointed Tagore Professor in September 1963 which post he held till his retirement in December 1977. He worked as Dean, Faculty of Arts, during 1966-68 and was Senior Professor from February 1973 onwards. On retirement he continued to be the Visiting Professor for one year.

Under his guidance 48 scholars have taken Ph. D. and two scholars have taken D. Litt.

He has been very active in the academic life and has been the President of the Epigraphical Society of India, Numismatic Society of India, Indian Archaeological Soeiety, and Indian History and Culture Society. He has been a member of the Indian Historical Research Council since 1978. He is Editor of the Cultural Centers of India series and Advisor on Encyclopaedia of Indian History and Culture.

He was awarded Nelson Wright Medal by the Numismatic society of India and was also adopted as its honorary Fellow for his special contribution to numismatics. He was awarded Ram Prasad Chanda Medal by the Asiatic Society for his outstanding work on archaeology in Madhya Pradesh. In that State he had conducted excavations at Eran, Tripuri, Tumain and Malhar, as also extensive explorations. He also set up Hari Singh Gour Archaeological Museum at the University of Saugar.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

His field of specialisation is extensive and covers Ancient Indian History from 6th century B.C. to 600 A.D., Numismatics from the earliest times to Gupta period, Ancient Indian Art and Architecture, Proto-historic Archaeology, Historical Geography of India and Epigraphy (Ancient period). He has written 32 books and published over 800 articles/research papers in different journals and periodicals. Professor Bajpai is an acknowledged authority on Ancient Indian history, art, numismatics, epigraphy and archaeology. Even at this advanced age he is very active and tours extensively to deliver lectures and preside over seminars and workshops. Prof. Bajpai has always encouraged his students and younger generation to come up and contribute to the field of learning. His contribution both as regards his own field of work as well as his shaping of the younger generation, will be long remembered. It was the privilege of the Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti to confer on Prof. Bajpai the Itihasa-Manishi honour on Feb. 12, 1982.

Address : H/15, Padmakar Nagar, Makronia, Sagar-470 004

Important works महत्त्वपूर्ण कृतियां

1- Archaeology in Uttar Pradesh
2- Development of Buddhism in Uttar Pradesh (Colab. N. Dutt)
3- Buddhist Centres in Uttar Pradesh
4- Sagar Through the Ages
5- The Numismatic Studies
6- Archaeology of Central India
7- Malhar
8- भारतीय व्यापार का इतिहास
9- युग-युगों में उत्तर प्रदेश
10- मथुरा (उ० प्र० शासन 1955, मैक्मिलन 1980)
11- अहिच्छत्रा
12- ब्रज का इतिहास (2 भाग)
13- उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास (सहलेखक नलिनाक्ष दत्त)
14- उत्तर प्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास
15- प्राचीन भारत का इतिहास (सह० विमल चन्द्र पाण्डेय)
16- भारतीय संस्कृति में मध्य प्रदेश का योगदान (सह० श्याम कुमार पाण्डेय)
17- मध्य प्रदेश का पुरातत्त्व
18- भारतीय वास्तुकला का इतिहास
19- प्राचीन भारत का विदेशों से सम्बन्ध
20- ऐतिहासिक नगर तुमैन
21- प्राचीन भारत में संघटित जीवन (अनुवाद)
22- भारतीय आद्य इतिहास का अध्ययन (अनु०)
23- भारतीय पुरालेखशास्त्र (अनु०)
24- भरत नाट्यशास्त्र (अनु०)

CC-0. Bhagavad Ramanuja M

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी

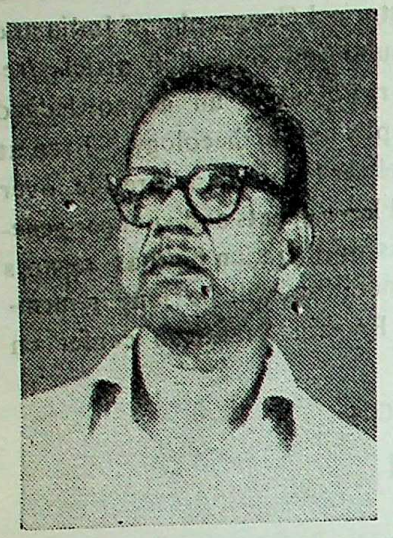

डा० जोशी का जन्म ११ अप्रैल, १९२२ ई०, को बम्बई में हुआ था। उनकी शिक्षा वाराणसी में सम्पन्न हुई। उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से १९४३ में बी० ए०, १९४५ में एम० ए० और १९४६ में बी० टी० की परीक्षायें उत्तीर्ण की। १९५६ में उसी विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि से भी सम्मानित किया गया।

उन्होंने १९४६ में प्राविन्शियल म्यूज़ियम (अब राज्य संग्रहालय), लखनऊ, में कस्टोडियन के पद पर सेवायोजन किया। उनका प्रथम अनुराग अध्यापन के प्रति था और १९५१ में वह इतिहास विषय में असिस्टेन्ट प्रोफ़ेसर के पद पर गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, वाराणसी, चले गये। बाद को १९५८ में जब उस कालेज का उच्चीकरण संस्कृत विश्वविद्यालय (अब सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) में हो गया तो उनकी नियुक्ति पुराणेतिहास के सहायक प्रवक्ता के पद पर हुयी और उन्हें संस्कृत विश्वविद्यालय संग्रहालय की स्थापना का कार्य भी उसके संग्रहालय-अध्यक्ष के रूप में सौंपा गया। १९६३ में उनकी नियुक्ति आर्किलोजिकल म्यूज़ियम (अब राजकीय संग्रहालय), मथुरा, में संग्रहालय-अध्यक्ष के पद पर हुई। १९६७ में वह राज्य संग्रहालय, लखनऊ, में निदेशक के पद पर प्रोन्नत होकर आये और वहीं से १९८० में सेवानिवृत्त हुये।

सेवानिवृत्ति के पश्चात वह अपना सम्पूर्ण समय अध्ययन में ही लगाते हैं और अपने उन ग्रन्थों को पूरा कर रहे हैं जिनके लिये वह सरकारी कार्य की व्यस्तता के कारण समय नहीं निकाल पाये थे। उन्होंने १९८१ में संयुक्त राज्य अमरीका में फिलाडेल्फिया में हुयी शिव पर विचार-गोष्ठी में भाग लिया और मिनियापोलिस में भारतीय कला पर हुयी विचार-गोष्ठी की अध्यक्षता की। उसी वर्ष उन्होंने दिल्ली में कुषाण कला पर अंतर्राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी की भी अध्यक्षता की। १९८२ में उन्हें महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा (बड़ौदा), ने विज़िटिंग फ़ैलो के रूप में आमंत्रित किया। गत वर्ष वह बर्लिन में हुयी भारतीय कला पर विचार-गोष्ठी की अध्यक्षता करने पश्चिम जर्मनी भी गये और विगत फरवरी में उन्होंने खजुराहो में हुयी खजुराहो कला पर अंतर्राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी में भाग लिया तथा उसकी अध्यक्षता की।

सेवाकाल में उन्हें १९७६ में सर्वश्रेष्ठ अधिकारी पुरस्कार से सम्मानित किया गया, १९७० में बिहार राष्ट्र भाषा परिषद द्वारा उन्हें व्याख्यान देने के लिये आमंत्रित किया गया और १९७१ में बर्लिन में उन्होंने भारतीय विद्या पर आयोजित सभा में भाग लिया। राज्य संग्रहालय के निदेशक के पद पर अपनी कार्यावधि में उन्होंने बहुत से नये कार्यक्रम चालू किये– जैन, बौद्ध और ब्राह्मणीय कला पर प्रदर्शनियां आयोजित की, संग्रहालय में व्याख्यान माला प्रारम्भ की, और बच्चों तथा सामान्य जनता के लिये सचल संग्रहालय का कार्यक्रम बनाया। वह कंकाली टीला (मथुरा) के प्राचीन जैन स्तूप की प्रतिकृति भी इस प्रकार बनाना चाहते थे कि उसमें लखनऊ संग्रहालय में बहुलता से उपलब्ध वहां के पुरावशेषों को यथास्थान प्रदर्शित किया जा सके। जैन कला एवं स्थापत्य पर भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित दोनों खंडों के प्रणयन में भी उन्होंने उन्मुक्त सहयोग प्रदान किया था।

डा० जोशी का विषय उपलब्ध मूर्तियों, प्राचीन साहित्य, पुराणों, महाकाव्यों और विभिन्न सांस्कृतिक अनुश्रुतियों के परिप्रेक्ष्य में उत्तरी भारत की कला और मूर्ति-विज्ञान का अध्ययन है। उनका विशिष्ट विषय प्राचीन

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जैन और ब्राह्मणीय मूर्ति-विज्ञान है। उन्होंने समय-समय पर २०० से भी अधिक शोध-पत्र भारत में और भारत के बाहर प्रकाशित विभिन्न शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित किये हैं, और अंग्रेजी, हिन्दी तथा मराठी में प्राय: एक दर्जन महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं।

उन्होंने १९६९-८० में बुलेटिन ऑफ़ म्यूज़ियम्स एण्ड आर्किलॉजी इन यू० पी० का और १९८६ में जैन-निबंध-माला का सम्पादन किया। आजकल वह राज्य संग्रालय लखनऊ में ब्राह्मणीय मूर्तियों का कैटालॉग भाग २ और उत्तर भारतीय मूर्ति-विज्ञान पर एक समग्र ग्रन्थ जिसे वह हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लिख रहे हैं, के प्रणयन में लगे हैं।

जो कुछ भी वह बोलते हैं और लिखते हैं उसमें डा० जोशी की पैठ तलस्पर्शी होती है और अपने विषय पर उनका अप्रतिम अधिकार होता है। वह लखनऊ की सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक गतिविधियों से सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहते थे। स्थानीय महाराष्ट्र समाज के वह सक्रिय सदस्य थे और उन्होंने मराठी मंच के लिये नाटक लिखे थे तथा स्वयं अभिनय भी किया था। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ के बौद्धिक कार्यक्रमों से उनका निकटस्थ सम्पर्क था।

विद्वत्ता के धनी, विनीत, अग्रजों के प्रति सम्मानपूर्ण और शोध एवं लेखन के क्षेत्र में अनुजों के प्रति स्नेह-शील, तथा श्रेय के प्रति निर्लोभ, डा० जोशी एक ऐसे तपस्वी सारस्वत का प्रतिनिधित्व करते हैं जो सदैव ही स्मरणीय रहेंगे। भारतीय इतिहास, कला एवं मूर्ति-विज्ञान के क्षेत्र में उनके विद्वत्तापूर्ण योगदान के लिये डा० जोशी को आज इतिहास-मनीषी के सम्मान से सम्मानित करते हुये अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति स्वयं को गौरवान्वित अनुभूत करती है।

पता : सी० के० १/१३, भोंसला मंदिर, पटनी टोला, वाराणसी–२११ ००१

Dr. N. P. Joshi

Dr. Joshi was born on April 11, 1922 A. D., at Bombay. He had his education at Varanasi, and did B. A., M. A. and B. T. from the Banaras Hindu University in 1943, 1945 and 1946 respectively. He was also awarded Ph. D. in 1956 by that University.

He joined the Provincial Museum (now State Museum) at Lucknow in 1946 as Custodian. His first love was teaching and in 1951 he shifted to the Government Sanskrit College, Varanasi, as Assistant Professor of History. Later in 1958, when that College was upgraded as Sanskrit University (now Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya) he was appointed Assistant Professor of Puranetihasa and was also assigned the task of setting up the Sanskrit University Museum as its Curator. In 1963 he was appointed Curator of the Archaeological Museum (now Government Museum), Mathura. In 1967 he was promoted as Director of the State Museum, Lucknow, and retired from there in 1980.

After retirement he devoted himself wholly to studies and completing the works for which he could not spare time due to official routine. He participated in the Symposium of Siva at Philadelphia and chaired the Semimar on Indian Art at Miniapolis, in the U.S.A., in 1981. The same year he also chaired the International Seminar on Kushana Art at Delhi. In 1982 he was invited by the Maharaja Sayaji Rao University, Vadodara (Baroda), as Visiting Fellow. Last year he visited West Germany to chair the Seminar on Indian Art at Berlin, and last February he participated in and chaired the International Seminar on the Khajuraho Art at Khajuraho.

While in service he merited the Best Officer's Award in 1976, was invited by the Bihar Rashtra Bhasha Parishad to deliver lectures in 1970 and participated in the Indologen

CC-0. Bhagavad Pa...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Tagung at Berlin in 1971. During his tenure as Director of the State Museum, he initiated several new programes, *e. g.*, organised exhibitions on Jain, Buddhist and Brahmanical art, started lecture series in the Museum, and devised the Museum-on-wheels for school children and general public. He wanted to recreate the ancient Jain Stupa of Kankali Tila (Mathura), properly placing the antiquities from that site, in which the Lucknow Museum is very rich, and also extended whole-hearted co-operation in the production of two volumes on Jain Art and Architecture, published by the Bharatiya Jnanapith.

The field of Dr. Joshi is art and iconography of North India in the light of sculptures, classical literature, Puranas, epics and different cultural traditions. The special field of his work is the early Jain and Brahmanical Iconography. He has published more than 200 papers in various research journals both in India and abroad from time to time and has written some one dozen valuable books in English, Hindi and Marathi.

He edited the **Bulletin of Museums and Archaeology in U. P.** during 1969-80 and the **Jaina-Nibandhamala** in 1986.

He is at present working on—

(1) Catalogue of Brahmanical Sculptures in the State Museum, Lucknow, Pt. II, and
(2) North Indian Iconography – a comprehensive work on the subject being done both in English and Hindi.

Dr. Joshi has an in-depth approach in, and a rare command over, the subject in whatever he speaks or writes. He was actively associated with the social, cultural and academic life of Lucknow. He was an active member of the local Maharashtra Samaj, and wrote for, and played at, the Marathi stage. He was also intimately associated with the intellectual programmes of the Ananta-Jyoti Vidyapitha.

A man of great scholarship and humble demeanour, always respectful to those who are senior in scholarship and affectionate to those who are coming up in the field of research and writing, and never craving for credits, Dr. Joshi represents an image of Tapasvi-Saraswata who will always be adorable. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti feels honoured in conferring on Dr. Joshi this day the honour of Itihasa-Manishi for his scholarly contribution to the cause of scholarship in Indian History, Art and Iconography.

Address : C. K. 1/13, Bhonsala Mandir, Patanit Tola, Varanasi-221 001

Works कृतियां

(1) Mathura Sculptures (1966)
(2) Ancient Uttarapatha (1968)
(3) Catalogue of the Gandhara Sculptures in the State Museum, Lucknow (1969)
(4) Catalogue of the Brahmanical Sculptures in the State Museum, Lucknow, Pt. I. (1972)
(5) Iconography of Balarama (1979)
(6) Matrkas in Kusana Art (1986)
(7) मथुरा की मूर्ति कला (1965)
(8) कुषाण कालीन विष्णु प्रतिमायें (1969)
(9) प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान (1977)
(10) भारतीय मूर्ति-शास्त्र (मराठी) (1979)
(11) भारतीय व्यायाम-विद्या का इतिहास
(12) Rukmini-Mangala (edited)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

पंडित राम रतन

पंडित जी का जन्म मुरादाबाद जिले के ढाडौल ग्राम में ११ नवम्बर, १९०२ ई०, को हुआ था। उन्होंने इस असार संसार से ३ अक्तूबर, १९८६ ई०, को मेरठ में विदा ली।

उनकी नियमित शिक्षा जैन अनाथाश्रम, दिल्ली, में हुयी थी। वह आजन्म ब्रह्मचारी रहे और जैन श्रावक का सादा जीवन उन्होंने व्यतीत किया। उनका हस्तलेख बहुत सुन्दर था और मुद्रण के प्रचार के पहले हस्तनिर्मित काग़ज पर शास्त्र-पुराणों की प्रतियाँ मेरठ तथा उसके आसपास के जैन मंदिरों के शास्त्र-भंडारों के लिए वह बनाया करते थे।

१९२१-२९ के दौरान वह जैन मंदिरो से संलग्न पाठशालाओं में आगरा, सरधना और हस्तिनापुर में अध्यापक रहे। १९२९ में वह मेरठ शहर आ गये और वहीं बस गये।

१ मई, १९२९, को उन्होंने मोहल्ला तीरगरान स्थित दिगम्बर जैन मंदिर में पाठशाला प्रारम्भ की जिसमें कुल चार शिशु थे और उनमें से एक (श्री अमीचन्द) अब इलेक्ट्रा लि० के अध्यक्ष हैं। पाठशाला अब विद्यानन्द जैन जूनियर हाई स्कूल के नाम से विख्यात है और एक स्वतंत्र भवन में स्थित है।

पंडित जी धार्मिक प्रवृत्ति के थे। वह जैन शास्त्रों का अध्ययन करते थे और सभाओं में उनका वाचन एवं प्रवचन करते थे। वह बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने के लिएउत्सुक रहते थे ताकि उनमें नैतिक मूल्यों के प्रति बोध जागृत हो। अपने जीवन के अंतिम समय तक वह प्रातः जूनियर हाई स्कूल में अध्यापन करते रहे और सायंकाल जैन शिक्षा सदन में धार्मिक शिक्षा देते रहे।

पाठशाला गुरुओं की परम्परा के वह अंतिम प्रतिनिधि थे जो अपने शिष्यों को सादगी, धार्मिकता और विनम्रता से प्रभावित करते थे। यह जानकारी प्राप्त होने पर कि उनके किसी शिष्य ने किसी क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है, उन्हें वास्तविक आनन्द होता था। दसियों वर्ष के बाद मिलने पर भी वह अपने शिष्यों को पहचान लेते थे और उन्हें आशीर्वाद देते थे जिससे कि शिष्य को भी उस छोटी सी पाठशाला का स्मरण हो आता था जहां उसने शिक्षा का प्रारम्भ किया था।

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति ने परम्परागत पाठशाला गुरुओं के प्रतिनिधि के रुप में पँडित जी का अभिनन्दन करने का निश्चय किया था, परन्तु उनके जीवन-काल में उसका सुयोग हमें नहीं मिल सका। आज विद्यापीठ प्रवर समिति पंडित जी का मृत्योपरान्त सत्कार करती है और उनकी पवित्र स्मृति के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि निवेदित करती है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Pt Ram Ratan

Panditji was born on Nov. 11, 1902 A. D., at village Dhadol in the Moradabad district, and left this carnal world on Oct. 3, 1986 A. D., at Meerut.

He had his formal education at the Jain Orphanage, Delhi. He remained a bachelor and led a simple life of a Jain layman. He had a beautiful handwriting and before the printer acquired popularity he used to make copies of the scriptures on hand-made paper for the Shastra Bhandaras attached to Jain Temples in and around Meerut.

During 1921-29 he served at Agra, Sardhana and Hastinapur as a teacher in the Pathshalas attached to Jain temples. In 1929 he came to Meerut City and finally settled there.

On May 1, 1929, he started the Pathshala in the Digambara Jain temple in Mohalla Teergaran, with only 4 pupils one of whom (Mr. Amichand Jain) is now the Chairman of the Electra Ltd. The Pathshala is now known as the Vidyanand Jain Junior High School and is housed in an independent building.

Panditji was religious minded. He used to study the scriptures, and read out and elaborate them to public audiences. He was keen to impart religious instrucion to children with a view to give them an understanding of the moral values. Till his last days he taught at the Junior High School in the morning and imparted religious instruction at the Jain Shiksha Sadan in the evening.

He was the last representative of the Pathshala gurus who impressed their pupils with their simplicity, piety and humility. He felt real joy on learning if any of his pupils had made a mark in any field. Even after a lapse of decades he would recognise and bestow his blessings, and it would transport the pupil back to the little Pathshala where he had learnt the rudiments of 3 R's.

The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti had decided to felicitate Panditji as a true representative of the old school Pathshala teachers, but we could not have the good fortune of doing it in his life-time. This day the Vidyapitha Pravara Samiti confers the honour on Panditji posthumously and pays its humble tributes to his sacred memory.

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री मानिक लाल घोष

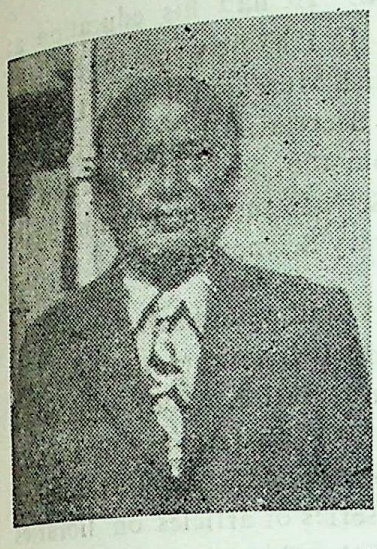

श्री घोष का जन्म २९ जुलाई, १९०७ ई०, को बहराइच में हुआ था। उनकी शिक्षा इलाहाबाद में हुयी। उन्होंने १९२८ में यू० पी० सचिवालय में सेवायोजन किया था। १९४७ में वह व्यवहारिक पुस्तकालयाध्यक्ष के कार्य का अध्ययन करने के लिए इंग्लैन्ड गये और उन्होंने ब्रिटिश म्यूज़ियम लाइब्रेरी, लंदन, में प्रशिक्षण प्राप्त किया। इंग्लैन्ड से वापस लौटने पर यू० पी० सचिवालय के पुस्तकालयाध्यक्ष के पद को जिस पर वह कार्यरत थे, राजपत्रित स्तर प्रदान किया गया। उ० प्र० सचिवालय के पुस्तकालयाध्यक्ष के पद से वह १९६२ में सेवानिवृत्त हुए। पुस्तकालय विज्ञान में उनकी अभिरुचि बनी रही और १९७४ में पुस्तकालय विज्ञान में हुए विकास को देखने के लिए वह पुन: यूनाइटेड किंगडम गये।

१९७४ से ही वह विभिन्न समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं में प्राय: अंग्रेजी में, और कभी-कभी बंगला में, लिखते रहे हैं। वह एक बहुमुखी लेखक हैं और प्राय: सभी विषयों पर लिखते हैं परन्तु उन्हें कविता, हास्य और व्यंग्य लिखना अधिक प्रिय है। दि पायनियर, नेशनल हेराल्ड, नर्दर्न इन्डिया पत्रिका, दि स्टेट्समैन, शंकर्स वीकली, इलस्ट्रेटेड वीकली, दि इन्डियन एक्सप्रेस और अमृत बाजार पत्रिका के पाठक 'ब्रोकन विंग' के 'एम० जी०' या 'एम० घोष' से भली भाँति परिचित हैं। १९४९–५१ की अवधि में उन्होंने यूनाइटेड किंगडम के पुस्तकालयों पर कई लेख लिखे थे। १९७१ में 'रीमर' तथा 'साइन्स ऑफ दि टाइम्स' के स्तम्भ और १९७९ में 'हैमर एण्ड टाँग्स' स्तम्भ उन्हीं की कृति थे।

उनकी हास्य भावना और व्यंग्य प्रतिभा उनकी कविताओं, लेखों और टिप्पणियों को एक सुखद पाठ्य बना देते हैं जो साथ ही तथ्यपरक और प्रबुद्ध भी होते हैं।

श्री घोष दैनिक पत्रों में अपने लेखन से लोगों को सामाजिक एवं राजनैतिक विषयों पर विचार करने के लिए प्रेरित करके और इस प्रकार जनमत को संगठित करके बौद्धिक जीवन को आपूरित करते रहे हैं। वह पुस्तकालय आंदोलन के एक अग्रणी कार्यकर्ता रहे हैं और पुस्तकालयाध्यक्ष के व्यवसाय को जो प्रतिष्ठा उत्तर प्रदेश में अब प्राप्त है, उसका बहुत कुछ श्रेय उनके सत्प्रयासों को है। बौद्धिक जगत में उनकी श्रेय उपलब्धियों के लिए अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज मनीषी श्री घोष का सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : ब्रोकन विंग, ७-सी/३, सरोजनी नायडू मार्ग, लखनऊ–२२६००१

CC-0. Bhagavad Pa...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. M. Ghosh

Mr. Ghosh was born on July 29, 1907 A. D., at Bahraich. He had his education at Allahabad. He joined service in the U. P. Secretariat in 1928. In 1947 he went to England to study practical Librarianship and got his training at the British Museum Library, London. On his return from England the post of Librarian of the U. P. Secretariat Library which he was holding, was accorded the Gazetted status. He retired from the post of Librarian of the U. P. Secretariat Library in 1962. His interest in Library Science sustained and he again visited the U. K. in 1974 to see the latest developments in Library Science.

He has been writing since 1949 in different newspapers and periodicals, mostly in English and sometimes in Bengali. He is a versatile writer and he writes practically on all subjects but loves to write poetry, humorous sketches and satire. The readers of The Pioneer, National Herald, Northern India Patrika, The Statesman, Shankar's Weekly, Illustrated Weekly, The Indian Express and Amrit Bazar Patrika, are quite familiar with 'M. G.' or 'M. Ghosh' of the Broken Wing. He wrote a series of articles on libraries in the U. K. during 1949-51. For some time he contributed to the 'Roamer' and 'Signs of the Times' columns in 1971 and to the 'Hammer and Tongs' column in 1979.

His sense of humour and penchant for satire make his poems, articles and skits a pleasant reading which is at the same time informative and enlightening.

Mr. Ghosh through his writings in the daily papers has been adding to the intellectual life by making people think on social and political issues and thereby in formulating public opinion. He has been a pioneer in the Library movement and the prestige that attaches to the profession of librarian now in Uttar Pradesh is much due to his efforts. This day the Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti honours and felicitates Mr. Ghosh, the intellectual *par excellence*, for his creditable achievements in the field of intellect.

Address : Broken Wing, 7C/3, Sarojini Naidu Marg (Havelock Road), Lucknow-226001

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री आनन्द स्वरूप मिश्रा

श्री मिश्रा का जन्म फर्रुखाबाद ज़िले के ग्राम सराय मीरन में २६ फरवरी, १९०८ ई०, को हुआ था। उनकी शिक्षा सराय मीरन, बांदा, इलाहाबाद और लखनऊ में हुयी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से १९२७ में उन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और लखनऊ विश्वविद्यालय से १९२९ में एल-एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

कुछ समय तक उन्होंने इलाहाबाद में वकालत की, परन्तु १९३३ में यू० पी० सेक्रेटेरिएट के वित्त विभाग में उनकी नियुक्ति हो गयी। कुछ समय के लिये उन्होंने इन्सपेक्टर जनरल ऑफ सिविल हास्पिटल्स के कार्यालय में लेखाधिकारी के पद पर भी कार्य किया। अधीक्षक के पद पर चयन होने पर वह सचिवालय वापस लौट आये और उप सचिव के पद उच्चस्तरीय पद तक उनकी पदोन्नति हुयी। उप सचिव के पद से उन्होंने १९६४ में अवकाश ग्रहण किया।

उन्होंने ५५ वर्ष की आयु में स्वेच्छा से सेवानिवृत्ति इस उद्देश्य से प्राप्त की थी कि वह पुन: वकालत करेंगे और अपना समय पुस्तकों के प्रणयन में लगायेंगे। उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ में एडवोकेट के रुप में उन्होंने सेवा सम्बन्धी मामलों में ही अपना उपयोग लगाया और सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष भी उपस्थित हुए।

श्री मिश्रा का व्यसन अध्ययन और लेखन रहा है। जब पहले उन्होंने वकालत शुरु ही की थी तभी कोर्ट फीस ऐक्ट और सूट्स वैल्यूएशन ऐक्ट पर कमेन्ट्री लिखी थी जिसकी तत्कालीन उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तथा सर तेजबहादुर सप्रू सरीखे वकीलों ने सराहना की थी। सेवाकाल में उन्होंने नाना-साहब पर पुस्तक लिखी थी, जो उत्तर प्रदेश शासन द्वारा प्रकाशित की गयी थी; इसका मराठी अनुवाद भी महाराष्ट्र शासन द्वारा प्रकाशित किया गया है।

सेवानिवृत्ति के बाद वह विधि पर तथा इतिहास एवं संस्कृति पर पुस्तके लिखते रहे हैं। ये पुस्तके संदर्भ एवं निर्देश पुस्तकाओं के रुप में प्रशासनिक तथा न्यायिक सेवाओं के सदस्यों के लिये महत्त्वपूर्ण हैं और राज्य कर्मचारियों के लिए सामान्य रुप से उपयोगी हैं। न्यायिक औचित्य के सिद्धान्तों एवं व्यवहारों पर उनकी पुस्तक उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री रमेशचन्द्र देव शर्मा के अनुसार एक न्यायाधीश के लिए अपेक्षित न्यायालय में तथा व्यक्तिगत जीवन में न्यायिक औचित्य के प्राय: प्रत्येक पक्ष पर प्रकाश डालती है। एक अन्य भूतपूर्व न्यायाधीश तथा वर्तमान में उ० प्र० में लोक आयुक्त श्री मुर्तजा हुसेन ने यह भी स्वीकार किया है कि यदि पहले उन्होंने इस पुस्तक को पढ़ा होता तो अधीनस्थ न्यायिक सेवा तथा बाद में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रुप में उनका कृतित्व काफी बेहतर रहा होता।

श्री मिश्रा नैषधीय-चरितम् के कर्त्ता सुप्रसिद्ध कवि श्री हर्ष के वंशज हैं, उस महाकवि तथा उनके समय और संरक्षक के विषय में श्री मिश्रा ने दो पुस्तके लिखी हैं। उन्होंने अपनी आत्मकथा के रुप में भी निबन्ध लिखा है।

अध्यात्म बिद्या तथा धर्म के तुलनात्मक अध्ययन में भी उनकी रुचि है। पैगम्बर मोहम्मद के ऊपर लिखी गयी उनकी पुस्तक में इस्लाम के पुरस्कर्ता के जीवन और कृतित्व के संबंध में संवेदनात्मक दृष्टि परिलक्षित होती है।

CC-0. Bhagavad Pa

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सचिवालय अधिकारी के रुप में श्री मिश्रा की प्रतिष्ठा एक नियमबद्ध, गहन तथा प्रखर अधिकारी के रुप में थी। उक्त सेवा अभी भी उनसे प्रेरणा ग्रहण करती है। लेखक के रुप में उन्होंने अपनी सेवाकाल के लगभग ३० वर्ष के अनुभव को राज्य कर्मचारियों के लिए लेखबद्ध किया है, और जब भी निर्वचन या प्रक्रिया की समस्या उपस्थित होती है तो उनकी पुस्तकों से मार्गदर्शन प्राप्त किया जाता है। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी श्री मिश्रा का ज्ञान एवं विद्वत्ता के क्षेत्र में उनके सारभूत योगदान के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : १५, दुर्गापुरी (ब्लन्ट स्क्वायर), लखनऊ-२२६००४

Mr. A. S. Misra

Mr. Misra was born on February 26, 1908 A. D., at Village Sarai Miran in the Farrukhabad district. He had his education in Sarai Miran, Banda, Allahabad and Lucknow. He did B. A. from the Allahabad University in 1927 and LL. B. from the Lucknow University in 1929.

For some time he practised law at Allahabad, but in 1933 he joined the U. P. Secretariat in the Finance Department, and for some time worked also as Accounts Officer in the Office of the Inspector- General of Civil Hospitals. On his selection as Superintendent he came back to the Secretariat and rose to the high position of Deputy Secretary, from which post he retired in 1964.

He took voluntary retirement at the age of 55 with a view to re-enter the legal profession and devote himself to writing books. As an Advocate at the Lucknow Bench of the High Court he specialised in service matters and also appeared before the Supreme Court.

The first passion of Mr. Misra has been study and writing. As a young lawyer he wrote "Commentary on the Court Fees Act and the Suits Valuation Act", and it was highly praised by the then Justices of the High Court and other legal luminaries such as Sir Tej Bahadur Sapru. During the service period he wrote "Nana Saheb Peshwa and the Fight for Freedom". It was published by the U. P. Government, and its Marathi translation has also been published by the Government of Maharashtra.

Since retirement he has devoted himself to writing books on law as well as history and culture. His books are valuable as reference and guide books for the members of administrative and judicial services, as also the government servants in general. His book o Judicial Propriety, as summed up by Mr. R. C. Deo Sharma, a former Judge of the High Court, covers almost every aspect of judicial propriety in court as well as in the private life of a Judge. Mr. Mirza Murtaza Hussain, a former Judge and presently Lok Ayukta in U.P., found the book to be an exhaustive and scholarly treatise on the topic, and he was not shy in admitting that had he read this book earlier, his performance as a member of subordinate judiciary and also as a Judge of the High Court might have been much better.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. Misra traces his descent from Sri-Harsh, the famous author of 'Naishadhiya Charitam'. He has written two books about the great poet and his times and patron. He has also written an auto-biographical account under the title 'Living Without Malice'.

Spiritual pursuit and comparative study of religions also engage his attention. In 'The Prophet, His Graces and Glorious End', he has presented a sympathetic understanding of the life and work of the founder of Islam.

As a Secretariat Officer Mr. Misra had the reputation of being meticulous, thorough and brilliant. His example still inspires the Service. As an author he has put forth his experience of nearly thirty years in service for the benefit of government servants and his books are frequently referred when there is any point of difficulty in interpretation and procedure. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Mr. Misra, the scholar and intellectual *par excellence*, for his substantial contribution in the field of learning and scholarship.

Address : 15, Durga puri (Blunt Square), Lucknow–226004

Works' कृतियां

(1) Commentary on the Court Fees Act and the Suits Valuation Act
(2) Government Servants' Companion
(3) Officers' Companion
(4) Law of Speaking Orders
(5) Law of Bias and Malafides
(6) Law of Character and Integrity Rolls
(7) Commentary on the U. P. Public Services Tribunals Act, 1976
(8) How to write Judgments
(9) Principles and Practice of Judicial Propriety
(10) Nana Saheb Peshwa and the Fight for Freedom
(11) The Prophet, His Graces and Glorious End
(12) कन्नौज का इतिहास और महाराजा जयचन्द की सत्य कथा
(13) महाकवि श्रीहर्ष और उनका महान संस्कृत काव्य नैषधीय-चरितम्

———

CC-0. Bhagavad Pa...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री राम गोपाल

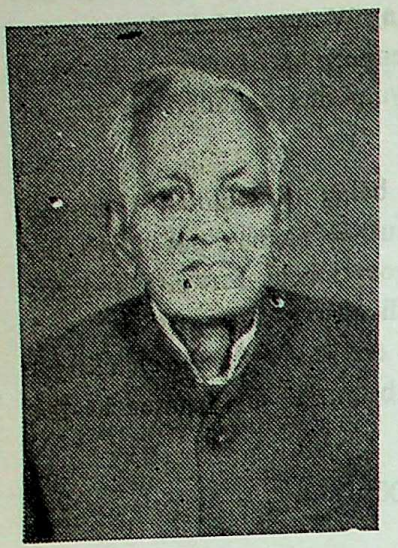

श्री राम गोपाल का जन्म मुरादाबाद जिले के ग्राम अगवानपुर में १२ अगस्त, १९१२ ई०, को हुआ था। उनकी नियमित संस्थागत शिक्षा सम्भव न हो सकी और एम० ए० की परीक्षा भी उन्होंने व्यक्तिगत अभ्यर्थी के रूप में उत्तीर्ण की। अपने जीवन के प्रारम्भ में वह पत्रकारिता की ओर आकर्षित हुये और उन्होंने विभिन्न अंग्रेजी दैनिक-पत्रों के संवाददाता के रूप में कार्य किया, तथा १९५३ में वह यू० पी० वर्किंग जर्नलिस्ट यूनियन के अध्यक्ष भी निर्वाचित हुये। बाद में कुछ समय वह इलाहाबाद से प्रकाशित 'दी लीडर' के सहायक सम्पादक भी रहे। परन्तु शीघ्र ही उन्होंने पत्रकारिता को व्यवसाय के रूप में छोड़ दिया और स्वान्तः सुखाय पुस्तक लेखन का कार्य प्रारम्भ किया तथा लखनऊ में आवासित हुये।

विगत ३०-वर्षों में उन्होंने प्रायः २० पुस्तकें भारतीय इतिहास तथा राजनीति पर लिखी हैं। •आजकल वह भारतीय स्वतंत्रता की वास्तविकताओं पर एक ग्रन्थ का प्रणयन कर रहे हैं। उनकी सभी पुस्तकें उनके निजी प्रयास का फल है, जिसमें उन्होंने किसी दूसरे की सहायता अथवा मार्ग-दर्शन प्राप्त नहीं किया। उनके सभी ग्रन्थ विशेष रूप से सुलिखित और संदर्भित हैं और वह किसी भी विश्वविद्यालय के अध्यापक के योग्य उच्च कोटि के शोध कार्य का मान रखते हैं।

लोकमान्य तिलक पर उनकी पुस्तक की समीक्षा ब्रिटिश बुक न्यूज में, भारत की भाषा समस्या पर उनकी पुस्तक की समीक्षा टाइम्स आफ इन्डिया में और बंगाल में ब्रिटिश आधिपत्य तथा भारत में ब्रिटिश राज्य पर पुस्तकों की समीक्षा टाइम्स लिटरेरी सप्लिमेन्ट में प्रकाशित हुयी थीं जिसमें इन ग्रन्थों को अपने विषय पर शोध पूर्ण एवं प्रामाणिक बताया गया।

भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक इतिहास विषयक उनकी पुस्तक की समीक्षा आधुनिक भारतीय इतिहास के अधिकारी विद्वान एल० एफ० रशब्रुक-विलियम्स ने इन्टरनेशनल अफ़ेयर्स में करते हुये श्री राम गोपाल की सम्पूर्ण लेखन शैली का स्पष्ट विवेचन किया है और कहा है कि श्री राम गोपाल यद्यपि विवादशील प्रकार के उन कठोर पत्रकारों में से हैं जिन्होंने भारतीय पत्राकारिता को राष्ट्रीय आंदोलन की सफलता में एक शक्तिशाली भूमिका प्रदान की थी, उन्होंने ऐतिहासिक विषयों पर कतिपय उत्कृष्ट पुस्तकें पर्याप्त वस्तुपरकता के साथ लिखी हैं। वस्तुपरकता के गुण की अपेक्षा से उक्त ग्रन्थ एक अति कठोर परीक्षा है जिसकी कि कल्पना की जा सकती थी क्योंकि एक उत्तर प्रदेश वासी यदि मुस्लिम राजनीति के विषय में दूसरे सम्प्रदाय का होते हुये इतनी वस्तुपरकता के साथ लिख सकता है तो वह किसी भी विषय पर वस्तुपरकता के साथ लिख सकता है। निष्पक्षता बनाये रखने के लिये लेखक ने अति परिश्रम किया है और चूँकि यह ग्रन्थ बहुत श्रमसाध्य शोध का परिणाम है तथा बहुत ही सुलिखित है, यह सावधानीपूर्वक अध्ययन के योग्य है।

इन्दिराकालीन भारत पर पुस्तक के प्रणयन में उनकी वस्तुपरकता और साहस श्लाघनीय हैं और वह उन्हें वर्तमान घटनाओं के राजनैतिक टीकाकारों तथा इतिहासकारों की प्रथम पंक्ति में ला खड़ा करते हैं।

श्री राम गोपाल राजनैतिक जीवन में भी सक्रिय रहे हैं; वह भारतीय क्रान्ति दल के संस्थापकों में से थे

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

तथा उसके प्रथम उपाध्यक्ष थे, और उ० प्र० विधान परिषद के सदस्य भी रहे हैं, परन्तु शीघ्र ही राजनैतिक क्रियाकलापों के प्रति उनको वितृष्णा हो गयी क्योंकि उन्होंने देखा कि राजनीति बौद्धिक लोगों के लिये उचित व्यवसाय नहीं है। पुनः वह अध्ययन, शोध और लेखन में लग गये।

भारतीय इतिहास के ब्रिटिश काल तथा स्वतंत्रता-पश्चात काल, और भारत की वर्तमान राजनीति, संविधान तथा भाषा समस्या के अध्येताओं के लिये उनके ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण बने रहेंगे। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी श्री राम गोपाल का स्वतन्त्र चिन्तन और विद्वत्ता के क्षेत्र में सारभूत योगदान के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : शान्ति सदन, मोती नगर, लखनऊ-२२६००४

Mr. Ram Gopal

Mr. Ram Gopal was born on August 12, 1912 A.D., in village Agwanpur in the Moradabad district. He could not have regular institutional education and did M.A. also as a private candidate. Early in his life he was drawn to journalism and worked as a correspondent for different English Dailies; and was elected President of the U.P. Working Journalists Union in 1953. Later he was Assistant Editor of The Leader, Allahabad. But soon he gave up journalism and took up the self-help project of writing books, and for good settled at Lucknow.

During the last thirty years he has written some twenty books on Modern Indian History and Polity. He is currently working on 'Indian Freedom : Rhetorics and Realities'. All his books are the result of his personal effort only, not aided or guided by any body. His works are very well written and fully documented, and would have done credit to any don of a University as high class research work.

It was reviewed in the British Book News (Oct. 1966) that his "**Lokmanya Tilak** is indispensable to students of Modern Indian History. Well written, comprehensive and authoritative it unfolds Tilak's life vividly and with compassion."

The Times of India (20-8-1967) commented on his **Linguistic Affairs of India**– "Ram Gopal is a journalist, political worker and author. The book reflects the merits and drawbacks of these roles. It is a readable book with lucid style and interesting details, with all view-points objectively considered and with historical data judiciously presented".

While reviewing in the International Affairs (July 1960) his **Indian Muslims : A Political History**, L.F. Rushbrook-Williams, the reputed authority on Modern Indian History, candidly sums up the merits of Mr. Ram Gopal's authorship : "Mr. Ram Gopal, although a doughty journalist of the controversial type which made Indian journalism a powerful factor in the success of the nationalist movement, has written some excellent books on historical subjects with considerable objectivity. The work under notice is about as stiff a test of this quality as could be devised; because a U.P. man who can write objectively about Muslim politics while belonging to the other community can probably write objectively about anything. The author has taken the greatest possible pains to maintain impartiality; and since

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

this book is the product of much industrious research and is exceedingly well written, it deserves – and will no doubt receive- careful study".

His objectivity and courage in **India under Indira** is creditable and it brings him in the first line of political commentators and historians of current events.

Mr. Ram Gopal had also been active in political life and was one of the founders and the first Vice-President of the Bhartiya Kranti Dal, and had a term as member of the U.P. Legislative Council in 1960's. But he was soon disillusioned, and to his chagrin, found that politics was no vocation for intellectuals. He reverted to his passion of studying, research and writing.

For all students of the British Period and the Post-Independence Period of Indian History, and the current polity, constitution and linguistic problem of India, his books are a valuable reading. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Mr. Ram Gopal, the scholar and intellectual *par excellence,* for his substantial contribution to free thinking and scholarship.

Address : Shanti Sadan, Moti Nagar, Lucknow–226 004

Works कृतियां

(1) Lokmanya Tilak – A Biography (1955, 1966)
(2) Indian Muslims – A Political History, 1858-1947
(3) British Rule in India – An Assessment
(4) How the British Occupied Bengal – A Corrected Account of the 1756–1765 Events
(5) Trials of Nehru
(6) How India Struggled for Freedom
(7) India– China– Tibet Triangle
(8) Indo–Pakistan War and Peace
(9) Spotlight on Democracy in India
(10) Indian Politics from Crown Rule to Independence
(11) Linguistic Affairs of India
(12) Man and Reason
(13) Undemocratic Elements in the Indian Constitution
(14) India under Indira
(15) India : The People and their Secular State
(16) भारतीय राजनीति – विक्टोरिया से नेहरू तक
(17) जवाहर लाल नेहरू के मुकदमे
(18) स्वतंत्रता से पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास
(19) भारतीय मुसलमानों का इतिहास
(20) लोकमान्य तिलक की जीवनी

———

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री रामेश्वर प्रसाद दुबे

श्री दुबे का जन्म लखनऊ में ७ दिसम्बर, १९१२ ई०, को हुआ था। उनकी शिक्षा लखनऊ में ही हुयी और उन्होंने १९३७ में इतिहास विषय में एम० ए० की परीक्षा लखनऊ विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। उसके बाद वह वर्धा में स्थित अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ में समाज सेवा एवं ग्रामोद्योग के प्रशिक्षण के लिये चले गये जहाँ उन्हें महात्मा गाँधी और सुभाष चन्द्र बोस के सान्निध्य का अवसर प्राप्त हुआ जिन्होंने उनके व्यक्तित्व पर प्रभूत प्रभाव डाला। तीन वर्ष तक वह सोख्ता आश्रम, गंगाघाट, में कुटीर उद्योग के अध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहे तथा आसफपुर और रणीवां के ग्रामोद्योग आश्रमों में भी उन्होंने कार्य किया।

१९४१-४२ में उन्होंने गवर्नमेन्ट ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद, में प्रशिक्षण लिया और १९४२ में एल० टी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात वह डी० ए० वी० इन्टर कालेज, लखनऊ, में अध्यापक के पद पर नियुक्त हुये जहाँ वह सितम्बर १९४७ तक कार्यरत रहे। इस बीच उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से १९४६ में एल-एल० बी० की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। सितम्बर १९४७ में वह राजकीय सेवा में आ गये। राजकीय सेवा के दौरान उन्होंने सचल प्रशिक्षण केन्द्रों के प्रमुख निर्देशक, सहायक परियोजना कार्यपालक अधिकारी, खंड विकास अधिकारी, तकनीकी सहायक (सामाजिक शिक्षा) और प्रसार प्रशिक्षण अधिकारी के पदों पर कार्य किया। प्रसार प्रशिक्षण अधिकारी के पद से वह दिसम्बर १९७० में सेवानिवृत्त हुये। सेवानिवृत्ति के पश्चात लगभग १० वर्ष उन्होंने वकालत की परन्तु इस व्यवसाय की रीतियों से वह अपना समन्वय नहीं कर सके।

अपने विद्यार्थी जीवन से ही उन्हें शारीरिक शिक्षा में विशेष अभिरुचि थी और व्यायाम तथा मुक्केबाजी में उन्होंने पदक भी प्राप्त किये थे। अध्यापक के रूप में उन्होंने सदैव ही खेल खेलने और व्यायाम करने के लिये प्रोत्साहित किया।

वह एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। नैतिक मूल्यों के प्रति उनका विशेष अनुराग है। उन्होंने सामाजिक और शैक्षणिक समस्याओं पर लेख भी लिखे हैं और उनकी इच्छा एक ऐसी पुस्तक लिखने की है जो हिन्दू समाज में जागरुकता और आत्म-सम्मान ला सके परन्तु उनका गिरता हुआ स्वास्थ्य इसमें बाधक हो रहा है।

श्री दुबे एक बहुत ही सम्मानित अध्यापक थे क्योंकि उन्हें अपने विद्यार्थियों से स्नेह था और वह उन्हें आवश्यक मार्गदर्शन स्वान्तः सुखाय देते थे। वह अपने विद्यार्थियों को सदा ही आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहित करते थे और उनकी सफलता पर आनन्दित होते रहे हैं। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज मनीषी श्री दुबे का उनके विशिष्ट गुणों के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : ४, मारवाड़ी गली, अमीनाबाद, लखनऊ-२२६ ०१८

——

CC-0. Bhagwat [illegible]

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. R. P. Dube

Mr. Dube was born on Dec. 7, 1912 A. D., at Lucknow. He had his education in Lucknow and did M. A. in History in 1937 from the Lucknow University. Then he went to the All India Village Industries Association, Wardha, for training in social service and village industries. There he had the opportunity to come into contact with Mahatma Gandhi and Subhash Chandra Bose, who had a great impact on him. For three years he worked as Superintendent of Cottage Industries at the Sokhta Ashram, Ganga Ghat, and also of village industries Ashrams at Asafpur and Raniwa.

In 1941-42 he joined the Government Training College, Allahabad, and took L. T. in 1942. He was then appointed teacher in the D. A. V. Inter College, Lucknow, and worked there till September 1947 when he entered Government Service. In the meantime he had done LL. B. from the Lucknow University in 1946. During his period of service under the U. P. Government he worked as Chief Instructor of the Mobile Training Squads, Assistant Project Executive Officer, Block Development Officer, Technical Assistant (Social Education) and Extension Training Officer from which post he retired in December 1970. After retirement, for nearly ten years he practised law but could not reconcile himself to the professional mores.

From his college days he was interested in physical education and had won medals in gymnastics and boxing. As a teacher he always encouraged his students to play games and do physical exercise.

He is a religious man and puts a premium on moral values. He has occasionally written on social and educational problems, and wants to write a book with a view to awaken the conscience and self-respect of the Hindus, but his failing health is causing hinderance.

Mr. Dube was a very respected teacher since he had affection for his students and gave them necessary guidance spontaneously. He always encouraged his students to go ahead and has felt real joy on their success. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Mr. Dube, the intellectual *par excellence*, for his distinctive virtues.

Address : 4, Marwari Gali, Aminabad, Lucknow-226018.

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री राम निहोर चतुर्वेदी

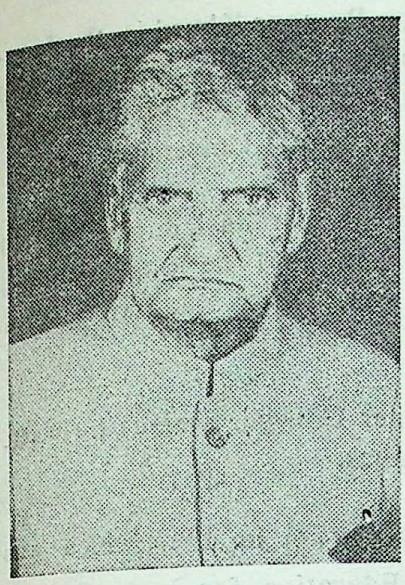

श्री चतुर्वेदी का जन्म ४ अगस्त, १९१३ ई०, को जौनपुर जिले के ग्राम रामपुर खुर्द में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा मड़ियाहु स्थित तहसील प्राइमरी स्कूल में हुयी और वर्नाकुलर फ़ाइनल परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात वह उच्चतर शिक्षा के लिये वाराणसी चले गये। उन्होंने बी० ए०, इतिहास विषय में एम० ए० और बी० टी० की परीक्षायें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की।

१९४१-४४ के दौरान वह डी० ए० वी० इन्टर कालेज, वाराणसी, में और तत्पश्चात १९४४ से १९५१ तक डी० ए० वी० इन्टर कालेज, लखनऊ, में इतिहास के अध्यापक रहे। १९५१ में उनकी नियुक्ति श्री गांधी विद्यालय इन्टर कालेज, बछरावां, जिला रायबरेली, में प्रिन्सिपल के पद पर हुयी और वहीं से वह १९७४ में सेवानिवृत्त हुये।

वर्तमान में वह गंगादीन रामकुमार इण्टर कालेज, रामगढ़ (जिला जौनपुर), के अध्यक्ष हैं। ध्यान-योग और आसनों में उनकी विशेष अभिरुचि है।

उन्होंने १९४७ में "विश्व इतिहास की झांकी" पुस्तक लिखी थी जो उ० प्र० माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा इण्टर कक्षाओं के लिये निर्धारित की गयी थी। उन्होंने सैन्य विद्रोह से पूर्व के समाचार-पत्रों तथा सैन्य विद्रोह से पहले देशी प्राथमिक शिक्षा, पर लेख भी प्रकाशित किये थे।

एक अध्यापक के रूप में वह अपने विद्यार्थियों द्वारा बहुत सम्मानित थे क्योंकि उनकी शिक्षा के प्रति वह सावधान रहते थे और उनके प्रति सदैव ही स्नेहशील रहते थे। उनके विद्यार्थी उन्हें अब भी स्मरण करते हैं और एक अध्यापक के रूप में जिन्होंने अपना समस्त जीवन शिक्षा के कार्य के लिये समर्पित किया है, उनके प्रति यही सर्वोत्तम श्रद्धांजलि है। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज मनीषी श्री चतुर्वेदी का अध्यापन के प्रति अप्रतिम निष्ठा के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : ग्राम रामपुर खुर्द, डाकखाना जन्घई बाज़ार, जिला जौनपुर

——

CC-0. Bhagavad Ram...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. R. N. Chaturvedi

Mr. Chaturvedi was born on Aug. 4, 1913 A.D., in Village Rampur Khurd in the Jaunpur district. He had his early schooling at the Tahsil Primary School at Mariahu, and having passed the Vernacular Final Examination he shifted to Varanasi for further education, and did B.A., M.A. in History, and B.T. from the Banaras Hindu University.

He worked as Lecturer in History at the D.A V. Inter College, Varanasi, during 1941-44 and then at the D.A.V. Inter College, Lucknow, from 1944. In 1951 he was appointed Principal of Shri Gandhi Vidyalaya Inter College, Bachhrawan, Distt. Rae Bareli, from where he retired in 1974.

Presently he is President of the Gangadin Ramkumar Inter College, Ramgarh (Distt. Jaunpur). He is specially interested in Dhyana-Yoga and Asanas.

He wrote a text book on World History (विश्व इतिहास की झांकी) in 1947 which was approved by the U.P. Board of High School and Intermediate Education for Inter Classes. He had published papers on 'Press before the Mutiny' and 'Indigenous Elementary Education before the Mutiny'.

As a teacher he was highly respected by his students because he showed concern for their studies and was always affectionate towards them. He is still remembered by his students and that is the best tribute to him as a teacher who has devoted all his life to the cause of education. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Mr. Chaturvedi, the intellectual *par excellence,* for his exemplary sincerity to his job as a teacher.

Address : Village Rampur Khurd, P.O. Janghai Bazar, Distt. Jaunpur

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री वीर नन्दन जिन्दल

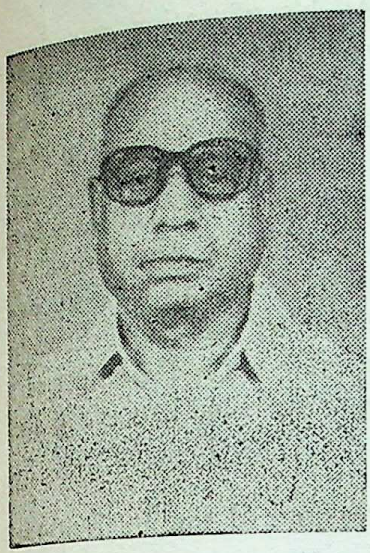

श्री जिन्दल का जन्म ६ मई, १९१५ ई०, को लखनऊ में हुआ था। उनकी समस्त शिक्षा लखनऊ में ही हुयी। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से १९३६ में बी० एस-सी० और १९३८ में एल-एल० बी० किया।

१९३८-४१ के दौरान उन्होंने लखनऊ में वकालत की। तत्पश्चात वह बैंक व्यवसाय में चले गये और १९४२ में उन्होंने भारत बैंक लि० में सेवायोजन किया तथा दिल्ली, मथुरा, गोरखपुर और इन्दौर में ब्रांच मैनेजर के पद पर कार्य किया। १९५४ में वह लखनऊ बैंक लि० के प्रबंध निदेशक नियुक्त हुये और १९७६ तक कार्यरत रहे जब कि रिजर्व बैंक की नयी बैंक नीति के कारण उक्त बैंक को बनारस स्टेट बैंक में विलीन करना पड़ा। १९७६-७८ की अवधि में वह मोदी समूह द्वारा मोदी रबड़ लि० के क्षेत्रीय मैनेजर के पद पर आर्थिक मैनेजमेन्ट में अपने विशिष्ट ज्ञान की दृष्टि से आमंत्रित किये गये। मार्च १९७८ में वह अंततः नियमित सेवा से निवृत्त हो गये। तब से एक विचारपूर्ण नागरिक के रूप में वह अपना समय अध्ययन और लेखन में ही व्यतीत करते हैं।

वह लखनऊ के सामाजिक जीवन में सक्रिय रहे हैं। वह इण्टरनेशनल क्लब और जैन मिलन के कोषाध्यक्ष हैं तथा ह्यूमनिस्ट यूनियन के उपाध्यक्ष हैं।

१९४० से ही श्री जिन्दल 'पाठकों के पत्र' स्तम्भ के अंतर्गत दैनिक समाचार-पत्रों में पत्र लिखते रहे हैं। दि पायनियर, नेशनल हेराल्ड, नर्दर्न इण्डिया पत्रिका और टाइम्स ऑफ़ इण्डिया के पाठक उनसे सुपरिचित हैं। वह सभी सामयिक विषयों पर लिखते हैं और वर्तमान घटनाओं, धार्मिक कठमुल्लापन और सामाजिक समस्याओं पर स्पष्ट एवं तर्कपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं। अपने पत्रों के द्वारा जो अब १००० से भी ऊपर हैं, उन्होंने कितने ही विवाद प्रेरित किये और लोगों को सोचने के लिये प्रोत्साहित किया है। विचारों के संवहन में और लोगों को सोचने तथा अपने विचार व्यक्त करने के लिये प्रेरित करने में उनका योगदान समाचार-पत्रों के अग्र-लेखों से कम नहीं रहा है। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज मनीषी श्री जिन्दल का प्रबुद्ध चिन्तन के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : अजिताश्रम, गनेश गंज, लखनऊ–२२६ ०१८

CC-0. Bhagavad Ra...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. V. N. Jindal

Mr. Jindal was born on May 6, 1915 A.D., at Lucknow. All his education was done at Lucknow. He did B.Sc. in 1936 and LL.B. in 1938 from the Lucknow University.

During 1938-41 he practised law at Lucknow. Then he shifted to the Banking profession, and joined the Bharat Bank Ltd. in 1942 and served as its Branch Manager at Delhi, Mathura, Gorakhpur and Indore. In 1954 he joined the Lucknow Bank Ltd. at Lucknow as Managing Director and continued as such till 1976 when that Bank was wound up because of the new banking policy of the Reserve Bank of India. During 1976-78 he was invited by the Modis to work as Regional Manager of the Modi Rubber Ltd .at Lucknow in view of his expertise in financial management. In March 1978 he finally retired from regular employment, and since then he is spending his leisure in reading and writing as a thoughtful citizen.

He has been active in the social life of Lucknow. He is Treasurer of the International Club and the Jain Milan, and Vice-President of the Humanist Union.

Mr. Jindal has been contributing letters to the Readers' Forum of the daily newspapers since 1940. The readers of The Pioneer, National Herald, Northern India Patrika and Times of India are quite familiar with him. He writes practically on all topical matters, and puts forth his views on current events, religious fanaticism/fundamentalism and social problems candidly and rationally. Through his letters which number over a thousand, he has often initiated controversies and made people think. In floating ideas and in provocating people to think and express, his contribution has not been less than that of the Leader writers of newspapers. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Mr. Jindal, the intellectual *par execellence*, for his contribution to conscientious thinking.

Address : Ajitashram, Ganesh Ganj, Lucknow-226 018

—

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० भगीरथ मिश्र

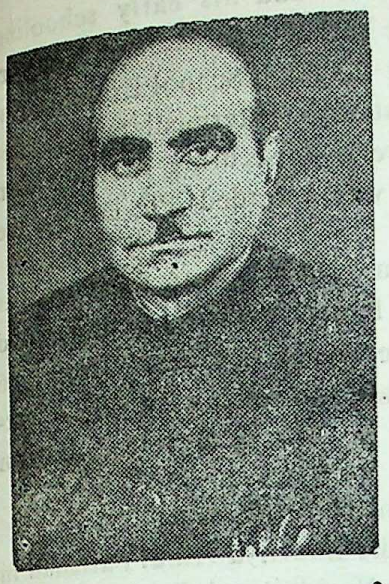

डा० मिश्र का जन्म २० जुलाई, १९१५ ई०, को कानपुर में हुआ था। उनकी प्राथमिक शिक्षा ग्राम सेंठा में हुयी और माध्यमिक स्तर से स्नातक स्तर तक की शिक्षा कानपुर में हुयी। वह एक प्रखर छात्र थे और १९३५ में संयुक्त प्रांत में हाईस्कूल परीक्षा में उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया था तथा तत्पश्चात इण्टरमीडिएट की परीक्षा में भी योग्यता सूची में स्थान प्राप्त किया था। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय में एम०ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में तथा प्रथम स्थान पर १९४१ में उत्तीर्ण की। १९४५ में उन्होंने फ्रेन्च भाषा में डिप्लोमा किया तथा उन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी।

उनकी नियुक्ति लखनऊ विश्वविद्यालय में १९४३ में हिन्दी विभाग में प्राध्यापक के पद पर हुयी और १९५२ में रीडर के पद पर प्रोन्नति हुयी। पुणे विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रोफ़ेसर के पद पर उनकी नियुक्ति १९६० में हुयी और तत्पश्चात १९६६ से १९७७ तक उन्होंने सागर विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर तथा हिन्दी विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। १९७३ और १९७५ में वह सागर विश्वविद्यालय में कार्यवाहक कुलपति कुछ समय के लिये रहे। १९७९ में उस्मानिया विश्वविद्यालय तथा १९८० में विक्रम विश्वविद्यालय में वह विज़िटिंग प्रोफ़ेसर भी थे।

उनके मार्गदर्शन में ७५ शोध छात्रों ने पी-एच० डी० की उपाधि और १०-शोध छात्रों ने डी० लिट्० की उपाधि के लिये कार्य किया।

वह एक प्रतिष्ठित विद्वान हैं जिन्हें १९६७ में भारतीय हिन्दी परिषद का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया था, तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा 'साहित्य वारिधि' और 'साहित्य वाचस्पति' की मानद उपाधियाँ तथा विक्रम-शील विश्वविद्यालय द्वारा 'विद्यासागर' की मानद उपाधि प्रदान की गयी। वर्तमान में वह ललित कला मंडल, सागर, के अध्यक्ष हैं।

डा० मिश्र के विशिष्ट विषय काव्य-शास्त्र, साहित्य-समीक्षा, मध्यकालीन हिन्दी काव्य और तुलसीदास हैं। हिन्दी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और स्मारिकाओं में उन्होंने समय-समय पर २०० से भी अधिक लेख/शोध-पत्र प्रकाशित किये हैं। अपने विषय के वह प्रामाणिक विद्वान हैं और उनके द्वारा लिखी गयी पुस्तकें विभिन्न विश्व-विद्यालयों के स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में सम्मिलित हैं। उनकी छः पुस्तकें उत्तर प्रदेश शासन, मध्य प्रदेश शासन और बिहार राष्ट्र भाषा परिषद द्वारा पुरस्कृत हैं।

काव्य-शास्त्र और साहित्य समीक्षा पर डा० मिश्र के ग्रन्थ अपने विषय के सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। हिन्दी साहित्य में उन्होंने आधुनिक समीक्षा की शैली को प्रवृत्त किया और समीक्षा की पारम्परिक शैली से उसका समन्वय किया। वह एक सफल अध्यापक रहे हैं और उनके विद्यार्थी अब तक उनके द्वारा कठिन विषय को सरल सुबोध शैली में प्रस्तुत किया जाना याद करते हैं। हिन्दी भाषा को साहित्य-समीक्षा तथा काव्य-शास्त्र के विज्ञान और तकनीक से समृद्ध करने में उनका योगदान निरंतर स्मरणीय रहेगा और इन विषयों के गंभीर अध्ययन हेतु अध्येताओं के लिये उनका कृतित्व मार्गदर्शन करता रहेगा। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी डा० मिश्र का विद्वत्ता के क्षेत्र में उनके सारभूत योगदान के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : एच–९, पद्माकर नगर, मकरोनिमा, सागर (म० प्र०)–४७० ००४

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. Bhagirath Mishra

Dr. Mishra was born on July 20, 1915 A. D., at Kanpur. He had his early schooling at Village Saintha, and from secondary stage to graduation he had his education at Kanpur. He had a brilliant educational career securing first position at the High School Examination from U.P. in 1935 and also securing a position in the merit list at the Intermediate Examination. He did M. A. in Hindi in 1941 from the Lucknow University, securing first division with first position. In 1945 he did Diploma in French, and was awarded Ph. D. by the Lucknow University.

He joined the Lucknow University as Lecturer in Hindi in 1943 and was promoted as Reader in 1952. He was appointed Professor of Hindi in the Pune University in 1960, and worked as Professor and Head of the Hindi Department in the Saugar University from 1966 to 1977. In 1973 and 1975 he also worked as Acting Vice-Chancellor of the Saugar University. He was Visiting Professor to the Osmania University in 1979 and to the Vikram University in 1980.

75 scholars have worked under his guidance for Ph. D and 10 for D. Litt.

He is a celebrated scholar, who was elected President of the Bhartiya Hindi Parishad in 1967 and has been awarded Honoris Causa Degrees of 'Sahitya Varidhi' and 'Sahitya Vachaspati' by the Hindi Sahitya Sammelan, Prayag, and of 'Vidya Sagar' by the Vikram-Shila Vishwavidyalaya. Presently he is President of the Lalit Kala Mandal, Sagar.

Dr. Mishra specialises in poetics and criticism, Mediaeval Hindi poetry and Tulsidas. He has contributed more than 200 papers to various Hindi journals and commemoration volumes from time to time. He is an authority on his subject and the books written by him are included in the graduation and post-graduation curriculum of the different Universities. Six of his books merited prizes from the Governments of Uttar Pradesh and Madhya Pradesh and the Bihar Rashtra Bhasha Parishad.

The works of Dr. Mishra on poetics and criticism are the most authentic on the subject in Hindi. He has introduced the technique of modern criticism and synchronised it with the traditional modes of criticism, in Hindi literature. He has been a successful teacher and his students fondly recollect his exposition of a terse subject in a lucid and easy style. His contribution to enriching the Hindi language with science and technique of criticism and poetics will long endure and will continue to inspire the students for serious study of these subjects. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Dr. Mishra, the scholar and intellectual *par execellence*, for his substantial contribution to scholarship.

Address : H–9, Padmakar Nagar, Makronia, Sagar (M. P.)-470 004

Works कृतियाँ

(१) हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास (१९४८)
(२) हिन्दी रीति साहित्य (१९५२)
(३) तुलसी रसायन (१९५४)
(४) काव्य शास्त्र (१९५६)
(५) नामदेव की हिन्दी पदावली (१९६२)
(६) निराला काव्य का अध्ययन (१९६७)
(७) काव्य मनीषा (१९६७)
(८) आधुनिक हिन्दी काव्य (१९७१)
(९) महाकवि तुलसीदास और युग संदर्भ (१९७२)
(१०) हिन्दी भाषादर्श (१९७७)
(११) हिन्दी व्युत्पत्ति कोष
(१२) पाश्चात्य काव्यशास्त्र
(१३) नया काव्यशास्त्र
(१४) सीता कथा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री महेश्वर पाण्डेय

श्री पाण्डेय का जन्म १९ सितम्बर, १९१६ ई०, को वाराणसी जिले के गौरा ग्राम में हुआ था। उन्होंने चौबेपुर से वर्नाकुलर हिन्दी की परीक्षा उत्तीर्ण की और तत्पश्चात उच्च शिक्षा के लिए वह वाराणसी चले गये। प्रारम्भ से ही गणित उनका प्रिय विषय था और उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से १९४१ में गणित विषय में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

१९४४ में उनकी नियुक्ति डी० ए० वी० इन्टर कालेज, लखनऊ, में गणित के प्राध्यापक के पद पर हुयी और वह १९७७ में सेवानिवृत्त होने तक उसी संस्था में कार्यरत रहे। उन्होंने १९६८ में स्थिति विज्ञान पर एक पुस्तक भी इन्टर कक्षाओं के लिए लिखी थी।

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में ट्रेड यूनियन कार्यक्रमों की ओर वह बहुत शीघ्र ही आकर्षित हो गये थे और १९६८ में अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षक महासंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे जिस पद पर १९७८ तक कार्यरत रहे। वह उ० प्र० माध्यमिक शिक्षक संघ के भी अध्यक्ष रहे हैं और १९७०–७५ की अवधि में शिक्षकों एवं राज्य कर्मचारियों की समन्वय समिति के भी अध्यक्ष थे।

लखनऊ के शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र से १९७० मे वह उ० प्र० विधान परिषद के सदस्य निर्वाचित हुए थे और १९७६ तक सदस्य रहे थे। पुन: १९८४ में उसी निर्वाचन क्षेत्र से वह विधान परिषद के सदस्य निर्वाचित हुए थे।

शिक्षकों मे ट्रेड यूनियन आंदोलन के विधायकों में श्री पाण्डेय आग्रणी हैं और उनके पर्याप्त संख्या में अनुयायी हैं। शिक्षकों के लिये बहुत से लाभ और सुविधायें प्राप्त करने में वह सफल हुए हैं और शिक्षकों के प्रति की गयी उनकी सेवायें चिरस्मरणीय रहेंगी।

अध्यापक के रूप में श्री पाण्डेय अपने विद्यार्थियों के प्रति सदैव ही स्नेहशील रहते थे और गणित जैसे दुरूह विषय को उनके लिये सुबोध एवं रुचिकर बनाने का प्रयास करते थे। उन विद्यार्थियों के प्रति उनकी सहानुभूति रहती थी जो गणित से घबड़ाते थे और वह उन्हें उस विषय के प्रति अभिरुचि जागृत करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज मनीषी श्री पाण्डेय का उनके श्लाघनीय कृतित्व के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : १२, लश्करी रकाबगंज, लखनऊ–२२६ ०१८

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. Maheshwar Pandey

Mr. Pandey was born on Sept. 19, 1916 A.D., in Village Gaura in the Varanasi district. He did Vernacular Middle from Chaubepur and then shifted to Varanasi for further educaton. Mathematics was his favourite subject from the very beginning and he did M. A. in Mathematics from the Banaras Hindu University in 1941. He joined the D. A. V. Inter College, Lucknow, as Lecturer in Mathematics in 1944 and served this institution till he retired in 1977. He also wrote a book on Statics for the Inter classes in Hindi in 1968.

He was soon drawn to the Trade Union activities in the field of secondary education, and was elected President of the All India Secondary Teachers Federation in 1968, and continued as such till 1978. He was also President of the U. P. Secondary Teachers Associaton, and of the Teachers and Government Employees Co-ordination Committee during 1970–75.

He was elected member of the U.P. Legislative Council from the Teachers' Constituency, Lucknow, in 1970 and completed his term in 1976. He was again elected from the same constituency in 1984.

Mr. Pandey is one of the architects of of the trade union movement among the teachers and has a considerable following. He has been able to get many benefits for the teachers, and his services to the teachers will be long remembered.

As a teacher Mr. Pandey was always affectionate to his students, and would make the obtruse mathematics intelligible and interesting to them. He was sympathetic to those who felt scared of mathematics and encouraged them to get a liking for it. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Mr. Pandey, the intellectual *par excellence*, for his distinguished work.

Address : 12, Lashkari Rakabganj, Lucknow–226 018

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० हरबर्ट गुन्थर

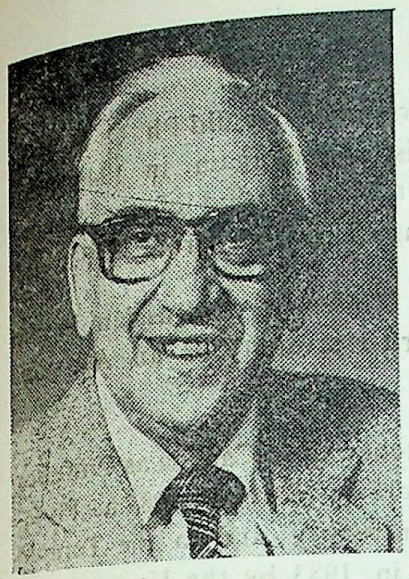

डा० गुन्थर का जन्म १७ मार्च, १९१७ ई०, को जर्मनी में हुआ था। उन्होंने १९३९ में म्यूनिख विश्वविद्यालय से भारतीय दर्शन और भाषा शास्त्र में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की और, पुनः, १९४३ में वियना विश्वविद्यालय से भारतीय दर्शन में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। द्वितीय विश्व युद्ध के अशांतिपूर्ण काल में वह आस्ट्रिया में रहे और १९४३ से वियना विश्वविद्यालय में डोज़ेन्ट के पद पर कार्यरत रहे।

१९५० में वह भारत आये और लखनऊ विश्वविद्यालय में रूसी भाषा के असिस्टेन्ट प्रोफ़ेसर के पद पर उनकी नियुक्ति की गयी। १९५६ में बौद्ध धर्म के असिस्टेन्ट प्रोफ़ेसर के पद पर उनकी नियुक्ति वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में हुयी।

१९६४ में वह भारत से चले गये और कनाडा में सास्केछवान विश्वविद्यालय में सुदूर-पूर्व के अध्ययन से संबंधित विभाग के अध्यक्ष तथा प्रोफ़ेसर नियुक्त हुये। १९८४ में प्रोफेसर एमेरिटस के रूप में वहाँ से वह सेवानिवृत्त हुये। १९७१ में वह येल विश्वविद्यालय और टोरन्टो विश्वविद्यालय में विज़िटिंग प्रोफेसर थे। सास्केछवान विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें १९८३ में डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया गया।

डा० गुन्थर बौद्ध धर्म के सुविख्यात विद्वान हैं और उन्होंने तिब्बती बौद्ध धर्म पर विशेष अध्ययन किया है। अभी भी वह इस विषय पर विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते रहते हैं। उनकी मातृ-भाषा जर्मन है, वह रूसी भाषा के अध्यापक रहे हैं, और संस्कृत, पालि तथा तिब्बती भाषाओं में निष्णात हैं। अंग्रेजी, जर्मन और इतालवी भाषाओं में वह सहजतापूर्वक लिखते हैं। सास्केछवान विश्वविद्यालय में सुदूर-पूर्व से संबंधित विषयों पर पाठ्यक्रम का व्यवस्थापन उन्होंने ही किया था जो उनकी सेवानिवृत्ति के पश्चात अब बंद हो गया है।

प्राच्य विद्या से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में डा० गुन्थर के ८० से भी अधिक विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित हुये हैं। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका और एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलीजन्स में भी उनके लेख सम्मिलित हैं। उनकी २० महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और इस समय वह बौद्ध दर्शन में संकोचन एवं कर्तृत्ववाद पर एक पुस्तक का प्रणयन कर रहे हैं।

लखनऊ में अपने आवास के दौरान उन्होंने अपने विद्यार्थियों को अध्येता प्रकार के पाठ्येतर क्रियाकलापों में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया और वह श्रमण कल्चर स्टडी सर्किल के अध्यक्ष भी थे। बुद्ध बिहार और उसके साहित्यक कार्य-कलापों से भी वह सम्बद्ध थे। उनके विद्यार्थी अभी भी उन्हें एक ऐसे अध्यापक के रूप में स्मरण करते हैं जो मित्रवत व्यवहार करते थे, सदा मुस्कराते रहते थे और न तो स्वयं आक्रोश में आते थे और न ही किसी के प्रति कठोर बात कहते थे तथा जिनके साथ बैठकर अध्ययन करना एक आनन्द-दायी अनुभव था। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी डा० गुन्थर का विद्वत्ता के क्षेत्र में सारभूत योगदान और भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : १३२०-१३ स्ट्रीट ईस्ट, सास्काटून, सास्केछवान, कनाडा

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. Herbert Guenther

Dr. Guenther was born on March 17, 1917 A. D., in Germany. He did Ph. D. in 1939 from the Munich University in Indian Philosophy and Linguistics and, again, in 1943 from the Vienna University in Indian Philosophy. During the turbulent period of the Second World War he lived in Austria and was a Dozent at the Vienna University from 1943.

He came to India in 1950 and was appointed Assistant Professor of Russian in the Lucknow University. In 1956 he joined the Varanasi Sanskrit University as an Assistant Professor of Buddhism.

He left India in 1964 and joined the University of Saskatchewan in Canada as Professor and Head of the Deparment of Far Eastern Studies, from where he retired in 1984 as Professor Emeritus. He was a Visiting Professor to the Yale University and to the Toranto University in 1971. He was awarded the degree of D. Litt. in 1983 by the University of Saskatchewan.

Dr. Guenther is a well known scholar of Buddhism and has specialised in the field of Tibetan Studies. He still supervises a select group of students in this field. His mother-tongue is German, he taught Russian, and is well versed in Sanskrit, Pali and Tibetan, and writes with equal fluency in English, German and Italian. He organised the courses in Far Eastern Studies at the University of Saskatchewan, which have been discontinued since his retirement.

Dr. Guenther has published more than 80 scholarly articles in international journals devoted to Oriental Studies, including contributions to the Encyclopaedia Britannica and the Encyclopaedia of Religions. 24 of his valuable works have since been published and at present he is working on "From Abhidharma to rDzogs-Chen : Reductionism and Creativity in Buddhist Thought".

During his stay at Lucknow he encouraged his students to take part in extra-curricular activities of scholarly type and was President of the Sramana Culture Study Circle. He was also associated with the Buddha Vihar and its literary activity. He is still remembered by his students as a teacher of friendly disposition, always smiling and never getting hurt or meaning hurt, with whom it was a pleasure to study and learn. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Dr. Guenther, the scholar and intellectual *par excellence*, for his subsatntial contribution to scholarship and great love for Indian culture.

Address : 1320-13th Street East, Saskatoon, Saskatchewan, Canada

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Works कृतियां

(1) Das Seelenproblem in alteren Buddhismus (1949)
(2) Yuganaddha – The Tantric View of Life (1952)
(3) Der Buddha und seine Lehre (1956)
(4) Philosophy and Psychology in the Abhidharma (1957, 1974)
(5) Sgam-po-pa—The Jewel Ornament of Liberation (1959, 1971; paperback-1970, 1971; Italian trans., 1976).
(6) The Life and Teaching of Naropa (1963, 1971; Italian trans., 1976)
(7) Tibetan Buddhism without Mystification (1966)
(8) The Royal Song of Saraha (1969)
(9) Treasures on the Tibetan Middle Way (1971)
(10) Buddhist Philosophy in Theory and Practice (1972)
(11) The Tantric View of life (1972)
(12) Tantra als Lebens – Anschauung (1974)
(13) The Dawn of Tantra (Co-author Chogyam Trungpa) (1975)
(14) La Concezione Tantrica della Vita (1975)
(15) Mind in Buddhist Psychology (Co-author Leslie S. Kawamura) (1975)
(16) Kindly Bent to Ease Us, Part One : Mind (1975)
(17) Kindly Bent to Ease us, Part Two : Meditation (1976)
(18) Kindly Bent to Ease us, Part Three : Wonderment (1976)
(19) Tibetan Buddhism in Western Perspective (1977)
(20) La Mente nella Psicologia Buddhista (1977)
(21) The Dynamics of Being : rDzogs-Chen Process Thinking (1983)
(22) Looking Deeper : A Swan's Questions & Answers (1983)
(23) Martrix of Mystery : Scientific and Humanistic Aspects of rDzogs-Chen Thought (1984)
(24) The Creative Vision

(No. 16, 17, 18 and 22 are translations from the Tibetan texts.)

——

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० नन्द किशोर देवराज

डा० देवराज का जन्म ३ जून १९१७ ई०, को रामपुर में हुआ था। हाई-स्कूल तक उनकी शिक्षा रामपुर में हुयी। इन्टर, बी० ए० और शास्त्री की परीक्षायें उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। १९३७ में बी० ए० की परीक्षा में उन्होंने विश्वविद्यालय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया और अंग्रेजी में सम्मान अर्जित किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से दर्शन विषय में प्रथम श्रेणी में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा उसी विश्वविद्यालय से १९४२ में डी० फिल० की उपाधि भी प्राप्त की। लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें १९५६ में डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया गया।

१९४२ से १९४८ तक आरा, छपरा और मुरादाबाद के विभिन्न डिग्री कालेजों में प्राध्यापक के रूप में उन्होंने कार्य किया। १९४८ से १९६० तक लखनऊ विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग में पहले लेक्चरर के रूप में और बाद को असिस्टेन्ट प्रोफेसर के रूप में उन्होंने कार्य किया। १९६० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उनकी नियुक्ति भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रोफेसर तथा भारतीय दर्शन एवं धर्म विभाग के अध्यक्ष के रूप में हुयी और वह १९६७-७२ में उस विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग में विशेष अध्ययन केन्द्र के निदेशक एवं अध्यक्ष भी रहे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्ति के पश्चात वह १९७७-७८ में सागर विश्वविद्यालय में और १९८३-८४ में हवाई विश्वविद्यालय में विज़िटिंग प्रोफेसर रहे। वर्तमान में वह शिमला स्थित इन्स्टीट्यूट ऑफ़ एडवान्स्ड स्टडी में सीनियर फ़ैलो हैं।

वह यूरोप, एशिया और अमेरिका के बहुत से देशों में भ्रमण कर आये हैं और विभिन्न विश्वविद्यालयों में उन्होंने दर्शन, धर्म एवं संस्कृति पर व्याख्यान दिये हैं। वह नेशनल लेक्चरर और नेशनल फ़ैलो रहे हैं, साहित्य अकादमी पुरस्कार के निर्णायक मंडल के सदस्य रहे हैं, 'फिलास्फी ईस्ट एण्ड वेस्ट' पत्रिका के भारतीय सम्पादक रहे हैं, होनोलूलू स्थित इन्स्टीट्यूट ऑफ़ रिलीजन एण्ड सोशल चेन्ज के निदेशक रहे हैं, और १९६४ में अखिल भारतीय दर्शन परिषद के अध्यक्ष रहे हैं, तथा उन्होंने भारतीय दर्शन कांग्रेस के अधिवेशनों में कितनी ही बार अध्यक्षता की है।

उनके मार्गदर्शन में ३० से भी अधिक शोधकर्ताओं ने पी-एच० डी० की उपाधि के लिये कार्य किया है।

दर्शन के क्षेत्र में उनका विशिष्ट विषय अद्वैत वेदान्त, मूल्यों का सिद्धांत और सौन्दर्य-शास्त्र रहे हैं। इसके अतिरिक्त वह साहित्य समीक्षक भी रहे हैं और स्वयं भी उन्होंने रचनात्मक लेखन काव्य और उपन्यास के रूप में किया है। लगभग ६० शोध-पत्र विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे उनके प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कई पुस्तकें उ० प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत हैं। दर्शन पर १२ ग्रन्थ, ८ काव्य संग्रह, ८ उपन्यास और ४ ग्रन्थ साहित्य समीक्षा पर वह प्रकाशित कर चुके हैं, और सम्प्रति भारतीय दर्शन में मानववाद, तथा स्वतंत्रता, रचनात्मकता एवं मूल्यांकन, पर विवेचनात्मक पुस्तकों का तथा उपालम्भ–पत्रिका काव्य का वह प्रणयन कर रहे हैं।

डा० देवराज इस ओर भी सचेष्ट रहे हैं कि साहित्य समीक्षा और दर्शन सम्बन्धी लेखन के लिये उपयुक्त माध्यम का प्रकाशन हो। १९५२-५६ में उन्होंने 'युगचेतना' के नाम से एक पत्रिका प्रारम्भ की और उसे सम्पादित किया; यह पत्रिका साहित्य समीक्षा से विशेष रूप से संबंधित थी। काशी विश्वविद्यालय में अपने

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आवास के दौरान उन्होंने 'आन्वीक्षकी' के नाम से एक पत्रिका प्रकाशित की जो विशेष रूप से दर्शन से संबंधित थी। वर्तमान में वह साहित्य समीक्षा और दर्शन से संबंधित एक त्रैमासिक पत्रिका हिन्दी में 'युग साक्षी' के नाम से निकाल रहे हैं।

डा० देवराज जहाँ भी रहे वहां सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक गतविधियों में क्रियाशील रहे और उन्होंने अपने विद्यार्थियों तथा मित्रों को बराबर सोचने और लिखने के लिये प्रेरित किया। एक दार्शनिक चिन्तक के रूप में उन्होंने परम्परागत भारतीय दर्शन का विवेक-सम्मत विवेचन किया है और उसका आधुनिक संदर्भ में मूल्यांकन किया है। एक चिन्तक और लेखक के रूप में डा० देवराज के मूल गुण बौद्धिक जिज्ञासा और पद्य एवं गद्य में रचनात्मक काव्य रहे हैं। हिन्दी साहित्य और भारतीय दर्शन के प्रति उनका योगदान स्थायी महत्त्व का है, और हिन्दी साहित्य के प्रेमियों तथा भारतीय दर्शन एवं चिन्तन के गंभीर अध्येताओं द्वारा सदा स्मरण किया जायेगा। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी डा० देवराज का उनकी दर्शन और साहित्य के क्षेत्र में श्रेष्ठ उपलब्धियों के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : ५२, बादशाहनगर, लखनऊ-२२६००७

Dr. N. K. Devaraja

Dr. Devaraja was born on June 3, 1917 A D., at Rampur. His early education up to High School was done at Rampur. Inter, B.A. and Shastri he did from the Banaras Hindu University. At B.A. he topped in the University with honours in English, in 1936 He did M.A. in Philosophy from the Allahabad University in first division, and also took D. Phil. from that University in 1942. He was awarded D. Litt. by the Lucknow University in 1956.

During 1942 to 1948 he worked as Lecturer in Degree Colleges at Arrah, Chhapra and Moradabad. From 1948 to 1960 he worked as Lecturer and, later as Assistant Professor, in the Department of Philosophy at the Lucknow University. He was appointed Professor of Indian Civilization and Culture and Head of the Department of Indian Philosophy and Religion at the Banaras Hindu University in 1960, and was Head and Director, Centre of Advanced Study in Philosophy, in that University during 1967–72. After his retirement from the B.H.U. he was Visiting Professor at the Saugar University in 1977-78 and at the University of Hawaii in 1983-84. He is at present Senior Fellow at the Institute of Advanced Study, Simla.

He has travelled widely and visited several countries in Europe, Asia and America, and delivered lectures on Philosophy, Religion and Culture at several Universities. He was a National Lecturer and a National Fellow, a Member of the Panel of Judges for Sahitya Academy Awards, Indian Editor of "Philosophy East and West", Director of the Institute of Religion and Social Change, Honolulu and President of the Akhil Bhartiya Darshan Parishad in 1964, and has presided several times in the sessions of the Indian Philosophical Congress.

More than 30 scholars have worked under his supervision for Ph. D.

In Philosophy his field of specialization is Advait Vedanta, theory of values, and aesthetics. Besides, he specialises in literary criticism and is himself a creative writer, composing

CC-0. Bhagwat D

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

poetry and writing fiction. He has also published about 60 papers in different journals. Several of his books merited prize from the Government of Uttar Pradesh. He has published 12 books on philosophy, 8 anthologies of poems, 8 novels and 4 books on literary criticism. At the moment he is working on–

(1) Humanism in Indian Thought
(2) Freedom, Creativity and Value
(3) उपालम्भ पत्रिका (काव्य)

Dr. Devaraja was also anxious to provide a medium for literary criticism and writings on philosophy. He founded and edited 'Yuga Chetana' during 1952-56; it was devoted to literary criticism. During his stay at the B.H.U. he founded and edited 'Anvikshiki; it was devoted to philosophy At present, he is busy in bringing out a quarterly journal devoted to literature, criticism and thought, in Hindi, under the title "Yuga-Sakshi."

Wherever Dr. Devaraja has lived, he has been active in the cultural and academic life, and has always encouraged his students and friends to think and write. As a thinker he has made his mark through judicious treatment of the traditional Indian philosophy and its evaluation in modern context. Intellectul quest and creative fiction in poetry and prose are the salient features of Dr. Devaraja as a thinker and writer. His contribution to Hindi literature and Indian thought is of a permanent value and will always be taken note of by the lovers of Hindi literature and serious students of Indian philosophy and thought. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Dr. Devaraja, the scholar and intellectual *par excellence*, for his creditable achievements in the field of philosophy and literature.

Address : 52, Badshahnagar, Lucknow–226 007

Works कृतियां

(1) An Introduction to Sankara's Theory of Knowledge (1962)
(2) The Philosophy of Culture (1963)
(3) The Mind and Spirit in India (1967)
(4) Hinduism and Christianity (1969)
(5) Philosophy, Religion and Culture (1974)
(6) Hinduism and the Modern Age (1975)
(7) Indian Philosophy Today (edited (1975)
(8) Towards A Theory of Person (1985)
(9) पूर्वी और पश्चिमी दर्शन (1945)
(10) भारतीय संस्कृति : महाकाव्यों के आलोक में (1958, 1979)
(11) संस्कृति का दार्शनिक विवेचन (1957,72)
(12) भारतीय दर्शन (सम्पादित) (1983)

कविता—

(1) प्रणय गीत (1939)
(2) जीवन रश्मि (1948)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

(3) धरती और स्वर्ग (1954)
(4) उर्वशी ने कहा (1960)
(5) इतिहास पुरुष (1964)
(6) इला और अमिताभ (1974)
(7) सुबह के बाद (1975)
(8) आहत आत्माएं (1978)

उपन्यास—

(1) पथ की खोज (1952, 1978)
(2) बाहर-भीतर (1954)
(3) रोड़े और पत्थर (1958)
(4) अजय की डायरी (1960, 1970)
(5) मै, वे और आप (1969)
(6) दोहरी आग की लपट (1973)
(7) दूसरा सूत्र (1978)
(8) न भेजे गये पत्र (1985)

समीक्षा—

(1) छायावाद का पतन (1948) (छायावाद उत्थान-पतन पुनर्मूल्यांकन, 1975)
(2) साहित्य चिन्ता (1950)
(3) आधुनिक समीक्षा (1954)
(4) साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध (1956)

CC-0. Bhagwat P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री लक्ष्मी कान्त श्रीवास्तव

श्री श्रीवास्तव का जन्म ३१ दिसम्बर, १९१७ ई०, को वाराणसी में हुआ था। उनकी शिक्षा वाराणसी, इलाहाबाद और लखनऊ में हुयी और उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से बी० ए० तथा एल-एल० बी० की परीक्षायें उत्तीर्ण की।

यू० पी० लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगितात्मक परीक्षा में सफल होने पर उन्होंने यू० पी० सचिवालय में प्रवर वर्ग सहायक के पद पर १९४० में सेवा प्रारम्भ की और उप सचिव के उच्च पद तक पदोन्नति प्राप्त की। सेवानिवृत्ति के पश्चात वह लगभग २ वर्ष अवध विश्वविद्यालय में वित्त अधिकारी भी रहे।

नवम्बर, १९७७ से वह शौकिया वकालत कर रहे हैं और लोक सेवा अधिकरणों तथा उच्च न्यायालय में सेवा संबंधी मामलों में वकालत करते है।

सचिवालय के अधिकारी के रूप में उनकी प्रतिष्ठा एक कर्त्तव्यनिष्ठ, सत्यनिष्ठ और कार्यकुशल अधिकारी की थी। वह अपने अधीनस्थ कर्मियों के प्रति सदैव संवेदनपूर्ण रहते थे और उनके सहकर्मी उनसे कार्यक्षमता की प्रेरणा ग्रहण करते थे। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज मनीषी श्री श्रीवास्तव का उनके मानवीय गुणों के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : सी–१०४७, बी सेक्टर, महानगर, लखनऊ – २२६००६

Mr. L. K. Shrivastava

Mr. Shrivastava was born on Dec. 31, 1917 A.D., at Varanasi. He had his education at Varanasi, Allahabad and Lucknow, and did B. A. and LL. B. from the Lucknow University.

He joined the U. P. Secretariat as an Upper Division Assistant in 1940 on qualifying at the competitive examination conducted by the U. P. Public Service Commission, and rose to the high position of Deputy Secretary. On retirement he continued as Finance Officer of the Avadh University for about two years.

Since Nov. 1977 he is practising law as a hobby, appears before the Public Service Tribunals and High Court, and specialises in Service matters.

As an Officer of the Secretariat Service he had the reputation of being conscientious, upright and efficient. He was always considerate to his juniors and they imbibed the work culture from him. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Parvara Samiti this day honours and felicitates Mr. Shrivastava, the intellectual *par excellence*, for his humane qualities.

Address: C-1047, B Sector, Mahanagar, Lucknow-226006

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री अजित प्रसाद जैन

श्री जैन का जन्म १ जनवरी, १९१८ ई०, को मेरठ में हुआ था। उनकी शिक्षा आगरा और मेरठ में हुयी और उन्होंने १९३६ में आगरा विश्वविद्यालय के अंतर्गत मेरठ कालेज, मेरठ, से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के शीघ्र बाद ही उनकी नियुक्ति शिमला में सेना मुख्यालय पर हो गयी और वहाँ उन्होंने १९३६-३९ की अवधि में कार्य किया। यू० पी० सचिवालय परीक्षा में जिसका आयोजन प्रथम बार यू० पी० लोक सेवा आयोग द्वारा किया गया था, सफल होने पर १९३९ में उनकी नियुक्ति यू० पी० सचिवालय में हुयी और सचिवालय के संवर्ग के लिये तब उपलब्ध उप सचिव के उच्चतम पद तक उनकी पदोन्नति हुयी। १९७६ में सेवानिवृत्ति के पश्चात वह १९८० तक उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी के अवैतनिक कोषाध्यक्ष रहे।

यू० पी० आयुर्वेदिक एवं यूनानी पद्धति पुनर्गठन समिति के सहायक सचिव के रूप में १९४७-४८ में और पुनः १९४९-५० में यू० पी० आयुर्वेदिक एवं यूनानी कालेज पुनर्गठन समिति के सचिव के रूप में तथा आयुर्वेदिक एवं यूनानी निदेशालय में विशेष कार्याधिकारी के रूप में उन्होंने भारतीय चिकित्सा पद्धतियों के प्रति विशिष्ट सेवायें की हैं। इन पद्धतियों की शिक्षा के स्तरीकरण तथा इन पद्धतियों के चिकित्सकों की राजकीय सेवा में अभिस्वीकृति एवं प्रास्थिति का श्रेय बहुधा उन्हीं को जाता है।

१९७४-७६ की अवधि में अपने कार्यों के अतिरिक्त उन्होंने श्री महावीर निर्वाण समिति के उप सचिव का कार्य भी किया और उक्त स्थिति से उन्होंने उत्तर प्रदेश शासन के स्तर पर तीर्थंकर महावीर की २५००वीं निर्वाण जयन्ति का आयोजन कराया। श्री महावीर निर्वाण समिति के उत्तराधिकारी के रूप में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, का गठन १९७६ में किया गया और श्री जैन ने उसके संस्थापक-मंत्री के रूप में उसे संस्थागत रूप प्रदान किया तथा उसके पुस्तकालय को व्यवस्थित किया। यह एक पंजीकृत संस्था है और इसका पुस्तकालय इस प्रदेश में जैन साहित्य का एक वृहत् पुस्तकालय है।

अपने विद्यार्थी जीवन से ही श्री जैन सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बहुत सक्रिय रहे हैं। वह सचिवालय राजपत्रित अधिकारी संघ से भी सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे थे। वह जैन शिक्षा संस्थान और अग्रवाल कालेज के प्रबन्ध से भी सम्बद्ध रहे हैं। वह उत्तर प्रदेश दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र समिति के संयुक्त मंत्री हैं और उ० प्र० सार्वजनिक पुस्तकालय संघ के अध्यक्ष हैं। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ के कार्यक्रमों से वह सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे हैं और उनके सुझाव उसकी गतिविधियों को बढ़ाने में सदैव ही सहायक रहे हैं।

श्री जैन अध्येता प्रवृत्ति के हैं और प्रायः समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं में लिखते रहे हैं तथा आकाशवाणी से भी वार्तायें प्रसारित करते रहे हैं। ५ वर्ष तक उन्होंने हिन्दी साप्ताहिक 'जैन गजट' का प्रकाशन भी किया है। तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के तत्त्वाधान में वह हिन्दी में एक त्रैमासिक शोध पत्रिका 'शोधादर्श' का प्रकाशन कर रहे हैं।

अपने सेवाकाल में श्री जैन अपनी सेवा के सर्वाधिक सक्षम सदस्यों में माने जाते थे और उनके सहकर्मी उनके साथ कार्य करने में आनन्द का अनुभव करते थे क्योंकि उनका व्यवहार मधुर, सहयोगपूर्ण और भद्र होता था। चिकित्सा की आयुर्वेदिक और यूनानी पद्धतियों के प्रति की गयी उनकी सेवायें, समाज तथा शिक्षा के प्रति की गयी उनकी सेवायें और तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति एवं उसके शोध पुस्तकालय के व्यवस्थापन के प्रति की गयी उनकी सेवायें चिरस्मरणीय रहेंगी। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज मनीषी श्री जैन का उनकी श्रेय उपलब्धियों के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ-२२६ ००४

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. Ajit Prasad Jain

Mr. Jain was born on Jan. 1, 1918 A. D., at Meerut. He had his education at Agra and Meerut, and did B. A. from the Meerut College, Meerut, under the Agra University, in 1936.

Soon after graduation he joined the Army Head Quarters at Shimla and worked there during 1936-39. Having been successful at the U. P. Secretariat Examination, conducted by the U. P. Public Service Commission for the first time, he joined the U. P. Secretariat at Lucknow in 1939, and rose to the highest position of Deputy Secretary then available to the cadre. After retirement in 1976, he continued as Honorary Treasurer of the U. P. Sanskrit Academy till 1980.

As Assistant Secretary to the U. P. Ayurvedic and Unani Systems Reorganisation Committee in 1947-48, and again as Secretary to the U. P. Ayurvedic and Unani Colleges Reorganisation Committee in 1949-50, and as Officer on Special Duty in the Ayurvedic and Unani Directorate, he rendered singular services to the cause of the indigenous systems of medicine. Much credit goes to him for the standardisation of education in these systems, and for the recognition and status of the practitioners of these systems in the Government Service.

During 1974-76 he worked as Deputy Secretary to Sri Mahavira Nirvana Samiti, in addition to his other duties, and in that capacity he organised the 2500th Anniversary celeberations of Tirthankara Mahavira's Nirvana at the U P. Government level. Tirthankara Mahvira Smriti Kendra Samiti, Uttar Pradesh, succeeded to the official Sri Mahavira Nirvana Samiti, in 1976 and Mr. Jain as its founder-Secretary has given it an institutional form and organised its library. It is a registered society and its library is a premier library of Jain literature in this State.

Mr. Jain has been very active in the social and cultural activities from his student days. He was actively associated with the Secretariat Gazetted Officers Association, and has been associated with the management of the Jain Shiksha Sansthana and Agrawal College. He is Joint Secretary of the U. P. Digambara Jain Tirtha-Kshetra Committee and President of the U. P. Public Libraries Association. He has also been actively associated with the activities of the Ananta-Jyoti Vidyapitha, and his suggestions have always been helpful.

Mr. Jain has a studious temperament, and has often contributed to newspapers and periodicals and also broadcast from the All India Radio. For about five years he published a Hindi weekly, 'Jain Gazette'. He is publishing a research quarterly in Hindi entitled 'Shodhadarsh' under the aegis of the Tirthankara Mahavira Smriti Kendra Samiti.

During his service career Mr. Jain was considered to be one of the most competent members of the Service, and his juniors loved to work under him because of his swet disposition, helpful attitude and gentle behaviour. His services to the cause of the Ayurvedic and Unani systems of medicine will be long remembered, as also his services to the society and education and his contribution to the making of the Tirthankara Mahavira Smriti Kendra Samiti and its research library. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Mr. Jain, the intellectual *par excellence*, for his creditable achievements.

Address : Paras Sadan, Arya Nagar, Lucknow–226004.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री ज्ञान चन्द जैन

श्री जैन का जन्म ८ फरवरी, १९१८ ई०, को जौनपुर में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा लखनऊ में हुयी और लखनऊ विश्वविद्यालय से १९३६ में उन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। १९३८ में उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से एल-एल० बी० की परीक्षा तथा १९४१ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

जब वह इन्टरमीडिएट के छात्र ही थे तभी से उन्हें पुस्तकें पढ़ने तथा हिन्दी में कहानियाँ लिखने का शौक था। उनकी प्रारम्भिक कहानियाँ १९३५-३६ में 'हंस', 'माधुरी' और 'चाँद' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुयी थीं।

एल-एल० बी० करने के बाद उन्होंने वकालत नहीं की वरन् वह पत्रकारिता की ओर आकर्षित हुये और इलाहाबाद में हिन्दी दैनिक 'भारत' के लिये उन्होंने कार्य किया। १९४१-४३ में उन्होंने स्वतंत्र पत्रकार के रूप में कार्य किया और लेखन को ही अपनी वृत्ति के रूप में अंगीकार किया। परन्तु १९४३ में वह पुन: दैनिक 'भारत' में समाचार सम्पादक के पद पर नियुक्त हो गये। एसोसियेटेड जर्नल्स लि० के प्रबन्ध निदेशक श्री फ़ीरोज़ गाँधी के आग्रह पर वह लखनऊ चले आये और उन्होंने अक्तूबर १९४७ में हिन्दी दैनिक 'नवजीवन' का प्रकाशन प्रारम्भ किया तथा वह उस पत्र से १९७६ तक सम्बद्ध रहे। १९७७-८० के दौरान और पुन: १९८४ से वह अग्र लेखक के रूप में दैनिक 'स्वतंत्र भारत' से सम्बद्ध रहे हैं।

कहानी लेखन के उनके व्यसन और पत्रिकारिता के व्यवसाय ने उन्हें हिन्दी के प्रति आकर्षित किया और यद्यपि हाई-स्कूल के बाद हिन्दी उनका विषय नहीं रहा था तो भी उन्होंने एम० ए० करने के लिये हिन्दी विषय को ही चुना। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में शोध-छात्र के रूप में उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' पर कार्य किया परन्तु वह अपने शोध कार्य को अपने व्यवसायिक कार्य एवं पारिवारिक दायित्वों के कारण पूरा नहीं कर सके, तथापि उन्होंने रासो का शब्दकोष बनाया और उसके तीन अध्यायों का अनुवाद किया।

१९३८ से वह एक कार्यकारी पत्रकार रहे हैं। प्रारम्भ में 'भारत' से, बाद को 'नवजीवन' से और अब 'स्वतंत्र भारत' से सम्बन्ध ने उनके लेखन में राष्ट्रीय दृष्टिकोण को पुष्ट किया है और उन्हें हिन्दी में पत्रकारिता के विशेषज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित किया है। गढ़वाल विश्वविद्यालय द्वारा १९८० में उन्हें पत्रकारिता विभाग व्यवस्थित करने के लिये आमंत्रित भी किया गया था।

सामयिक घटनाओं तथा कथा साहित्य के साथ ही श्री जैन इतिहास के भी गंभीर अध्येता रहे हैं। प्राय: आकाशवाणी पर उनके नाटक और वार्तायें प्रसारित होती रहती हैं जो सदैव ही ज्ञानवर्धक होती हैं। 'निगन्ठ ज्ञातपुत्र' शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने तीर्थंकर महावीर की जीवनी का प्रणयन किया है जो १९७७ में प्रकाशित हुई; महावीर के जीवन और समय का यह एक वस्तुपरक मूल्यांकन है।

श्री जैन एक भद्र पत्रकार रहे हैं जिन्होंने कभी अभिमान नहीं किया। अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठा के

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अतिरिक्त वह निरंतर ही अध्येता रहे और डा० ज्योति प्रसाद जैन, पं० अमृतलाल नागर तथा बाबू भगवती चरण वर्मा प्रभृति विद्वानों एवं साहित्यकारों के घनिष्ठ मित्र रहे। उन्होंने सदैव ही युवा पीढ़ी को लेखन के लिये तथा साहित्यिक एवं विद्वता के क्षेत्र में प्रतिष्ठा पाने के लिये प्रोत्साहित किया। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रबर समिति आज विद्वान-मनीषी श्री जैन का हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : शिखर भवन, टाट पट्टी, यहियागंज, लखनऊ-२२६००३

Mr. Gyan Chand Jain

Mr. Jain was born on Feb. 8, 1918 A.D., at Jaunpur. He had his schooling at Lucknow and did B. A. from the Lucknow University in 1936. He did LL. B. in 1938 from the Agra University and then M. A. in Hindi from the Allahabad University in 1941.

He developed the hobby of reading books and writing stories in Hindi when he was a student of Intermediate. His early stories were published during 1935-36 in the reputed Hindi journals, such as, 'Hans', 'Madhuri' and 'Chand'.

After doing LL.B. he did not join the legal profession but was drawn to journalism and worked for the Hindi Daily 'Bharat' at Allahabad. During 1941–43 he worked as a freelance journalist, with writing as his profession, and joined the Daily 'Bharat' again in 1943, now as News Editor. On request from Mr. Firoze Gandhi, the Managing Director of the Associated Journals Limited, he came to Lucknow and started the publication of the Hindi Daily 'Navjeevan' in Oct. 1977, and was associated with this paper till 1976. During 1977–80 and again since 1984 he has been associated with the 'Swatantra Bharat' as Leader Writer.

His passion for writing stories and his entry into the profession of journalism drew him to Hindi, so much so that he chose Hindi for doing M. A. although it was not his subject after High School. He also worked on the 'Prithvi-Raja-Raso' as Research Scholar at the Allahabad University but could not complete his research work because of the pressures of his profession and family obligations. However, he prepared the dictionary of the 'Raso' and also translated three of its chapters.

He has been a Working Journalist since 1938. His association with the 'Bharat' and later with the 'Navjeevan' and now with the 'Swatantra Bharat', has given a nationalist orientation to his writings and has established him as an expert of journalism in Hindi. He was called by the Garhwal University to organise its Department of Journalism in 1980.

Mr. Jain has been a serious student of history, besides current events and story literature. He is often on the AIR and his talks and features are always illuminating. His work on the life of Tirthankara Mahavira entitled "Nigantha Jnataputra", in Hindi, was published in 1977, and it is one of the objective evaluations of the life and times of Mahavira.

CC-0. Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. Jain has been a gentleman journalist, never posing any airs. Besides his profession, he has been a student throughout and has been a close friend of the literary and scholarly luminaries, such as Dr. Jyoti Prasad Jain, Pt. Amrit Lal Nagar and Babu Bhagwati Charan Verma. He has always encouraged the younger generation to write and find a place in the literary and scholarly circles. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Mr. Jain, the scholar and intellectual *par excellence*, for his distinguished contribution in the field of Hindi journalism and literature.

Address : Shikhar Bhawan, Tat Patti, Yahia Ganj, Lucknow–226003

Works कृतियां

1. यौवन की भूल (मोपासां के "पिएर एत ज्यों" का अनुवाद) (1935)
2. कहानी कला (Co-author Vinod Shankar Vyas) (1936)
3. महाभारत कथा (For the Neo-Literates) (1940)
4. पूनो की रात (Selected best European Stories) (1941)
5. यूरोप की सर्वश्रेष्ठ कहानियां
6. स्त्रियों की समस्याएँ (Anthology of Mahatma Gandhi's Articles (Co-editor Ramnath Suman) (1942)
7. संसार की सर्वोत्तम कहानियाँ (1945)
8. स्त्री और पुरुष (Translation of Leo Tolstoy's Relation in Sexes) (1945)
9. संक्षिप्त मेरी कहानी (Abbreviation of Jawahar Lal Nehru's Autobiography)
10. भारतीय प्रशासन (Trans. of Prof. G. N. Joshi's book on Indian Administration) (1960)
11. स्वाधीनता का सिंहनाद (Collection of Moti Lal Nehru's Speeches) (1963)
12. भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास (Trans. of Ram Gopal's History of Indian Freedom Struggle) (1974)
13. क्षेमेन्द्र और उनका समाज (By Dr. Moti Chand) (Edited) (1984)
14. निगन्ठ ज्ञातपुत्र (1977)

CC-0. Bhagavad Ramanuja M...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा

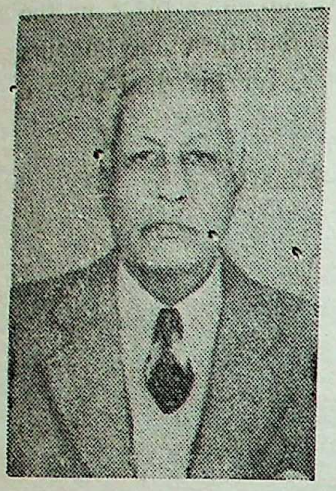

श्री सिन्हा का जन्म २२ जनवरी, १९१९ ई०, को बिजनौर में हुआ था। उनकी शिक्षा बिजनौर, देहरादून और मेरठ में हुयी। उन्होंने १९३८ में आगरा विश्वविद्यालय के अंतर्गत मेरठ कालेज, मेरठ, से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

यू० पी० लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगितात्मक परीक्षा में सफल होने के फलस्वरूप उनकी नियुक्ति १९४० में यू० पी० सेक्रेटेरियेट सुपीरियर सर्विस में सहायक के पद पर हुयी। वह संयुक्त सचिव के उच्च पद तक पदोन्नत हुये। संयुक्त सचिव का पद सचिवालय सेवा संवर्ग को उनकी अधिवर्षता आयु प्राप्त करने के कुछ ही समय पूर्व उपलब्ध हुआ था। अगस्त १९७७ में लगभग सात माह की सेवा वृद्धि का उपभोग करने के पश्चात वह सेवानिवृत्त हुये।

१९५२ और १९५७ में हुये प्रथम और द्वितीय सामान्य निर्वाचन प्रशासन के लिये विशेष महत्त्व के अनुभव थे और निर्वाचन विभाग के अधीक्षक के रूप में श्री सिन्हा अपनी कार्य कुशलता एवं कठिन परिश्रम के लिये मुख्य निर्वाचन अधिकारियों की सराहना के पात्र रहे।

१९६६ में वह उत्तर प्रदेश शासन के मुख्यालय पर प्रोटोकॉल अधिकारी के पद पर नियुक्त किये गये और सेवानिवृत्ति तक इस कार्य को सम्पादित करते रहे। वह यू० पी० सैनिक स्कूल सोसाइटी के जनरल सेक्रेटरी और नेहरू इन्स्टीट्यूट ऑफ़ मान्टेनियरिंग के संयुक्त सचिव एवं कोषाध्यक्ष भी रहे। १९६२ में राज्य सेवा संवर्ग में नियुक्ति के पश्चात उन्होंने पर्वतीय विकास विभाग, मुख्यमंत्री सचिवालय, सतर्कता विभाग, सामान्य प्रशासन विभाग, प्रोटोकॉल विभाग और गोपन विभाग में महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य किया।

सामान्य प्रशासन विभाग में उप सचिव के पद पर जब वह कार्यरत थे तो उन्होंने उन राजकीय कर्मचारियों को सम्मानित एवं पुरस्कृत करने की योजना को मूर्त रूप दिया जिन्होंने सरकारी कार्य को उत्कृष्ट रूप से करते रहने के साथ ही अन्य क्षेत्रों में सराहनीय उत्कृष्ट कार्य किया था। इस योजना का उद्घाटन २ अक्तूबर, १९७२ ई०, को हुआ था।

बचपन से ही श्री सिन्हा की रुचि विभिन्न धर्मों की शिक्षाओं का अध्ययन करने की रही। वह अपने साथी मानवों के लिए नैतिक कर्त्तव्यों के प्रति सदैव जागरूक रहे हैं। उन्होंने भारत में जनसंख्या की वृद्धि और जनसाधारण की निर्धनता की समस्याओं पर विशेष अध्ययन किया है। उन्हें अध्ययन का शौक है और वह अपने विचार स्पष्ट रीति से व्यक्त करते हैं। अपने सेवाकाल में वह कठिन एवं सतत परिश्रम और योग्यतापूर्वक कार्य करने के लिये विख्यात रहे और शिष्टाचार के प्रति सजग रहे। वह एक भद्र अधिकारी थे जिनका उनके उच्चस्थ अधिकारी सम्मान करते थे और अधीनस्थ कर्मी आदर करते थे। सेवानिवृत्ति के पश्चात वह अपना समय अध्ययन और सेवा कार्य में लगाते रहे हैं। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज मनीषी श्री सिन्हा का उनके विशिष्ट मानवीय गुणों के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : १६-सी, शान्ति मार्ग, महानगर विस्तार, लखनऊ-२२६००६

CC-0. Kashi Vidyapeeth Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri. International Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. G. M. Sinha

Mr. Sinha was born on Jan. 22, 1919 A. D., at Bijnor. He was educated at Bijnor, Dehradun and Meerut. He did B. A. from the Meerut College, Meerut, under the Agra University, in 1938.

He took the competitive examination conducted by the U P. Public Service Commission and on its result he was appointed as Assistant in the U. P. Secretariat Superior Service in 1940. He rose to the high position of Joint Secretary made available to Secretariat Cadre a little before his superannuation and retired in Aug. 1977 after enjoying an extension of seven months.

The first and second General Elections, held in 1952 and 1957 respectively, were a trying experience for the administration and Mr. Sinha as Superintendent of the Elections Department earned the admiration of the Chief Electoral Officers for efficiency and hard work.

He was appointed Protocol Officer at the Head Quarters of the Uttar Pradesh Government in 1966 and held this assignment till his retirement. He also worked as General Secretary of the U. P. Sainik Schools Society, and as Joint Secretary and Treasurer of the Nehru Institute of Mountaineering. Since his appointment to State Service in 1962 he held important charges in the Hill Development Department, Chief Minister's Secretariat, Vigilance Department, General Administration Department, Protocol Department and Confidential Department.

As Deputy Secretary in the General Administration Department he gave shape to the scheme of honouring Government Servants who excelled in other fields also besides excellent performance on the Government job, and the scheme was formally inaugurated on Oct. 2, 1972.

Mr. Sinha was interested in learning the tenets of different religions from his childhood. He has always been conscious of the moral obligations towards fellow human beings. He has made a special study of the problem of growth of population and the poverty of the people of India. He has a hobby for studies and expresses his views in a forthright manner. During his service career he was known for hard, strenuous and meritorious work, and was particular about etiquette. He was a gentleman officer who was respected by his superiors and was held in high esteem by his subordinates. Since retirement he devotes his time to studies and service of the fellow beings. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Parvara Samiti this day honours and felicitates Mr. Sinha, the intellectual *par excellence*, for his distinctive humane qualities.

Address : 16-C, Shanti Marg, Mahanagar Extension, Lucknow-226 006

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० अमर पाल सिंह

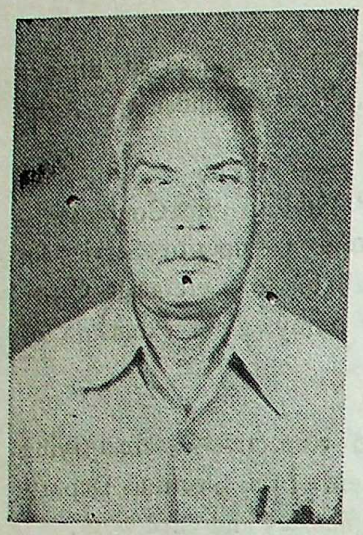

श्री सिंह का जन्म ७ जनवरी, १९२० ई०, को फैजाबाद जिले के ग्राम बैरगा में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुयी और उन्होंने अकबरपुर से हाई-स्कूल तथा फैजाबाद से इन्टरमीडिएट की परीक्षायें उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा के लिये वह इलाहाबाद विश्व-विद्यालय में प्रविष्ट हुये और वहां से उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० किया। वह पत्रकारिता की ओर आकर्षित हुये और १९४५ में उन्होंने लखनऊ में अंग्रेजी दैनिक 'नेशनल हेराल्ड' में सेवायोजन किया। जब १९४७ में 'नवजीवन' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तो वह उस हिन्दी दैनिक में चले गये और १९५६ तक उसके सम्पादकीय विभाग में कार्यरत रहे। लखनऊ में आवास के दौरान उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से एल-एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की, रूसी भाषा और जर्मन भाषा में डिप्लोमा परीक्षायें उत्तीर्ण की और हिन्दी विषय में एम० ए० किया तथा हिन्दी साहित्य में ही पी-एच० डी० की उपाधि भी प्राप्त की।

१९५६ में उनकी नियुक्ति भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय में हो गयी और वह वहाँ १९७९ तक कार्यरत रहे। समाचार सम्पादक, सूचना अधिकारी तथा उप-निदेशक के रूप में वह प्रायः लखनऊ और मुख्यालय दिल्ली में नियुक्त रहे।

डा० सिंह का शोध-प्रबंध 'तुलसी-पूर्व राम साहित्य' १९६५ में प्रकाशित हुआ था। हिन्दी में तुलसीदास से पहले के राम संबंधी साहित्य से संबंधित महत्त्वपूर्ण संदर्भ सामग्री इस प्रबंध में संकलित और विवेचित है जो कि ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं भाषा-शास्त्र की दृष्टि से उपयोगी है।

उनकी निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशनाधीन हैं :—

१—कृष्ण चन्द्रिका (कृष्ण भक्ति से संबंधित पद्य रचनाओं का संकलन)

२—वन्दे मातरम् (३ भाग में) (१५०० ई० से १९४७ ई० तक हिन्दी पद्य, लोक-गीत और उर्दू पद्य में उपलब्ध देशभक्ति से प्रेरित रचनाओं के तीन संकलन)

राष्ट्र भाषा के प्रति प्रेम और देश भक्ति ने उन्हें ऐसे समय हिन्दी पत्रकारिता की ओर आकर्षित किया जब कि वह आर्थिक दृष्टि से आकर्षक नहीं थी। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय में उन्होंने एक पत्रकार के रूप में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की। कभी-कभी उनके लिये एक सरकारी पत्रकार के रूप में कार्य करना रुचिकर नहीं होता था क्योंकि वह उनके अंदर के व्यवसायिक पत्रकार की निष्ठा से सामंजस्य नहीं कर पाता था। एक निष्ठावान पत्रकार के रूप में उनके लिये आपात्कालीन प्रेस-नियंत्रण वास्तव में कठिन समय था।

श्री सिंह अनन्त-ज्योति विद्यापीठ की स्थापना और उसके कार्यकलापों से क्रियात्मक रूप से सम्बद्ध रहे हैं और वह विद्यापीठ के उप पीठ-प्रमुख भी हैं।

वर्तमान में वह अपना समय अध्ययन में ही लगाते हैं, और हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास तथा स्वतंत्रता आंदोलन में उसकी भूमिका पर एक पुस्तक का प्रणयन कर रहे हैं। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी डा० सिंह का पत्रकारिता और हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सारभूत योगदान के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : ५०९/५८, पुराना हैदराबाद, लखनऊ–२२६ ००७

CC-0. Indira Gandhi National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. Amar Pal Singh

Dr. Singh was born on January 7, 1920 A.D., at village Beraga in the Faizabad district. He had his early schooling in the village school and did High School from Akbarpur and Intermediate from Faizabad. For higher education he enrolled himself at the Allahabad University and did M.A. in English. He was drawn to journalism and joined the English Daily 'National Herald' in 1945. When the 'Navjeevan' was started in 1947 he shifted to this Hindi Daily and continued to work in its editorial department till 1956. During his stay at Lucknow he joined the Lucknow University and did LL.B., Diplomas in Russian and German languages and M.A. in Hindi, and also took the degree of Ph.D. in Hindi.

In 1956 he joined the Government of India in the Ministry of Information and Broadcasting and worked there till 1979 as News Edittor, Information Officer and Deputy Director, mostly at Lucknow and the head-quarters at New Delhi.

Dr. Singh's thesis 'Tulasi-Purva Rama Sahitya', was published in 1965. It gives valuable reference material relating to the literature on Rama prior to Tulasidas, in Hindi and is useful from the historical, literary and linguistic points of view.

His books awaiting publication are :

(1) कृष्ण चन्द्रिका (anthology of devotional poems devoted to Krishna)

(2) वन्दे मातरम्, तीन भाग (three anthologies of patriotic poetry in Hindi, folk-songs, and poetry in Urdu, from 1500 A.D. to 1947 A.D.)

His love of the National Language and his sense of patriotism brought him to Hindi journalism at a time when it was not remunerative. As a journalist he left his mark in the Ministry of Information and Broadcasting. It was sometimes not very palatable to him to work as a Government journalist because it sought to kill the professional journalist in him. The emergency censorship was a really trying time for him as a conscientious journalist.

Dr. Singh has been actively associated with the founding and the programmes of the 'Ananta-Jyoti Vidyapitha' and is its Vice-President.

At present he is devoting all his time to studies and is working on the history of Hindi journalism and its relevance to freedom movement. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day takes the opportunity to honour and felicitate Dr. Singh, the scholar and intellectual *par excellence*, for his substantial contribution in the field of journalism and Hindi literature.

Address : 509/58, Old Hyderabad, Lucknow–226 007

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० गिरिजा शंकर मिश्रा

डा० मिश्रा का जन्म १५ नवम्बर, १९२१ ई०, को लखनऊ में हुआ था। उनकी समस्त शिक्षा लखनऊ में हुयी। १९४२ में उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और १९५५ में पाश्चात्य इतिहास में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। उनके शोध-प्रबंध का विषय था - ब्रिटिश विदेश नीति और भारतीय प्रकरण (१७८३-१८१५)।

१९४४ में पाश्चात्य इतिहास के लेक्चरर के रूप में उनकी नियुक्ति लखनऊ विश्वविद्यालय में हुयी तथा १९५८ में असिस्टेन्ट प्रोफ़ेसर के पद पर प्रोन्नति हुयी, और १९६१ में वह पाश्चात्य इतिहास विभाग के प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष नियुक्त किये गये। इस पद पर १९८२ तक वह कार्यरत रहे। इस बीच उन्होंने एक वर्ष के लिये विधि संकाय के अध्यक्ष के रूप में और चार वर्ष कला संकाय के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। १९७५ से १९८१ तक वह प्रो-वाइसचांसलर भी रहे तथा १९७८ और १९८१ में कार्यवाहक कुलपति के रूप में भी उन्होंने कार्य किया।

उनके मार्गदर्शन में ८ शोध छात्रों ने पी-एच० डी० की उपाधि के लिये और एक शोध छात्र ने डी० लिट्० की उपाधि के लिये कार्य किया।

वह इंगलैन्ड, पूर्वी जर्मनी और उत्तरी कोरिया हो आये हैं। उनका विशिष्ट विषय पाश्चात्य इतिहास है जिसमें यूरोप, ब्रिटेन और अमरीका का इतिहास सम्मिलित है। उनके शोध-पत्र यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित हुये हैं।

डा० मिश्रा उन थोड़े से भारतीय विद्वानों में से हैं जिन्होंने ब्रिटेन के इतिहास पर लिखने का साहस किया। एक अध्यापक के रूप में वह अपने विद्यार्थियों के बीच अपनी अध्यापन शैली के लिये तथा विषय को सुबोध तथा रुचिकर बनाने के लिये प्रिय रहे। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान्-मनीषी डा० मिश्रा का उनके विद्वता और अध्यापन के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : ७६, बादशाह बाग, लखनऊ-२२६ ००७

...rch Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. G. S. Misra

Dr. Misra was born on Nov. 15, 1921 A. D., at Lucknow. All his education was done at Lucknow. He did M. A. in History in 1942 and Ph. D. in Western History in 1955 from the Lucknow University. His thesis was on 'British Foreign Policy and Indian Affairs (1783-1815).'

He joined the Lucknow University as Lecturer in Western History in 1944, was promoted as Assistant Professor in 1958, and was appointed Professor and Head of the Department of Western History in 1961 and worked as such till 1982. In the meantime he worked as Dean, Faculty of Law, for a year and as Dean, Faculty of Arts, for four years, was Pro Vice-Chancellor from 1975 to 1981, and also worked as Acting Vice-Chancellor in 1978 and 1981.

Under his guidance 8 scholars worked for Ph. D. and one scholar, for D. Litt.

He has been to England, East Germany and North Korea. His field of specialization is Western History, including European, British and American History. His research papers were published in the Journal of the U. P. Historical Society.

Dr. Misra is one of the few Indian scholars who have dared to write on British History. As a teacher he always attracted the attention of his students by his style of teaching and making the subject intelligible as well as interesting. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Dr. Misra, the scholar and intellectual *par excellence*, for his distinguished contribution in the field of scholarship and education.

Address : 76, Badshah Bagh, Lucknow-226007

Works कृतियाँ

(1) A History and Guide to Pindari Glacier (1949)
(2) British Foreign Policy and Indian Affairs, 1783-1815 (1963)
(3) A Survey of Modern British History (Tudor Age) (1963)

——

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० हर्ष नारायन

डा० हर्ष नारायन का जन्म बलिया जिले के बांसडीह नामक कस्बे में १ नवम्बर १९२२ ई०, को हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा बांसडीह, रसड़ा और बलिया में हुयी। १९४१ में हाई-स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात उन्हें कुछ समय के लिये अपनी नियमित शिक्षा छोड़नी पड़ी परन्तु ज्ञान के प्रति अनुराग ने उन्हें अपना अध्ययन चालू रखने के लिये प्रेरित किया और उन्होंने सतीश चन्द्र कालेज, बलिया, से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा तत्पश्चात १९४९ में नागपुर विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा १९६७ में भारतीय दर्शन में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी।

वह एक स्वनिर्मित व्यक्ति हैं जिन्होंने अपना जीवन जून १९४३ में बलिया कलेक्ट्रेट में लिपिक के पद पर सेवा से प्रारम्भ किया। १९४९ में यू० पी० सेक्रेटेरियट सर्विस परीक्षा में सफल होने पर उन्होंने लखनऊ में उ० प्र० सचिवालय में नवम्बर १९५० में सेवायोजन किया और वहां वह अगस्त १९६३ में अधीक्षक के राजपत्रित पद पर प्रोन्नत हुये तथा उस पद पर मार्च १९७१ तक कार्यरत रहे। उन्होंने अप्रैल १९७१ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दर्शन विभाग में लेक्चरर के पद पर नियुक्त होने पर अपने को अध्यापन व्यवसाय से सम्बद्ध किया। अप्रैल १९७९ में उनकी नियुक्ति उत्तर-पूर्वी पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, में दर्शन विभाग में रीडर के पद पर हुई और वहीं से वह जून १९८३ में सेवानिवृत्त हुये। अप्रैल १९८४ से अप्रैल १९८५ की अवधि में वह अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में दर्शन विभाग में विज़िटिंग प्रोफ़ेसर रहे और मार्च १९८६ में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरद्वार, में विज़िटिंग फ़ैलो रहे। उन्हें भारतीय दर्शन कांग्रेस के चंडीगढ़ अधिवेशन में १९८२ में बुद्ध जयन्ति व्याख्यान देने के लिये भी आमंत्रित किया गया था।

उनके मार्गदर्शन में पाँच शोध छात्रों ने पी-एच० डी० की उपाधि और दो ने एम० फिल० की उपाधि प्राप्त की।

डा० नारायन के विशिष्ट विषय न्याय-वैशेषिक तत्त्वशास्त्र, बौद्ध धर्म, वैदिक साहित्य, आधुनिक भारतीय चिन्तन, मार्क्सवाद, हिन्दू धर्म, इस्लाम, और प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, हैं। वर्तमान में वह इस्लाम पर एक पुस्तक का प्रणयन कर रहे हैं और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की एक परियोजना पर भी कार्य कर रहे हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य कोष, उर्दू इन्साइक्लोपीडिया तथा इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इन्डियन फिलासफी में महत्वपूर्ण लेख दिये हैं। उनके ५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और २ प्रकाश्य हैं।

प्रारम्भ से ही डा० हर्ष नारायन की अध्ययन में गंभीर रुचि रही है और उन्होंने संस्कृत तथा फारसी भाषाओं का भी विशेष अध्ययन इस दृष्टि से किया ताकि वह अपने विषय से सम्बन्धित मूल स्रोतों को स्वयं देख सकें। एक भिन्न व्यवसाय में होते हुये भी उन्होंने अपना अध्ययन चालू रखा, और वह उन थोड़े से सचिवालय अधिकारियों में से हैं जो अपने शोध कार्य में लगे रहे और पी-एच० डी० के लिये जिन्होंने अपना शोध-प्रबंध पूरा किया। लखनऊ में अपने आवास के दौरान उन्होंने 'लखनऊ अकादमी' की स्थापना की और बौद्धिक

National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

विचार-विनिमय के लिये साप्ताहिक गोष्ठियाँ प्रारम्भ कीं। वह 'विश्व-जिज्ञासा क्लब' और 'अनन्त-ज्योति विद्यापीठ' से भी सम्बद्ध रहे। वह अपने उदार दृष्टिकोण के कारण दर्शन जैसे विवादास्पद विषय में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में अध्यापक के रूप में सफल रहे।

डा० हर्ष नारायन की पुस्तकों की समीक्षा दर्शन और इतिहास विषय से संबंधित विभिन्न विदेशी और भारतीय पत्रिकाओं में हुयी है, और मौलिक दृष्टि के लिये उनकी सराहना की गई है। उनकी पुस्तकों में विषय की तर्कपूर्ण प्रस्तुति है और वे अपने विषय के प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं। उनका लेखन प्राय: लीक से हटकर है और उसमें विषय की गहरी पैठ के अतिरिक्त वस्तुपरक मूल्यांकन है। डा० हर्ष नारायन उन सभी के लिये प्रेरणा का स्रोत बने रहेंगे जिन्हें ज्ञान के प्रति गहरी अभिरुचि है। उनके व्यक्तित्व ने यह प्रदर्शित किया है कि कठिनाई और वातावरण का अभाव ज्ञान के मार्ग में कोई अवरोध नहीं होता यदि व्यक्ति बौद्धिक खोज के लिये सन्नद्ध है। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी डा० हर्ष नारायन का उनके विद्वत्ता और मौलिक चिन्तन के क्षेत्र में सारभूत योगदान के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : ४२/५८, रामरतन बाजपेयी मार्ग, ला० उमराव सिंह पार्क, नरही, लखनऊ-२२६००१

Dr. Harsh Narain

Dr. Harsh Narain was born on Nov. 1, 1922 A. D., at Bansdih in the Ballia district. He had his early education at Bansdih, Rasra and Ballia. After doing High School in 1941 he had to discontinue regular studies for some time but his passion for learning goaded him to pursue his studies and he did B. A. from the S. C. College, Ballia, and then M. A. in Sanskrit from the Nagpur University in 1949. He was awarded the degree of Ph. D. in Indian Philosphy by the Lucknow University in 1967.

He is a self-built man who made humble beginnings in June 1943 by entering into service as a clerk in the Ballia Collectorate. Having been successful at the U. P. Secretariat Service Examination in 1949 he joined the U. P. Secretariat at Lucknow in Nov. 1950 where he was promoted to the Gazetted post of Superintendent in Aug. 1963 and worked as such till March 1971. He shifted to the teaching profession in April 1971 on his appointment as Lecturer in the Department of Philosophy at the Banaras Hindu University. In April 1979 he was appointed Reader in the Department of Philosophy at the North-Eastern Hill University, Shillong, from where he retired in June 1983. During April 1984–April 1985 he was Visiting Professor in the Department of Philosophy at the Aligarh Muslim University and in March 1986 he was Visiting Fellow to the Gurukul Kangri University, Hardwar. He was also invited to deliver the Buddha Jayanti Lecture at the Chandigarh session of the Indian Philosophical Congress in 1982.

Under his guidance 5 scholars were awarded Ph. D. and 2 were awarded M. Phil.

The field of specialization of Dr. Narain is wide and covers Nyaya-Vaiseshika metaphysics, Buddhism, Vedic lore, modern Indian thought, Marxism, Hinduism, Islam, and Ancient and Mediaeval Indian history and culture. At present, he is writing a book on Islam and is also working on a project of the U. G. C. He has contributed valuable articles to the

...ing. Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Hindi Sahitya Kosh, Urdu Encyclopaedia and the Encyclopaedia of Indian Philosophy. Five of his works have been published and two are in hand.

From the very beginning Dr. Harsha Narain had a passion for studies and he mastered the classical languages of Sanskrit and Persian so that he may go through the original sources concerning his subject. Despite a different vocation he continued his studies and is one of the few Secretariat Officers who persevered in their research work and completed the dissertation for Ph. D. During his stay at Lucknow he founded the Lucknow Academy and started weekly sittings for intellectual discussion. He was also associated with the Vishva-Jijnasa Club and the Ananta-Jyoti Vidyapitha. It is his catholic approach that made him successful as a teacher at the Banaras Hindu University as well as at the Aligarh Muslim University in a controversial subject like Philosophy.

The works of Dr. Harsh Narain have been extensively reviewed in various foreign and Indian journals on Philosophy and History, and have been appreciated for original approach. His works are marked with rational presentation and are authentic readings on the subject. His writings are often off the beat and present deep understanding of the subject coupled with objective assessment. Dr. Harsh Narain would inspire all those who have a passion for learning and knowledge. He has proved that adversity and absence of environment are no impediments in the path of knowledge if one is sincerely devoted to intellectual quest. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Dr. Harsh Narain, the scholar and intellectual *par excellence*, for his distinguished contribution in the field of scholarship and original thinking.

Address: 42/59, Ram Ratan Vajpai Marg, Lala Umrao Singh Park, Narahi, Lucknow-1

Works कृतियां

(1) Evaluation of Dialectic in Western thought (1973)
(2) सिर्र-ए अकबर सहित उपनिषत् समुच्चय (१९७५)
(3) Evaluation of the Nyaya-Vaiseshika Categoriology (1976)
(4) Discovery of Marx (1981)
(5) Facets of Indian Religio-Philosophic Identity (1983)
(6) The Madhyamika Mind
(7) Discovery of Islam

——

...Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल

डा० अग्रवाल का जन्म ९ नवम्बर, १९२२ ई०, को इलाहाबाद जिले के सिरसा कस्बे में हुआ था। उनकी शिक्षा लखनऊ में हुयी। लखनऊ विश्वविद्यालय से उन्होंने १९४१ में बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और हिन्दी विषय में स्वर्ण-पदक प्राप्त किया, तथा १९४३ में हिन्दी विषय में एम० ए० की परीक्षा, और साथ ही एल्-एल० बी० की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की एवं एम०ए० में प्रथम स्थान प्राप्त किया। १९४९ में उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि हिन्दी विषय में तथा १९६३ में डी० लिट्० की उपाधि भाषा विज्ञान विषय में लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गयी। उनके डी० लिट्० के शोध-प्रबन्ध पर उन्हें बोनर्जी पुरस्कार द्वारा भी सम्मानित किया गया। उन्होंने फ्रेन्च भाषा में प्रोफ़िशियेन्सी परीक्षा भी उत्तीर्ण की। कलकत्ता विश्वविद्यालय से तुलनात्मक भाषा-विज्ञान विषय में एम० ए० की परीक्षा भी उन्होंने १९४५ में उत्तीर्ण की और प्रथम स्थान प्राप्त किया।

पी-एच०डी० के लिये उनके शोध-प्रबन्ध का विषय 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि' था और डी० लिट्० के लिये 'अवध के स्थान-नामों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन'।

उनकी नियुक्ति लखनऊ विश्वविद्यालय में भाषा विज्ञान के लेक्चरर के पद पर १९४६ में हुयी। उनकी प्रोन्नति १९५६ में रीडर के पद पर हुयी और १९६६ में प्रोफ़ेसर के पद पर। अप्रैल १९७६ में भाषा-विज्ञान विभाग का गठन हुआ और वह उसके अध्यक्ष नियुक्त किये गये, तथा इसी पद से वह जून १९८३ में सेवानिवृत्त हुये।

उनके मार्गदर्शन में ४७ छात्रों ने पी-एच० डी० के लिये और ३ छात्रों ने डी० लिट्० के लिये कार्य किया।

वह भारत सरकार की भाषा-विज्ञान शब्दावली समिति के विशेषज्ञ सदस्य रहे हैं तथा संघ लोक सेवा आयोग की चयन समितियों के, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की हिन्दी व्याकरण समिति के और विभिन्न विश्वविद्यालयों की रिसर्च डिग्री समितियों तथा पाठ्यक्रम समितियों के सदस्य भी रहे हैं। वह भारतीय भाषाओं के केन्द्रीय संस्थान की परामर्शदात्री समिति के सदस्य भी रहे हैं और आगरा स्थित कन्हैयालाल मुन्शी संस्थान के भाषा विज्ञान के शीत विद्यालय के सकाय सदस्य भी रहे हैं।

उनका विशिष्ट विषय हिन्दी भाषा और उसकी बोलियों का शैलीपरक तथा व्याकरणात्मक अध्ययन है। मुख्य अन्वेषक के रूप में उनके मार्गदर्शन में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की एक वृहद् शोध परियोजना - अवधी भाषी क्षेत्रों का सर्वेक्षण और अवधी शब्दकोष - पूरी की जा चुकी है। उनके मुख्य सम्पादकत्व में साहित्यिक अवधी का शब्द कोष और जनपदीय अवधी का शब्दकोष भी तैयार किये जा रहे हैं। इस समय वह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की परियोजना–अवधी के स्थान-नामों का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन – पर कार्य कर रहे हैं।

प्रतिष्ठित हिन्दी पत्रिकाओं में वह समय-समय पर हिन्दी साहित्य और भाषा शास्त्र पर लेख लिखते रहते हैं। १९४४ में ही उनका एक वृहत् निबन्ध महापात्र नरहरि और उनके काव्य पर प्रकाशित हुआ था। उनके अन्य वृहद् निबन्ध 'शिशु भाषा का विकास', 'राष्ट्र भाषा हिन्दी का विकास' और 'भावनात्मक एकता के प्रतीक अमीर खुसरो' प्रकाशित हुए हैं। उनके छः ग्रन्थ भी प्रकाशित हैं।

डा० अग्रवाल हिन्दी भाषा के भाषा विज्ञान के अधिकारी विद्वान हैं और उन्होंने अवधी बोली का विशेष अध्ययन किया है। साहित्यक अवधी और जनपदीय अवधी के जो शब्दकोष वह सम्पादित कर रहें हैं, वे हिन्दी साहित्य और भाषा विज्ञान के अध्येताओं के लिये विशेष उपयोगी होंगे। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी डा० अग्रवाल का हिन्दी भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में सारभूत योगदान के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : बी–७२ (ए), निराला नगर, लखनऊ–२२६ ००७

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. S. P. Agrawal

Dr. Agrawal was born on Nov. 9, 1922 A.D., at Sirsa in the Allahabad district. He had his education at Lucknow. He did B.A. from the Lucknow University in 1941 in first division (securing gold medal in Hindi), M.A. in Hindi and LL.B. in 1943 in the first division, securing first position in M.A. He was awarded Ph.D. in Hindi in 1949 and D. Litt. in Linguistics in 1963 by the Lucknow University. His D. Litt. thesis merited the Bonnerji Prize. He also did Proficiency in French. He also took M.A. in Comparative Philology from the Calcutta University, securing first position, in 1945.

His dissertation for Ph.D. was on the Hindi poets of the court of Akbar, and his thesis for D.Litt. was 'A Linguistic Study of the Place Names of Avadh'.

He joined the Lucknow University as Lecturer in Linguistics in 1946, was promoted as Reader in 1956 and as Professor in 1966. In April 1976 the Department of Linguistics was created and he was appointed its Head, which assignment he carried on till his superannuation on June 30, 1983.

47 scholars have worked for Ph.D. and 3 for D.Litt. under his guidance.

He has been an Expert Member of the Government of India's Terminology Commitee on Linguistics, of the Selection Committees of Union Public Service Commission, of the U.G.C. Hindi Grammer Committee and of the Research Degree Committee and Board of Studies of various Universities, as also a member of the Advisory Committee of the Central Institute of Indian Languages, and a Faculty Member of the Winter School of Linguistics, K.M. Institute, Agra.

His field of specialisation is Stylistic and Grammetical Study of Hindi Language and Dialects. A major research project of the U.G.C., 'Survey of Avadhi-speaking Areas and Compilation of Avadhi Dictionary', has been completed under him as Chief Investigator. A dictionary of literary Avadhi and also a dictionary of folk Avadhi are being compiled under his chief editorship. He is also busy with the U.G.C. Project on Socio-Cultural and Historical Study of the Place-names of Avadh.

He has been occasionally contributing articles on Hindi Literature and Linguistics in reputed Hindi journals. In 1944 he published his long essay on Mahapatra Narhari and his poetry. His other long essays are on the development of infant language, development of National Language Hindi, and Amir Khusro as the symbol of emotional integration. Six of his works have been published.

Dr. Agrawal is an authority on the linguistics of Hindi language, and has made a special study of the Avadhi dialect. The dictionaries of literary Avadhi and folk Avadhi, which he is editing, will be of great use to the students of Hindi Literature and Philology. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Dr. Agrawal, the scholar and intellectual *par excellence*, for his substantial contribution in the field of Hindi linguistics.

Address : B-72 (A), Nirala Nagar, Lucknow-226 007

Works कृतियां

(1) अकबरी दरबार के हिन्दी कवि (1953) (4) अवध के स्थान-नामों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन (1967)
(2) प्राकृत विमर्श (1957) (3 Editions) (5) कविवर गंग और उनका काव्य (1974)
(3) भाषा विज्ञान और हिन्दी (1959) (3 Editions) (6) कविवर रहीम और उनका काव्य (1974)

Books mentioned at no. 1,2, and 4 have merited prizes from the Government of Uttar Pradesh.

Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री कैलाश नाथ गोयल

श्री गोयल का जन्म २५ नवम्बर, १९२३ ई०, को आगरा में हुआ था। एम० ए० स्तर तक की उनकी समस्त शिक्षा आगरा में ही हुयी। वह एक मेधावी छात्र थे और १९४२ में गणित विषय में एम० ए० की परीक्षा उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय (जो उस समय संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, अजमेर और राजपूताना का क्षेत्रीय विश्वविद्यालय था) से प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान पर उत्तीर्ण की। १९४४ में लखनऊ विश्वविद्यालय से उन्होंने एल-एल० बी० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

१९४६-४७ में यू० पी० जूडिशियल सर्विस परीक्षा में उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया और जनवरी १९४८ में वह प्रदेशीय न्यायिक सेवा में सेवायोजित हुये। उनका सेवाकाल भी समान रूप से उज्जवल रहा और वह अपनी सेवा के उच्चतम सोपान तक पहुंचे। सितम्बर १९७२ से मार्च १९७८ तक वह उत्तर प्रदेश शासन में न्याय सचिव एवं विधि परामर्शी थे और इसके बाद उनकी नियुक्ति इलाहाबाद उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के पद पर हुयी। उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ में न्यायाधीश के पद पर उन्होंने मार्च १९७८ से जून-१९८५ तक कार्य किया।

उच्च न्यायालय से सेवानिवृत्त होने के पश्चात उनकी नियुक्ति अवैतनिक सदस्य के रूप में भारत के विधि आयोग में की गयी और कुम्भ दुर्घटना से सम्बन्धित जाँच के लिये नियुक्त एक-सदस्यीय आयोग के रूप में भी उन्होंने कार्य किया। वर्तमान में वह न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान, उ० प्र०, के निदेशक हैं।

राजकीय कार्य के प्रति पूर्ण निष्ठा तथा कठिन उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने के साथ ही उन्होंने लिखने-पढ़ने की अपनी अभिरुचि को बनाये रखा। उनके विशेष अध्ययन का क्षेत्र विधि है और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा लॉ-जर्नल्स में विधिक विषयों पर लेख लिखने तथा आकाशवाणी और दूरदर्शन से इन विषयों पर सुबोध वार्तायें प्रसारित करने के अतिरिक्त उन्होंने विधि के ऊपर तीन महत्त्वपूर्ण पुस्तकें भी लिखी।

वर्तमान में वह 'मोघास प्लीडिन्गस' और 'मोघास इण्डियन कन्वेयेन्सर' को पुनरीक्षित कर रहे हैं और सरकारी सेवकों आदि के संबंध में विधि संबंधी अपनी पुस्तक को भी परिवर्धित कर रहे हैं।

भोपाल गैस दुर्घटना पर उनके लेख इस संबंध में विधिक स्थिति को स्पष्ट करते हैं। उनकी प्रकाशित पुस्तकें अपने विषय पर सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ हैं और सभी लॉ-जर्नल तथा सम्मान्य विधि-विशेषज्ञों द्वारा उनकी प्रशंसात्मक समीक्षा की गयी है। प्रशासनिक विधि पर हिन्दी में उनकी प्रथम पुस्तक है और वह लेखक की अपने विषय के प्रति ही नहीं वरन् राष्ट्र भाषा के प्रति भी निष्ठा को प्रकट करती हैं। इस प्रकार की प्रामाणिक पुस्तकें यदि हिन्दी में लिखी जायेंगी तो राष्ट्र भाषा अपने उचित आसन पर स्थापित हो सकेगी।

श्री गोयल न्यायिक सेवा और उच्च न्यायालय पीठ के बहुत ही प्रखर सदस्य रहे हैं। विधि परामर्शी के रूप में दिये गये उनके अभिमतों से अभी भी शासन मार्गदर्शन प्राप्त करता हैं। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उनके निर्णय उनकी अवधि के सर्वोत्तम माने गये हैं। ये सभी निर्णय तर्क, निष्पक्षता और मानवीयता से पुष्ट हैं। असंदिग्ध निष्ठा, सूक्ष्म प्रज्ञा और सज्जनतापूर्ण व्यवहार के धनी व्यक्ति के रूप में वह निरंतर ही न्यायाधिकारियों तथा विधि-विशेषज्ञों के लिये प्रेरणा के स्रोत बने रहेंगे। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी श्री गोयल का न्यायिक प्रशासन और विधि-विज्ञान के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : बी-२४३६, हास्पिटल रोड, इन्दिरा नगर, लखनऊ-२२६ ०१६

IRS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. K. N. Goyal

Mr. Goyal was born on November 25, 1923 A. D., at Agra. All his education upto M. A. was done at Agra. He was a brilliant student and did M. A. in Mathematics in 1942 from the Agra University (which then covered U. P., C. P., Ajmer and Rajputana), securing first division with first position. He did LL. B. from the Lucknow University in 1944 in first division

Having topped at the U. P Judicial Service Examination in 1946-47, he joined the State Judicial Service in January 1948. His service career was equally brilliant and he rose to the highest position. He was Judicial Secretary-cum-Legal Remembrancer to Uttar Pradesh Government from September 1972 to March 1978, and was elevated to the Bench and served as Judge of the Allahabad High Court, Lucknow Bench, from March 1978 to June 1985.

On retirement from the Bench he was appointed Honorary Member of the Law Commission of India, and constituted the one-man Commission of Inquiry into the Kumbh Tragedy. Presently he is Director of the Judicial Training and Research Institute, U. P.

Despite his onerous duties and full devotion to official work, he kept up his passion for reading and writing. His field of specialization is Law, and besides contributing articles on legal topics in periodicals, newspapers and Law Journals, and delivering talks on the AIR and TV, he has written three valuable books on Law.

At present he is busy revising the "Mogha's Pleadings" and the "Mogha's Indian Conveyancer", as also his own "Law relating to Government Servants etc."

His articles on the Bhopal Gas Tragedy succinctly bring out the legal position. His published books are the most authentic works on the subject and they have been appreciatively reviewed in all the Law Journals and by big jurists. His is the first book in Hindi on the Administrative Law, and it is an evidence of the author's sincerity not only towards the subject but also to the National Language. Such authentic books when written in Hindi, will put the National Language on its rightful pedestal.

Mr. Goyal had been a very brilliant member of the Service and the Bench. His opinions as Legal Remembrancer still hold water and provide valuable guidelines to the administration. His judgments as the Judge of the High Court have been acclaimed as the best during his tenure as Justice, and they were always marked with reason, impartiality and humaneness. A man of unimpeachable integrity, fine intelligence and gentle demeanour, he will continue to be a source of inspiration to the Judges and Jurists. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Mr. Goyal, the scholar and intellectual *par excellence*, for his distinguished contribution to judicial administration and jurisprudence.

Address : B-2436, Hospital Road, Indira Nagar, Lucknow-226 016

कृतियां

(1) Law relating to Government Servants and Servants of other Authorities (1962)
(2) प्रशासनिक विधि (1981)
(3) Commentary on Administrative Tribunals Act (1986)

Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० नासिर अली खान

डा० खान का जन्म १६ सितम्बर, १९२५ ई०, को लखनऊ में हुआ था। उनके पिताजी के स्थानान्तरणीय सेवा में होने के कारण उनकी प्रारम्भिक शिक्षा व्यवधान पूर्ण रही। १९४४ में उन्होंने जॉर्ज इस्लामिया कालेज, गोरखपुर, से इन्टरमीडिएट किया। उच्चतर शिक्षा के लिए वह इलाहाबाद चले गये और वहाँ १९४७ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने बी० ए० की परीक्षा दर्शन-शास्त्र में ऑनर्स के साथ उत्तीर्ण की। तदनन्तर वह लखनऊ चले आये और लखनऊ विश्वविद्यालय से १९५० में मनोविज्ञान विषय में एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण की। उन्हें १९६३ में लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा समाज-शास्त्र में पी-एच० डी० की उपाधि उनके शोध-प्रबन्ध, "विवाह प्रथा के परिवर्तित हो रहे प्रकार", पर प्रदान की गयी।

उन्होंने यू०पी० सिविल सेक्रेटरियेट परीक्षा, १९४९, में सफलता प्राप्त करके १९५० में यू०पी० सचिवालय में सेवायोजन किया और उप सचिव के उच्च पद तक प्रोन्नति प्राप्त की। १९८० में अस्वस्थता के आधार पर उन्होंने सेवा से निवृत्ति ले ली।

बागवानी श्री खान का प्रिय शौक है और उनके घर को पुष्प-उद्यान कहा जा सकता है। विद्यार्थी के रूप में ही वह होनहार थे और ज्ञान के प्रति अनुराग ने उन्हें सचिवालय में सेवारत होते हुए भी गंभीर अध्ययन के लिए प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप वह पी–एच० डी० के लिए अपना शोध-प्रबंध पूरा कर सके। उनके तीन ग्रन्थ प्रकाशित हैं।

डा० खान सचिवालय अधिकारियों के उस अल्प समूह के हैं जिन्होंने अध्ययन के प्रति अपना अनुराग बनाये रखा और ज्ञान के कोष में मौलिक योगदान किया। एक सहकर्मी और अधिकारी के रूप में वह सदैव ही अत्यंत सज्जन और नि:संकोच सहायता करने वाले थे। डा० खान, डा० हर्ष नारायन और डा० शशिकान्त, एक ऐसा त्रिकुट है जिन्होने उत्तर प्रदेश सचिवालय सेवा की गरिमा को उन्नत किया है।

डा० खान का यह कथन कि एक सचिवालय कर्मी को कोई सम्मानित करेगा, किसने सुना है क्योंकि वे तो आते और जाते रहते हैं और पत्रावलियों के समुद्र में एक कम्पन भी नहीं छोड़ जाते, उनकी सादगी का उदाहरण है। वास्तव में ऐसा नहीं है। सचिवालय सही अर्थों में शासन का मस्तिष्क है और नियमों की विशिष्ट जानकारी, सरकारी प्रक्रियाओं का विविध अनुभव तथा विषय को प्रस्तुत करने में निपुणता के कारण सचिवालय कर्मी सर्वाधिक शक्तिमान को भी कानून और औचित्य के सम्मुख झुका सकता है और अपने अविवेक को सही करने अथवा उसके लिये उत्तरदायित्व लेने के लिए प्रेरित कर सकता है। जिन लोगों ने डा० खान को सचिवालय में कार्य करते देखा है वह सरकारी मामलों में उनके साहसी और निर्भीक व्यवहार से सुपरिचित हैं। वह अपनी सेवा के विशिष्ट प्रतिनिधि के रूप में सदैव ही स्मरण किये जायेंगे। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी डा० खान का बौद्धिकता के प्रति विशिष्ट आग्रह के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : ४७, सदर बाजार, कैन्टोन्मेन्ट, लखनऊ–२२६ ००२

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. N. A. Khan

Dr. Khan was born on Sept. 16, 1925 A.D., at Lucknow. His early schooling was disturbed because of his father's transferable job. In 1944 he did Intermediate from the George Islamia College, Gorakhpur. For higher education he moved to Allahabad and did B. A. with Honours in Philosophy from the Allahabad University, in 1947. Then he moved to Lucknow and did M. A. in Psychology from the Lucknow University in 1950, securing first division with first position. He was also awarded Ph. D. in Sociology on his thesis "The Changing Pattern of Marriage" in 1963 by the Lucknow University.

He joined the U. P. Secretariat in 1950, having been successful at the U. P. Secretariat Examination, 1949, and rose to the high position of Deputy Secretary to Government. In 1980 he retired voluntarily from service on grounds of health.

Gardening is Dr. Khan's favourite pastime, and his home can be called a garden of flowers.

As a student he showed promise, and his love for knowledge made him do serious studies while in service at the Secretariat, so much so that he could complete his dissertation for Ph. D. His published works are :

(1) The Changing Pattern of Marriage (1963)
(2) The Psycho-dynamics of Human Relations (1963)
(3) The Emerging New Pattern of Marriage (1963)

Dr. Khan belonged to that small minority of Secretariat officers who kept up their passion for studies and made original contribution to the fund of knowledge. As a colleague and officer he was always a fine gentleman, ungrudgingly helpful. Dr. Khan, Dr. Harsh Narain and Dr. Shashi Kant make a trio who have raised the stature of the Uttar Pradesh Secretariat Service and endowed it with the aura of intellectual competence.

It is Dr. Khan's modesty to say, "Who ever heard of honouring a Secretariat employee? They come and go, leaving not a ripple in the ocean of files". But it is not so exactly. Secretariat is, in fact, the brain of the government, and with his vast knowledge of rules and regulations, varied experience of official procedures and mastery over diction the Secretariat employee can make the mightiest to bow to law and propriety and persuade him to make amends for his indiscretion or own responsibility. Those who have known Dr. Khan working in the Secretariat, can testify to his bold and fearless approach in matters official. He was a doyen of the Service and will always be remembered. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Dr. Khan, the scholar and intellectual *par excellence*, for his exceptional devotion to intellectual pursuits.

Address : 47, Sadar Bazar, Cantonment, Lucknow–226 002

Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० सुधांशु कुमार जैन

डा० जैन का जन्म मुरादाबाद जिले के अमरोहा कस्बे में २० जून, १९२६ ई०, को हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उनके गृह-नगर सिओहारा में एक मुस्लिम मदरसे में हुयी। उन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा दिगम्बर जैन हाई स्कूल, बड़ौत, से दी और इन्टरमीडिएट की परीक्षा मेरठ कालेज, मेरठ, से। उन्होंने बी०एस-सी० और तत्पश्चात १९४६ में वनस्पति-शास्त्र में एम०एस-सी० इलाहाबाद विश्वविद्यालय से किया तथा एम० एस-सी० में प्रथम स्थान प्राप्त किया। पूना (पुणे) विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें १९६३ में वनस्पति शास्त्र में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी।

१९५६ में उन्होंने भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण में सेवायोजन किया और उक्त संस्थान में वैज्ञानिक श्रेणी प्रथम, वैज्ञानिक वरिष्ठ श्रेणी प्रथम, उप निदेशक और सयुक्त निदेशक के पदों पर कार्य करने के उपरान्त १९७६ में उनकी नियुक्ति निदेशक के पद पर हुयी। १९८३ में वहाँ से सेवानिवृत्त होने पर उन्हें दो वर्ष के लिये नेशनल इन्वायरनमेन्ट फ़ैलो नियुक्त किया गया। आजकल वह वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद के एमेरिटस साइन्टिस्ट हैं और राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, में ऐसे वानस्पातिक संसाधनों पर शोध कार्य कर रहे हैं जिनका पूरा उपयोग नहीं किया गया है।

उनके मार्गदर्शन में ८ शोध छात्रों को पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुयी।

डा० जैन का विशेष विषय पौध विज्ञान है जिसके अन्तर्गत प्राकृतिक पौध सम्पदा का सर्वेक्षण, उपयोग और संरक्षण आते हैं। उन्हें नेशनल एकेडेमी ऑफ़ साइंसेज़ द्वारा १९६६ में विज्ञान संबधी उत्कृष्ट प्रकाशन पर और इण्डियन बॉटेनिकल सोसाइटी द्वारा १९८२ में उत्कृष्ट वैज्ञानिक शोध पर स्वर्ण पदक प्रदान किये गये थे। १९८२ से वह इण्डियन नेशनल साइन्स एकेडेमी के फ़ैलो हैं, तथा अन्य विभिन्न भारतीय एवं अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संस्थाओं के भी फ़ैलो हैं, और एथनो-बॉटनी पर अंतर्राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष हैं। उन्होंने बहुत से प्रतिष्ठित संस्थानों में जिनमें हारवर्ड विश्वविद्यालय भी सम्मिलित हैं, अपने विषय पर व्याख्यान दिये हैं।

डा० जैन ने २५ से भी अधिक ऐसे पौधों की खोज की है जिनका वैज्ञानिकों को कोई ज्ञान नहीं था और कोई २० पौधे अब उन्हीं के नाम से विख्यात हैं यथा जैनिया, जैनाई, सुधांशुई। वह अंग्रेजी और हिन्दी में अपने विषय पर लिखते रहते हैं। विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक पत्रिकाओं में उनके २०० से भी अधिक वैज्ञानिक शोध-पत्र प्रकाशित हुये हैं। उनके द्वारा स्वयं लिखित अथवा सह-लेखन में लिखित २७ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

डा० जैन ने अपने विषय में विशिष्ट ख्याति अर्जित की है। उन्होंने राष्ट्रीय वानस्पतिक सर्वेक्षण, भारतीय वानस्पतिक शास्त्र, तथा सामान्य रूप में विज्ञान के प्रति उत्कृष्ट सेवा की है और वैज्ञानिक संसार में राष्ट्रीय वानस्पतिक सर्वेक्षण को जो आदरास्पद स्थान प्राप्त है उसका श्रेय उन्हीं को है। उनकी शोधों ने शताब्दियों से चले आ रहे संशयों एवं गलत धारणाओं को दूर किया हैं और बहुत से विदेशी लेखकों ने मात्र उन्हीं के निष्कर्षों को यह कहकर उद्धृत किया है कि डा० जैन के उत्कृष्ट निष्कर्षों तथा विश्वसनीय तथ्यों के आगे कुछ नहीं कहा जा सकता। उन्होंने राष्ट्र भाषा हिन्दी को भी वनस्पति शास्त्र पर प्रामाणिक पुस्तके लिखकर समृद्ध करने का प्रयास किया है।

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० जैन ने वनस्पति विज्ञान के प्रति महती सेवायें की हैं और अब भी कर रहे हैं। नये पौधों को खोज कर जो उनके नाम से ही जाने भी जाते हैं तथा अन्य वृहद् एवं महत्त्वपूर्ण योगदान के द्वारा वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में उन्होंने अपने लिये एक सुनिश्चित स्थान प्राप्त कर लिया है। इस वर्ष उन्हें इण्डियन बॉटेनिकल सोसाइटी का अध्यक्ष भी निर्वाचित किया गया है। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज डा० जैन का वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में सारभूत योगदान के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : ए–२६, माल एवेन्यू कालोनी, लखनऊ–२२६ ००१

Dr. S. K. Jain

Dr. Jain was born on June 20, 1926 A.D., at Amroha in the Moradabad district. His early education was done in his home town of Seohara in a Muslim school and he did High School from the Digambara Jain High School, Baraut, and Intermediate from the Meerut College, Meerut. He did B.Sc. and, then, M.Sc. in Botany in 1946, securing first position, from the Allahabad University. He was awarded Ph.D. in Botany by the Poona (Pune) University in 1963.

He joined the Botanical Survey of India in 1956 and worked there as Scientist Class One, Scientist Senior Class One, Deputy Director and Joint Director, before he was appointed Director in 1976. On retirement in 1984 he was appointed National Environment Fellow for two years, and is at present Emeritus Scientist of the Council of Scientific and Industrial Research, and is working at the National Botanical Research Instiute, Lucknow, on under-utilized plant resources.

8 scholars have been awarded Ph.D. under his guidance.

Dr. Jain's field of specialization is Plant Science : Natural Plant Wealth, its survey and utilization, as also its conservation. He was awarded Gold Medals for outstanding science publication by the National Academy of Sciences in 1966, and for outstanding scientific work by the Indian Botanical Society in 1982. Since 1982 he is a Fellow of the Indian National Science Academy, and is also Fellow of several Indian and international scientific societies, and Chairman of the International Commission on Ethno-Botany. He has delivered lectures in many reputed institutions, including the Harvard University.

Dr. Jain has discovered more than 25 plants entirely new to science and the known biological wealth of this earth, and some 20 plants have also been named after him, *e. g.*, Jainia, Jainii, Sudhanshui.

He writes in English as well as in Hindi. Over 200 scientific papers have been published by him in different national and international scientific journals. Some 27 books written by himself or in co-authorship have since been published.

Dr. Jain has earned recognition in his field. He is known to have rendered meritorious service to the National Botanical Survey, Indian Botany and the Science in general and is credited to have been responsible for giving the Botanical Survey the serene respectability in the scientific world. Some of his research findings have cleared doubts and misinformations of centuries, and many foreign monographers have just reproduced his conclusions, saying

Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

that nothing can be added to Jain's excellent conclusions and convincing data. He has also sought to enrich the National Language, Hindi, with authentic works on Botany.

Dr. Jain has rendered and still continues to render great service to the science of Botany, and has carved for himself a definite niche in the field of Botany by discovering new plants which are named after him, besides his other voluminous and valuable contribution. This year he has also been elected President of the Indian Botanical Society. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Dr. Jain, the scholar and intellectual *par excellence*, for his substantial contribution to the science of Botany.

Address : A-26, Mall Avenue Colony, Lucknow-226 001

Works कृतियां

(1) वनस्पति कोश
(2) कुछ परिचित पेड़ (1967)
(3) औषधीय पौधे (1968)
(4) पौधों का नामकरण (Co-author Satya Jain) (1981)
(5) अनावृत बीजी की आंकरीली (Co-author Satya Jain) (1982)
(6) पौधे और पर्यावरण (1983)
(7) भारत की वनस्पति (Compilation) (Co-editor U.N. Mudgal) (1984)
(8) Index to the Flora of Upper Gangetic plains (1952)
(9) Grasses of the Upper Gangetic Plains- Panicoideae- Part-I (1961) (Co-author)
(10) Grasses of the Upper Gangetic Plains- Panicoideae- Part-II (1964) (Co-author)
(11) Flora of Rajasthan (1964) (Co-author)
(12) Medicinal Plants (1968) (IV Edn. 1983)
(13) A Handbook of Field and Herbarium Methods (1976) (Co-author)
(14) Garnotieae Flora of India (1979) (Co-author)
(15) Threatened Plants of India (1980) (Co-author)
(16) Orchidauae-Genus Coelogyne, Flora of India (1980) (Co-author)
(17) Glimpses of Indian Ethno-Botany (1981) (Edited)
(18) Conservation of Tropical Plant Resources (1983) (Co-Editor)
(19) An Assessment of Threatened Plants of India (1983) (Co-editor)
(20) Botany of Some Tiger Habitats in India (1983) (Co-editor)
(21) Material for a Catalogue of Threatened Plants of India (1981) (Co-editor)
(22) An Inventory of Orchidaceae in India (1984) (Co-author)
(23) Bibliography of Ethno-botany (1984) (Co-author)
(24) The Indian Plant Red-Data Book I (1984) (Co-editor)
(25) Beautiful Trees and Shrubs of Calcutta (1984) (Co-author)
(26) Threatened and Ending Orchids of Sikkim and North-Eastern India (1984) (Co-author)
(27) Poaceae- Tribe Isachneae-Flora of India (1984) (Co-author)

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री विश्वम्भर नाथ

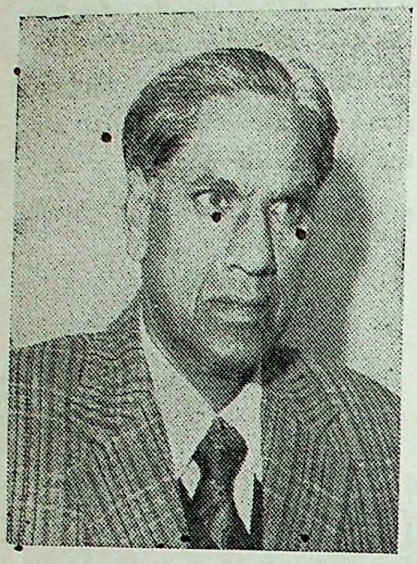

श्री विश्वम्भर नाथ का जन्म ४ दिसम्बर, १९२८ ई०, को लखनऊ में हुआ था। उनकी समस्त शिक्षा लखनऊ में ही हुयी। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में १९४८ में उत्तीर्ण की और १९५० में एल-एल० बी० की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त करते हुये उत्तीर्ण की। १९५३ में उन्होंने फ्रेन्च भाषा में प्रोफ़िशियेन्सी सर्टीफ़िकेट परीक्षा उत्तीर्ण की।

१९४९-५३ की अवधि में उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय में प्राचीन भारतीय इतिहास के प्राध्यापक के रूप में कार्य किया। आई० ए० एस० परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर १९५३ में उन्होंने भारतीय पुलिस सेवा में सेवायोजन किया। अपनी सेवा के क्षेत्र में उन्होंने महानिदेशक के उच्चतम पद तक प्रोन्नति प्राप्त की और दिसम्बर १९८६ में अधिवर्षता के समय वह महानिदेशक, होमगार्ड्स, उ० प्र०, थे। वह भारतीय पुलिस सेवा के उत्तर प्रदेश संवर्ग के प्रखर अधिकारियों में से रहे हैं, और उनकी दीर्घकालीन तथा सराहनीय सेवाओं के लिये उन्हें पुलिस पदक तथा राष्ट्रपति पदक से सम्मानित किया गया है।

उनका विशेष अभिरुचि का विषय ज्योतिष है।

श्री विश्वम्भर नाथ एक अध्ययनशील विद्यार्थी थे और लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान उन्होंने अपने कठिन परिश्रम तथा नियमपूर्वक कार्य करने के गुणों से अपने विद्यार्थियों को प्रभावित किया। उनके उदाहरण ने उनके विद्यार्थियों को प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं में बैठने के लिये भी प्रेरित किया। एक अध्यापक के रूप में और पुनः एक पुलिस अधिकारी के रूप में वह एक मौन कार्यकर्ता रहे हैं जो दिखावे से बराबर बचते रहे। उनके मौन कार्य, कर्त्तव्यनिष्ठा और अपने कार्य के प्रति समर्पण ने उन्हें जब वह विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य करते थे तो अपने विद्यार्थियों का प्रिय-भाजन बनाया और बाद को जब उन्होंने भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारी के रूप में कार्य किया, अपने अधीनस्थ अधिकारियों एवं सिपाहियों का भी प्रिय-भाजन बनाया। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज मनीषी श्री विश्वम्भर नाथ का उनके विशिष्ट गुणों के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : बी–११६, सेक्टर–सी, महानगर, लखनऊ–२२६ ००६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. V. Nath

Mr. Nath was born on Dec. 4, 1928 A.D., at Lucknow. All his education was done at Lucknow. He did M.A. in History from the Lucknow University in 1948 in first division, and LL.B. in 1950 also in first division securing first position. He also took Proficiency Certificate in French in 1953.

During 1949-53 he taught Ancient Indian History as a Lecturer at the Lucknow University. On the results of the I.A.S. etc. examination he joined the Indian Police Service in 1953. During his service career he rose to the highest position of the Director-General and at the time of his superannuation in December 1986 he was Director-General, Home Guards, U. P. He has been one of the brilliant officers of the U. P. cadre of the Indian Police Service, and for his long and admirable services he was awarded the Police Medal and the President's Medal.

His special interest is in astrology.

Mr. Nath was a studious student and during his stay at the Lucknow University he impressed his students by his own quality of hard work and methodicity. His example also inspired them to take the competitive examinations. As a teacher as well as a Police Officer he has been a quiet worker who avoided pretentious appearance. His quiet work, sincerity and devotion to the job endeared him to his students when he taught at the University and later his subordinates and men-in-uniform when he worked as an officer of the prestigious Indian Police Service. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day honours and felicitates Mr. Nath, the intellectual *par excellence*, for his adorable qualities.

Address : B-116, Sector-C, Mahanagar, Lucknow-226 006

——

Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री नरेश चन्द्र जैन

श्री जैन का जन्म २६ सितम्बर, १९३२ ई०, को इलाहाबाद में हुआ था। उनकी सभी शिक्षा इलाहाबाद में हुयी। उन्होंने १९५३ में अर्थशास्त्र विषय में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम० ए० किया और १९५४ में गवर्नमेन्ट ट्रेनिंग कालेज से एल० टी० किया। बाद में उन्होंने तेलुगु भाषा में डिप्लोमा भी किया।

इलाहाबाद में दो वर्ष अध्यापक के रूप में कार्य करने के उपरान्त उन्होंने १९५६ में लखनऊ में उ० प्र० सचिवालय में सेवायोजन किया। वर्तमान में वह कार्मिक विभाग में अनु सचिव हैं।

अपने विद्यार्थी जीवन से ही श्री जैन सामाजिक कार्य में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे हैं। वह लखनऊ के सामाजिक जीवन में बहुत सक्रिय हैं। वह जैन मिलन लखनऊ के मंत्री हैं, भारतीय जैन मिलन के क्षेत्रीय अध्यक्ष हैं, दिगम्बर जैन हायर सेकेन्डरी स्कूल, लखनऊ, के अध्यक्ष हैं, तथा तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, के संयुक्त मंत्री हैं।

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ के कार्यकलापों से भी श्री जैन सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे हैं और सदा ही उनका उन्मुक्त सहयोग प्राप्त होता रहा है। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज मनीषी श्री जैन का अभिनन्दन करती है और उनके उन्मुक्त सहयोग की अभिशंसा करती है।

पता : ४४३, राजेन्द्र नगर, लखनऊ–२२६ ००४

Mr. Naresh Chandra Jain

Mr. Jain was born on Sept. 26, 1932 A.D., at Allahabad. All his education was done at Allahabad. He did M. A. in Economics from the Allahabad University in 1953 and L.T. from the Government Training College, Allahabad, in 1954. He also later took Diploma in Telegu.

Having worked as a teacher at Allahabad for 2 years he joined the U. P. Secretariat at Lucknow in 1956. He is presently Under Secretary to Government in the Karmik Department.

From his student days Mr. Jain has been taking active interest in social work. He is very active in the social life of Lucknow. He is Secretary of the Jain Milan, Lucknow, Zonal President of the Bhartiya Jain Milan, President of the Digamber Jain Higher Secondary School, Lucknow, and Joint Secretary of the Tirthankara Mahavira Smriti Kendra Samiti, U. P.

Mr. Jain has also been actively associated with the activities of the Ananta-Jyoti Vidyapitha, and his co-operation has always been spontaneous. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day takes the opportunity to felicitate Mr. Jain, the intellectual *par excellence*, and put on record its deep appreciation for the co-operation extended by him.

Address : 443, Rajendra Nagar, Lucknow–226 004

Mahakosha Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्री काशीनाथ गोपाल गोरे

श्री गोरे का जन्म वाराणसी में ३ जून, १९३६ ई०, को हुआ था। उनकी शिक्षा वाराणसी और लखनऊ में हुयी। १९५४ में उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। १९५२ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की साहित्य रत्न परीक्षा भी उत्तीर्ण की। १९६४ में उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से एल्-एल० बी० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और स्वर्ण पदक प्राप्त किया। १९६६ में उन्होंने भातखंडे संगीत महाविद्यालय, लखनऊ, से संगीत विशारद किया और १९७१ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की तेलगु कोविद परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

वह लखनऊ १९५५ में आये और ७ मई, १९५५, को उन्होंने उ० प्र० सचिवालय में सेवायोजन किया। वर्तमान में वह सहायक मुख्य निर्वाचन अधिकारी, उप निर्वाचन निदेशक एवं अनु सचिव के पद पर कार्यरत हैं।

अध्ययन के प्रति अपनी अभिरुचि उन्होंने बनाये रखी और उसी के फलस्वरूप सेवारत रहते हुये उन्होंने एल-एल० बी०, तेलगु कोविद तथा संगीत विशारद की परीक्षायें उत्तीर्ण की। वह संस्कृत भाषा में निष्णात हैं और संस्कृत में कविता भी करते हैं तथा ज्योतिष में भी उनकी रुचि है। उनकी अभिनय में भी रुचि है और उन्होंने मराठी के कई नाटकों में अभिनय किया है तथा उनका निर्देशन किया है।

सामाजिक दृष्टि से भी वह काफी सक्रिय हैं। सचिवालय में सचिवालय हिन्दी परिषद के संस्थापक सदस्यों में से वह थे और उसके उपाध्यक्ष भी थे। लखनऊ महाराष्ट्र समाज के वह एक सक्रिय सदस्य हैं और उसके अध्यक्ष रह चुके है।

श्री गोरे अनन्त-ज्योति विद्यापीठ के कार्यकलापों से भी सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे हैं और उसके सम्परीक्षक हैं। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज मनीषी श्री गोरे का अभिनन्दन करती हैं और उनके उन्मुक्त सहयोग के लिए उनकी अभिशंसा करती है।

पता : ई–५१, महानगर विस्तार, लखनऊ–२२६ ००६

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mr. K. G. Gore

Mr. Gore was born on June 3, 1936 A.D., at Varanasi. He had his education at Varanasi and Lucknow. He did B.A. in 1954 from the Banaras Hindu University. He also did Sahitya Ratna in 1952 from the Hindi Sahitya Sammelan, Prayag. In 1964 he took LL.B. from the Lucknow University in first division, winning a Gold Modal. He did Sangit Visharad in 1966 from the Bhatkhande College of Hindustani Music, Lucknow, and Telegu Kovid in first division from the Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha in 1971.

He came to Lucknow in 1955 and joined the U.P. Secretariat on May 7, 1955. He is presently Assistant Chief Electroral Officer-cum-Deputy Director of Elections-cum-Under Secretary to Government.

He kept up his passion for studies, so much so that he did LL.B., Telegu Kovid and Sangit Visharad while in service. He is a master of Sanskrit and sometimes composes in Sanskrit, and has interest in astrology. He is also interested in histrionics and has acted in, and directed, plays in Marathi.

He is also socially quite active. In the Secretariat he was one of the founding members and Vice-President of the Sachivalaya Hindi Parishad. He is also an active member of the Lucknow Maharashtra Samaj and has been its President.

Mr. Gore is also actively associated with the activities of the Ananta-Jyoti Vidyapitha, and is its Auditor. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day takes the opportunity to felicitate Mr. Gore, the intellectual *par excellence*, and put on record its deep appreciation for the co-operation extended by him.

Address : E-51, Mahanagar Extension, Lucknow–226 006

——

Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० रमेश चन्द्र शर्मा

डा० शर्मा का जन्म २९ जुलाई, १९३६ ई०, को हुआ था। उन्होंने काशी हिन्दु विश्वविद्यालय से १९५७ में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विषय में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और उन्हें १९८३ में कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच०डी० की उपाधि प्रदान की गयी। उन्होंने पुरातत्त्व में प्रशिक्षण प्राप्त किया, संग्रहालय विज्ञान में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया, और संग्रहालय की वस्तुओं के संरक्षण के विषय में विशेष दिशा-ज्ञान प्राप्त किया।

नवम्बर १९५७ में वह भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण में एक्सप्लोरेशन असिस्टेन्ट के पद पर नियुक्त हुए और उन्होंने बुलन्दशहर जिले में गांव-गांव घूमकर पुरातत्त्व-अवशेषों का सर्वेक्षण किया और कुछ महत्त्वपूर्ण प्राचीन स्थलों की खोज की, और उज्जैन तथा आलमगीरपुर में पुरातात्त्विक उत्खनन में भी भाग लिया।

जून १९६० में उनकी नियुक्ति राज्य संग्रहालय लखनऊ में सहायक संग्रहालय-अध्यक्ष के पद पर हुयी। जनवरी १९६९ में मथुरा के पुरातात्त्विक संग्रहालय में संग्रहालय-अध्यक्ष/निदेशक के पद पर उनकी पदोन्नति हुई और मई १९८० में वह राज्य संग्रहालय, लखनऊ, में निदेशक के पद पर प्रोन्नत हुये। जनवरी १९८६ में उनका चयन भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता, के निदेशक के प्रतिष्ठित पद पर हुआ और वर्तमान में वह उसी पद पर कार्यरत हैं।

मथुरा में सेवा-अवधि के दौरान सौंख में पुरातात्त्विक उत्खनन (१९६९-७४) और मथुरा संग्रहालय का शताब्दी समारोह (जनवरी १९७४) उनकी प्रमुख उपलब्धियां थीं। १९७५-८० की अवधि में उन्होंने पश्चिमी क्षेत्र, उ० प्र०, के लिये पुरावशेषों एवं कला सम्पदा के क्षेत्रीय अधिकारी के रूप में भी कार्य किया। राज्य संग्रहालय में निदेशक के पद पर रहते हुये उन्होंने पुरातत्त्व दीर्घाओं को पुनः व्यवस्थित किया, प्रो० वासुदेव शरण अग्रवाल स्मारक व्याख्यान माला प्रारम्भ की, बुलेटिन ऑफ़ म्यूज़ियम्स एण्ड आर्किलॉजी का सम्पादन किया, पुरावशेषों की कई प्रदर्शनियाँ की और कुषाण काल की कला पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का संयोजन किया। भारतीय संग्रहालय में अपने वर्तमान पद पर वह संग्रहालय की उन्नति एवं विकास के लिये कार्यकारी योजना बना रहे हैं।

वह इंगलैन्ड, फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम, इटली, हालैन्ड, स्विट्जरलैन्ड और जापान का भ्रमण कर आये हैं। विभिन्न संस्थाओं में तथा आकाशवाणी और दूरदर्शन पर भारतीय कला एवं संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर उनके व्याख्यान/वार्तायें होती रही है। हिन्दी और अंग्रेजी में उनके ६० शोध-पत्र तथा ७५ स्फुट लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। वह वृन्दावन रिसर्च इन्स्टीट्यूट के जर्नल, इन्डियन म्यूज़ियम बुलेटिन और मानस-वार्ता-माला से सम्पादक के रूप में भी सम्बद्ध रहे हैं।

कला, स्थापत्य, पुरातत्त्व, संस्कृति, ललितकला, प्रतिमाविज्ञान, संग्रहालय-विद्या, पुरालेख और संस्कृत, विषयों में वह विभिन्न विश्वविद्यालयों के परीक्षक रहे हैं, तथा बोर्ड ऑफ़ स्टडीज़ के सदस्य और विश्वविद्यालय एवं लोक सेवा आयोग में अध्यापकों तथा संग्रहालयाध्यक्षों के चयन के लिये विशेषज्ञ नियुक्त किये जाते रहे हैं। कानपुर विश्वविद्यालय के वह अनुमोदित शोध मार्गदर्शक हैं और विभिन्न विश्वविद्यालयों के डाक्ट्रेट के लिये शोध-प्रबन्ध के परीक्षक रहे हैं। डा० शर्मा का शोध-प्रबन्ध, बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ़ मथुरा, प्रारम्भिक बौद्ध कला एवं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिमा विज्ञान पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। उन्होंने मथुरा के प्राचीन स्थलों की सूची भी बनाई है जिसमें पुरावशेषों के आधार पर स्थानों का महत्त्व स्पष्ट किया है।

अपने लखनऊ आवास की अवधि में वह अनन्त-ज्योति विद्यापीठ के कार्य-कलापों से सम्बद्ध रहे थे, और अन्यथा भी वह लखनऊ की सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय रहे थे।

संग्रहालय विद्या के क्षेत्र में डा० शर्मा ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। उनमें अपेक्षित दूरदृष्टि, सूत्रपात्र-क्षमता और कार्य-कुशलता है और निश्चय ही उनके निर्देशन में भारतीय संग्रहालय की गणना विश्व के सर्वश्रेष्ठ संग्रहालयों में की जा सकेगी। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी डा० शर्मा का विद्वत्ता के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए सत्कार और अभिनन्दन करती है।

पता : भारतीय संग्रहालय, २७, जवाहरलाल नेहरू रोड, कलकत्ता–७०००१६

Dr. R. C. Sharma

Dr. Sharma was bron on July 29, 1936 A.D. He did M.A. in Ancient Indian History and Culture from the Banaras Hindu University in 1957, and was awarded the degree of Ph.D. by the University of Calcutta in 1983. He has had training in field archaeology, specialised training in museology, and orientation course in preservation of museum objects.

He joined the Archaeological Survey of India as Exploration Assistant in November 1957, and made a village-to-village survey of antiquarian remains in the Bulandshahr district and discovered several important early sites, and also participated in excavations at Ujjain and Alamgirpur.

In June 1960 he joined the State Museum, Lucknow, as Assistant Curator. In January 1969 he was promoted as Curator/Director, Archaeological Museum at Mathura, and in May 1980 he was promoted as Director of the State Museum, Lucknow. In January 1986 he was selected for the prestigious post of the Director of Indian Museum, Calcutta, which assignment he holds at present.

The excavations at Sonkh (1969-74) and the Centenary celebration of the Museum in January 1974 were his major achievements during his stay at Mathura. He also worked as Zonal Officer of Antiquities and Art Treasures Scheme (Western Zone, U.P.) during 1975-80. During his Directorship at the State Museum he reorganized the archaeological galleries, instituted Prof. V.S. Agrawala Memorial Lectures, edited Bulletin of Museums and Archaeology, organised several exhibitions of antiquities, and convened the International Seminar on the Art of the Kushana Age. In his present assignment at the Indian Museum he is busy with a work plan for improvement.

He has visited England, France, Germany, Belgium, Italy, Holland, Switzerland and Japan. He has delivered lectures in different institutions, and has been on the Radio and T.V. speaking on different aspects of Indian art and culture. 60 research papers and 75 articles, in Hindi and English, have been published in journals and periodicals from time to time. He has also been associated with the Journal of the Vrindavan Research Institute, Indian Museums Bulletin and Manasa-Varta-Mala, as editor.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

He has been an examiner of several Universities in art, architecture, archaeology, culture, fine arts, iconography, museology, epigraphy, and Sanskrit, and also a member of the Board of Studies and an Expert Member for selection of teaching staff and curatorial staff of Universities and Public Service Commissions. He is also an approved research guide of the Kanpur University, and has been an examiner of doctoral theses of several Universities.

The *magnum opus* of Dr. Sharma, Buddhist Art of Mathura, published in 1984, is his doctoral thesis and is a widely acknowledged work on the early Buddhist art and iconography. He has also prepared the Site List of Mathura, explaining the nature of sites on the basis of finds.

During his stay at Lucknow, he was associated with the activities of the Ananta-Jyoti Vidyapitha, and was also otherwise active in the cultural life of Lucknow.

Dr. Sharma has already made a place for himself in the field of Museology. He has imagination, initiative and competence, and under his directorship the Indian Museum is sure to count among the world's best museums. The Ananta-Jyoti Vidyapith Pravara Samiti this day honours and felicitates Dr. Sharma, the scholar and intellectual *par excellence*, for his distinguished contribution to scholarship.

Address : Indian Museum, 27, Jawahar Lal Nehru Road, Calcutta–700 016

Works कृतियाँ

(1) Catalogue of the Gandhara Sculptures in the State Museum Lucknow (Co-author) (1969)
(2) जैन तीर्थ कंकाली (1971)
(3) Mathura Museum Introduction (1971)
(4) मथुरा संग्रहालय परिचय (1971)
(5) Mathura Museum and Art (1976)
(6) Buddhist Art of Mathura (1984)

—

...ge and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० (श्रीमती) प्रभा गुप्ता

डा० प्रभा गुप्ता का जन्म ५ दिसम्बर, १९३६ ई०, को बिहार प्रदेश के जमालपुर कस्बे में हुआ था। उनकी शिक्षा कलकत्ता, वाराणसी और लखनऊ मे हुयी। उन्होंने १९५७ में लखनऊ विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान विषय में एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में और प्रथम स्थान पर उत्तीर्ण की। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के रिसर्च फैलो के रूप में उन्होंने व्यवसायी तथा अव्यवसायी महिलाओं में चिन्ता एवं सुरक्षा विषय पर शोध कार्य किया और १९६४ में लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी।

जून १९८५ में लखनऊ विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान विभाग के प्रोफ़ेसर और अध्यक्ष पद पर नियुक्त होने के पूर्व वह पिछले २० वर्षों से लेक्चरर और रीडर के रूप में कार्य कर चुकी थीं। उनके पर्यवेक्षण में पाँच शोध-छात्रों ने पी-एच० डी० की उपाधि अर्जित की। शिक्षण कार्य हेतु वह जापान, केनाडा और घाना भी हो आई हैं। व्यक्तित्व मनोविज्ञान की वह विशेषज्ञ हैं। उनके ५० से भी ऊपर शोध-पत्र भारतीय एवं विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये हैं।

उनकी दो पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हुयी है—

१—अधिगम मनोविज्ञान (१९७४)

२—शब्दावली विभेदक के उपयोग (१९७८)

इस समय वह युवकों के सांस्कृतिक मूल्यों, महिला मनोवैज्ञानिकों के योगदान, और विदेशों में डेपुटेशन के दौरान सामंजस की समस्याओं पर तीन पुस्तकों का प्रणयन कर रही हैं।

१९८६ के प्रारम्भ में हुये इन्डियन साइन्स कांग्रेस के अधिवेशन में डा० प्रभा गुप्ता को मनोविज्ञान प्रभाग का रिकार्डर १९८७-८९ की अवधि के लिये चयनित किया गया। इस पद पर चयनित होने वाली वह प्रथम महिला मनोवैज्ञानिक हैं। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी डा० (श्रीमती) प्रभा गुप्ता का अभिनन्दन करती है और एक महिला मनोवैज्ञानिक के रूप में अग्रणी होने के लिए उनकी अभिशंसा करती है।

पता : बी—३४, सेक्टर बी, अलीगंज हाउसिंग कालोनी, लखनऊ–२२६ ०२०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. ...Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. (Mrs.) Prabha Gupta

Dr. Prabha Gupta was born on December 5, 1936 A.D., at Jamalpur in Bihar. She received her education at Calcutta, Varanasi and Lucknow. She did M.A. in Psychology in 1957, obtaining first division with first position, from the Lucknow University. As a Research Fellow of the University Grants Commission she worked on "Anxiety and security in professinal and non-professional women" and was awarded Ph. D. by the Lucknow University in 1964.

She worked as Lecturer and Reader for 20 years before she was appointed Professor and Head of the Department of Psychology in Lucknow University in June 1985. Five scholars have obtained Ph. D. under her guidance. She has been to Japan, Canada and Ghana on educational assignments. Her field of specialisation is Psychology of Personality. She has contributed over 50 research papers in Indian and foreign journals.

Two of her books in Hindi have been published :

(1) अधिगम मनोविज्ञान (1974)

(2) शब्दार्थ विभेदक के उपयोग (1978).

Currently she is working on :

(1) Cross-Cultural Youth Values

(2) Contribution of Women Psychologists

(3) Adjustment Problems during Foregin Deputations.

At the Indian Science Congress held early in 1986 she was elected Recorder, Psychology Section, for 1987-89. She is the first woman psychologist to be elected to this post. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day felicitates Dr. (Mrs.) Prabha Gupta, the scholar and intellectual *par excellence*, and places on record its appreciation for her being the leading lady psychologist.

Address : B-34, Sector B, Aliganj Housing Colony, Lucknow-226 020

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० (कु०) उषा माथुर

डा० उषा माथुर का जन्म १ नवम्बर, १९३८ ई०, को लखनऊ में हुआ था और उनकी समस्त शिक्षा भी इसी नगर में हुयी। उन्होंने हिन्दी साहित्य में, तथा पुनः, भाषा विज्ञान में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की, और १९६८ में "भारतेन्दु की खड़ी बोली का भाषा विश्लेषण" शोध-प्रबन्ध पर पी-एच० डी० की उपाधि तथा १९७८ में "भारतेन्दु-पूर्व खड़ी बोली का भाषा विश्लेषण" पर डी० लिट्० की उपाधि लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें प्रदान की गयी।

पी-एच० डी० के लिये रिसर्च फ़ैलो-शिप उन्हें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदान की गयी थी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के रिसर्च एसोशियेट के रूप में १९८१-८४ की अवधि में उन्होंने क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर, में अध्यापन कार्य किया, और १९८५ से रिसर्च साइन्टिस्ट "ए" के रूप में लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में कार्यरत हैं।

खड़ी बोली का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन उनके अनुसंधान का विशिष्ट विषय है। इसके अतिरिक्त संगीत में उनकी अभिरुचि है और सितार वादन में निपुण हैं। मॉरिशस और नयी दिल्ली में हुये विश्व हिन्दी सम्मेलनों में भी वह सम्मिलित हुई थीं, और लिन्ग्विस्टिक सोसाइटी ऑफ़ इन्डिया, नागरी प्रचारिणी सभा तथा भारतीय हिन्दी परिषद की आजीवन सदस्य हैं। भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद की ओर से उन्होंने "नीलामी बोली-एक सामाजिक एवं भाषा विश्लेषणात्मक अध्ययन" प्रायोजना पर कार्य किया है और भारतीय साक्षरता परिषद की ओर से "प्रौढ़ों का शब्द संसार" नामक प्रायोजना पर कार्य किया है।

नवम्बर १९८५ में केन्द्रीय हिन्दी संस्थान द्वारा उन्हें भारतेन्दु के गद्य पर विशेष व्याख्यान देने के लिये आमंत्रित किया गया था। "खड़ी बोली के शब्द कोए का सामाजिक एवं भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन" नामक प्रायोजना पर वह रिसर्च साइन्टिस्ट "ए" के रूप में कार्य कर रही हैं।

वह समय-समय पर भाषा विज्ञान, सामाजिक समस्याओं और हिन्दी साहित्य पर लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा समाचार-पत्रों में लिखती रही हैं और लघु कथायें भी लिखती रही हैं, तथा आकाश-वाणी द्वारा वार्ता देने के लिये भी उन्हें आमंत्रित किया जाता रहा है।

डा० उषा माथुर एक सक्षम शोधार्थी हैं। उन्होंने अपने विषय का अध्ययन पर्याप्त श्रम एवं सूझ-बूझ के साथ किया है। उनके डी० लिट्० के शोध-प्रबन्ध पर पटना विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर देवेन्द्रनाथ शर्मा ने यह अभिमत दिया था कि वह शोध-प्रबंध अपवादों के अंतर्गत स्थान पाने का अधिकारी है; शोध की तात्विक पद्धति का प्रयोग करते हुये प्रबन्ध में जो कुछ प्रतिपादित किया गया है वह तर्क और प्रमाण से पुष्ट है।

उनकी "प्राचीन कथायें : नई प्रेरणायें" डा० शशि कान्त के अभिमत में लोक साहित्य के क्षेत्र में एक बहुत ही उपयोगी योगदान है, इसके अतिरिक्त कि वह भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के लिये उपयोगी है।

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज विद्वान-मनीषी डा० (कु०) उषा माथुर का अभिनन्दन करती हैं और भाषा-विज्ञान एवं हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उनके कर्मठ योगदान की अभिशंसा करती है।

पता : हर निवास, ४७, कानपुर रोड, लखनऊ-२२६०१९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. (Miss) Usha Mathur

Dr. Usha Mathur was born on Nov. 1, 1938 A. D., at Lucknow and had all her education in the city of her birth. She did M. A. in Hindi Literature and also in Linguistics, and was awarded Ph. D., in 1968, on the linguistic study of the Khari Boli of Bharatendu, and D. Litt., in 1978, on the linguistic study of Khari Boli prior to Bharatendu, by the Lucknow University.

She was granted Research Fellowship for doing Ph.D. and Senior Research Fellowship for doing D. Litt. by the University Grants Commission. As a Research Associate of the University Grants Commission she worked at the Christ Church College, Kanpur, during 1981-84, and since 1985 she is working as Research Scientist 'A' in the Department of Hindi at the Lucknow University.

Besides her field of specialisation in the linguistics relating to the Khari Boli, she has a taste for music and is proficient in Sitar. She has attended the World Hindi Conventions held in Mauritius and at New Delhi and is a Life Member of the Linguistic Society of India, Nagari Pracharini Sabha and Bharatiya Hindi Parishad. She was also entrusted with the project on 'Neelami Boli - a socio-linguistic study' by the Indian Council of Social Science Research, and the project on the 'Vocabulary of the Adults' by the India Literacy Board, and was also invited to deliver special lecture on the prose of Bharatendu by the Central Hindi Institute in November 1985.

The project allotted to her as Research Scientist 'A' is 'the Socio-linguistic study of the Vocabulary of Khari Boli'.

She has occasionaly contributed papers/articles on linguistics, social problems, and Hindi literature, and also short stories, to various periodicals and newspapers, and has been invited by the All India Radio to deliver talks.

Dr. Usha Mathur is a promising scholar who has pursued her subject with industry and intelligence. Prof. Devendra Nath Sharma of the Patna University has observed in his evaluation of her D. Litt. thesis that it deserves to be placed among exceptions; the thesis is supported with reason and evidence.

As regards her प्राचीन कथायें : नई प्रेरणायें, Dr. Shashi Kant has found it to be a very useful addition to the folk literature besides being valuable as a linguistic study.

The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day felicitates Dr. (Miss) Usha Mathur, the scholar and intellectual *par excellence*, and places on record its appreciation for her dexterous contribution to linguistics and Hindi literature.

Address : Har Nivas, 47, Kanpur Road Lucknow-226019

Works कृतियां

१-भारतेन्दु की खड़ी बोली का भाषा विश्लेषण (१९७१)
२-प्राचीन कथायें; नई प्रेरणायें (१९८३)
३-खड़ी बोली - विकास के आरम्भिक चरण
४-खड़ी बोली और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
५-नीलामी बोली
६-प्रौढ़ों का शब्द संसार

Digitized by IKS MoE. Digitization: eGangotri

डा० विनय कुमार जैन

डा० जैन का जन्म २० अगस्त, १९४५ ई०, को आगरा में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा अगरा में हुयी, परन्तु माध्यमिक स्तर से आगे समस्त शिक्षा लखनऊ में हुयी। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से १९६६ में प्राणि-शास्त्र विषय में एम०एस-सी० किया और १९६८ में रूसी भाषा में डिप्लोमा प्राप्त किया। १९८४ में उन्हें लखनऊ विश्व-विद्यालय द्वारा पी-एच०डी० की उपाधि प्रदान की गयी। उनका शोध विषय लखनऊ जिले में १९८०-८२ के बीच किये गये फाइटो-नेमाटोड्स (पौधों के लिये हानिकर कीट) के सर्वेक्षण पर आधारित है।

एक वर्ष उन्होंने शिया डिग्री कालेज में अध्यापन कार्य किया और उसके बाद १९७० से वह श्री जय नरायन डिग्री कालेज, लखनऊ, में प्राणि-शास्त्र के लेक्चरर के रूप में कार्यरत हैं।

वह नेमाटोलॉजिकल सोसाइटी ऑफ़ इन्डिया के सदस्य हैं, विश्व विद्यालय अनुदान आयोग की लघु प्रायोजना जो लखनऊ जिले के फाइटो-नेमाटोड्स के पर्यावरणीय अध्ययन से संबंधित है, के प्रभारी हैं और 'हिन्दी व्याख्यान माला' से सम्बद्ध हैं। 'हिन्दी व्याख्यान माला' द्वारा स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तरों के लिये हिन्दी में प्राणि-शास्त्र की वैज्ञानिक शब्दावली तैयार की जा रही है। डा० जैन कीट-विज्ञान विशेषज्ञ हैं और इनका विशिष्ट विषय उन कीटों के अध्ययन से संबंधित हैं जो पौधों पर पराजीवी हैं और कृषि को हानि पहुँचाते हैं।

उनके प्राय: एक दर्जन शोध-पत्र विभिन्न वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये हैं। उनकी दो पुस्तकें भी प्रकाशित हैं। 'प्राणि-शास्त्र' पर उनकी पुस्तक प्रकाशनाधीन है और इस समय वह 'पशु शरीर-क्रिया के सिद्धान्त' पर एक पुस्तक का प्रणयन कर रहे हैं।

डा० जैन ने अपने शोध कार्य के लिये कीट-विज्ञान के प्राय: उपेक्षित विषय को चुना है। यह विषय कृषि के दृष्टिकोण से प्रभूत महत्त्व का है। उनकी आकांक्षा है कि वह प्राणि-शास्त्र पर प्रामाणिक वैज्ञानिक पुस्तकों का प्रणयन हिन्दी भाषा में करें। वह एक उदीयमान युवा वैज्ञानिक हैं जिनमें अपने कार्य के लिये प्रभूत क्षमता है, और वह अपने कार्य तथा अपने विद्यार्थियों के प्रति निष्ठावान हैं। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज उदीयमान विद्वान-मनीषी डा० जैन का अभिनन्दन करती है और प्राणि विज्ञान में सारभूत योगदान हेतु कृत-संकल्पता के लिए उनकी अभिशंसा करती है।

पता : ३९, पटेलनगर, लखनऊ–२२६००५

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. V. K Jain

Dr. Jain was born on August 20, 1945 A. D., at Agra. He had his early schooling at Agra but all his education from the secondary stage onwards was done at Lucknow. He did M. Sc. in Zoology in 1966 and Diploma in Russian in 1968 from the Lucknow University. He was awarded Ph. D. by the Lucknow University in 1984 on his Thesis "Morphological Studies of Some Plant Parasitic Nematodes of Lucknow". It embodies the results of the survey of Lucknow district for phytonematodes during 1980-82.

For a year he taught at the Shia Degree College and since 1970 he is working as Lecturer in Zoology at Sri Jai Narain Degree College, Lucknow.

He is a member of the Nematological Society of India, is In-charge of the minor U. G. C. Project on Taxonomic and Ecological Studies of Phytonematodes of Lucknow district, and is associated with 'Hindi Vyakhyan Mala', an organization engaged in preparing scientific terminology of Zoology in Hindi for degree and post-graduate standards. His field of specialization is Nematology which deals with the study of plant parasitic nematodes (round worms).

He has published a dozen papers in different scientific journals. Two of his published books are :

(1) Studies in Invertebrate Zoology (1968)

(2) Animal Physiology and related Bio-Chemistry (1972).

His book on "Zoology" is under publication, and he is currently working on 'Principles of Animal Physiology'.

Dr. Jain has taken up the rather neglected field of Nematology which is of immense use from the agricultural point of view. He has a desire to enrich the Hindi language with authentic scientific works on Zoology. He is a young scientist of great promise, sincerely devoted to his work and his students. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day felicitates Dr. Jain, the promising scholar and intellectual *par excellence*, and places on record its appreciation for his determination to make substantial contribution to the science of Zoology

Address : 39, Patel Nagar, Lucknow-226005.

——

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० (कु०) इन्दु राय

डा० इन्दु राय का जन्म ८ सितम्बर, १९५२ ई०, को लखनऊ में हुआ था। उनकी समस्त शिक्षा लखनऊ में हुई। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से १९७३ में हिन्दी विषय में एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और स्वर्ण-पदक प्राप्त किया, १९७५ में रूसी भाषा में डिप्लोमा परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण की, और १९८१ में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। पी-एच० डी० के लिये उनकी शोध का विषय "२०वीं शताब्दी के हिन्दी जैन महाकाव्य" था। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के रिसर्च एसोशियेट के रूप में वह लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से सम्बद्ध हैं और इस समय डी०लिट्० के लिए "जैन साहित्य में कृष्ण कथा" पर कार्य कर रही हैं।

वह हिन्दी में जैन साहित्य पर विशेष रूप से अध्ययन कर रही हैं, और विभिन्न शोध-पत्रिकाओं में उनके प्राय: एक दर्जन लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

विश्व-भारती विश्वविद्यालय के डा० राम सिंह तोमर ने उनके द्वारा शोध-प्रबन्ध में प्राप्त निष्कर्षों को सुदृढ़ अध्ययन पर आधारित माना है तथा भाषा और शैली का स्तर ऊँचा बताया है। काश्मीर विश्वविद्यालय के डा० रमेश कुमार शर्मा का भी यह मत है कि दिये हुये विषय पर जो शोध कार्य किया गया है उसमें उनकी साहित्यिक अभिरुचि तथा अंतर्दृष्टि का आभास मिलता है। शोध-प्रबन्ध में इस शताब्दी में हिन्दी में लिखे गये ९ महाकाव्यों का अध्ययन किया गया है। इन महाकाव्यों के लेखक मोतीलाल मार्तन्ड, वीरेन्द्र प्रसाद जैन, धन्य कुमार जैन, अनूप शर्मा, रघुवीर शरण मित्रा, साध्वी मंजुला और अभय कुमार जैन हैं। इनमें से एक काव्य प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के संबंध में है, एक काव्य २३वें तीर्थंकर पार्श्व के संबंध में है, और शेष अंतिम तीर्थंकर महावीर के संबंध में हैं।

युवा लेखिका ने शोध कार्य के लिये विशिष्ट क्षमता प्रदर्शित की है। वह अपने कार्य के प्रति निष्ठावान हैं, और सामग्री जुटाने में तथा विषय के विद्वानों से परामर्श प्राप्त करने में पूर्ण श्रम करती हैं। जिस प्रायोजना पर वह इस समय कार्य कर रही हैं उससे कृष्ण कथा के संबंध में अवश्य ही महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाश में आयेगी। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज उदीयमान विद्वान-मनीषी डा० (कु०) इन्दु राय का अभिनन्दन करती है और उनकी शोध कार्य के प्रति लगन के लिए अभिशंसा करती है।

पता : जैन कुटीर, ३, सदर बाजार, लखनऊ-२२६ ००२

...ch Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. (Miss) Indu Rai

Dr. Indu Rai was born on September 8, 1952 A. D., at Lucknow. All her education was also done at Lucknow. She did M. A. in Hindi in 1973 in first division winning a Gold Medal, Diploma in Russian in 1975 in first division obtaining first position, and Ph. D. in 1981 on the Hindi Jain Epics of the 20th Century, from the Lucknow University. As a Research Associate of the University Grants Commission she is attached to the Hindi Department of the Lucknow University, and she is working on the 'Krishna Lore in Jain Literature' for D. Litt.

She is devoting herself to the study of Jain literature in Hindi and has contributed about a dozen papers to different research journals.

Dr. Ram Singh Tomar of the Vishva-Bharati University, found the conclusions drawn by her as based on deep study, and the standard of diction and style to be high. Dr. Ramesh Kumar Sharma of the Kashmir University was also impressed by her literary taste and insight into the subject of her research. The work is a study of nine poetic works of this century, written in Hindi, by Motilal Martand, Virendra Prasad Jain, Dhanya Kumar Jain, Anoop Sharma, Raghuveer Sharan Mitra, Sadhvi Manjula and Abhay Kumar Jain. Of them, one is about Rishabha the first Tirthankara, one is about Parshva the 23rd Tirthankara, and the remaining ones are about Mahavira the last Tirthankara.

The young scholar is showing promise. She is sincere and devoted to her work and takes all pains to get material as well as scholarly advice. Her current project should surely throw valuable light on the Krishn lore. Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day felicitates Dr. (Miss) Indu Rai, the promising scholar and intellectual *par excellence*, and places on record its appreciation for her devotion to research work.

Address : Jain Kutir, 3, Sadar Bazar, Lucknow-226 002

——

...ritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

श्रीमती सुधा जिन्दल

श्रीमती सुधा जिन्दल का जन्म १८ दिसम्बर, १९५२ ई०, को मुरादाबाद जिले के अमरोहा नगर में हुआ था। स्नातकोत्तर स्तर तक उनकी शिक्षा अमरोहा में ही हुयी। उन्होंने १९७२ में आगरा विश्वविद्यालय के अंतर्गत जगदीश सरन हिन्दु डिग्री कालेज, अमरोहा, से राजनीति-शास्त्र में एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में द्वितीय स्थान पर उत्तीर्ण की थी। १९७३ में श्री आलोक जिन्दल के साथ विवाह के पश्चात वह गृहिणी बन गयीं, तथापि उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा और १९७६ में आगरा विश्वविद्यालय के अंतर्गत के० जी० के० कालेज, मुरादाबाद, से एल-एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय में राजनीति-शास्त्र विभाग में पी-एच० डी० के लिये छठी संसद के क्रियाकलापों पर शोध प्रायोजना पर भी कार्य प्रारम्भ किया।

वह संगीत में निपुण हैं और नाटक में उनकी विशेष अभिरुचि है। निम्नलिखित नाटकों की पटकथा उन्होंने स्वयं लिखी, उनमें स्वर दिया और उनका निर्देशन किया :

१–पथ भूले पथिक (दहेज की सामाजिक कुप्रथा पर)
२–मुक्ति-पथ के पथिक (बाहुबलि की जीवनी पर आधारित)
३–भगवान महावीर का धर्म-चक्र-प्रवर्तन।

ये सभी नाटक रवीन्द्रालय में मंचित किये गये थे। उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'पंचवटी' का भी मंचन हेतु सम्पादन किया है और दूरदर्शन लखनऊ पर उसका निर्देशन किया है। तीर्थंकर महावीर के जीवन और संदेश पर दूरदर्शन से अमृत-विचार के अन्तर्गत प्रसारणार्थ वृत-चित्र की पट कथा भी उन्होंने लिखी है। आकाशवाणी और दूरदर्शन पर विचार-चर्चा में भी वह भाग लेती हैं तथा लखनऊ की सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में भी सक्रिय हैं।

एक गृहिणी होते हुये जो अपने दो बच्चों का स्नेह पूर्वक लालन-पालन करती हैं और एक कर्त्तव्यनिष्ठ बहू तथा निष्ठावान पत्नी के रूप में अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करती हैं, श्रीमती जिन्दल रचनात्मक कार्य के लिये भी समय निकाल लेती हैं और अपने घर में एक सुसंस्कृत परिवेश बनाये हुये हैं। वह अपने साहस और लगन के लिये बधाई की पात्र हैं और लखनऊ के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक जीवन के लिये वह एक उपलब्धि हैं। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज उदीयमान विद्वान-मनीषी श्रीमती सुधा जिन्दल का अभिनन्दन करती है और उनके कला-प्रेम तथा सृजन के प्रति उत्साह के लिए उनकी अभिशंसा करती है।

पता : अजिताश्रम, गनेश गंज, लखनऊ–२२६ ०१८

...Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Mrs. Sudha Jindal

Mrs. Sudha Jindal was born on Dec. 18, 1952 A.D, at Amroha in the Moradabad district. Her education upto the post-graduation stage was done at Amroha. She did M.A. in Political Science from the Jagdish Saran Hindu Degree College, Amroha, under the Agra University, in 1972, in first division with second position. After her marriage to Mr. Alok Jindal in 1973 she turned to home-keeping, but continued to study and did LL. B. in 1976 from the K.G.K. College, Moradabad, under the Agra University. She also took up the research project on 'The working of the Sixth Parliament' in the Department of Political Science at the Lucknow University for Ph.D.

She is quite at home with Music, and has a special interest in drama. She herself did the script for, gave music in, and directed, the following plays :

(1) पथ भूले पथिक (on the social evil of dowry)
(2) मुक्ति-पथ के पथिक (on the life of Bahubali)
(3) भगवान महावीर का धर्म-चक्र-प्रवर्तन (on the first sermon of Tirthankara Mahavira)

which were staged in the Ravindralaya. She also edited the 'Panchavati' of Maithili Saran Gupta for stage-play and directed it for the Doordarshan, Lucknow. She has also done the script for the Amrit-Vichar feature on the life and message of Tirthankara Mahavira in Hindi for Doordarshan. Lucknow. She also takes part in discussions on the AIR and TV, and is otherwise active in the social and cultural life of Lucknow.

Being a housewife, bestowing loving care on her two little children and doing all that a dutiful dauther-in-law and a sincere wife ought to do, Mrs. Jindal still finds time to do creative work and presents a cultural environment in her home. She deserves congratulations for her courage and perseverence, and should be an asset to the cultural and literary life of Lucknow. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day felicitates Mrs. Sudha Jindal the promising scholar and intellectual *par excellence*, and places on record its appreciation for her love of art and zeal for creativity.

Address : Ajitashram, Ganeshganj, Lucknow–226 018

...and IRS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० (कु०) सुधा जैन

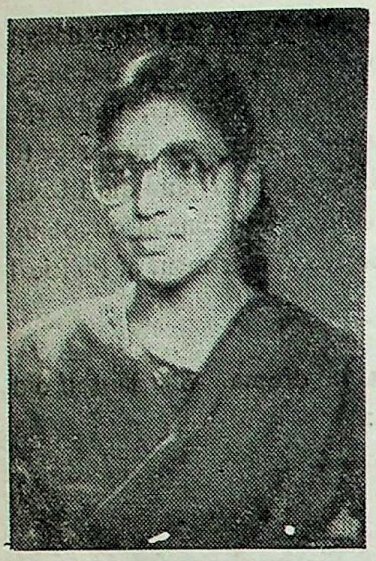

डा० सुधा जैन का जन्म २ सितम्बर, १९५४ ई०, को लखनऊ में हुआ था और उनकी समस्त शिक्षा भी लखनऊ में ही हुयी। हाई स्कूल परीक्षा से ही उनकी प्रतिभा मुखर होगई, और एम० एस-सी० तक की सभी परीक्षायें उन्होंने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा राष्ट्रीय छात्रवृत्ति प्राप्त की। १९७४ में रसायन-शास्त्र में बी० एस-सी० (ऑनर्स) और एम० एस-सी० के लिये उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। इसके पूर्व वह महिला विद्यालय की छात्रा थीं। उन्होंने जर्मन भाषा में प्रोफ़िशियेन्सी परीक्षा भी उत्तीर्ण की। १९८० में उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई।

१९७६ से ही वह केन्द्रीय औषधि शोध संस्थान में कार्यरत हैं। दिसम्बर १९८४ में उन्हें औषधिक रसायन-शास्त्र पर शोध कार्य के लिये वैज्ञानिकों के केन्द्रीय समूह में ले लिया गया। उनके अनुसंधान का विशिष्ट विषय प्राकृतिक उत्पादनों का रसायन-शास्त्र और जीव-विज्ञान शास्त्र है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं में उनके प्राय: ३० शोध-पत्र प्रकाशित हुये हैं।

वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये उन्होंने एक ऐसा क्षेत्र चुना है जिसमें भारत में अभी बहुत कम कार्य हुआ है। विकसित देशों में यह विज्ञान चिकित्सा-विज्ञान का आवश्यक अंग बन चुका है। यह प्रसन्नता का विषय है कि वैज्ञानिक अनुसंधान के इस क्षेत्र में डा० सुधा जैन निष्ठापूर्वक लगी हुयी हैं। १९८५ में इन्डियन नेशनल साइन्स एकेडेमी द्वारा इनको एक युवा वैज्ञानिक के रूप में भी सम्मानित किया गया है। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज उदीयमान विद्वान-मनीषी डा० (कु०) सुधा जैन का अभिनन्दन करती है और वैज्ञानिक शोध कार्य में निष्ठापूर्वक लगे रहने के लिए उनकी अभिशंसा करती है।

पता : धन कुन्ज, राजा बाज़ार, लखनऊ–२२६ ००३

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dr. (Miss) Sudha Jain

Dr. Sudha Jain was born on September 2, 1954 A.D., at Lucknow, and had all her education here. She showed promise from High School itself, passing all the examinations upto M.Sc. in first division, and holding National Scholarship. She was a student of Mahila Vidyalaya before she entered the Lucknow University in 1974 to do B.Sc. (Hons.) and M.Sc. in Chemistry. She also passed Proficiency Examination in German Language. She was awarded Ph. D. in 1980.

She has been working in the Central Drug Research Institute since 1975 as Junior Research Fellow, Senior Research Fellow, Post-Doctoral Fellow and Research Associate. In December 1984 she was taken on the Scientists Pool for research on Medicinal Chemistry. Her field of specialisation covers Chemistry of Natural Products, Bio-Synthesis of Natural Products, Radio-Chemical Synthesis, and Synthesis of compounds of Biological and Bio-Synthetic interest. She has published about 30 papers in reputed scientific journals of national and international importance.

She has taken up a new field of scientific inquiry in which very little work has been done in India so far. In advanced countries this scientific investigation has become a necessary adjunct to clinical science. It is heartening that Dr. Sudha Jain is sincerely devoting herself to research work in this field. She has been given recognition by the Indian National Science Academy as a Young Scientist in 1985. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti this day felicitates Dr. (Miss) Sudha Jain, the promising scholar and intellectual *par excellence*, and places on record its appreciation for her sincere devotion to scientific investigation.

Addrss : Dhan Kunj, Raja Bazar, Lucknow–226 003

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

...ding. Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० (श्रीमती) बीना जैन

डा० बीना जैन का जन्म २५ दिसम्बर, १९५६ ई०, को मिर्जापुर जिले में अवस्थित चुर्क में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा चुर्क और ओबरा में हुयी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने बी० ए० किया और प्राचीन भारतीय इतिहास में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद द्वारा उन्हें रिसर्च फ़ैलोशिप प्रदान की गयी और उत्तर भारत में निगम संगठन पर शोध-प्रबन्ध पर १९८४ में उन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी। उनका शोध-प्रबन्ध भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद द्वारा प्रकाशनार्थ भी अनुमोदित कर दिया गया है।

शोध-कर्ता के रूप में तथा प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास के गंभीर अध्येता के रूप में उन्होंने अपनी क्षमता प्रदर्शित की है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डा० यू० एन० राय ने उनके शोध-प्रबन्ध को विगत वर्षों में अन्य विश्वविद्यालयों से परीक्षण हेतु प्राप्त प्रबंधों में सर्वोत्तम निर्णीत किया है। सागर विश्वविद्यालय के डा० बैजनाथ शर्मा ने भी इस प्रबन्ध को वास्तविक योगदान माना है जिसमें सामग्री का चयन विवेकपूर्वक किया गया है।

प्रकाशित होने पर यह शोध-प्रबन्ध प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास पर उपलब्ध साहित्य में एक उपयोगी योगदान होगा। मुस्लिम-पूर्व युग में उत्तर भारत में आर्थिक निगमों के सम्बन्ध में यह पहला सम्पूर्ण प्रबन्ध है। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति आज उदीयमान विद्वान-मनीषी डा० (श्रीमती) बीना जैन का अभिनन्दन करती है और शोध-कार्य के प्रति आग्रह के लिए उनकी अभिशंसा करती है।

पता : द्वारा डा० कमल कुमार जैन, वैज्ञानिक अधिकारी, राष्ट्रीय सांस्कृतिक सम्पदा संरक्षण प्रयोगशाला, अलीगंज स्कीम, लखनऊ–२२६ ०२०

Dr. (Mrs.) Beena Jain

Dr. Beena Jain was born on Dec. 25, 1956 A.D., at Churk in the Mirzapur district. She had her early education at Churk and Obra. She did her B.A., and then M.A. in Ancient Indian History, from the Allahabad University. She was granted Research Fellowship by the Indian Council of Historical Research, and has been awarded Ph.D. on her thesis "Guild Organisation in Northern India (from earliest times to 1200 A.D.)", in 1984, by the Lucknow University. Her dissertation has also been approved for publication by the Indian Council of Historical Research recently.

She has shown promise as a research worker and serious student of economic history of Ancient India. Dr. U. N. Rai of the Allahabad University adjudged her thesis as the best of all the dissertations which were sent to him by other universities for examination during recent years. Dr. Baijnath Sharma of the Sagar University also held it as a genuine contribution characterised by judicious selection of material.

The thesis when published will be useful addition to the literature on the economic history of Ancient India. It is the first comprehensive work on economic guilds in Northern India in the pre-Muslim period. The Ananta-Jyoti Vidyapitha Pravara Samiti felicitates Dr. (Mrs.) Beena Jain, the promising scholar and intellectual *par excellence*, and places on record its appreciation for her devotion to research work.

Address : C/o Dr. K. K. Jain, Scientific Officer, National Laboratory for Conservation of Cultural Properties, Aliganj Scheme, Lucknow–226 020

...Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चयनिका
Anthology of Poems

भावना गान 174

सरस्वती–वन्दना 174

राष्ट्र–वन्दना 175

Ode to Bharat 176

आदमी से प्यार कर लो 177

दुःख भी मानव की सम्पत्ति है 177

जीवन–चक्र 178

सपनों का राही 179

शाश्वत राग 179

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Eight poems have been collected here. 'Bhavana Gana', or 'Resolve Song', has been adapted from the 'Meri Bhavana' of the late Jugal Kishore Mukhtar 'Yugvir.' It expresses the resolve to mould our conduct in accordance with the eternal moral values. In view of the specifically secular and moral exposition in it, this song has been adopted as the daily 'Prayer Song' in the **Kant Bal Kendra** run by the **Ananta-Jyoti Vidyapitha.**

'Sarasvati-Vandana', or 'Ode to Sarasvati', is a composition by the late Suryakant Tripathi 'Nirala'. Sarasvati symbolically represents knowledge and art, and in the Indian tradition she is recognised as the guardian deity of learning. In this composition of 'Nirala' the traditional symbolism has been graphically portrayed, and this poem has a special significance in Hindi literature from that point of view.

'Rashtra-Vandana', or 'Ode to Bharat', is the national anthem which was sung at the proclamation of the Provisional Government of Azad Hind on Oct. 21, 1943, at Ipoh. Although its tune is similar to that of the Jana-Gana-Mana, its terminology and sentiments are different; in it the sentiments of victory and glory to Free India are specific and prominent. Its English rendering is also given which was first published by Dr. Shashi Kant in the 'Caravan' in January 1958.

'Admi Se Pyar Kar Lo', or 'Love the fellow beings', is a composition of the late Jagdish Prasad Saxena 'Pankaj'. It is full of humanism and exhorts us towards universal love, equality among men and for doing good to fellow beings.

'Dukh bhi manav ki sampatti hai', or 'Adversity is also the property of man', is a popular composition of the late Phul Chand Jain 'Pushpendu', a famous poet of Lucknow. What can make a man maintain his equilibrium and equanimity in moments of adversity, has been very touchingly depicted in this poem.

The last three pieces are by Dr. Shashi Kant. In 'Jivan-Chakra, or 'The Cycle of Life', seven stages in human life, *i. e.*, conception, gestation, birth, childhood, youth, old age and death,and recession into oblivion, have been depicted with the help of sympolism from the nature. 'Sampnon ka Rahi', or 'Walker on the dreamy road', is a romantic expression of the feeling that we should live in the present, or, in other words, accept the realities of the existing world. 'Sasvata Raga', or 'Song Eternal', is also an expression of romanticism that man should remember good things, should do good, and should be happy himself and transmit happiness to others.

In this anthology the above poems have been presented in a way that the underlying continuity of theme may manifest.

Muktabodh Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

इस चयनिका में आठ कविताओं का संकलन किया गया है। "भावना गान" स्व० जुगल किशोर मुख्तार "युगवीर" की "मेरी भावना" से अनुकूलित है। इसमें शाश्वत नैतिक मूल्यों को अपने आचरण में उतारने की भावना व्यक्त की गयी है। इस गान की विशिष्ट धर्म-निरपेक्ष एवं नैतिक उद्भावना को दृष्टि में रखते हुए इसे **अनन्त-ज्योति विद्यापीठ** द्वारा संचालित **कान्त बाल केन्द्र** में नित्य-पाठ के रूप में अंगीकार किया गया है।

"सरस्वती–वन्दना" स्व० सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" की कृति है। सरस्वती भारतीय परम्परा में विद्या और कला की अधिष्ठात्री देवी के रूप में एक प्रतीक का अस्तित्व रखती है। निराला जी की इस कृति में उक्त पारम्परिक प्रतीक-व्यवस्था का सचित्र चित्रण किया गया है और इस दृष्टि से यह कविता हिन्दी साहित्य में विशिष्ट महत्त्व रखती है।

"राष्ट्र-वन्दना" के अंतर्गत २१ अक्तूबर, १९४३, को इपोह में आज़ाद हिन्द की अस्थायी सरकार की उद्घोषणा के समय राष्ट्र-गान के रूप में गाया हुआ गीत दिया गया है। यद्यपि इस गीत की धुन 'जन-गण-मन' की धुन के समान है, इसकी शब्दावली एवं भाव भिन्न हैं और इसमें स्वतन्त्र भारत की जय तथा गौरव की भावना विशिष्ट एवं प्रधान है। इस गान का अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है, जो प्रथमत: डा० शशि कान्त द्वारा "कारवाँ" में जनवरी १९५८ में प्रकाशित किया गया था।

"आदमी से प्यार कर लो" स्व० जगदीश प्रसाद सक्सेना "पंकज" की रचना है। यह मानववाद की भावना से ओत-प्रोत है और मनुष्य को सार्वजनिक प्रेम, समता भाव तथा उपकार के लिए सम्बोधती है।

"दु:ख भी मानव की सम्पत्ति है" लखनऊ के सुप्रसिद्ध कवि स्व० फूलचन्द जैन "पुष्पेन्दु" की सुविख्यात कविता है। इसमें दु:ख के क्षणों में किस आधार से मनुष्य अपना समत्व एवं धैर्य बनाये रखे, इसकी हृदयस्पर्शी विवेचना की गयी है।

अंतिम तीन रचनाएँ– "जीवन-चक्र", "सपनों का राही" और "शाश्वत राग" –डा० शशि कान्त की कृति हैं। "जीवन-चक्र" में प्रणय-प्रेरित गर्भस्थापन, गर्भावस्था, जन्म, शैशव, यौवन, वृद्धावस्था एवं मृत्यु, तथा स्मृति-शेष, –मानव जीवन की इन सात अवस्थाओं का प्रकृति की प्रतीक-व्यवस्था के आधार से निरुपण किया गया है। "सपनों का राही" में एक भावात्मक उद्भावना है, जो आज ही में जीने का, अर्थात् अस्तित्व की वास्तविकता को ग्रहण करने का, भाव पुष्ट करती है। "शाश्वत राग" में भी एक भावात्मक उद्भावना है, जो मनुष्य को अच्छी बातों को याद रखने, अच्छे कार्य करने और स्वयं प्रसन्न रहते हुए दूसरों को प्रसन्नता प्रदान करने का भाव व्यक्त करती है।

इस "चयनिका" में उपरोक्त कविताएँ एक व्यवस्था से प्रस्तुत हैं जो इनके अन्तर्निहित भाव को एक क्रमबद्धता प्रदान करती है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

भावना गान

रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ ।।
रहे भावना ऐसी मेरी,
सरल सत्य व्यवहार करूँ।

अहंकार का भाव न रक्खू, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूँ ।।
रहे भावना ऐसी मेरी,
सरल सत्य व्यवहार करूँ।

नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूँ।
बनकर युगवीर हृदय से, देशोन्नति रत रहा करूँ ।।
रहे भावना ऐसी मेरी,
सरल सत्य व्यवहार करूँ।

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन दुखी जीवों पर मेरे, उर से करूणा स्रोत बहे ।।
रहे भावना ऐसी मेरी,
सरल सत्य व्यवहार करूँ।

चाहे कोई कैसा भी भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे ।।
रहे भावना ऐसी मेरी,
सरल सत्य व्यवहार करूँ।

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबड़ावे।
बैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे ।।
रहे भावना ऐसी मेरी,
सरल सत्य व्यवहार करूँ।

(स्व० जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर' की 'मेरी भावना' से अनुकूलित,
कान्त बाल केन्द्र का नित्य पाठ)

सरस्वती-वन्दना

प्रिय स्वतन्त्र-रव अमृत-मन्त्र नव भारत में भर दे !
काट अन्ध उर के बन्धन-स्तर,
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर, जगमग जग कर दे !
नव गीत, नवलय, ताल-छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द रव,
नव नभ के विहग-वृन्द को, नव पर, नव स्वर दे !

—स्व० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

राष्ट्र-वन्दना

शुभ सुख चैन की बरखा बरसे, भारत भाग है जागा
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल बंगा,
चंचल सागर विन्ध्य हिमालय नीला जमुना गंगा,
तेरे नित गुन गाये,
तुझसे जीवन पाये,
सब तन पाये आशा ।
सूरज बनकर जग पर चमके भारत नाम सुभागा,
जय हो, जय हो, जय हो,
जय, जय, जय, जय हो !
सबके दिल में प्रीत बसाये तेरी मीठी बानी
हर सूबे के रहने वाले हर मजहब के प्रानी,
सब भेद - ओ - फ़रक मिटा के
सब गोद में तेरी आके
गूँधे प्रेम की माला ।
सूरज बनकर जग पर चमके भारत नाम सुभागा
जय हो, जय हो, जय हो,
जय, जय, जय, जय हो !
सुबह सबेरे पंख पखेरू तेरे ही गुन गायें
बास भरी भरपूर हवायें जीवन में रुत लायें
सब मिलकर हिन्द पुकारे
जय आज़ाद हिन्द के नारे
प्यारा देश हमारा ।
सूरज बनकर जग में चमके भारत नाम सुभागा
जय हो, जय हो, जय हो,
जय, जय, जय, जय हो,
भारत नाम सुभागा !

(आज़ाद हिन्द की उद्घोषणा के समय अंगीकृत राष्ट्र-गान)

——

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Indira Gandhi National Centre for the Arts, New Delhi and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Ode to Bharat

May peace and prosperity rain,
the star of Bharat is ascending;
Punjab, Sindh, Gujarat, Mahrashtra,
the Dravida Desh, Orissa and Bengal,
The restless seas, the Vindhyas and Himalayas,
the blue Jamuna and Ganges,
Always sing thy praise,
And get life from thee,
Let all have hope,
That the good name of Bharat may shine
in the world like the very Sun,
Victory be thine, Victory be thine, Victory be thine,
Victory, Victory, Victory to thee !

May the sweet voice bring love in the hearts of all,
The residents of all States and the followers of all religions,
Dissolving all their differences
And coming into thy lap,
May weave the garland of love,
That the good name of Bharat may shine
in the world like the very Sun,
Victory be thine, Victory be thine, Victory be thine,
Victory, Victory, Victory to thee !

May the birds sing thy praise in the early morning,
And the fragrant breeze bring zest in life,
All united, India shouts
The slogans of 'Victory to Free India !'
Our beloved country,
That the good name of Bharat may shine
in the world like the very Sun,
Victory be thine, Victory be thine, Victory be thine,
Victory, Victory, Victory to thee,
The good name of Bharat !

(English rendering by Dr. Shashi Kant)

——

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आदमी से प्यार कर लो

आदमी से प्यार कर लो !
तुम अगर इन्सान हो तो आदमी से प्यार कर लो !!
धूप में भी चाँदनी की तुम अगर मुस्कान चाहो,
पतझडों में भी अगर तुम कोकिलों के गान चाहो,
तो किसी की झोपड़ी में फूल पग-पग पर बिछा कर
कण्टकों से मीत अपनी सेज का श्रृंगार कर लो।
आदमी से प्यार कर लो !
बोल मीठे बोल कर सारा जगत अपना बना लो,
पद-दलित इन्सान को भी तुम उठा उर से लगा लो,
देवता भी कर उठें पूजा तुम्हारे सद्गुणों की
तुम धरा की धूलि से भी प्यार का व्यवहार कर लो।
आदमी से प्यार कर लो !
पंचतत्त्वों का खिलौना कब न जाने टूट जाये,
जीव का सम्बन्ध तन से कब न जाने छूट जाये,
इसलिए तूफान - आंधी से सदा संघर्ष करके
दीप माटी के जलो, जल-जल सदा उपकार कर लो।
आदमी से प्यार कर लो !

—स्व० जगदीश प्रसाद सक्सेना 'पंकज'

दुःख भी मानव की सम्पत्ति है

दुःख भी मानव की सम्पत्ति है, तू दुःख से क्यों घबड़ाता है ?
सुख आया है तो जायेगा, दुःख आया है तो जायेगा।
सुख जायेगा तो दुःख देकर, दुःख जायेगा तो सुख देकर।
सुख देकर जाने वाले से, रे मानव क्यों भय खाता है ?
दुःख भी मानव की सम्पत्ति है, तू दुःख से क्यों घबड़ाता है ?
सुख में हैं व्यसन प्रमाद भरे, दुःख में पुरुषार्थ चमकता है।
दुःख की ज्वाला में पड़कर ही, कुन्दन सा तेज दमकता है।
दुःख का अभ्यासी मानव ही, सुख पर अधिकार जमाता है।
दुःख भी मानव की सम्पत्ति है, तू दुःख से क्यों घबड़ाता है ?
सुख संध्या का लाल क्षितिज, जिसके पश्चात अँधेरा है।
दुःख प्रातः का झुटपुटा समय, जिसके पश्चात सवेरा है।
सुख में सब भूले रहते हैं, दुःख सबकी याद दिलाता है।
दुःख भी मानव की सम्पत्ति है, तू दुःख से क्यों घबड़ाता है !

—स्व० फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु'

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जीवन-चक्र

आँधी आयी—
यौवन वेला– रात अँधेरी - सपनों की दुनिया
मदिर मधु गुंजन
दो निश्वास निलय
किसलय कम्पित
भावों की झंझा
अन्धड़ पतझड़ तड़पन कम्पन
कलान्त प्रकृति शमित शान्त!

बादल छाये— घना कुहासा-सा
मेघों से घिरा अँधेरा-सा
स्वप्निल जग
आन्दोलित मन
पयपूरित बोझिल तन
एक प्रतीक्षा
शत–शत उद्‌गार
सहस्र उत्कंठा !

मेह बरसा— बादल घुमड़ उठे
बिजली कड़क उठी
मीठी-मीठी फुहार
ठंडी–ठंडी बयार
एकदम अंधकार
फिर चीत्कार
और मूसल वर्षाधार
लो मेघ से मेघपुरुष
चन्द्रोज्वल
सूर्यधवल !

फूल खिला— ममता की गोद
वात्सल्य की ओट
स्नेह से सींचा
आशीष से भीगा
फलता फूलता कामना कुँज में
उत्फुल्ल आशापुंज !

ताप तपा— ग्रीष्म में सूर्य की रश्मि
—उग्र ताप—
गोद छीन लेती
ओट तोड़ देती
स्नेह सुखा देती
आशीष जला देती
एकाकी फूल
चुनौती देती
उछलता कूदता दौड़ता भागता
रुकता नहीं
जर्जर होता
पँखुड़ी-पँखुड़ी झुलस-झुलस जाती
पर वह खड़ा मुस्काता
उन्नत मस्तक !

फूल झड़ा— पँखुड़ी गिरने लगीं
पराग उड़ने लगा
देह क्लान्त
मन श्रान्त
कृतकार्यता का मोद
चिरशान्ति की गोद,
फूल यों झड़ने लगा !

धूल उड़ी— नीचे धूल का पिण्ड
समा लेता फूल को झड़ते ही
फूल की धूल
धूल में फूल
हवायें चलतीं
धूल उड़ती
आँधी आती
फूल की धूल भी न रहती !

—डा० शशि कान्त

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सपनों का राही

मैं सपनों का राही हूँ, मुझे अभी मत छेड़ो।
बहुत देर से सोया हूँ, अभी कहीं खोया हूँ।
अवचेतन के उपवन में, चेतन को रहने दो ।।१।।
मैं सपनों का राही हूँ, मुझे अभी मत छेड़ो।
क्षितिज पटल असीम आकाश, दृष्टि लोक झीना प्रकाश।
कल्पना की तूलिका से, स्मृति को संजोने दो ।।२।।
मैं सपनों का राही हूँ, मुझे अभी मत छेड़ो।
उत्ताल तरंगें कम्पित वातायन, झिलमिल-झिलमिल रुपायन।
छाया की दृश्यावली में, मौन मुग्ध होने दो ।।३।।
मैं सपनों का राही हूँ, मुझे अभी मत छेड़ो।
सागर तल की गम्भीरता, निविड़ तम की अन्तहीनता।
मन्द मृदु मधुर सुरों के स्पन्दन में खोने दो ।।४।।
मैं सपनों का राही हूँ, मुझे अभी मत छेड़ो।
आगे कल कब आयेगा, पीछे कल कब जायेगा।
कल का विवाद छोड़, आज ही में जीने दो ।।५।।
मैं सपनों का राही हूँ, मुझे अभी मत छेड़ो।
याद मुझे जब जिसकी आये, छाया बन सपनों में छाये।
दीप शिखा की मद्धिम लौ में, छवि साकार बनी रहने दो ।।६।।
मैं सपनों का राही हूँ, मुझे अभी मत छेड़ो।

—डा० शशि कान्त

शाश्वत राग

स्मृति को झंकृत कर दे, ऐसा राग सुनाता जा ।।
अक्षि - पटल में सोयी, छवि को दुलराता जा।
सम्मोहन की झीनी चादर, हौले से ढुलकाता जा ।।१।।
स्मृति को झंकृत कर दे, ऐसा राग सुनाता जा ।।
मन्द गन्ध की भीनी सुवास, दिसि–दिसि फहराता जा।
राही के पथ की कुंठा, ढलकाता–बिखराता जा ।।२।।
स्मृति को झंकृत कर दे, ऐसा राग सुनाता जा ।।
चन्द्र–वदन है सुधा-सदन, अमृत-कण टपकाता जा।
अवसाद ठहर नहीं पाये, मन्द-मन्द मुस्काता जा ।।३।।
स्मृति को झंकृत कर दे, ऐसा राग सुनाता जा ।।

डा० शशि कान्त

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

स्वागत-सम्बोधन Welcome Address

यह अत्यंत प्रसन्नता की बात है कि आज हम **अनन्त-ज्योति विद्यापीठ** के तत्त्वावधान में **तृतीय विद्वान-मनीषी अभिनन्दन समारोह** का आयोजन इस सभागार में कर सके है। सर्वप्रथम, मुझे अपने सम्माननीय और आदरणीय विद्वान-मनीषियों से क्षमा-याचना करनी है कि यह कार्यक्रम जो ४ जुलाई, १९८६ के लिये अभिप्रेत था, आज इतने विलम्ब से सम्पन्न किया जा रहा है। इसमें दु:ख की बात यह भी है कि इस बीच दो वयोवृद्ध मनीषी दिवंगत हो गये और हम उनका सत्कार करने से वंचित रह गये।

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ जिसके तत्त्वाधान में यह कार्यक्रम आयोजित किया जा रहा है, के उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों के सम्बन्ध में आपको जानकारी **अनन्त-ज्योति विद्यापीठ अभिनन्दन पत्रिका** से मिल जायेगी। विशिष्ट विद्वानों के अभिनन्दन का कार्यक्रम १२ फरवरी, १९७९, को प्रारम्भ किया गया था और द्वितीय समारोह १२ फरवरी, १९८२, को बाल-रवीन्द्रालय में सम्पन्न किया गया था। उस श्रृंखला में यह तृतीय अभिनन्दन समारोह आज आयोजित किया जा रहा है।

आज के समारोह की विशिष्टता यह है कि इसमें इतिहास-मनीषी सम्भान के योग्य इतिहास के शीर्षस्थ विद्वानों का अभिनन्दन करने के साथ-साथ अन्य विषयों के प्रकाण्ड पण्डितों एवं बौद्धिक क्रिया-कलापों के उत्कट प्रेरकों के सत्कार एव अभिनन्दन के साथ ही उदीयमान प्रतिभाओं की अभिशसा भी की जा रही है, और भारतीय संस्कृति के विद्वान तथा भारत के प्रेमी विदेशी विद्वानों का भी अभिनन्दन किया जा रहा है।

इस समारोह में डा० श्याम लाल पाण्डेय, डा० ए० एल० बाशम, डा० जनार्दन दत्त शुक्ला, डा० बैंज नाथ पुरी और डा० नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी का 'इतिहास-मनीषी' सम्मान से सत्कार, तथा पं० राम रतन, श्री मानिक लाल घोष, श्री आनन्द स्वरुप मिश्रा, श्री राम गोपाल, श्री रामेश्वर प्रसाद दुबे, श्री वीर नन्दन जिन्दल, डा० भगीरथ मिश्र, श्री महेश्वर पाण्डेय, डा० हरबर्ट गुन्थर, डा० नन्द किशोर देवराज, श्री लक्ष्मी कान्त श्रीवास्तव, श्री अजित प्रसाद जैन, श्री ज्ञान चन्द जैन, श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा, डा० अमर पाल सिंह, डा० गिरजा शंकर मिश्रा, डा० हर्ष नारायण, डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल, श्री राम निहोर चतुर्वेदी, श्री कैलाश नाथ गोयल, डा० नासिर अली खान, डा० सुधांशु कुमार जैन, श्री विश्वम्भर नाथ, श्री नरेश चन्द्र जैन, श्री काशीनाथ गोपाल गोरे, डा० रमेश चन्द्र शर्मा, डा० (श्रीमती) प्रभा गुप्ता, डा० (कु०) उषा माथुर, डा० विनय कुमार जैन, डा० (कु०) इन्दु राय, श्रीमती सुधा जिन्दल, डा० (कु०) सुधा जैन, और डा० (श्रीमती) बीना जैन, का अपने क्षेत्र में विशिष्ट उपलब्धियों के लिये अभिनन्दन करना अभिप्रेत है।

इन सभी विद्वान मनीषियों के प्रति हम बौद्धिक क्षेत्र में उनकी उपलब्धियों के लिये विनयावनत हैं, और ये सभी हमारे आदर एवं श्रद्धा के पात्र हैं। लखनऊ नगर के प्रबुद्ध समुदाय के लिये यह एक गौरव की बात है कि हम इन आदरणीय महानुभावों का सत्कार व अभिनन्दन करने का सुअवसर प्राप्त कर सके हैं।

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ प्रवर समिति की ओर से, तथा अपनी ओर से, तथा इस नगर के प्रबुद्ध समुदाय की ओर से, सम्माननीय एवं आदरणीय विद्वान मनीषियों का मैं आज के समारोह में हार्दिक स्वागत करता हूँ और आप महानुभावों का भी जो अपनी उपस्थिति एवं सहयोग से इस आयोजन की शोभा बढ़ा रहे हैं तथा हमें इस प्रकार के रचनात्मक कार्य के लिये प्रोत्साहन व प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं, हृदय से स्वागत करता हूँ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आज के आयोजन के चार सूत्र हैं । सर्वप्रथम, विद्यापीठ द्वारा संचालित मान्टेसरी-प्राइमरी स्कूल **कान्त बाल केन्द्र** के शिशु व उनकी अध्यापिकाएँ एवं उनकी सहयोगी अभ्यागत कलाकार स्वर-वेला प्रस्तुत करेंगी। तत्पश्चात सम्मानीय मुख्य अतिथि महोदय के कर-कमलों से **कान्त बाल केन्द्र** के शिशुओं को पारितोषिक वितरित किया जायेगा। इसके बाद Political And Cultural History of Mid-North India का तथा **अनन्त-ज्योति विद्यापीठ अभिनन्दन पत्रिका** का विमोचन किया जायेगा। तदनन्तर समागत विद्वान मनीषियों का सत्कार एवं अभिनन्दन किया जायेगा।

इसके पूर्व कि हम अपना कार्यक्रम प्रारम्भ करें, **अनन्त-ज्योति विद्यापीठ** की प्रेरणा-स्रोत श्रीमती अनन्त माला जैन, जिनकी प्रथम पुण्य-तिथि विगत ५ अप्रैल को थी, के प्रति श्रद्धा का दीप प्रज्वलित करने का अनुरोध मैं मुख्य अतिथि महोदय से करूँगा। साथ ही, उन सब विद्वान मनीषियों की स्मृति में भी श्रद्धा के दीप प्रज्वलित किये जाएगें जिनका सम्मान करना हमें अभिप्रेत था परन्तु नियति की प्रतिकूलता के कारण हम ऐसा नहीं कर सके— डा० श्याम लाल पाण्डेय, डा० ए० एल० बाशम, डा० जनार्दन दत्त शुक्ला, और पं० राम रतन; और उन सब विद्वान-मनीषियों के प्रति भी जिनका सम्मान करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था परन्तु उनके आशीर्वाद से अब हम वंचित हैं– डा० राम कुमार दीक्षित और प्रो० चरन दास चटर्जी; तथा उन सब मनीषी महानुभावों के प्रति भी जिन्होंने विद्यापीठ के कार्यक्रमों में अपना सहयोग हमें समय-समय पर प्रदान किया पर वे अब हमारे बीच नहीं है– डा० राम नारायण मिश्र, श्री जगदीश प्रसाद मिश्रा, श्री गोरा सेन, श्रीमती शशि जैन, श्री रामाधीन सक्सेना, श्री श्याम मोहन श्रीवास्तव, श्री श्रीराम श्रीवास्तव, श्री दुलारे लाल भार्गव, श्री जगदीश प्रसाद सक्सेना "पंकज", श्री बलबीर सिंह "रंग" और डा० केशरी किशोर।

विमोच्य-पुस्तक का प्रकाशन सम्पन्न करने के लिये नेहा प्रकाशन की अधिष्ठाता श्रीमती कृष्णा पाहवा का, अभिनन्दन पत्रिका के सुसम्पादन के लिये कु० अलका जैन और उनके सहयोगी कु० शेफाली और श्री अंशु जैन का तथा उसके मुद्रण व प्रकाशन के लिये श्री नलिन कान्त का, और इस उपक्रम में आर्थिक सहयोग प्रदान करने के लिये विज्ञापनदाताओं का हम आभार व्यक्त करते हैं। रवीन्द्रालय के प्रबन्धकों व कर्मचारियों के भी हम आभारी हैं जिन्होंने यह सभागार उपलब्ध कराकर इस आयोजन को सम्पन्न करना सहज बना दिया। अन्य सभी सहयोगियों के भी हम हृदय से आभारी हैं।

मैं पुनः सम्माननीय विद्वान मनीषियों का तथा आप सभी महानुभावों का आज के आयोजन में हार्दिक अभिनन्दन एवं स्वागत करता हूँ।

—शशि कान्त
पीठ-प्रमुख
अनन्त-ज्योति विद्यापीठ

१०-५-१९८७

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

प्रधानाध्यापिका का प्रतिवेदन Report

इस बड़े आयोजन में अपने छोटे से विद्यालय का प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए और अपने नन्हे-मुन्नों को पारितोषिक प्राप्त करने हेतु यहाँ लाने में मैं बहुत संकोच का अनुभव कर रही हूँ। संकोच का कारण विशेष रूप से यह है कि जिस आयोजन के लिये आज हम यहाँ एकत्र हुए हैं उसमें सभी ऐसे विद्वान मनीषियों का सत्कार किया जाना अभिप्रेत है जो अपने विशिष्ट क्षेत्र में सारभूत योगदान कर चुके हैं, जब कि हमारे ये बच्चे अभी शिक्षा के सोपान पर चढ़ने का प्रयास भर कर रहे हैं, तथापि मुझे और मेरी साथी अध्यापिकाओं को इस बात से बल और प्रेरणा मिल रही है कि ज्ञान के क्षेत्र में हमारे इस लघु प्रयास को भी हमारे अग्रज सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि हमारा प्रयास **अनन्त-ज्योति विद्यापीठ** के कार्यक्रमों का ही एक सुस्थिर अंग भी है। हमारे बच्चों को इस सभा में सम्माननीय मुख्य अतिथि महोदय के कर कमलों द्वारा पारितोषिक प्राप्त कर जो आह्लाद प्राप्त होगा वह उनकी जीवन भर के लिए अमूल्य निधि होगी।

कान्त बाल केन्द्र की स्थापना जुलाई १९७० में की गयी थी और यह उसका सत्रहवाँ वार्षिक पारितोषिक वितरण कार्यक्रम है। इस विद्यालय के सम्बन्ध में परिचयात्मक विवरण आपके हाथों में पहुंच रही **अनन्त-ज्योति विद्यापीठ अभिनन्दन पत्रिका** में दिया गया है, अतः मैं उसे दोहराना नहीं चाहूँगी। केवल दो बात मैं कहना चाहूँगी जो हमारी शिक्षा प्रणाली और हमारी मनस्विता से सम्बन्ध रखती हैं।

शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि क्या तीन वर्ष से ग्यारह वर्ष तक की आयु के बच्चों पर पाठ्य-क्रम का इतना बोझ लाद दिया जाये कि उनका समस्त व्यक्तित्व उस बोझ के नीचे दब जाय। यह स्थिति है हमारे उन विद्यालयों में जिनके प्रति स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे लोगों में अनुराग बढ़ा है। बच्चे को पढ़ाने के लिये ट्यूटर की आवश्यकता होती है, माता-पिता को भी गृहकार्य कराने के लिये अपना सारा समय देना होता है और बच्चे में धीरे-धीरे यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि चाहे कैसे भी हो उसे प्रथम आना है जिसके लिए उसके अभिभावक भी उसे प्रोत्साहित करते हैं। इससे बच्चे का व्यक्तित्व गलत रुझान ले लेता है और उसका विवेक समाप्त हो जाता है।

दूसरी बात हमारी मनस्विता की है कि हम अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं यह जानते हुए भी कि उस स्कूल में पढ़ाने वाले अध्यापक भारतीय ही हैं, अंग्रेजी भाषी नहीं, तथा उन स्कूलों में प्रायः ऐसी पुस्तकें पाठ्यक्रम में रखी जाती हैं जिनसे भारतीयत्व की भावना का अपमान होता हो और ऐसा वातावरण भी रखा जाता है कि जिससे उनमें एक प्रकार की हीन भावना भी उत्पन्न हो। जो मनीषी लोग आज इस सभा में उपस्थित हैं और विद्वत्ता के क्षेत्र में, अधिकारिता के क्षेत्र में, अथवा सामाजिकता के क्षेत्र में, जो अब जिस सोपान पर प्रतिष्ठित हैं, मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनमें से जो १५ अगस्त, १९४७, के पूर्व विद्यालय जाने के योग्य थे कदाचित १० प्रतिशत भी अँग्रेजी स्कूल में नहीं पढ़े, परन्तु कदाचित उनमें से ५० प्रतिशत का स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यह आग्रह रहा कि उनके बच्चे अंग्रेजी या अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ें। ऐसा क्यो हैं, यह मैं नहीं समझ पाई जब कि मेरे परिवार में सभी विद्वान हैं और उनमें से किसी का भी यह आग्रह नहीं रहा कि मेरे बच्चे अंग्रेजी स्कूल में पढ़ें। अपने परिवार में मैंने यही सुना कि

जिसको न निज देश, निज जाति का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा और मृतक समान है॥

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

मेरे उपरोक्त निवेदन का आशय आप लोग कृपया अन्यथा नहीं लेगें, ऐसा मुझे विश्वास है, और इस सम्बन्ध में स्वयं भी विचार करके कृपया इस भावना को बल प्रदान करना चाहेगें कि शिक्षा के क्षेत्र से दास वृत्ति समाप्त हो, शिक्षा बच्चों को उनकी आयु और क्षमता के अनुसार दी जाये ताकि वे शिक्षित हो सकें– केवल साक्षर नहीं, और हम सब में अपने देश के प्रति और अपनी राष्ट्र भाषा के प्रति गौरव की भावना प्रतिष्ठित हो जिसका एक आयाम यह भी है कि हमारे बच्चों की शिक्षा का माध्यम हमारी अपनी राष्ट्र भाषा हिन्दी हो।

हम अपने छोटे से प्रयास से इस ओर कार्यशील हैं, परन्तु हमें इस बात का दुःख है कि जो हमारे समाज का प्रबुद्ध और समृद्ध वर्ग है वह अपने बच्चों को दास मनस्विता के अधीन ही पोषित करना चाहता है।

आपके सामने अभी हमारे नन्हे-मुन्नों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया था जिससे आपको उनकी सांस्कृतिक अभिरुचि का किंचित बोध हुआ होगा। हमारे विद्यालय में खेलकूद प्रतियोगिता के पुरस्कार भ्रमण पर ही दे दिए जाते हैं तथा सुलेख प्रतियोगिता के पुरस्कार गणतन्त्र दिवस पर दिए जाते हैं और उस अवसर पर अध्यापिकाओं को भी पुरस्कृत किया जाता है। सत्रान्त पर सर्वश्रेष्ठ शिशु को कप, सर्वश्रेष्ठ उपस्थिति के लिए पुरस्कार तथा प्रत्येक कक्षा में प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त करने के लिये पुरस्कार दिये जाते हैं। उसी श्रृंखला में आज हमारे बच्चे सम्माननीय मुख्य अतिथि महोदय से ये पुरस्कार प्राप्त करेगें।

—श्रीमती मंजरी जैन
प्रधानाध्यापिका
कान्त बाल केन्द्र

१०-५-१९८७

सत्र १९८६-८७

सर्वश्रेष्ठ शिशु कप —मा० नफीस अहमद (कक्षा ५)

सर्वश्रेष्ठ उपस्थिति पुरस्कार —कु० मंजु यादव (कक्षा ३)

कक्षा	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
मान्टेसरी	अखिलेश कुमार अवस्थी	कु० कुसुम भार्गव	कु० गीता
नर्सरी	अवधेश कुमार	संजय विश्वकर्मा	कु० कंचन द्विवेदी
के० जी०	निर्मल कुमार	कु० माया कुमारी	बृजेश कुमार
I	अंशु दुबे	कु० बेबी रेखा	दीपक कुमार
II	कु० पूर्णिमा तिवारी	मधुसूदन द्विवेदी	सतीश तिवारी
III	सतीश कुमार लखमानी	पंकज द्विवेदी	कु० रेनु मिश्रा
IV	कु० मंजरी अग्रवाल	अमित अग्रवाल	सन्तोष कुमार तिवारी
V	नफीस अहमद	अनीस अहमद	कु० मीनाक्षी मिश्रा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

महत्त्वपूर्ण और उपयोगी साहित्य की प्राप्ति हेतु

ज्ञानदीप प्रकाशन

ज्योति निकुञ्ज, चारबाग,
लखनऊ-२२६ ०१९

से सम्पर्क करें।

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ द्वारा

सम्मानित विद्वान मनीषियों की कृतियों के विषय में भी सूचना प्राप्त की जा सकती है।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के प्रकाशनों और
अनन्त-ज्योति विद्यापीठ के प्रकाशनों का प्राप्ति स्थान।

इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की कृतियां :

1. Jainism : The Oldest Living Religion — 10/-
2. Jaina Sources of the History of Ancient India — 125/-
3. हस्तिनापुर — 10/-
4. प्रकाशित जैन साहित्य — 10/-
5. भारतीय इतिहास : एक दृष्टि (द्वि. सं.) — 15/-
6. प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें — 20/-
7. Religion and Culture of The Jains (3rd. ed.) — 35/-
8. Bhagwan Mahavira : Life, Times & Teachings — 5/-
9. Way to Health & Happiness : Vegetarianism — 4/-
10. Essence of Jainism — 4/-
11. Jainism & Buddhism — 1/-
12. आदितीर्थ अयोध्या — 5/-
13. श्री महावीर वचनामृत — 2/-
14. श्री महावीर-जिनस्तवन — 3/-
15. उत्तर प्रदेश और जैनधर्म — 16/-
16. रुहेलखण्ड-कुमायूं और जैनधर्म — 5/-
17. भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ — 50/-
18. महावीर-युग और निर्वाणकाल — 4/-
19. गृहस्थ जीवन का जैन आदर्श — 1/-
20. शाकाहार — 1/-
21. समाजोन्नायक क्रांतिकारी युगपुरुष : ब्र० शीतल प्रसाद — 5/-

डा० शशि कान्त की कृतियां—

1. कौशाम्बी
2. Political & Cultural History of Mid-North India
3. The Hathigumpha Inscription of Kharvela and The Bhabru Edict of Asoka– A Critical study

श्री रमा कान्त जैन की कृतियां—

1. डा० ज्योति प्रसाद जैन कृतित्व परिचय — 3/-
2. ,, ,, पंचवर्षीय परिशिष्ट — 1/-
3. अमृतोत्सव पुष्पांजलि — 1/-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

"हम सबके लिए और सब हमारे लिए"

देश की अखण्डता और आजादी को हमारे आपसी मतभेदों से ही खतरा होता है। उसकी समृद्धि और शक्ति के लिए स्वदेशवासियों को एक दूसरे का हाथ पकड़ कर साथ-साथ खड़ा होना होगा। स्वदेश में अमन चैन की गारंटी है हमारी एकता और परस्पर सहयोग।

"हम सबके लिए और सब हमारे लिए" की भावना से ही काम कर हम अपने छोटे-मोटे झगड़े सुलझा सकेंगे। क्या हम धर्म की आड़ में अकारण ही आपसी वैमनस्य बढ़ाकर या छुआछूत जैसी सदियों पुरानी गलत परम्पराओं को स्वीकार कर, राष्ट्र को एक रख सकेंगे ? विघटन और विद्रोह की बात वहीं उभरती है जहां असन्तोष होता है और भेदभाव से असंतोष की आग भड़कती है। इसलिए विचार और व्यवहार दोनों में विभेद की बू नहीं होनी चाहिए।

एकता की नीव पर ही मजबूत और खुशहाल देश की इमारत बड़ी की जा सकती है। आपसी सहयोग और परस्पर सद्भाव से ही राष्ट्र निर्माण का कार्यक्रम सफल हो सकता है। एक संस्कृति, एक इतिहास, एक नैतिक मानदण्ड, भविष्य की एक कल्पना, अनादि काल से एक भौगोलिक पृष्ठ भूमि और सुख-दुख की एक सी अनुभूति को देखते हुए हम सरलता से अलगाव की ताकतों को कुचल सकेंगे। यही हमारा प्रयास होना चाहिए।

सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेहतर सेवा

अधिक ब्याज

के लिए

अपना धन

उ० प्र० कोआपरेटिव बैंक

में जमा करायें ।

सावधि पुर्नानिवेश योजना

के अन्तर्गत आपका जमा धन बढ़कर

७५ माह में दो गुना

एवं

१२० माह में तीन गुने से अधिक !

अन्य आकर्षक बचत योजनाओं के लिए

कृपया बैंक की निकटतम शाखा से

सम्पर्क करें ।

उ० प्र० कोआपरेटिव बैंक लि०

प्रधान कार्यालय—

२–महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

उत्तर प्रदेश से
1990 तक पोलियो की समाप्ति

तथा शत प्रतिशत प्रतिरक्षण अभियान

क्या आप जानते हैं कि

—प्रदेश में प्रति एक हजार जीवित बच्चों में से लगभग १५० बच्चे मौत के शिकार हो जाते हैं।

—मौत का शिकार होने वाले बच्चों में आधे से अधिक डिप्थीरिया, टिटनेस, काली खाँसी, पोलियो , दस्त की बीमारी (डायरिया) खसरा ऐसी ही अन्य घातक बीमारियों से मर जाते हैं।

आप इन्हें मरने से बचा सकते हैं—

कैसे

—बच्चों को रोग प्रतिरोधक टीके लगवा कर।

—आज ही अपने समीप के मेडिकल कालेज, जिला चिकित्सालय, या प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के चिकित्सक से सम्पर्क कीजिए। यह सेवा निःशुल्क है।

डाक्टर की राय

सावधान- शिशुओं के टीके जन्म से १२ माह तक डाक्टर की सलाह से लगवाएं और उसका पहला जन्मदिन धूमधाम से मनाए।

प्रसारित - निदेशक परिवार कल्याण, मातृ एवं शिशु कल्याण सेवाएं, उ.प्र.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आपकी सर्वाधिक विश्वसनीय लाटरी–

उत्तर प्रदेश राज्य लाटरी

अब प्रत्येक दिन इनाम जीतने का सुनहरा अवसर—

सोमवार	–	गंगा कावेरी	–	प्रथम पुरस्कार रु० 1,00,000/=
मंगलवार	–	धनलक्ष्मी	–	प्रथम पुरस्कार रु० 1,00,000/=
बुद्धवार	–	संगम	–	प्रथम पुरस्कार रु० 1,00,000/=
वृहस्पतिवार	–	आकांक्षा	–	प्रथम पुरस्कार रु० 1,00,000/=
शुक्रवार	–	जनता	–	प्रथम पुरस्कार रु० 1,51,000/=
शनिवार	–	रोहिणी	–	प्रथम पुरस्कार रु० 1,00,000/=
रविवार	–	यू० पी० रैफल	–	प्रथम पुरस्कार रु० 1,00,000/=

हजारों अन्य आकर्षक पुरस्कारों के साथ।

उ० प्र० राज्य लाटरी के टिकट खरीद कर आप परोपकार भी करते हैं— चिकित्सालयों के सुधार एवं शारीरिक रूप से अपंग व्यक्तियों की सहायता तथा हजारों बेरोजगार व्यक्तियों के रोजगार में आप सहयोग देते हैं।

उत्तर प्रदेश राज्य लाटरी निदेशालय, लखनऊ द्वारा प्रसारित।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

U. P. State Bridge Corporation Limited

(An International Construction Company)

(1) U. P. STATE BRIDGE CORPORATION LTD. is a State Govt. enterprise of international repute.

(2) It is one of the few Corporations of the State Govt. which is continuously running in profit. So far total profits are more than Rs. 20 Crores.

(3) At present UPSBC LTD. is working not only in U. P. but in almost all the States of India–KERALA, ANDHRA PRADESH, MADHYA PRADESH, GUJARAT, BIHAR, ASSAM, TAMIL NADU AND DELHI AND ABROAD (IRAQ & NEPAL).

(4) Today the Corporation is working simultaneously over 100 places which is an all time record.

(5) During 1985-86, Bridge Corporation has completed about 70 Bridges costing Rs. 60 Crores, setting a record of completing on an average, "One Bridge Every Fifth Day."

(6) Bridge Corporation has been awarded last year 'International Asia Award–1986' for its excellent work.

(7) Bridge Corporation has so for completed about 525 works (mainly bridges) costing over Rs. 373 Crores.

(8) Bridge Corporation is soon going to start the construction of the following two prestigious works–
(i) Rs. 33 Crores bridge at Thane Creek near Bombay in Maharashtra.
(ii) Rs. 9.57 Crores bridge over river Mandovi in Goa.

(9) Bridge Corporation has already completed 32 bridges in IRAQ costing about Rs. 120 Crores. Because of high reputation, Bridge Corporation has recently been awarded Bridge/Road works of about Rs. 14 Crores in NEPAL.

(10) Because of its high reputation several big foreign firms from JAPAN, GERMANY, FRANCE etc. are trying for association with Bridge Corporation.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

प्रदेश के सभी समस्याग्रस्त ग्रामों को पेयजल सुविधा

२० सूत्री कार्यक्रम के सूत्र ८ का उ० प्र० जल निगम द्वारा पूर्ण दृढ़ता एवं तेजी से कार्यान्वयन ।

१- प्रदेश के कुल ६४५६८ समस्याग्रस्त ग्रामों में ७२ सर्वे के ३५५०६ एवं ८५ सर्वे के लगभग २८९६२ नये ग्राम में से माह मार्च, ८६ तक ८२९७१ ग्रामों की उपलब्धि । वर्ष १९८५-८६ के ८००० के लक्ष्य ८३२७ की उपलब्धि ।

२- नागरीय क्षेत्रों में ६५९ नगरों में से मार्च, ८६ तक ५८१ नगरों में पेयजल व्यवस्था उपलब्ध है । ३१ मार्च, १९८६ तक ८५ नगरों में पेयजल पुनर्गठन सुविधा उपलब्ध करायी गयी है ।

३- ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत के रूप में बायोगैस पेयजल हेतु पम्प चलाने के लिये जनपद लखनऊ, रायबरेली, देवरिया आदि क्षेत्रों में उपलब्ध । अन्य कई जनपदों में कार्य प्रगति में ।

४- जल प्रदूषण नियंत्रण एवं फैक्ट्रियों के दूषित जल के परिष्कार करने हेतु विशेष सेवायें उपलब्ध ।

५- उत्तर प्रदेश के हरिद्वार, कानपुर, फर्रुखाबाद, इलाहाबाद, मिर्जापुर, रामनगर एवं वाराणसी नगरो में गंगा, मथुरा-वृन्दान में यमुना तथा अयोध्या नगर में सरयू नदी का जल प्रदूषण निवारण कार्य प्रगति पर है ।

जल बरबाद न करें : इससे पेयजल समस्या बढ़ती है ।

सुरक्षित जल–सुरक्षित स्वास्थ्य

उत्तर प्रदेश जल निगम

६, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Achieving New Heights Day By Day.

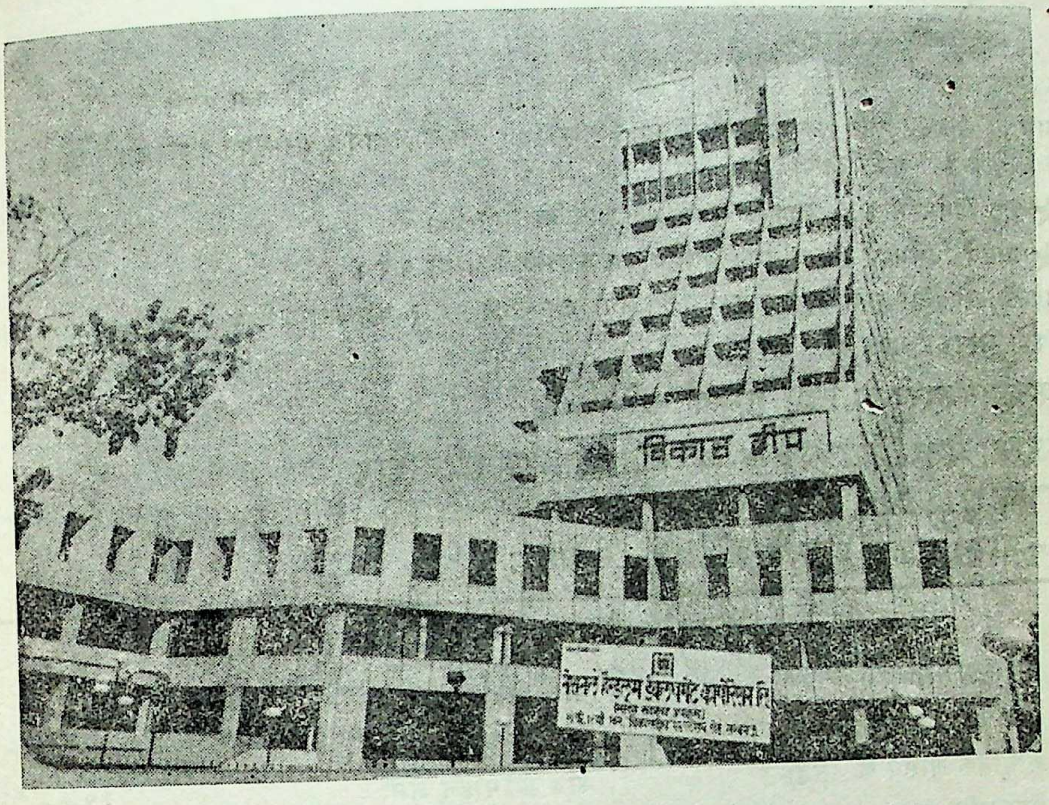

विकास द्वीप, हुसेनगंज, लखनऊ

Our Motto

Speed, Economy, Quality.

U. P. Rajkiya Nirman Nigam Limited

(A State Govt. Undertaking)

Ashok Marg (Near Nishat Ganj Bridge), Lucknow

Phone : 32481 to 32484, (PBX) 48919

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mel

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आयकर दाता

क्या आप आयकर से चिन्तित हैं

तो क्रय करें

छः वर्षीय राष्ट्रीय बचत पत्र

(छठा एवं सातवाँ निर्गम)

★ सर्वाधिक ब्याज

★ आयकर छूट

★ करमुक्त ब्याज

ये पत्र आयकर अधिनियम की धारा ८०सी के अन्तर्गत कर योग्य आय को कम करते हैं।

साथ ही ७,००० रुपये तक का वार्षिक ब्याज धारा ८० एल के अन्तर्गत कर-मुक्त (यूनिट्स के ३,००० रुपये के डिविडेन्ड के अतिरिक्त)

★ छठे निर्गम में १०० रुपये के २०१.५० रुपये हो जाते हैं।

★ सातवें निर्गम में १२ प्रतिशत वार्षिक ब्याज छमाही प्राप्त करें।

विदेशी भारतीयों द्वारा विदेशी मुद्रा में विनियोजित करने पर १ प्रतिशत अधिक ब्याज तथा ब्याज सम्पूर्ण रूप से आयकर मुक्त।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें—

जिला राष्ट्रीय बचत कार्यालय या डाकघर
राष्ट्रीय बचत निदेशालय
८–आर० एफ० बहादुर जी मार्ग, लखनऊ।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के अनुपम प्रकाशन

१–	पश्चिमी दर्शन	डा० दीवान चन्द	१३-००
२–	संस्कृति का दार्शनिक विवेचन	डा० देवराज	१२-००
३–	आधुनिक शासन के सिद्धान्त	डॉ० ब्रजमोहन शर्मा	१५-००
४–	वेदकालीन राज्य-व्यवस्था	डा० श्यामलाल पाण्डेय	८-००
५–	बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास	डा० गोविन्दचन्द पाण्डेय	१२-००
६–	सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास	डा० बैजनाथ पुरी	१५-००
७–	मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति	,, ,,	२८-००
८–	उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास	डा० विशुद्धानन्द पाठक	५१-००
९–	भारतीय संस्कृति और कला	वाचस्पति गैरोला	१७-५०
१०–	पूर्व एशिया का संक्षिप्त इतिहास (दो भाग)	शैलेन्द्र प्रसाद पांथरी	३०-००
११–	धर्म शास्त्र का इतिहस (५ भाग)	मू० पी० वी० काणे अनु० अर्जुन चौबे	२०५-००

इनके अतिरिक्त ज्ञान-विज्ञान एवं अन्य विषयों में ५५० से भी अधिक ग्रन्थ उपलब्ध, सुन्दर छपाई, आकर्षक गेट-अप, कम मूल्य, सूची-पत्र निःशुल्क।

भक्त दर्शन
उपाध्यक्ष

सम्पर्क-सूत्र

पी० के० झा
निदेशक

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

राष्ट्रीय कुष्ठ नियन्त्रण कार्यक्रम में अपना सहयोग दीजिये

किन्तु कैसे :—

—कुष्ठ न तो दैवी अपवाद है और न ही खानदानी रोग है।

—त्वचा पर कोई बेरंग दाग दिखाई देते ही निकटतम प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र अथवा डाक्टर से सलाह लें।

—नियमित लम्बी अवधि तक दवा खाने से कुष्ठ रोग अच्छा हो जाता है।

—कुष्ठ रोगी अछूत नही है। रोगी के रोग का उपचार करायें। वह आपके परिवार एवं समाज का ही अंग है।

—कुष्ठ रोगी उपचार के बाद समाज के लिये उपयोगी है। कृपया पुनर्वासित होने में अपना पूर्ण योगदान दें।

—सफेद दाग जरूरी नहीं कि कुष्ठ ही हो, अविलम्ब योग्य चिकित्सक अथवा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र से सलाह लीजिये।

प्रसारितः— राज्य स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

लखनऊ नगर महापालिका

जन सेवा का अभिनव संकल्प

जन सेवा का अभिनव संकल्प नगर वासियों को अपेक्षित व त्वरित नागरिक सुविधाएं उपलब्ध कराने हेतु दिनांक १ अप्रैल से तीन क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना की गई है :—

१— हजरतगंज २— वजीरगंज ३— गणेशगंज	जोन नं० —१ कार्यालय (नगर महापालिका के मुख्य भवन पर)
१— आलमबाग २— याहियागंज ३— सआदतगंज	जोन नं० —२ कार्यालय (जल संस्थान परिसर ऐशबाग)
१— चौक २— दौलतगंज ३— ट्रान्स गोमती	जोन नं० —३ कार्यालय (लखनऊ विकास प्राधिकरण द्वारा निर्मित अलीगंज व्यावसायिक केन्द्र के द्वितीय तल)

नागरिकों से अनुरोध है कि अपनी समस्याओं के निराकरण हेतु अपने-अपने क्षेत्रीय कार्यालय के जोनल अधिकारी से सम्पर्क करें।

अशोक कुमार
प्रशासक

रणबिजय प्रताप सिंह
उप प्रशासक

प्रचार विभाग : नगर महापालिका, लखनऊ द्वारा प्रसारित

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

With best Compliments from :

M/s. LARK AUTOMOTIVES

24, Bhopal House, Lal Bagh, LUCKNOW–226 001

THE AUTHORISED REPRESENTATIVE

For

BIRLA YAMAHA

LITTLE GENIE (Gen Sets)

Estd. : 1951

Phone :

Office : 44669

Resi : 71335

With best Compliments from :

Educational Emporium

PRINTERS, PUBLISHERS, STATIONARS &

GOVT. ORDER SUPPLIERS

Specialists in Teaching Aids

13, HEWETT ROAD, LUCKNOW

Branch : ALINAGAR (GORAKHPUR)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

मंगल कामनाओं सहित

सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त

श्री हर मिलाप ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन

चारबाग मार्केट, लखनऊ

सेवायें— समस्त उत्तर प्रदेश में।

विशेष सेवायें— पर्वतीय क्षेत्र।

सम्पर्क करें— फोन नं० ५२६३१

शुभ कामनाओं सहित

निष्पक्ष एवं निर्भीक समाचारों के लिए

उ० प्र० का सर्वाधिक बिक्री वाला

सांध्य दैनिक

*** गांडीव ***

प्रधान कार्यालय : आसभैरव, वाराणसी

फोन नं० : 56333, 54545

लखनऊ कार्यालय : लालता कुंज, लालकुआँ, लखनऊ

फोन नं० : 34287

शुभ कामनाओं सहित

बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक लोकप्रिय प्रदेश का

समस्या प्रधान दैनिक

विश्व परिवार

३४, चन्द्र शेखर आजाद, झाँसी–२८४ ००२

फोन नं० : १८०६

लखनऊ कार्यालय :

पंकज कुमार, मुख्यालय प्रतिनिधि,

१६, सरोजनी देवी लेन, मकबूल गंज,

लखनऊ–२२६ ००१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

मंगल कामनाओं सहित :

पूर्वी उत्तर प्रदेश का लोकप्रिय

समाचार पत्र

हिन्दी दैनिक

माया बाजार

गोरखपुर

फोन नं० : ३०५२

लखनऊ ब्यूरो प्रमुख

प्रदीप कुमार अवस्थी

सी–१४३७/३, इन्दिरा नगर,

लखनऊ-१६

मंगल कामनाओं सहित :

अंतर्राष्ट्रीय श्रोता समाचार

मीडिया पर केन्द्रित भारत का

पहला पाक्षिक अखबार

—आज ही नीचे लिखे पतों में से किसी एक पर सम्पर्क करें।

सम्पादकीय कार्यालय—

सांस्कृतिक भवन, ४, पानदरीबा, इलाहाबाद। दूरभाष— ५४५९४

प्रसार व्यवस्था एवं विज्ञापन—

२७, जवाहर स्क्वायर, इलाहाबाद। दूरभाष— ५११३८

लखनऊ कार्यालय—

श्री संतोष पाठक (अवै० प्रतिनिधि)

१०, तिलक नगर, लखनऊ

With best Compliments from :

Ratna-Jyoti Press

Quality Printers

Undertake all types of job work,
Magzine and Folder Printing

Jyoti Nikunj, Charbagh
(Behind Roadways Bush Station),
LUCKNOW–226 019

☎ : 50085

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri. Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

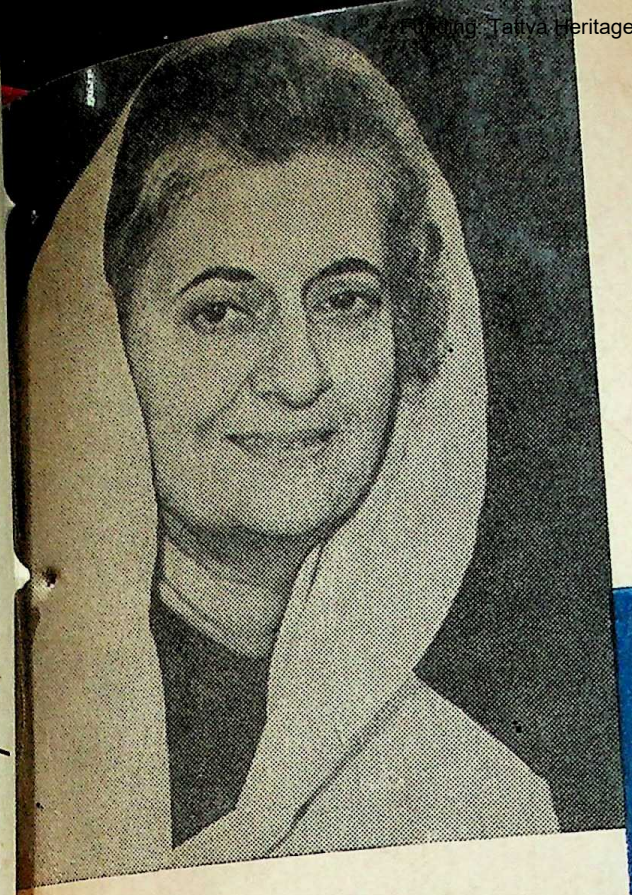

इन्दिरा गांधी
स्मृति-अंक

Indira Gandhi
Commemorative Volume

संग्रहालय

संग्रहालय-पुरातत्व पत्रिका

BULLETIN OF
MUSEUMS &
ARCHAEOLOGY IN U.P.

अंक : ३५–३६
जून–दिसम्बर १९८५

No. 35-36
June-December 1985

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Re

Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Re

Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

संपुम

संग्रहालय - पुरातत्व पत्रिका

BULLETIN OF MUSEUMS & ARCHÆOLOGY IN U P

अंक ३५-३६
NO. 35-36

जून-दिसम्बर १९८५
JUNE-DEC. 1985

संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका

Bulletin of Museums & Archaeology

राज्य संग्रहालय, लखनऊ

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सम्पादक मण्डल

प्रधान सम्पादक	श्री दया प्रकाश सिन्हा, निदेशक, सांस्कृतिक कार्य विभाग, उ० प्र०, लखनऊ
कार्यकारी सम्पादक	डॉ० रमेश चन्द्र शर्मा, निदेशक, राज्य संग्रहालय, लखनऊ एवं राज्य पुरातत्व संगठन, उ० प्र०
सह सम्पादक	डॉ० अरविन्द कुमार श्रीवास्तव, निदेशक, राजकीय संग्रहालय, मथुरा
सह सम्पादक	डॉ० शिव दयाल त्रिवेदी, निदेशक, राजकीय संग्रहालय, झाँसी
सह सम्पादक	श्री वीरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव, निदेशक, राजकीय संग्रहालय, अल्मोड़ा
प्रकाशक	सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
कार्यालय	राज्य संग्रहालय, लखनऊ—२२६००१ फोन—३५५४२

CC-0. Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CONTENTS

		Page
Editorial		v
INDIRAJI—Patron of Arts	*Sri D. P. Sinha*	vii
INDIRA GANDHI—Culture on Priority	*Dr. R. C. Sharma*	ix
Mathurā Buddhist Image Inscription of Saṅghavarman	*Dr. K. K. Thaplyal* *Dr. R. C. Sharma*	1
राज्य संग्रहालय, लखनऊ की महत्वपूर्ण वाराही प्रतिमा	**श्री रत्न चन्द्र अग्रवाल**	7
A Unique Terracotta Kuṣāṇa Royal Figure	*Dr. K. S. Shukla*	11
Gupta Reliefs from Haryana	*Dr. Devendra Handa*	15
Notes on Megha-Ḍambara	*Dr. S. P. Tewari*	23
A Non-pareil Three faced Deity in the Sun Temple at Modhera	*Dr. Maruti Nandan Pd. Tiwari & Dr. Kamal Giri*	31
गढ़वाल हिमालय की अविवेचित लिंग प्रतिमाएं	**डा० यशवन्त सिंह कठोच**	37
बूंदी शैली के चित्रों में बारहमासा	**श्री सुरेन्द्र सिंह चौहान**	41
Malwa Paintings and its collection in the State Museum, Lucknow	*Sri S. M. Naqvi*	47
जयपुर शैली में भित्ति चित्रण पद्धति	**श्री श्रीमुनि सिंह**	53
हुलासखेड़ा उत्खनन 1983—84	**श्री राकेश तिवारी एवं श्री राकेश श्रीवास्तव**	59
Preservation of Mural Paintings at Kusumvan Sarovara Mathurā	*Sri H. K. Misra*	65

CC-0. Bhagavad Ram...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

A Unique Mātṛkā representation in the State Museum, Lucknow	*Sri S. N. Upadhyaya*	71
लखनऊ संग्रहालय का गुप्तकालीन स्वर्ण मुद्राकोष	**श्री इन्दु प्रकाश पाण्डेय**	75
International Seminar on the Art of Kuṣāṇa Age—Brief Report	*Dr. R. C. Sharma*	107
Treasure Trove Hoards of Coins	*Sri R. D. Yadav*	119

National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Editorial

The writing of the editorial note for the present issue no. 35-36, June-December 1985, of the Bulletin of Museums and Archaeology in Uttar Pradesh is a moment of much grief and sorrow for the Editors. Since the publication of the last issue the nation has lost an illustrious and dyanamic leader Smt. Indira Gandhi, Prime Minister of India. It has been a big loss to the lovers of Indian culture and art. The Editorial Board of the Bulletin of Museums & Archaeology, therefore, fulfils a pious duty in dedicating this issue to the sacred memory of Smt. Gandhi who remained a source of constant inspiration and encouragements to all of us.

The contents of the present issue are of considerable significance as the readers and researchers will find a substantial matter on different aspects of Indian culture viz., Art, Iconography, Epigraphy, Numismatics, Paintings and Archaeology. Besides, a few memoirs highlighting the patronage of Smt. Gandhi to art and culture are also of much interest. A brief report of the International Seminar on the Art of Kushana Age sponsored by the Department of Cultural Affairs Government of U. P. is also given.

The editors record appreciation for Sri S. N. Upadhyaya, of the State Museum, Lucknow in labouring hard in bringing out this issue as well as several previous issues of the Bulletin.

EDITORS

CC-0. Bhagavad Ra...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

INDIRAJI—PATRON OF ARTS

D. P. Sinha

Indiraji was the embodiment of art and culture and a great source of encouragement to the artistes. Even a brief meeting with her left a dazzling impact.

It was in 1956 that I with some students of the Allahabad University participating in the inter-university youth festival in Delhi planned to call upon Pandit Nehru, the then Prime Minister. Disregarding all norms of meeting a V. V. I. P. and harvesting on the false notion of a special right of the Allahabadis to meet Panditji we reached the Prime Minister's House. Naturally we were stopped at the gate and not permitted to fulfil our aim. The restlessness of the youths echoed the inner walls of the Teen Murti and Smt. Indira Gandhi appeared on the scene to handle the situation. Losing no time in realising the delicacy she immediately arranged an unscheduled interview with Nehruji who smilingly said, 'you enjoy a privilege on me ! (Hamāre ūpar āpkā haq hai). The tense atmosphere transformed into the jubilant one. Clad in a south Indian 'Lahnga' and 'Chunni', Indiraji looked very beautiful and much younger than her age.

My second close contact was the occasion of staging a play "Ghalib" in 1974. It was directed by me and my wife Pratibha acted in the main role. The drama was produced under the personal supervision of Begam Abida Ahmad, and Smt. Indira Gandhi, Prime Minister was the Chief Guest.

Generally the V. I. Ps. prefer to sit in the first row in the dramatic performance but not Indiraji. As a true connoisseur of art, she knew that a theatrical performance is best seen and enjoyed from third or fourth row. So she sat in the fourth row to be one among the audience.

During the interval she came back-stage and complimented each and every participant. She expressed desire to meet the Director and when I appeared, she

Sri D. P. Sinha, Director and Joint Secretary, Cultural Affairs Department, U. P.

CC-0. Bhagavad Ram...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

congratulated me. During group photograph, Pratibha was standing immediately behind her. She prevailed upon Pratibha to come in front for the photograph, saying "Artistes should be in the forefront". We were all charmed by her beauty, grace and generosity. It was a very kind and thoughtful gesture on her part to talk to most of us and to encourage personally. Each one of us felt honoured and gratified.

Yet another notable event was a cultural programme organised in the Delhi Asiads. As the coordinator I was looking after the arrangements that Indiraji suddenly appeared in the Seri Fort Auditorium and stood among the audience for some time. Next day she came again and witnessed the performance. Her appreciation and compliments were received through a telephonic message of Sri V. S. Tripathi, Adviser to the Prime Minister.

Indiraji was a true friend of artistes. She had the deep knowledge of all forms of Indian art and heritage, and went out of way to encourage and patronise arts and artistes.

—o—

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

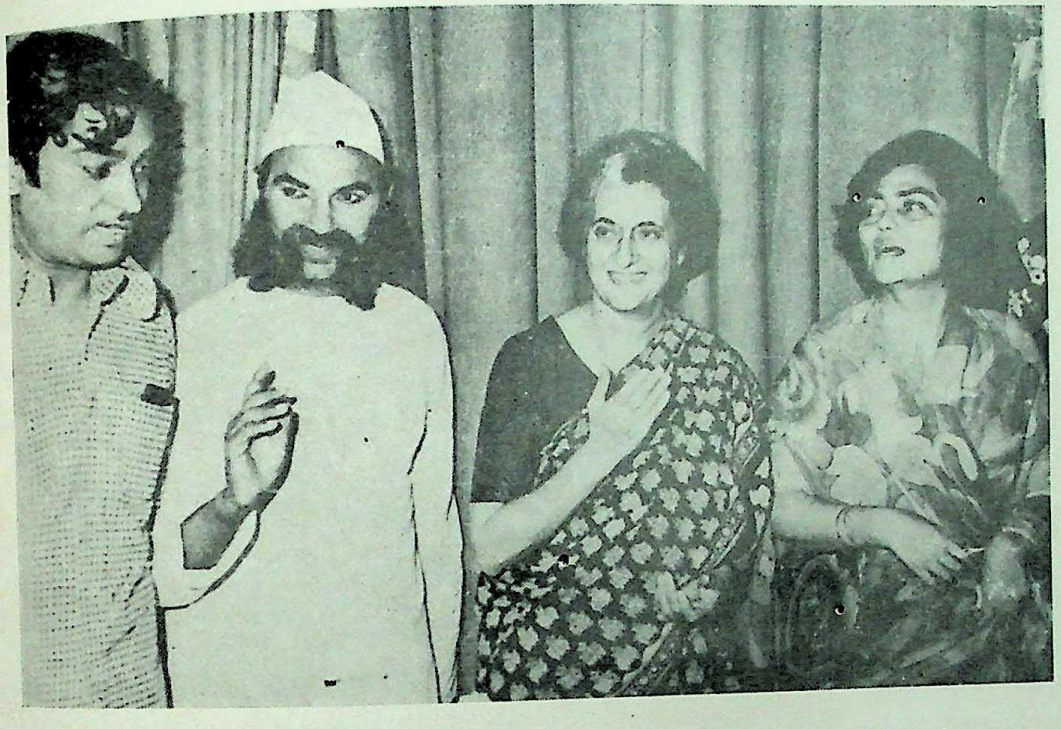

Sri D. P. Sinha (extreme left) with Indiraji at the inauguration of the play 'Aivane Ghalib'

CC-0. Bhagavad Pa

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

INDIRA GANDHI—CULTURE ON PRIORITY

R. C. Sharma

While the passing away of our illustrious Prime Minister Smt. Indira Gandhi has been a terrible blow to the whole nation, it is a greater shock to the Indian culture and the entire museum community. Her encouragement to the museums and exhibitions in India and abroad is well known. Her surprise visits to the National Museum were indicative of her keen and genuine love to the objects of art and their proper presentation for dissemination of knowledge.

But the late Prime Minister's interest did not confine to the galleries of the National Museum or other art galleries in Delhi only, she always looked for the opportunity to see the museums and the rich cultural heritage preserved in the galleries in other parts of country as well. One of her important engagements just a day before terminating the journey of her life was the visit to the State Museum, Bhubaneshwar. Despite heavy national and international appointments she always made it a point to spare some time for the museums which grew and flourished to the desired extent under her generous care and tender treatment. For her, culture always remained above politics.

To corroborate this assessment I may record my personal anecdotes with a sense of deep gratitude to high-light her inspiring museum consciousness. During my Curatorship at the Archaeological Museum (now Government Museum), Mathurā, the centenary year of the Institution fell in 1974. The Museum is widely respected as a rich abode of early Indian sculptural art and I was keen to celebrate its centenary with a befitting glory and grandeur.

I persuaded the Government of U. P. to request the Prime Minister Smt. Indira Gandhi to be the Chief Guest and to inaugurate the Centenary Celebrations.

Dr. R. C. Sharma, Director, State Museum, Lucknow.

CC-0. Bhagavad Ra...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The letter was drafted and also signed by the then Chief Minister Sri H. N. Bahuguna but somehow or other it could not be despatched due to some oversight or confusion at some level.

Naturally, there was no confirmation from the Prime Minister's Secretariat and only a fortnight was left for the commencement of the event. An International Seminar on the Kuṣāṇa Art of Mathurā was also to be organised and January 10, 1974 was fixed as the opening day of the Conference and we wished to coincide the Seminar with the inauguration of the Museum Centenary. On telephonic enquiry from Mathurā the Prime Minister's Secretariat revealed that there was no formal request from the U. P. Government and as such the question of Prime Minister's appointment did not arise. The reply was much distressing but I did not lose hope and requested Sri N. K. Sheshan, Private Secretary, to put up our submission before the Prime Minister highlighting the significance of the event and the importance of the Mathurā Museum.

Within hours there was a return call from Delhi confirming the willingness of the Prime Minister to inaugurate the function on the desired date and time. It was not only a very great relief but a marvellous achievements in itself.

But our problem did not end there. The Prime Minister's confirmation to participate in the Museum programme spread like the wild fire and the local political leaders began their overtures to gain maximum advantage of her visit in view of the Parliamentary Elections scheduled to be held in February 1974, just one month after the date of the Museum Centenary celebrations. They wanted to hold a public meeting but the P. M.'s tight engagements did not allow more than one hour at Mathurā and this time could either be utilised for the Museum or for the public meeting. The leaders were naturally keen for the creation of favourable atmosphere to ensure their victory and the Museum's cause was secondary to them. They exercised their maximum pressure at the Prime Minister's Secretariat to reschedule her visit in which the Museum programme was completely ignored.

We were in a fix and the matter was again referred to the Prime Minister. She was gracious enough to stick to her original programme and did not entertain the proposal to hold a public meeting on top of Museum Centenary Celebration. She also did not appreciate the idea of combining the two programmes as according to her it was bound to mar the academic grace of the occasion. This was another achievement of the Museum as culture prevailed upon the politics.

Amidst the rumours of postponement, cancellation and rescheduling, the Prime Minister reached Mathurā Museum as per her fixed time table. Her address to

CC-0. Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

the audience was of great academic and technical interest. To much disappointment of the political leaders, assembled on the occasion, she did not speak a single sentence about politics. She observed that the museums are the great source of education and revealed that her own education was through museums in India and abroad.

As my senior officers of the Department were present, I hesitated to come to the dais but within moments I was made to sit on a seat adjacent to the Prime Minister who had herself asked for this arrangement. When the then Governor of U. P., Sri Akbar Ali Khan was giving his welcome speech the Prime Minister looked at her watch and I thought that she was in a hurry. In somewhat nervous tone I submitted to her that my address would not take more than five minutes. Her amazing and encouraging sweet reply was 'Never mind take your own time, I have come here to hear you'. Going round the galleries and the temporary exhibition on the folk arts of Braj, she asked several questions which showed her deep interest in the exhibits and their interpretation.

After about a decade I happened to organise another great event as Director of the State Museum, Lucknow. This was the International Seminar on the Art of the Kuṣāṇa Age and I thought of nobody but the Prime Minister, Srimati Indira Gandhi to inaugurate the Conference on December 16, 1984. While our aspiration could not be fulfilled due to her shocking assassination and ultimate sacrifice in the service of the nation, the message sent by her on July 10, 1984 is a natural flow of her genuine interest in the Subject. It reads :

> *'....The Kushana age was a time of many new beginnings and should certainly be better known. It is a good idea to have a seminar on its art...'*
>
> **(Indira Gandhi)**

The atmosphere of the Conference was charged with emotion when the then Governor of Uttar Pradesh, Sri C. P. N. Singh in his inaugural address read out the above message with choked voice and tears in eyes.

There is yet another burning example to show her soft corner and favour to the museum development. An Indian Air Force, V. I. P. aeroplane T. U. 124 Rājhans Russian model became obsolete and was declared out of service, although it remained in fairly good condition. This aircraft was in service of some outstanding leaders and it was a favourite plane of the late Prime Minister. As such it carried a historic service chart and important national and international assignments were to its credit.

CC-0. Bhagavad P...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The question arose as what to do with such a significant aeroplane as it could not be discarded just as an ordinary phased out model. There were several proposals, some with heavy weight and pressure. The decision was to rest on its safe custody and presentation to the public. Some public parks in country were tipped for its display. The Government of Uttar Pradesh had suggested to preserve it in the State Museum, Lucknow, to be viewed by the public and particularly for the benefit of the students of science and technology.

As was given to understand the matter was ultimately referred to the Prime Minister for the final decision and among all the proposals she gave preference to the use of the V.I.P. plane in the museum. Education through museums was the deciding factor for her.

Soon the Rājhans flew from Delhi to Lucknow in July 1981. Owing to several technical and other practical difficulties it took long time to shift it from the Lucknow Airport to the premises of the State Museum, Lucknow. Now with commendable services of the Air Force and other agencies this herculian task has been accomplished and the plane is already seen on the Museum ground, attracting a huge crowd. It will soon be installed for the public.

The most unfortunate part of this operation has been that our beloved Prime Minister was brutally assassinated a few weeks before the parking of the plane at the Museum. Of course this tragic episode has multiplied the importance of the aircraft hundred times as it will now be preserved as her valuable souvenir to the Museum and her sweet memory and gracious gesture will always be cherished by us.

The dedication of Festivals of India in France and U.S.A. and foundation of Indira Gandhi National Centre for Arts in New Delhi are the befitting tributes to the late Prime Minister who was the embodiment of Indian Culture. It is encouraging to note that her worthy successor Prime Minister Sri Rajiv Gandhi is actively involved in furthering the cause of art and culture.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Prime Minister Smt. Indira Gandhi as Chief Guest at Mathura Museum Centenary on Jan. 10, 1974

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

SMT. INDIRA GANDHI

19.11.1917	Birth (Indira-Indu Nehru), Allahabad
1934-35	Shantiniketan
1939	For studies in Britain
1942	Marriage with Firoz Gandhi
1942-43	Imprisonment in Quit India Movement
1955	Member All-India Congress
1959	Congress President
1964	Union Minister for Information and Broadcasting
1966	Prime Minister of India
1971	Bangla Desh Liberation
1972	Bharat Ratna, Simla Pact
1975	Emergency, 20—Point Programme for Development
1977	Defeated in General Election
1980	Victory in Election and return to power as Prime Minister
1982	Revised 20—Point Programme for Development
1982	Asian games in Delhi
1983	Chairperson of Non-Alligned Movement
31.10.1984	Assassination, New Delhi

CC-0. Bhagavad P...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

MATHURĀ BUDDHIST IMAGE INSCRIPTION OF SAṄGHAVARMAN

K. K. Thaplyal and R. C. Sharma

Among hundreds of Buddhist remains recently (1976) unearthed from the site of Govindnagar in the western outskirts of Mathurā city, the inscribed Buddha image under reference (pl. I) now housed in the Mathurā Museum[1], is the most remarkable. Carved in red sandstone with a few yellowish spots and measuring 147 cms. in height and 52 cms. in breadth, the image shows the Buddha with his right hand in *abhaya-mudrā*, standing elegantly in a thoughtful expression, exuding serenity and bliss. The fine curly hair is shown with a top knot. The figure has elongated ear lobes, lotus-bud—shaped half-open eyes and a contemplative attitude. The transparent wet drapery has beautiful rippling folds. The delineation of the figure radiates a flow of energy and suggests a harmonious combination of outer form with the inner state. The anatomy of the body, though for the most part hidden under the drapery, nevertheless reveals masterly skill in the treatment of the physical charm. The nimbus, of which only a fragment above the shoulder is extant, shows a beautiful design of concentric bands. The beautifully carved small figures of the half-kneeling devotees on the pedestal enhance the grandeur of the Buddha image, which is one of the masterpieces of the plastic art of the Gupta age.

The epigraph inscribed on the pedestal (pl. II) is dated year 115, without mentioning the era. The palaeography shows Gupta features and hence the date should be in the Gupta era, which, as we know from other sources, begins from 319 A.D. The date in the Christian era would come to 319+115=434 A.D. We know that the Imperial Gupta King Kumaragupta I ruled from 415 to 455 A.D. Hence the date of the present epigraph falls within the reign-period of that king.

Dr. K. K. Thaplyal, Professor, Department of Ancient Indian History and Archaeology, Lucknow University.
Dr. R. C. Sharma, Director, State Museum, Lucknow.

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The epigraph records the installation of the Buddha image by Friar Saṅghavarman[2]. The Buddha has been referred to as *Bhagavān* i.e. Lord, and *Daśabalabalina*, i.e. possessing ten powers[3].

The merit aspired for by the installation of the image, as stated in the epigraph, is the removal of sufferings of and attainment of Supreme Knowledge by all the sentient beings.

Mention is also made of the sculptor of the image, one Dinna. The mention of the name of the sculptor adds to the significance of the inscription, for recording the name of the sculptors in such epigraphs is rare[4]. A point of interest in this connection is that the inscription on the Mahāparinirvāṇa image at Kasiā records the name of the sculptor of that image as Dinna, hailing from Mathurā.[5] Further, the inscription on another image, now fragmentary, from the same site also ascribes the sculpturing of the image to one Dinna.[6] The use of red sandstone for sculpturing image is a characteristic feature of the Mathurā school, and it would appear that the two Kasiā images were also done at Mathurā and transported thence to Kasiā. It may be noted that we also have other instances of the transportation of images sculptured by artists of Mathurā school to distant places[7].

Identical names of the sculptor on the Mathurā image and the two Kasiā images referred to earlier, palaeographic considerations (all these three epigraphs belonging to Gupta period on that ground), the fact that all these three images are made of red sandstone, and that in the fragmentary image from Kasiā, Dinna has been specifically referred to as a native of Mathurā which is the provenance of the image on which the epigraph under discussion occurs, lead us to the conclusion that the Mathurā image and the two Kasiā images were carved by one and the same craftsman. Dinna must certainly have been a sculptor of repute, and his services were sought for sculpturing images to be installed at Kasiā far away from Mathurā, his native place.

The two undated Kasiā epigraphs referring to Dinna by name, and the images on which the epigraphs occur, have been rightly dated to the Gupta period on the ground of palaeography and art-style. On the same considerations, the Mathurā epigraph and image can also be dated to the Gupta period. But dating on the basis of palaeography and art-style, though valid within certain limits, cannot command the precision provided by the dated epigraphs. The recording of date in the present epigraph is significant in as much as it specifically mentions the (Gupta) year 115=434 A.D. as the date of sculpturing the Mathurā image in question. This record also helps us indirectly in fixing the date of the two Kasiā images fairly and accurately. Since the Kasiā images were also

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

sculptured by the same craftsman who made the Mathurā image, they can also be dated to 434 A.D., the margin of error, if any, would be a few years on either side.

The language of the epigraph under discussion is Sanskrit, and script, Brāhmī of the Gupta period. The letters have been carefully and neatly engraved. As regards orthography, the feature worth mentioning is the duplication of *v* after *r* as in *purvvāyāṁ* (line 1) and *sarvva* (lines 2 and 3). Another feature is the use of abbreviation for *saṁvat*, *māsa* and *divasa*.

TEXT

1. Siddhaṁ [8][1*] saṁ[9] 100(+*)10(+ *)5 Śrāvaṇa mā[10] di[11] 10(+ *) 2(1*) asyāṁ divasa purvvāyāṁ[12] bhagavataḥ daśabalabalina Śākyamune[ḥ][13].
2. pratimā pratiṣṭhāpitā[14] bhikṣuṇā Saṅghavarmaṇā (1*)
   Yadatra puṇyaṁ tatmātāpitrotpūrvvaṅgamatkṛtvā[15] sarvva satvānā[16]
3. Sarvvaduḥkha–prahāṇāyānuttara jñānāvāptaye[1*] Ghaṭitā Dinnena/

TRANSLATION

Success. In the year 115, in the month of Śrāvaṇa on the twelfth day; on the day (specified) above, an image of Lord Daśabalabalina Śākyamuni was installed by Friar Saṅghavarman. Whatever merit (there is) here (i.e. in this act), let it be for the removal of the sufferings of and for the acquisition of Supreme Knowledge by all sentient beings, precedence being given to the parents of Saṅghavarman. [The image] was sculptured by Dinna.

REFERENCES

1. Mathurā Museum No. 76.25.
2. A monk is not supposed to possess money and hence it would be difficult for him to finance the sculpturing and transport of the image. In all probability, on behalf of Friar Saṅghavarman some well-to-do patron or patrons of Buddhism met the expenditure incurred on these items.
3. In early Pāli text we get the following enumeration of *balas* :— (1) *Sthānāsthānajñāna-bala* (force of the knowledge of what is possible and impossible), (2) *Karmavipākajñāna-bala* (force of the knowledge of the consequences of acting), (3) *nānādhimuktijñāna-bala* (force of the knowledge of the different dispositions of men), (4) *nānādhātujñāna-bala* (force of the knowledge of different elements), (5) *Indriyaparāparajñāna-bala* (force of the knowledge of the higher and lower

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

mental powers of men), (6) *Sarvatragāmipratipathajñāna-bala* (force of the knowledge of the progress that leads everywhere), (7) *Sarvadkyānavimokṣasamādhisamāpatti saṁkleśa vyavadāna vyavasthānajñāna-bala* (force of the knowledge of all which concerns the origin of miseries of every kind and which will lead to equanimity mystic meditation complete emancipation and dhyāna), (8) Pūrvanivāsānusmṛti jñāna-bala (force of the knowledge of remembering afterwards former abodes), (9) *Cyutyupapatti jñāna-bala* (force of the knowledge of birth and death) and (10) *Āśravakṣaya jñāna-bala* (force of the knowledge of the destruction of afflictions) See, *A Tibetan-English Dictionary* by Rai Sarat Chandra Das, Delhi, 1979 (reprint). For enumeration and discussion of *daśabalas* in original Pālī, see, *Aṅguttaranikāya* (Govt. of Bihar publication, 1960) 10.3.1 (I owe this reference to Bhikkhu K. Chandaratana of Lucknow University). See also *Prajñāpāramitopadeśa śāstram* (with commentary by Āçārya Haribhadra, 1977 A.D.) p. 46 (we owe this reference to Lama Sherab Rhaldi of Lucknow University).

The ten *balas* are enumerated in some sacred texts as :

(1) *āśaya-bala* (the power of reflection), (2) *adhyāsa-bala* (power of concentration), (3) *pratipatti-bala* (power of acquisition), (4) *prajñā-bala* or *jñāna-bala* (power of wisdom), (5) *praṇidhāna-bala* (power of resolute prayer), (6) *yāna-bala* (power of creed), (7) *caryyā-bala* (power of accomplishment or bringing to pass), (8) *Vikurnvan-bala* (power of changing shape), (9) *Bodhisattva-bala* (power of enlightenment), (10) *dharmmacakrapravarttana-bala* (power of setting the wheel of religion in motion).

See *A Tibetan–English Dictionary* by Rai Sarat Chandra Das.

In the *Vācaspatyam* and *Śabdakalpadruma*, the *daśabalas* have been enumerated as below :

dānaśila kṣamā virya dhyāna prajñābalāni ca |
upāyaḥ pranidhirjñānaṁ daśa Buddha balānica. ||

4. It may be stated that certain names found on Mathurā sculptures have been taken to be those of sculptors. Thus in Lüders *Mathurā Inscriptions* we have the following names : Rāma (under 78), Dharma (under 132), Saṅghadeva (under 145), Joṭisa (Jyotiṣa) (under 146 and 148), Dāsa (under 147), and Sivara (under 149), Singha (Mathurā Museum, No. 56.4239), Nayasa (No. 16.1552), Deyahu(?) (J. 25), Jayakula (Agra Registration Office, antiquity No. 1322) are other names read by R. C. Sharma on different Mathurā antiquities. However, none of these persons has been referred to as sculptor, and hence their identification as sculptors remains doubtful.

5. *ASIAR*, 1906-7, pp. 49, 50, 143. The second part of the inscription has been

CC-0. Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Buddha image installed by Saṅghavarmana (76.22)

CC-0. Bhagavad Ram

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Inscription on the image

National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

read as : *pratimā ceyam ghaṭitā Dinnena Māthureṇa* (*ibid.*, p. 49).

6. The second part of the inscription reads *Kṛtir-Dinnasya* (*ibid.*, 49).
7. Sārnāth, (*EI*, VIII, 181) Śrāvastī (*EI*, VIII, 181), Kauśāmbī (*EI*, XXIV,211), Bodhgayā (Harle, *Gupta Sculpture*, Oxford, 1974, p. 16).
8. Expressed by a symbol. Some take this as *OM*.
9. Abbreviation for *saṁvasIsara*.
10. Abbreviation for *māsa*.
11. Abbreviation for *divasa*.
12. Read *pūrvvāyāṁ*.
13. The *daṇḍa* is redundant.
14. -do-
15. Read *pitroḥ pūrvaṅgamaṁ kṛtvā* as met with elsewhere (cf. Fleet, *C.I.I.*, III, p. 281.)
16. Read *satvānāṁ*.

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

राज्य संग्रहालय, लखनऊ, की महत्वपूर्ण वाराही प्रतिमां

रत्नचन्द्र अग्रवाल

प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में वराहास्या 'वाराही' को प्रायः महिष वाहन सहित प्रदर्शित किया गया है। ईसा की दसवीं शती की ऐसी एक अभिलिखित मूर्ति मध्य प्रदेश में शहडोल के पास 'अन्तरा' नामक स्थान पर मिली थी जहां आसनस्थ वराहमुखी देवी के नीचे महिष विद्यमान है और प्रतिमा की चौकी पर तत्कालीन लिपि में उसका परिचय अंकित है यथा श्री वाराही[1]। वाराही की ही अन्य वर्ग की मूर्तियों में देवी को प्रेतासना बताया गया है और ऐसी एक प्रतिमा राजस्थानान्तर्गत आबू पर्वत के जगन्नाथ मंदिर में विद्यमान थी। यह आजकल स्थानिक राजकीय संग्रहालय में प्रदर्शित है।[2] देवी भागवत पुराण (स्कन्ध 5, अध्याय 28, श्लोक 24) में इस भाव की अभिव्यक्ति उपलब्ध है यथाः— वाराही शूकराकारा प्रौढ़ प्रेतासना मता। लखनऊ के कैसरबाग संग्रह में भी H-32 संख्यक मूर्ति इस भाव की द्योतक है।

वराहमुखी वाराही को यदाकदा शूकर पशु के ऊपर या साथ भी प्रदर्शित किया गया है। इस आशय को चरितार्थ करने वाली चतुर्भुज देवी मूर्ति अल्मोड़ा क्षेत्र से मिली थी और आजकल राज्य संग्रहालय के गौदाम में क्रम संख्या 65-173/4 पर अंकित होकर सुरक्षित है। कत्यूरी कला की परिचायक यह मूर्ति उत्तर प्रदेश की वाराही प्रतिमाओं में इस दृष्टि से अद्वितीय है क्योंकि ऐसी अन्य प्रतिमा इस क्षेत्र से नहीं मिली है। प्रस्तुत मूर्ति काले सलेटी पत्थर की बनी है, ऊंचाई है लगभग एक फुट (चित्र...१.....)[3]। लखनऊ संग्रहालय की इस अप्रकाशित प्रतिमा में देवी के वायें ऊपर के हाथ में शंख है व नीचे हाथ में चक्र। दाहिना नीचे का हाथ वरद मुद्रा में व ऊपर का खण्डित है। वराहमुखी देवी ललितासन मुद्रा में शूकर–वराह के ऊपर विराजमान है जैसा कि दशवीं शती की वाराही मूर्ति द्वारा भी इसी भाव की अभिव्यक्ति की गई है। यह मध्यकालीन मूर्ति भेराघाट (मध्य प्रदेश, जबलपुर) के चौंसठ योगिनी मंदिर में विद्यमान है।[4] उड़ीसा के वाराही तंत्र नामक अप्रकाशित ग्रन्थ में इस भाव का स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है यथाः–महावराह वाहना।

भारतीय शिल्प में शूकर-वराह वाहन सहित वाराही मूर्तियां ईसा की 5-6 शती से मिलने लगती हैं। गुजरात में 'शामला जी' से ऐसी मूर्ति मिली थी जो बड़ौदा के राज्य संग्रहालय में क्रम संख्या 2-553 पर सुरक्षित

श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल, भूतपूर्व निदेशक, पुरातत्व व संग्रहालय विभाग, राजस्थान; सी० ६३४, गांधीनगर, जयपुर।

CC-0. Bhagavad P...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

एवं प्रदर्शित है।[५] यह हरे 'पारेवा' पत्थर की बनी है। यहाँ देवी का ऊपर का भाग खण्डित है, वह स्थानक अवस्था में शूकर-वराह के साथ प्रदर्शित है। इसी युग की एक आसनस्थ मूर्ति हमें समीपवर्ती स्थल 'आम्बर'[६] से मिली थी जो आजकल उदयपुर (राजस्थान) के राजकीय संग्रहालय में संख्या 151 पर अंकित है। यह भी पारेवा (schist) पत्थर की बनी है।

कुछ वर्ष पूर्व बड़ौदा विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग की खोज द्वारा पारेवा पत्थर की ही बनी आसनस्थ द्विभुजी वाराही मूर्ति पंचमहल (गुजरात) क्षेत्रान्तर्गत 'मातरिया' नामक स्थान पर प्रकाश में आई है।[७] इसी वर्ग की अन्य तत्कालीन मूर्ति अभी हाल में बड़ौदा के राज्य संग्रहालय ने खरीदी है जहाँ वह क्रम संख्या जी० आर० 540 पर अंकित है। मूर्ति की ऊँचाई 44 सेन्टीमीटर है और ऊपर से नीचे पूर्णतया सुरक्षित है।[८] इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान व गुजरात में ईसा की पांचवी-छठी शतियों में वराह मुखी एवं वराहा रुढ़ा वाराही देवी का मातृका रूप में पूजन पूर्णतया विकसित हो गया था जब कि अन्य स्थानों पर अभी तक इतनी पुरानी ऐसी वाराही प्रतिमाएँ नहीं मिली हैं जहाँ उसका वाहन 'शूकर वराह' हो। हां राज्य संग्रहालय लखनऊ की विवेच्य चतुर्भुजी कत्यूरी कलाकृति द्वारा उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में ईसा की आठवीं-नवीं सदियों में ऐसी वाराही का अंकन सुस्पष्ट हो जाता है। सम्भवतः भावी शोध खोज द्वारा इससे भी पूर्व की वाराही मूर्तियां अल्मोड़ा क्षेत्र में मिल जावें। मथुरा की प्रस्तर कला में तो इस अभिप्राय विशेष की अभिव्यक्ति अभी अपेक्षित है।

वर्तमान प्रसंग में उड़ीसा प्रदेश के अन्तर्गत 'हीरापुर' की योगिनी मूर्तियों का भी उल्लेख करना परम संगत होगा। यहाँ एक स्थान पर वाराही को शूकर-वाराह के ऊपर खड़ा दिखाया गया है।[९] अन्यत्र यहीं पर नृमुखी[१०] देवी को वराह के ऊपर प्रदर्शित किया गया है जिसको पंच वाराही के श्रेणी में माना जाता है। यह भी स्मरण रहे कि अभी तक वराहमुखी देवी वाराही के साथ शूकर-वराह का प्रदर्शन सप्तमातृका फलकों में नहीं प्रदर्शित कियां गया है जब कि पांचवीं-छठी शती में इस स्वरूप को अभिव्यक्ति करने वाली स्वतंत्र मूर्तियां पश्चिमी भारत (गुजरात-राजस्थान) में बनने लग गई थीं और कालान्तर में उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र में भी।

इस दृष्टि से राज्य संग्रहालय लखनऊ की विवेच्य वाराही मूर्ति (संग्रहालय पंजिका सं०65-173/4) सविशेष अध्ययन की सामग्री प्रस्तुत करती है और अद्यावधि अप्रकाशित रही है। इसके साथ अन्य तत्कालीन देवी मूर्तियाँ भी इस संग्रहालय में थिद्यमान हैं जिनसे उनको सप्तमातृका वर्ग का अभिन्न अंग माना जाना सुस्पष्ट है।

संदर्भ

१- आर० सी० अग्रवाल का लेख, भारती, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय; डा० वासुदेव शरण अग्रवाल स्मृति अंक, वर्ष १२-१४ (१९६८-७१); पृष्ठ १३४-१३५, चित्र फलक II।

२- उमाकान्त शाह. बुलीटीन आफ बड़ौदा म्यूजियम एण्ड पिक्चर गैलरी, बड़ौदा, अंक १३, चित्र संख्या ८, पृष्ठ १३।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

वाराही ६५·१७३/४

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Sri Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

३- जनवरी १९८३ के प्रथम सप्ताह में राज्य संग्रहालय लखनऊ के विद्वान निदेशक भाई डा० रमेश चन्द्र शर्मा की कृपा से संग्रहालय की सामग्री का अध्ययन करने का अवसर मिला था। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ और प्रिय श्री रस्तोगीजी का भी जो अध्ययन के समय मेरे साथ संग्रहालय के गोदाम में उपस्थित थे।

४- रत्न चन्द्र अग्रवाल, उपर्युक्त, चित्र फलक III.

५- उमाकान्त शाह, उपर्युक्त, चित्र संख्या ३६, पृष्ठ ५५।

६- रत्न चन्द्र अग्रवाल, उपर्युक्त, चित्र फलक ५, आर्ट्स आशियातीक, पेरिस, १२ (१९५६), चित्र ३ व ४, पृष्ठ १८०।

७- वी० एच० सोनावने का लेख, जर्नल आफ इण्डियन सोसाइटी आफ ओरिएण्टल आर्ट (नयी शृंखला), कलकत्ता, वर्ष ९, पृष्ठ ४२-४९, चित्र फलक १९, चित्र संख्या ४१। यह मूर्ति पारेवा पत्थर की बनी है।

८- यह भी एक अप्रकाशित मूर्ति है। इसके अध्ययन की सुविधा हेतु मैं निदेशक डा० एस० के भौमिक का आभारी हूँ।

९- एच० सी० दास, तांत्रिज्म—ए स्टडी आफ दी योगिनी कल्ट, दिल्ली, १९८१, चित्र फलक ११।

१०- वही, चित्र फलक १५।

CC-0. Bhagavad Pa...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

A UNIQUE TERRACOTTA KUṢĀṆA ROYAL FIGURE

K. S. Shukla

It is, generally, believed that the individual royal figures in stone were first introduced by the Kuṣāṇas due to their own tradition of establishing Devakulas in their palace-complex, though the earlier figures of royal personages and Naga kings seated in state are not wanting in the Mathurā Art[1], and references of Devakula in the Buddhist texts are abounding.[2] However, the most characteristic points of the Kuṣāṇa royal figures are those relating to their dress. They are mostly represented wearing trousers and a double breasted jacket, fastened with a girdle. The head is covered with a peaked cap provided with two flaps coming down over the ears, and the feet are protected by supple leather boots.[3] Evidently, this shows the Scythian influence on the Kuṣāṇa Art.

Nevertheless, the indigenous tradition of depicting a royal personage or a king is quite different from it and is also inspired with and deeply rooted in the ancient Indian tradition. In ancient Indian art-tradition the royal figures belonging to the Śuṅga-Kuṣāṇa periods are mostly dressed in dhoti and a scarf. They have a turban instead of a cap on the head. They are also bare-footed.[4]

With this brief account of the indigenous royal figures, it is worthwhile to throw some light on the unique terracotta royal figure discovered at Sanchankot in Unnao district of Uttar Pradesh. The detailed description of the Kuṣāṇa terracotta figure is as follows.

The royal figure (40×22 cms.) is seated on a dimunitive drum-like cushioned stool with his feet resting on a pedestal. Both of his hands, mutilated as they are, seem to rest on his thighs. He is bare-footed. His loin-cloth represents a dhoti that dangles down the knees. It is, probably, held up with a thin waist-band depicted by a

Dr. K. S. Shukla, 36, Shuklana, Bangarman, Distt. Unnao.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

horizontal band consisting of two lines carved round the waist. There is no upper garment except the sacrificial thread (Yojnopavita) with a cylindrical bead near the chest.[7] This royal figure is wearing armlets decorated with a triangular (leaf ?) motif as is seen on the Bodhisattva figures[5] of the Kuṣāṇa period and on the earlier Yakṣa figures of the Śuṅga period.[6] He wears a torque with a cylindrical bead of precious stone flanked with a round bead or pearl. What is remarkable is the depiction of the moustaches which are usually seen on the figures of the Gandhara Art. However, he wears no beard. The hair on cheeks and on chin are indicated with light indentations. The ridge and nostrils of his long nose are mutilated. His fish-shaped eyes are open and eye-balls are clearly shown. The ridge of eye-brows and a turban-like headgear are also distinctly shown. There is a thick round Kundala (ear-ring) in his right ear, and the ornament of the left ear is not known as it is broken.

The uniqueness of this terracotta figure lies in the fact that it is the only complete royal figure produced in the best tradition of Indian art with the exceptions of depicting moustaches on the face and amulet-string (yajnopavita) across the chest. Secondly, it falls in the category of portrait-figures. Thirdly, the tradition of depicting royal figures seated on the cushioned short stools is in clear contrast to the lion-seats or cushioned thrones[8] shown in the Mathurā and Gandhara Art. Lastly, the royal figure is not pot-bellied as is, generally, seen in the case of the Yakṣas like Kuber and his Gandharan counterpart Pañcika. Thus, it cannot be attributed to any deity or divinity but for a dignitary or a suzrain.

As regards its workmanship, it appears that the technique of using mould and hand-modelling was applied. The figure is hollow from inside. The moulded head with a short tenon was affixed in the modelled body. The elongated drum-like seat which is also hollow from inside is wheel-turned as the striation marks are quite clear, but it must have been stuffed with some combustible material like cow-dung or husk used as a core under the wet clay which was modelled into the desired shape with the help of fingers, dabber and scraper.

Thus, this royal figure, which denotes the syncretic character af Kuṣāṇa Art, is unique and outstanding in the whole repertoire of Kuṣāṇa terracottta art. The only example that stands in comparison to it is the one discovered at Kausambi from the Kuṣāṇa levels. It shows a female figure[9] seated in the same fashion.

REFERENCES

1. Dr. R. C. Sharma : *Mathura Museum and Art*, p. 98, figs. 23 and 57.
2. *Lalit Vistara*, pp. 82/9, 15, 17, 19.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Unique terracotta Kuṣāṇa royal figure

Reverse view

CC-0. Bhagavad Ram

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

3. G. Borovka : *Scythian Art*, p. 26.
4. Dr. V. S. Agrawala : *Mathura Art*, p. 136; Dr. R. C. Sharma : *op. cit.*, p. 101, fig. 27.
5. *Ibid.*, p. 245, fig. 152.
6. The armlet with feathered projections was prevalent in the Śunga period as well, see—V. S. Agrawala : *ibid.*, p. 113.
7. Amulet-string is seen on the chest of the Bodhisattva image found at Ganesara village in Mathurā district. Obviously, it shows the impact of Tantrism in the Kuṣāṇa period. This feature seems to have been borrowed from the Gandhara or hellenistic images.
8. *Ibid.*, p. 273, pl. LVII, fig. 196; Dr. R. C. Sharma : *op. cit.*, pl. 31,33,38,58, etc.
9. Dr. P. L. Gupta : *Gangetic Valley Terracotta Art*, p. 61, fig. 170.

CC-0. Bhagavad Ramanuja N...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

GUPTA RELIEFS FROM HARYANA

Devendra Handa

We know almost next to nothing about the art of Haryana during the Gupta period. The well-known Allahabad *praśasti* of Samudragupta refers to the fact that the Gupta emperor subjugated the republican Yaudheyas[1] who were ruling over Haryana and the adjoining territory then. Yaudheya coins of third-fourth centuries A.D. continued to circulate in the region as is evidenced by their discoveries from a large number of sites like Baghaula, Anvali, Sidipur Lova, Achchhej, Kharkhauda, Baland, Atayal, Meham, Karauntha, Sonipat, Panipat, Asandh, Dadri, Bhiwani, Hansi, Hissar, Sirsa etc. Samudragupta probably did not annex the Yaudheya territory and left it as an autonomous but tax-giving state. But for some gold coins of Samudragupta from Mitathal (district Bhiwani)[2] and Jagadhari (district Ambala)[3], there is no evidence of any Gupta connections with Haryana. Though there may not have been any effective political influence of the Guptas over Haryana yet it is quite evident that the region could not remain uninfluenced by the Gupta art impact. Terracottas found from Agroha[4], Sugh[5], Rohtak[6] and some other places[7] fall in line with Gupta style and tradition. Little, however, is known about the sculptural art of the state during the Gupta period, not because Gupta sculptures have not been found in Haryana but because they are not properly documented. During the course of our investigations, we have come across some interesting examples of Gupta art in Haryana which are being published here.

1. OSTIARY FROM ROHTAK (Fig. 1)

Rohtak is a well-known archaeological site[8] which has yielded Punchmarked, Indo-Greek, Kuṣāṇa and Yaudheya coins and coin-moulds, Kuṣāṇa sculptures, Gupta

Dr. Devendra Handa, 160/15A, Chandigarh-160 015. Photo Courtesy : Department of Archaeology and Museums, Harynna.

CC-0. Bhagavad Ram...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

terracottas, medieval coins and sculptures and other remains. Rohtak finds mention in numerous literary works also and is one of the oldest cities of Haryana.

About a century back, Rodgers[9] had noticed Hindu material utilized in the Adina and Kalan Masjids and some old sculptures near Gokarṇa kā Tālāb at Rohtak. In a recent visit to the site[10], we have discovered a part of the mottled red sandstone slab lying in the first mentioned building which originally seems to have been a very old Hindu temple. The slab, probably a door-jamb, shows typical Gupta quatrefoil pattern, vine scroll (*kalpalatā*) emanating from a conch, *kīrtimukha* decoration and an ostiary in a sunken niche. He is shown as standing to front in *ābhaṅga* pose, holding a long sceptre in his left hand resting the other on the waist. He wears *ekāvali*, ear ornaments, bracelets, a transparent lower garment and a long scarf whose free ends hang down gracefully from over the arms. His hair coiffure is typically Gupta. Though slightly mutilated, the face also betrays characteristic Gupta physiognomical features.

2. ĊATURMUKHA-LIṄGA FROM ROHTAK

The Gokarṇa Temple at Rohtak contains in its sanctum a loose Ċaturmukha-Liṅga measuring 30×26×22 cm. The faces protrude out of the cylindrical column and are depicted with matted locks. Being not in good state of preservation, the expression of the different faces cannot be discerned properly. The workmanship seems to be rather crude and the relief may be assigned to the later Gupta period marked by the decadent style.

3. SAPTA-MĀṬṚKĀ PANEL FOM ROHTAK (Fig. 2)

In this sanctum of the same temple is preserved another worn out loose piece, measuring 26×16 cm., representing five of the seven Māṭṛkās seated in European fashion.[11] Even the fifth figure is broken indicating the original panel to have depicted all the seven Mothers. The extant figures show somewhat bulky punches with right hand raised to the shoulder in *abhaya* and the left placed on the knee. The third figure may have been Vārāhī as it seems to have a sow-face. The extant relief indicates that some of the Māṭṛkās had other than human faces, animaline and perhaps avian also. The position of the right hand held up in *abhaya* turned sideways is an early feature.[12] The absence of Vīrabhadra or Gaṇeśa in the beginning is also notable. And so also is the absence of cognizances. This Sapta-Māṭṛkā relief may have been coeval with the preceding piece.

4. MUKHA-LIṄGA FROM GUJAR KHERI (Fig. 3)

Gujar Kheri is situated at a distance of about 25 km. north of Sonipat. It must

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Fig. 1. Ostiary from Rohtak

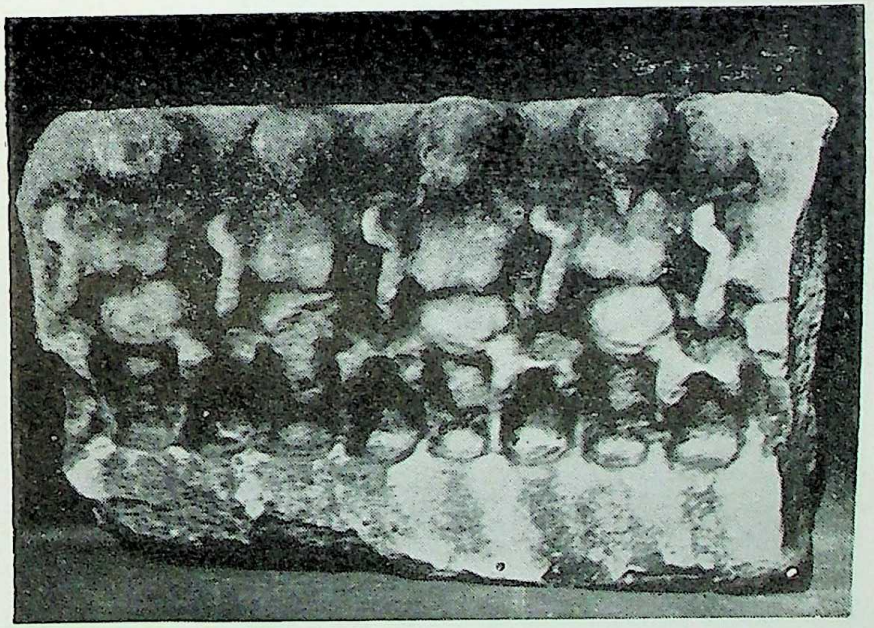

Fig. 2 Sapta Mātṛkā panel from Rohtak

CC-0. Bhagavad Ramanuja Nath

Fig. 3. Mukha-Linga from Gujar Kheri

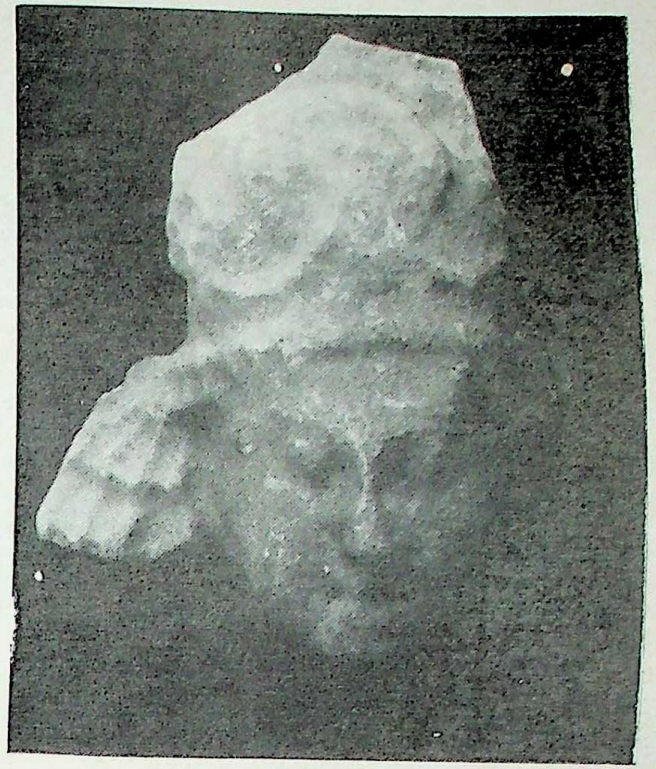

Fig. 4 Head from Kapālamoçana

CC-0. Bhaktivedanta Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Fig. 5 Gaṅgā on a pillar from Kapālamoçana

Fig. 6 Female head from Rithal

CC-0. Bhagavad Ramanuja Nath.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

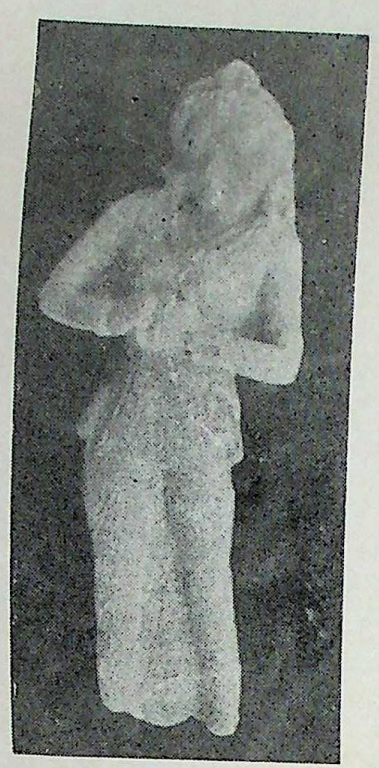

Fig. 7 Female from Gujar Kheri

Fig. 8 Nrisimha from Sirsa

Sri Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Fig. 9 Mahiṣamardinī from Sanghel

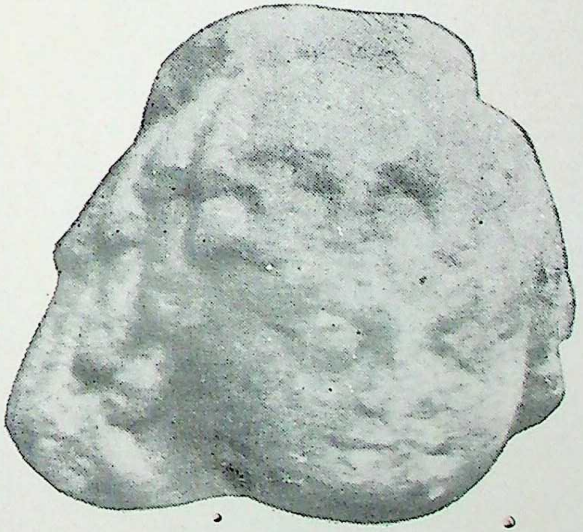

Fig. 10 Male head from Sondh

CC-0. Bhagavad Ramanuja N

Fig. 11. Male figure from Jind

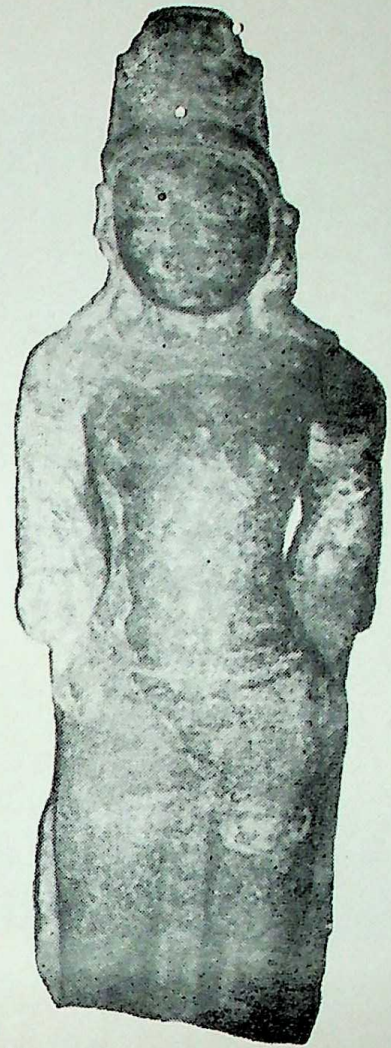

Fig. 12 Viṣṇu from Agroha

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

have remained an important city in ancient period as can be judged from its nearly 25 metre high mound spread over an area of more than 50 acres of land. It has yielded hundreds of old sculptures and carved pieces indicating the existence of numerous religious establishments. The mound yields Painted Grey Ware, early historic and medieval remains.

The present piece was obtained from this site and is now displayed in the Department of Archaeology and Museums, Haryana, Chandigarh.[13] Broken at the back and detached from the Liṅga, it shows the face with plump cheeks, thick lower lip, moustached upper lip, roundish eyes with drooping eye-lids, bow-like eye-brows with an *ūrṇā* and a horizontally placed third eye on the forehead. The nose is slightly damaged. The matted hair is worn in smooth bulging locks pulled up like a sheaf and stringed. The face betrays Gāndhāra impact and can well be compared with the face of Śiva in an inscribed Śiva-Pārvatī relief from Kaushambi[14] assignable to the last quarter of the fourth century A.D.[15]

5. HEAD FROM KAPĀLAMOÇANA (Fig. 4)

Kapālamoçana, situated about 15 km. north-east of Jagadhari on the left bank of the Sarasvatī river in district Ambala, is an ancient holy place[16] which has yielded old relics comprising Indo-Sassanian silver coins, Gupta carved bricks, a fragmentary Gupta inscription as well as coins, sculptures and ornamental stones belonging to the medieval period.[17]

The Department of Archaeology and Museums, Haryana has procured from this site a small and worn out head,[18] probably of Viṣṇu, which shows a disc or rosette in the centre of the crown with loops of pearls issuing from its hub and joined to the side rosettes. This type of crown is a characteristic feature of the Gupta period.[19] The serene face and physiognomy corroborate the date.

6. GAṄGĀ ON A PILLAR FROM KAPĀLAMOÇANA (Fig. 5)

A pillar from Kapālamoçana measuring 44 × 21 × 12.5 cm. in its extant form[20] shows Gaṅgā standing to front, wearing ear ornament, *ckāvali*, bracelets and a lower garment. She bears matted locks in *dhammilla* type of hair-coiffure. She holds a waterpot in the right hand raised to the level of the shoulder while her left hand is akimbo. The lower garment shows multiple folds.[21] The figure is carved in a sunken niche on one facet of the pillar.[22] A stylized crocodile, the mount of the river goddess, seems to have been incised below her feet on the face of the pillar. The upper portion shows vase and foliage motif. Though the figure has been carved rather crudely and carelessly, yet it clearly betrays Gupta features.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

A late Gupta Vaikuṇṭha image from Kapālamoçana has also been recovered and housed in the Department of Archaeology and Museums, Haryana.[23]

7. FEMALE HEAD FROM RITHAL (Fig. 6)

Rithal is situated at a distance of about 16 km. north of Rohtak. There are two old mounds at Rithal known as Majare Ālā and Būḍhā Kheḍā, each spread over about 5 acres of land. The former is almost level to the ground and yields Painted Grey Ware, Blach Slipped Ware and early historic pottery while the latter yields early medieval relics.

This beautiful female head, measuring 23.5×20 cm.,[24] was obtained from Rithal and is now displayed in the Department of Archaeology and Museums, Haryana, Chandigarh. The hair-do is the most attractive feature of this image. The hair combed backward, in smooth locks, has been gathered on the crown of the head in a top-knot (called *dhammilla*) and is adorned with golden chains which form loops alternating with free-ends around the puff. *Borla*, a central pendant with petalled design on the forehead, is flanked by clusters of arched locks on either side of this boss and adds further grace to the coiffure.[25] The lady wears large earrings and bears a beautitudinous expression. Quasi-closed almond eyes, plump cheeks, full lips and prominent chin betray typical Gupta art. The nose of the figure is damaged. The boldness of scale so characteristic of the early period seems to persist in Gupta sculpture in Haryana as evidenced by this bigger than the normal human head.

8. FEMALE FIGURE FROM GUJAR KHERI (Fig. 7)

A beautiful female figure, unfortunately with feet broken, was also recovered from Gujar Kheri.[26] It measures 23.5×10 cm. A small tiara, earrings, *ekāvali*, sewn sleeved upper garment and a *dhoti* can be seen on her person. She stands with a slight flexion holding some (musical ?) object in both her hands in front. Being covered by the jacket her breasts are not very prominent. The facial features, too, are not very clear. Incised lines mark the folds of the lower garment. The jacket seems to be a continuation of the Kuṣāṇa dress. Stylistically, the figure may be assigned to the late Gupta period.

9. NṚSIṀHA FROM SIRSA (Fig. 8)

A broken figure now in a private collection at Sirsa[27] represents the upper part of Nṛsiṁha. The god is shown as tearing the stomach of Hiraṇyakaśipu with his left claw. The demon and the portion below the chest of the god is missing. Right arm is also completely lost. The god has round bulging eyes, long lolling out tongue and ferocious

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

face with sharp fangs. Long manes falling on both the shoulders add to the ferocity. The god also wears a bandolier (*channavīra*) consisting of triple-stringed cross-band fastened with a small circular clasp at the chest. An armlet on the left arm is also visible. Stylistically, the image may be assigned to the late Gupta (verging early medieval) period. Being, however, the earliest example of Nṛisiṁha images found from Haryana so far, it is an important icon from the religious and iconographical view-point also.

10. MAHIṢAMARDINĪ FROM SANGHEL (Fig. 9)

Sanghel is situated about 13 km. south-east of Nuh on the bank of the Sahibi in district Faridabad. There is a 25 metre high mound here covering about 16 acres of land. It yields Painted Grey Ware, early historic and medieval remains.

A fragmentary relief showing the lower portion of a Mahiṣamardinī image from this site is now housed in the Department of Archaeology and Museums, Haryana at Chandigarh. Measuring 24×21 cm.,[28] the extant relief shows the goddess pressing the face of the buffalo with her right foot and lifting it by the tail with her left hand. With her right hand, now broken, she is thrusting the trident into the back of the buffalo. The left foot of the goddess rests on the ground in *sama* pose. The helplessness of the buffalo has been delineated very beautifully in this relief. Lion, the mount of the goddess, is conspicuous by its absence. Stylistically, it is a typical Gupta relief.[29]

11. MALE HEAD FROM SONDH (Fig. 10)

Sondh is an old village located on Nuh-Hodal road, about 6 km. west of the former, in tahsil Palwal of district Faridabad. An extensive mound spread over more than 30 acres and about 25 metres high, seems to represent an ancient town which remained under occupation from *circa* 1000 B.C. for more than two millennia as evidenced by Painted Grey Ware, early historic and medieval remains picked up from here.

A spotted red sandstone male head measuring 21×20.5 cm. found from Sondh[30] shows corkscrew curls falling on both sides of the face in a typical Gupta style. The oval face bears lotus-shaped eyes, prominent eye-brows and nose and a placid expression.

12. FEMALE ATTENDANT FROM SONDH

A fragmentary figure of buff sandstone, measuring 12.75×9.0 cm., representing the bust of a female attendant of some deity is also said to have been found from

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Sondh.[31] The figure bears youthful appearance. The hair is finely combed and coiffured in *chatrākākāra* form. She wears large earrings and a necklace. The face is partially mutilated. Ornamentation, coiffure and style indicate it to be a Gupta relief.[32]

13. MALE FIGURE FROM JIND (Fig. 11)

Jind is an ancient holy place and a well-known district headquarter of Haryana.

A male figure, probably Viṣṇu, found from Jind is now in a private collection.[33] The head, arms and legs below knees are missing. The sinewed body, the torque, the thickness of the twisted rope-like sash, groove to mark the navel, the pleats of the *dhotī* on the pubic region[34] and the free ends of the simple girdle falling on the side of the left thigh leave little doubt to its being a Gupta relief.

14. VIṢṆU FROM AGROHA (Fig. 12)

Agroha in district Hissar is a well-known archaeological site.[35] This image of Viṣṇu in mottled red sandstone is now housed in the Gurukula Museum, Jhajjar.[36] It is nearly 1.35 metre high. Unfortunately, the feet are missing. The god stands in contraposto wearing a typical Gupta crown,[37] ear ornaments, armlets and lower garment. *Vanamālā* may also be seen on the arms. The god seems to have possessed two arms but both are broken below the elbows. The face is round and serene with half-closed eyes, plump cheeks and full lips. One only wishes the figure to have been a complete image to give us an exact idea of its true form.

Gupta reliefs of Vaikuṇṭha from Gharaunda and Kaithal and a Sūrya image from Pehowa have been described and discussed by us elsewhere.[38]

These reliefs[39] make it clear that Haryana is not completely devoid of Gupta images. Persistent work may bring to light many more such sculptures in the region in future.

REFERENCES

1. J. F. Fleet, *Inscriptions of the Early Gupta Kings and Their Successors, Corpus Inscriptionum Indicarum*, Vol. III, 3rd ed., Varanasi, 1970, p. 8, line 22.
2. C. R. Singhal, *Bibliography of Indian Coins*, Vol. I, p. 83.
3. C. J. Rodgers, *Report of the Archaeological Survey of India, Panjab Circle*, 1888-89, List of Coins, p. 5, No. 97.
4. H. L. Srivastava, *Excavations at Agroha (Punjab)*, Memoirs of the Archaeological Survey of India, No. 61, Delhi, 1952, Pl. IX. Excavations of the site by the

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Department of Archaeology and Museums, Haryana continuing from 1978-79 have yielded some beautiful Gupta terracottas which we hope to publish soon.

5. Suraj Bhan, "Excavations At Sugh (1964 and 1965)", *Journal of Haryana Studies*, Vol. IX (1977), pp. 34 ff.
6. *Indian Archaeology 1962-63 A Review*, p. 17, Pl. XLIV.A.
7. Alexander Cunningham, *Archaeological Survey Report*, Vol. XIV, pp. 97 ff., Pl. XXVII; S. P. Shukla, *Sculptures and Terracottas in the Archaeological Museum Kurukshetra University*, Kurukshetra, 1983, pp. 73-74, Pl. LVI.1 etc.
8. See for details Devendra Handa, "Some Important Towns of Haryana : A Study of their Ancient Past", *Journal of Haryana Studies*, Vol. II (1970), pp. 6 ff.
9. Rodgers, *op. cit.*, p. 74.
10. I am thankful to my colleague Shri D. S. Malik who accompanied me on this visit.
11. J. C. Harle, *Gupta Sculpture*, Oxford, 1974, Pl. 27.
12. Gupta relief from Badoh-Pathari also shows the Mātṛkās seated in the same fashion (*Ibid.*, Pl. 27).
13. Accession No. 1/87. It measures 15.5×11 cm.
14. Harle, *op. cit.*, pl. 53. Also cf. V. S. Agrawala, *Gupta Art*, Varanasi 1977, Illustrations 8 and 10.
15. Joanna Gottfried Williams, *The Art of Gupta India*, New Delhi, 1982, pp. 36-37, pl. 31.
16. Devendra Handa, "Kapāla-Mocana : An Ancient Holy Place", *Purāṇa*, Vol. X, No. 2 (July, 1968), pp. 148-53.
17. *Ibid.*
18. Accession No. 1/102. It measures 27.5×20 cm.
19. Harle, *op. cit.*, p. 18 and pls. 8, 18, 61, 62 etc.
20. Accession No. 1/307.
21. Harle, *op. cit.*, pl. 139.
22. This feature, too, is commonly met with in Gupta art cf. *Ibid.*, pls. 56-60; Williams, *op. cit.*, pls. 101-02; Pramod Chandra, *Stone Sculpture in the Allahabad Museum*, Poona, 1970, pls. LXVIII-LXIX etc.
23. Devendra Handa, "Vaikuṇṭha Images from Haryana", to be published elsewhere.
24. Accession No. 1/28.
25. Cf. Agrawala (1977), *op. cit.*, Ills. 26-27.
26. Accession No. 1/104.

CC-0. Bhagavad Ramanuja N...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

27. It belongs to Sh. L. D. Sharma of Sirsa. I am thankful to his son who allowed me to photograph it for publication.
28. Accession No. 1/394.
29. Cf. Mahiṣamardinī outside Cave 6 at Udayagiri (Harle, *op. cit.*, pl. 17) and in a *Caṇḍraśāla* from Bhumra belonging to fifth century A.D.
30. It was noticed by Dharmpal Singh Punia, *Archaeology of Mahendragarh and Gurgaon Disiricts* (*Haryana*), Unpublished Thesis, Kurukshetra University, Kurukshetra, 1976, p. 194, pl. XXVI.A.
31. *Ibid.*, pl. XXV.B.
32. Punia described and illustrated two female attendants also which he ascribed to the late Gupta period (*Ibid.*, p. 195, pl. XXVI.B). The frieze, however, appears to belong to the early medieval period,
33. It belongs to Mr. Gulshan Bharadwaj, a connoisseur collector of coins and antiques of Jind.
34. For pleats of the lower garment on the raised pubic region carved in a similar fashion see Harle, *op. cit.*, pls. 87 (Viṣṇu from Bhinmal) and 112 (Narasiṁha from near Mathurā).
35. Srivastava, *op. cit.*; Handa (1970), *op. cit.*, pp. 1-5.
36. Silak Ram, *Archaeology of Rohtak and Hissar Districts* (*Haryana*), Unpublished Thesis, Kurukshetra University, Kurukshetra, 1972, p. 214, pl. XXII.B.
37. Silak Ram (*Ibid.*), wrongly assigns it to the Śaka-Kuṣāṇa period.
38. *Supra*, fn. 23; "Some Interesting Sculptures from Pehowa", *Panjab University Research Bulletin* (*Arts*), Vol. XVI, No. 1 (April, 1985).
39. The so-called Buddha head and Hārīti from Mohanbari, thought to be Kuṣāṇa images by Sheela Devi (*Art Tradition in Haryana*, Unpublished Thesis, Kurukshetra University, Kurukshetra, 1978, pp. 123 and 126 and pl. XXXIII.B. and E respectively) are actually Gupta images of Viṣṇu and a Mātṛkā. She has also wrongly attributed Buddha heads from Thanesar and Sanghi, Viṣṇu from Agroha and a frieze from Pinjore to the Gupta period (*Ibid.*, pp. 127-30, pls. XXXIII.C and D, XVIII.A and XXIX.D respectively). They are all medieval images already published. For details see Shukla, *op. cit.*, p. 49, pl, XLII.2 (for the so-called Buddha head from Thanesar); Acharya Bhagwan Deva, *Haryānā Ki Saṅskṛti*, Language Department, Haryana, 1967-68, pl. opposite p. 28 (for Buddha head from Sanghi); D. C. Bhattacharyya, *Medieval Indian Sculpture in the Govt. Museum and Art Gallery*, Chandigarh, 1981, pp. 43-45, Fig. 14 (for Viṣṇu from Agroha) and Devendra Handa, "Some Sculptures from Punjab and Haryana", *Panjab University Research Bulletin* (*Arts*), Chandigarh, Vol. VII, No. 1, April, 1976, p. 96, Fig. 8 (for the relief from Pinjore).

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

NOTES ON MEGHA–ḌAMBARA

S. P. Tewari

The epigraphical reference to the term *meghaḍambara* is met in the Karuvur inscription of Virarajendra I. As gleaned from the text of the record and also the English translation of it supplied by Hultsch who has edited the same in the pages of the volume three of the South Indian inscriptions,[1] it figures in the context where the defeat of Chālukya king Ahavamalla is reported. For the better understanding of the actual import of the term *meghaḍambara*, it would be worthwhile to cite the English rendering of the relevant line of the record.

It says that 'the king (Virarajendra) stopped his fast furious elephant, put on the garland of victory, seized his (Ahavamalla's) wives, his family treasures, conches, parasols, trumpets, drums, canopies, white chāmaras, the boar—banner ... etc. and, amidst (general) applause, put on the crown of victory.....'[2].

What we notice from the above is that the term *megha-ḍambara* rendered into English by Hultsch as canopies figures in the context where Ahavamalla is said to have lost all his marks of Royal insignia at the hands of Virarajendra. In other words, whatsoever may be the actual import of the term *meghaḍambara* (which we shall see in the sequel) this much is certain that it was one of the important marks of royalty.

Having rendered the term *megha-ḍambara* into canopies, Hultsch has added a foot note to the same where on the authority of Platt's *Hindustāni Dictionary* and Lane-poole's *Aurangzib* which quotes Bernier's *Travels* he remarks that in the times of the Mughals the word (*meghāḍambara* or *meghaḍambara*) had the meaning of a 'covered haudā'.[3]

As late as in the year 1966, Sircar has included the term *meghāḍambara* though not the *megha-ḍambara* which actually figures in the record as one of the entries in his *Indian Epigraphical Glossary* and has given credence to its meaning as 'a covered howda'[4] against

Dr. S. P. Tewari, Deputy Superintending Epigraphist, Office of Chief Epigraphist, Mysore.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

the rendering of the same as canopies from Hultsch. In other words, what has been referred to as one of the subsidiary meanings of the term from Hultsch has been accepted by Sircar as its primary sense although the real import of the term which also suits the context and to which Hultsch has given his first credence, has somehow been totally ignored.

Even if we admit that during the time of Mughals as reported by Bernier and later on also supported by Sircar, the term *megha-ḍambara* was taken in the sense of a covered howdā kept on the back of an elephant, the sense does not seem tenable in the above context. Here, as we have seen, the term *meghaḍambara* figures along with so many other significant marks of royalty like family treasures, conches, parasols, trumpets, drums, chāmaras and the banners etc., which were considered the indispensable royal emblems. A howdā whether covered or not covered kept on the back of the royal elephant as far we know has never been considered in itself a royal emblem. It was kept on the back of the animal just for providing a little more comfort to the royal rider. Whereas a canopy which suspended from or held over the throne, bed or the person of the king was considered an absolutely indispensable emblem of royalty. In fact a canopy does include a *chhatra* or the royal-umbrella as well and that has been time and again considered as one of the most significant and indispensable emblem of royalty also. In the words of Kalidāsa Raghu could easily part away anything but the umbrella held over him and the two chauries which were waved on his person; *adeyam-āsīt-trayam-eva bhūpateh śaśi-prabhaṁ chhatramubhe ch-a chāmare.*[5] This could part away the person of a king only in two conditions that were either when he was defeated by his enemy or he was dead.

We therefore, think that the reference to the term *megha-ḍambara* in the present context is made in the sense of a *chhatra* which was snatched away from the person of Ahavamalla on account of his defeat in the hands of Virarajendra.

In order to substantiate our view it will not be out of place to look into the antiquity of the usage of the term *megha-ḍambara* and the various shades of the meanings applied to it.

Amongst the early lexicans of the Sanskrit language like the *Amara kesha, Trikāṇḍaśesha Holāyudha, Vaijayanti* and others, the term *megha-ḍambara* as such does not figure in the list. Whereas in the modern Dictionaries of the Sanskrit language like that of Monier Williams, Apte and others, the term *megha-ḍambara* is found explained as a cloud-drum, or a thunder and the word *ḍambara* as an entanglement, multitude or a mass of something. Strangely enough, these dictionaries do not cite any authority

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

whatsoever in support of the meaning they have arrived at. On the other hand Forbes in his Dictionary of English and Hindustani and viceversa, explains the term canopy in the sense of a *sā-e-bān*, *chhatra*, *Shāmiyānā*, *chandwā nautā* and *megha-ḍambara* etc.,[7] though he has also not cited any reference-work in support of the meaning derived.

But, curiously enough the term *megha-ḍambara* besides the inscriptional evidence under context, figures in the *Manasollāsa* of the Chālukya king Someśvara and that too with reference to the context which deals with the details of the royal umbrella. This, as far we could ascertain, the earliest literary reference to the term *megha-ḍambara*, has more than one significance to our purposes.

First of all the curious reference to the details of *megha-ḍambara* comes from the work of a succeeding ruler of the same family as that of Ahavamalla whose *megha-ḍambara* was unfortunately snatched away by the Virarājendra.[8] Thus, in the present context what Someśvara details regarding *megha-ḍambara* should certainly be considered as more authentic than the travel reports of Bernier quoted by Lane-pool.

Secondly, an object like *megha-ḍambara* being so familiar to a king, who else can be a better judge regarding its identity, than Someśvara himself who happens to be a king in his own right ?

Someśvara, having described various types of *bhogas* or the enjoyments of the kings comes to refer to *chhatrabhoga* as under :

Idānim chhatra—bhogo=yam kathyate RĀJA—vallabhaḥ.
Hema—paṭṭa nibaddhena daṇḍenoparidhāritam.

* * *

Puṇḍarika—sitachchhatram rājayogyamanuttamam
Nila—paṭṭa—nibaddhāni raupy—daṇḍadhṛitānicha.[10]
Nānā-varṇṇa vichitrāṇi jhallarībhir-yutānicha
Megha-ḍambara-nāmāni chāmarottaṁsitāni cha[11]
Chhatrāṇi vilasat-kānti-maṇibhir-jaḍitāni cha[12]

It means that a royal umbrella which was made to suspend from a staff that was covered with gold used to be white (like lotus) in its outwardly appearence. The inner side of it was made to stretch wide with the help of silver made rims. The interior of it was covered with blue-silk and the *jhallaris* of different colours. On the (circular border) of it used to hang small chowries all around. Such an umbrella of the kings was known as *megha-ḍambara*.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Later on in the works of fourteenth and fifteenth century the term *meghaḍambara* figures in the list of silk stuffs. According to Motichandra the terms like *megha varṇa* and *megha-udumbara* of the *Varṇaratnākara*[13] of Jyotirīśvara Thakkura (a Mathila from Tirhut—Bihar, who wrote in his mother dialect around the early quarters of the fourteenth century) and the *Varṇakas* like *megha-ḍambara*, *meghāḍambara* and *meghāvali* etc., collected in the *Varṇakasamuchchaya*[14] and also referred into the *Jimaṇavāraparidhānavidhi* seem to be all analogous.[15] The *megha-ḍambara* according to Motichandra is commonly referred in the old Bengali literature as a name of a variety of *sāri* which as black in colour or something like the *nilāmbari* of the present day.[16]

Furtheron, the reference to *meghaḍambara* in the *Ain-i-Akbari* of Abul Fazl Allāmi comes in the sense of 'an awning (which was meant) to provide shade to the elephant driver. It also looked ornamental and according to him it was an invention of His Majesty himself.[17]

Tulasidāsa (one of the celebrated poets of Hindi) who, inspite of his altogether different theme and the language, happens to be one of the contemporaries of Abul Fazl, refers to the term *megha-ḍambara* in the sense of a *chhatra*. While describing the large canopy held over the person of Rāvaṇa the king of Lankā he comments as under :

Chhatra megha-ḍambara sira dhāri. Soi janu jalada-ghaṭā ati kāri.[18]

i.e., a *megha-ḍambara* type of *chhatra* is held over the head of Rāvaṇa which looks as if a mass of watery clouds are hanging on him.

At a later date, V. S. Agrawala, while refering to the *māyāmegha-mālā* phrase from the *Kadambari* of Bāṇabhaṭṭa[19] has dealt with the actual import of all such terms like *megha-mālā*, *gaja-tāluka*, *meghodara* and *megha-ḍambara* at length. He considers both *megha-mālā* and *megha-ḍambara* as analogous.[20] On the authority of the *Aparājita pṛichchhā* he explains that the inner side of the ceiling (*vitānachchhada*) of a temple was decorated first with the full-blown lotus and then circling it there used to be a double row of clouds made, which was joint with another motif designed as the palate of an elephant. Here, the row of clouds was known as *megha-mālā* and the elephant's palate like design as *gaja-tāluka*. Finally all the three (i.e., the lotus design, the row of clouds and the *gaja-tāluka*) together were known as *meghodara*.[21]

The design of *megha-mālā* which is supposed to be synonymous with that of *megha-ḍambara*, according to Agrawala has been well-recognised in the field of Indian decorative arts as early as in the Gupta period itself. Infact, in the paintings of Ajanta caves a good number of *megha-mālā* designs are noticed in connection with the decoration

National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

of the ceilings, wherein a mass of clouds rising in the sky are nicely painted.[22] As gleaned from the works of medieval Hindi literature the design of *megha-mālā* was closely associated with the decorations of *chhatras* and *chandowas* a sort of canopy). When this decoration with the help of multi-coloured silk-fabrics was applied to a *chhatra,* it was described as *megha-ḍambara* like the one referred to by Tulasi.[23] The same design of *megha mālā* done while decorating a *Chandowā* has been described as *dala-bādala* by Usmana in his *Chitrāvali* as under :

Dala-bādala jahaṅ ambara chhāvā. Sasi sūraja tehi māṅha banāvā.[24].

In the opinion of Agrawala the decoration known as *jala-chādara* which was invariably done with the ceilings of the apartments called *sāvana-bhādon* of the Mughol buildings like it is noticed in such apartments of Delhi and Lahor forts, was almost another name of *megha-ḍambara* itself. This is what, as he believes which has been described by another Hindi poet called Bihāri in the following words :

Sahaja seta pachatoriya pahirai atichhabihota. jala-chādara kedeepa jyoṅ jagamagāti tana jyoti.[25]

Thus, what we gather from the number of references to *megha-ḍambara* cited above, is that originally it was a decoration made or painted in case of the ceilings of caves, temples and houses with the help of various colours arranged in such a way that they gave the impression of the multitude of watery—clouds along with the lightening ; many times appearing with the complexion of a rain-bow (*indra-dhanusha*)[26] *and in case of the interior of* the objects like *chhatra chandowa* (or *Shāmiyāna*) the same was made with the help of blue-silk arranged with so many pieces of other colourful silk fabrics.

The reason why Abul Fazl preferred to call even the awning fixed on the back of the elephant for providing shade to the rider as *megha-ḍambara*[27] also seems to be the same as explained above. Since the *shāmiyānā, sā-e-bān, chandowā* or the *nāmgira* on account of their interior being decorated with *megha-mālā, megha-ḍambara, dala-bādala* or the *jala-chādara* designs were already familiar with the name of *megha-ḍambara* prior to the Mughal period, once when such objects were fixed on the back of the elephant as a part of the fashion of the time (which according to Abul Fazl was introduced first by Akbar himself)[28] the whole thing came to be known as *megha-ḍambara.* No wonder, if such an extended sense of the term *meghaḍambara* in due course of time, came to cover the sense of even a 'covered howdā' which usually included a *sā-e-bān* or even the royal—umbrella (in case of Emperor being the rider) as an integral part of it.

CC-0. Bhagavad P...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

REFERENCES

1. S. I. I., Vol. III, No. 20, pp. 31-32, 34 (line 8) and 37.
2. *Ibid.*, p. 37.
3. *Ibid.*, p. 37, fn. 5.
4. Sircar, D. C., *Indian Epigraphical Glossary*, Delhi, 1966, p. 202.
5. *Raghu*, III.16. For the translation of the same idea in the field of visual arts see Yazdani *Ajanta*, Vol. II, p, 37, pl. XXXV.
6. *Sanskrit Eng. Dictionary*, ed. M. Williams, pp. 832 and 430 respectively. Apte's Dictionary, Part II.
7. *A Dictionary of Hindustani and English accompanied by a reversed Dictionary, Eng. and Hindustani* by Duncan Forbes, London, Part II, p. 37.
8. Cf. the dates of Virarajendra and Ahavamalla falling in between 1050 A. D. to 1070 A.D. (vide S. I. I., Vol. III, pp. 21-32) and the early dates of Someśvara being 1124-25. (vide *Manasollāsa*, Vol. I, Introduction, p. VII, ed. by G.K. Shiigondekar, Baroda, 1925).
9. *Mānasollāsa*, Vol. I, Vim. III, ch. XVII.60.
10. *Ibid.*, 63.
11. *Ibid.*, 64.
12. *Ibid.*, 65.
13. *Varṇaratnākara*, ed. S. K. Chatterji and B. Misra, Calcutta, 1940, 35 *Kha*, p. 21.
14. *Varṇakasamuchchaya* ed. by Sandesara, B. J., Baroda, 1956, Vol. I, 34.1, 35.1, 181.5 etc.
15. *Costumes, Textiles, Cosmetics* and *Coiffue* by Motichandra, Delhi, 1973, pp. 148, 153 and 160.
16. *Ibid.*, p. 160. See also the *Journal of Indian Textile History*, Vol. I (1955), p. 29, quoted by Motichandra.
17. *The Ain-i-Akbari* by Abul Fazl 'Allami' translated from the original Persian by H. Blochmann, Calcutta, 1873, Vol. I, p. 129.
18. *Ramacharitamānasa* of Tulasi, ed. by Viśvanatha Misra, Kasi, V1.12.4.
19. Cf. *kvachit-sphaṭika balākāvali vānta vāridhārā likhit-endrāyudhāḥ sañchāryamāṇa māyā-megha-mālā of Kādambari*, (N. S. edition Bombay, 1921), I, p. 382.
20. *Kādambari eka Sāmskṛitika adhyayana* by V. S. Agrawala, Varanasi, 1970, pp. 222-23, fn. 2.
21. *Ibid.*, see also *Aparājitapṛichchhā*, (290/47), p. 496/192/47, which explains it as under :

National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Kamalodbhavasya bāhye megha mālā dvayodbhavaḥ;
Gaja-tālukākṛiticha valaṇair-ashṭadhākulam.

22. *Ajanta*, by Yazdani, Vol. II, pl. Xa, XXVI, XXX, XLVII-c, XLIX-d; see also *Ajanta* by Raja Sahib Aundh, pl. 45, ceiling of the cave number 2.
23. *Op. cit.*, fn. 18.
24. *Chitrāvali* of Usmana, 18/2, quoted by Agrawala, *op. cit.*, p. 223.
25. *Bihāri Satasai*, 516, quoted by Agrawala.
26. Cf. *Kādambari* where Baṇa describes such colourful designs either painted or vowen as *indrāyudhajāla-ruchirāmbara*, (vide Agrawala, *op. cit.*, pp. 182/183; 80/97; 182/184 etc.).
27. Cf. fn. 17 above. What Blochmann (the translator of the *Ain-e-Akbari*) prefers to render into awning, is the same as *shāmiyānā*, *sa-e-bān*, *chandowā* or the nāmgīra, (vide Forbes, *op. cit.*, p. 17).
28. As we know particularly from the survey of ancient Indian art and also the literature to some extent, the *howdā* added with an elongated *sā-e-bān* on the back of the elephant is not noticed earlier than the Mughal period. During Hindu period right from the early times, it was a simpie thick-cushion covered with a rich carpet (known as *kutha*, *saṁstaraṇa* and *āsana* etc.) which was generally kept on the back of the elephant used for riding. The *chhatra* above the rider was held only when the king was riding on the state-elephant and not otherwise. Therefore, the statement of Abul Fazl that keeping of a *howdā* attached with a *sā-e-bān* on the back of the elephant was introduced for the first time by the emperor Akbar seems convincing.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. M

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Sri Vedanta Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

A NONPAREIL THREE-FACED DEITY IN THE SUN TEMPLE AT MOḌHERĀ

Maruti Nandan Pd. Tiwari
& Kamal Giri

Moḍherā, once a flourishing city, is now a small village, situated eighteen miles south of Patan in Mehsana district of Gujarat. The famous Sun temple at Moḍherā, although much dilapidated, consists of the *mūlaprāsāda* (sanctum) with circumambulatory, the *antarāla* (vestibule), the *gūḍhamaṇḍapa* (closed hall), the *mukhacatuṣki* (porch), axially aligned but detached *sabhāmaṇḍapa* and a large tank with a number of *devakulikās* (miniature shrines). The temple, assigned to the reign of Solaṅkī king Bhīma I (1024-66) of Gujarat,[1] is undoubtedly one of the most magnificent and imposing ancient structures in the region (Fig. 1). The architectural and sculptural embellishments in the temple are harmoniously integrated. Besides the Sūrya icons, there are several such figures which are particularly interesting from the point of iconographic study. Some of the composite forms of Sūrya, namely, Sūrya-Brahmā, Sūrya-Nārāyaṇa, Sūrya-Śiva, rarely found elsewhere, are also interesting (Fig. 2). Likewise, the figures of eleven unidentified goddesses forming a group and revealing Śaiva character, three-faced Kārttikeya on the main temple, and Śītalā and ten-headed Rāvaṇa in the *devakulikās* of the Sūryakuṇḍa also merit attention. The friezes exhibiting various aspects of contemporary life, and the depiction of narrative scenes from the *Rāmāyaṇa* and the *Mahābhārata* are equally important.

The figure of a three-faced, three-armed and three-legged deity in the temple, is indeed quite intriguing (Fig. 3). Though its identification has been attempted, we have not encountered any literary injunctions or sculptural representation corresponding to the present figure. The present paper endeavours to identify the figure on the basis both of literature and sculptures at our disposal.

Dr. Maruti Nandan Pd. Tiwari and Dr. Kamal Giri, Lecturer, Deptt. of History of Art, Banaras Hindu University, Varanasi-221005.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The image, under discussion, is carved in a niche on the eastern façade of the *gūḍhamaṇḍapa*, resembling in dimensions the principal deities in the temple. The three-faced figure wearing *karaṇḍa-mukuṭas*, standing in *tribhaṅga*, possesses three arms and three legs. Besides other usual ornaments, such as necklaces, armlets, bracelets, girdle with several suspended loops, the figure also wears a long garland (*vanamālā*) hanging down to the knees. Of the three hands, two are on the right while the remaining one is on the left. The figure, heavily encrusted with oil and red paint because of active worship by the villagers, is locally called Kāla-Bhairava. The attributes held by the deity, though much mutilated, may distinctly be identified as sword and the small dagger in the right hands and a skull-cup, in the left. Although the head of the *vāhana* carved on the right side of the deity, is damaged but on the basis of the surviving portion it may be identified with a *meṣa* (ram) or bull (?), and in no case a horse, associated with Sūrya. Over the shoulder of the deity on right, there appears a hovering *mālādhara*, will on corresponding left, there stands a female figure with her right hand, somewhat raised, in *stutimudrā*. In the same manner, close to the feet on right, there appears a figure, probably of some devotee, now much mutilated, while on the left, there stands a male attendant with his one hand raised in *stuti*. The iconographic features undoubtedly reveal that the figure represents either three different aspects of the one and the same deity, or three different deities. In any case, the figure suggests triad concept, and hence it may be called *saṁghāṭa* or syncretic icon as well.

To our knowledge, so far only James Burgess and Henry Cousens have attempted the identification of this figure.[2] Burgess and Cousens are inclined to identify the figure as Agni, since they find Agni to be the only god who is sometimes represented with three legs and even with unequal number of hands, four on the right and three on left.[3]

The *Ṛgveda* invokes Agni with a flaming orb, having three heads and seven rays, with three tongues, four horns, three feet[4] and seven arms.[5] Although Gopinatha Rao has referred to two such south Indian images of Agni which somewhat correspond with the above injunctions, yet their parallel in north India is still to be discovered. The north Indian images of Agni, on the contrary, show him invariably as having one head, and two or four arms with flames forming a nimbus, and carrying, rosary, *sruk* (or *sruva*), water-vessel, and sometimes a manuscript also. He rides a *meṣa* and is usually represented as pot-bellied, sometimes bearded, with *jaṭā-jūṭa*.[6] The figures illustrated by Gopinatha Rao are found in the Śiva temples at Kaṇḍiyūr (Travancore) and Chidambaram. Both figures have two heads, seven arms and three legs. Of the seven arms, four are on the right and the remaining three on the left. The heads in the first figure are of the goat, while in the latter they are human heads. The *vāhana* in the latter case is a bull, and not a ram.[7]

...ic National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

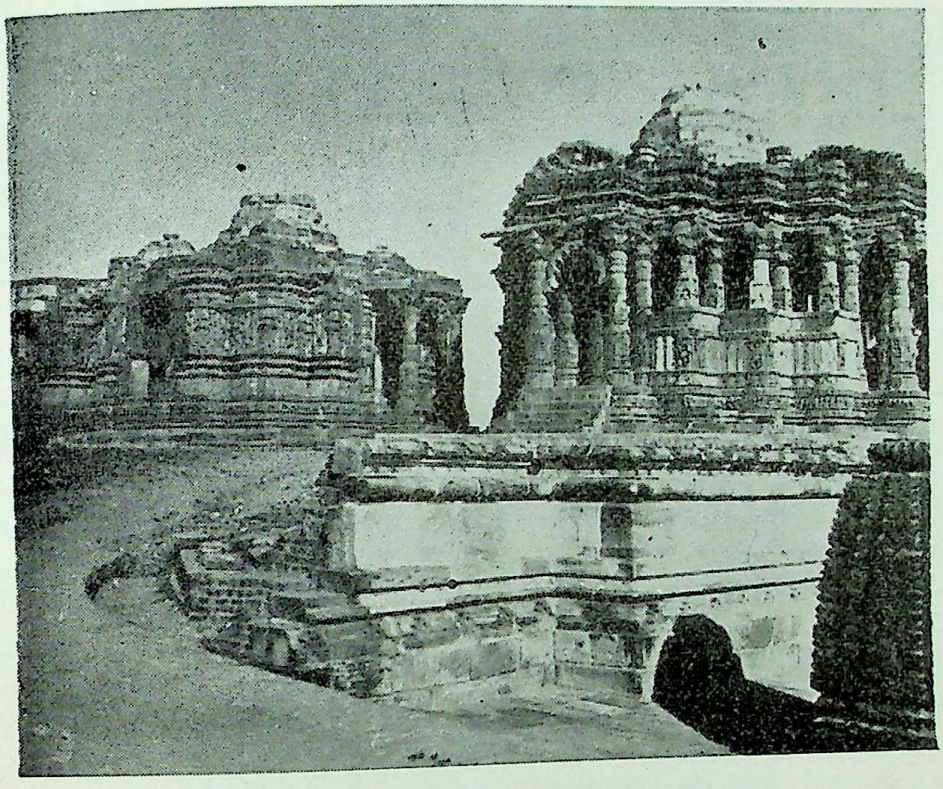

Fig. 1. Sun Temple, Modherā, General view

CC-0. Bhagavad P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

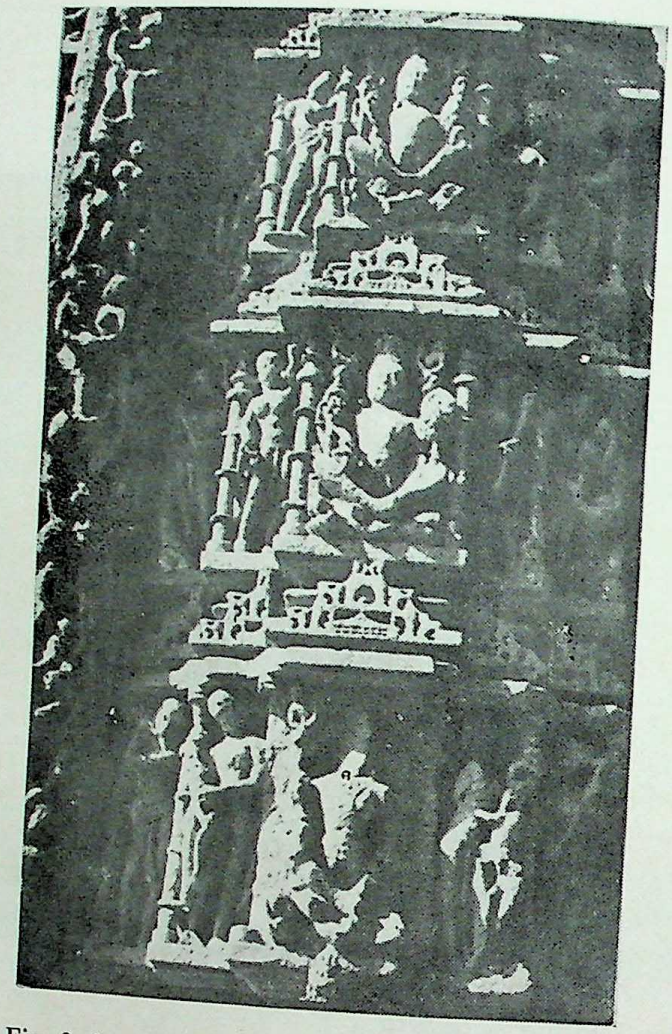

Fig. 2. Syncretic Icons of Sūrya, Doorjamb. Gūḍhamaṅḍapa

National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

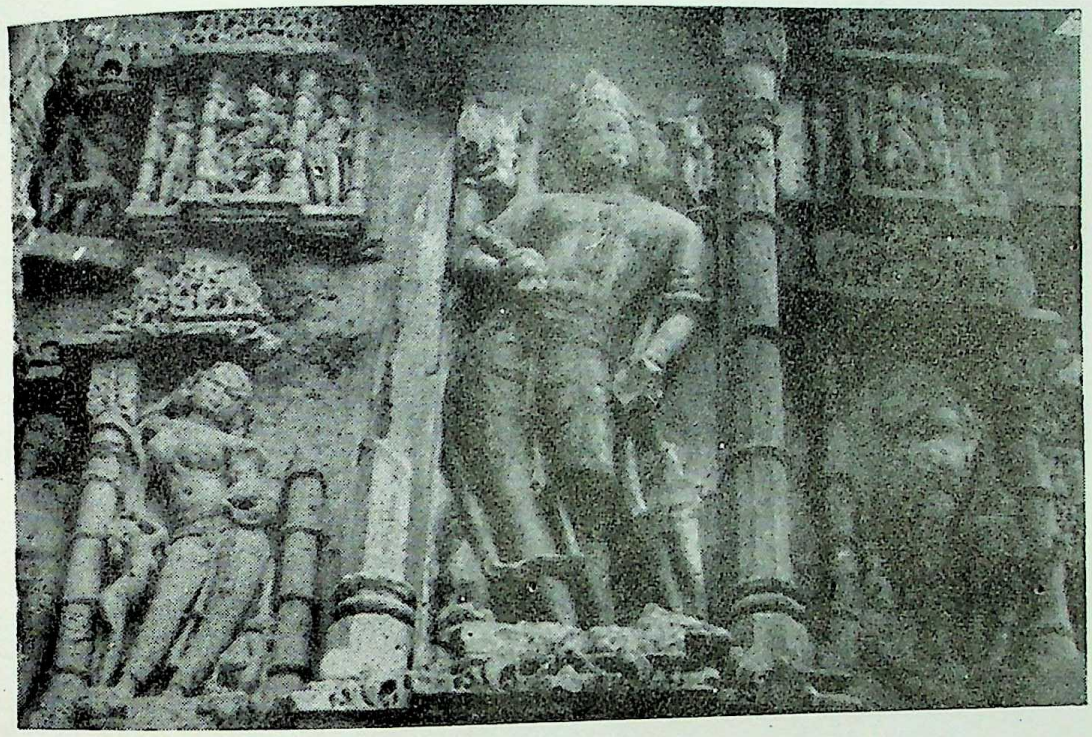

Fig. 3. Three-faced God, Gūdhamaṅḍapa

CC-0. Bhagavad Ra...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Sri Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Thus the depiction of Agni with two or three heads, three feet and odd number of arms was not a violation of the tradition. But this is not applicable in the case of the figure in question for a good number of reasons. In place of south-east corner in the temple, the present figure occupies the north-east corner, which, however, is not the conventional place where Agni ought to have been carved. Besides, the figure of Agni is already present in the south-east corner of the temple. The figure, in question, has neither a beard nor a *jaṭā-mukuṭa*, nor flames issuing from the head. The deity here has a well built muscular body comparable to the Sūrya figures in the temple, instead of being pot-bellied. The attributes in the present case are also not those which are traditionally held by Agni. Therefore, we do not agree with the identification of the figure with Agni. We are rather inclined to identify the figure with Sūrya wherein three aspects of the deity are manifested by triple heads, hands and legs. Our identification gains strength since the temple is also attributed to Sūrya.

The Sun has been one of the most beneficial phenomena of nature which has evoked admiration and reverence all over the world since very ancient times. In the *Ṛgveda*, Sun is worshipped under many names and forms. The three chief aspects under which he presents himself to the worshipper are the rising, culminating and setting Sun. These are not separated or distinguished as three deities but are different forms of the one and the same god, in each of which he reveals himself with different attributes and as exercising different powers.[8] As Mitra, the Sun was associated as a member of an early triad, symbolised by the sacred syllable *Oṁ*, Agni or fire, Vāyu, the mind and Mitra. This triune aspect was also manifested in the Sun as the heavenly fire and he bore corresponding epithets or titles as *tripāda*, three-footed, *trivikrama*, three strides, etc. The Sun is the all pervader who in three strides traverses the three worlds, earth, heaven and hell.[9]

According to the trinitarian conception of the Vedic cosmogony Agni, Vāyu and Āditya (Sūrya) are the three deities, presiding over the three worlds (*triloka*) respectively. They are manifestations of one and the same divine power or Essence (*Ātmā*), each one of which is but a form of Agni who is the manifest symbol of creative principle, viz., Prajāpati. Sūrya is also Agni who as the supernal Sun in the first and the centre of life in the cosmos.[10] The Sun of our system is but a link in the chain of millions and billions of Suns, all presided over by the supernal Sun or *Brahman*, symbolised in later literature as *koṭisūryasamaprabhaḥ*.[11] The whole of Vedic and Purāṇic literature revolves round this basic triad, retaining the ever present consciousness of their essential Oneness.[12] Agni on earth and Āditya in heaven represent one and the same principle.[13] The figure, in question, thus probably appears to have shown the identity of Agni with Sūrya and also the triad aspect of Sūrya, as Agni, Vāyu (or Indra) and

CC-0. Bhagavad Ramanuja Mutt.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Āditya (or Sūrya). However, the main impediment in the identification of the figure with Sūrya is the absence of any articulate solar iconographic features. The figure neither wears *kiriṭa-mukuṭa*, nor shows long-stalked lotuses in hands, nor even horse as conveyance. The *vāhana* here, if taken to be a *meṣa*, is suggestive of the oneness of Sūrya with Agni, while even if it is a bull, it may well be associated with Sūrya, since he is also called the bull. Sūrya is conceived as dispersing his energy through the radiation of his thousand rays just as the bull is the great sprinkler of the seed.[14] Although the attributes and the *karaṇḍa-mukuṭa* do not attune to the proposed identification of the figure with Sūrya, yet in the present state of our knowledge, we have no alternative but to accept the figure as the manifestation of the triad aspect of Sūrya in a sun temple.

REFERENCES

1. Percy Brown on the basis of an inscription on the back wall of the main shrine (dated *saṁvat* 1083) gives more precise date to the temple *i.e.* 1026-27 A.D., a date which, according to him, probably signifies the year of the consecration of the temple. The scholars like M. A. Dhaky and Hirananda Sastri are also of the opinion that the temple was built during the reign of Bhīma I. For details consult, Brown, Percy, *Indian Architecture* (Buddhist and Hindu Periods), Bombay (fifth edition), 1965, p. 120; Somapura, Kantilal F., *The Structural Temples of Gujarat*, Ahmedabad, 1968, p. 120; Dhaky, M. A., 'The Chronology of Solaṅkī Temples of Gujarat', *Jr. of Madhya Pradesh Itihāsa Parishad*, No. 3, 1961, p. 28; Baroda Gazetteer, vol. II, p. 602.
2. Burgess, James and Cousens, Henry, *The Architectural Antiquities of Northern Gujarat*, Archaeological Survey of Western India, vol. IX, Varanasi, 1975 (rep.), chapter VII, Moḍherā, p. 77-78.
3. *Ibid.*, p. 77.
4. According to a story Bhṛṅgī Ṛṣi, an exclusive worshipper of Śiva, was also provided with a third leg by Śiva.

   Banerjea, J. N., *The Development of Hindu Iconography*, Calcutta, 1956, p. 553.

   The representation of a three-headed, three-armed and three-legged *gaṇa* together with other *gaṇas*, headed by Gaṇeśa, on the lower portion of an Umā-Maheśvara image (c. 8th-9th century A.D., Lalitpur, Nepal), is also significant.

   Waldschmidt, *Nepal-Art Treasures from the Himalyas*, London, 1969, pl. 12.
5. Sahai, Bhagwant, *Iconography of Minor Hindu and Buddhist Deities*, New Delhi, 1975, p. 27.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

6. *Ibid.*, pp. 35-36.
7. Rao, T. A. Gopinatha, *Elements of Hindu Iconography*, vol. II, pt. II, Varanasi, 1971 (Rep.), p. 524.
8. *Encyclopaedia of Religion and Ethics* (Ed. James Hastings), Vol. XII, New York, 1921, p. 83.
9. *Ibid.*, p. 83. The authors of the present paper are inclined to call them *Pṛthvī*, *Ākāśa* and *Antarikṣa*.
10. Agrawala, V. S., 'A Study in the Symbolism of Agni', *Bhāratī* (B.H.U.), No. 6, pt. I, 1962-63, pp. 21-22, 25.
11. *Ibid.*, p. 24.
12. What in the Vedas is *Kṣhara*, *Akshara* and *Avyaya*; in the Purāṇas, Brahmā, Viṣṇu and Śiva; in Philosophy, *Rajas*, *Sattva* and *Tamas*—they correspond essentially to the three Fires in the *yajña* ritual. *Ibid.*, p 25.
13. *Ibid.*, p. 27; *Sūryogneyo nirāyatanam-Taittirīya Brāhmaṇa*, 3.9.21.2.
14. Agrawala, V. S., *Śiva Mahādeva*, Varanasi, 1966, p. 14.

ACKNOWLEDGEMENT

The authors offer their heartfelt thanks to Shri Krishna Deva, Consultant, American Institute of Indian Studies, Varanasi, for kindly going through the manuscript and giving valuable suggestions.

LIST OF ILLUSTRATIONS

1. General view, south-east (*mūlaprāsāda-gūḍhamaṇḍapa*), Sun Temple, Moḍherā, Mehsana, Gujarat.
2. Syncretic (*saṁghāṭa*) icons, Sūrya–Nārāyaṇa, Sūrya–Śiva, door-jamb, *gūḍhamaṇḍapa*.
3. Three-faced God, eastern façade, *gūḍhamaṇḍapa*.

CC-0. Bhagavad Ramanuja Mutt.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

गढ़वाल हिमालय की अविवेचित लिंग प्रतिमाएँ

यशवन्त सिंह कठोच
(उत्तराखण्ड शोध संस्थान)

लिंग-रहस्य

प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से शिव-प्रतिमा के दो रूप मिलते हैं : लिंग-प्रतिमा और रूप-प्रतिमा। लिंग-उपासना की प्राचीनता पुरातत्वीय तथा साहित्यिक साक्ष्यों से सिद्ध हो चुकी है। इसकी सार्वभौमिकता भी विद्वान विवेचित कर चुके हैं।[१] भारत में सर्वाधिक उदाहरण लिंग-प्रतिमा के हैं, रूप-प्रतिमा के नहीं। शिल्प-ग्रंथों में वर्णित शिव के सकल और निष्कल रूप लिंग के ही भेद हैं। स्वयं शिव और शक्ति को लिंग का प्रतीक माना गया है जिससे सृष्टि का उद्भव हुआ[२]। शैव पुराणों में कथन है कि "लिंग-वेदी महादेवी हैं। लिंग साक्षात् महेश्वर है। लय कर लेने से ही इसका नाम लिंग है। इसी में सब जगत है"।[३] इसी से शिव-लिंग का महत्व है।

लिंग शिव-तत्व का प्रतीक है। अतएव लिंग ही शिव की प्रधान प्रतिमा है। शिव-महापुराण की विद्येश्वर-संहिता (५.८) में शिव-लिंग को 'बेर' कहा गया है। आगम और शिल्प-ग्रंथों में लिंगों के तीन प्रकारों का वर्णन है। निष्कल (लिंग), सकल (बेर व प्रतिमा) और मिश्र (मुखलिंग)। इनमें सकल रूप का वर्णन यहाँ अभिप्रेत नहीं है, और केदारनाथ आदि के स्वायम्भुवादि प्राकृत लिंगों का वर्णन प्रतिमा-विज्ञान की सीमा में नहीं आता। अस्तु यहाँ केवल निष्कल और मिश्र नामक उन दो अचल (स्थावर) लिंगों का वर्णन किया जा रहा है जो मनुष्यों द्वारा रचित और स्थापित होने के कारण 'मानुष लिंग' कहलाते हैं। स्थावर मानुष लिंगों के मुख्य दो भाग होते हैं : लिंग और वेदिका। शिवमहापुराण की विद्येश्वरसंहिता (१९.३१) में इसीलिए स्थाबर लिंगों में "द्विखण्डता" बतायी गयी है। इनमें प्रथम खण्ड 'लिंग' के तीन उप-भाग होते हैं[४] :-

(१) ऊर्ध्वभाग वा भोगपीठ — रूद्रभाग (वृत्त और दृश्य)
(२) मध्यभाग वा भद्रपीठ — विष्णुभाग (अष्टास्र और पिण्डिकाश्रित)।
(३) मूलभाग वा ब्रह्मपीठ — ब्रह्मभाग (चतुरस्र और भूमिगत)।

डॉ० यशवन्त सिंह कठोच, जी० आई० सी०, खेराखाल (नेवाशु), श्रीनगर (गढ़वाल)।

CC-0. Bhagavad Ramanuja Mission.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

१- निष्कल लिंग

लिंग पुराण (३१,८) में निष्कल लिंगों की ही पूजा योग्य मानी गयी है। ये इतनी बहुसंख्या में गंगाद्वार से हिमालय पर्यन्त विस्तृत गढ़वाल मण्डल,[५] में प्राप्त हैं कि इनका क्रमिक विकास सरलता से ज्ञात हो सकता है। ऊर्ध्वभाग वा पूजाभाग के रूपायन के आधार पर, इस दृष्टि से, इनके दो वर्ग हैं:—

(क) गुप्तोत्तरकालीन शिश्नलिंग : मयमत (अ० ३३) में इन्हें आर्षलिंग कहा गया है। वास्तविक शिश्न रूप के लिंग निष्कल लिंगों में प्राचीनतम माने जाते हैं। बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) में विश्वनाथ और वहीं गोपेश्वर शिव-मंदिरों के लिंग इसी वर्ग के हैं (चित्र-१)। इन दोनों में शिश्न-रेखाएँ (ब्रह्मसूत्र) बनी हैं और ऊर्ध्वभाग क्रमशः छत्र और कुक्कुटाण्ड आकार के हैं। बाड़ाहाट का यह विश्वनाथ लिंग ऊर्ध्वभाग में छत्राकार कुछ फैला हुआ (bulgy), मध्यभाग उससे कुछ पतला और ब्रह्मसूत्रयुक्त तथा चतुरस्र मूलभाग वृत्तपीठिका में भूमिगत है। अल्प झुके होने के कारण यह पूर्णतः शिश्न रूप दिखाई देता है। इसी प्रकार के आर्ष लिंग एल्लोरा, एलीफैंटा आदि की चालुक्य गुहाओं में भी पाये गये हैं जिनका काल सातवीं शती ई० का पूर्वार्द्ध माना गया है। गढ़वाल के पुरास्थलों में ये अन्यत्र भी मिले हैं।

इन लिंगों के अगले विकास के कुछ रूप कुठार [भिल्लंग], नैलेश्वर (खवाड़ा) और बिनसर (चौथान) शिव मंदिरों में देखे जा सकते हैं (चित्र २)। इनके अष्टास्र भाग ऊपर पतले होगये हैं और शीर्ष वृत्ताकार भाग तथा उसके मध्य एक उभार वाले ब्रह्मसूत्र के वलय को बनाकर लिंग को पूर्ण शिश्न रूप दिया गया है।

(ख) मध्यकालीन आकारवादी लिंग : इस काल तक, वास्तविक शिश्न पूर्ण आकारवादी रूप में निर्मित हो गये। जितेन्द्रनाथ बनर्जी के अनुसार, शिवलिंग का वास्तविक रूप से आकारवादी होने की प्रक्रिया आरम्भिक गुप्तयुग में प्रारम्भ हो गयी थी[६]। इनमें प्रथम कोटि के वे लिंग हैं जिनके ऊर्ध्वभाग वेलनाकार, ऊपर प्रायः सपाट तथा शिश्न-रेखाएँ (ब्रह्मसूत्र) आकारवादी रीति से बनी हैं। चन्द्रेश्वर शिव-मंदिर (चक्रगाँव, टिहरी-गढ़वाल) में प्रतिष्ठित काले प्रस्तर का ओपयुक्त लिंग इस प्रकार के आकारवादी लिंगों में से आरम्भिक काल का है। इसका ऊर्ध्व वृत्तभाग १४ से० मी० ऊँचा और मध्य भाग अष्टास्र है। पिंडिका वृत्ताकार है और उसकी प्रणाल उत्तर दिशा की ओर है। शिव मंदिर गोपेश्वर (चमोली) में चतुर्दिक ऐसे अनेक लिंग बिखरे हैं जो राहुल के अनुमान से लकुलीशों से सम्बन्धित हैं (चित्र-३)।

द्वितीय कोटि का एक ही उदाहरण इस लेखक को शिव मंदिर गोपेश्वर के गर्भगृह में मिला। आकार में यह प्रथम कोटि के समरूप है, परन्तु रुद्रभाग पर १००८ क्षुद्र लिंगों की रचना उल्लेखनीय है। इसकी संज्ञा 'अष्टोत्तरसहस्रलिंग' है।

२- मिश्र-लिंग (मुख-लिंग)

मुखलिंगों में शिव के लिंग-विग्रह और पुरुष-विग्रह का समन्वय है। इसी कारण इन्हें 'मिश्र' श्रेणी का संज्ञापित किया गया। "प्रारम्भिकतम लिंग जो ज्ञात हुए हैं, मुखलिंग प्रकार के हैं; एकमुख वा पंचमुख रूप

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

के।"[७] भारत में सबसे प्रचीन मुखलिंग गुडिमल्लम् (आन्ध्र प्रदेश) का है जो प्रायः ई० पू० प्रथम शती का माना जाता है। उत्तर भारत में ये प्रारम्भिक गुप्तकाल से पूर्ववर्ती नहीं हैं।[८]

दार्शनिक दृष्टि से "एकमुखी रूप एक अधिक जटिल सिद्धान्त था। इसमें एकमुख ही समस्त पंचइन्द्रिय वा पंचतत्वों का प्रतीक माना गया है।"[९] इन एकमुखी लिंगों का गुप्तकाल में अधिक प्रचलन रहा। गढ़वाल में ये सर्वत्र मिले हैं। इनके अवलोकन से ज्ञात होता है कि ये यहाँ उत्तर-गुप्तकाल से मध्यकाल तक निर्मित होते रहे। बिनसर शिव-मंदिर में एक सुन्दर मुखलिंग (१५" ऊँचा), जो पहले एक परिवार मंदिर में था, अखण्ड दशा में है। मुख, जटामुकुट, कुण्डल और त्रिनेत्र से युक्त अत्यन्त भव्य है। शैलीगत आधार पर इसे पाँचवी–छठी शती ई० में रखा जा सकता है[१०]। रुद्रनाथ का एकमुख-लिंग भी, जो सम्प्रति अर्चित मूर्ति है और प्रायः इसी काल की है, कला की एक उत्कृष्ट कृति है। इनके अतिरिक्त, गोपेश्वर (चमोली) और लक्ष्मोली (टिहरी) में भी एकमुख-लिंग मिले हैं जो कुछ पश्चवर्ती हैं।

चतुर्मुख लिंगों में रुद्रभाग पर जटाजूट-सहित चार मुख होते हैं और ऊपर अल्प बाहर निकला वृत्ताकार भाग पंचमुख होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार, चारों दिशाओं के चारों मुख क्रमशः सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के तथा वृत्ताकार ऊर्ध्वभाग ब्रह्माण्ड का द्योतक है। परन्तु अन्य के अनुसार, चार मुख शिव के सद्योजात, वामदेव, अघोर और तत्पुरुष रूप होते हैं शीर्ष का पाँचवां ईशान। गोपेश्वर की चतुर्मुखलिंग-मूर्ति (१८" × ८") दर्शनीय है और अखण्ड दशा में प्राप्त है। बछणगड के दायें तट पर अवस्थित महड़ (मढ़) के मन्दिर में भी लेखक को ऐसा ही एक ओपयुक्त भव्य लिंग मिला है।

गढ़वाल हिमालय में पंचायतन शिवलिंग बहुत कम मिले हैं। एक सर्वाधिक सुन्दर पंचायतन शिवलिंग लालढांग के बाजार में शिव मन्दिर में प्रतिष्ठापित है। वास्तव में यह शिवलिंग पाण्डुवाला स्थल से लाकर प्रतिष्ठापित किया गया है। इस लिंग में एक ओर उमा-महेश हैं, दूसरी ओर सूर्य, तीसरी ओर बिष्णु तथा चौथी ओर चतुर्मुख ब्रह्मा स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित हैं। शिरोभाग ईशान को है।[११]

मानसार में प्रतिष्ठानुसार लिंग-भेद दो हैं : एकलिंग और बहुलिंग। गढ़वाल हिमालय में सर्वत्र 'एकलिंग प्रतिष्ठा ही प्राप्त होती है। परन्तु बिनसर (चौथान) के प्राचीन शिवमंदिर में लिंगपीठ पर बहुलिंग प्रतिष्ठा मिलती है। जो इस क्षेत्र में अब तक एक विरल उदाहरण है। हमने इससे पूर्व बताया है कि स्थावर लिंगों के दो भाग होते हैं : लिंग और वेदिका (अर्घ)। यद्यपि प्रस्तुत शोधपत्र में पहले 'लिंग' पर ही उनके विकास की दृष्टि से विवेचन किया गया है, परन्तु यह भी ज्ञातव्य है कि वेदिका वा लिंगपीठ इस प्रदेश में सर्वत्र गहरे और नीचे हैं। इस परम्परा के केवल दो अपवाद मिले हैं : बिनसर (चौथान) और पलेठी (वनगढ़) के पूर्व-मध्यकालीन शिवमंदिर। जिनमें लिंगपीठ गर्भगृह के धरातल से ऊँचे हैं। इस प्रकार के ऊँचे लिंगपीठ मध्यकालीन गुजरात में भी पाये गये हैं और वे दक्षिणी पीठ से प्रभावित प्रतीत होते हैं।[१२]

CC-0. Bhagavad Ramanuja Nidhi.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

संदर्भ

१- कटनर, एच०, ए शार्ट हिस्ट्री ऑव् सेक्स वरशिप ।

२- अपराजितपृच्छा, १९६; शिवमहापुराण-विद्येश्वरसंहिता, अ० १६ ।

३- शिवपुराण-रुद्रसंहिता (सृष्टिखण्ड), १०,३८ ; लिंगपुराण, १९, १५ ।

४- मत्स्यपु० अ० १२६; लिंगपुराण, ३१, ८; विष्णुधर्मोत्तरपु०, ७४, २–४; वृहत्-संहिता, ५८, ५३-५४ ।

५- शिवमहापुराण-कोटिरुद्रसंहिता (१९, २५) में 'केदारेश्वरशिव' को ही इस भूखण्ड का स्वामी बताया गया है ।

६- बनर्जी, जि० ना०, रिलिजन इन आर्ट एण्ड आर्किऑलाजी (१९६५), पृ० ६७ ।

७- सौन्दर राजन, के० वी०, इंडियन टेम्पुल स्टाइल्स, (१९७२ ई०), पृ० ७९ ।

८- बनर्जी, जि० ना०, डिवेलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकनॉग्राफी (१९५६), पृ० ४५६-५७, फलक ३१, चित्र ३ ; रिलीजन इन आर्ट एण्ड आर्कि० पृ० ६५-६६ ।

९- अग्रवाल, वासुदेवशरण, स्टडीज इन इंडियन आर्ट (१९६५), पृ० २३१ ।

१०- संग्रहालय-पुरातत्व पत्रिका, अंक ४ (१९६९), पृ० ४५, चित्र २ ।

११- गिरीशचन्द्र सिंह, सर्वेक्षण रिपोर्ट, वर्ष १९८४-८५ (अप्रकाशित) ।

१२- सौंदर राजन, पूर्व उद्धृत, पृ० ७९ ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

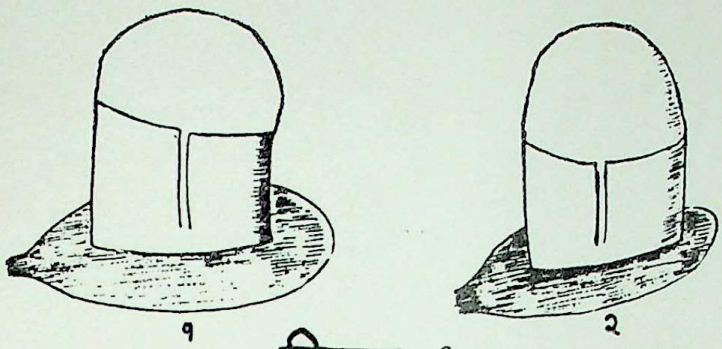

चित्र-१

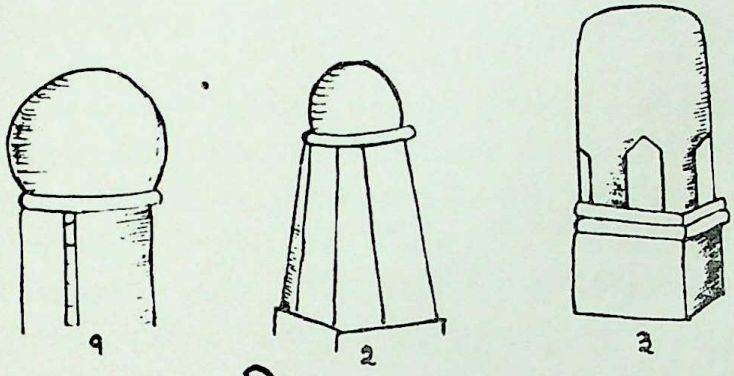

चित्र-२

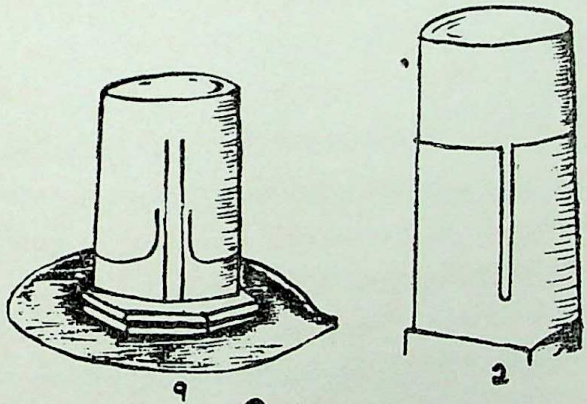

चित्र-३

चित्र १–(१) बाड़ाहाट में विश्वनाथ [उत्तर काशी]; (२) बाड़ाहाट में गोपेश्वर [उत्तर काशी]
चित्र २–(१) कुठार [टि० गढ़०]; (२) नैलेश्वर [टि० गढ़०]; (३) बिनसर [चौड़ी–गढ़०]
चित्र ३–(१) चक्रगांव [टि० गढ़०]; (२) गोपेश्वर [चमोली गढ़०]

निष्कल लिंगों का विकास

CC-0. Bhagavad Ramanuja Mutt

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

बूंदी शैली के चित्रों में बारहमासा

सुरेन्द्र सिंह चौहान

आदि काल से ही मानव ऋतुओं के प्रति सचेष्ट रहा। वासस्थान तथा गुफा, विहार, कुटी, मकान इस सचेष्टता के मूक साक्षी हैं। सभ्यता के साथ ही मानव ने काल गणना भी प्रारम्भ की जिसके निमित्त विभिन्न प्रकार के पैमाने समय-समय पर बनाए जिसका रूप ऋतु, नक्षत्र, युग, संवत कोई हो हमें प्रारम्भ से ही मिलता है। भारतवर्ष एक ऐसा देश है जहाँ सभी ऋतुएँ क्रमवार घटित होती हैं और यहां के वासियों को प्रत्येक ऋतु के परिवेश का परिचय मिलता है। मनुष्य के इस काल गणना के साक्ष्य हमें विभिन्न श्रोतों से प्राचीन समय से ही मिलते हैं। उसमें भी विशेषकर ऋतु और उसका वातावरण पर प्रभाव का चित्रण भी प्रारम्भ से मिलता है।

पुरातात्विक साक्ष्य :

भारत की प्राचीन सभ्यता जिसे सिन्धु सभ्यता का नाम दिया गया है की लिपि का परिचय अभी हमें नहीं हो पाया है अतः परिचित पुरातात्विक साक्ष्य के रूप में हमें मौर्य काल के अशोक के शिलालेख प्राप्य हैं। अशोक के शिलालेखों में तिथ्य नक्षत्र व चतुर्मासी जैसे शब्द मिलते हैं। तिथ्य नक्षत्र संवत् के पौष माह में होता है। एक ऋतु चार माह की होने के कारण उसी को चतुर्मासी शब्द से अभिहित किया गया है। अभिलेखों में तिथि का अंकन बराबर होता रहा है[1] जिससे सिद्ध होता है कि प्रारम्भ से ही समय की गणना नक्षत्र, वर्ष, माह आदि के रूप में होती रही।

साहित्यिक साक्ष्य

सबसे प्राचीन साक्ष्य हमें संस्कृत साहित्य में मिलता है। ऋग्वेद के मंडूक स्तोत में किसी ऋतु विशेष का अच्छा वर्णन मिलता है कि वर्षा आते ही कैसे मेढ़क बाहर आ जाते हैं। यहां पर हमें संवत् में बारह महीने के होने का भी वर्णन मिलता है।[2] इसके दशम मंडल में पुरुष सूक्त में निम्न वर्णन मिलता है। जिसके अनुसार ब्रह्म के महायज्ञ में ईश्वर बसन्त रूपी घी, ग्रीष्म रूपी ईधन, शरद रूपी हाविव्य आदि को वर्षा के रूप में हवन किया करता है। इस प्रकार यहाँ पर ऋतुओं का परिचय हमें होता है।[3] संस्कृत के आदि काव्य

श्री सुरेन्द्र सिंह चौहान, संग्रहालय सहायक, राज्य संग्रहालय, लखनऊ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja Mutt.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

रामायण में भी स्थान स्थान पर ऋतु वर्णन आदि कवि वाल्मीकि ने किया है। आरण्य काण्ड में सूर्पनखा के आने पर लक्ष्मण राम से ऋतु के बारे में बाताते हैं। जाड़े की ऋतु का वर्णन बड़े ही सशक्त ढंग से किया है :

स्पृश्न् सुविपुलं शीत मुदकं द्विरदः सुखम् ।
अत्यन्त तृधितो वन्यः प्रति संहरते करम (21)

यह जंगली हाथी बहुत प्यासा हुआ है। यह सुख पूर्वक प्यास बुझाने के लिए अत्यन्त शीतल जल का स्पर्श तो करता है, किंतु ठंडक असह्य होने के कारण अपनी सूड़ को तुरन्त ही सिकोड़ लेता है।[4]

वाल्मीकि ने चैत्रमास को पुण्य मास कहा है। महाकवि कालीदास ने 'ऋतु संहार' में बड़ा ही विस्तृत वर्णन किया हैं। यह प्रेम और ऋतु का वर्णन करने वाला वाल्मीकि के बाद पहला काव्य है। वसन्त ऋतु का वर्णन 'कुमार संभव' में अच्छा हैं। ब्रह्म पुराण के 36वें अध्याय में जब शंकर और पार्वती का व्याह कैलाश पर्वत पर होता है तो सभी ऋतुएँ मानव रूप में वहाँ उपस्थित होती हैं। यहाँ पर वर्षा से प्रारम्भ होकर गर्मी तक क्रम से 54 श्लोकों में वर्णन है।[5] इसी प्रकार ब्राह्मण, वामन, साम्ब आदि में भी वर्णन मिलता है।[6] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में ऋतु एवं उसके चित्रण की अच्छी जानकारी मिलती है। संस्कृत के अन्य महाकवि व विद्वान भी इससे अछूते नहीं रहे। भारवी के किरातार्जुनीयम में शरद ऋतु का अच्छा वर्णन है। कुमार दास के जानकी हरण, माघ के शिशुपाल वध, भृतहरि के श्रंगारशतक, हर्ष की रत्नावली, राजशेखर की काव्य मीमांशा, बाण की हर्ष चरित, भोज की श्रंगार मंजरी आदि में ऋतुओं का वर्णन मिलता है।

हिन्दी साहित्य में भी प्रारम्भ से ही, यहाँ तक की अपभ्रंस में भी जहाँ से हिन्दी की धारा का विकास हुआ, ऋतु वर्णन की अच्छी परम्परा मिलती है। अपभ्रंस के यह गीत राहुल सांस्कृत्यायन ने 'हिन्दी काव्य धारा' के अन्तर्गत संकलित किया है। इसमें सबसे प्राचीन वर्णन 8वीं शती का है। दसवीं शती के कवि पुण्यदन्त ने वर्षा ऋतु का वर्णन किया है। वीर गाथा काल के काव्य चन्द्र वरदाई द्वारा रचित 'पृथ्वी राज रासों' में भी ऋतु का अच्छा वर्णन है। पृथ्वी राज जब संयोगिता के स्वयंवर में जाने हेतु कन्नौज के लिए तैयार होता है तो उसकी अन्य रानियाँ रास्ते में मौसम के विभिन्न खतरों का वर्णन करती हुई उसे जाने से रोकती हैं।

दरअसल ऋतु वर्णन काव्य का मुख्य अंग होता है। प्रेमियों के 'मिलन' एवं 'वियोग' के समय ऋतुओं की दशा का वर्णन होता है। यह वर्णन मुख्य रूप से दो नामों से किया जाता है। 'षड ऋतु वर्णन' एवं 'बारहमासा'। प्रेमियों के संयोग के समय किया जाने वाला ऋतु वर्णन 'षड ऋतु वर्णन' कहलाता है। जबकि प्रेमियों के वियोग के समय किया गया ऋतु वर्णन 'बारहमासा' कहलाता है। उदाहरण के लिये मलिक मुहम्मद जायसी के पदमावत में रत्नसेन का पद्मावती से संयोग का वर्णन षठऋतु वर्णन है[7] जबकि नागमती से विरह का वर्णन वारहमासा[8]। वासुदेव शरण अग्रवाल महोदय के अनुसार सामान्यतया षडऋतु वर्णन ग्रीष्म से शुरू होता है और बारहमासा अषाढ़ मास से, परन्तु जायसी ने षडऋतु वसंत से प्रारम्भ किया। इसी प्रकार केशव ने बारहमासा चैत्रमास से प्रारम्भ कर फाल्गुन तक वर्णन किया है।[9]

ऋतु वर्णन के साथ ही उसे चित्रित करने का विधान हमें विष्णु धर्मोत्तर पुराण के 42वें अध्याय में मिलता है। जहाँ पर किस ऋतु का चित्रण चित्रकार को कैसे करना चाहिये इसका पूरा विधान लिखा हुआ है।

National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जैसे बसंत को दिखाने के लिये फल के भार से झुके पेड़, पके अनाज से युक्त खेत, कमल व हंस से युक्त सरोवर चित्रित करना चाहिए। चारों ओर कोहरा व ओस से अच्छादित वातावरण के द्वारा हेमन्त ऋतु का चित्रण करना चाहिए। इसी प्रकार अन्य ऋतुओं का भी वर्णन है।[१०]

हिन्दी साहित्य में 13वीं से 16वीं शताब्दी के बीच 'बारहमासा' या ऋतु वर्णन बहुत ही लोकप्रिय था। आगे भी यह वर्णन दरबारी कवियों द्वारा होता रहा। लघु चित्रों के क्षेत्र में बारहमासा का चित्रण इन्हीं कवियों द्वारा वर्णित 'बारहमासा' के आधार पर हुआ। इन चित्रों के पीछे या सामने की ओर ऊपर लिखे हिन्दी में लेख से स्पष्ट रहता है कि यह चित्रण 'बारहमासा' का है। बारहमासा का चित्रण लौरिचन्दा, राजस्थानी, पहाड़ी शैली के चित्रों में मिलता है। यहाँ पर बूंदी शैली के पूर्ण बारहमासा की चित्रावली प्रस्तुत कर रहे हैं जो कि राज्य संग्रहालय के संकलन में है[११]। वर्णन से पूर्व संक्षेप में बूंदी शैली का परिचय भी आवश्यक है।

राजस्थान के दक्षिण पूर्व में स्थित बूंदी शहर जो कि पहले एक राज्य था की नींव 1342 में पड़ी। राजा रावदेव ने अपने बाबा बुंद के नाम पर इसे बसाया था। यही शहर इस राज्य की राजधानी था। यहीं पर लगभग सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से कलाकार अपनी कला का सृजन करते रहे। इस शैली के चित्रों की प्रमुख विशेषता, लाल सिन्दूरी बार्डर, हरे व नारंगी रंग का अधिक प्रयोग, केले के पेड़, बत्तखें, चमकदार रंग, अल्पलंकृति, छरहरे बदन की स्त्रियाँ, भरी ठोढ़ी, फूल युक्त पेड़, मानव आकृतियों का गौर वर्ण हल्के नारंगी रंग से चित्रित किया गया आदि। समय समय पर अन्य शैलियों का प्रभाव मेवाड़ के माध्यम से इस शैली पर पड़ता रहा। प्रस्तुत बारहमासा का चित्रण ल० 1800 ई० में हुआ जो कि इस शैली का अवनत का काल था। राजाओं के शौक से चित्रकला हट चुकी थी इस ओर उनका कोई ध्यान नहीं था फिर भी चूकि वातावरण में जन्म-जात गुण थे अतः चित्रों का सृजन होता रहा। इन चित्रों में बूंदी शैली की उत्कृष्ट विशेषताएं तो परिलक्षित नहीं होती जैसी कि 1700 के लगभग थी पर चित्रों का सृजन काफी मात्रा में मिलता है। बूंदी शैली के बारहमासा के चित्र अन्य संकलनों में भी हैं जो कि थोड़े से अन्तर के लगभग हूबहू एक ही तरह के हैं।

इन चित्रों के नायक कृष्ण हैं। यद्यपि बूंदी में ऐसे भी चित्र बने जिनमें राजा को नायक के रूपमें दर्शाया गया है।[१२] इन चित्रों के पीछे केशव द्वारा कवि प्रिया में रचित बारहमासा के दोहा व छप्पय लिखे हैं। केशव के अतिरिक्त गोविन्द नामक कवि का पूरा बारहमासा मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्य संकलनों में मिले बारहमासा के चित्रों पर कई अन्य कवियोंके कवित्त भी मिले हैं यथा आनन्द राम, काशीराम, राम किशन आदि कवि के नाम मिलते हैं साथ ही कई चित्रों पर लिखे कवित्त के कवि का पता ही नहीं चलता। सामान्यतया कवि अपना नाम कहीं न कहीं पर जोड़ देता है उसी से कवि का परिचय मिलता है पर उक्त कवित्तों में कवि का नाम नहीं है।[१३]

चित्रों का संक्षिप्त परिचय :

५७-३००/१ चैत्र मास [मार्च-अप्रैल]

सभी पेड़ पौधे फल फूल युक्त हैं। पशु पक्षी युगल रूप में आनन्दित हैं। दो स्थान पर राधा कृष्ण हैं। एक स्थान पर खड़े हैं दूसरे स्थान पर बैठे। उनके पीछे का स्थान खाली है जैसे अलंकृतहीन पिछवई लगी हो।

CC-0. Bhagavad Ramanuja Mission

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ऊपर मंदिर के पास माला व पुस्तक लिए पुजारी है पास में उपासक हैं। अन्य बारहमासा की श्रेणी में राधा कृष्ण के खड़े व बैठने का ढंग तो एक है पर स्थान भेद है।

५७-३००/२ वैसाख मास [अप्रैल-मई]

सूर्य प्रचण्डता से तप रहा है। ऊपर के पेड़ों में पत्ते कम हैं। वहेलिया तीर से निशाना साध रहा है। ऊपर बालकनी में राधा कृष्ण बातें कर रहे हैं। पेड़ के नीचे पूजा हो रही है जो कि 'बट पूजन' का दृश्य है पर यह पूजन जेठ मास में होता है। बूंदी का एक चित्र प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम में है उसमें यही पूजा जेठ मास में चित्रित है। दो वीर पेड़ की ओर अग्रसर हैं। संम्भवतः उच्च कुल की स्त्रियाँ बट पूजन हेतु महल से बाहर आयी हैं उनकी रक्षा के लिए वे नियुक्त हैं।

५७-३००/३ जेठ मास [मई-जून]

गर्मी की प्रचण्डता दर्शायी गई है। बालकनी में राधा कृष्ण बैठे हैं। सेविका पंखा लिए खड़ी है। पशु पक्षी धूप से परेशान छाया में छिप रहे यहां तक वे अपनी वैमनस्यता भूल गये और विरोधी एक साथ बैठे हैं। शेर व हाथी तथा सर्प और मोर एक साथ बैठे दिखाए गये हैं।

५७-३००/४ आषाढ़ [जून-जुलाई]

छप्पय के अनुसार अंकन, बालकनी में राधा कृष्ण हैं। एक नारी दिग्भ्रमित सी जा रही है। ऊपर कुटिया में सन्यासी योगारुढ़ है। दो वीर उपासक दैठे हैं। जल में लक्ष्मी व विष्णु को दिखाया गया है। बूंदे पड़ रही हैं। तात्पर्य यह कि बरसात प्रारम्भ हो रही है सभी अपने अपने डेरे पर बरसात भर के लिए बस गये। ऐसे में केवल विरहिणी ही बाहर निकलती है।

५७-३००/५ सावन मास [जुलाई-अगस्त]

राजस्थान का एक प्रमुख त्योहार 'गनयौर' होता है। इस चित्र मे उसी का अंकन किया गया। एक स्त्री सर पर प्रतिमा लिए है अन्य स्त्रियों का समूह सरोवर के किनारे खड़ा है। दूसरी तरफ पेड़ में झूला पड़ा है जिस पर दो स्त्रियां एक साथ झूल रही है वहीं पर एक स्त्री खड़ी है। बालकनी से राधा कृष्ण देख रहे है। सावन के विशेष प्रतीक झूला, मोर व बरसात का अंकन अच्छा है।

५७-३००/६ भादों मास [अगस्त-सितम्बर]

बरसात का भव्य अंकन सभी कुछ भीग रहा तालाब नालों में पानी भरा है। ऊपर बालकनी में बैठे राधा कृष्ण बरसात का आनन्द ले रहे हैं।

CC-0. Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

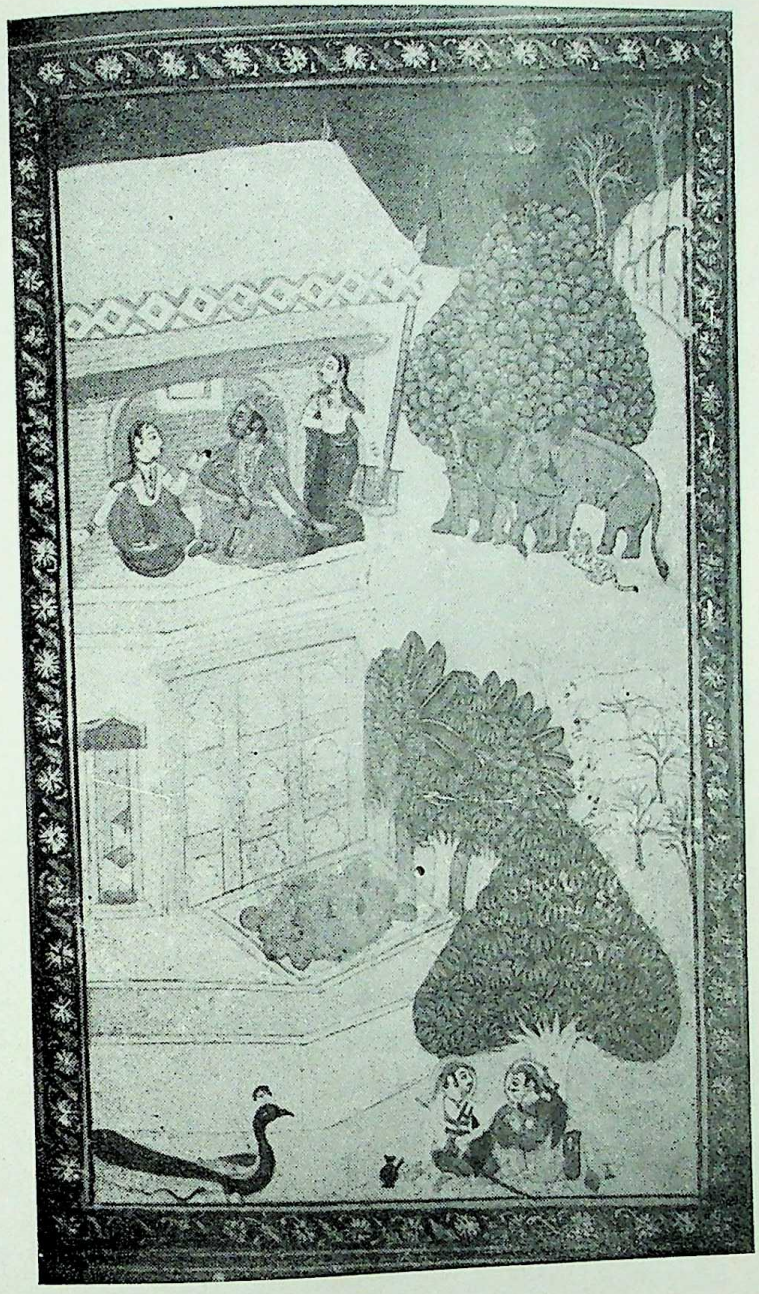

५७.३००/३ ज्येष्ठ मास, बूंदी, ल० १८०० ई०

CC-0. Bhagavad Ramayana Museum

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

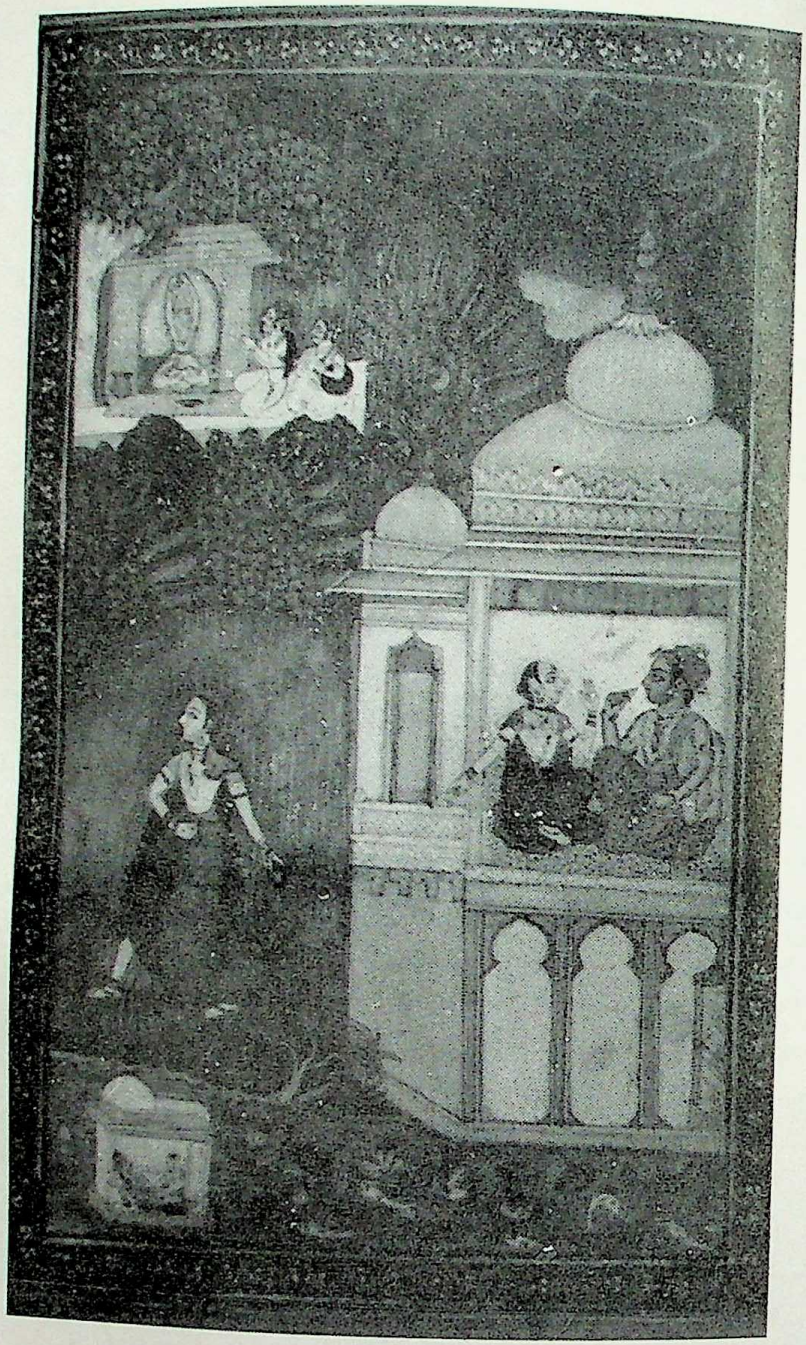

५७.३००/४ आषाढ़ मास, बूंदी, ल० १८०० ई०

...ic National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

५७.३००/५ सावन मास, बूंदी, ल० १८०० ई०

CC-0. Bhagavad Ramayan Museum

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

५७.३००/९ अगहन मास, बूंदी, ल० १८०० ई०

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

५७-३००/७ कुवांर मास [सितम्बर-अक्टूबर]

विजय दशमी के त्योहार का अंकन है। आतसबाजी छूट रही है। हाथी घोड़ों पर जुलूस है। एक तरफ देवी के समक्ष वलि दी जा रही है दूसरी ओर एक मकान में रावण बैठा है, प्रकृति का कोई चित्र नहीं है।

५७-३००/८ कार्तिक मास [अक्टूबर-नवम्बर]

इस मास में दो त्यौहार होते हैं। दीपावली व कार्तिक पूर्णिमा (गंगा-स्नान)। स्त्रियों के स्नान दृश्य से ऐसा लगता है कि गंगा स्नान का द्योतक है। ऊपर चन्द्रमा का अंकन व दीपकों के अंकन से रात का दृष्य बनाया गया है पर रात्रि में स्नान कुछ उचित नहीं। लगता सम्भवत: दोनों त्योहारों का भान चित्रकार ने इसमें कराया है।

५७-३००/९ अगहन मास [नवम्बर-दिसम्बर]

यहां सूर्य को घोड़े सहित रथ पर दिखाया गया है जो कि दिन छोटे होने का प्रतीक है। धूप में बैठना एवं आग तापना ठंडक का आभास कराते हैं। क्यारियों में धान के पौधे हैं।

५७-३००/१० पूस मास [दिसम्बर-जनवरी]

सूर्य के घोड़ों को और तेज भागते हुए दिखाया गया है यानी दिन और छोठे होने लगे। धूप खाने व आग तापने के दृष्य हैं।

५७-३००/११ माघ मास, [जनवरी-फरवरी]

पुरुष सेवकों के साथ कृष्ण बैठे नृत्य व संगीत का आनन्द ले रहे हैं। ऊपर वालकनी में राधा स्त्री सेवकों के साथ बैठी हैं। सामने बोतलाकार वर्तन में हरे पौधे हैं जो वर्तमान के फूलदान ही हैं।

५७ ३००/१२ फाल्गुन मास [फरवरी-मार्च]

होली का दृश्य है। पूरा वातावरण रग से सराबोर हाथी घोड़े पर जुलूस है। कृष्ण भी हाथी पर हैं।

संदर्भ :

1- सरकार, डी० सी०, सेलेक्टेड इन्सक्रिप्शन्स।
2- ऋग्वेद -VII -103
3- ऋग्वेद 10 वाँ मंडल 90-6-7
4- रामायण, अरण्य काण्ड, XV1-21

CC-0. Bhagavad Ramanuja Mutt.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

5- ब्रह्म पुराण - प्रयाग-अध्याय-36 श्लोक 70-124
6- द्विवेदी वी० पी०, बारहमासा पृ०-15
7- अग्रवाल, वासदेव शरण, 'पद्मावत' मलिक मुहम्मद जायसी कृत काव्य टीका सहित-संवत 2010 पृ० 403-412
8- तैदव पृ० 417-434
9- केशव ग्रन्थावली, हिन्दुस्तान एकेदमी द्वारा प्रकाशित, 1977 (कवि प्रिया)
10- देखिए विष्णु धर्मोत्तर पुराण, अध्याय 42
11- संग्रहालय सं० 57-300/1 से 57-300/12 तक
12- द्विवेदी वी० पी०, बारहमासा, प्लेट सं० 72
13- तदैव, पृष्ठ 153-157

CC-0. Indira Gandhi National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

MĀLWA PAINTINGS AND ITS COLLECTION IN THE STATE MUSEUM, LUCKNOW

S. M. Naqvi

Mālwa Region has got a rich heritage in the fields of art and learning. Ujjaini, Dhara, Bagh and Māndu were the well known centres of literary as well as artistic luminaries such as Kālidasa, Vikramaditya, Bhoja, Ghyās Shāh, Nasīruddin Shāh and finally Bāz Bahādur who can alone be credited with literary creations and patronization of artistic activities at length in this area. But others also promoted the literary and artistic creations in this region of cool plains, lofty and spacious forts, beautiful cave-paintings, colourful book illustrations and Rāga Mālās.

The earliest paintings of this region, if we do not include prehistoric rock paintings of Adamgarh (Hoshangabad District) and Bhim Baithaka (Raisen District) etc. within the scope of this paper, are the Bāgh cave paintings dateable between 600 to 900 A.D.[1] Kshemendra (1037 A.D.) mentions in his Brihat Katha Manjari about the presentation of an album of portaits (Pustikā) to King Vikram of Ujjain by his Court painter.[2] Although this reference is the part of a story but is significant in establishing that court painters of Ujjain were painting portraits sometimes before or during him which he refers in the story. We are told that some sort of developments were taking place in the field of paintings during the 13th century at Mālwa.[3] W. G. Archer has discussed in the context of *Laura-Chaṅda* and *Chaura Paṅchāsika* the development of Mālwa school of painting at Māndu.[4] The famous Kalpasutra of Māndu[5] is assigned to mid-15th century A.D. This was the period of Ghyās Shāh who died in 1501.A.D. He was succeeded by Nasiruddin. During his time *Bostān* of Sādi Shirazi was written at Māndu in 1503 and his court painter was Hāji Mahmud.[6] The India Office library copy of Nimāt Nāma illustrated at Māndu in 1505 A.D.[7] deals with the recipes and foods of king Ghyāsuddin. Another illustrated lexicon painted at Māṇdu during this

Sri S. M. NAQVI, Director of Tourism, Patna [Bihar].

CC-0. Bhagavad Ramanuja Nyasa.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

period is called as Miftāh-ul-Fuzla[8] which is housed in the British Museum. Both these works are dominated by Persian Shiraz influence which was introduced by some Persian painters who stayed in the court of Māndu. W. G. Archer has explained the Persian traits on *Nimāt Nāma* as a result of presence of the female brigade of Turkish and Abyssinian slave-girls who were brought from Bukhāra and Persia in the palace of King Ghyāsuddin.[9] It was their influence on the Mālwa painters that lead to the presence of Persian idioms in the paintings. But this view seems more far-fetched and the earlier view is more plausible.

From 1531 A.D. to 1561 A.D. till the Moghal invasion which brought plunder and death to Māndu and escapade to Bāz Bahādur, we get only *Chaura Panchāsika* painted.[10] Perhaps it was during Bāz Bahādur who was a great lover of Hindu Music that resulted into the portraiture of Rāgas and Rāginīs by the painters of Mālwa which remained the most favourite theme with the Mālwa painters till 1750 A.D. Besides Rāga Mālār we get illustrations from Keśavá's '*Rasikapriya*'[11], Devī-Mahātmya, Devi Bhāgwata, Amru Shatak, Bārah Māsa in the Mālwa paintings of 17th and 18th century A.D. which are widely distributed among the collections of India and abroad.

The collection of Mālwa paintings with State Museum, Lucknow, ranges between 1660 A.D. to 1750 A.D. Out of these the bulk is formed of about six incomplete sets of Rāgamāla paintings represented by scattered leaves. Rama-Parshu-Rama Yuddha (62.3), churning of the ocean (4) (62.1), the pages from Devi-Mahātmya depicting Durgā killing Demon Dhūmralōchana (62.2), and Durgā killing demon Śumbha (62.83), Brahmā worshipping Devī (62.5) and illustrations from Bhāgwata showing Keśī-vadha (Slaying of horse-demon Keśi) are dated in 1700 A.D. while the illustration from Amru-Shataka depicting *kārtika Māsa* (62.81) is earlier—painted in 1680 A.D. *Nārāyaṇa Stuti* (62.20) is an illustration of 1725 A.D.

The earlier referred sets of Rāga Mālās could be appreciated more with a brief backgroud about the Rāga Mālā paintings in general and Mālwa Rāga Mālas in particular.

Rāgās and Rāginīs are the musical modes. Coomaraswamy[12] defines a *Rāga* as 'A selection of notes—in Northern India, from the scale of twenty-two combined in certain characteristic progressive, and with certain notes more emphasised than others.' To him the *Rāginīs* 'are modes of the *Rāgas* in which certain notes are omitted and the progressions and emphasis differs'.

The Persians had eighty-four modes while the Indian *Rāgas* are six and they have five and consequently six *Rāginīs*. Hindu modes of music are associated with the six

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

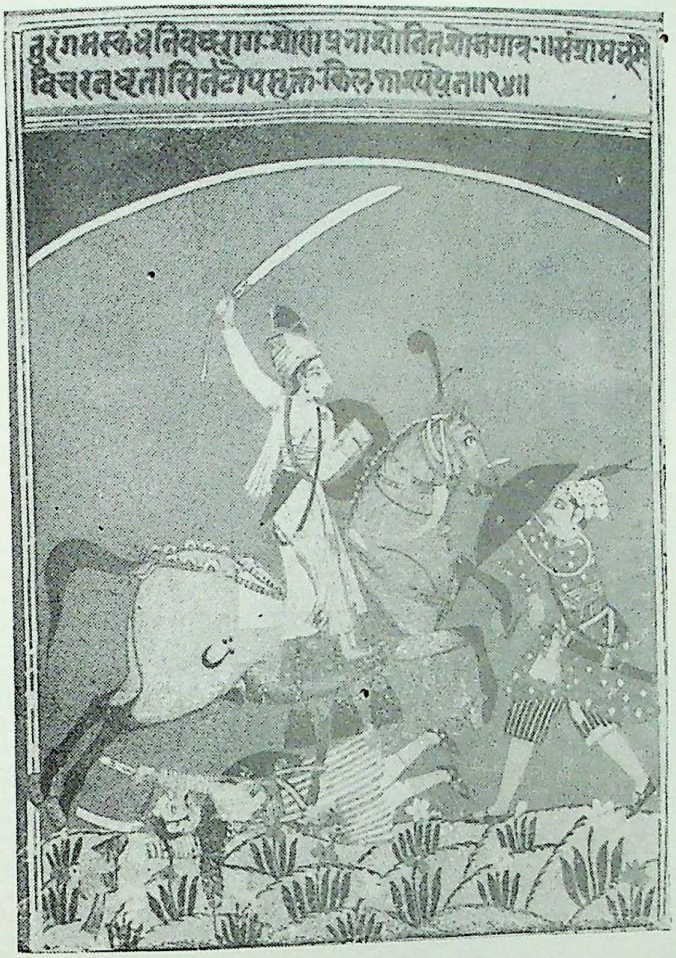

59.140 Horseman, Malwā, c. 1750 A. D.

CC-0. Bhagavad Ramayana Museum.

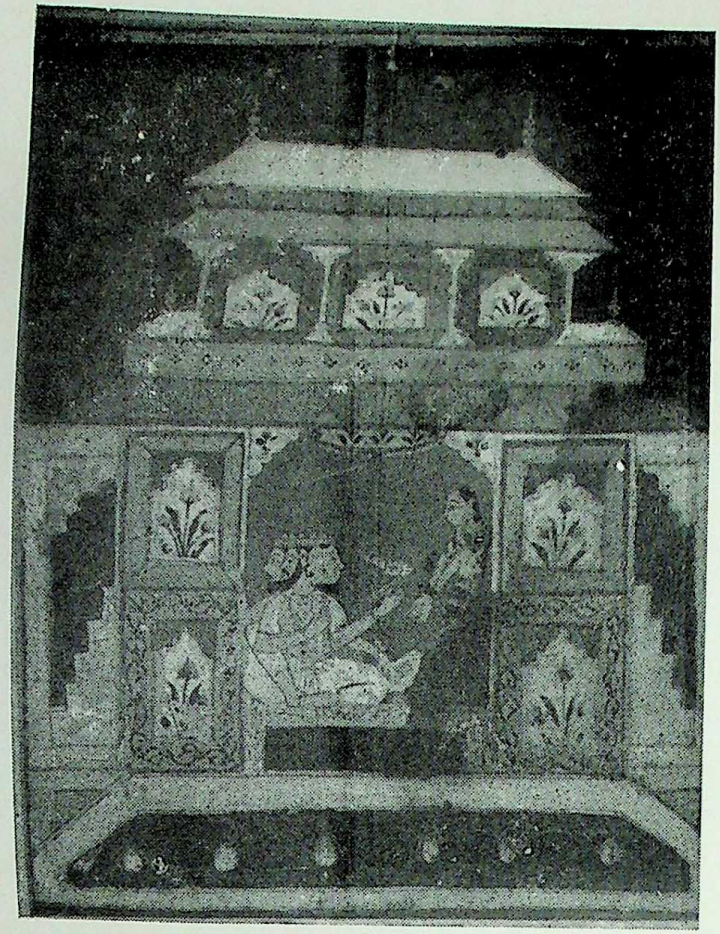

62.23 Khambhāwati, Malwā, c.1750 A. D.

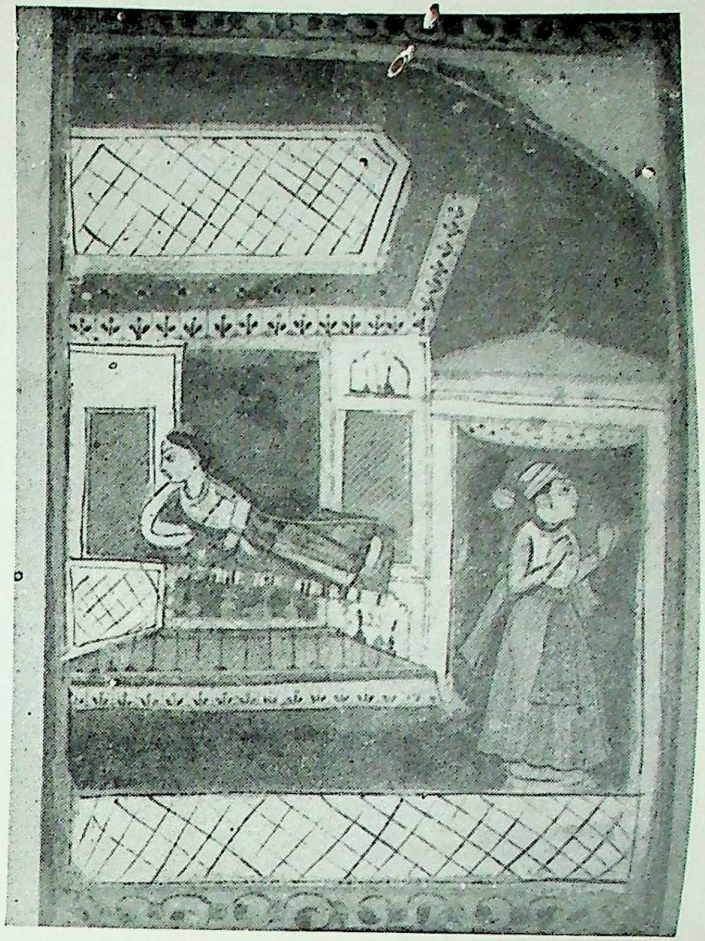

62.44 Lalit Rāgini, Malwā, c.1725 A. D.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

seasons and sometimes with the timings of their playing and singing. The six *Rāgas* are *Bhairava*, *Mālwa* or *Mālkaus*, *Sri*, *Hindola*, *Dipaka* and *Megha*. These *Rāgas* are treated as demi-gods or kings. They each have five wives called *Rāginis*.[13] The male *Rāgas* are having pentatonic scales while the *Rāginīs* have hepta-tonic scales in which pentatonics are more strong and coherent expressions which forms the masculine identification of the *Rāgas* whereas the meek haptatonic notes betrays indecision being the feminine traits in the *Rāginīs*.

Abul Fazal mentions the six principal *Rāgas* as *Sri*, *Vasaṅta*, *Bhairava*, *Pañcham*, *Megha* and *Nata-Nārāyaṇa* but mentions the six variations instead of *Rāginīs* of each of these Rāgas. The Mālwa painters follow the Hindu system which was acceptable to all the other early and contemporary centres of Rajput paintings such as Mewar, Amer, Bündi etc.

Randhawa[14] has pointed out that earliest text where *Rāgas* have been certified as *Rāga Sṛngāri* of Nārada and Dattila which is assigned to 18th century A.D. In the manuscript of Paṅchama-Sara-Samhita by Narada dated 1440 descriptive verses are given of six Rāgas and thirtysix Rāginīs—The Rāgamāla of Meṣhkarṇa (1509) and Vitthala (1576) Damodar Misra's *Sangita Darpaṇa* (1625) and its Hindi version by Harivallabha and *Rāga Ratnākara* of poet Deva might have formed the basis of the *Rāgamala* paintings. One of the earliest *Rāgamala* paintings is the Chāwand *Rāgamālas* painted by one Nisārdi in 1605 A.D. But it is interesting to note that it has got a striking similarity with Mālwa paintings and it is now established that Mālwa painters in the post-Bāz Bahādur period shifted to get the patronage of the Mewar rulers at Chāwand. N. C. Mehta's surmise that the advent of Hindu poets of *Ritikāla* gave birth to *Rāgamāla* texts is refuted by the very presence of Sanskrit texts at the top or back of Mālwa Rāga Mālas of the State Museum collections. Some of these also have Hindu Dohras (Dōhās). Now let us discuss each of the sets of Rāgamālās separately.

The earliest set is datcd in 1660 A.D. It consists of seven paintings based on *Rāgini Varāri* or *Desa* (60.290/6), *Patamañjari* (60.290/1), *Kakubha* (60.290/"), *Kedāra* (60.290/3), Deva Gañdhāra (60.290/9), *Rāgamegha Malāra* (60.290/5) and *Rāginī Seta-Malāra* (60.290/7). Out of these the illustration of *Rāgini Varari* has been assigned to earlier date of 1600 A.D. but a close observation reveals that these all are from the same set. Its inscriptions are Hindi *Dohās*.

The other set is placed in 1675 A.D. There are six leaves in this set. These comprise of *Rāginī Mālwa* (62.75), *Kedāra* (62.76), *Kāmoda* (62.77), *Desa Varāri* (62.78), *Dhanāsri Rāginī* (62.79), and Rāga Bhairava (62.80). There are Hindi text as well as Sanskrit Ślokas at the back of each of these leaves. The third set is attributed to the year 1680 A.D.

CC-0. Bhagavad Ramanuja Nati...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

It is represented by three leaves depicting *Rāgini Nata* (59.140), *Rāga Megha Malāra* (59.141) and *Rāga Mālava* (59.149). It has got only Sanskrit text at the top of the illustrations.

The fourth set is assigned to 1725 A.D. There are only two leaves in this set. These illustrate *Rāgini Guṇakali* (20.114) and Sāraṅga (20.115). Its text is in Sanskrit.

Another set of 1725 A.D. consists of five paintings depicting *Rāgini Lalita* (62.44), *Patmaṅjari* (62.41), *Bhairava* (62.49), *Bengal* (62.46) and *Rāga Sri* (62.45). On three of these only Hindi text is available while in the fourth (62.45) and fifth (62.49) we get Hindi as well as Saṅskrit *śloka*.

A third set of the year 1725 A.D. is represented by a leaf depicting *Rāgini Khambhāwati* (59.188). Its text is in Sanskrit only.

The last set dateable to 1750 A.D. is represented by only one leaf of *Rāgini Khambhāwati* (62.23). Its text is only in Hindi.

The degenerated Mālwa idioms can be noticed in the two Bhopal paintings of State Museum, Lucknow collection. These are placed in 1850 A.D. One of these depicts 'Elopement' (57.111) and the other portrays a '*Darvesh* and the prince' (57.112).

REFERENCES

1. Das, Raikrishna, '*Bhārat Kī Chitra Kalā*', (Bhārtiya Bhandār, Prayāg 2007 V.S., 1960-A.D.), pp. 22-23.
2. Mehta, N. C., 'Studies in Indian Paintings' (D. B. Taraporevala and Sons, (Bombay, 1926), p. 24.
3. Tiwari, R. P., '*Bhārtīya Chitrakalā aur Uske Mūla Tattva*', (Bhārtīya Publishing House, Delhi, 1973), p. 55.
4. Archer, W. G., 'Central India Paintings', pp. 307.
5. Khandalawala, Karl, 'Development of Style in Indian Painting' (Macmillan India–Madras, 1974), pp. 50-60.
6. Tiwari, R. P., '*Bhārtiya Chitrakalā Aur Uske Mūla Tattva*', p. 55.
7. *Ibid.*, p. 56, Also Khandalawala, Karl, 'Development of Style in Indian Painting', p. 64.
8. Khandalawala, Karl, *Ibid.*, p. 64.
9. Archer, W. G. 'Central India Paintings', p. 3.

CC-0. Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

10. Tiwari, R. P., '*Bhārtiya Chitrakalā aur Uske Mūla Tattva*', p. 56.
11. *Ibid.*, p. 57.
12. Coomaraswamy, A. K., 'Rajput Paintings', p. 65.
13. Randhawa, M. S., '*Kāngra Rāgamāla Paintings*', (National Museum, New Delhi-1971), pp. 12-13.
14. *Ibid.*, p. 14. Also on pps. 4-6 he mentions Jaya Deva's Gīta Govinda (12th cent. A.D.), *Rama Kumbha's*, *Saṅgīta Rāga* (1419-60), *Rāginibodha* of Somnath (1609 A.D.), Damodara Misra's, '*Saṅgīt Darpaṇ*', (1625 A.D.) and Anup Singh's, '*Saṅgita Ratnākara*', (1669-1698). He also refers to some text mentioned by O. C. Ganguli which is South Indian. These certainly help in constructing the history of Rāga Mālās and have less relevance to the present paper's scope.

CC-0. Bhagavad Ramanuja N...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जयपुर शैली में भित्ति चित्रण पद्धति

श्रीमुनि सिंह

भारतीय चित्रकला में राजस्थानी चित्रों का प्रमुख स्थान है। जहाँ एक ओर कागज पर निर्मित लघुचित्रों की बहुतायत है वहीं दूसरी ओर भित्ति चित्रण का भी प्राविधान है। कालक्रम की दृष्टि से ये सभी चित्र सोलहवीं शती से लेकर आधुनिक युग के हैं। इनकी प्राप्ति आमेर, गलता, जयपुर, कोटा, बूँदी तथा राजस्थान के अनेक राज-प्रासादों एवं देवस्थानों से हुयी हैं। ये भित्ति चित्र विभिन्न पद्धतियों से निर्मित हुये हैं।

इनमें कुछ कृतियाँ प्राचीन भारतीय परम्परागत विधि से बनायी गयी हैं और कुछ इटालियन पद्धति का अनुसरण करती हैं। यहाँ पर दो प्रकार की पद्धतियों का प्रचलन है। प्रथम, आलागीला, फ्रेस्को बान (Fresco Buon). इसमें गीली विधि (Wet Process) का प्रयोग होता है। दूसरी पद्धति फ्रेस्को सेक्को (Fresco Secco) है, जिसमें सूखी दीवार पर सूखी विधि (Dry Process) से कार्य होता है। गीली दीवार में भी प्रायः दो पद्धतियाँ हैं। एक जयपुर शैली तथा दूसरी इटालियन शैली है। अपने अनुभव तथा परीक्षण के आधार पर जयपुर पद्धति के विषय में लिखने का प्रयास कर रहा हूं।

भित्ति-चित्रों के निर्माण में कई विधाओं से गुजरना पड़ता है। सर्वप्रथम भित्ति का निरीक्षण, कि दीवार किस वस्तु की बनी है। प्रायः दीवार दो प्रकार की होती हैं। एक ईंट की तथा दूसरी पत्थर द्वारा निर्मित होती है। दीवार के अन्दर कहीं से पोली व खोखली तो नहीं है। वर्षा-ऋतु में दीवार के अन्दर कहीं से पानी तो नहीं रिस रहा है। यदि भित्ति के अन्दर उपरोक्त खामियाँ हैं तो उसे दूर करना चाहिये।

भित्ति की टँचाई विधि

यदि भित्ति पर पहले से पलस्तर किया हुआ है तो उसे टांकी द्वारा टंचाई की जाती है। इसे बसूली या हथौड़ी की चोट से करते हैं (चित्र सं० १ एवं २)। टंचाई करने से भित्ति का पुराना पलस्तर निकल जाता है। टंचाई ऐसी करें जिससे भित्ति का ईंट या पत्थर खुरदरा हो जाय। उसके बाद एक घण्टा तक मूज की कूंची से

श्री श्रीमुनि सिंह, एन० आर० एल० सी०, निरालानगर, लखनऊ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja N...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

भित्ति को पानी द्वारा तर करें। जिससे दीवार में नमी आ जाय। नमी के बाद कली व झींकी का पलस्तर लगायें।

कली बनाने की विधि

कली पान में खाने वाले चूने को कहते हैं। अच्छा पत्थर का चूना लें, उसे एक घड़े में पानी डालकर भिगो दें। एक सप्ताह के बाद उसे छन्नी से छानकर दूसरे घड़े में रखें। जिससे चूना का कंकड़-पत्थर छन जाये। चूना का आठवां भाग में दही मिलाई जाती है। जिससे कली में मुलामियत तथा चमक आती है। साथ ही चूना का खारापन कम हो जाता है। कली कम से कम एक माह पुराना होना चाहिये। भित्ति चित्रों के लिए जितना पुराना चूना होता है। वह उतना ही अच्छा होता है। कली से कार्य करते समय हाथ में खड्डे पड़ जाते हैं। इसलिए हाथ को साफ कर चिकनी लेप लगायें। जहाँ कोई वस्तु न मिले तो बबूल की पत्ती पीसकर हाथ पर लगायें।

सरेसी लगाने की विधि

उपरोक्त नम दीवार पर सर्वप्रथम सरेसी लगाया जाता है। इसमें दो भाग झींकी, एक भाग कली व आठवां भाग गुग्गुल और नमक के समान गुड़ या चीनी एक साथ मिलानी पड़ती है। झींकी संगमरमर के चूर्ण को कहते हैं जो शक्कर के दाने के बराबर होती है। सरेसी को करनी (चित्र सं० ३) द्वारा भित्ति पर पतला लगाना चाहिये। सरेसी भित्ति व पलस्तर को जोड़ने का कार्य करती है। यदि सरेसी मोटी या उसमें गुड़ की मात्रा अधिक होने से अस्तर पर पीलापन आ जाता है। जो चित्र के लिये हानिकारक है।

पलस्तर लगाने की विधि

सरेसी के दो दिन बाद पलस्तर लगायें जितनी मोटी आवश्यकता हो। इसमें एक भाग कली व दो भाग झींकी का पलस्तर बनायें। पलस्तर लगाने से पूर्व भित्ति को पानी द्वारा तर करना चाहिये। पलस्तर को दो तीन चरणों में लगाना चाहिये। जिससे दीवार में पोलापन न आये। जब पलस्तर सूख कर चिटकने लगे तो मूज की कूची (चित्र सं० ४) से पानी का छिड़काव करते हैं। भित्ति का पलस्तर समतल करने के लिये जबरन का प्रयोग करते हैं। इसे (चित्र सं० ५ व ६) पानी का छींटा देकर छः सात बार भित्ति को बराबर करना चाहिये।

भित्ति का परीक्षण

भित्ति पर चित्र बनाने से पूर्व उसकी परीक्षण करनी चाहिए, दीवार ऊँची-नीची (दिडी-दूमडी) नहीं हो। भित्ति को अंगुली या नेले से ठोककर देखें कि कहीं पोली तो नहीं है। यदि पोली होगी तो धब-धब की आवाज आती है। वर्षा ऋतु में कहीं से पानी तो नहीं रिस रहा है। चित्रांकन से पूर्व भित्ति को एक वर्ष परीक्षण के लिये छोड़ देना चाहिए। जिससे उपरोक्त कमियां परख कर दूर की जा सकें।

CC-0. Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अस्तर बनाने की विधि

चित्र आंकने से पूर्व अस्तर बनाकर भित्ति तैयार करते हैं। पहले से निर्मित भित्ति पर आधा घण्टा पानी से छिड़काव करके नम करते हैं। इसके बाद दो भाग कली और एक भाग बारीक संगमरमर का चूर्ण मिलाकर पंछा (चित्र संख्या ७) मूज की कूची से पुताई करते हैं। फिर पत्थर की वटी (चित्र सं० ८) से घिसाई करते हैं। जिससे मोरचे (खड्ढे) मिट जाएँ और भित्ति बराबर व समतल नजर आने लगे यह प्रक्रिया कई बार करनी पड़ती है। यदि भित्ति सूखने लगे तो पानी से नम करना चाहिए। अस्तर सही बनाने से भित्ति चिकनी व सुन्दर प्रतीत होती है।

संदला लगाने की विधि

भित्ति पर आखिर में संदला लगाते हैं। ये कलाकार की रुचि तथा चित्र के बैकग्राउन्ड पर निर्भर करता है। संदला कली या किसी रंग का लगाते हैं। इसे नारियल या खजूर के ब्रश (चित्र सं० ९) से लगाते हैं। उसके ऊपर नेले या घोटी से संदला की घोटाई करते हैं। यदि चित्र बना हो तो पुरानी धोती के कपड़े से चमक उतार देते हैं। कपड़े को हल्के हाथों से फेरना चाहिए जिससे भित्ति की चमक उतर जाए।

सुरजन विधि

इस पद्धति में कुशल चित्रकार सीधे तूलिका द्वारा भी चित्र बनाते हैं। परन्तु अधिकतर मूल रेखाचित्र को कागज पर बनाते हैं। उसकी रेखाओं पर सुई द्वारा छेद करते हैं (चित्र सं० ११) जिससे भित्ति पर चित्र आंका जा सके। इस विधि को सुरजन कहते हैं संदला तैयार करने के उपरान्त कागज को भित्ति पर लगा देते हैं। एक कपड़े की पोटली में गेरू या कोयला का चूर्ण बाँधकर रेखाओं पर फेरे तो छेद के द्वारा रंग भित्ति पर आ जायेगा। खाका को सावधानी से हटा लें। भित्ति पर चित्र का अक्स दिखायी देगा चित्र को इस प्रकार सयोजन करें कि कई दिनों तक लगातार कार्य करने पर भी जोड़ न दिखाई दे।

चित्रण विधि

चित्र आंकने के उपरान्त भित्ति पर रंगों को ब्रश से यथा स्थान भरते हैं। जब रंग के ऊपरी सतह का पानी सूख जाय तब नेले से (चित्र सं० १३) थपथपाते हैं। जिससे रंग भित्ति के अन्दर प्रविष्ट हो जाय। यदि आवश्यकता हो तो दोबारा रंग की भराई करते हैं। प्रत्येक बार नेले से थपथपाते हैं। थपकी देते समय नेले को कपड़े से साफ करते हैं, नहीं तो धब्बा आ जायेगा। एक साथ आस-पास रंग की भराई नहीं करें नहीं तो रंग फैलने का भय रहता है। काला रंग की भराई में कोयला घिसकर मिलाते हैं। रेखा के लिए काजल में सरेस मिलाना चाहिये। कभी रेखा को भित्ति पर उकेर कर बनाते हैं (चित्र सं० १४)। उपरोक्त सभी कार्य भित्ति में नमी रहते ही करना चाहिये।

CC-0. Bhagavad Ramanuja N...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

घोटाई की विधि

चित्र पूर्ण हो जाने पर उसे नेले से घोटाई की जाती है घोटाई करते समय ध्यान रखें कि चित्र पर खरोंच न पड़े। उसके बाद अकीक की घोटी (चित्र सं० १५) करते हैं। अधिक चमकीला व चित्र की सुरक्षा हेतु गोला का पानी लगाते है। नारियल को पानी के साथ सिल पर घिसते हैं। उस पानी को बारीक कपड़े से छान लेते हैं फिर भित्ति पट्ट हाथों से थपथपाकर लगाते हैं। उसके बाद धोटी से घोटाई करते हैं। सादी दीवार पर चमक लाने के लिये सपरेटा के दूध से छीटा देकर घोटाई करते हैं। जिससे भित्ति पर चमक दमक आ जाती है।

अलंकरण विधि

भित्ति चित्रों पर रत्न व काँच की जड़ाई बाद में करते हैं। जड़ाई के लिए सपरेटा के दूध (मक्खन) निकला हुआ दूध का छेना बनाते हैं। छेना व कली को मिलाकर घोलते हैं जब इसमें चिपचिपापन आ जाय तो इसके सहारे रत्नों की जड़ाई करते हैं। सोने के अलंकरण कार्य बाद में करते हैं। इसके लिए सरेस को पानी में डालकर आग पर पकाये और थोड़ी सी चीनी डाल दे। इसे बत कहते हैं। जब बत में चिपचिपापन आ जाय तो भित्ति पर लगाकर सोने के वर्क को छाप दे। वर्क जब अच्छी तरह चिपक जाय तब ओपणी से घोटाई करनी चाहिए। रेखा के लिये हलकारी लगानी चाहिये। घोटाई से सोने में चमक आ जाती है। सोने के किनारों पर काली रेखा खींचनी चाहिये जिससे चित्र में उभार आता है।

इन चित्रों में कुछ रंगों का प्रयोग होता है। क्योंकि चूना रसायनिक रंगों को नष्ट कर देता है। प्रमुख खनिज रंग हैं गेरू, रामरज, हराढावा, हिरमिजी आदि। कभी-कभी नील, हिगुल, सिन्दूर का प्रयोग भी करते हैं। सफेद के लिये कली और काला रंग के लिये तिल के तेल से काजल बनाते हैं। बहुत से रंग उपरोक्त रंगों के समिश्रण से तैयार करते हैं। यदि रसायनिक रंगों का प्रयोग करना हो तो उसे कली में मिलाकर रखें। यदि रंग में परिवर्तन आता है तो उसे प्रयोग नहीं करना चाहिये।

इस पद्धति का भित्ति चित्र आजकल छोटे आकार में भी बनने लगे हैं। इस प्रकार के चित्र सीमेन्ट की प्लेट या सीमेन्ट की चादर के टुकड़ों पर कली का पलस्तर लगाकर उपरोक्त विधि से बनाते हैं। ये चित्र नमूने के तौर पर कहीं भी ले जा सकते हैं। इस पद्धति के भित्ति चित्र बनाने की परम्परा अब समाप्त होती जा रही है।

भित्ति चित्र के उपकरण

१. टांकी लोहे की चेनी को कहते हैं। यह विभिन्न माप की होती है। टंचाई के लिये ९" × १/४" के लगभग होनी चाहिये।

२. करनी लोहे की पलस्तर लगाने के लिये होती है। यह भी विभिन्न माप की होती है चित्र के लिये मध्यम या छोटी होनी चाहिए।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

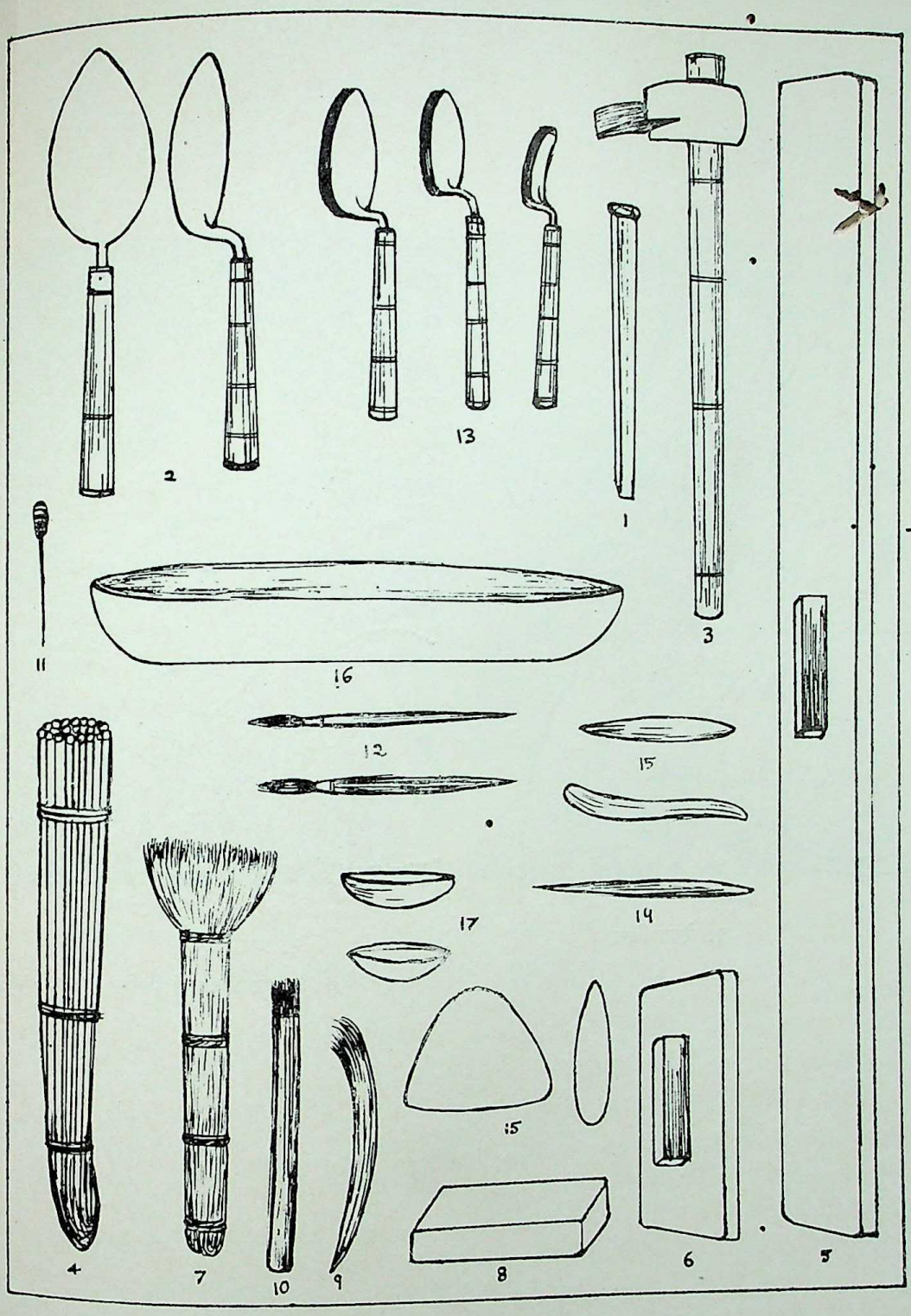

जयपुर शैली में भित्ति चित्रण पद्धति—उपकरण

CC-0. Bhagavad Ramanuja Nati

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

१. रेखा चित्र

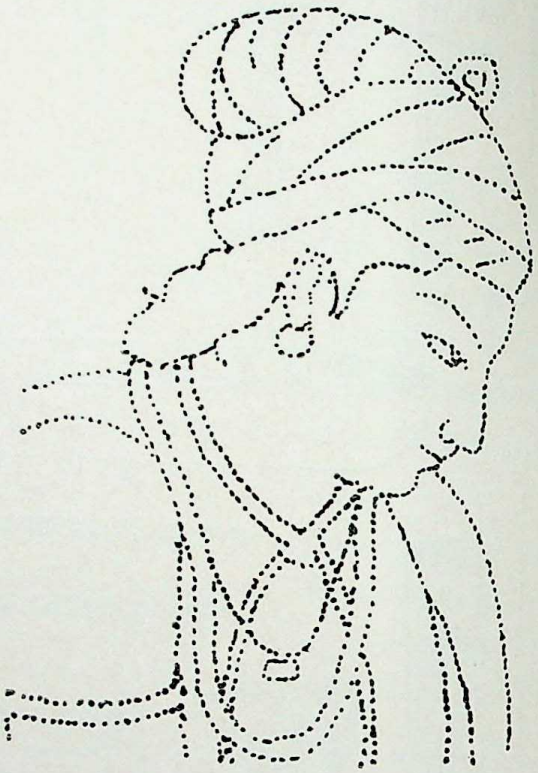

२. चर्बा

जयपुर शैली में भित्ति चित्रण पद्धति

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

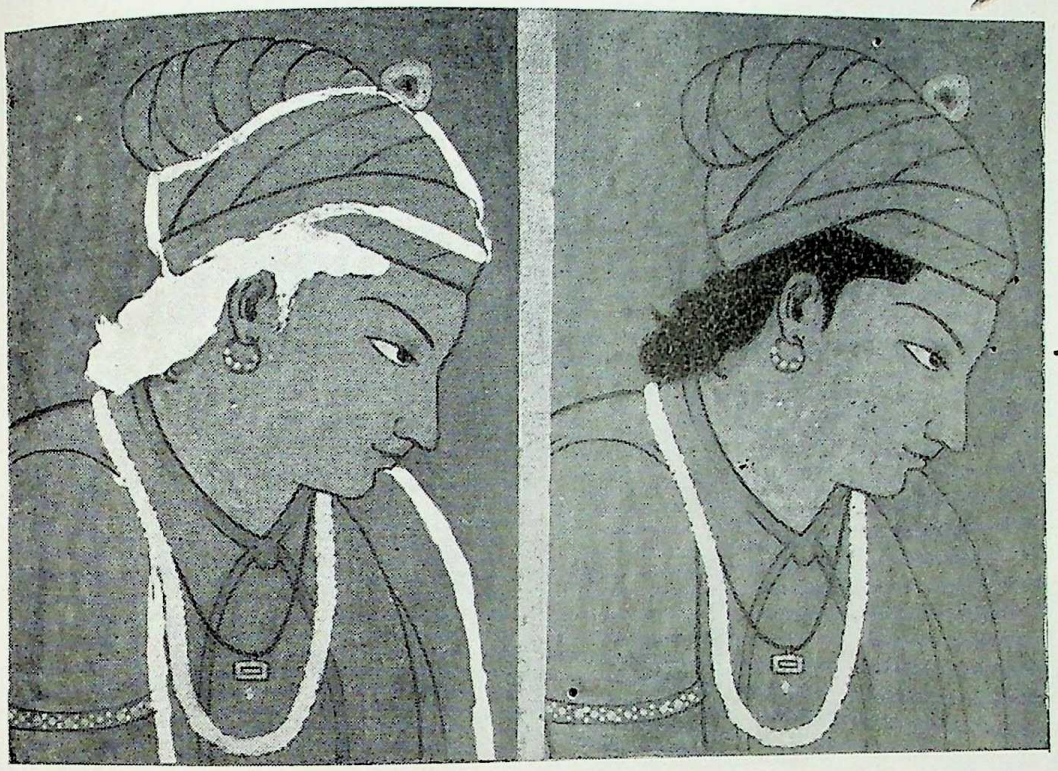

३. चित्र बनाने के दौरान

४. भित्ति चित्र पूर्ण

जयपुर शैली में भित्ति चित्रण पद्धति

CC-0. Bhagavad Ramanuja N...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

३. बसूली लोहे की दो भागों में बनी होती है । अगले भाग में लोहे की पत्ती लगती है । एक लकड़ी का बेट लगा होता है यह पलस्तर काटने के कार्य में आती है ।

४. मूज की कूची यह विशेष प्रकार से बनती है यह साबूत मूज को तीन स्थानों से बाँधकर ऊपर चोटी बांध दी जाती है पानी में डुबाने से उसके छेद में पानी आ जाता है । यह पानी छिड़कने के लिए प्रयोग में आती है ।

५-६. जबरन यह लकड़ी का लगभग ४" × ३" × १/२" का पटरा होता है जो कई माप व आकार का होता है । उसमें लकड़ी का हैंडिल लगता है । यह भित्ति के पलस्तर को समतल करने के लिये है ।

७. पंछा मूज की कूची पोताई करने वाली को कहते हैं । यह मूज को कूटकर बांधते हैं । अगला भाग बारीक व चपटा होता है ।

८. यह बलुआ पत्थर का साबुन की बटी की भाँति होती है । इसका कोर घिसा होता है जिससे भित्ति के अस्तर में खरोच न आये ।

९. यह नारियल के जटा को काटकर बनाते हैं । इसका अगला भाग कूटकर बारीक करते हैं । यह संदला लगाने के लिये प्रयोग होता है ।

१०. यह खजूर के फल वाला डंठल को काटकर बनाते हैं । अगला भाग को कूटकर चपटा ब्रश की भाँति बनाते हैं । यह संदला लगाने के लिए हैं ।

११. सुई लोहे की होती है । इसके ऊपरी भाग पर कपड़ा लपेट लेते हैं चुटकी से पकड़ने के लिए मूल चित्र को गद्दी पर रखकर नोक से रेखा पर छेदते हैं ।

१२. यह गिलहरी के बाल से चिड़ियों के पर में फँसा कर बनाते हैं । बांस की डंडी में चिपका कर ब्रश बनाते हैं । यह कई प्रकार का होता है । इससे चित्रों की भराई व रंगाई करते हैं ।

१३. नेले लोहे का करनी की भांति होता है । परन्तु यह २ सूत्र मोटा व २" × १/२" लम्बा होता है । इसकी बतावट कई प्रकार की होती है । इसका निचला कोर गोल होता है जिससे भित्ति चित्र में खरोच न आये ।

१४. लोहे की कलम चपटी लगभग ७" की होती है । इसके दोनों सिरे नुकीले होते हैं । यह खत लगाने व उकेरने का कार्य करती है ।

१५. घोटी व ओपणी अकीक पत्थर की बनी होती है । यह कई प्रकार व माप की बनती है । इसका कोर गोल व पालिश किया होता है । इससे चित्रों की घोटाई करते हैं ।

१६. लोहे का तशला पलस्तर बनाने के लिये ।

१७. मिट्टी या कांच की प्यालियां रंगों को घोलने के लिये ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja N...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

हुलासखेड़ा उत्खनन १९८३–८४

राकेश तिवारी एवं
राकेश श्रीवास्तव

लखनऊ जिलान्तर्गत मोहनलालगंज तहसील में, तहसील मुख्यालय से लगभग ५ कि०मी० की दूरी पर हुलासखेड़ा नामक गाँव स्थित है। गाँव के पश्चिमोत्तर भाग में चारों ओर से झील द्वारा घिरा एक विशाल टीला है। इसका क्षेत्र विस्तार लगभग ८५ एकड़ है। टीले के उत्तरी भाग में कलेश्वरी देवी का मन्दिर स्थित है। इस मन्दिर के गर्भगृह में स्थापित कुषाणकालीन मृण्मूर्ति, गुप्तकालीन विष्णु मुख एवं मुखलिंग तथा टीले पर बिखरे पुरावशेषों और वास्तु को देखकर बहुत समय से विद्वतजनों द्वारा स्थल के प्राचीन महत्व के अनुमान लगाये जाते रहे। इस सन्दर्भ में प्रख्यात प्राच्यविद् कनिंघम और डा० सर्वदमन सिंह आदि के नाम लिए जा सकते हैं। कालान्तर में आकस्मिक रूप से देवी-मन्दिर के निकट खेतों की सिचाई के लिए एक कुएँ की सफाई किये जाने पर सन् १९७० में अनेक पुरावशेष प्राप्त हुए। तदुपरान्त इसकी सूचना ग्रामवासियों ने उ० प्र० राज्य पुरातत्व संगठन को भेजी। पुरातत्व संगठन द्वारा पुरावशेषों के निरीक्षण से पता चला कि इनमें से कुछ मृण्मूर्तियां कुषाण काल से सम्बन्धित हैं, तथा कुआं उनका समकालीन सिद्ध हुआ।[1] इन महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी के बाद टीले का विस्तृत सर्वेक्षण कर उसके पुरातात्विक महत्व का मूल्यांकन करने पर इस बात की प्रबल सम्भावना प्रतीत हुई कि टीले का उत्खनन कराये जाने पर क्षेत्रीय इतिहास और पुरातत्व की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है। सर्वेक्षण से प्राप्त पुरावशेषों में काले लेपित (एन०बी०पी०—डब्लू०) के आधार पर यहाँ लगभग ५०० ई०पू० तक के पुरावशेषों के मिलने का अनुमान पहले ही लगा लिया गया था।

हुलासखेड़ा के टीले में दबी हुई विभिन्न कालों की सांस्कृतिक सामग्री का कालानुक्रम ज्ञात करने के उद्देश्य से सत्र १९७८-७९ में यहाँ १० × १० मीटर की एक परीक्षण गर्त लगायी गयी, जिससे पता चला कि यहाँ लगभग ७०० ई० पूर्व से ७०० ई० तक के पुरावशेष दबे हैं। इन्हें निम्न कालों में बाँटा गया है—

१६
१५] प्रथम काल
१४] ७०० ई०पू० से ३०० ई०पू०

श्री राकेश तिवारी एवं श्री राकेश श्रीवास्तव, उ० प्र० राज्य पुरातत्व संगठन, लखनऊ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja N...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

१३	]	बैरन
१२	]	एन०बी०पी० वेयर
११		५०० ई०पू० से ३०० ई०पू०
१०	]	
९	]	शुंग काल
८	]	२०० ई०पू० से १०० ई०
७	]	कुषाण काल
६		
५	]	
४	]	गुप्त काल एवं गुप्तोत्तर काल
३		३०० ई० से ७-८वीं शती ई०
२		
१	]	

उपर्युक्त उपलब्धियों की विवेचना से स्पष्ट हुआ कि यहाँ प्राप्त सांस्कृतिक स्तरों में कुषाण और गुप्त-कालीन गतिविधियों के साक्ष्य विशेष रूप से अध्ययन के योग्य हैं। इन कालों में वास्तु-निर्माण के सन्दर्भ में विशेष विकास दृष्टिगत् हुआ। तदनुसार यह निश्चय किया गया कि यदि इस स्थल पर कुषाण और गुप्त युगीन नगर-व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो उनकी सांस्कृतिक स्थिति का अत्यन्त उपयोगी पक्ष उजागर हो सकेगा और इस तरह उत्तर प्रदेश के तत्कालीन सांस्कृतिक इतिहास के अब तक अस्पष्ट अन्तराल को भरने में सफलता मिलेगी। इसी क्रम में १९७९–८०[२]-८१-८२[३]-८३ में कराये गये उत्खनन के परिणामस्वरूप कुषाण कालीन आवास, राजपथ, मन्दिर, प्राचीन दुर्ग, मृण्मूर्तियाँ, पाषाण प्रतिमायें, तांबे व चांदी के कुषाण, गुप्त एवं आहत सिक्के, लौह, ताम्र एवं अस्थि निर्मित वाणाग्र, अंजन शलाका, सुन्दर पत्थरों से निर्मित मनके, स्वर्ण पत्र चढ़े हुए मनके, तांबे व हड्डी से निर्मित चूड़ियां गुप्तकालीन पर्तों से प्राप्त विभिन्न पुरालेखों वाली मुद्रा एवं मुद्रा छापें तथा प्राचीन मृत्तिका पात्र प्राप्त हुए हैं। इसमें थोष्ठक पद्धति पर निर्मित कुषाण कालीन मार्ग, कुमार गुप्त का चाँदी का मयूर प्रकार का सिक्का, कार्तिकेय की स्वर्णफलक तथा चाँदी की आहत मुद्रायें, यहाँ की महत्व पूर्ण उपलब्धियाँ हैं।

उपर्युक्त क्रम में सत्र १९८३-८४ में निदेशक, उ० प्र० राज्य पुरातत्व संगठन के निर्देशन में राकेश तिवारी उत्खनन एवं सर्वेक्षण अधिकारी, राकेश श्रीवास्तव, सर्वेक्षण सहायक और श्री अमर सिंह, सर्वेक्षण सहायक द्वारा हुलासखेड़ा के टीले के उत्खनन का कार्य कराया जाता रहा। इसके अन्तर्गत दुर्ग की पूर्वी दीवार को लगभग ९० मीटर तक प्रकाश में लाया गया है। यह प्राचीर उत्तर से दक्षिण की ओर निर्मित लगभग २ से २.६० मीटर तक चौड़ी एवं १ मीटर १० से०मी० ऊँची है। इसमें विभिन्न कालों यथा शुंग, कुषाण एवं गुप्तोत्तर कालीन सादी और अलंकृत विभिन्न आकारों की ईंटें लगी हैं। इसमें ईटों की अधिकतम १५ पर्तें सुरक्षित मिली हैं। प्राचीर के लगभग मध्य में दुर्ग का निकास द्वार (×) पाया गया है। उसका वास्तु-विधान काफी कुछ मुख्य प्रवेश द्वार से मिलता जुलता है। इस प्राचीर में जगह-जगह ऊपर चढ़ने के लिये सोपान निर्मित किये गये हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

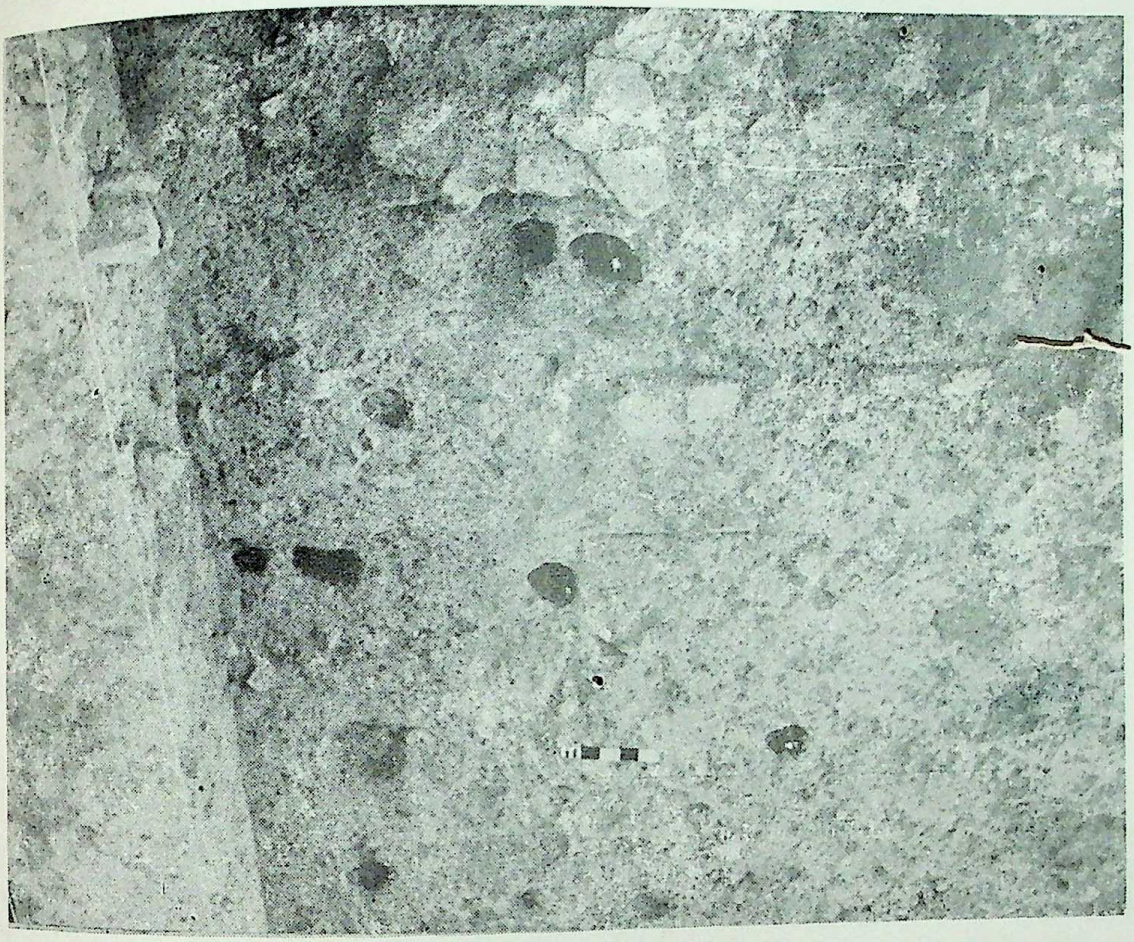

चि० सं० १ स्तर संख्या (१) से प्राप्त 'पोस्टहोल' जिस में झोपड़ियां बनायी गयी थीं

CC-0. Bhagavad Ramanuja N

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चि० सं० २ कुषाणकालीन मार्ग

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

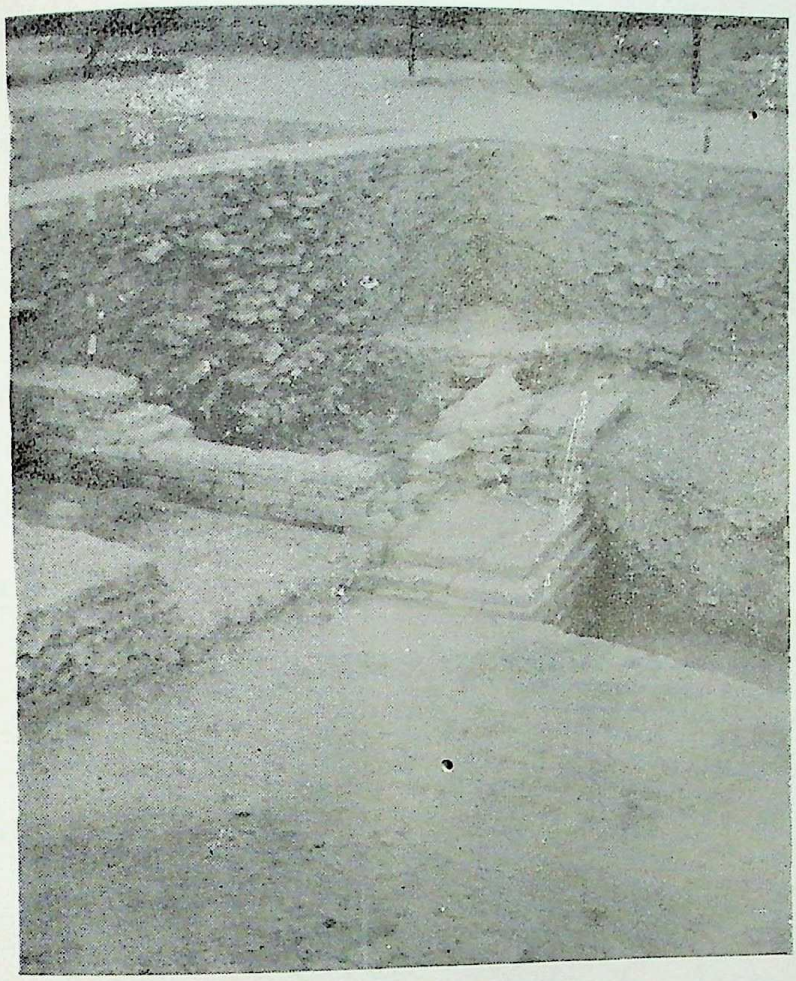

चि० सं० ३ कुषाणकालीन वास्तु अवशेष

CC-0. Bhagavad Ramanuja N

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चि० सं० ४ कुषाणकालीन आवासीय स्तरों से प्राप्त पक्की नाली

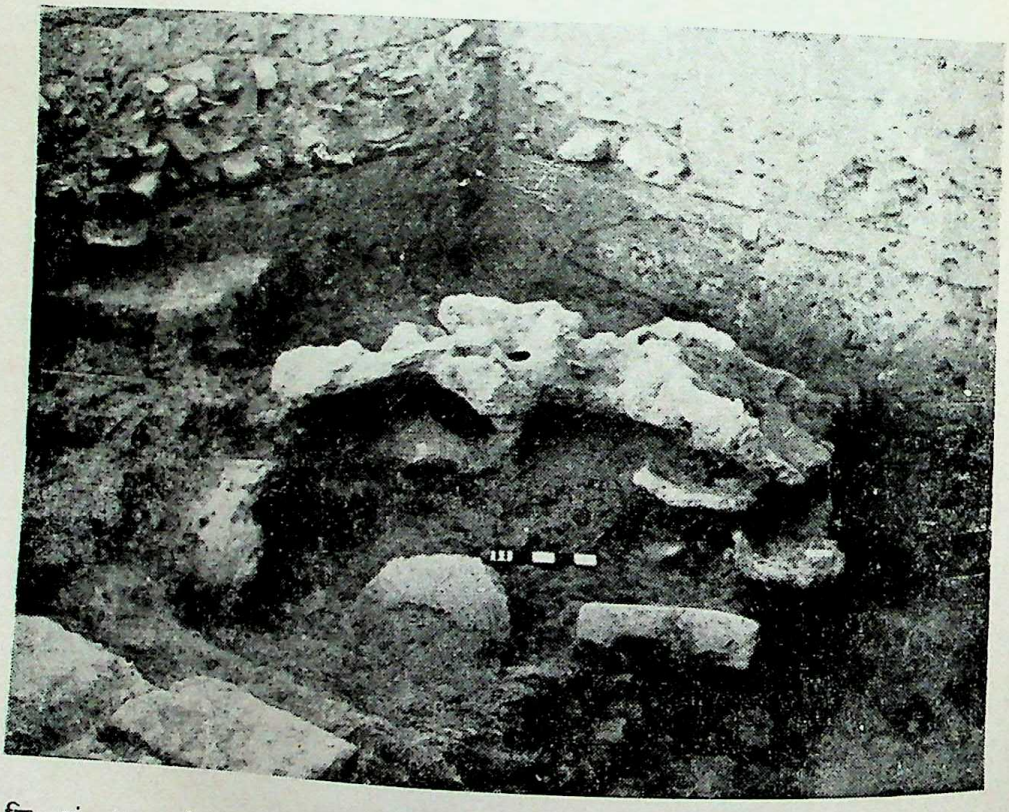

चि० सं० ५ कच्ची मिट्टी से निर्मित अनाज की डिहरी

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

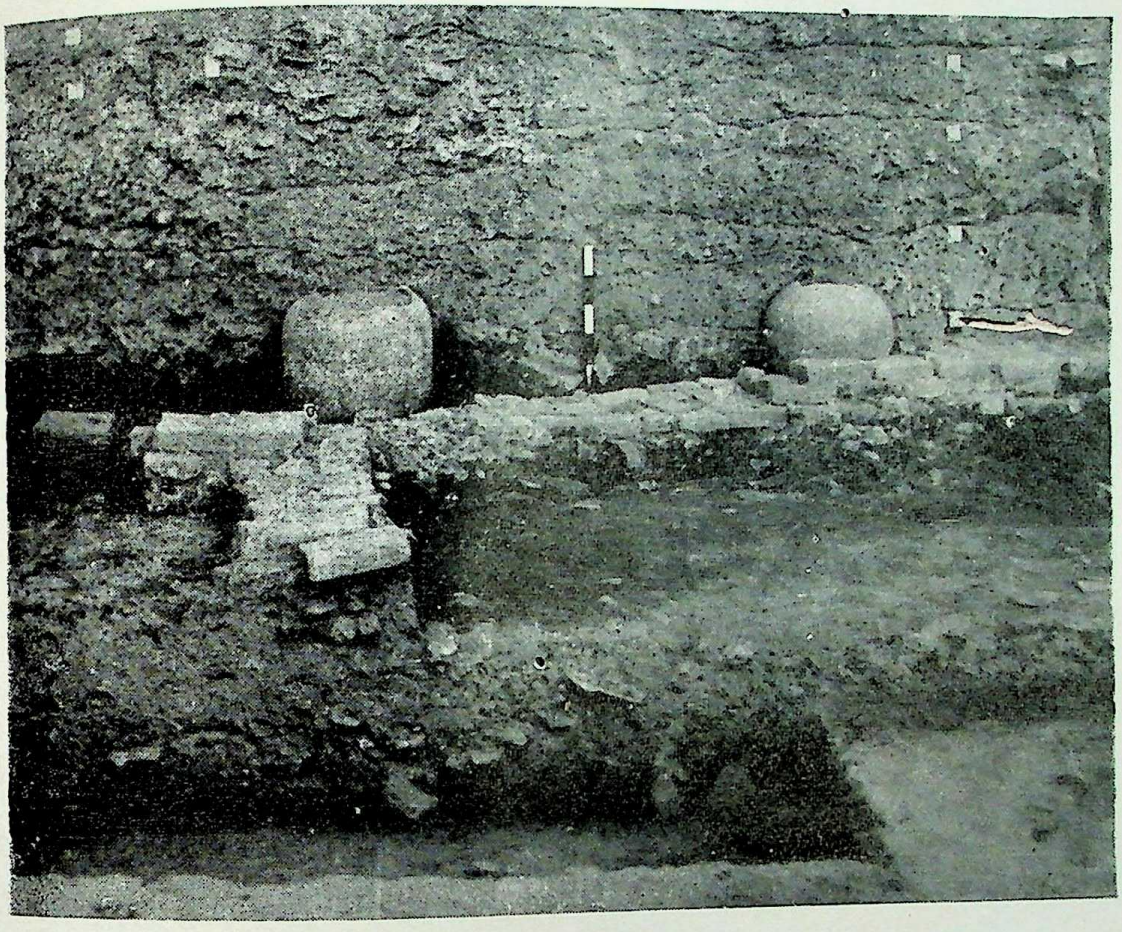

चि० सं० ६ कुषाणकालीन स्तरों से प्राप्त अनाज संग्रह पात्र

CC-0. Bhagavad Ramanuja N

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

साथ ही जल निकास हेतु जल प्रणालियों का प्राविधान भी रखा गया है। इस प्राचीर के साथ विभिन्न कालों के पात्र अवशेष, तांबे के सिक्के, लौह-बाणाग्र तथा मुद्रा छापें आदि प्राप्त हुई हैं। पात्रों में 'रेड वेयर' तथा इसके साथ-साथ 'ग्लेज्ड वेयर' पाये गये हैं। तांबे के सिक्कों में कुषाण कालीन सिक्के मुख्य रूप से मिले हैं। मुद्रा छापों में ब्राह्मी लिपि में अंकित 'रुद्र' उल्लेखनीय है। इस तरह अब यह दुर्ग अवशेष पूरी तरह प्रकाश में लाया जा चुका है।

दुर्ग के अन्दर आवासीय संरचनाओं को प्रकाश में लाने एवं पुरावशेषों के क्रम की जानकारी के लिये विभिन्न ट्रेंचों में उत्खनन कार्य कराया गया। इनकी ऊपरी पर्तों के उखनन से 'रेड वेयर' व अल्प मात्रा में 'ग्लेज्ड वेयर' और ताम्र सिक्कों के साथ तीन-तीन कक्षों वाली दो आवासीय संरचनायें प्रकाश में आयी हैं। इसी से सम्बन्धित एक ट्रेंच में झोपड़ियों के निर्माण के समय के 'पोस्ट होल' का पाया जाना उल्लेखनीय है (चित्र सं० १)। इसमें अन्दर सड़ी हुई लकड़ी पायी गई है। इसी प्रकार कुषाण एवं गुप्तकालीन पर्तों से विभिन्न आकारों में निर्मित चूल्हे एवं भठ्ठियाँ प्राप्त हुई हैं। स्तर संख्या (६) से अर्द्ध वृत्ताकार ४५ × ३० सेमी०, ५४ × ४७ सेमी०, एवं अण्डाकार ४३ × १३ सेमी० माप के तीन चूल्हे एवं १.३५ मीटर लम्बी एवं २५ सेमी० चौड़ी एक भट्ठी के अवशेष प्राप्त हुये हैं, जिसमें राख एवं कोयले के अवशेष मिले हैं। एक ही स्थान पर इतनी अधिक मात्रा में भट्ठियों का पाया जाना यह सिद्ध करता है कि यहाँ पर सामूहिक भोजनालय रहा होगा।

पूर्वज्ञात सांस्कृतिक कालानुक्रम के पुनरावलोकन एवं दुर्ग के साथ मुख्य ट्रेन्च का सम्बन्ध जानने के लिये मुख्य ट्रेंच एवं सुरक्षा प्राचीर के उ० पश्चिमी भाग के मध्य ट्रेंचों में उत्खनन कार्य कराया गया। परिणामस्वरूप गुप्तकालीन वास्तु संरचना तीन चरणों में प्राप्त हुई तथा कुषाण कालीन वास्तु अवशेष के दो चरण प्रकाश में आये हैं। इसमें प्रयुक्त ईटों की माप ३६ × २२ × ५ सेमी० है। इस मार्ग के ऊपर लगभग १० सेमी० की मोटाई तक गारे एवं चूने का प्रयोग किया गया है (चित्र सं० २)। मार्ग के समीप ही जल प्रवाह से बना ६.६० मीटर × २.५० मीटर कटाव (रेन गली) ने व्यापक रूप से इस मार्ग को क्षति पहुंचायी है। मार्ग के समकालीन अन्य आवासीय संरचनायें प्रकाश में आयी हैं। वर्ष १९८३-८४ में उत्खनन में इन्हीं ट्रेन्चों में गुप्तकालीन वास्तु-अवशेष के तीन चरण एवं कुषाण कालीन वास्तु अवशेष के दो चरण प्रकाश में आये हैं। इन वास्तु-अवशेषों में एक विशिष्ट संरचना प्राप्त हुयी है। इसके अन्तर्गत भवन के एक कक्ष के कोने में ईटों को काटकर एक गोलाकार स्थान बनाया गया है (चित्र सं० ३)। जिसके बीच में मिट्टी भरकर उसके ऊपर अनाज रखने वाले बड़े पात्र रखे जाने की प्रथा रही है।

एक अन्य ट्रेन्च में भवन के दो कक्षों के कोने में ईटों को काटकर एक गोलाकार स्थान बनाया गया है, इसके अन्दर भरा हुआ अनाज (चना) भी मिला है, इसके दाने जले हुए हैं। जल प्रणाली का शिल्प और ढ़लवा भी दर्शनीय है (चि० सं० ४)। कुषाण कालीन वास्तु-अवशेष तत्कालीन कला के उदाहरण हैं।

गुप्तकालीन पत्तों से मिट्टी की एक 'डिहरी' प्राप्त हुई है जो क्षतिग्रस्त हो गयी है (अनाज रखने के लिये कच्ची मिट्टी से बनायी जाने वाली संरचना (चि० सं० ५)।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

उत्खनन से प्रकाश में आये भवनों एवं मार्गों में प्रयुक्त प्लास्टर के लिए किस तरह की सामग्री प्रयोग की जाती थी ? इसके अध्ययन से तत्कालीन वास्तु विज्ञान के अब तक अज्ञात पक्षों की जानकारी हो सकेगी।

मुख्य ट्रेन्च के समीप लगाई गई ट्रेन्च से उपर्युक्त वास्तु संरचनाओं के अतिरिक्त लालरंग के अनेक प्रकार के मिट्टी के बर्तन, यथा—भीतर की ओर मुड़ी अवठ वाले सकोरे, तश्तरियाँ, स्प्रिंकलर, टोंटीदार जलपात्र तथा मांगलिक चिन्ह से युक्त पात्रों, के अतिरिक्त नांद, अरघ पात्र एवं अन्य छोटे माप-पात्र प्राप्त हुए हैं। इनके साथ साथ अनेक अस्थि-उपकरण, सिक्के, मुद्रा एवं मुद्रा छापें तथा स्वर्ण पत्र युक्त शीशे के मनके पाये गये हैं। इनमें से एक मुद्रा विशेष उल्लेखनीय है। मिट्टी की इस मुद्रा के ऊपरी सिरे पर धागे से लटकाने के लिये एक छिद्र भी बनाया गया है। इस पर गुप्तकालीन लिपि में 'पत्रढ़यस्च' लिखा हुआ है। कदाचित इसका सही पाठ 'पत्रध्यक्ष' माना जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि गुप्तकाल में यह स्थान अपना विशिष्ट महत्व रखता था और यहाँ से जाने और आने वाले पत्रों की सही व्यवस्था के लिए एक पत्रध्यक्ष या "पोस्टमास्टर" की नियुक्ति की गयी थी।

कलेश्वरी देवी मन्दिर के समीप एक ट्रेन्च में उत्खनन कार्य कराने पर अनेक महत्वपूर्ण पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें एक स्वर्ण मनका और मिट्टी की मुद्रा छापें विशेष उल्लेखनीय हैं। मनके को दो भागों में बनाकर जोड़ा गया है। एक ही प्रकार की आठ मुद्रा छापों का एक ही स्थान पर पाया जाना वहाँ किसी विशिष्ट व्यक्ति का आवास रहे होने का परिचायक लगता है। मिट्टी की बनी सभी मुद्रा छापें वृत्ताकार हैं। इन पर एक ही इबारत लिखी हुई है। सभी छापों के अनेक शब्द पठनीय हैं। फिर भी संयुक्त रूप से अध्ययन करने पर इस पर निम्न इबारत पढ़ी जा सकती है।

"पुत्रस्य महाराजस्य काशिको पुत्रस्य गज"

मुद्रा छापों पर 'वेदिका-वृक्ष', चैत्य एवं नदी के चिन्ह भी अंकित हैं। इनकी प्राप्ति से ऐसा लगता है कि गुप्तकाल में इस स्थल का विशेष राजनैतिक महत्व भी रहा होगा। इसका काशी के साथ सीधा सम्पर्क रहा होगा और समय-समय पर काशी से यहाँ के किसी राजा अथवा सामन्त के लिये विभिन्न सामग्री भेजी जाती रही होगी। सामग्री के साथ भेजने वाले की मुद्रा छापें भी बँधी रहती होंगी। यहां उसके प्राप्त होने पर सामग्री उपयोग के लिये निकाल कर छापें फेंक दी जाती होंगी जो आज हमें यहां से प्राप्त हुई हैं और वहाँ की तत्कालीन गतिविधियों के सूत्र जोड़ रही हैं।

मन्दिर के समीप वाली ट्रेन्च से प्राप्त पात्रावशेष हुलासखेड़ा उत्खनन के सन्दर्भ में अपना विशेष महत्व रखते हैं। इसमें प्राप्त 'चित्रित धूसर मृदभाण्ड' अब तक यहाँ से प्राप्त प्राचीनतम् पात्रों से पूर्व के माने जाते हैं। इस प्रकार के पात्र इससे पूर्व यहाँ की अन्य किसी ट्रेन्च से नहीं मिल सके हैं।

इसके अतिरिक्त झील के समीप अन्य ट्रेन्चों के माध्यम से राजपथ का प्रसार देखा गया। यह उत्तर की ओर बढ़ता हुआ प्रतीत होता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

संदर्भ

१. सिंह, सर्वदमन एवं सिंह, शिवबहादुर, दि आर्केलाजी आफ द लखनऊ रीजन, १९७२, पृष्ठ—२५।
२. इण्डियन आर्केलाजिकल रीव्यूय—१९७९-८०, पृष्ठ—७७।
३. इंडिण्यन आर्केलाजिकल रीव्यूय—१९८१-८२, पृष्ठ—७१।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

PRESERVATION OF MURAL PAINTINGS AT KUSUM VAN SAROVAR MATHURA

H. K. Mishra

Painting represents one of the most valuable treasures handed down to us from our past. What was the actual shape of the first painting done by man is not known. The earliest example of painting in India belong to the 2nd century B.C. Prehistoric paintings are also available at many places in India. Since then the art of painting was done for the sake of fun, pleasure and self-expression. Artists were not bothered about the destructive agencies which caused decay of painting.

Murals may be defined as the "Paintings done on the wall". A basic requirement in planning for preservation and conservation of mural painting is that the full information should be available regarding the painting to be preserved. The first step therefore is to draw up a systematic inventory which will serve as a basis for recording their location, relative importance, condition and the degree of urgency regarding any preservation that may be required. There are some fundamental principles for murals the basis is that murals are normally part of a monumental assembly for which they were expressly designed and which in turn had a determining influence on their character and aesthetic effect. Every possible attempt should therefore be made to preserve and conserve such paintings in their original setting. Removal will inevitably result in disfigurement and possible structural damage to the monument as a whole, the particular architectural setting and the painting itself. The second general principle is the attempt to control a process of deterioration without indentifying.

Painting in every form are a complex multilayered structure. The two essential parts of paintings are the support (that is the material on which the painting is done) and the paint.

Sri H. K. MISHRA, Chemist, U. P. State Archaeological Organisation, Lucknow.

CC-0. Bhagavad Ramanuja Nati...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The support may be a wall, a wooden panel, a piece of paper, fabrics, metals, leather or a rock. Rigorously speaking almost every surface can be used as a support for painting. The other essential feature of a painting is the paint, normally the pigment mixed with a binding medium like glue, gum, oil, wax or starch. Generally paintings have other layers as well. Materials like wood, textile or paper have some texture, while for executing the fine details of a painting, a smooth surface is required, therefore a paste is applied to the surface of the support in thin layers to provide smoothness, and it is termed as Ground or Priming. The paint itself may be applied in a number of layers, one over the other depending on the technique. Sometimes especially for oil paintings, a protective varnish is applied on the surface. It can thus be seen that paintings have a complex structure, with several layers that is support, ground, paint and sometime varnish.

The deterioration of a painting may, therefore, be a result of deterioration of any one or more of these constituent layers. If a defect is noticed on the surface of the painting it is not necessarilly caused by the failure of the paint layer. All the layers being laid one over the other, disturbance in any one of them will create disturbance in the layer above and below. Unfortunately, all these layers do not respond in a similar manner to the different deteriorating agents. The term cleavage and flaking will come in the painting. So, it is necessary to know about these terms. Climatic variations have a profound effect on the condition of the paintings. The rise and fall in the atmospheric humidity also cause flaking and cleavage. Loss of paint from the surface of painting in the form of small particles or flakes is known as flaking, and a separation paralled to the surface of the painting, between the paint and the ground or the ground and the support is known as cleavage.

Kusum Van Sarovar is situated in district Mathurā about 25 Km. away on the Mathurā Goverdhan road. Kusum Van Sarovar falls in between Goverdhan and Radhakund (that is 2 Km. from Goverdhan). Kusum Van Sarovar is situated in 27° 32′ N. and 77° 28′ E: 2 Km. from Radhakund, is a much more magnificiant architectural group erected by Jawahir Singh, in honour of his father Suraj Mal, the founder of the family. The Raja's monument is flanked on either side by one of smaller dimensions, commemorating his two queens, Hansiya and Kishori, while attached to Rani Hansiya's monument is a smaller one in commemoration of a faithful attendant. Behind it is an extensive garden, and in front, at of the foot of the terrace on which the Chhattris st and, is an artificial lake called the Kusum Sarovar 460 feet square. It is said that a saint once threw a Philosopher's stone into the lake since when green scum never forms on it. The entire complex with buildings in the background is constructed

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

on a raised platform and a beautiful tank full with water adds to the landscape. There are several Chhattris in the complex.

The main Chhattri is in the centre flanked by five smaller ones in the front and as well as in the back. Beside this there are 20 Burges—10 in the front and 10 in the back of the Chhatri. On both the sides of the main Chhattri there are two more Chhattris of smaller dimensions. All the Chhattris are having wall paintings in the interiors. In some cases there are paintings on the exterior also. On each wall is executed with a fresco depicting a scene in the life of Surajmal and giving a vivid picture of the dress, weapons, architecture etc., of those times and an idea of the splendour of an Indian Raja's court. That on the west depicts a darbar assembly at Dig: that on the north a royal procession with the Raja seated on an elephant and accompanied by camels, horses, elephants (all full caparisoned), the next shows him arriving in state with his courtiers for Puja: and the 4th his hunting grounds (which lay between Bharatpur and Dig) and also a variety of details of the hunt: figurines (in the round) of a variety of musicians ornament the base of the pendentives which are richly ornamented.

As is to be expected paintings on the exterior walls are almost invariably in a very dilapidated condition. In one particular case the plaster has completely peeled off from the wall. Walls have been prepared in two distinct ways for carrying out the paintings. In one type the paintings have been executed on thick plaster ranging from about 1 Cm to 3 Cm. In the other type there is hardly any plaster thickness except a thin coating of ground of about 2 Cm. The plaster in both the cases seems to be lime. The paintings appear to have been done in a mixed techniques. In some places it is done in Rajasthani Fresco style, in which painting is done on wet lime plaster.

Painting in the central main Chhattri is best preserved. However, it is very obvious that they were retouched not too long ago. The plaster is still sound and the paint is not flaking. The colours of the pigment are generally white, red, yellow, blue, black and green etc.

The condition of the painting in the Chhattri on the southern side of the central Chhattri is more serious. In this Chhattri plaster is detached at several places, the paint is flaking and there are accrection of several type present on the painting. At some places D D T is sprayed over the painting. This spray has left white spots all over these paintings. More or less same condition is of the painting in the other Chhattri in the front and as well as in the back. In short the types of deterioration is as follows.

CC-0. Bhagavad Ramanuja N...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

(A) Ground is detached from the support at several places.
(B) Paintings were in dull condition due to deposition of Dirt, Dust and hard incrustation.
(C) D D T spray results white spots all over it.
(D) Loss of adhesion due to age.
(E) Seepage of water.
(F) Flaking of paint layer.
(G) Chipping of ground has caused the loss of paint.
(H) Buldging of plaster.
(I) Cracks and lacunas are present at some places.
(J) Insects nests are present at some places.

Now we will deal with the methods applied for preservation of the wall painting in connection with the above problems. The attempts have given a very good result.

To remove the superficial dirt, dust, waspo nests etc. brushing with soft hair brush was done. Nests were removed mechanically. The D D T spots are cleaned with aqueous detergent. The thick deposits of silicious material were soften with a mixture of spirit, ammonical water and 3 per cent teepol. Hard incrustations are also removed mechanically bit by bit.

A combined mixture of organic solvents like, butanol, isopropyl alcohol, siprit, trichloro ethylene, diacetone alcohol, petroleum ethere in 1 :1 ratio is prepared and used for cleaning of painting. The flaking of paint is fixed with 3 per cent poly vinyl acetate in toluene. The cracks and lacunas were filled with putty of innert material like lime water paste and poly vinyl acetate emulsion.

For consolidation, suitable mixture of casein emulsion that is casein, lime, french chalk, Mowicoll, in very small quantity with insectiside was prepared and used. After cleaning of the painting 3-4 per cent poly vinyl acetate in toluene was applied as protective layer all over the painting.

SUGGESTIONS

(1) Cracks have been observed on the top of the Chhattris, these cause seepage and therefore paintings are adversely effected and it is apprehended that under the circumstances basie structure may also tolter. Therefore all due care should be taken to close the cracks.

(2) The persons visiting the place also cause a significant damage to the originality of the paintings. Therefore trained guides should be placed there to let the people know about the damage which they thus cause.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

ACKNOWLEDGEMENT

I am thankful to Sri V. K. Tiwari, Dy. Director, U. P. State Archaeological Organisation, Lucknow for his valuable suggestion and guidance and to my colleague Mr. Sudhakar Pandey for composing the article.

REFERENCES

1. Agarwal, O. P., Care and Preservation of Museum Objects, N R L C : New Delhi, (1977).
2. Agarwal, O. P., An introduction to preservation of painting, Dept. of Museology : M. S. Univ. Baroda, (1967),
3. Joshi, E. B., Uttar Pradesh District Gazetteers Mathura, (1968).

CC-0. Bhagavad Ramanuja N...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

A UNIQUE MĀTṚKĀ REPRESENTATION IN THE STATE MUSEUM, LUCKNOW

S. N. Upadhyaya

Though Mātṛkā worship in India and abroad is a very common phenomenon yet it is very important and intricate aspect of the history of Indian thought as expressed in her philosophy, religion, general art and literature. Origin and development of Mātṛkā concept may safely be pushed back to the Indus valley civilization. Mātṛkā group representation on stone plaques can be seen from Kuṣāṇa period.

The institution of the Mothers (Mātṛs, Mātṛkās or Mahāmātṛs) is very interesting. These represent the embodied energy and powers of the seven famous gods, their male counterparts as their very names indicate. The Varāha Purāṇa says that these Mātṛkās represent eight mental qualities which are morally bad. The number of the mothers enumerated is seven, Kaumārī, Vaiṣṇavī, Vārāhī and Aindrī (Indrāṇī) are almost common to all the lists. The Mārkaṇdeya Purāṇa designate the seventh as Nārasiṅghī, Ksīrasvāmin and the Suprabhedāgama include Vāmanī, Vaināyakī, Mahālakṣmī and Caṇḍikā respectively.[1] The Varāha Purāṇa[2] describes the eight mothers. The Brahmāṇḍa Purāṇa adds Mahālakṣmī as the eight mothers.[3] Some lists give nine names.[4] The Garuḍa Purāṇa mentions the names of Sapta Mātṛkās along with several other minor goddesses.[5] It differs from the list given in Devī Mahātmya[6]. The Matsya Purāṇa[7] also mentions the seven Mātṛkās along with Ardha-nārīśvara Śiva. According to Devi Purāṇa Mātṛkās are nine and the name rurūghatinī is substituted for Cāmuṇḍā.[8]

The number of the Divine Mothers seems to have been originally eight representing the counterparts of the eight forms of Śiva. But later on, as the number

Sri S. N. Upadhyaya, Guide Lecturer, State Museum, Lucknow.

CC-0. Bhagavad Ramanuja Nat...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

seven became popular among the Brahmins as a pious number the original number was changed into seven.

The Purāṇas and Āgmās give various stories with regard to the birth of the Mātṛkās. The Suprabhedāgama relates that the seven Mātṛkās were created by Brahmā for killing the demon Nirta.[9] The Mārkaṇḍeya Purāṇa narrates that these Mātṛkās were born from Brahmā, Viṣṇu, Śiva, Skanda and Indra just at the time of killing the demons Śumbha and Niśumbha, and Caṇḍa and Muṇḍa.[10] The Purāṇas describe them in detail, saying that these are the counterparts of their respective Gods. The Vāhanas, the dress, ornaments and weapons are similar to their counterpart deities.[11]

Here in the State Museum, Lucknow, the Varāha (Acc. no. 0.84) shows unique Mātṛkā figures belonging to the 10th century A.D. On the back of the Varāha figure in the left side there are seven Mātṛkās in dancing pose from right to left namely, Brahmāṇī, Maheśvarī, Indrāṇī, Vaiṣṇavī, Vārāhī, Kaumārī and Cāmuṇḍā. At the left end of these figures there is a dancing Gaṇeśa and a human figure playing with flute, probably Vīṇādhara Śiva. But it is difficult to say whether this human figure is Vīṇādhara Śiva or not because there is no symbol of Śiva's Iconography by which it could be finalized. It appears this is only an ordinary human figure playing with flute, which is unique and important for studying the iconography of Sapta Mātṛkās.

Generally in the Mātṛkā representation in the beginning there may be Vīṇādhara Śiva or Vīrabhadra. And at the end corner of the Mātṛkās there is a Gaṇeśa figure. But in this Mātṛkā group Vīṇādhara Śiva (may be) and Gaṇeśa both are in one side which is a unique feature to note. The absence of different Vāhanas of goddesses are noteworthy.

It is also notable here that Āyūdhas and ornaments are not represented in this Mātṛkā Panel. They are simply in dancing pose. Red sandstone has been used in this art. Incarnation of Viṣṇu can be seen on the other side of Vārāha figure.

REFERENCES

1. *Mārkaṇḍeya Purāṇa*, 88.11-20.
Devi Purāṇa, 37.85-98.
Monier Williams, *op. cit.*, p. 187, 188.
Sukla, D. N., *Vastu Sastra*, Vol. II, p. 322.
2. *Vārāha Purāṇa*, Ch. 26.
3. *Brahmāṇḍa Purāṇa*, II, 44.11-12.
W. Crooke, *The Popular Religion and Folklore of Northern India*, Vol. I, p. 112.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

Vārāha, general view, 10th cent. A. D. No 0.84

CC-0. Bhagavad Ramanuja National

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

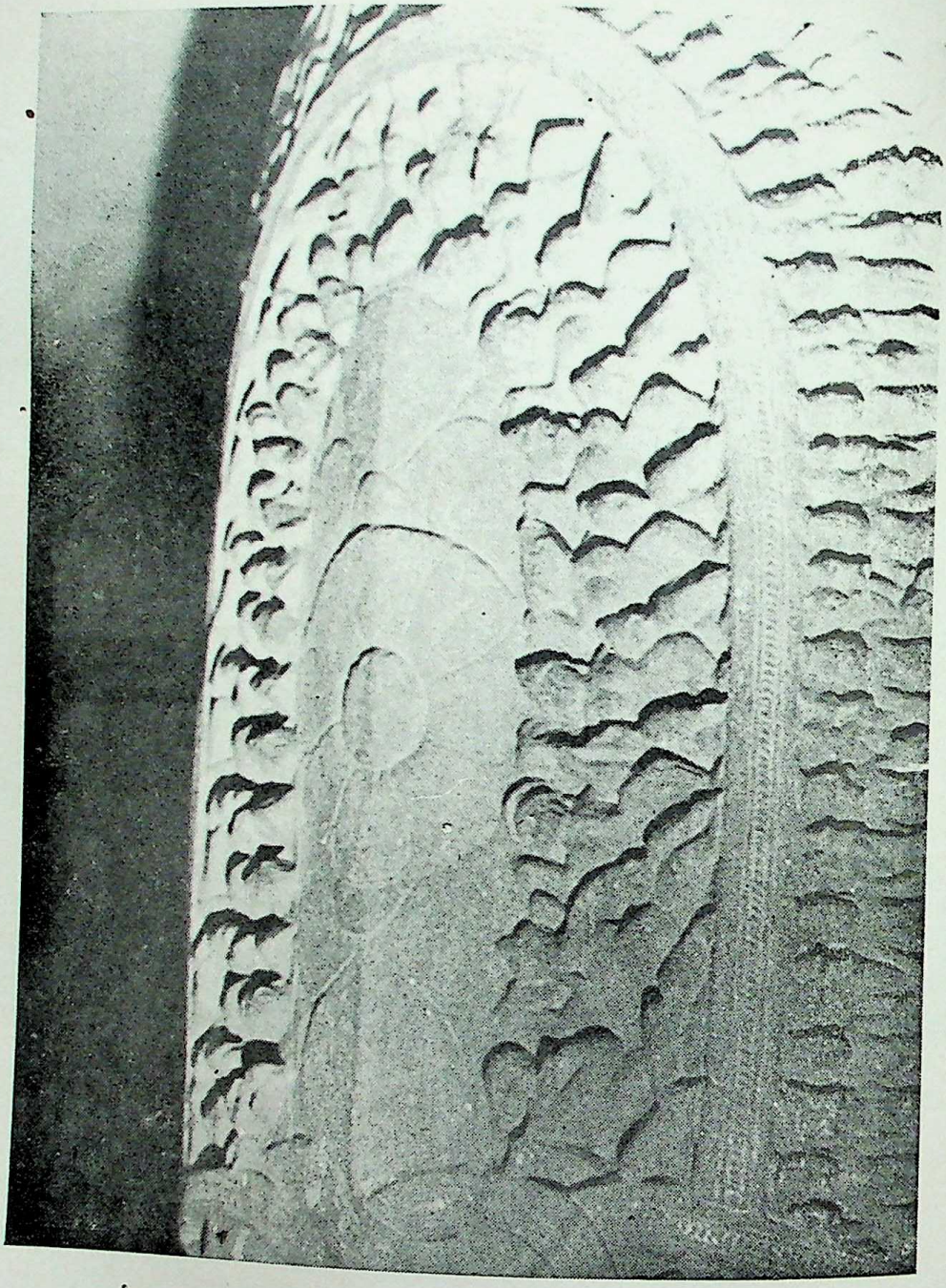

Sapta Māṛkās on the back of Vārāha figure No. 0.84

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

4. *Skanḍa Purāṇa, Kaumārikakhanda,* 66.53-54.
5. *Garuḍa Purāṇa*, English Trans. by M. M. Dutt, p. 92.
   For other goddesses see p. 380-82.
   Garuḍa Purāṇa, 134.3, 4, 6.
6. *Devī Mahātmya*, VIII, 15.21.
   Garuḍa Purāṇa, 134.3-4.
7. *Matsya Purāṇa*, 178.89.
8. *Devi Purāṇa*, 118.4.
9. Rao Gopinath, *Elements of Hindu Iconography*, p. 382-83.
10. *Devi Mahātmya*, VIII, 13-23.
11. *Ibid.*

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

लखनऊ संग्रहालय का गुप्तकालीन स्वर्ण मुद्राकोष

इन्दुप्रकाश पाण्डेय

राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सिक्कों का विशाल संकलन है, जिसमें सोने, चाँदी, ताँबे और मिश्रित धातु सभी प्रकार के विभिन्न युगों के सिक्के हैं। इनका समय लगभग ८वीं शती ई० पू० से लेकर आधुनिक काल तक है। स्वर्ण सिक्कों का भी संग्रहालय में अच्छा प्रतिनिधित्व है। यद्यपि ये सिक्के बहुत पहले ही संग्रहालय में प्राप्त हो गये थे, परन्तु २० वर्ष के लम्बे अन्तराल तक ये विद्वानों के अध्ययनार्थ उपलब्ध नहीं हो सके।[1] १९८० में ही इनसे निकट का परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला। तदुपरान्त इनका औपचारिक परीक्षण मूर्धन्य मुद्राविद् डा० परमेश्वरी लाल गुप्त द्वारा किया गया।

यहाँ पर विभिन्न युगों के स्वर्ण सिक्के विद्यमान हैं। इनके अध्ययन से तत्कालीन आर्थिक स्थिति एवं कलात्मक अभिरुचि का सहज आभास प्राप्त होता है। गुप्तकाल (ल० चौथी श० ई० से छठी श० ई० तक) इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।

अब तक मुद्राशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गुप्त सम्राटों ने २१ प्रकार के सिक्के चलाये[2]। सम्भव है कि भविष्य में इनके कुछ अन्य प्रकार भी उपलब्ध हो सकें। यहां पर इन मुद्रा प्रकारों में से १८ प्रकार सुरक्षित हैं और अब तक अधिगृहीत गुप्त स्वर्ण सिक्कों की संख्या तीन सौ चौदह है। इस दृष्टि से इस युग के मुद्राशास्त्र के अध्ययन के लिए संग्रहालय का संकलन बहुत समृद्ध माना जा सकता है।[3] इस संकलन के बारे में अभी तक कोई अद्यावधि सूची उपलब्ध नहीं है। अवश्य ही श्री सी० जे० ब्राउन ने १९२० में उस समय तक उपलब्ध सिक्कों की एक सूची[3अ] तैयार की थी जिसमें कुछ स्वर्ण मुद्राओं को ही समाविष्ट किया गया था, किन्तु इसके पश्चात न केवल सिक्कों की संख्या में वृद्धि हुई अपितु अनेक महत्वपूर्ण तथ्य भी प्रकाश मे आये।

सिक्कों का प्रचलन गुप्तवंश के बहुत पहले हो चुका था। इसमें ईसा पूर्व की शताब्दियों में चलने वाली आहतमुद्राओं का वास्तविक उद्देश्य अभी स्पष्ट नहीं है। गुप्त सम्राटों के पूर्ववर्ती भारतीय यूनानी तथा कुषाण राजाओं ने यद्यपि पर्याप्त सुन्दर और विविध प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन किया, परन्तु उनमें विदेशीपन का

श्री इन्दुप्रकाश पाण्डेय, प्राविधिक सहायक, राज्य संग्रहालय, लखनऊ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

भाव पूर्णतः निहित है तथा उनके लेख भी प्रायः अभारतीय लिपियों में हैं। पंचाल एवं सातवाहन नरेशों ने सिक्कों पर भारतीय लिपि ब्राह्मी में लेख भी लिखवाये, किन्तु उनमें न तो कलात्मकता है और न ही नापतौल की एकरूपता।

गुप्त सम्राटों की स्वर्ण मुद्राएं कलात्मकता, मौलिकता और विविधता में अग्रणी हैं। साथ ही कुछ प्रारम्भिक सिक्कों को छोड़कर भारतीय परम्परा का ही प्रतिनिधित्व करती है। तीसरी श० ई० के मध्य से पाँचवी श० ई० के अन्त तक के नरेशों में श्री गुप्त (ल० २७० ई०—२९० ई०), घटोत्कचगुप्त (ल० २९० ई०—३०५ ई०), चन्द्रगुप्त प्रथम (ल० ३०५ ई०—३२५ ई०), काचगुप्त (ल० ३२५ ई० ३३० ई०), समुद्रगुप्त (ल० ३३० ई० —३७० ई०), रामगुप्त (ल० ३७० ई०—३७५ ई०), चन्द्रगुप्त द्वितीय (ल० ३७५ ई०—४१४ ई०), कुमारगुप्त प्रथम (ल० ४१४ ई०—४५५ ई०), स्कंदगुप्त (ल० ४५५ ई०—४६७ ई०), पुरुगुप्त, नरसिंहगुप्त, द्वितीय कुमारगुप्त, बुधगुप्त, प्रकाशादित्य और विष्णुगुप्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं[४]। इनमें से प्रथम दो को छोड़कर शेष सभी के किसी न किसी प्रकार के सिक्के उपलब्ध होते हैं। प्रस्तुत लेख में यहाँ उपलब्ध मुद्रा प्रकारों में से प्रत्येक के प्रतिनिधि स्वरूप सिक्के को सम्यक विवेचित करने का प्रयास किया गया है और गुप्त स्वर्ण मुद्रा संकलन की एक सूची भी राजा और उनके प्रकारों को दर्शाती हुई दे दी गई है।[५]

चन्द्रगुप्त प्रथम

गुप्तवंश को साम्राज्य रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रथम श्रेय इसी राजा को जाता है, जिसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि से अपने को विभूषित किया। इसके पूर्वज-पितामह श्रीगुप्त और घटोत्कच मात्र एक सामन्त की स्थिति में रहे थे और 'महाराज' की उपाधि तक ही सीमित थे जिससे वे किसी प्रकार की मुद्रा प्रचलित न कर सके।[६] सम्भवतः चन्द्रगुप्त प्रथम की सम्राट उद्‌बोधक उपाधि के साथ ही प्रथम गुप्त मुद्रा प्रचरित हो पायी।

(१) राजारानी प्रकार (पं० सं० ४४३४ भार; ७.४६ ग्रा०)

चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा चलाया गया यह गुप्तवंश का प्रथम सिक्का माना जाता है[७] और मात्र एक ही प्रकार में उपलब्ध है। इस मुद्रा का इस वंश के इतिहास में अत्यधिक महत्व है, क्योंकि लिच्छवि गणतंत्र की कन्या कुमार देवी के वैवाहिक सम्बन्ध से ही चन्द्रगुप्त गुप्तवंश की स्वतन्त्र स्थापना करने में सफल हुआ था।[८]

फलक स्थित सिक्के का परिचय निम्नवत है— (फलक १, १)

पुरोभाग : प्रभामण्डलयुक्त राजा और रानी आमने सामने खड़े हैं। राजा आभूषण युक्त, बटनदार नुकीला कोट तथा पतलून पहने हैं, बाँयें हाथ में राजदण्ड लिये हुए दाहिने हाथ से रानी को कोई वस्तु प्रदत्त करते हुए चित्रित किया गया है। बांयी ओर खड़ी रानी हार, कुण्डल, और कंकण युक्त है। वह साड़ी और उत्तरीय धारण किये हुए दाहिना हाथ कटि पर रखे राजा द्वारा प्रस्तुत वस्तु[९] को देख रही हैं। ऊपर दोनों के सिर के

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

मध्य अर्धचन्द्र और नीचे दोनों के घुटनों के मध्य तीन बिन्दु द्रष्टव्य हैं। राजा की बांयी भुजा के नीचे 'चन्द्र' और दण्ड के बाहर 'गुप्त' लिखा है और रानी के बिल्कुल पीछे अस्पष्ट लेख 'कुमार देवी' प्राप्त होता है।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला देवी साड़ी, चोली, हार, भुजबन्द, और कंकणयुक्त दाहिने हाथ में पाश और बांयें हाथ में कार्तुकोपिया लिये दक्षिणाभिमुख धराशायी सिंह पर सम्मुख बैठी है।[10] दाहिनी ओर ऊँपर चिन्ह है और बांयी ओर वर्तुलाकार लेख 'लिच्छवयः' प्राप्त होता है।

इस लेख से विदित होता है कि लिच्छवियों का गुप्त साम्राज्य की स्थापना में कितना महत्व था।[11] परन्तु यह किन परिस्थितियों में सम्भव हुआ, इस पर डा० पो० एल० गुप्त का विचार है कि लिच्छवि नरेश निःसन्तान रहे होंगे और मृत्युपर्यन्त उन्हें कोई सन्तान प्राप्त नहीं हुई होगी जो सत्ता की वैधानिक अधिकारी होती। राजनैतिक परिस्थितियों ने चन्द्रगुप्त को लिच्छवि शासन सम्भालने के लिये अवसर दिया होगा और साथ ही यह भी आवश्यक समझा गया कि राजा के साथ रानी का भी पूरा अधिकार हो, क्योंकि सत्ता की वैधानिक अधिकारिणी तो लिच्छवि कुमारी ही थी।[12]

काचगुप्त

गुप्तवंश में इस राजा का अस्तित्व विवादास्पद है। कुछ विद्वान इसे समुद्रगुप्त के अनुज[13] अथवा सौतेले[14] भाई के रूप में स्वीकार करते हैं। इसका सिक्का मुद्राकला और लेख की दृष्टि से समुद्रगुप्त के दण्डधारी सिक्के से बहुत कुछ साम्य रखता है। इस आधार पर स्मिथ महोदय इसे समुद्रगुप्त के ही समीपवर्ती मानते हैं।[15] और अब यह सर्व सम्मत से स्वीकार किया जाता है कि काच राजा का काल गुप्त राज्य के आरम्भ में ही हो सकता है, क्योंकि इसके सिक्के प्रायः चन्द्रगुप्त प्रथम और समुद्रगुप्त के साथ ही मिलते हैं।[16]

(१) चक्रध्वज प्रकार (पं० सं० ११६७८, भार ७.५३ ग्रा०)—

फलक स्थित सिक्के का वर्णन इस प्रकार है— (फलक १, २)

पुरोभाग : प्रभामण्डल युक्त, हार, कंकण, भुजबन्द और कुण्डल धारण किये हुए, लम्बा नुकीला कोट और पतलून, पहने, दाहिने हाथ से आहुति देते हुए और बांयें हाथ से चक्रयुक्त दण्ड लिये, राजा वामाभिमुख खड़ा है। बांयी भुजा के नीचे लम्बवत् लेख 'काच' और वर्तुलाकार अस्पष्ट और अपूर्ण लेख ' का चो·····भि रु त्त म ज·····' (काचो गाम वजित्य कर्मभिरुत्तमै जयति) प्राप्त होता है।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला देवी, वामाभिमुख, गोलाकार चटाई पर खड़ी है। उसके दाहिने हाथ में नाल युक्त पुष्प तथा बांयें कट्यावलम्बित हाथ में कार्नुकोपिया है जो बांयें कंधे पर आधारित है। देवी, साड़ी, कंचुकी, हार, कुण्डल, कंकण युक्त है। दायें हाथ के नीचे चिह्न और सिक्के के दाहिनी ओर अपूर्ण लेख '·· व र ज च्छ ता' (सर्वराजोच्छेता) द्रष्टव्य है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

समुद्रगुप्त

गुप्त मुद्रा का विधिवत् प्रसार सम्राट समुद्रगुप्त द्वारा प्रारम्भ हुआ क्योंकि उसके पिता का सम्राटत्व बहुत अल्प अवधि का था। जिन राजनीतिक परिस्थितियों में चन्द्रगुप्त प्रथम मात्र एक ही प्रकार की मुद्रा को जन्म दे सका, वह अब जाती रही। समुद्रगुप्त 'लिच्छवि दौहित्र' था और साथ ही उसमें अदम्य शौर्य और उत्साह का संचार था जिसके कारण वह गुप्त साम्राज्य को दृढ़तापूर्वक विस्तृत कर सका। अपनी लम्बी शासनावधि में उसने गुप्त मुद्रा को अनेक नये आयाम दिये, जिसने भावी संततियों के लिये विविधता के द्वार खोल दिये। उसने ६ प्रकार की मुद्राएं प्रचलित करायीं।

(१) दण्डधारी प्रकार (पं० सं० ११६८६; भार ७.५७ ग्रा०)

यह सिक्का सम्भवतः राजदण्ड की प्रतिष्ठा स्वरूप प्रचलन में आया। यद्यपि यह कुषाणों का अनुकरण मात्र था, पर मुद्राकार भारतीयता[१७] के लिये यहाँ प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। समुद्रगुप्त के इन सिक्कों की लोकप्रियता का अनुमान उनकी प्रचुर मात्रा में प्राप्ति से लगाया जा सकता है। इन सिक्कों के नामकरण के विषय में विद्वानों में अनेक मत हैं। स्मिथ महोदय ने इसे 'जैवलिन प्रकार', अॅलन ने 'ध्वजधारी' प्रकार माना है जब कि डा० छाब्रा और डा० गुप्ता इसे 'राजदण्ड' मानकर 'दण्डधारी' प्रकार कहना उचित समझते हैं और यही नामाभिधान अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

फलक स्थित सिक्के का वर्णन निम्नवत् है— (फलक १, ३)

पुरोभाग : प्रभामण्डल युक्त राजा कुण्डल, कंकण, हार और भुजबन्द आभूषणों के साथ चित्रित है। वह लम्बा नुकीला कोट और पाजामा पहने हुए है जो बिन्दुओं से विभूषित है, दाहिने हाथ से अग्निकुण्ड में आहुति डाल रहा है और बांयें हाथ में राजदण्ड लिये हुए है। दांयें हाथ की कलाई के ऊपर गरुड़ ध्वज अंकित है। बांयें हाथ के नीचे लम्बवत् लेख 'समुद्र' और इसी ओर दण्ड से बाहर अधूरा लेख "····त विजयो जित·····" (समर शत वितत विजयो जित रिपु रजितो दिवं जयति) देखा जा सकता है।

पृष्टभाग : विन्दु विभूषित वर्तुल में प्रभामण्डला देवी सम्मुख चारपाई पर बैठी है। वह साड़ी, उत्तरीय और कंकण से युक्त हैं, केश घुंघराले बिन्दुओं के रूप में हैं। दाहिने हाथ में पाश और वांया हाथ कटि पर है जिसमें कार्नुकोपिया बांयें कन्धे के सहारे टिका है। दाहिने हाथ के ऊपर चिन्ह और सिक्के के दाहिनी ओर लम्बवत् लेख 'पराक्रम' द्रष्टव्य है।

(२) धनुर्धारी प्रकार (पं० सं० ११८०५; भार ७.३३ ग्रा०)

समुद्रगुप्त की इस मुद्रा में भारतीयता को अपनाने का पूर्ण आग्रह दृष्टिगोचर होता है। फिर भी वह उसके दण्डधारी प्रकार का परिवर्तित रूप मात्र है।[१८] इस सिक्के के दो उपप्रकार उपलब्ध होते हैं—एक जिसमें वह एक हाथ से हवन कर रहा है और दूसरे हाथ में धनुष है तथा दूसरे प्रकार में वह हवन करने के स्थान पर बाण लिये है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

फलक में विद्यमान सिक्का निम्नवत् है— (फलक १, ४)

पुरोभाग : प्रभामण्डल युक्त राजा, दण्डधारी की तरह वस्त्र धारण किये हुए, बांयें हाथ के धनुष को ऊपरी सिरे से पकड़े हुए, दांये हाथ से आहुति डालता हुआ चित्रित किया गया है। ठीक इसके ऊपर गरुड़ अंकित है और उसके ऊपर धुंधला अर्धचन्द्र द्रष्टव्य है। राजा की बांयी भुजा के नीचे लम्बवत् लेख 'स मु द्र' है। वर्तुलाकार लेख जो अस्पष्ट एवं अधूरा है, दाहिनी ओर सिर के पीछे से प्रारम्भ होता है—'अ प्र र थ व ज त्य ···· दं व जयत' (अप्रतिस्थो विजित्य क्षितिं सुचरितैः दिवं जयति) लेख का 'त' अक्षर अविद्यमान है।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला, सर्ववस्त्र एवं आभूषण युक्त घुंघराली अलकों वाली देवी अर्धपर्यंक आसन में चौकी पर बैठी हैं। पैर के नीचे गोलाकार बिन्दुओं वाली चटाई द्रष्टव्य है। दाहिने हाथ में पाश और बांयें में कार्नुकोपिया दिखाई पड़ रहा है और दायें हाथ के ऊपर ही चिह्न है। सिक्के के दायीं ओर मुद्रालेख 'अ प्र ति र थ' (अप्रतिरथः) विद्यमान है।

(३) परशुधारी प्रकार (पं० सं० ११६७१; भार ७.३७ ग्रा०)

यह सिक्का समुद्रगुप्त के परशुविक्रम का प्रतीक है और उसकी अच्छी मुद्राकला के अनुभव को दर्शाता है। विदेशी प्रभाव को त्यागने की प्रवृत्ति के निरन्तर प्रयास का यह फल है। पुरोभाग के दृश्य से लगता है कि यह उसके युद्धस्थल निरीक्षण का चित्र है। पीछे खड़ा वामन सैनिक वेशभूषा में कभी-कभी देखा जा सकता है जिससे उसके युद्ध विजय का समाचार देने की स्थिति का आभास होता है। पृष्ठभाग में भारतीयकरण की दृष्टि से अधिक सफल प्रयास मालूम होता है, जहाँ देवी के हाथ से कार्नुकोपिया हटाकर कहीं-कहीं कमल का अंकन मिलता है। इससे प्रकट होता है कि मुद्राकारों ने उसे लक्ष्मी का रूप देकर पैरों तले कमलासन भी प्रतिष्ठित कर दिया।

फलक स्थित सिक्के का वर्णन निम्नवत् है— (फलक १, ५)

पुरोभाग : प्रभामण्डल युक्त, वामाभिमुख, राजा त्रिभंग मुद्रा में, समस्त आभूषण एवं वस्त्रों से अलंकृत, दायाँ हाथ कमर पर रखे, बांये हाथ में परशु लिये खड़ा है और दाहिने खड़े वामन को देख रहा है। राजा के बांयी ओर कमर से कटार लटक रही है। ऊपर दोनों के मध्य चन्द्रध्वज प्रतिष्ठित है तथा नीचे राजा का नाम 'स मु (द्र)' लिखा है। राजा और परशु के बीच नीचे लम्बवत् 'गुप्त' मिलता है। वर्तुलाकार अपूर्ण लेख 'कृ ता न्त पर·····र ज ज ता जि तः' (वृतान्तपरशर्जुयत्यजित राज जेताजितः) द्रष्टव्य है।

पृष्ठभाग : सिंहासनारूढ़ प्रभामण्डला देवी (लक्ष्मी) वस्त्र-आभूषणों से युक्त, दाहिने हाथ में पाश और बांयें में खिलती हुई कमल कली लिये चित्रित की गई हैं। दाहिने हाथ के ऊपर चिह्न और दाहिनी ओर लम्बवत् लेख 'कृतान्त परशु' मिलता है। पैरों तले पूर्ण विकसित कमल चरणपीठ रूप में प्रतिष्ठित है।

(४) वीणाधारी प्रकार (पं० सं० १०७२४; भार ७.५१ ग्रा०)

महान् सम्राट के संगीत प्रेम का यह अनुपम उदाहरण है। प्रयाग-प्रशस्ति में उसे गाननैपुण्य में तुम्बुरु

CC-0. Bhagavad Ramanuja National D

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

और नारद[१९] से भी अधिक बताया गया है। इस सिक्के पर सर्वथा भारतीय भावना का रूपांकन हुआ है। पुरोभाग में महाराजा ऊँची पीठ वाले पर्यंक पर वीणा[२०] बजाते दर्शनीय हैं। उनकी भावविभोरता मानों वीणा के तारों से तादात्म्य स्थापित कर रही हो।

फलक स्थित सिक्के की पहिचान निम्नवत् है— (फलक १, ६)

पुरोभाग : प्रभा मण्डल युक्त राजा, हार, कुण्डल, विन्दु विभूषित टोपी और जाँघिया पहने पर्यंक पर अर्धपर्यंक मुद्रा में आसीन चित्रित है, वीणा गोदी में लिये हुए दाहिने हाथ से उसे सम्हाले हैं और बांया हाथ वाद्य को बजा रहा है। पर्यंक के नीचे 'सि' लिखा है। वर्तुलाकार अधूरा लेख पर्यंक के पीछे से शुरू होकर उसके मुख के समक्ष समाप्त होता है—'·····रा जा धि रा ज श्री ·····द्र गुप्त :' (महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्तः)।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला देवी हार, कंकण, भुजबन्द, साड़ी और चोली पहने, दाहिने हाथ में पाश, बांयें कट्यावलम्बित हाथ में कार्नुकोपिया, जो बांये कन्धे पर आश्रित है, लिए हुए है और मोढ़े पर वामाभिमुख बैठी है। बांयीं ओर सुन्दर मुद्रालेख द्रष्टव्य है—'स मु द्र गुप्तः'।

(५) अश्वमेध प्रकार[२१] [पं० सं० ३९७७; भार ७.४७ ग्रा०]—

यह सिक्का सम्राट के चक्रवर्तित्व की अभिव्यक्ति करता है। हिन्दू परम्परा में अश्वमेध[२२] सार्वभौमिक प्रभुता के लिये आवश्यक माना जाता था और सम्भवतः इसी परिप्रेक्ष्य में समुद्रगुप्त द्वारा इस मुद्रा का सूत्रपात किया गया।

प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के दिग्विजय की घोषणा की गई है और आशा की जाती है कि इसके फलस्वरूप उसने इस यज्ञ को चिरस्मरणीय स्वरूप देने के लिये इस मुद्रा प्रकार[२३] की अवतारणा की और प्रचुर मात्रा में इन्हें तैयार कराया। ये सिक्के प्राचीन भारत की मुद्राकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। निश्चय ही ये कुशल कलाकारों की उपज है जिन्हें इस अश्वमेध के महत्व का पूर्ण ज्ञान था।

फलक के सिक्के का वर्णन इस प्रकार है— (फलक २, १)

पुरोभाग : हृष्ट-पुष्ट जीनरहित अश्व बांयी ओर दो स्तर की बनी वेदी पर लगे यज्ञ-यूप (स्तम्भ) के समक्ष खड़ा है। उसके सिर के ऊपर से पीठ तक यूप में लगी पताका फहरा रही है। अश्व के पिछले हिस्से के ऊपर अर्धचन्द्र और उसके पेट के नीचे 'सि' लिखा है। वर्तुलाकार अपूर्ण लेख उसकी पीठ के ठीक ऊपर द्रष्टव्य है लेख—'र ज धि रा ज पृ थ वी म जि त्वा दिवं·····' (राजाधिराजा पृथ्वीम जित्वा दिवं जयत्या हृत वाजिमेधः)।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला देवी[२४] सम्पूर्ण आभूषण एवं वस्त्रों से युक्त दाहिने कन्धे पर दाहिने हाथ से चँवर धारण किये, बांयें लटकते हाथ में पट्ट (वस्त्र) या पाश सदृश वस्तु लिये हुए, बिन्दुयुक्त गोलाकार चटाई पर वामाभिमुख खड़ी है। उसके समक्ष पताके सहित 'शक्ति' प्रदर्शित है। दाहिनी ओर लम्बवत् लेख—'अश्वमेध पराक्रमः' प्राप्त होता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

(६) व्याघ्रनिहन्ता प्रकार[२५] (पं० सं० ३१७४; भार ७.४९ ग्रा०)–

सम्राट समुद्रगुप्त का यह सिक्का न केवल उनके शौर्य और पराक्रम को प्रदर्शित करता है, वरन् कलात्मकता की दृष्टि से भी यह पूर्ण भारतीयता का प्रतीक है। यह प्रकार समुद्रगुप्त के दुष्प्राप्य सिक्कों में आता है। विदेशी वस्त्रों का परित्याग कर यहाँ पूर्णरूप से भारतीय वेशभूषा को अपनाया गया है।

फलक स्थित सिक्के का विवरण निम्न प्रकार है— (फलक २, २)

पुरोभाग : चुस्त बनियान और घुटनों तक धोती पहने, हार, कंकण, भुजबन्द और कुण्डल युक्त, राजा बांयी ओर गिरते हुए व्याघ्र को कान तक धनुष की प्रत्यंचा को बांये हाथ से खींचे हुए, मारने को उद्यत है। दाहिनी ओर अर्धवर्तुल में लेख – 'व्याघ्र पराक्रमः' द्रष्टव्य है।

पृष्ठभाग : हस्तिमुख मकर पर आरूढ़, वस्त्राभूषणा, देवी (गंगा)[२६] वामाभिमुख खड़ी हैं। दाहिना हाथ फैला हुआ है और बायें हाथ में लम्बी नाल वाला कमल लिये हैं। बांयी ओर पताका के साथ सुन्दर चन्द्रध्वज (देखिये, पृ० ९६) प्रदर्शित है तथा दांयी ओर अर्ध वर्तुलाकार लेख 'राजा समुद्रगुप्तः' द्रष्टव्य है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय

गुप्त साम्राज्य को सुप्रतिष्ठित करने में द्वितीय चन्द्रगुप्त का अप्रतिम योगदान रहा है। इस युग में परम्परागत चली आती मुद्राओं के अतिरिक्त मुख भाग पर परिवर्तन व परिवर्धन के साथ अनेक नये दृश्यों का समावेश किया गया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा प्रचालित सात[२७] प्रकार की मुद्रायें अब तक प्राप्त हुयी हैं। नवीन प्रकार में 'चक्रविक्रम'[२७अ] मुद्रा लखनऊ संग्रहालय में नहीं है।

(१) दण्डधारी प्रकार (पं० सं० ११७२९; भार ७.७६ ग्रा०)—

यह सिक्का इस राजा के दुर्लभ प्रकारों में आता है। अभी तक धारणा थी कि यह केवल समुद्रगुप्त के समय में ही लोकप्रिय हुए थे और इनको परवर्ती गुप्त राजाओं में ख्याति नहीं मिल सकी,[२८] परन्तु अब तक द्वितीय चन्द्रगुप्त के इस प्रकार के सात सिक्के ज्ञात हो चुके है—तीन सिक्के भारत कला भवन में और दो किसी व्यक्तिगत संग्रह में बताये जाते हैं।[२९] यहाँ के संकलन में भी दो सिक्के उपलब्ध हैं। इसके दो उपप्रकारों में दूसरे के पृष्ठभाग के चित्रण को डा० पी० एल० गुप्त 'बैकुण्ठ नारायण' का अंकन मानते हैं,[३०] जो कि अधिक समीचीन लगता है। जब कि अल्टेकर और मुखर्जी महोदय इसे 'पर्यंक स्थित राजा-रानी' मानकर एक स्वतन्त्र प्रकार की प्रतिष्ठा करते हैं।[३१] यहाँ के संकलन में यह उप प्रकार उपलब्ध नहीं हैं।

फलक स्थित सिक्के का परिचय निम्नवत् है— (फलक २, ३)

पुरोभाग : प्रभामण्डल युक्त राजा, हार, कंकण, भुजबन्द तथा कुण्डल के साथ लम्बा नुकीला कोट (आधी बांह वाला) और पाजामा पहने वामाभिमुख खड़ा है। दाहिने हाथ से आहुति डालता हुआ, बाँये में राजदण्ड लिये

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चित्रित है। दायें कन्धे के ठीक सामने गरुड़ अंकित है, बांयी भुजा के ठीक नीचे लेख 'चन्द्र' है और वर्तुलाकार लेख अस्पष्ट है।

पृष्ठभाग : सिंहासन पर सम्मुख बैठी देवी दांये हाथ में पाश और बायें में कार्नुकोपिया लिए हुए चित्रित की गई है। बांयी ओर गले की सीध में चिह्न अंकित है और दाहिनी ओर लम्बवत् लेख 'परम भागवत' विद्यमान है।

(२) धनुर्धारी प्रकार (पं० सं० ३१५२; भार ७.८३ ग्रा०)—

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने पिता के इस प्रकार में विविधताओं को जोड़कर अनेक उपप्रकारों की सर्जना की। पुरोभाग के लेख और आकृति की चेष्टाओं में किंचित परिवर्तन से इनकी संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। किसी-किसी सिक्के में तो राजा के शारीरिक अवयवों का इतना सुन्दर प्रदर्शन हुआ है कि उसे देखकर यूनानी कला में प्रदर्शित मांसल देह की स्मृति हो आती है।[३२]

फलक स्थित सिक्का इस प्रकार है—

(फलक २, ४)

पुरोभाग : वामाभिमुख, प्रभामण्डल युक्त, हार, कंकण, भुजबन्द और कुण्डल धारण किये राजा चुस्त बनियान और जांघिया (हाफ पैन्ट) पहने हैं तथा दाहिने हाथ से अग्नि कुण्ड में आहुति डाल रहा है। बांये हाथ से धनुष को ऊपर पकड़े हुए है। उसके बांयी ओर कमर से सटी हुई कटार तथा लम्बा कमरबन्द द्रष्टव्य है। दोनों पैरों के मध्य एक वस्त्र लटक रहा है। दाहिने पैर में घुटने के नीचे से वस्त्र का एक छल्ला सा दिखाई देता है। सम्भवतः यह राजसी वेशभूषा के अङ्ग के रूप में प्रयुक्त हुआ है। टोपी की जगह शिरोवेष्टन ने ले ली जान पड़ती है। सिक्के के बायीं ओर गरुड़ध्वज है जिसमें पताका लहरा रही है। धनुष के मध्य में 'चन्द्र' लेख दर्शनीय है। वर्तुलाकार लेख कटा हुआ है।

पृष्ठभाग : विन्दु विभूषित वर्तुल में प्रभामण्डला देवी (लक्ष्मी) कुण्डल, हार, कंकण तथा भुजबन्द धारण किये है जिसमें से फीते निकल रहे हैं, साड़ी और उत्तरीय पहने, पूर्ण विकसित कमल पर पद्मासन लगाये बैठी चित्रित है। दांये हाथ में पाश और बांये में सनाल विकसित कमल लिये है। बांयी ओर गर्दन की सीध में चिह्न और दाहिनी ओर लम्बवत् लेख 'श्री विक्रम' विद्यमान है।

(३) अश्वारोही प्रकार (पं० सं० ३१३५; भार ७.८५ ग्रा०)—

गुप्त मुद्रा क्षेत्र में चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इस नवीन विधा का सूत्रपात किया। सम्भवतः यह उसकी कुशल अश्वसंचालन दक्षता का अभिव्यंजक है। श्री माहेश्वर जोशी उसके इस रूप की 'कल्कि अवतार' से तुलना करते हैं।[३३] घोड़े की गति की दिशा के आधार पर इसके दो प्रकार माने जाते हैं—एक जिसमें अश्व दांयी ओर और दूसरा जिसमें वह बांयी ओर गतिशील है। सम्राट इसमें कभी तलवार तो कभी धनुष लिये चित्रित होता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

फलक स्थित सिक्के का परिचय निम्नवत् है— (फलक २, ५)

पुरोभाग : सुसज्जित अश्व, जो बांयी ओर गतिशील है, पर वटनदार कोट, पाजामा, हार, कुण्डल, भुजबन्द पहने राजा सवार है। बांया हाथ कमर से लटकी तलवार की मूंठ पर है। कमरबन्द पीछे की ओर उड़ रहा है। दाहिने हाथ (जो अदृश्य है) से राजा घोड़े की लगाम पकड़े हुए है। वर्तुलाकार लेख प्रारम्भ में कटा हुआ एवं अस्पष्ट है। लेख के अन्त में '.....रा ज श्री च न्द्र गुप्तः' (परम भागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तः) प्राप्त होता है।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला, वस्त्राभूषणा लक्ष्मी देवी दाहिने हाथ में पाश तथा बांये हाथ में सनाल कमल लिये मोढ़े पर बैठी हैं बांयी ओर गर्दन की सीध में चिह्न तथा दाहिनी ओर लम्बवत् लेख— 'अजित विक्रमः' प्राप्त होता है।

(४) सिंहनिहन्ता प्रकार पं० सं० ३९७६४; भार ७.८६ ग्रा०)—

इस सिक्के पर राजा के ओज और पौरुष का चित्रण हुआ है। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इसमें अपने पिता के 'व्याघ्रनिहन्ता' को परिवर्तित कर 'सिंहनिहन्ता' का रूप दे दिया गया जो कि लोकप्रियता की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसमें कलात्मकता और विविधता का अनुपमेय संगम देखने को मिलता है।

पुरोभाग पर सामान्य रूप से राजा द्वारा धनुष-बाण से सिंह को मारने की तीन स्थितियों का वर्गीकरण स्मिथ महोदय द्वारा किया गया है—सिंह से डटकर मुकाबला करते हुए, सिंह को कुचलते हुए और तीसरे सिंह द्वारा प्रत्याक्रमण के लिये लौटते हुए। परन्तु सिक्कों पर एक स्थिति और देखने को मिलती है, जिसमें भयभीत सिंह बुरी तरह भागता हुआ चित्रित होता है। पृष्ठभाग में सिंहवाहिनी देवी दुर्गा रूप में प्रतिष्ठित लगती हैं। यहाँ के एक अद्वितीय[३४] सिक्के (देखिये फलक २, ६) पर राजा सिंह को तलवार से मारते दिखाया गया है।

फलक के सिक्के का विवरण निम्नवत् है— (फलक ३, १)

पुरोभाग : राजा समस्त अभूषण युक्त, चुस्त बनियान और धोती पहने, दाहिने हाथ में धनुष लिये और बांयें हाथ से उसकी प्रत्यंचा कान तक खींचे, गिरते हुए मुंह फैलाये सिंह को मारने को उद्यत हैं। गत्यात्मकता के कारण कमर पट्ट लहरा गया है। वर्तुलाकार लेख ठप्पे से बाहर चला गया है, केवल बांयी ओर धनुष और सिंह के मुंह के बीच में अधूरा लेख '.....ह विक्रमः' (नरेन्द्र चन्द्रः प्रथित रणो रणे जयत्य जय्यो भुवि सिंह विक्रमः) मिलता है।

पृष्ठभाग : वस्त्राभूषणा, प्रभामण्डला, वामाभिमुख देवी, सिंह पर सम्मुख बैठी हैं दाहिने हाथ में पाश और बांये में सनाल कमलकली दृष्टिगत हो रही है। दाहिनी ओर लेख 'सिंह विक्रमः' द्रष्टव्य है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

(५) छत्र प्रकार (पं० सं० ११६३२; भार ७.८१ ग्रा०)—

चन्द्रगुप्त द्वितीय की यह एक नवीन कलाभिव्यक्ति है। इसका प्रादुर्भाव सम्भवतः उसके प्रासाद में किसी परम्परागत अनुष्ठान के अवसर को दर्शाने के लिये किया गया जान पड़ता है। यहाँ पर सम्राट के लम्बे घुँघराले केश और मांसल शरीर का सराहनीय प्रदर्शन कलाकार ने किया है। पीछे खड़ा छत्रधारी संस्कृत साहित्य में वर्णित छत्रधारिणी या चामरधारिणी की याद दिला रहा है।[१५] पृष्ठभाग में देवी का भव्य अंकन हुआ है।

फलक स्थित सिक्का इस प्रकार है — (फलक ३, २)

पुरोभाग : भारतीय वेशधारी राजा, त्रिभंगमुद्रा में केयूर, कंकण, हार और कुण्डल पहने, दाहिने हाथ से यज्ञ-कुण्ड में आहुति डालता हुआ बांये हाथ में तलवार लिये चित्रित है। दाहिनी ओर पीछे छत्रधारिणी राजा के सिर पर छत्रछाया किये झुकी खड़ी है। वर्तुलाकार लेख ठप्पे से बाहर चला गया है।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला, हार, कंकण, कुण्डल और भुजबन्द धारण किये, विशेष प्रकार का लहँगा और चोली पहने देवी (लक्ष्मी) दांये हाथ में पाश और बांये हाथ में लम्बी नाल वाला कमल लिये बांयी ओर गतिमान चित्रित की गयी है। दांया पैर जमीन पर और बांया एड़ी से उठा हुआ ऐसा सजीव दृश्यांकन मुद्राकार द्वारा किया गया है, मानो देवी मन्दगति से जा रही है। दाहिनी ओर लेख 'विक्रमादित्य' द्रष्टव्य है।

(६) पर्यंक प्रकार[१६] (पं० सं० ५६१४; भार ७.७९ ग्रा०)

सम्राट के विश्राम क्षणों का अंकन इस मुद्रा द्वारा दर्शाया गया जान पड़ता है। डा० अल्टेकर का विचार है कि ये सिक्के उसके पिता के वीणाधारी सिक्के के अनुकरण पर तैयार किये गये हैं। दोनों सिक्कों में राजा अनावृत्त, अर्धनग्न शरीर पर्यंक पर बैठा है। समुद्रगुप्त के सिक्के में वह वीणा बजाता चित्रित किया गया है, जब कि इसमें राजा केवल आराम से बैठा मात्र है।

पर्यंक प्रकार के सिक्कों में कम से कम पाँच मुद्रा प्रकार पाये जाते हैं और प्रत्येक में कहीं न कहीं वैभिन्य अवश्य दिखाई पड़ता है। जिससे लगता है कि ये सभी अलग-अलग ठप्पे से तैयार किये गये हैं। कला की दृष्टि से यह एक मधुर चित्रण बन पड़ा है।

फलक स्थित सिक्के का चित्रण निम्नवत् है— (फलक ३, ३)

पुरोभाग : आभूषणयुक्त, वामाभिमुख राजा, धोती पहने पर्यंक पर सम्मुख नग्न शरीर बैठा है। दांये हाथ में सनाल पुष्प और बांया हाथ पर्यंक पर अवलम्बित नीचे की ओर लटक रहा है। पर्यंक के नीचे एक पीकदान द्रष्टव्य है। दाहिनी ओर वर्तुलाकार अधूरा एवं अस्पष्ट लेख 'प र म भा ग व त·····' मिलता है।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला देवी, कमलासन युक्त चौकी पर एक पैर लटकाये तथा दूसरा पैर चौकी पर रखे वामाभिमुख प्रसन्न मुद्रा में बैठी है। विशेष सराहनीय है उसका शरीर सौष्ठव और उसमें केश विन्यास, जो जूड़े के

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

रूप में है तथा बाजूबन्द, जिसके बड़े-बड़े फीते स्पष्ट लटक रहे हैं। दाहिने हाथ में लम्बा सनाल कमल, जो ठीक उसके मुँह के समक्ष है और बांया हाथ सीधे नीचे जाता हुआ चौकी पर टिका है। इतना स्पष्ट और लुभावना नारी चित्रण सिक्कों पर कम ही देखने को मिलता है ; चौकी के नीचे आयत का अंकन और दाहिनी ओर बड़ा ही कलात्मक सुलेख 'विक्रमादित्यः' देखने को मिलता है। लेख में 'क' और 'त्य' अक्षर की रेखाओं को ऐसा सीधा किया गया है कि लगता है वे देवी और लेख के मध्य की विभाजक रेखा हो।

कुमारगुप्त प्रथम

गुप्त मुद्राओं को इस युग में पुष्पित-पल्लवित होने का पूर्ण अवसर मिला। कुमारगुप्त ने अपने पूर्वजों के मुद्रा प्रकारों को ज्यों का त्यों जारी रखा। साथ ही ६ नवीन मुद्राओं की सृष्टि की, जो कला के उत्कृष्ट उदाहरण मानी जाती हैं। परन्तु कला के विकास की यह कड़ी कहीं-कहीं टूटती नजर आती है और किन्हीं-किन्हीं सिक्कों पर तो यह ह्रास सोचनीय अवस्था में पहुंच गया है। फिर भी कुमारगुप्त ने चौदह प्रकार के सिक्कों की अवतारणा की। उसकी कुछ मुद्रायें तो दुर्लभ कोटि की हैं।

संग्रहालय संकलन में उसके राजा-रानी[३७], वीणाधारी[३८], छत्र[३९], गजारोही[४०] और गजारोही सिंहनिहन्ता[४१] प्रकार उपलब्ध नहीं हैं।

(१) धनुर्धारी प्रकार (पं० सं० ३६९०२; भार ८.१८ ग्रा०]—

अपने पितामह और पिता द्वारा चलायी गयी इस मुद्रा को कुमारगुप्त ने भी जारी रखा। परन्तु जो सुन्दर विविधता हमें चन्द्रगुप्त द्वितीय के धनुर्धारी सिक्कों पर मिलती है, उसका यहाँ नितान्त अभाव दृष्टिगत होता है। साथ ही कला की दृष्टि से जो शारीरिक सन्तुलन उसके पिता की इन मुद्राओं पर देखने को मिलता है, वह यहाँ कुछ बेडौल हो चला है। हाँ लेख और धनुष की स्थिति में परिवर्तन के साथ कई उपमुद्रा प्रकार अवश्य देखने को मिलते हैं।

फलक स्थित सिक्के का वर्णन निम्नवत् है— (फलक ३, ४)

पुरोभाग : प्रभामण्डल युक्त, वामाभिमुख राजा हार, कुण्डल, भुजबन्द तथा घुटने तक धोती और बहुत चिपका हुआ नुकीला कोट पहने हुए हैं जिससे उसका मांसल शरीर झलक रहा है, दाहिने हाथ में बाण और बांये हाथ से धनुष को ऊपर से पकड़े हुए खड़ा चित्रित है। लम्बे घुंघराले केश नीचे को कढ़े हैं। गरुड़ध्वज दाहिने हाथ के पीछे तथा बांये हाथ के नीचे अर्धचन्द्र और उसके नाम का प्रथम अक्षर 'कु' द्रष्टव्य है। वर्तुलाकार अधूरा लेख 'ज य ति म ह त .....' (जयति महीतलं श्री कुमार गुप्तः सुधन्वी) प्राप्त होता है।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला लक्ष्मी खिले कमल पर पद्मासन मुद्रा में बैठी हैं। वह दाहिने हाथ में पत्रयुक्त सनाल कमल लिये हैं तथा बांया हाथ बांयी जाँघ पर अवलम्बित है। आभूषणों में विशेषकर करधनी यहाँ स्पष्ट चित्रित है। दाहिनी ओर लेख 'श्रीं महेन्द्रः' प्राप्त होता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

[२] असिधारी प्रकार [पं० सं० ३९८०३; भार ८.०५ ग्रा०]—

कुमारगुप्त प्रथम की यह एक नवीन उत्पत्ति है। परन्तु लगता है कि पूर्वजों के 'दण्डधारी' परम्परा का यह एक संशोधित रूप है। पूर्वोक्त मुद्रा और इसमें मात्र केवल इतना अन्तर है कि राजा ने बांये हाथ के दण्ड को त्याग कर उसमें तलवार ले रखी है। इस सम्भावना को भी नहीं अस्वीकार किया जा सकता कि यह उसकी असिचालन की दक्षता के परिचायक रूप में प्रचलित की गयी हो।

फलक स्थित सिक्का इस प्रकार है— (फलक ३, ५)

पुरोभाग : प्रभामण्डल युक्त वस्त्राभूषणों से सजा राजा वामाभिमुख, दाहिने हाथ से यज्ञकुण्ड में आहुति डालते हुए तथा बांया हाथ कट्यावलम्बित तलवार की मूठ पकड़े हुए खड़ा चित्रित है। दाहिने हाथ के पीछे फीतायुक्त गरुड़ध्वज है जिस पर पंख फैलाये गरुड़ का भव्य चित्रण है। वर्तुलाकार लेख के कुछ अक्षर 'गाम व ··' दिखाई पड़ते हैं और शेष लेख (गाम वजित्य सुचरितै कुमार गुप्तो दिवं जयति) अस्पष्ट एवं ठप्पे से बाहर चला गया है। गरुड़ के सिर पर लेख का अन्तिम अक्षर 'ति' स्पष्ट है।

पृष्ठभाग : कण्ठहार, कुण्डल, कंकण, चोली और साड़ी पहने देवी विकसित कमल पर पद्मासन मुद्रा में बैठी है। दाहिने हाथ में पाश और बांया हाथ जांघ पर स्थित सनाल कमल लिये हुए हैं। जो ठप्पे से बाहर चला गया है। बांयी ओर गर्दन की सीध में चिह्न स्पष्ट है। दाहिनी ओर का 'श्री कुमार गुप्तः' लेख पूर्णतः ठप्पे से बाहर चला गया है।

[३] अश्वारोही प्रकार [पं० सं० २२६६; भार ८.१५ ग्रा०]—

यद्यपि यह मुद्रा उसके पिता के अश्वारोही के अनुकरण पर ही बनायी गई है, परन्तु इसमें कला सौन्दर्य अपनी निखार पर आया है। घोड़े के पुष्ट अङ्गों-प्रत्यङ्गों का सन्तुलन, उसकी साज-सज्जा और उसकी गत्यात्मकता से पूरा चित्र सजीव हो उठा है। पृष्ठभाग में भी मोर को अंगूर खिलाती हुई देवी का मनोहारी चित्रण हुआ है। लेख और अश्व की दिशा के आधार पर इसके कई उपप्रकार उपलब्ध होते हैं।

फलक स्थित सिक्का निम्नवत् है— (फलक ३, ६)

पुरोभाग : सुसज्जित, दांये गतिशील अश्व पर प्रभामण्डल युक्त राजा चुस्त वेशभूषा पहने बैठा है। दाहिने (अदृश्य) हाथ से लगाम पकड़े और बांया हाथ कटि पर आधारित है तथा कमरपट पीछे लहरा रहा है। वर्तुलाकार लेख के कुछ अक्षर '·····त ल म्व र ·····' (पृथ्वी तलाम्बर शशी कुमार गुप्तो जयत्यजितः) घोड़े के सामने दिखाई पड़ते हैं।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला, सर्वाभूषणा, भारतीय वेश युक्त देवी मोढ़े पर वामाभिमुख बैठी है और दांये हाथ से अंगूर के गुच्छे को सम्मुख मोर को खिला रही है। बांया हाथ कमर से नीचे सनाल कमल पकड़े लटक रहा है। इसी ओर सुस्पष्ट लेख 'अजित महेन्द्रः' द्रष्टव्य है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

[४] सिंह निहन्ता प्रकार [पं० सं० ११५८६; भार ८.१४ ग्रा०]—

यह मुद्रा कुमारगुप्त ने अपने पिता चन्द्रगुप्त द्वितीय के इसी प्रकार के सिक्के के आधार पर ढलवायी। सामान्यतः उसके इस प्रकार में अपने पूर्ववर्ती सिक्के की तुलना में कला की दृष्टि से अनेक कमियां देखने को मिलती हैं। राजा और सिंह की आकृतियों का वह सशक्त अंकन इनमें दृष्टिगोचर नहीं होता। मुख भाग के अंकन में यद्यपि अनेक रूपता दिखलाने का प्रयास किया गया है। धनुष बाण से सिंह को मारते हुए तो इसके सिक्के प्रायः मिल जाते हैं, पर बिना अस्त्र-शस्त्र के उसे मारने का यहाँ प्रस्तुत दृश्य दुर्लभ एवं अनूठा है।

फलक स्थित सिक्का इस प्रकार है— (फलक ४, १)

पुरोभाग : केवल घुटने तक धोती पहने, नग्न बदन, आभूषण युक्त राजा, दाहिनी ओर छटपटा कर गिरते हुए सिंह को घूर रहा है तथा उसका दाहिना पैर आगे बढ़ा हुआ है। सिंह मुंह फैलाये हुए प्रत्याक्रमण को उद्यत है। सिंह के ऊपर वर्तुलाकार लेख के कुछ अक्षर जो स्पष्ट नहीं हैं।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला, कण्ठहार, कंकण, केयूर, कुण्डल तथा साड़ी और कंचुकी पहने देवी का सुन्दर चित्रण है। देवी के आसन की विशेषता है कि दक्षिणाभिमुख सिंह की पीठ पर कमलासन है और उस पर वह वामाभिमुख दांया पैर मोड़े हुए और बांया पैर नीचे लटकाये अर्धपर्यंक मुद्रा में विराजमान है। उसका दांया हाथ सम्भवतः अभय मुद्रा में ऊपर उठा हुआ है और बांये हाथ में लम्बा सनाल कमल द्रष्टव्य है। दांयें अर्धवर्तुल में राजा की उपाधि 'श्री महेन्द्र सिंह' विद्यमान है।

[५] व्याघ्र निहन्ता प्रकार [पं० सं० ३१६६; भार ८,०९ ग्रा०]—

पितामह समुद्रगुप्त के इस प्रकार को कुमारगुप्त ने पुनः प्रतिष्ठित किया, जब कि उसके पिता चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में इसका प्रचलन बन्द हो गया था। समुद्रगुप्त और इसकी मुद्रा में बहुत साम्य है। केवल मुद्रा-लेख में थोड़ा अन्तर देखने को मिलता हैं। पृष्ठभाग में देवी मकर वाहिनी है और वह किंचित सामने झुकी हुई इसी राजा के 'अश्वारोही' मुद्रा के सदृश मोर को खिला रही है।

फलक स्थित सिक्के का वर्णन इस प्रकार है— (फलक ४, २)

पुरोभाग : प्रभामण्डल एवं आभूषण युक्त, धोती पहने, नग्नबदन, राजा दांयें हाथ से धनुष और बांये से उसकी प्रत्यंचा खींचे बांये गिरते हुए बाघ को कुचल रहा है। व्याघ्र दो तिहाई ठप्पे से बाहर चला गया है। बांयी ओर धनुष की नोक के ऊपर लेख के दो अक्षर 'श्री मां ·····' (श्री मां व्याघ्र पराक्रमः) तथा बांये हाथ के नीचे अर्धचन्द्र और 'कु' द्रष्टव्य है।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला देवी, जो भारतीय वेश में है, सामने की ओर किंचित झुकी हुई मकर (जो ठप्पे से बाहर चला गया है) पर खड़ी है और दाहिने हाथ से मोर (जो ठप्पे से कट गया है) को कुछ चुगा रही है। बांया हाथ सनाल कमल लिये कटि पर अवलम्बित है। मोर के ठीक ऊपर चिह्न विद्यमान है। इसी ओर अर्ध-वर्तुलाकार अस्पष्ट लेख 'कुमारगुप्तोधिराजा' उल्लेखनीय है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja Nation...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

[६] खड्गनिहन्ता प्रकार [पं० सं० १०४४०; भार ८.०७ ग्रा०]—

कुमारगुप्त प्रथम की यह मुद्रा उसकी आखेटप्रियता की प्रतीक है। इतने छोटे ठप्पे में इतना बड़ा दृश्य भरना इस युग के मुद्रा कलाकार की निपुणता का द्योतक है। यह मुद्रा इस राजा के दुर्लभ प्रकारों में कही जाती है।बयानानिधि से इस प्रकार के चार सिक्के प्राप्त हुए थे जिसमें से एक आजकल भारत कला भवन में है[४३] प्रस्तुत सिक्का लखनऊ संग्रहालय के लिए १९४८ में खरीदा गया था।[४३]

फलक स्थित सिक्के का परिचय निम्न है— (फलक ४, ३)

पुरोभाग : दक्षिणाभिमुख अश्वारूढ़ राजा (स्पष्ट नहीं है) नीचे गैंडे को मारने के लिए प्रयत्नशील हैं। गैंडा पूंछ उठाये और मुंह फैलाये प्रत्याक्रमण के लिए गतिशील दीखता है। अश्व उससे डर कर अपना मुंह ऊपर उठाये जान पड़ता है। गैंडे का चित्रण सजीवता से हुआ है। दाहिनी ओर अस्पष्ट एवं अधूरा लेख 'भर्त्ता खड्ग त्राता·····।'

पृष्ठभाग : मकरवाहिनी गंगा द्विभंग[४४] मुद्रा में वामाभिमुख खड़ी है। आभूषण तो स्पष्ट हैं पर अधोवस्त्र[४५] या तो पारदर्शी है या फिर लँहगे की नीवि खुली हुई है जिससे उसका अधोभाग अनावृत है, पैरों की मांसलता से भी इसका अनुमान लगाया जा सकता है। मकर के नथुने से सनाल कमल निकलता हुआ दिखलाई पड़ता है जो कि देवी को भेंट प्रदान करता हुआ सा लगता है। दाहिना हाथ सामने की ओर सीधा निकलता हुआ, उँगलियों से किसी चीज को संकेत करता है।[४६] बांया हाथ सीधा नीचे लटक रहा है। इसी ओर छत्रधारिणी स्त्री का अंकन है जो छत्र को देवी के सिर के ऊपर रखने के प्रयास में थोड़ा दाहिने झुक सी गई प्रतीत होती है। नारी का वक्ष स्पष्ट है। बांयी ओर अर्धवर्तुल में लेख 'श्री महेन्द्र खड्गः' द्रष्टव्य है।

[७] मयूर [कार्तिकेय] प्रकार [पं० सं० ११५८४; भार ८.०५ ग्रा०]—

गुप्त मुद्रा कला को कुमारगुप्त की यह एक अभिनव देन है। सम्भवतः परम्परागत देव सेनापति कार्तिकेय (कुमार) के प्रति अपनी सत्यनिष्ठा[४६] को प्रदर्शित करते हुए उसने इसका निर्माण कराया। डा० अल्टेकर पृष्ठभाग के कार्तिकेय के अंकन के आधार पर इसे कार्त्तिकेय प्रकार कहते हैं, परन्तु डा० गुप्त इसे गुप्त मुद्राओं की चित्रांकन परम्परा को निर्धारित करते हुए मयूर प्रकार कहना उपयुक्त समझते हैं।[४७] स्मिथ महोदय ने भी इसके लिए यही नामाभिधान प्रयुक्त किया था। यह नाम अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

फलक स्थित सिक्के का वर्णन निम्नवत् है— (फलक ४, ४)

पुरोभाग :—प्रभामण्डल एवं आभूषण युक्त, धोती पहने, नग्नबदन राजा की शरीर रचना बहुत सुन्दर बन पड़ी है। वामाभिमुख राजा का दाहिना हाथ कोहनी के ऊपर मुड़ा हुआ कुछ लिए हुए है और सामने नृत्य करते मोर को देख रहा है। बांया हाथ कमर पर है। सम्पूर्ण दृश्य कला का उत्कृष्ट नमूना है। वर्तुलाकार लेख ठप्पे से बाहर चला गया है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

पृष्ठभाग : आभूषण युक्त, नग्नबदन कार्तिकेय, नृत्यरत मयूर पर आसीन हैं। दाहिना हाथ अभयमुद्रा में है और बांये हाथ में शक्ति (भाला) लिये हुए हैं, जो बांये कन्धे पर टिकी है। मोर एक वेदी पर खड़ा चित्रित है। दृश्य बहुत ही मनोरम है। दाहिनी ओर अस्पष्ट लेख है।

[८] अश्वमेध प्रकार [पं० सं० १०५६१; भार ८.१० ग्रा०]—

कुमारगुप्त के ये सिक्के दुष्प्राप्य हैं[४८], साहित्य में उसके अश्वमेध करने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु इन सिक्कों का साक्ष्य यह सिद्ध करता है कि उसने 'अश्वमेध' यज्ञ किया था। कला की दृष्टि से ये सिक्के इसके पितामह (समुद्रगुप्त) के अश्वमेध प्रकार के सिक्कों से निम्न कोटि के हैं। यद्यपि घोड़े की साज-सज्जा का बड़ा ध्यान रखा गया है। फिर भी समुद्रगुप्त के नंगे अश्व की तुलना में ये पीछे हैं। पृष्ठभाग पर देवी की आकृति स्थूल एवं अनावश्यक झुकी हुई चित्रित है।

फलक स्थित सिक्का निम्नवत् है— (फलक ४, ५)

पुरोभाग : दक्षिणाभिमुख, सुसज्जित अश्व की पूंछ तथा सिर ठप्पे से बाहर चले गये हैं और यज्ञ यूप (स्तम्भ) का निचला भाग उसके मुँह के नीचे स्थित है। यूप से बँधी पताका का कुछ भाग घोड़े के ऊपर उड़ता दिखाई दे रहा है। वर्तुलाकार लेख ठप्पे से बाहर चला गया है। केवल कुछ अस्पष्ट अक्षर घोड़े के पेट के नीचे देखे जा सकते हैं।

पृष्ठभाग : बिन्दु वर्तुल में प्रभामण्डला देवी (विजया)[४९] वामाभिमुख, दाहिने हाथ से चामर पकड़े हैं जो उनके दाहिने कन्धे पर टिकी है, बांया हाथ नीचे लटकता हुआ पट्ट लिये है। देवी के सम्मुख पताका युक्त शक्ति विद्यमान है। दांयी ओर अर्धवर्तुल में अस्पष्ट लेख 'श्री अश्वमेध महेन्द्रः' द्रष्टव्य है।

[९] अप्रतिघ प्रकार [पं० सं० ११४०३; भार ७.८४ ग्रा०]—

यह कुमारगुप्त की सर्वथा नवीन मुद्रा है, जिसके रहस्य और सार्थकता को लेकर विद्वानों में गहरा मत-भेद है। इसके पुरोभाग की तीन आकृतियों में बीच की पुरुषाकृति है, पर उसके दांये और बांये आकृतियों की अभी तक कोई सर्वमान्य पहचान नहीं हो सकी है। हार्न ले महोदय मध्याकृति को बुद्ध का चित्रण मानते हैं और पार्श्व आकृतियों से उनकी उपासिकायें।[५०] प्रो० मिराशी का कहना है कि मध्य में साधु खड़ा है और दोनों पार्श्वों में क्रमशः राजा-रानी।[५१] मजूमदार महोदय के अनुसार बीच की आकृति शिव की है और उनके बगल में नन्दी (मानवरूप) और पार्वती का चित्रण है।[५२] स्मिथ महोदय बीच की आकृति को राजा और पार्श्व चित्रणों को उनकी दो रानियां मानते हैं।[५३] अॅलन महोदय इस पूरे चित्र को ही भारतीय परिवेश का नहीं मानते।[५४] अल्टेकर महोदय मध्याकृति को कुमारगुप्त तथा पार्श्व आकृतियों को क्रमशः सेनापति और रानी का चित्रण मानते हैं। उनका सुझाव है कि राजा सन्यास के लिए तत्पर है। उसके इस प्रण को त्यागने के लिये उसकी रानी और सेनापति उसे राजी करने का प्रयास कर रहे हैं। पृष्ठभाग का लेख 'अप्रतिघ' भी इसकी पुष्टि कर रहा है।[५५]

CC-0. Bhagavad Ramanuja Nation LD

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

डा० डी० सी० सरकार भी मध्याकृति को कुमारगुप्त और पार्श्व आकृतियों को उसके दैवी शुभचिन्तक मानते हैं।[16] अब प्रायः मध्याकृति को कुमारगुप्त माना जाता है जिसकी पुष्टि भी पुरोभाग के 'कुमार' लेख से हो जाती है। सिक्के का पूर्ण रहस्य पुरोभाग के वर्तुलाकार लेख को स्पष्ट पढ़ लेने के बाद ही प्रकाश में आ सकता है।

फलक स्थित सिक्के का वर्णन निम्नवत् है— (फलक ४, ६)

पुरोभाग : उष्णीश युक्त कुमारगुप्त हाथ जोड़े मध्य में खड़ा है। उसके दाहिनी ओर की पुरुषाकृति का दाहिना हाथ उसे इंगित करता हुआ उठा है और उसके बांयी ओर की नारी आकृति का बांया हाथ कमर पर है तथा दाहिने उठे हाथ से कुछ समझाने का प्रयास कर रही है। ऊपर बांये राजा और पुरुषाकृति के बीच गरुड़ध्वज तथा दांये राजा और नारी आकृति के मध्य अर्धचन्द्र स्पष्ट है। दांयी ओर नारी और राजा के पैरों के मध्य 'कुमार' तथा बांयी ओर पुरुष और राजा के मध्य पैरों के मध्य 'गुप्त' लिखा है। वर्तुलाकार लेख बोधगम्य नहीं है।

पृष्ठभाग : भव्य लक्ष्मी का साक्षात् चित्रण यहाँ दर्शनीय है। जल से निकले शतदल कमल पर प्रभामण्डला, वस्त्राभूषणा देवी पद्मासन लगाये विराजमान है। सिर पर उष्णीश है। दाहिना हाथ अभयमुद्रा में ऊपर उठा हुआ सनाल कमल युक्त है। बांया हाथ कट्यावलम्बित है। बांयी ओर हाथ की सीध में चिह्न तथा दाहिनी ओर गर्दन के पास अर्धचन्द्र और अर्धवर्तुल लेख 'अप्रतिघ' विद्यमान है।

स्कन्दगुप्त

गुप्तों की उन्नत मुद्रा कला में यहाँ से ह्रास का युग प्रारम्भ होता है। इसका एक कारण तो यह मालूम पड़ता है कि स्कन्दगुप्त ने बड़े ही नाजुक दौर में गुप्त शासन की बागडोर सम्भाली थी। उसके भीतरी और जूनागढ़ के अभिलेखों[17] से पता चलता है कि कुमारगुप्त के अन्तिम शासन में पुष्यमित्रों, शकों और हूणों के आक्रमण से गुप्त साम्राज्य की नींव हिल गयी और किस प्रकार उसने एक वीर सपूत की भाँति तीन रात निरन्तर धरती पर सोकर गुप्त-राजकुल की प्रतिष्ठा बचायी और फिर भी उत्तर-पश्चिम का कुछ भाग उसके हाथ से जाता रहा। ऐसे में वह नवीन मुद्राओं के विषय में सोच भा कैसे सकता था। यही बहुत है कि उसने अपने अल्पशासन में पूर्वजों के कुछ मुद्रा प्रकारों—धनुर्धारी, छत्र[18], और अश्वारोही[19] को जारी रख सका। उसके 'राजा और लक्ष्मी' प्रकार की मुद्रा के विषय में आगे चर्चा की जायगी। यहाँ संकलन में उसके दो प्रकार उपलब्ध होते हैं।

[१] धनुर्धारी प्रकार [पं० सं० ७१०४; भार ८.४९ ग्रा०]—

स्कन्दगुप्त द्वारा चलाया गया यह सिक्का उसके पूर्वजों का अनुसरण मात्र है।

फलक स्थित सिक्का निम्नवत् है— (फलक ५, १)

पुरोभाग : वामाभिमुख, प्रभामण्डल युक्त राजा नुकीला कोट, चुस्त पाजामा पहने दाहिने हाथ में बाण और बांये हाथ में धनुष को ऊपर से पकड़े खड़ा है। बांयी भुजा के नीचे 'स्कन्द' और दाहिने हाथ के पीछे गरुड़ध्वज द्रष्टव्य है। वर्तुलाकार लेख ठप्पे से बाहर चला गया है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

पृष्ठभाग : पूर्ण विकसित कमल पर पद्मासन लगाये प्रभामण्डला, आभूषणा देवी दाहिने हाथ में पाश और सनाल कमल युक्त बांये हाथ को जांघ पर रखे सम्मुख बैठी हैं । बांयी ओर गर्दन की सीध में गुप्त चिह्न के अवशेष और दाहिनी ओर अर्धवर्तुल में स्पष्ट लेख 'श्री स्कन्दगुप्तः' विद्यमान है।

[२] राजा-लक्ष्मी प्रकार [पं० सं० ६९३५; भार ८.६२ ग्रा०]–

इस सिक्के के नामाभिधान को लेकर विद्वानों में मतभेद है। डा० गुप्त इसे 'राजा-रानी' प्रकार मानते हैं।[६०] परन्तु अलन[६१] और अल्टेकर[६२] महोदय इसे 'राजा-लक्ष्मी' प्रकार संज्ञा देते हैं। पुरोभाग के सम्पूर्ण दृश्य[६३] को समग्र रूप से विश्लेपित करने पर इसे 'राजा-लक्ष्मी' नाम से अभिहित करना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

फलक स्थित सिक्का निम्नवत् है— (फलक ५, २)

पुरोभाग : सिक्के में राजा बांये हाथ में बाण और दांये में धनुष लिए, भारतीय वस्त्र-आभूषण धारण किये, नग्न बदन, दक्षिणाभिमुख बांयी ओर खड़ा है। दाहिनी ओर देवी वामाभिमुख, उठे हुए हाथ से कोई चीज[६४] राजा की ओर दिखाते हुए, नीचे लटकते हाथ में लम्बा सनाल कमल लिये खड़ी चित्रित है। राजा वस्तु को ध्यान से देख रहा है। दोनों के मध्य गरुड़ध्वज विराजमान है। वर्तुलाकार लेख के कुछ अक्षर ज य त·····न्वी' (जयति महीतल) स्कन्द गुप्तः सुधन्वी) प्राप्त होते हैं।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला देवी इसी राजा के धनुर्धारी प्रकार के सदृश विराजमान है और दाहिनी ओर का लेख 'श्री स्कन्द गुप्तः' भी ठीक उसी प्रकार है।

स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी

स्कन्दगुप्त के बाद जो गुप्त राजा आये उनको किसी निश्चित वंशक्रम में अभी तक नहीं रखा जा सका, क्योंकि इस काल का कोई ऐसा ठोस साक्ष्य अभी तक नहीं प्राप्त हुआ जिससे अकाट्य वंशक्रम निर्धारित हो सके। इस सम्बन्ध में प्राप्त लेख भी अलग-अलग राजाओं की सूचना देते हैं। अल्टेकर महोदय इस क्रम को इस प्रकार रखते हैं—पुरुगुप्त, घटोत्कचगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय, बुद्धगुप्त, विष्णुगुप्त और प्रकाशादित्य।[६५] परन्तु डा० गुप्त इस क्रम में पहले कुमारगुप्त द्वितीय और दूसरे बुद्धगुप्त को मानते हैं तथा बुद्ध गुप्त और नरसिंहगुप्त के मध्य वैन्यगुप्त (पुत्र कुमारगुप्त द्वितीय), चन्द्रगुप्त तृतीय[६६], समुद्रगुप्त द्वितीय[६७] और प्रकाशादित्य को रखते हैं। वे इनके क्रम आगे या पीछे होने का सुझाव देते हैं। इसके पश्चात नरसिंहगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त तृतीय और उसके पुत्र विष्णुगुप्त ने सम्भवतः अन्तिम गुप्त शासक के रूप में राज्य किया।[६८]

मुद्रा के क्षेत्र में इन राजाओं का कोई नवीन योगदान नहीं है। ये पूर्व गुप्तों के धनुर्धारी प्रकार को ही जीवित रख सके। अपवाद स्वरूप केवल प्रकाशादित्य की 'अश्वारोही सिंहनिहन्ता' मुद्रा का उल्लेख किया जा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जकता है। इन राजाओं का काल अन्तर और बाह्य द्वन्द का समय था। अतः इस युग में कला और धातु की शुद्धता में निरन्तर ह्रास होता चला गया।

कुमारगुप्त द्वितीय [पं० सं० ११६२७; भार ६.१७ ग्रा०]—

स्कन्दगुप्त के बाद कुमारगुप्त द्वितीय ने शासन सम्भाला। परन्तु स्कन्दगुप्त से इस राजा के क्या सम्बन्ध थे, ज्ञात नहीं है।

फलक स्थित सिक्के का परिचय निम्नवत् है— (फलक ५, ३)

पुरोभाग : राजा स्कन्दगुप्त के धनुर्धारी सिक्के के सदृश खड़ा है। बांयी भुजा के नीचे 'कु' और उसके ऊपर अर्धचन्द्र स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

पृष्ठभाग : देवी भी स्कन्द के ही धनुर्धारी के समान चित्रित की गई है। दांयी ओर विरुद के कुछ अक्षर 'क म·····' (क्रमादित्यः) देखे जा सकते हैं।

बुधगुप्त [पं० सं० ११६००; भार ९.३४ ग्रा०]—

बुधगुप्त पुरुगुप्त का पुत्र था, परन्तु डा० गुप्त का कहना है कि सम्भवतः पुरुगुप्त कभी शासक न हो पाया।

फलक स्थित सिक्का इस प्रकार है— (फलक ५, ४)

पुरोभाग : सम्पूर्ण चित्र विकृत सा है। राजा पूर्व सिक्के के ही भाँति दिखाया गया है केवल कमर बन्द गोल छल्ले के रूप में भिन्न है। बांये भुजा के नीचे के अक्षर पहचानने में कठिनाई है, परन्तु अल्टेकर महोदय इस सिक्के को बुधगुप्त के होने का सुझाव देते हैं।[६९] दाहिनी ओर वर्तुलाकार लेख (परहितकारी राजा जयति दिवं श्री बुधगुप्त विक्रमादित्यः) के कुछ अक्षर प्राप्त होते हैं।

पृष्ठभाग : पूर्व सिक्के की ही तरह है, परन्तु देवी की आकृति पूर्णतयः विकृत है। दाहिने हाथ का पाश ठप्पे से बाहर चला गया है। दांयीं ओर अस्पष्ट अक्षरों वाला लेख 'श्री विक्रमः' विद्यमान है।

समुद्रगुप्त द्वितीय [पं० सं० ११४०२; भार ८.७८ ग्रा०]—

संग्रहालय संकलन[७०] में सुरक्षित इस सिक्के को डा० गुप्त अब तक प्राप्त एक मात्र मुद्रा मानते हैं। उनके अनुसार इसका भार इतना अधिक है कि इसे पूर्व समुद्रगुप्त का सिक्का (भार ७.३३ ग्रा०) नहीं माना जा सकता। कालक्रम में वह इसे बुधगुप्त के बाद रखते हैं।[७१] परन्तु भार की दृष्टि से इसे कुमार गुप्त द्वितीय (भार ९.१७ ग्रा०) के पहले होना चाहिये, क्योंकि इस काल में प्रायः यह देखने में आता है कि राजाओं के सिक्कों में उत्तरोत्तर भार वृद्धि होती गई है। यह सिक्का यहाँ पर प्रथम बार प्रकाशित हो रहा है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

फलक स्थित सिक्के का वर्णन इस प्रकार हैं— (फलक ५, ६)

पुरोभाग : राजा कुमारगुप्त द्वितीय के सिक्के की भाँति चित्रित है। दाहिने हाथ के पीछे गरुड़ध्वज है और बांयी भुजा के नीचे 'समुद्र' लेख प्राप्त होता है।

पृष्ठभाग : देवी का चित्रण पूर्व सिक्के की ही तरह है। बांयी ओर सिर की सीध में गुप्त चिह्न के अवशेष मालूम पड़ते हैं। दाहिनी ओर उसकी उपाधि के कुछ अस्पष्ट अक्षर 'प र क ·····' होने की सम्भावना है।

प्रकाशादित्य

इस राजा का नाम अभी तक ज्ञात नहीं था, केवल उसकी 'प्रकाशादित्य' उपाधि से ही उसे जाना जाता था। परन्तु कुछ वर्ष पहले श्री के० एस० शुक्ल ने उन्नाव जिले से प्राप्त 'प्रकाशादित्य' के अश्वारोही सिंहनिहन्ता' सिक्के के पुरोभाग पर 'भानुगुप्त' पढ़ा हैं।[७३] डा० टी० पी० वर्मा इसे एरण अभिलेख का भानुगुप्त मानकर 'प्रकाशादित्य' के पहचान सम्बन्धी विवाद की समाप्ति करते हैं, परन्तु उक्त सिक्के का फोटो बहुत ही अस्पष्ट है[७३] और इसके आधार पर किसी सार्थक निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता। साथ ही मूल सिक्के का भी कहीं पता नहीं है जिससे कि स्थिति स्पष्ट हो सके।

अभी तक उसकी उक्त मुद्रा से ही भेड़ा शास्त्री परिचित थे। परन्तु इस काल में सामान्यतया प्रचलित इसकी धनुर्धारी मुद्रा का न मिलना एक असामान्य बात थी। सौभाग्य से इसकी एक धनुर्धारी मुद्रा यहाँ के संकलन[७४] में सुरक्षित है, जो नीचे वर्णित की जा रही हैं।

[१] धनुर्धारी प्रकार [पं० सं० ११६२६; भार० ९.४३ ग्रा०[

फलक स्थित सिक्का इस प्रकार है-- (फलक ६, १)

पुरोभाग : प्रभामण्डल युक्त राजा पूर्व सिक्के की ही भांति चित्रित हुआ है। दांयी ओर वर्तुलाकार लेख के कुछ अस्पष्ट अक्षर 'प र·····' द्रष्टव्य हैं।

पृष्ठभाग : प्रभामण्डला देवी, आभूषणयुक्त, पूर्ववत् चित्रित की गई हैं। ऊपर बांयी ओर चिह्न स्पष्ट है और दाहिनी ओर लेख 'श्री प्रकाश·····' प्राप्त होता है।

[२] अश्वारोही सिंहनिहन्ता प्रकार [पं० सं० ६३६४; भार ९.३५ ग्रा०]-

परवर्ती गुप्तकाल में ऐसी मौलिक मुद्रा देखने को नहीं मिलती। सम्भवतः यह कुमारगुप्त प्रथम के 'खड्ग निहन्ता' का नया स्वरूप है जिसमें अश्वारोही द्वारा तलवार से गैंडे के स्थान पर सिंह का शिकार किया जा रहा है।[७५] पूरा दृश्य अत्यन्त रोचक अभिव्यक्ति के साथ है। एक बात जो इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है, वह है गुप्तों के अवनति काल में भी विशुद्ध[७६] सोने के सिक्के का चलाया जाना।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

फलक स्थित सिक्का निम्नवत् है—

(फलक ६, २)

पुरोभाग : टोपी पहने, अश्वारोही राजा सिंह को मारने के लिए नीचे की ओर किंचित झुका हुआ है और पीछे गिरते हुए सिंह के मुंह में तलवार घुसी हुई सी प्रतीत होती है। वर्तुलाकार लेख के कुछ अस्पष्ट अक्षर बांयी ओर घोड़े और राजा के सिर के मध्य देखे जा सकते हैं।

पृष्ठभाग : देवी का चित्रण पूर्ववत् है। दाहिनी ओर अधूरा लेख 'श्री प्रकाशा:.....' (श्री प्रकाशादित्य:) द्रष्टव्य है।

नरसिंहगुप्त [पं० सं० १००६८; भार ६.४७ ग्रा०]–

पुरुगुप्त के तीन पुत्रों में से एक था। बुधगुप्त का उल्लेख हम पूर्व पृष्ठों में कर चुके हैं और तीसरा पुत्र वैन्यगुप्त माना जाता है।[७७]

फलक स्थित सिक्का इस प्रकार है—

(फलक ५, ५)

पुरोभाग : प्रभामण्डलयुक्त राजा, पूर्व धनुर्धारी सिक्कों की तरह चित्रित है; बांयी भुजा के नीचे 'न र' तथा दोनों पैरों के मध्य 'ग्रे' लिखा है। वर्तुलाकार लेख अस्पष्ट है।

पृष्ठभाग : पूर्व सिक्के की तरह देवी दिखाई गई है, परन्तु उसकी आकृति यहाँ स्थूल है। सिर पर केशों का जूड़ा देखा जा सकता है। दाहिनी ओर का लेख बिल्कुल अस्पष्ट है।

विष्णुगुप्त [पं० सं० ११४०१; भार ६.५४ ग्रा०, हैमिल्टन संग्रह:]–

संभवत: गुप्तवंश के अंतिम शासक के रूप में यह कुमारगुप्त तृतीय का पुत्र था।[७८]

फलक स्थित सिक्का निम्नवत् है—

(फलक ६, ३)

पुरोभाग : राजा पूर्व धनुर्धारी सिक्कों की तरह चित्रित है। राजा के शरीर को हृष्ट-पुष्ट दिखाने का प्रयास किया गया है। गरुड़ध्वज स्पष्ट नहीं है। राजा की बांयी भुजा के नीचे 'विष्णु' लेख प्राप्त होता है, वर्तुलाकार लेख ठप्पे से बाहर चला गया है।

पृष्ठभाग : देवी पूर्व सिक्के की तरह प्रदर्शित की गई हैं। लेख बिल्कुल स्पष्ट नहीं है। सम्पूर्ण अंकन धुँधला सा है।

गुप्तों की मुद्रा अनुकृतियाँ

गुप्त राजाओं का काल भारतीय संस्कृति में एक आदर्श युग था। विशेष कर मुद्राक्षेत्र में उन्होंने जो प्रभुत्व स्थापित किया, वह भावी राजवंशों[७९] के लिए एक उदाहरण बन कर रह गया। गुप्तोत्तर अनेक राजाओं

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

ने उनके सिक्कों के अनुकरण पर अपने सिक्के बनवाये, परन्तु इन सिक्कों को देखने से ज्ञात होता है कि इन पर बनी आकृतियाँ, चिह्न आदि कितने विकृत होते गये हैं।

इनके बाद के समीपवर्ती राजाओं में जिनके अनुकृति सिक्के हमें प्राप्त होते हैं, वे है—भीमराज, हरिगुप्त, जयगुप्त, वीरसेन, जयनाग, समाचारदेव और शशांक आदि।[८०] वीरसेन[८१] की एक मुद्रा यहाँ के संकलन[८२] में भी है।

इनके अतिरिक्त पूर्वी बंगाल (वर्तमान बांग्लादेश)[८३] से बहुतायत संख्या में ऐसे सिक्के पाये गये हैं जो गुप्तों की बहुत ही भद्दी अनुकृति कहे जा सकते हैं। ऐसा ही एक सिक्का पहली बार श्री पी० के० भट्टाचार्य को पश्चिमी बंगाल से मिला है।[८४] इन सिक्कों के मुख भाग पर साधारणतया धनुष-बाण लिए राजा की आकृति और एक ध्वज[८५] प्राप्त होता है लेख के रूप में कभी-कभी 'श्री'[८६] मिलता है।

संकलन स्थित सिक्के[८७] का वर्णन इस प्रकार है-- (फलक ६, ४)

पुरोभाग : मोटे बिन्दुओं के वर्तुल में प्रभामण्डलयुक्त राजा दाहिने हाथ में बाण और बांये में धनुष लिए खड़ा है। दाहिने हाथ के पीछे शंखध्वज है। बांयी ओर शंखध्वज और राजा के सिर के मध्य 'श्री' लिखा है। बांयी भुजा के नीचे 'श्री' लिखा मालूम पड़ता है। राजा के पैर की अँगुलियाँ फैली-फैली दिखायी गई हैं।
पृष्ठभाग : नारी आकृति देवी रूप में बड़ी विकृत है। दक्षिणाभिमुख हाथ में फल[८८] जैसी कोई वस्तु लिए हुए हैं। दांयी ओर लेख के बहुत ही अस्पष्ट अक्षर प्राप्त होते हैं।

गुप्त सिक्कों के सम्बन्ध में कुछ और तथ्य भी यहाँ उल्लेखनीय हैं, वह हैं इन सिक्कों पर कहीं-कहीं प्राप्त होने वाले 'सि', 'कृ' और 'कु' अक्षर तथा बहुतायत में प्राप्त होने वाले 'चन्द्र' (कभी-कभी चन्द्रध्वज) और ज्यामितीय आकार वाले चिह्नों के विषय में। विद्वानों का विचार है कि इन अक्षरों का प्रयोग 'सिद्धम्'[८९], 'कृतान्त'[९०] और 'कुमार'[९१] के आद्याक्षर (इनीशियल) रूप में हुआ है। यहाँ पूर्व पृष्ठों में वर्णित कुमारगुप्त प्रथम के एक धनुर्धारी सिक्के पर 'कु' अक्षर के नीचे सुस्पष्ट गोल विन्दु द्रष्टव्य है (देखिये फलक ३, ४), जैसा कि आज भी शब्द के संक्षेप (एब्रीवियेशन) में लिखने पर विन्दु रखने की प्रथा है। इससे इस बात को बल मिलता है कि ये अक्षर इनीशियल की तरह ही प्रयुक्त हुए हैं।

ऐसे ही बाद के गुप्त शासकों—वैन्यगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त तृतीय, प्रकाशादित्य और विष्णुगुप्त के सिक्कों पर पाये जाने वाले भ, ग्रे, गु, गो, ज, जो और रू अक्षरों का उद्देश्य भी अभी तक निहित है, परन्तु इससे पूर्व और पश्चात् के शासकों की पहचान करने में सहायता अवश्य मिलती है।

गरुड़ध्वज के 'राजाङ्क' होने की बात तो स्पष्ट है, क्योंकि समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में 'गरुड़ाङ्का' का साफ-साफ उल्लेख है तथा उसके ताम्रानुशासनों में भी गरूड़ 'राजाङ्क' का प्रयोग हुआ है। परन्तु इन सिक्कों पर पाये जाने वाले 'चन्द्रध्वज या चन्द्र' चिह्न का प्रयोजन अभी तक स्पष्ट नहीं है। अँलन महोदय मानते हैं कि यह ग्रीक सिक्कों के ओमिक्रान (O) अक्षर का विकृत रूप है।[९२] जे० के० अग्रवाल इस भावना को स्वीकार नहीं करते।[९३] अल्टेकर महोदय भी अब इसे किसी शुभ चिह्न के रूप में होने की सम्भावना मानते हैं।[९४] प्रोफेसर

CC-0. Bhagavad Ramanuja National D

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

मुखर्जी का कहना है कि इन सिक्कों पर 'चन्द्र' का अंकन चन्द्रगुप्त प्रथम के नाम का प्रथम शब्द होने के कारण हुआ है[१५] जिससे उसकी पुण्य स्मृति को अक्षुण्य रखा जा सके, क्योंकि उसके द्वारा गुप्तवंश के वास्तविक संस्थापक और प्रथम गुप्त सम्राट होने की उपलब्धि का इस वंश के लिए सर्वाधिक महत्व है। डा० गुप्त इसे प्रभुसत्ता के द्योतक चिह्न के रूप में देखते हैं।[१६] उनकी इस बात में अधिक सार्थकता दिखाई पड़ती है। कुमारगुप्त प्रथम के 'अप्रतिघ' प्रकार के सिक्के के पृष्ठांकन से इसे और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। इस सिक्के पर 'चन्द्र' को 'गरुड़' के बराबर का स्थान दिया गया है (देखिये, फलक ४, ६)। साथ ही समुद्रगुप्त का परशुधारी और व्याघ्रनिहन्ता सिक्का अवलोकनीय है जिसके क्रमशः पुरो और पृष्ठ भाग पर 'चन्द्रध्वज' का स्वतन्त्र अंकन 'गरुड़-ध्वज' के समान ही हुआ हैं (देखिये फलक १, ५ और २, २)। इसकी पुष्टि में स्कन्दगुप्त के 'राजा-लक्ष्मी' प्रकार के सिक्के पर भी विचार किया जा सकता है जिसमें राजा और लक्ष्मी के मध्य 'गरुड़ध्वज' की स्थिति पूर्वोक्त परशुधारी सिक्के के 'चन्द्रध्वज' के ठीक समान है (देखिये फलक ५, २)। इससे यह निश्चित निष्कर्ष निकलता है कि 'चन्द्रध्वज या चन्द्र' चिह्न को गरुड़ राजाङ्क के समान ही सम्मान प्राप्त था, भले ही हम अभी उसके स्पष्ट महत्व के बोधक साक्ष्य को नहीं ढूंढ पाये हैं।

गुप्त सिक्कों पर इन ज्यामितीय चिह्नों का मिलना भी अभी तक अनबूझ पहेली बना हुआ है। कुछ विद्वान इन्हें टकसाल अधीक्षक (मिन्ट मास्टर) के चिह्न कहते हैं तो कुछ ने इन्हें सिक्कों की संख्या का बोधक माना है।[१७] स्मिथ महोदय ने इन्हें धार्मिक चिह्न होने की आशा व्यक्त की है।[१८] डा० गुप्त प्रत्येक चिह्न को टकसाल चिह्न मानने का सुझाव देते हैं, जहाँ से ये सिक्के ढलकर निकलते थे।[१९] परन्तु उनका आगे कहना है कि इस पर अभी विशद अध्ययन की आवश्यकता है, तभी कुछ निश्चित तथ्य सामने आ सकता है।

अन्त में गुप्तकला के सम्मान में दो शब्द कहना आवश्यक है। इस कला में गौरवास्पद नवनिर्माण शक्ति थी, जो मुद्राकला में अपनी सिद्धहस्तता के साथ-साथ चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुई। गुप्तों ने मुद्राकला में अनेक नबीन प्रयोग किये, जिसे हम मुद्राओं की विविधता से सहज आंक सकते हैं। उनके नवीनतावादी जीवनदर्शन का ही परिणाम है कि इस युग ने सौन्दर्यबोध के जिस धरातल को छू लिया, वह भावी युगों के लिये एक कीर्तिमान बनकर रह गया। दूसरे जो एक महत्वपूर्ण तथ्य इन सिक्कों से प्रकाश में आया, वह है इन शासकों द्वारा संस्कृत साहित्य के उन्नयन की उत्कट अभिलाषा। सम्राटों की विरुदावली के रूप में इन मुद्राओं पर ऐसे मनोरम छन्दों की सर्जना हुई है कि मानो ये साहित्य के अभिव्यंजक किसी महाकाव्य की प्रथम पंक्तियाँ हों।

इस प्रकार संग्रहालय संकलन को गुप्त शासकों द्वारा चलायी गयी स्वर्ण मुद्राओं के अधिकांश प्रकारों को सुरक्षित रखने का गौरव प्राप्त है। उनमें से कुछ तो अत्यन्त महत्वपूर्ण और मुद्राशास्त्र की दृष्टि से दुर्लभ हैं।

सन्दर्भ सूची

१. प्रशासनिक एवं सुरक्षा की दृष्टि से अगस्त १९६० में तत्कालीन निदेशक द्वारा इन स्वर्ण सिक्कों को लखनऊ, जिला कोषागार में जमा कर दिया गया था। तब से यह बहुमूल्य थाती वहीं पर तालों में बन्द

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

फलक-१

१ २ ३

४ ५ ६

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

फलक-२

१

२

३

४

५

६

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

फलक-३

१

२

३

४

५

६

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mysore.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

फलक-६

१

२

३

४

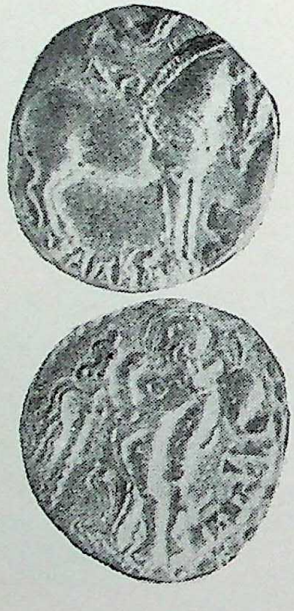

५

६

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

फलक-५

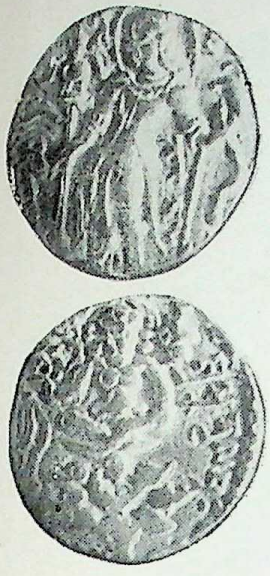

१

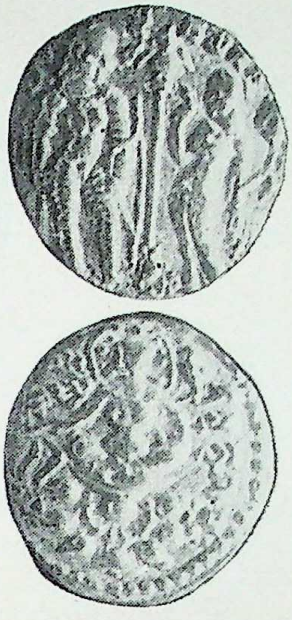

२

३

४

५

६

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mulabagal. Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

फलक-६

१

२

३

४

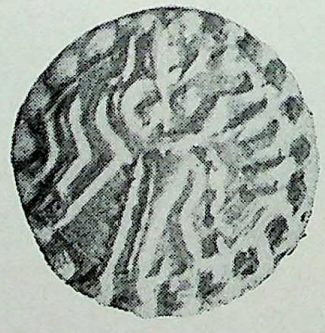

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization

रही। मई १९८० में डा० रमेशचन्द्र शर्मा की नियुक्ति जब यहाँ निदेशक के रूप में हुई तो उन्होंने साहसिक प्रयत्न कर जून १९८० में इन सिक्कों को संग्रहालय वापस लाने का गुरुतर दायित्व सम्पन्न किया।

२. गुप्त; पी० एल० और श्रीवास्तव, सरोजिनी, गुप्त गोल्ड क्वाइन्स इन भारत कला भवन, पृ० ५-६; डा० गुप्त, स्कन्दगुप्त के सिक्कों को राजा-रानी' प्रकार मानकर इन सिक्कों को २० प्रकार में विभाजित करते हैं। परन्तु अलन और अल्टेकर महोदय के विचार से इस सिक्के को 'राजा-लक्ष्मी' प्रकार कहना चाहिए और जिससे इन सिक्कों के २१ प्रकार माने जा सकते हैं।

३. सिंघल, सी० आर०; ज० न्यू० सो० इ० गोल्डेन जुबली अंक, पृ० ३५७।

३(अ). देखिये, संग्रहालय गुप्त स्वर्ण सिक्कों पर उपलब्ध सामग्री, पृ०.....१०५–१०६।

४. अल्टेकर, ए० एस०; कैटलॉग आफ दि गुप्त गोल्ड क्वाइन्स इन दि बयाना होर्ड, १९५४, अध्याय ३।

५. देखिए, संग्रहालय संकलन में सिक्कों की स्थिति, पृ० .....१०३–१०४।

६. मजूमदार, आर० सी० और अल्टेकर, ए० एस०; वाकाटक-गुप्त युग, पृ० १२५; परन्तु इससे यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे किसी हीन अवस्था में थे।

७. (१) जॉन अलन, ए कैटलॉग आफ दि इण्डियन क्वाइन्स इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, गुप्ता डायनेस्टी इण्ट्रोडक्शन पृ० ११४–११८; ये इसका श्रेय समुद्रगुप्त को देते हैं, जो उसने अपने माता-पिता की स्मृति में चलाया था। परन्तु यह मत अब ग्राह्य नहीं है।

(२) मुखर्जी, बी० एन०; आर्ट आफ दि गुप्त एण्ड पोस्ट गुप्त क्वाइनेजेज़, स्टेट म्यूजियम, लखनऊ, १९८५, पृ० ३०—फुटनोट २६।

८. श्रीवास्तव, ए० एल०, ज० न्यू० सो० इ०, पृ० ५७–६१; गुप्त साम्राज्य की स्थापना में लिच्छवि गणराज्य की सशक्त भूमिका मानते हैं।

९. अल्टेकर, अनन्त सदाशिव; गुप्तकालीन मुद्राएं, पृ० १९; इसे कंकण, अंगूठी या सिन्दूरदानी मानते हैं।

१०. वही, पृष्ठ २३; सिंहवाहिनी दुर्गा का चित्रण बताते हैं।

११. वही, पृष्ठ १२; अल्टेकर महोदय ने इसे 'द्वैराज्य' की संज्ञा दी है।

१२. गुप्त, पी० एल०; गुप्त साम्राज्य, पृ० २३८–३९।

१३. बाजपेयी, के० डी०; इण्डियन न्यूमिसमेटिक स्टडीज, पृ० १३६।

१४. गुप्ता, पी० एल०; ज० न्यू० सो० इ०, भाग ५ (१), पृ० ३३–३४।

१५. स्मिथ, वी० ए०; इण्डियन म्यूजियम कैटलॉग, पृ० १९६।

१६. संदर्भ सं० २, पृष्ठ १—फुटनोट २।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

१७. संदर्भ सं० ९, पृष्ठ ३० ।

१८. वही, पृष्ठ ३७ ।

१९. हिन्दू पौराणिक गाथाओं में इन्हें वाद्य और गायन में अद्वितीय स्थान दिया गया है ।

२०. जनरल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी, १९३०, पृ० २४४ । यहाँ पर प्रयुक्त वीणा पालयुग से पूर्व प्रचलित थी जिसके चित्र भरहुत, साँची और वेसनगर की कला में देखे जा सकते हैं ।

२१. ब्राउन, सी० जे०; कैटलॉग आफ दि क्वाइन्स आफ गुप्ताज एण्ड मौखरीज, पृ० ११ ।

२२. इस परम्परा का उल्लेख लगभग प्रथम शती ईसा पू० के राजा धनदेव के अयोध्या अभिलेख में भी प्राप्त होता है, जिसमें पुष्यमित्र शुंग को दो अश्वमेघ यज्ञ का समाहर्ता कहा गया है ।

२३. रैप्सन, जनरल आफ दि रॉयल एसियाटिक सोसाइटी, ग्रेट ब्रिटेन, १९०१, पृ० १०२ के अनुसार समुद्र-गुप्त ने प्रारम्भ में इसे राजाङ्क के रूप में लिया था ।

२४. संदर्भ सं० २, पृ० ११–१३; डा० गुप्त इस नारी आकृति को देवी (विजया) का चित्रण मानते हैं, जो कि अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है । जब कि अल्टेकर महोदय ने इसे अश्वपरिचर्या के लिए तैयार रानी का अंकन माना है ।

२५. सिथोले, वी० एस०; ज० न्यू० सो० इ०, १९४८, भाग १०, पृ० १२४, का विचार है कि इन सिक्कों को 'व्याघ्र या सिंह शिकारी' प्रकार कहना अधिक उपयुक्त है ।

२६. स्मिथ, ज० ए० सो० बं०, १८८४, फलक २, १०; का विचार है कि मकरवाहिनी पानी के देवता वरुण की पत्नी या कामदेव की पत्नी 'रति' हो सकती हैं ।

२७. संदर्भ सं० ७ (२); मुखर्जी महोदय इस राजा के सिक्कों के आठ प्रकार मानते हैं ।

२७(अ). संदर्भ सं० २, पृ० २९ ।

अभी तक केवल एक ही मुद्रा है जो बयाना होर्ड में पायी गयी है और महाराजा भरतपुर के व्यक्तिगत संग्रह में है ।

२८. संदर्भ सं. ९, पृष्ठ १५ ।

२९. संदर्भ सं. २, पृष्ठ २९ ।

३०. (i) वही, पृष्ठ १५ ।

(ii) ज. न्यू. सो. इ. भाग ३७, १९७५, पृष्ठ ९८-९९; प्रो० सी० डी० चटर्जी इसे 'बैकुण्ठ' प्रकार कहना सर्वथा उचित मानते है ।

३१. (१) अल्टेकर, ए. एस.; दि क्वाइनेज आफ दि कि गुप्त इम्पायर, पृष्ठ १३८ ।

इस प्रकार का मात्र एक ही सिक्का है जो अयोध्या के पास बर्दोली नामक स्थान से पाया गया था और अब डी० सी० हैमिल्टन के पास है.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

(२) संदर्भ सं. २७ ।

३२. वही, पृष्ठ २९ ।

३३. ज० न्यू० सो० इ०, १९७९, पृष्ठ ५१-५४ ।

३४. (१) संदर्भ सं. ७, पृष्ठ ३२ ।
(२) पंजी सं. ३१५०: भार ७.८७ ग्रा० ।

३५. संदर्भ सं. ९, पृ० ८९ ।

३६. (१) संदर्भ सं. २, पृ० २९ डा० गुप्त इसे दुर्लभ सिक्का मानते हुए मात्र एक-एक सिक्के की उपस्थिति निम्न संग्रहालयों में बतायी है—ब्रिटिश संग्रहालय, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता, प्रिंस ओफ वेल्स संग्रहालय बम्बई और लखनऊ संग्रहालय । बयाना होर्ड के तीन सिक्कों में एक भारत कला भवन में है ।
(२) संदर्भ सं. २१, पृ० १८ ।

३७. संदर्भ सं. ४, इण्ट्रोडकशन पृष्ठ १०३; बयाना निधि से प्राप्त एक मात्र सिक्का अब तक ज्ञात है । यह आजकल महाराजा भरतपुर के व्यक्तिगत संग्रह में है । (देखिए संदर्भ सं. २, पृ० २६)

३८. वही, पृष्ठ ११० ; केवल दो सिक्के अब तक ज्ञात हैं जो बयाना निधि से मिले हैं । इसमें से एक सिक्का राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में है (देखिये संदर्भ सं. २, पृष्ठ २६) ।

३९. संदर्भ सं. २, पृ० ३० ; इस प्रकार के अब तक केवल चार सिक्के उपलब्ध हैं—बयाना निधि में दो, अमेरिकन न्यूमिसमेटिक सोसाइटी में एक और भारतकला भवन में एक ।

४०. वही; केवल पांच सिक्के प्राप्त होते हैं–इण्डियन न्यूजियम कलकत्ता में एक, भारत कला भवन में दो और बयाना निधि में दो ।

४१. वही ; पांच सिक्कों के होने की सम्भावना डा० गुप्त व्यक्त करते हैं एक भारत कला भवन में है, तीन बयाना निधि से प्राप्त हुए हैं और एक राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, में होना चाहिए।

४२. वही ।

४३. नागर, एम. एम.; ज. न्यू. सो. इ., १९४९ भाग ११ (१), पृ० ७-८ ।

४४. संदर्भ सं० ७ (२), पृ० २१ ।

४४.[अ] संदर्भ सं. २, पृष्ठ ७२ ; डा० गुप्त अधोवस्त्र को साड़ी मानते हैं ।

४५. संदर्भ सं. ३१, पृष्ठ १९८ ।

४६. अग्रवाल, पी० के० ; ज० न्यू० सो० इ०, १९५०, भाग १२ (२), पृ० २०४-६ ।

४७. (१) संदर्भ सं०२, पृष्ठ ७ ।
(२) सिह, जयप्रकाश ; ज. न्यू. सी. इ. १९७७, भाग २९, पृष्ठ १२६, इसे 'राजा और मयूर' प्रकार कहते है ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

४८. संदर्भ सं० २, पृष्ठ ३० ; इस प्रकार का एक सिक्का ब्रिटिश म्यूज़ियम, लन्दन में है और एक पटना संग्रहालय में था जो अब चोरी चला गया है. बयाना निधि में चार सिक्के मिले थे भारत कला भवन के दो सिक्कों में एक बयाना निधि से प्राप्त सिक्का है।

४९. देखिये, पूर्व पृष्ठ ८०, उद्धरण सं० २४।

५०. पी० ए० एस० बी०, १८८३, पृ० १४४।

५१. ज. न्यू. सो. इ., १९५०, भाग १२[१]पृ०, ६८।

५२. वही, पृ० ७२।

५३. ज. रा. ए. सो., १८८९, पृ० १०९।

५४. संदर्भ सं० ७(१), इण्ट्रोडक्शन पृ० ९२।

५५. ज. न्यू. सो. इ., भाग १०, १९५४, पृ० १४४—४६।

५६. स्टडीज़ इन इण्डियन क्वाइन्स, १९६८, पृ०२१७–२२५।

५७. गोयल, श्रीराम; गुप्तकालीन अभिलेख, जयपुर, १९८४, पृ०२११-२२५।

५८. गुप्त, पी. एल.; ज. न्यू. सो. इ., भाग १४, १९५२, पृ० ९९—१०२, बयाना निधि से मिले इस एक मात्र सिक्के को अल्टेकर महोदय स्कन्दगुप्त का मानते हैं, जब कि गुप्त जी इसे 'घटोत्कच' का सिक्का स्वीकार करते है. यह सिक्का आजकल महाराजा भरतपुर के व्यक्तिगत संग्रह में है (देखिये, संदर्भ सं. २, पृ० २६)।

५९. संदर्भ संख्या २, पृ० ७ ; असमोलियन म्यूजियम, आक्सफोर्ड में सुरक्षित अब तक मात्र एक ही सिक्का है।

६०. संदर्भ सं. २, पृ० ६।

६१. संदर्भ सं० ७ (१), इण्ट्रोडक्शन पृ० ९८-१००।

६२. संदर्भ सं० ९, पृ० २४५।

६३. नारी आकृति को लक्ष्मी मानने के लिए निम्न विचार अवलोकनीय है।

(१) यहां पर नारी आकृति दाता के रूप में है, जब कि राजा-रानी प्रकार में दाता राजा स्वयं है।

(२) यहां नारी अपने बांये हाथ में लम्बी नाल वाला कमल लिये हुए है, जबकि रानी के चित्रणों में हाथ में कहीं भी कमल नहीं है। इन सिक्कों पर सनाल कमल केवल लक्ष्मी के साथ ही प्रयुक्त हुआ है।

(३) यहां पर राजा धनुषबाणयुक्त दिखाया गया है, जिसका रानी के साहचर्य में कोई औचित्य नही है। निश्चय ही यह राजा के युद्ध वेश का चित्रण है, जोकि भीतरी लेख में वर्णित युद्ध स्थल का शब्द चित्र उपस्थित करता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

राजा-रानी प्रकार में राजा रानी के साथ राजदण्ड लिये हुए चित्रित किया गया है जो कि ऐसे अवसर पर राजोचित है।

(४) यहां पर वस्तु की ओर राजा का आकर्षण भी स्वीकर्ता भाव में लगता है, जो उसे अनुग्रह रूप में मिल रहा है और नारी की दाता दृष्टि में दृढ़ता है।

(५) कुछ विद्वान इस तथ्य को इस लिए ग्रहण नहीं करते कि नारी आकृति प्रभामण्डला नहीं है जो कि दैवी लक्षण का प्रतीक है। परन्तु यह तर्क न्यायसंगत नहीं है। अनेक सिक्कों पर देवी प्रभामण्डला नहीं है।

६४. संभवतः यह उसके भीतरी लेख में वर्णित 'विचिलित कुललक्ष्मी' के पुनरुद्धार के प्रतीक रूप में देवी द्वारा दिया गया 'विजय श्री' का प्रसाद है।

६५. संदर्भ सं० ३१, पृ० २६२-८६।

६६. (१) संदर्भ सं० २, पृ० २—फुटनोट ३ और पृ० ८२।

(२) गुप्त, पी० एल० ; न्यूमिसमेटिक डायजेस्ट, भाग ५(२), १९८१, पृ० ३६—४३।

६७. वही, पृ० २।

६८. (१) वही।

(२) प्रो० बी० एन० मुखर्जी भी इसी क्रम को मानते हैं (देखिये, संदर्भ सं० ७(२), पृ० ३३—फुटनोट ५७ ए)।

६९. संदर्भ सं० ३१, पृ० २७५-७६।

७०. गुप्त, पी० एल०; वेरीफिकेशन रिपोर्ट आफ दि गोल्ड क्वाइन्स इन दि स्टेट म्यूज़ियम, लखनऊ, अपेन्डिक्स १, क्र० सं० ९१६, पृ० २८।

७१. (१) संदर्भ सं० २, पृ० २—फुटनोट ४।

(२) संदर्भ सं० ७ (२), पृ० ३३—फुटनोट ५७ (ए)।

७२. (१) ज. न्यू. सो. इ., भाग १२, १९५०, पृ० ३५; डा० गुप्त ने नाम पर्याय के आधार पर 'प्रकाशादित्य' को 'भानुगुप्त' मानने का सुझाव दिया है।

(२) वही, १९८०, भाग ४२, पृ० १२०।

७३. वही, पृ० १२२—२६, प्लेट ६,२।

७४. संदर्भ सं. ७०, पृ० ३०, और संदर्भ सं० ७१ (२)।

७५. सिंह, ओ. पी. ; ज. न्यू. सो. इ., १९७१, भाग ३३, पृ० १२२–२५; इस सिक्के को गुप्तों के 'मृगया' प्रकार की उत्कृष्ट मुद्रा मानते हैं।

७६. संदर्भ सं. ९, पृ० १९७।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

७७. संदर्भ सं० २, पृ० २ ।

७८. देखिये, पूर्व पृष्ठ २९१ ।

७९. संदर्भ सं. ३१, पृ० ३१७ ; मध्य कालीन राजवंशों के सिक्कों पर तो इनका प्रभाव देखने को मिलता ही है साथ ही मुहम्मद बिन साम और अलाउद्दीन खिलजी के कुछ सिक्कों पर भी लक्ष्मी पायी जाती है ।

८०. वही ।

८१. वही, पृ० ३२३ ; इसका एक सिक्का भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता और एक ब्रिटिश म्यूज़ियम, लन्दन में है. स्मिथ द्वारा बताये गये तीसरे का कोई पता नहीं है ।

८२. पजी सं० ३९८१७ ।

८३. भट्टसालि, एन० के० ; ज. ए. सो. ब., न्यूमिसमेटिक सप्लीमेंट, १९२३, पृ० ६२ फुटनोट । इन सिक्कों को मगध के उत्तरगुप्तों द्वारा प्रचलित किया गया मानते हैं, परन्तु अल्टेकर महोदय इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते और वह इन्हें पूर्वी बंगाल में शशांक के बाद किन्हीं राजाओं की गुप्त अनुकृति मानते हैं ।

८४. ज० न्यू० सो० इ०, १९८१, भाग २, पृ० ६०—६२ ।

८५. संदर्भ सं. ३१, पृ० ३३३ ; अल्टेकर महोदय शंखध्वज बताते हैं, परन्तु अलन महोदय ने एक सिक्के पर 'अश्वध्वज' होने की बात कही है (ब्रिटिश म्यूज़ियम कैटलाग, गुप्ता डायनेस्टी, १९१४, पृ० १५४) ।

८६. सदर्भ सं० ३१, पृष्ठ ३३७, अल्टेकर महोदय को एक सिक्के पर 'पृ थु वी (र), लिखा मिला है ।

८७. पंजी सं. ६२२३ ।

८८. संदर्भ सं० ३१, पृ० ३३६ ।

८९. संदर्भ सं० २, पृ० १७ ; 'सि' अक्षर समुद्रगुप्त के अश्ववेध और वीणाधारी सिक्के पर पाया जाता है ।

९०. वही, पृ० १८ ; 'कृ' अक्षर समुद्रगुप्त के 'परशुधारी' प्रकार के कुछ सिक्कों पर पाया गया है ।

९१. वही, पृ० २० ; 'कु' अक्षर कुमारगुप्त प्रथम के धनुर्धारी, असिधारी, और व्याघ्रनिहन्ता तथा कुमारगुप्त द्वितीय और तृतीय के सिक्कों पर पाया जाता है ।

९२. संदर्भ सं० ७ (१), इन्ट्रोडक्शन पृष्ठ ७० ।

९३. ज. न्यू. सो. इ., भाग ३, पृष्ठ ८४—८५ ।

९४. वही, भाग ८, पृष्ठ ३९—४०, एडीटर नोट ।

९५. संदर्भ सं० ७(२), पृष्ठ २६ ।

९६. ज. न्यू. सो. इ., भाग ८, पृ० ३८—३९ ।

९७. वही, भाग ११, पृ० १११ ।

९८. ज. रा. ए. सो., १८८९, पृ. ३३ ।

९९. संदर्भ सं० २, पृष्ठ १६ ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

संग्रहालय संकलन में सिक्कों की स्थिति

चन्द्रगुप्त प्रथम	:	राजा-रानी प्रकार	७
काचगुप्त	:	चक्रध्वज प्रकार	८
समुद्रगुप्त	:	दण्डधारी प्रकार	४९
		धनुर्धारी प्रकार	७
		व्याघ्रनिहन्ता प्रकार	१
		परशुधारी प्रकार	७
		वीणावादक प्रकार	७
		अश्वमेघ प्रकार	८
चन्द्रगुप्त द्वितीय	:	दण्डधारी प्रकार	२
		धनुर्धारी प्रकार	७९
		सिंहनिहन्ता प्रकार	१९
		अश्वारोही प्रकार	१६
		छत्र प्रकार	१२
		पर्यंक प्रकार	१
कुमारगुप्त प्रथम	:	धनुर्धारी प्रकार	१२
		व्याघ्रनिहन्ता प्रकार	४
		अश्वमेघ प्रकार	१
		सिंहनिहन्ता प्रकार	११
		अश्वारोही प्रकार	१९
		खड्गनिहन्ता प्रकार	१
		मयूर (कार्तिकेय) प्रकार	४
		असिधारी प्रकार	१
		अप्रतिघ प्रकार	१
स्कन्दगुप्त	:	धनुर्धारी प्रकार	७
		राजा-लक्ष्मी प्रकार	३

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

कुमारगुप्त द्वितीय	:	धनुर्धारी प्रकार	३
बुधगुप्त	:	धनुर्धारी प्रकार	५
नरसिंहगुप्त	:	धनुर्धारी प्रकार	७
प्रकाशादित्य	:	धनुर्धारी प्रकार	१
		अश्वारोही सिंहनिहन्ता प्रकार	४
विष्णुगुप्त	:	धनुर्धारी प्रकार	१
गुप्त मुद्रा के अनुकृति सिक्के	:		६
			योग ३१४

संक्षेप सूची

पी० ए० एस० बी०	—	प्रोसीडिंग्ज ऑफ दि एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल
ज० रा० ए० सो०	—	जनरल ऑफ दि रॉयल एसियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन
ज० ए० एस० बी०	—	जनरल ऑफ दि एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल
ज० न्यू० सो० इ०	—	जनरल ऑफ दि न्यूमिसमेटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया
सं०	—	संख्या
पृ०	—	पृष्ठ
पं० सं०	—	पंजी संख्या

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

संग्रहालय के गुप्त स्वर्ण सिक्कों पर उपलब्ध सामग्री

(१) एनुअल रिपोर्ट ऑन दि वर्किंग ऑफ दि लखनऊ प्राविंसियल म्यूजियम। १८८९—पृ० ४, १८९१–९२—पृ० ४, १८९३–९४—पृ० ४, १८९४–९५—पृ० ४, १८९५-९६—पृ० ३, १९०६—पृ० २, १९०८—पृ० २, १९०९—पृ० ३, १९११—पृ० २, १९१२—पृ० ४, १९१४—पृ० ३, १९१५—पृ० ४, १९१६—पृ० ३, १९२०—पृ० ३, १९२१—पृ० ३, १९२२—पृ० ३, १९२८—पृ० ३, १९४०—पृ० ५, १९४९—पृ० ५, १९५०—पृ० ७।

(२) राजकीय संग्रहालय, लखनऊ का कार्य विवरण, १९५५, पृ० ८, फलक ६।

(३) कनसालीडेटेट रिपोर्ट ऑन दि वर्किंग ऑफ दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, १९६१, पृ० ७।

(४) सिक्कों के पंजीकरण एवं सामान्य पंजीकरण रजिस्टर, राज्य संग्रहालय, लखनऊ।

(५) वेरीफिकेशन रिपोर्ट ऑन गोल्ड क्वाइन्स ऑफ स्टेट म्यूजियम, लखनऊ १९८०।

(६) सी० जे० ब्राउन, कैटलॉग ऑफ दि गोल्ड क्वाइन्स आफ गुप्ताज़ एण्ड मौखरीज इन प्राविंसियल म्यूजियम, लखनऊ, आक्सफोर्ड, १९२०।

(७) ए० के० श्रीवास्तव, क्वाइन होर्डस् ऑफ उत्तर प्रदेश, स्टेट म्यूजियम, लखनऊ।

(८) विंसेन्ट ए० स्मिथ, कैटलॉग ऑफ दि क्वाइन्स इन दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, आक्सफोर्ड, १९०६।

(९) आर० बर्न, न्यूमिसमेटिक क्रॉनिकल, १९१०, भाग १०, पृ० ३९८।

(१०) जरनल ऑफ दि न्यूमिसमेटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी; भाग ९ (२), पृ० १४८, भाग ११ (१) पृ० ७-८, भाग १५ (१), पृ० ८०-८४।

(११) न्यूमिसमेटिक सप्लीमेंट।

डब्लू० ई० एम० कैम्पबेल, नम्बर २२, लेख सं० १२६।

बाबू प्रयाग दयाल, नम्बर ४४, लेख सं० ३०९।

(१२) जॉन अलन, ब्रिटिश म्यूजियम कैटलॉग, गुप्ता डायनेस्टी, १९१४।

(अ) इण्ट्रोडक्शन पृ० १२९।

(ब) कैटलॉग पृ० ५, २६, ३९, ४१, ४४, ४५, ४६, ४८, ७४, ७६, ८२।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

(१३) अनन्त सदाशिव अल्टेकर, दि क्वाइनेज ऑफ दि गुप्त इम्पायर, न्यूमिसमेटिक सोसाइटी आफ इण्डिया, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, १९५७, पृ० २६, ४०, ५३, ५७, ६२, ७०, ७३, ७८, ९१, १०५, १२०, १२१, १२३, १२७, १९७, २००।

(१४) परमेश्वरी लाल गुप्त और सरोजिनी श्रीवास्तव, गुप्त गोल्ड क्वाइन्स इन भारत कला भवन, भारत कला भवन, १९८१, पृ० २—फुटनोट ४, २८, २९, ३०।

(१५) बी० एन० मुखर्जी, आर्ट इन गुप्त एण्ड पोस्टगुप्त क्वाइनेजेज़, १९८५, स्टेट म्यूजियम, लखनऊ, पृष्ठ १४— फुटनोट १७, पृ० ३२ – फुटनोट ५१, पृ० ३३—फुटनोट ५७(ए)।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

INERNATIONAL SEMINAR ON THE ART OF KUṢĀṆA AGE—BRIEF REPORT

R. C. Sharma

The Department of Cultural Affairs of U. P. sponsored an International Seminar on the Art of the Kuṣāṇa Age at the State Museum, Lucknow, from December 16 to 22, 1984. This was for the first time that a Seminar of this magnitude on such a fascinating subject of the global interest was organised. The one week long Seminar met a grand success and the papers presented were of high academic merit.

It was the result of one year planning and hard work, the atmosphere of conference was emotionally changed when the Governor of U.P., Sri C. P. N. Singh, while inaugurating the seminar on December 16, 1984, remembered the Late Prime Minister Smt. Indira Gandhi as a great force and patron of Indian culture. He read out the following inspiring note sent by the Late Prime Minister before her death.

"The Kushana Age was a time of many new beginnings and should certainly be better known. It is a good idea to have a seminar on its Art"..... Indira Gandhi.

The Seminar on the Art of the Kuṣāṇa Age was divided into 15 sessions. The key note address was delivered by Dr. B. N. Mukherjee, Carmichael Professor, University of Calcutta, who was also the Chairperson of Academic sub-Committee of the seminar. He highlighted the importance of holding the Seminar besides the chief characteristics of the Kuṣāṇa rule and the patronage of the mighty Kuṣāṇa rulers in the development of Indian culture and particularly in encouraging the two great styles of art in earlyIndia, viz. Mathurā and Gāndhāra.

The opening function was presided over by the eminent writer and art critic Sri Karl Khandalawala from Bombay. The programme as followed in the Seminar is to

Dr. R. C. Sharma, Director, State Museum, Lucknow.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

be seen in enclosure no. 1. This incorporates the sessionwise proceedings including the name of the speaker and his subject.

The significance, scope and the scheme of the seminar projected in 15 sessions was given in a printed folder which also includes the above cited message of the seminar (Please see enclosure no. 2).

The concluding session held on December 22, 1984, was devoted to discuss the proposals submitted by the participants for the furtherance of higher studies and research in the Kuṣāṇa period material culture. It was also resolved that the State Museum, Lucknow, should be developed as an important centre for the pursuit of such researches.

In all 36 scholars participated and 32 of them presented their papers. The list of scholars is enclosed (Please see enclosure no. 3). This includes seven foreign participants who came from U. K., U. S. A., West Germany, France, Afghanistan and Pakistan.

The papers presented in the seminar were cyclostyled and distributed among the participants, observers and some local scholars.

It it proposed to publish these papers in a good volume which will be a welcome addition in the studies of Kuṣāṇa period art and allied problems. The scholars have been requested to send their amended papers in the light of the discussions held during the seminar.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Sri C. P. N. Singh, Governor of U. P. inaugurating International Seminar on the Art of the Kuṣāṇa Age

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

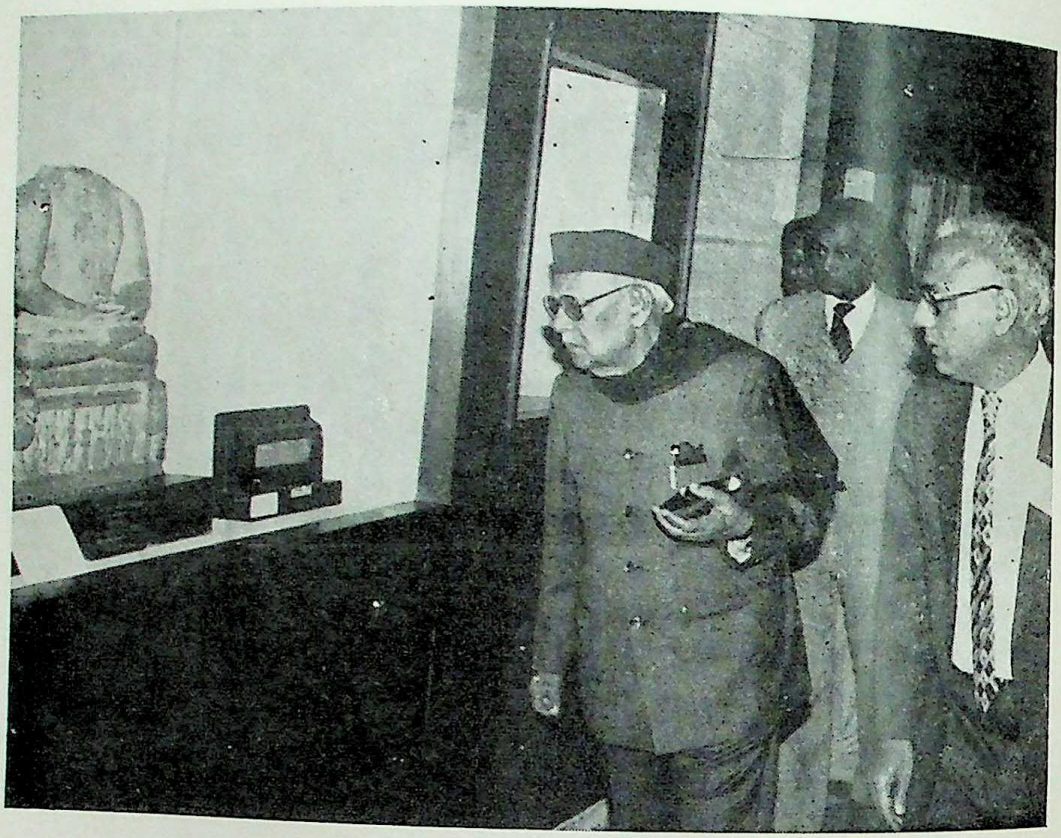

Governor Sri C. P. N. Singh going round the Kuṣāṇa exhibition

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Prof. G. V. Mitterwallner of Munich presenting her paper

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ANNEXURE—1

International Seminar on the ART OF THE KUṢĀṆA AGE Sponsored by the Department of Cultural Affairs, Government of U. P., December 16-22, 1984, State Museum, Lucknow

PROGRAMME

16.12.84	10.30	Session No. 1 : Inaugurationin Arrival in the Auditorium
	10.31	Garlanding
	10.31-10.35	Welcome address by Sri R. C. Tripathi, Secretary Education and Culture
	10.35-10.45	Keynote address by Prof. B. N. Mukherjee, Chairperson, Academic Committee of Seminar
	10.45-10.55	Address by the President Sri K. Khandalawala
	10.55-11.05	Release of Research Bulletin No. 33-34 and Kuṣāṇa Art Picture Folio and address by H. E. Governor, Sri C. P. N. Singh, Chief Guest
	11.05-11.08	Vote of thanks by Sri D. P. Sinha, Director and Joint Secretary, Cultural Affairs, U. P.
	11.08-11.12	Visit to the Ist floor
	11.12-11.25	Opening of Kuṣāṇa Exhibition by the Chief Guest
	11.25	Tea
	12.00-1.00	Session No. 2 : Architecture I (Religious) Chairperson—Prof. H. Hartel

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Papers :

1. Stupa Architecture in the Indian Provinces in the Kuṣāṇa Empire by Mr. K. Dev

3.00-5.30 Session No. 3 : Architecture II (Secular)
Chairperson—Sri K. Khandalawala

Papers :

1. Kuṣāṇa Architecture in South Bactria by Prof. G. Fussman
2. Architecture in Central Asian Provinces by Dr. S. P. Gupta
3. Temple Architecture in the Indian Provinces by Dr. N. R. Banerjee

17.12.84 10.00-1.00 Session No. 4 : Field Archaeology and Art
Chairperson—Dr. A. D. H. Bivar

Papers :

1. Secular Architecture of the Kuṣāṇa period by Prof. A. Ray
2. Bearing of Sonkh excavations on the Art of the Kuṣāṇa Age by Prof. H. Hartel
3. Town Planning in Eastern India by Prof. K. K. Sinha

2.30-5.30 Session No. 5 : Schools of Sculpture
Chairperson—Sri K. Dev

Papers :

1. Mathurā School of Sculptures in the Kuṣāṇa period by Dr. R. C. Sharma
2. Problems of Chronology in the Art of Kuṣāṇas by Prof. G. V. Mitterwallner

5.30 Visit to the Governor's House

18.12.84 10.00-1.30 Session No. 6 : Schools of Sculpture and Painting
Chairperson—Prof. A. H. Dani

Papers

1. Bactrian School of Sculpture by Dr. L. Nehru

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ANNEXURE

2. Royal Portraits in Sculptures in the Kuṣāṇa Age by Dr. B. Srivastava

2.30-5.30 Session No. 7 : Iconography (Brahmanical)
Chairperson—Dr. N. R. Banerjee

Papers :

1. Kuṣāṇa Wall Paintings by Dr. J. Chakravarti
2. Vaiṣṇava Icons in the Kuṣāṇa Age by Sri R. C. Agrawala
3. Śaiva Icons by Dr. A. K. Srivastava
4. Icons of Minor Brahmanical Deities by Dr. A. B. L. Awasthi

19.12.84 10.00-1.30 Session No. 8 : Iconography II (Iranian, Graeco-Roman, etc.)
Chairperson—Prof. B. N. Puri

Papers :

1. Iconic Representations of Iranian and Graeco-Roman Deities by Dr. A. D. H. Bivar
2. Representations of Yakṣa and Yakṣiṇis in Kuṣāṇa Art by Dr. N. N. Misra
3. Kuṣāṇa Matṛikā Sculptures in the light of literary references by Dr. N. P. Joshi

3.00-5.30 Session No. 9 : Sculptures
Chairperson—Prof. K. K. Sinha

Papers :

1. Gāndhāra School of Sculpture by Prof. A. H. Dani

20.12.84 10.00-1.30 Session No. 10 : Iconography II (Buddhist and Jain)
Chairperson—Prof. G. Fussman

Papers :

1. Aniconic and Iconic Representation of Śakyamuni and Maitreya in the early Art by Prof. K. D. Bajpai
2. Icons of Sun by Dr. S. N. Chaturvedi
3. A problem in Mahāyāna Iconology. The Pure Land

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Cults in Kuṣāṇa India by Prof. J. C. Huntington
4. Jaina Iconography in Kuṣāṇa Age by Dr. M. N. Tewari

3.00-5.30 Session No. 11 : Numismatic Art and Minor Arts
Chairperson—Prof. K. D. Bajpai

Papers :

1. Kuṣāṇa Nnmismatic Art—by Prof. B. N. Mukherjee
2. Kuṣāṇa Seals--A Survey by Dr. K. K. Thaplyal
3. Kuṣāṇa Terracottas—A Critical analysis by Dr. M. L. Nigam

21.12.84 10.00-1.30 Session No. 12 : Minor Arts and Technologic aspects of Art

Chairperson—Prof. G. V. Mitterwallner

Papers :

1. Garments, Utensils and Furniture in the Kuṣāṇa age by Dr. Sarojini Chaturvedi
2. Kuṣāṇa Art Chronology and Epigraphieal Evidence by Dr. T. P. Verma
3. Some Technological Aspeccts of Art by Sri O. P. Agrawal
4. Kuṣāṇa Art and the Śātavāhana and Kṣatrapa Coins and Inscriptions by Dr. S. Gokhale

3.00-5.30 Session No. 13 : Interaction
Chairperson—Dr. N. P. Joshi

Papers :

1. Ornaments of the Kuṣāṇa Age Display of Kuṣāṇa period gold ornaments by Dr. S. Mukhopadhyaya
2. Artists and Clientale by Dr. R. Chakravarti

Visit to the Archaeological Collection at Kaiserbagh

22.12.84 10.00-11.30 Session No. 14 : Legacies
Chairperson—Sri R. C. Agrawal

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ANNEXURE

Papers :

1. Legacy of Kuṣāṇa Art in Afghanistan by Dr. M. A. Joyanda
2. Presentation of Kuṣāṇa Art concepts in the Art of the Mughal India by Prof. Rai Anand Krishna

12.00-2.00 Session No. 15 : Concluding Session (Including Address on Kuṣāṇa Art and Culture)
Chairperson—Prof. B. N. Mukherjee

Papers :

1. Remarks on Kuṣāṇa Art and Culture by Sri R. C. Tripathi, Secretary, Education and Culture, Govt. of U. P.
2. Aspects of Kuṣāṇa Art (Including observations on the deliberations of the Seminar) by Sri K. Khandalawala
3. Validictory Address by Prof. B. N. Puri
4. Consideration of proposals for furthering the study of Kuṣāṇa Art

i) Prof. G. V. Mitterwallner to shape the State Museum, Lucknow, as important Research Centre

ii) Prof. J. C. Huntington to convene an international conference on the origin of the Buddha image

iii) Dr. M. A. Joyanda to decide the theme of seminar to be held at Kabul in December 1986 and to request the scholars to contribute papers to his centre's Research Bulletin

5. Observations about the Seminar :
   Prof. H. Hartel
   Prof. A. D. H. Bivar
   Prof. G. Fussman
   Prof. G. V. Mitterwallner
   Dr. M. A. Joyanda
   Prof. K. D. Bajpai
   Sri R. C. Agrawala
6. Remarks and vote of thanks by Dr. R. C. Sharma, Coordinator

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

7. Falicitation of Prof. B. N. Mukherjee, Chairperson, Academic Committee of Seminar by Sri R. C. Tripathi, Secretary, Education and Culture, Govt. of U. P. and Chairperson, Organisation Committee of Seminar

8. Concluding Remarks by Prof. B. N. Mukherjee, Chairperson of the Session. Reception of the Delegates by the Rāmāyaṇa Saṅsthāna at the Lakshman Park Site Seeing

Programme conducted by Dr. R. C. Sharma, Director, State Museum, Lucknow, Coordinator of the Seminar.

ANNEXURE–2

AIMS AND SCHEME

The Importance of the Seminar

The importance of the Kuṣāṇa Age in the cultural history of the Orient, particularly of India, can hardly be over estimated. It is considered as one of the formative periods of the Indian civilisation. The contribution of the Kuṣāṇa age to the development of Indian art is well-known. But all the relevant phases and aspects of the art of the period, which developed in the vast Kuṣāṇa empire, stretching from Central Asia to the interior of India, and in about the closing decades of the Ist century B. C. and in the first three centuries of the Christian Era, have not yet been studied in depth. This is a desideratum for understanding Indian culture and its contribution to the world culture.

Uttar Pradesh is the biggest repository of the material culture of the Kuṣāṇa period. Hence the Department of Cultural Affairs, Government of U. P., welcomed the proposal of the Director, State Museum, Lucknow, to convene an International Seminar to discuss various aspects of the Art of the Kuṣāṇa Age in the light of new researches and fresh evidence.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ANNEXURE

Scope of the Seminar

For initiating a comprehensive study of the Kuṣāṇa art in its various regional and interregional aspects, this Seminar has been sponsored. It will provide scholars of India and abroad opportunities for exchanging their views on the relevant subject. The seminar will aim at finding out :—

(a) The chief features and chronology of the development of different types of art and architecture in the Indian subcontinent and Central Asia during the Kuṣāṇa age.

(b) The interactions between different types of art and also between art of one region and the other ; and

(c) The legacy of the Kuṣāṇa art.

For the sake of convenience the area to be covered by the seminar is the known maximum extent of the Kuṣāṇa empire. The available data suggest that the empire included the territory now in Afghanistan, with the exception of areas of Seistan (ancient Śakastan), and perhaps also Herat (ancient Areia). Thus ancient Bactria (to the north of the Hindu-Kush), the country of the Paropanisadai (to the south-east of the Hindu-Kush) and Arachosia (in the Kandahār area) formed parts of the empire. In the north western direction the empire might have extended, at least for some time, upto a locality to the immediate east of Mu-lu or Merv (in Turkmenistan, USSR). The section of the empire to the north and east of the Oxus stretched upto the borders of K'sh or Kashgarh, Sh'sh ('st'n) or Tashkent and Sogdiana or the Samarkand-Bukhārā zone. The Ts'ung-ling or the Pāmir area and perhaps also a region upto P'u-li (or Tashkurghan) were within the empire.

The major parts of the north-western region of the Indo-Pak subcontinent including the territories of ancient Kāśmīra, Gandhāra (in parts of N. W. Frontier Province and the Punjab of Pakistan), Sindhu, Sauvīra (in the province of Sind) etc., were very much within the empire. The region called Twgrn, which included the Jhalanwan and Las Bela districts of Baluchistan, might have for sometime acknowledged the authority of the Imperial Kuṣāṇas.

The major portions of the Indian Punjab, Haryana and Uttar Pradesh upto the Bareilly district (ancient North Pañchāla) and Mathurā were ruled by the majority of Kuṣāṇa monarchs. The Kuṣāṇa empire also extended, at least for a certain period, to the south-east and north-east of Mathurā. But we are not certain of the extent and duration of the Kuṣāṇa rule in these directions.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The Sānchī area of Madhya Pradesh (ancient Ākara) perhaps became a part of empire by the end of the year 22 of the Kaniṣka Era. Here the exact period of the direct rule of the Kuṣāṇas is not known.

If the members of the family of Mahākṣatrapa Caṣṭana are considered to have served the Imperial Kuṣāṇas upto the year 72 or A.D. 149-50, by which date Caṣṭana's grandson Rudradāman I became an independent ruler, then the territories controlled by Caṣṭana's house uptill that time might have acknowledged the hegemony of the Imperial Kuṣāṇas. Such territories were in Cutch Kathiawad, Eastern and Southern Gujrat, Western Deccan, Eastern and South-Eastern Rajasthan, North-Western M. P., an area on the upper Narmadā in M. P. and Western and Eastern Mālwā in M. P.

It appears that the empire of the Kuṣāṇas was, in its maximum extent, a very large one, stretching from Central Asia to the remote interior as well as Western Seaboard of Indian subcontinent.

The nucleus of the independent Kuṣāṇa kingdom was founded in the closing decades of the Ist century B.C. on the other hand, the Kuṣāṇa empire collapsed by c. A.D. 262. Hence the period to be covered by the seminar ranges from c. 30 B.C. to c.A.D. 262.

There is wide range of difference of opinion on various aspects of the Kuṣāṇa chronology and some of these will be discussed in the present seminar.

ANNEXURE–3

LIST OF PARTICIPANTS

Sri O. P. Agrawal,
Head,
National Research Laboratory for
Conservation of Cultural Property,
C-257, Nirala Nagar, Lucknow.

Sri R. C. Agarwal,
Sector 8, No. 192, Malviya Nagar,
Housing Board Colony,
Jaipur-302 015 (Rajasthan).

Prof. A. B. L. Awasthi,
76, Khurshed Bagh,
Lucknow.

Prof. K. D. Bajpai,
H-15, Padmakar Nagar,
Sagar (M. P.)

Dr. N. R. Banerjee,
Prof. of Museology and Archaeology,
Bharat Kala Bhavan,
Varanasi-5.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ANNEXURE

Dr. A. D. H. Bivar,
127, Mayfield Avenue,
London N-129, RY
(England).

Dr. J. Chakravarty,
Deptt. of Art,
Kala Bhavan, Vishva Bharti University,
Santiniketan,
West Bengal-731 235.

Dr. R. Chakrawarty,
18/32, Dover Lane,
Calcutta-700 029.

Dr. Sarojini Chaturvedi,
Butler Palace,
Lucknow.

Dr. S. N. Chaturvedi,
11, Heerapuri,
Gorakhpur.

Prof. A. H. Dani,
Dani House No. 17,
Street No. 10, Shalimar 8/3,
Islamabad (Pakistan).

Sri Krishna Dev,
A.A.I.S.
Chief Court House,
Ramnagar,
Varanasi.

Prof. G. Fussman,
Clos Des Venneanuk,
1, Rue Des Bourvrevis,
67100, Strasburg
(France).

Dr. Shobhana Gokhale,
Deccan College,
Post-graduate and Research Institute,
Pune-411 006.

Dr. S. P. Gupta,
Keeper,
National Museum, Janpath,
New Delhi.

Prof. H. Hartel,
Director,
Museum of Indian Art,
Takustrasee,
540-D, 100 Berlin
(West Germany).

Prof. J. C. Huntington,
Deptt. of History of Art,
Ohio State University,
100 Hayes, Hall, 108, North
Oval Mall Columbus,
Ohio-43210 (U. S. A.)

Dr. N. P. Joshi,
C-K 1/13, Bhosala Mandir,
Patni Tola,
Varanasi.

Dr. M. A. Joyanda,
President,
International Centre Kushana Studies,
Institute of Archaeology,
D.R.A. Academy of Science,
Kabul (Afghanistan).

Sri K. Khandalawala,
Silverena 63, Worli,
Sea Face,
Bombay-14.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Prof. Anand Krishna,
Sita Niwas,
Banaras Hindu University,
Varanasi-5.

Prof. R. N. Mishra,
Prof. and Head, A. I. History, Culture and Archaeology, University of Gwalior,
Gwalior (M. P.)

Prof. G. V. Mitterwallner,
Hanfstaenglester,
19, 9 Munich-19
(West Germany).

Prof. B. N. Mukherjee,
Carmichael Professor,
University of Calcutta,
56, Jatin Das Road,
Calcutta-700 029.

Dr. S. Mukherjee,
172/5, S. M. Ray Road,
Calcutta.

Dr. L. Nehru,
C/O Sri J. K. Bose,
2, Roy Mansions, Elgin Road,
Calcutta-700 020.

Dr. M. L. Nigam,
Director,
Salarjung Museum,
Hyderabad (A. P.)

Prof. B. N. Puri,
B-58, Sector A,
Mahanagar,
Lucknow.

Prof. A. Ray.
Deptt. of Archaeology,
University of Culture,
Archaeological Building,
51/2, Hazara Road,
Calcutta-700 019.

Dr. R. C. Sharma,
Director,
State Museum,
Lucknow-226 001.

Prof. K. K. Sinha,
Prof. of Archaeology,
Banaras Hindu University,
Varanasi-5.

Dr. A. K. Srivastava,
Director,
Government Museum,
Mathura.

Dr. Balram Srivastava,
Old F/3, Jodhpur Colony,
Banaras Hindu University,
Varanasi-5.

Dr. M. N. Pd. Tewari,
D-51/164-B, Suraj Kund,
Varanasi-1.

Dr. K. K. Thaplyal,
Professor
Deptt. of A. I. History,
& Archaeology,
University of Lucknow,
Lucknow.

Dr. T. P. Varma,
Vijaya Garh House,
Assi,
Varanasi-5.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization.

TREASURE TROVE HOARDS OF COINS

R. D. Yadav

REPORT No. 9 OF 1967–68

This is a hoard of 47 Silver and 33 Copper coins found as Treasure Trove in Village Gohani, P. S. & Tehsil Patti, District Pratapgarh. The coins have come of the following series :

Sl. No.	Dynasty	King	Mint/Type	Date
1	British Emperor	King William IIII	East India Company Rupee	1835 A.D.
2	,,	Queen Victoria	,,	1840 A.D.
3–21	,,	,, ,,	Crown Rupees	1862,1878-80, 1882,1884–88 A.D.
22–28	,,	,, ,,	,, Half Rupee	1862,1874, 1886-87 A.D.
29–31	,,	,, ,,	East India Company Quarter Rupees	1840 A.D.
32–46	,,	,, ,,	Crown Quarter Rupees	1862,1875-77, 1885-89 A. D.
47	,,	,, ,,	East India Company Two-Anna	1841 A. D.

Sri R. D. Yadav, Numismatic Asstt., State Museum, Lucknow.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

48–65	,,	,,	,,	East India Company Quarter Anna	
66–80	,,	,,	,,	Crown Quarter Anna	1862, 1874, 1877-78, 1882-84 A. D.

REPORT No. 10 OF 1967–68

This is a hoard of 104 silver coins found as Treasure Trove in Village Tindwara, P.S. Banda Kotwali, District Banda. The coins have come of the following series:

Sl. No.	Dynasty	King	Mint/Type	Date
1	British Emperor	King William IIII	East India Company Rupee	1835 A. D.
2–26	,,	Queen Victoria	,,	1840 A.D.
27–98	,,	,, ,,	Crown Rupees	1862, 1874–80, 1882, 1884–90 A. D.
99.	,,	,, ,,	East India Company Half Rupee	1840 A. D.
100–04	,,	,, ,,	Crown Half Rupees	1862, 1875, 1885, 1887

ADDITIONAL HOARDS:

1 1014 Silver Punch-marked coins from Paila (Kheri) Museum Accn. No. 33532-34545

2 137 Silver Punch-marked coins from Shamiawala (Bijnor) Mus. Accn. Nos. 34651-34787

3 179 Silver Punch-marked coins from Gokulban (Sultanpur) Nos. 34788–34966

4 1347 Silver Punch-marked coins from Lotapur (Unnao) Nos. 34967–36313

5 105 Silver Punch-marked coins (Provenance unknown) Nos. 34546–34650

Details of their acquisition is given in the following paras;

The undermentioned five hoards of silver Punch-marked coins found as Treasure Trove in various districts in U. P., were received in the State Museum, Lucknow for

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization.

deposit long time ago. They were acquired by the U. P. Government for the State Museum, Lucknow for its coin cabinet in the year 1968. All the above hoards of silver Punch-marked coins are of great Numismatic value and historical importance.

1. Paila hoard from Kheri District of 1014 silver Punch-marked coins :

The Paila hoard of 1014 silver Punch-marked coins was obtained sometime in 1914-15 when the work of Provincial Coin Committee (now U. P. Coin Committee) was not done in the State Museum, Lucknow, and when the Secretaries of the U. P. Coin Committee were I. C. S. Officers. Treasure Trove Rules during those days, it appears, were not very stringent nor observed very fastidiously. As gathered from the old records the European I, C. S. Officers interested in the study of Indian numismatics disposed of Treasure Trove hoards and prepared reports thereon for submission to Government direct. The Paila hoard of coins is a find belonging to that age and from the accounts published in the Journal of Numismatic Society of India Volame II, 1940, pp. 15-78 by Mr. E.H.C. Walsh, the following information has been collected :

(i) That these coins were found as Treasure Trove hoard in the year 1915 in Kheri District of U. P. ;

(ii) that subsequently the hoard was taken by Mr. W. E. M. Campbell, I. C. S. to London ;

(iii) that it remained with this officer until he died in 1923 when it was deposited in the British Museum, London ;

(iv) that it was sent back to India by the authorities of the British Museum and were received by Mr. E. H. C. Walsh, I. C. S. in 1924 ;

(v) that the hoard originally comprised of 1245 coins but Mr. Walsh received back and examined only 1014. Where the remaining 231 coins had gone during this period is unknown ;

(vi) that Mr. Walsh published an article on these coins and later sent the entire hoard to the State Museum, Lucknow, for deposit ;

(vii) that since then these coins were bundled up and deposited in the State Museum, Lucknow.

2. Shamiawala (district Bijnor) hoard of 137 silver Punch-marked coins :

The Shamiawala hoard of 137 silver Punch-marked coins along with fragmentary bits of scrap silver found in Bijnor district in the year 1920. Like the Paila hoard this hoard of coins had also travelled as far as London with Mr. Campbell and on his death,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

was deposited in the British Museum, London. The coins were studied by Mr. Durga Prasad of Banaras and Mr. Walsh and his reports appear in the Journal of Numismatic Society of India Vol. I for 1939, pp. 1-4 and Vol. II for 1940 pp. 79. Subsequently it was sent back to India and received by Mr. Walsh who in his turn sent to the State Museum, Lucknow for safe deposit.

3. Gokulban, Tehsil Amethi, District Sultanpur, hoard of 179 silver Punch-marked coins:

The Gokulban hoard of 179 silver Punch-marked coins found from Tehsil Amethi, District Sultanpur in the year 1920-21.

4. Lotapur, (District Unnao), hoard of 1347 silver Punch-marked coins:

The Lotapur hoard of 1347 silver Puuch-marked coins found as Treasure Trove in Unnao district in the year 1928. A Preliminary study of these coins was done by the Late Babu Durga Pd. of Benaras in 1938, but before he could publish his accounts this late-lamented schlar expired.

5. Hoard of 105 silver Punch-marked coins:

A hoard of 105 silver Punch-marked coins vide Treasure Trove find No. 21 of 1216. Nothing is known about the Provenance etc. of these coins except that they were received in the Museum from Govt. on 11. 7. 1928. The coins were studied by Mr. Walsh and his report appears in the Journal of Numismatic Society of India, Vol. III, 1941, pp. 1–20. Like the Paila hoard this hoard of coins had also travelled as far as London with Mr. Campbell, remained in the British Museum, for some time and was receievd back by Mr. Walsh in 1924.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE

MUSEUM PUBLICATIONS FOR SALE

	Books	Authors	Price Per Copy Rs. P.
1.	Catalogue of Brahmanical Sculptures in the State Museum, Lucknow, Part I	Dr. N. P. Joshi	26.00
2.	Catalogue of Gandhāra Sculptures in the State Museum, Lucknow	Dr. N. P. Joshi & Sri R. C. Sharma	17.35
3.	Catalogue of Indo-Greek Goins in the State Museum, Lucknow	Dr. A. K. Srivastava	9.75
4.	Catalogue of Śaka Pahlava Coins of Northern India in the State Museum, Lucknow	Dr. A. K. Srivastava	16.00
5.	Supplementary Catalogue of Mughal Coins in the State Museum, Lucknow	Sri C. R. Singhal	20.00
6.	Coins Hoards of Uttar Pradesh in the State Museum, Lucknow, Vol. I	Dr. A. K. Srivastava	27.00 (Bound) 22.00 (Paper back)
7.	Art in the Gupta and Post-Gupta Coinages of Northern India	Dr. B. N. Mukherjee	70.00
8.	Sculptures in Jhansi Museum	Dr. S. D. Trivedi	80.00
9.	बुन्देलखण्ड का पुरातत्व	डा० एस० डी० त्रिवेदी	80.00
10.	Some Unknown Temples of lower Himaliyan Region	Sri R. C. Singh	16.50

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Research Journals

Bulletin of Museums & Archaeology in U. P. Nos. 3 to 18	3.00 (Per No.)
Nos. 19-20 June-Dec. 1977 (Joint issue)	10.00
Nos. 21-24 June 1978—Dec. 1979 (Joint issue)	20.00
Nos. 21-24 Krishna in Art (Delux Library Edition)	60.00
No. 25 Index Issue June 1980	6.00
No. 26 Decorative Art Dec. 1980	6.00
Nos. 27-28 June-Dec. 1981 (Joint issue)	10.00
Nos. 29-30 ,, ,, 1982 (,, ,,)	10.00
No. 31 June 1983	6.00
No. 32 Dec. 1983	6.00
Nos. 33-34 June-Dec. 1984 (,, ,,)	10.00
Nos. 35-36 ,, ,, 1985 (,, ,,)	10.00

Note : Prices are liable to change : Postage extra. Attractive terms for Booksellers. Contact the Director, State Museum, Lucknow-226 001. Phone No. 35542.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE

निवेदन

१ यह पत्रिका उत्तर प्रदेश के संग्रहालयों एवं पुरातत्व से सम्बन्धित सभी विषयों पर लिखे गये शोध-पत्रों का स्वागत करती है।

२ लेख हिन्दी या अंग्रेजी में लिखे जा सकते हैं।

३ लेख भेजने के पूर्व लेखक निम्नलिखित बातों पर विशेष रूप से ध्यान देने की कृपा करें—

अ संक्षेप चिन्हों का पूर्ण स्पष्टीकरण पहली बार प्रयोगित सन्दर्भ में हो।

ब चित्र और रेखाचित्र के शीर्षक हल्की पेन्सिल से उनके पीछे अंकित हों, उनके शीर्षकों की एक प्रति अलग से लेख के साथ भी नत्थी रहे। इसी प्रकार चित्रों का ऊपरी हिस्सा (टाप साइड) भी चित्र के पीछे अंकित हो। ब्लाक्स के लिए छाया चित्र उत्तम कोटि के हों।

स चित्र, रेखाचित्र या अन्य सहायता के लिए आभार-प्रदर्शन सन्दर्भों के प्रारम्भ के पहले अंकित किया जाना चाहिये।

द संदर्भ सम्पूर्ण लेख के अन्त में संख्याक्रम से दिये जायगे।

४ लेख, चित्र एवं रेखाचित्र आदि के चयन के विषय में कार्यकारी सम्पादक का निर्णय अंतिम होगा।

५ लेखों में प्रदर्शित मतों के लिए सम्पादक मण्डल उत्तरदायी नहीं है।

६ अस्वीकृत लेख तभी वापस भेजे जायगे जब उनके साथ लेखक द्वारा उचित मात्रा में डाक टिकट भेजे गये हों।

७ लेख प्रकाशित होने पर लेखक को पत्रिका के अंक की एक प्रति तथा उसके लेख की २५ प्रतियां भेंट की जायेंगी।

८ लेख कागज के एक ही ओर दोहरे स्पेस में सुस्पष्ट टंकित हो।

९ पत्रिका में प्रकाशित लेख, चित्र या छाया चित्र पूर्ण रूप से पुनः मुद्रित करने के लिए पूर्वानुमति लेना आवश्यक है।

१० पत्रिका सम्बन्धी सभी प्रकार के पत्र व्यवहार कार्यकारी सम्पादक, संग्रहालय-पुरातत्व पत्रिका, राज्य संग्रहालय, लखनऊ—२२६००१, के पते पर किया जाय। फोन—३५५४२

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mel

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage ...

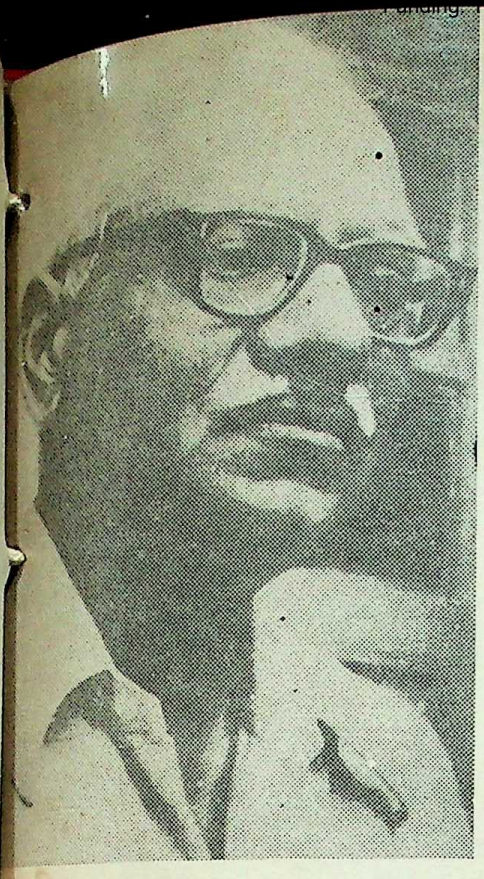

प्रो० के०डी० बाजपेयी स्मृति-अंक

Prof. K. D. Bajpai Commemorative Volume

संग्रहालय-पुरातत्व पत्रिका

BULLETIN OF MUSEUMS & ARCHAEOLOGY IN U.P

अंक : ४५-४६
जून-दिसम्बर १९९०

No. 45-46
June-December 1990

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research ...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and...

CC-0. Bhaggyad Pa...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS MoE

संग्रहालय - पुरातत्व पत्रिका

BULLETIN OF MUSEUMS & ARCHÆOLOGY IN U P

अंक ४५-४६
NO. 45-46

जून-दिसम्बर, १९९०
JUNE-DEC. 1990

संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका

Bulletin of Museums & Archaeology

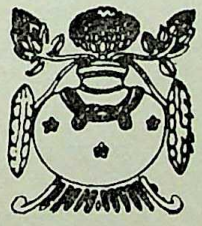

राज्य संग्रहालय, लखनऊ

CC-0. Bhagavad Ramanuja Mutt

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सम्पादक मण्डल

प्रधान सम्पादक	निदेशक, सांस्कृतिक कार्य विभाग, उ० प्र०, लखनऊ
कार्यकारी सम्पादक	निदेशक, राज्य संग्रहालय, लखनऊ
सह सम्पादक	निदेशक राज्य पुरातत्व संगठन, उ० प्र०, लखनऊ
सह सम्पादक	निदेशक, राजकीय संग्रहालय, मथुरा
सह सम्पादक	निदेशक, राजकीय संग्रहालय, अल्मोड़ा
सह सम्पादक	निदेशक, राजकीय संग्रहालय, झांसी
प्रकाशक	सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
कार्यालय	राज्य संग्रहालय, लखनऊ–२२६००१ फोन—२३५५४२

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Hertag

सम्पादकीय

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका का अंक ४५-४६ (संयुक्तांक) मान्य विद्वानों के सम्मुख है। यद्यपि इसके प्रकाशन की निश्चित तिथि कुछ अपरिहार्य कारणों से टल चुकी है और पत्रिका अद्यावधि होने में कुछ पिछड़ गयी है, किन्तु अब हम इसके लिये सतत् प्रयासरत हैं कि इस ख्याति प्राप्त पत्रिका को अद्यावधि किया जा सके।

पत्रिका का ध्येय अप्रकाशित शोध सामग्री को प्रकाश में लाना तथा संग्रहालय एवं पुरातत्व के क्षेत्र में चल रहे शोध कार्यों के परीक्षण के लिये विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करना है। जहां तक ध्येय के पहले अंश का सम्बन्ध है, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इसके पूर्व प्रकाशित उपर्युक्त पत्रिका के अन्य अंकों द्वारा विविध प्रकार की शोध-सामग्री प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है।

वर्तमान शोध पत्रिका में मुद्रण हेतु शोध लेख प्रस्तुत करने के लिये हम उन सभी विद्वानों के आभारी हैं, जिन्होंने अपना शोध पत्र प्रेषित कर पत्रिका के लिये सामग्री उपलब्ध करायी। इस अंक में भारतीय इतिहास, पुरातत्व, प्रतिमा विज्ञान एवं कलाकृतियों का सत्यापन आदि विभिन्न विषयों पर महत्वपूर्ण लेख मुद्रित कराये गये हैं तथापि शोध के उच्चतम स्तर तक पहुंचने में कुछ अधिक समय लगना स्वाभाविक है। इस अंक में कुल २२ शोध पत्र प्रकाशित कराये गये हैं।

सदैव यह प्रयास किया जाता है कि मुद्रण में त्रुटियां न हों फिर भी मुद्रण सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है जिसके लिये मुझे खेद है।

प्रस्तुत अंक भारतीय इतिहास, पुरातत्व एवं संग्रहालय परिवार के उद्भट विद्वान् स्वर्गीय प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी जी को सादर समर्पित है। प्रो० बाजपेयी

CC-0. Bhagavad Ramanuja N

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

का मार्गदर्शन सदैव संग्रहालय को समय-समय पर मिलता रहा है किन्तु यह संग्रहालय परिवार का दुर्भाग्य है कि १०, जून, १९९२ को इस महान् विभूति को ईश्वर ने हमारे मध्य से उठा लिया। ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि मृतक आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

पत्रिका के कलेवर में सदैव यथा सम्भव सुधार करना ही हमारा ध्येय रहता है। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि पत्रिका का यह वर्तमान अंक भी विद्वानों द्वारा समादृत होगा। यदि किंचित मात्र भी यह पत्रिका शोधार्थियों के लिये सहायक सिद्ध होती है तो हमारा प्रयास सार्थक होगा।

पत्रिका के प्रकाशन में श्री श्यामानन्द उपाध्याय ने प्रकाशन अनुभाग की बहुविध सहायता की है। उनका सहयोग एवं परामर्श सराहनीय है।

आपके नेक सुझावों का स्वागत है।

जितेन्द्र कुमार
कार्यकारी सम्पादक

२८ अक्टूबर, १९९२

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage

CONTENTS

सम्पादकीय		iii
K. D., My Old Friend Now—No More	Dr. B. N. Puri	vii
In Memorium—Prof. K. D. Bajpai		ix
New Horizon of the Gaṅgā Valley Copper Hoard Archaeology	Dr. Maheshwar P. Joshi	1
भीतरगाँव से प्राप्त एक महत्वपूर्ण मृण्मय फलक	श्री आर० सी० अग्रवाल	7
कन्नौज की दो विश्वरूप प्रतिमाएँ	डॉ० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी	9
लंकावतार सूत्र—एक सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ० अंगने लाल	13
The Minor Goddess Kumbhāṇḍī and The Devī Kūṣmāṇḍī	Dr. P. K. Agrawala	19
भारतीय संस्कृति	डॉ० देवराज	23
Origin and Antiquity of Intoxicating Drinks in India	Dr. Shyam Manohar Mishra	27
Concept of Jambūdvīpa Jātakas	Dr. U. N. Upadhyaya	33
Temple of Gaurī-Somanātha at Mandhata, Distt. Khandwā, M.P.	Dr. B. L. Nagarch	39
Development of the Brick Temples in Uttar Pradesh	Dr. Amar Singh	47
Excellent Feminine Beauty in the Terracottas	Dr. G. S. Bhadouria	55
लखनऊ संग्रहालय का नव प्राप्त अप्रकाशित मातृका पट्ट	श्री श्यामानन्द उपाध्याय	61
राम ग्राम की पहचान	डॉ० ओम प्रकाश लाल श्रीवास्तव एवं सुमन सिंह	65

CC-0. Bhagavad Ramanuja

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

कल्याणचन्द्र का अठागुली ताम्र पत्र—नवीन खोज	डॉ० विद्याधर एस० नेगी	
The Lysias—Antialkidas Coin	Dr. Prashant Srivastava	71
मत्स्य पुराण में सप्तांग सिद्धान्त और राज्य व्यवस्था	डॉ० एस० के० जायसवाल	81
तुन्ह्वांग में बौद्ध धर्म और संस्कृति	डॉ० श्रीमती यमुना लाल	87
प्रोषितभर्तृका	डॉ० ममता मिश्रा	95
नवीन शैव प्रतिमाएँ	श्री जितेन्द्र कुमार	101
जकसड़ से मिली दशावतार प्रतिमा का विश्लेषण	श्री चन्द्रभान उपाध्याय	107
Physical Verification of the Artifacts in Art and Archaeological Museum	Dr. Bansilal Malla	111
'दीघ निकाय'—एक सांस्कृतिक परिचय	श्रीमती मनोजनी देवी	115
		119

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage

Dr. B.N. Puri
M.A., M. Litt. (Oxon), Phil. (Oxon);
Emeritus Professor

B-58, Sector A
Mahanagar
Lucknow
Pin : 226006

K. D., my old friend—now no more

Krishna Datta Bajpai, affectionately called K.D. by me and some of his close friends, was very close to me. Our friendship could be traced to early forties, when he was Custodian at the Archaeological Section of the Lucknow Museum. A first class M.A. from the Banaras Hindu University with sound grounding in Ancient Indian History and Culture, Krishna Datta made full use of his talents for the few years he spent here before switching over to Mathura Museum as its Curator. It was in November, 1944 that we became very close to each other at Taxila, where we had joined the Archaeological Training Camp of the late Sir Mortimer Wheeler. Incidentally, we were tent-mates and experienced intense cold of December and January, of course with a warm feeling for each other. On return, we no doubt drifted into different directions, I joined the Lucknow University and he continued to be at his old post till promotion. His subsequent promotion to the University of Sagar as Head of the Department in the newly opened Department of Ancient Indian History brought me still closer to him. I had occasion to enjoy his hospitality several times either during my visit to him for lectures and Ph.D. viva as also on other occasions when we travelled together to attend the Indian History Congress sessions.

K.D was widely travelled in India from Kathmandu in Nepal to Kanyakumari in the south and from Gauhati in the east to Gujrat in the west. There was hardly any University which did not encroach upon his time and generosity for selections, or viva and also meetings of courses etc. He was so dependable and eqully reliable. This was equally

CC-0. Bhagavad Ramanuja Nidhi

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

true of his association with the the Archaeological Department of the Government of India as also of the States, and different Museums.

Prof. Bajpai did not spare any branch of Indology from the domain of his research--Epigraphy, Numismatics, Art and Architecture and even Museum-technique, Pre-history and Iconography. He was Sectional President and President of different Societies, an evidence of his popularity and also versatility.

He had not, however, restricted himself to the production of doctorates. He was very prolific and sympathetic to research conducted under his guidance and supervision, or as an examiner. This points to his depth and equally breadth in outlook.

Having attained Parinirvana on June 10, 1992, at Sagar, his place of residence, I can only offer my personal tribute to him, and wish peace to the departed soul.

B.N. Puri

29.10.1992

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Prof. K. D. Bajpai
(1917—1992)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage

In Memorium

Prof. K. D. Bajpai

Born—Raipur, Distt. Raebareli (U.P.) 10th December, 1917,

Education at Raebareli, Kanpur and B.H.U., Varanasi.

Died—10th June 1992, at Sagar, (M.P.)

Past Career

(i) Custodian—State Museum, Lucknow, 15.1.44 to 15.4.46.

(ii) Curator—Archaeological Museum, Mathura, 16.4.46 to 7.5.51.

(iii) Archaeological Officer, U.P., Lucknow, 8.5.51 to 31.3.53.

(iv) Curator (Director)—Archaeological Museum, Mathura, 1.4.53 to 17.9.58.

(v) Head of the Department of Ancient Indian History, Culture & Archaeology, University of Sagar from 18.9.58 till his retirement in 1977.

(vi) Tagore Professor & Head of the Department with effect from September 1, 1963.

(vii) Dean, Faculty of Arts (1966-68).

(viii) Senior Professor, February, 1973 to December, 1977.

(ix) Visiting Professor, University of Sagar, 14.12.77 to 13.12.78.

Knowledge of Languages

English, Hindi, Sanskrit, Pāli and Prākrit.

Research Guidance

Under his supervision Fifty Six (56) students of the Universities of Sagar, Bhopal, Rewa, Agra and Kanpur have obtained Ph.D. degree. Three candidates under his guidance have got D. Lit. degree.

CC-0. Bhagavad Ramanuja

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Fields of Specialization

(1) Ancient Indian History from 6th cent. B.C. to c. 600 A.D.
(2) Numismatics (from the earliest times to the Gupta Period).
(3) Ancient Indian Art and Architecture.
(4) Proto-historic Archaeology.
(5) Historical Geography of India.
(6) Epigraphy (Ancient period).

Particulars of Honours Achieved

1. President of the *South-East Asia* and *History* sections of the All India Oriental Conference (twice 1958 & 1971).
2. President, Numismatic Society of India (1967).
3. President, All India History Congress (Ancient India, 1971).
4. Ex-Member of Central Board of Archaeology and its Standing Committee, Government of India.
5. Member of Advisory Board of Archaeology, Madhya Pradesh.
6. Ex. Member, Hindi Terminology Commission, Government of India.
7. Member of Academic Bodies of several Universities and Institutes of the Country.
8. President, Epigraphical Society of India (1979).
9. Chairman, Numismatic Society of India (1973-77).
10. President, Indian Archaeological Society (1979-80).
11. President; Indian History & Culture Society (1980).
12. Chairman, Epigraphical Society of India (Since 1980).
13. Member, Council of Indian Historical Research (Since 1978).

Publications/Books/Articles

1. Thirty-six (36) books on History, Culture & Archaeology.
2. Over 800 research papers.

Awards, etc.

1. Obtained Dayaram Sahni Gold Medal for standing first class first in the subject at the M.A. examination of B.H.U., 1942.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

2. Obtained prizes from Government of U.P., Bihar and several learned bodies in the country on outstanding publications.

3. Obtained Nelson Wright Medal from the Numismatic Society of India for his special contribution in Numismatics.

4. Obtained R.P. Chanda Medal from the Asiatic Society for his outstanding work on Archaeology in Madhya Pradesh.

5. Selected by Government of India as Visiting Professor for the Buddhist University, Cambodia.

6. Had been honoured by the Numismatic Society of India as its Hon. Fellow.

7. Was offered Visiting Professorship in Archaeology by Central Government at the University of Kabul, Afghanistan.

8. The Punjab University, Chandigarh had recently offered him Visiting Professorship in Ancient Indian History.

9. Ex-Editor, Research Bulletin of Ancient Indian History & Archaeology, University of Sagar.

10. Ex-Editor, Journal of M.P. Historical Society.

11. Chief Editor of Prāchya Pratibhā, Bhopal.

12. Editor-cum-Supervisor, Hindi Translation Scheme, Government of India (1965-71).

13. Excavations at *four* major sites of Madhya Pradesh, *viz.*, Eran, Tripuri, Tumain and Malhar and explorations in major parts of Madhya Pradesh had been conducted under his direction and supervision.

14. Delivered UGC and other special lectures in about twenty Universities in India and also in Nepal.

15. Set up Hari Singh Gour Archaeological Museum attached to the Department. The Museum has been recognised by the Central and State Governments.

16. Organised All-India Seminars on Buddhism and Jainism during the Centenary Celebrations. Other Symposia were also arranged from time to time.

17. Served as Editor of the series of publication 'CULTURAL HISTORY OF INDIA'.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

18. Advisor of the project 'ENCYCLOPAEDIA OF INDIA : HISTORY AND CULTURE'.

19. Was honoured by the Nava Nālandā Mahāvihāra for his contribution to Buddhist Studies.

20. Member, Indian Council of Historical Research.

21. Member, Advisory Board, National Museum, New Delhi.

Compiler
S. N. Upadhayaya

State Museum, Lucknow

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

NEW HORIZON OF THE GAṄGĀ VALLEY COPPER HOARD ARCHAEOLOGY

Maheshwar P. Joshi

INTRODUCTION

Copper artefacts belonging to various chalcolithic cultures in India may be divided into three categories, namely :

1. Pre-Harappan cultures.
2. Harappan culture.
3. Non-Harappan cultures.

Among these three, the first two are interconnected and their origin is ascribed to the foreign elements from the west (Agrawal 1971 : ch. 4). In the third category we have all those non-Harappan cultures which are either somewhat contemporary or else later contemporary with the Harappan cultures, notably, Ganeshwar, Ahar, Malwa, Jorwe and the Copper Hoards of the Gaṅgā Valley. It is not yet clear whether the non-Harappan chalcolithic cultures owe their origin to the Harappans or else any other source. However, technologically the Copper Hoards of the Gaṅgā Valley enjoy a unique position, and there is a strong probability of their independent origin (cf. Lal 1951 : 24-25, 37; Agrawal 1971 : 205; Yule 1985 : 5). It is generally believed that the Chota Nagpur region in the east and the Rajasthan area in the west were the sources of the Copper Hoards (Lal 1951 : 25; Agrawal : 1971 : 202 f; Yule 1985 : 99). Till recently it was believed that the Gaṅgā Valley Copper Hoard culture was "concentrated in the Gaṅgā–Yamuna doab, eastern Chota Nagpur region, in southern Haryana-northern Rajasthan and at scattered sites in Madhya Pradesh" (Yule : 1985 : 95). However,

Dr. M. P. Joshi, Head of Deptt. of History Kumaon University Campus, Almora.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

recent discoveries of nine copper Anthropomorphs in Kumaon (U. P. Himalayas) adds new horizon to the Copper Hoard archaeology of the Gangā Valley.

ANTHROPOMORPHS FROM KUMAON

Haldwani-Almora figure (pl. I, fig. 1) : In 1986 a local journalist reported (*Amar Ujala*, May 8, 1986, Bareilly) presence of a copper Anthropomorph at Haldwani (district Nainital, U. P. Himalayas). Its owner Sri Sivaraj Saran Agrawal informed me that he purchased this artefact from one of the native villagers near Almora in 1940s when the former was running a metal workshop at almora town (district Almora, U. P. Himalayas). The Haldwani-Almora Anthropomorph measures 37.5 cm high and 34 cm wide at the extreme ends, and weighs approximately 5 kg. Its 'arms' are coiled and the length of the elongated 'feet' is almost equal to that of the body. Its 'head' portion is provided with a canopy like projection having "prominent ridge" on both sides "outlining the 'head' ". Though massive yet it has a slender look. There is plasticity in its execution. It displays high quality metalwork. While tracing the evolution of the copper Anthropomorphs, elsewhere, I have classified these figures into four basic types morphologically- (Joshi : forthcoming=a). The Haldwani-Almora type falls under type IV. It is similar to three anthropomorphic figures from Sheorajpur (figs. 2, 3, 4) and one each from Bisauli (fig 5) and Chandausi (fig. 6). All of these figures are cast in mould and then beaten out into the required shape.

Bankot figures (pl. II, fig. 7) : Tho Bankot figures were discovered by the author in March 1989 (Joshi : forthcoming *IAR*). These anthropomorphs were picked up by the local labourers from a rocky mountain slope at Bankot (district Pithoragarh, U. P. Himalayas). So far eight of them are known although villagers believe that there were a few more figures which the labourers seem to have disposed off as copper scrap. Of the eight figure two are in fragments.

The Bankot figures weigh between 2.5 kg and 3.5 kg including the fragmentary ones. However, the average weight of a fully intact figure is 3.25 kg. These figures have an elliptical 'head' like upper portion with straight out-stretched semi-cylindrical 'arm' like projections. The 'head' portion appears to have been provided with a cutting edge. The lower part of the figures has a slightly concave base with two cone like 'feet' projected in very low profile. These figures measure approximately 22 cm in height/ length, 29 cm in width/breadth, and 2 cm in thickness at the extreme ends.

The Bankot Anthropomorphs are cast in a tray like single open mould, as is evident from the flat surface on one face. Apparently the molten metal was poured into the open tray like mould and left to atmospheric cooling, hence wrinkled casting skin. No

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

beating has been done after casting as a result of which the entire body, including the core, is porous. In all probability. these artifacts were left unfinished. Morphologically the Bankot figures are similar to the Kiratpur (district Bulandshahar, U. P. fig. 8) which appears to be a smaller and lighter version of the Bankot figures. However, the 'arms' and the 'feet' of the Kiratpur figure are longer than those of the Bankot figures. According to the author's classification the Bankot and the Kiratpur figures fall in type I of the copper Anthropomorphs.

METALLURGY

Preliminary metal analysis of the Bankot Anthropomorphs carried out by Ms Manju Pant, Chemist, G. B. Pant Government Museum Almora, suggests 98% contents of copper, 1.22% of iron, and traces of arsenic[1]. This high percentage of copper suggests that no attempt at alloying were made. Presence of arsenic and iron seems to originate from the natural copper ore itself as impurities. However, words of precaution must be added while studying pre-protohistorical metallurgy of Indian artefacts specially when there are "cases in which different test figures from different scholars exist for the same piece" (Yule 1985 : 99). Since Bankot is situated in close proximity of the local copper mines, there is hardly any doubt that these figures were made from the local mines (Joshi : forthcoming–b).

IDENTIFICATION OF THE ANTHROPOMORPHS

The anthropomorphic figures have been variously identified as religious (Smith 1905 : 238) or cultic (Yule 1985 : 105) objects, anthropomorphic representation of ancestors (Gupta 1963 : 150), or deities like Sani (Dikshit 1968; Shukla 1980; R. C. Agrawal 1984) and *Śrī-vatsa* P. K. Agrawal 1967-68), weapons such as *vajra* (Despande 1969 : 81), Vedic–*vajra* (Das Gupta 1975) or missile with boomerang like property (Agrawal 1971 : 200) and multipurpose tool (Pant 1989 : 351). Alchins (1968 : 204; 1983 : 256) take these figures for a type of axe (*paraśu*) and add :

> "They bear some resemblance to 'anthropomorphic' sacrificial axes of iron and steel used by Santals and other tribal people of Chota Nagpur, but their actual function was more probably as some kind of ritual figures" (Alchins 1983 : 256).

I have elsewhere suggested (Joshi 1990 : 15) that the Anthroporph is a ritual axe and represents the earliest example of a personified axe. I have also discussed at length as to how a common celt transformed into an anthropomorphic figure in a separate study (Joshi : forthcoming–a). In ancient Indian literature celt/axe is termed as

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

paraśu. Therefore, I propose to identify this figure as *paraśu*-purusha (axe personified). I further venture to add here the mythology of brahmin Paraśu Rāma (Rāma—the wielder of *paraśu*) who in the pursuit of vanquishing the kshatriyas was humbled by kshatriya Dhanurdhara Rāma (Rāma—the archer) (Pargiter 1922 : 199-200). In connection to this it is significant to note that the implements found in the Copper Hoards of the Gaṅgā Valley do not include any noticeable number of arrow-heads. Does it suggest that the weapon of war of the authors of the Gaṅgā Valley Copper Hoards was predominantly axe ? If so, was Paraśu Rāma a generic term ? Did the axe wielders encounter the how wielding kshatriyas (the late Harappans ? or the P.G.W. folks ?) who extended their domain in the Gaṅgā Valley ? If so, in the mythology of Paraśu Rām-Dhanurdhara Rāma encounter can we read an historical event suggesting confrontation and ultimately reconciliation of two warring groups representing two types of technology ? Significantly Paraśu Rāma figures as the progenitor of certain communities in Deccan as well as Assam region—both being marginal areas from the view-point of Vedic culture.

CONCLUDING OBSERVATION

The anthropomorphic figures are the exclusive diagnostic artefacts of the Gaṅgā Valley Copper Hoards. So far some twelve examples of the Anthropomorphs have been reported from all over India (Yule 1985 : 52). With the exception of Manbhum (Bihar), Lothal (Gujrat) and Ambala (Haryana) figures, the remaining nine examples seem to belong to Gaṅgā-Yamuna *doab* in U. P. These twelve examples do not include the Kumaoni figures.

Presence of copper mines in Uttaranchal has been noted by several scholars (Niyogi 1917 : 62-63; Habib 1982 : 32; Agrawal 1971 : 146; Chakrabarti 1987 : etc.), but the source of copper of the Gaṅgā Valley Copper Hoards is believed to have been either Bihar or else Rajasthan (Lal 1951 : 25; Agrawal 1971 : 175, 202), Yule 1985 : 99). It needs to be revised in the light of recent discoveries of Haldwani-Almora and Bankot figures. It is worthwhile to add that the largest number of the anthropomorphs ever found in a hoard comes from Bankot (Kumaon). It follows that Kumaon also contributed to the techno—cultural make up of the Gaṅgā Valley Copper Hoard culture. Significantly, traditional copper working in Uttaranchal is still practised by the local Tamta community who might represent the lineal descendants of the authors of the Gaṅgā Valley Copper Hoards (Joshi 1987 711; 1990 : 14). I reserve this issue for a separate study (Joshi : forthcoming-b).

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Pl. I. Haldwani—Almora
Anthropomorph

Pl. II Bankot, Anthropomorphs

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

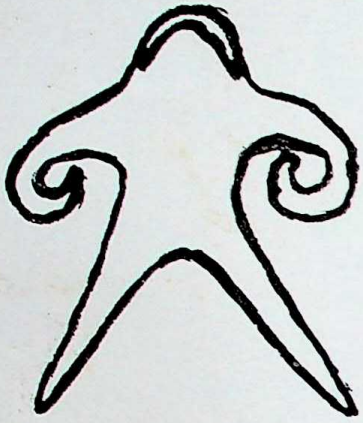

(1) Haldwani—Almora

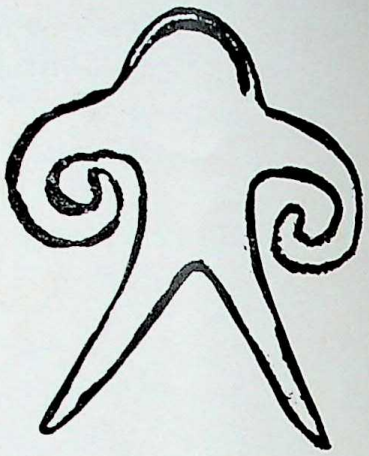

(2) Sheorajpur

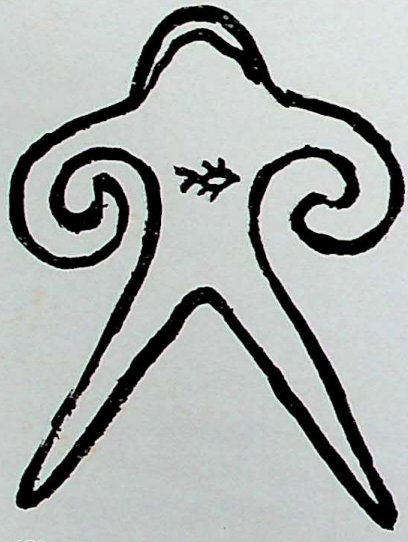

(3) Sheorajpur

(4) Sheorajpur

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and ...

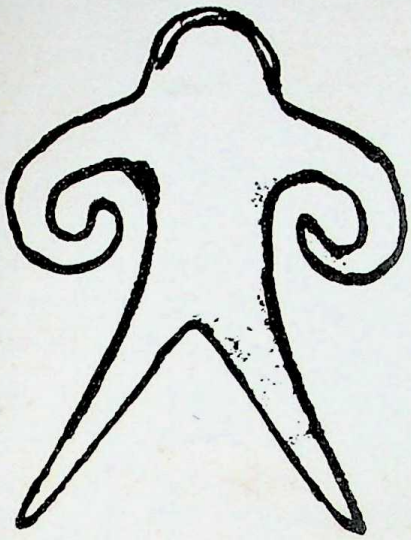

(5) Bisauli

(6) Chandausi

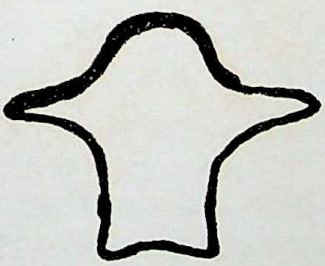

(7) Bankot

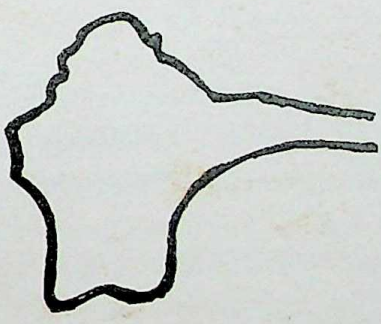

(8) Kiratpur

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

REFERENCES

Agrawal, D. P. 1971. *The Copper Bronze Age in India*, New Delhi.

Agrawal, P. K. 1968. "A prehistoric bronze anthropomorph in the Patna Museum and its inentification", *Purattva* 1, 1967-68 : 96-98.

Agrawal, R. C. 1984. "A unique copper anthromorph from heorajpur, Kanpur", *Bulletin of Museums and Archaeology in U. P.*, 33-34 : 9-10.

Alchin, Bridget and Raymond, 1968. *The Birth of Indian Civilization : India and Pakistan before 500 B.C.*, Harmondsworth.

——1983. *The Rise of Civilization in India and Pakistan*, New Delhi.

Amar Ujala. 8 May, 1986. Hindi Daily, Bareilly.

Chakrabarti, Dilip, K. 1987. "The Pre-industrial Mines of India", *Puratattva*, 16 1985-86) : 65-71.

Das Gupta, T. K. 1975. "Der Vajra, einevedische waffe". *Alt-und Neu-Indische Studien.* Seminar für Kultur und Geschichte Indiens an der Universitat Hamburg, 16 : 75-81.

Despande, M. M. 1969. Comments on Krishna Deva's paper, in Sinha, B, P. (ed.). *Potteries in Ancient India*, Patna.

Dikshit, K. N. 1968. "The Copper–Hoard in the light of recent discoveries", *Bulletin of Ancient Indian History and Archaeology*, II : 43-50.

Gupta, S. P. 1963. "Indian Copper Hoards : The problems of homogeneity, stages of development, origin, authorship and dating", *Journal of the Bihar Research Society*, XLIX (i-iv) - 147-66.

Habib, Irfan. 1982. *An Atlas of the Mughal Empire : Political and Economic Maps with Detailed Notes*, New Delhi.

Joshi, Maheshwar P. 1987. "Perspectives in social history of Kumaon" in B. M. Pande and B. D. Chattopadhyaya (eds). *Archaeology and History*, II : 709-26. Delhi.

——1990. *Uttaranchal (Kumaon–Garhwal) Himalaya : An Essay in Historical Anthropology*, Almora.

——Forthcoming—IAR. Report on the discovery of eight copper anthropomorphs. *Indian Archaeology*, 1988-89—*A Review*.

——Forthcoming—a. "The Authropomorphic figures in the Copper Hoard Culture of the Gaṅgā Valley".

——Forthcoming—b. "Copper–Hoards of the Gaṅgā Valley and Copper working in Kumaon Himalayas".

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Lal, B. B. 1951. "Further Copper Hoards from the Gangetic Basin and a Review of the Problem" in *Ancient India*, 7 : 20-39.

Neogi, Panchanan. 1917. *Copper in Ancient India*. Reprinted 1979, Patna.

Pargiter, F. E. 1922. *Ancient Indian Historical Tradition*, reprinted 1972, Delhi.

Shukla, S. P. 1980. Copper Anthropomorphs : Some observations", paper presented to the Silver Jubilee Year Seminar, A. I. History & Archaeology, Allahabad University.

Smith, V. A. 1905. "The Copper Age and Prehistoric bronze implements of India", *Indian Antiquary*, XXXVI : 53-57.

Yule, P. 1985. *Metal Work of the Bronze Age in India*, München.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

भीतरगाँव से प्राप्त एक महत्वपूर्ण मृण्यमय फलक

आर० सी० अग्रवाल

भारतीय शिल्प में कृष्ण-बलराम का अंकन शुंगकाल से ही उपलब्ध होता है। शुंगकालीन माथुरी कला की एक महत्वपूर्ण प्रतिमा राज्य संग्रहालय, लखनऊ की शोभा बढ़ा रही है। इस क्षेत्र में बलदेव द्वारा सूत लोमहर्षण अभिव्यक्ति भी उल्लेखनीय है।[1] कतिपय विद्वानों ने इस आशय का प्राचीनतम अंकन सोरपुर (मध्य प्रदेश) के लक्ष्मण मंदिर के द्वार स्तम्भ पर किया जाना माना है।[2] यहाँ आसन पर सूत विराजमान हैं और हल द्वारा अलीढ़मुद्रा स्थित बलराम उन पर प्रहार कर रहे हैं। श्री कृष्ण देव जी ने सीरपुर फलक को ईसा की छठी शती का स्वीकार किया है।[3] भागवत पुराण में तो "कुश", न कि हल, द्वारा प्रहार किए जाने का उल्लेख है। खजुराहो के शिल्पी ने भी इस संदर्भ में एक आकर्षक अंकन चन्देल कला में किया है।[4]

राजस्थान के प्राचीन कलाकार भी इस कथानक को प्रतिहार युगीन कला के माध्यम से प्रस्तुत करने में सफल रहे। जोधपुर जिले में "ओसियां" के प्रख्यात हरिहर मंदिर नं० २ में यह दृश्य अंकित है। धौलपुर (मध्य प्रदेश की सीमा पर चम्बल तट पर) से एक विशाल समकालीन (८वीं शती ईसवी) प्रस्तर शिला मिली थी जो भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रतिमा-कक्ष में प्रदर्शित है। यह भी इसी कथानक की पुष्टि करती है।[5] अभी हाल ही में हमें जयपुर दौसा क्षेत्र में "आबानेरी" के प्रख्यात ८वीं शती के हर्षत माता मन्दिर के अध्ययन का अवसर मिला था। यहाँ सभा मण्डप की छत के अन्दर गोलाकार स्थान पर ८वीं शती की कला की एक उत्कीर्ण शिला जड़ी है जिसमें हलधर बलराम अपने शस्त्र द्वारा "सूत लोमहर्षण" से संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। यहां सूत द्वारा अपना बांया हाथ फैलाकर हल को रोकने का प्रयास किया है। यहाँ बलराम को बड़ी सशंक आलीढ़मुद्रा में प्रस्तुत किया गया है। आबानेरी को विवेच्य शिक्षा-फलक अभी तक अज्ञात एवं अप्रकाशित रहा है।

कुछ वर्ष पूर्व कानपुर जिले के विश्व विख्यात गुप्तकालीन इष्टिका मन्दिर (Brick temple) भीतर गांव के एक मृण्यमय फलक (३१ × ३२ सेन्टीमीटर) को सर्वप्रथम भाई आर० सी० सिंह, तत्कालीन निदेशक उत्तर प्रदेश पुरातत्व संगठन ने अपने शोध लेख में[6] प्रकाशित किया था जहां श्री सिंह द्वारा "कृष्ण के परशु

श्री आर. सी. अग्रवाल, भूतपूर्व निदेशक, पुरातत्व व संग्रहालय विभाग ८/१६२ मालवीय नगर, जयपुर-३०२०१७.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

द्वारा कंस की हत्या" पहचान की गई थी। इसी फलक को कालान्तर में विभाग के निदेशक श्री एम० जहीर, आई० ए० एस०[८] ने पृथक ग्रन्थ में प्रकाशित कर यह टिप्पणी की थी यहाँ सम्भवत: "कंसवध" या "मुष्टिक-चाणूर वध" सन्दर्भ अंकित है तथा कृष्ण तलवार द्वारा प्रहार कर रहे हैं। विवेच्य फलक में दोनों ही विद्वान् "हल" की ठीक पहचान न कर पाए जो सूत की गर्दन के पीछे चिपका सा है। वहाँ बलराम द्वारा सूत-लोमहर्षण का मर्दन किया जाना स्वीकार करना श्रेयस्कर होगा। इस दृष्टि से भीतर गाँव का उस मृण्यमय फलक भारतीय शिल्प में अपने वर्ग का प्राचीनतम प्रदर्शन (५ वीं शती ईसवी) करता है। कला की दृष्टि से तो यह आकर्षक नहीं है परन्तु बलराम कथानक की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह तो बलराम द्वारा सूत लोमहर्षण पर प्रहार करना बताता है।

संदर्भ

१. भागवत पुराण में इस कथानक का विवरण उपलब्ध है।

२. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की वार्षिक रिपोर्ट, १९०९-१० पृष्ट ११ तथा आगे, चित्र II

३. ललित कला, भारत सरकार, बम्बई, वर्ष ७, १९६९, पृष्ट ८४

४. रामाश्रय अवस्थी, खजुराहो की देव प्रतिमाएं, आगरा, प्लेट ५३

५. देवेन्द्र हाण्डा, ओसियां : हिस्ट्री, आर्कियोलॉजी, आर्ट एण्ड आर्कीटैक्चर, दिल्ली, १९८४, पृष्ठ १२१ पाद टिप्पणी ९५

६. कृष्णदेव जी, ललित कला, ७, पृष्ठ ८४, प्लेट ३१ चित्र संख्या १ : आर० सी० अग्रवाल, छवि-१, भारत कला भवन काशी, चित्र संख्या ३३९

७. पुरातत्व संग्रहालय विभाग उत्तर प्रदेश शासन पत्रिका, राज्य संग्रहालय, लखनऊ वर्ष २, १९६८, पृष्ठ ३५ चित्र संख्या १७

८. एम० जहीर, द टैम्पुल ऑफ भीतर गांव, दिल्ली, १९८१, पृष्ठ ८५, प्लेट ६१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

बलराम द्वारा सूतलोमहर्षण का मर्दन

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

कन्नौज की दो विश्वरूप प्रतिमाएँ

नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी

भारतवर्ष के कई नगरों की भाँति ईसवी सन् की सातवीं से बारहवी शताब्दी के बीच हर्ष, यशोवर्मन, आयुध, प्रतिहार, गहड़वाल तथा चन्देल शासकों के समय कन्नौज भी एक प्रमुख राजधानी एवं कला, विद्या, व्यापार तथा संस्कृति के एक केन्द्र के रूप में उभरता रहा, तथा भाग्य चक्र के उतार चढ़ाव भी देखता रहा। प्रतिहार काल (स० ७८०–९६० ई० स०) में कन्नौज का मूर्तिकला के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा है। इस काल की कुछ कलाकृतियाँ अमर और अप्रतिम हैं। इनमें से कतिपय तो समय समय पर विद्वानों द्वारा परखी जा चुकी हैं, पर कई अभी तक विस्मृति के गर्भ में ओझल हैं। इसी वर्ग में कन्नौज के कुतलूपुर—आज का मकरन्द नगर-क्षेत्र में स्थित 'राम-लक्ष्मण मन्दिर' में विद्यमान विश्वरूप विष्णु की दो प्रतिमाओं का भी समावेश होता है, जिनका न तो उचित मूल्यांकन ही हुआ है और न जिन्हें शासन या समाज के द्वारा समुचित सुरक्षा ही प्रदान की गई है। प्रस्तुत लेख में हम इन्हीं दो प्रतिमाओं का विवेचन करेंगे, जिन्हें हम कन्नौज के सुप्रसिद्ध चिकित्सक, स्थानीय पुरातत्व संग्रहालय के प्रमुख आधार स्तम्भ तथा कला पारखी डॉ० गोपालकृष्ण अग्निहोत्री के अकृत्रिम सहयोग से इलाहाबाद के विद्वान डॉ० अशर्फी लाल श्रीवास्तव के साथ अप्रैल १९८७ में भली भाँति देख सकें। इस कृतज्ञता-प्रकाश के बाद विवेच्य विषय की ओर मुड़ें।

बलुए पत्थर से बनीं अष्टभुज विष्णु की विश्वरूप वर्ग की ये दो प्रतिमाएँ आकार व अङ्कन में एक दूसरे से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं तथा समय, असुरक्षा और असावधानी की मार सहते हुए भी पर्याप्त रूप से अच्छी अवस्था में हैं। कभी यहाँ तीन मूर्तियाँ थीं, जिन्हें 'राम', 'लक्ष्मण' और 'जानकी' के नामों से पहचानते थे। अब 'जानकी' तो किसी तस्कर रावण के हाथ में पड़ चुकी हैं; केवल बीच वाली मूर्ति 'राम' तथा दाहिनी ओर वाली अर्थात् 'लक्ष्मण' भर बची है। इस लेख में वर्णन की सुविधा के लिये हम भी इन मूर्तियों को 'राम' व 'लक्ष्मण' इन सांकेतिक नामों से सम्बोधित करेंगे। 'राम' आकार में १ मीटर, ७४ × ७८ से०मी० तथा 'लक्ष्मण' १ मीटर, ६३ × ८० सेमी० हैं। दोनों प्रतिमाओं में बहुत थोड़ी विभिन्नताएँ हैं, जिनकी ओर हम यथा स्थान संकेत करते रहेंगे, साधारण वर्णन उभय-सामान्य है।

डॉ० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, CK 1/13 भोसला मन्दिर, पत्नी टोला, वाराणसी।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

विश्वरूप विष्णु, अष्टभुज एवं बैकुण्ठ विष्णु का विकसित रूप है। महाभारत-हरिवंश-के अनुसार अष्टभुज विष्णु का अवतार कृतयुग में 'तारकामय संग्राम' के समय कालनेमि आदि राक्षसों से युद्ध करने के लिये हुआ था। अष्टभुज विष्णु के उल्लेख ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, बृहत्संहिता आदि ग्रन्थों में भी मिलते हैं। दक्षिण भारत के नागार्जुन कोण्डा नामक स्थान से प्राप्त ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में लिखे गये किसी वसुषेण के लेख में 'अष्टभुज स्वामी' का उल्लेख है। तुलनात्मक ढँग से देखें तो अष्टभुज विष्णु के आयुधों में शंख, चक्र व गदा को छोड़कर काफी मतभिन्नता मिलती है। मूर्तिकला के क्षेत्र में ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों से ही मथुरा की कुषाण कला में अष्टभुज विष्णु के दर्शन होने लगते हैं (मथुरा सं० सं० १५, १०१०, ५ .३५५०)। गुप्तकालीन अष्टभुज विष्णु की अधिक प्रतिमाएँ ज्ञात नहीं हैं, पर उस काल तक पहुँचते पहुँचते एक दूसरे प्रकार की विष्णु प्रतिमा सामने आती है, जिसमें हाथ तो चार ही होते हैं पर सामान्य मुख के अतिरिक्त : गल बगल सिंह और व्रराह के मुख भी दिखलाई पड़ते हैं। 'बैकुण्ठ' नाम से पहचानी जाने वाली इस प्रकार की मूर्तियाँ पहले माथुरी कला में ही दिखलाई पड़ती हैं (उदा० मथुरा सं० सं० डी० २८) बाद में इनका प्रसार अन्यत्र भी हुआ, चौथे मुख के रूप में राक्षस मुख एवं अश्व मुख का संयोजन हुआ तथा वैकुण्ठ की शक्ति की प्रतिमाएँ भी बनने लगीं।

इन्हीं दो प्रकारों का सम्मिलित रूप 'विश्वरूप' है जिसकी नींव कुषाण काल में नहीं तो गुप्तकाल में अवश्य पड़ गई थी। गुप्तकालीन विश्वरूप में विष्णु के सिंह, मानव, वराह ये तीन मुख, आठ हाथ, देवगणों की नन्ही मूर्तियों से भरा प्रभामण्डल तथा उसे बांधने वाली रुद्र मुख-पंक्ति ये विशेषताएँ तो अवश्य ही दृष्टिगोचर होती हैं (मथुरा सं० सं० ४२-४३.२६८६, लखनऊ सं० सं० बी० २२३, जे० ६८३ सी)। इसी काल की आसनस्थ अष्टभुज विश्वरूप की प्रतिमाएँ शामलाजी (गुजरात) से भी मिल चुकी है।[1] इसके बाद की कड़ी कन्नौज की प्रतिहार कला में मिलती है। इसके चार उत्कृष्ट उदाहरण हमें ज्ञात हैं। इनमें से एक तो कई स्थानों पर प्रकाशित हो चुका है।[2] दूसरा नमूना, जिसका केवल ऊपरी भाग ही सुरक्षित है, चित्ररूप में सामने आ गया है।[3] शेष दो में से एक—हमारा सांकेतिक 'राम' भी कम से कम एक बार छप चुका है[4], किन्तु हमारी जानकारी के अनुसार 'लक्ष्मण' अभी तक अप्रकाशित हैं।

प्रतिहार कला के इन दो अमूल्य रत्नों की—मकरन्दनगर के सांकेतिक 'राम' व 'लक्ष्मण' की अधोलिखित विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं :

(१) हाथों की संख्या तो आठ ही है, पर अब मुख तीन से बढ़कर पाँच हो गये हैं। बीच का तो मानवमुख है; बाँयी ओर सिंह और वराह के मुख तथा दाहिनी ओर कूर्म और मत्स्य का मुख है। मुकुट केवल मध्य मुख अर्थात मानव मस्तक पर ही दिखलाई पड़ता है।

(२) कम से कम सात हाथों में आयुध रहे होंगे, जिनमें से अब केवल गदा, खड्ग, कुण्डलित कमल, ढाल, चक्र भर बचे हैं। बाँयी ओर के खण्डित हाथ में धनुष्य भी था जिसका निचला भाग—धनुष्य-कोटि-अभी बचा है। सातवें हाथ में बाण अवश्य रहा होगा। 'लक्ष्मण' में दाहिनी ओर के चारों हाथ खण्डित हैं और बाँये में से एक कमर पर रखा है। 'राम' का आठवाँ हाथ जो अब खण्डित है, कदाचित कटि विन्यस्त ही रहा हो।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

(३) समपद स्थिति में खड़े 'राम' के दोनों पैरों को त्रिफणा युक्त नागपुरुषों ने अपने हाथों पर थाम रखा है। दोनों पैरों के बीच में पृथ्वी की नमस्कार मुद्रा में आवक्षमूर्ति है। 'लक्ष्मण' संज्ञक मूर्ति में विष्णु के दोनों पैर पृथ्वी के हाथों पर हैं।

(४) विष्णु के वस्त्राभूषण हलके और कलापूर्ण हैं तथा गुप्तकालीन परम्परा का पूर्ण निर्वहन करते हैं।

(५) विष्णु के अगल-बगल में दो स्त्रियाँ कमल को लिये हुए हैं, एक के पास चामर भी है। इन्हें विष्णु की पत्नियां श्रीदेवी व भूदेवी मानना अनुचित नहीं होगा।

(६) दाहिनी ओर की चामर-कमल-धारिणी स्त्री के पीछे आलीढ मुद्रा में एक धनुर्धर पुरुष है। यह अर्जुन है, जिसे भगवदगीता के अनुसार श्रीकृष्ण ने विश्वरूप दर्शन कराया था। इस प्रकार के अर्जुन का अंकन लखनऊ संग्रहालय की विश्वरूप प्रतिमा (लखनऊ सं० सं० एच्० १२४) में भी विद्यमान है।

(७) सन्दर्भगत दोनों प्रतिमाओं की एक और विशेषता है, जो अन्यत्र अपवाद रूप में ही देखी जाती है। वह है पृष्ठ-शिला पर गणेश का अङ्कन। 'राम' में अर्जुन के ठीक दूसरी ओर दक्षिणावर्तशुण्डा वाले द्विभुज गणेश खड़े हैं। 'लक्ष्मण' में प्रभामण्डल के बाह्यखण्ड पर गणेश के दर्शन होते हैं। विष्णु के साथ गणेश का अंकन अटपटा सा लगता है। सामान्यतः वह दिखलाई भी नहीं पड़ता, किन्तु लोक कला में निर्मित तीन छोटे विष्णु-फलकों पर वह विद्यमान है। एक फलक कन्नौज के पुरातत्व संग्रहालय (कन्नौज सं० सं० ७०७) में, दूसरा लखनऊ के संग्रहालय (सं० सं० ६६.१४२) में है। तीसरे के प्राप्ति की सूचना प्रकाशित हो चुकी है जो मेहम, जिला रोहतक हरियाणा से मिला है।

(८) विष्णु के अवतार रूप में बुद्ध का प्रमुखता से अंकन भी इन मूर्तियों की एक विशेषता है। दशावतारों में साधारणतया पृष्ठशिला के एक कोने में नन्हीं सी बुद्ध की आकृति विष्णु मूर्तियों में दिखलाई पड़ती है, किन्तु यहाँ भी प्रतिमा के मस्तक के ऊपर शिव के ठीक बाँयी ओर चीवर संघाटी धारण किये बुद्ध विद्यमान हैं, जिनके दाहिने हाथ में अभयाक्षमाला (अभय मुद्रा के साथ अक्षमाला) तथा बाँये हाथ में वस्त्र का छोर है। इस प्रकार का अंकन, कदाचित हर्ष के समय से जनमानस पर जो बौद्ध प्रभाव चला आ रहा था, उसी का फल हो।

(९) विश्वरूप प्रतिमा के निचले भाग के कोनों में पर्वत कन्दराओं में बैठे दाढ़ी और जटाजूट वाले ऋषियों को दिखलाया गया है जो 'राम' में आसनस्थ और 'लक्ष्मण' में नमस्कार मुद्रा में हैं।

(१०) विश्वरूप के विशाल प्रभामण्डल में देवसमूह का अंकन किया गया है, जिसका क्रम निम्नांकित है।

विष्णु के मस्तक के ठीक ऊपर अभयाक्षमाला और तुंबी लिये द्विभुज शिव और उनके अगल बगल में चषकधारी त्रिफण बलराम और बुद्ध हैं। शिव के ऊपर घट लिये त्रिमुख (चौथा पीछे होनें के कारण ओझल) ब्रह्मा और अगल बगल में परशुराम और राम हैं। ब्रह्मा के ऊपर अभयमुद्रा में घटधारी हयग्रीव विद्यमान हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

यहाँ तक तो 'राम' व 'लक्ष्मण' में पूरी समानता है। बाद के अंकनों में किंचित अन्तर है, यद्यपि मूलतः बात एक ही है।

प्रथम 'लक्ष्मण' को लें। यहाँ हयग्रीव का मस्तक टूटा हुआ है। परशुराम के पीछे अश्वारूढ पताका-हस्त वायु, नर-वाहन नैऋत तथा मेष पर अग्नि हैं। बाँयी ओर धनुष्य-बाण वाले राम के पीछे गजारूढ इन्द्र, महिषारुढ यम तथा खड्ग और पाश लिये वरुण बने हैं।

दाहिनी ओर ऊपर से नीचे दूसरी, तीसरी और चौथी पंक्ति में क्रमशः ३, ५ व २ की संख्या में अभयाक्षमाला और त्रिशूल लिये ग्यारह रुद्र हैं। इसी प्रकार बाँयी ओर दूसरी तीसरी और चौथी पंक्ति में ३, ३, ३ की संख्या में ९ तथा पांचवी पंक्ति में केवल ३ मुख दिखला कर १२ की संख्या पूरी कर ली गई है। ये बारह आदित्य या सूर्य हैं।

'राम' संज्ञक प्रतिमा में प्रथम पंक्ति में दाहिनी ओर अश्वारुढ खड्गधारी वायु, तथा अभयाक्षमाला व व घट लिये दो पुरुष बने हैं। बाँयी ओर गजारूढ इन्द्र, मेषारूढ अग्नि और दण्डधर यम हैं। दाहिनी ओर दूसरी, तीसरी और चौथी पंक्ति में ४, ४, ३ की संख्या में एकादश रुद्र तथा ४, ४, ४ की संख्या में बारह सूर्य हैं।

स्पष्ट है कि इन देव समूहों में रुद्रों और आदित्यों का प्राधान्य है। विष्णु के दश अवतारों में मुखों के माध्यम से मत्स्य, कूर्म वराह और नृसिंह तथा प्रतिमाओं की सहायता से राम, परशुराम, संकर्षण, बुद्ध का अंकन किया गया है। वामन और कल्की की पहचान नहीं हुई।

भारतीय साहित्य में विष्णु द्वारा विश्वरूप एवं विराट् दर्शन के कई उल्लेख आये हैं। कौशल्या, यशोदा, परशुराम, बलि, कौरव सभा के कुछ लोग, काकभुशुण्डी आदि को विभिन्न रूपों में विश्वरूप के दर्शन हुए है; पर उनमें अर्जुन को दिखलाये गये विश्वरूप की गणना मुख्य है। विचाराधीन प्रतिमाओं में भी वही अभिप्रेत है। महाभारत के भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय में इसका विस्तृत वर्णन है। वहाँ अन्यान्य देवताओं के साथ रुद्र, आदित्य तथा स्वस्ति वाचन करने वाले ऋषिगणों का भी उल्लेख है। निस्सन्देह प्रतिहार कालीन कलाकारों की छेनियों ने इन दो प्रतिमाओं के माध्यम से महाविष्णु के विराट् वैभव का हृद्य चित्रण किया है।

सन्दर्भ

१. U.P. Shah, *Sculpture from Shamalaji and Roda*, Baroda, 1960, Pls. 48, 50

२. K.M. Munshi, *Saga of Indian Sculpture*, Bombay 1957, Pls. 66; गोपाल कृष्ण अग्निहोत्री, **कन्नौज : पुरातत्व और कला**, कन्नौज, १९८०, फलक ९८

३. अग्निहोत्री, **कन्नौज०**, फलक ९९

४. अग्निहोत्री, **कन्नौज०**, फलक १००

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

१. विष्णु

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चित्र–२. नागों के हाथों में श्रीचरण

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चित्र–३. शिव, ब्रह्मा, हयग्रीव तथा बलराम-बुद्ध एवं परशुराम-राम

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चित्र–४. प्रभा मण्डल, बायीं ओर का भाग

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चित्र–५. शिव-ब्रह्मा, मस्तक विहीन हयग्रीव, राम-परशुराम

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

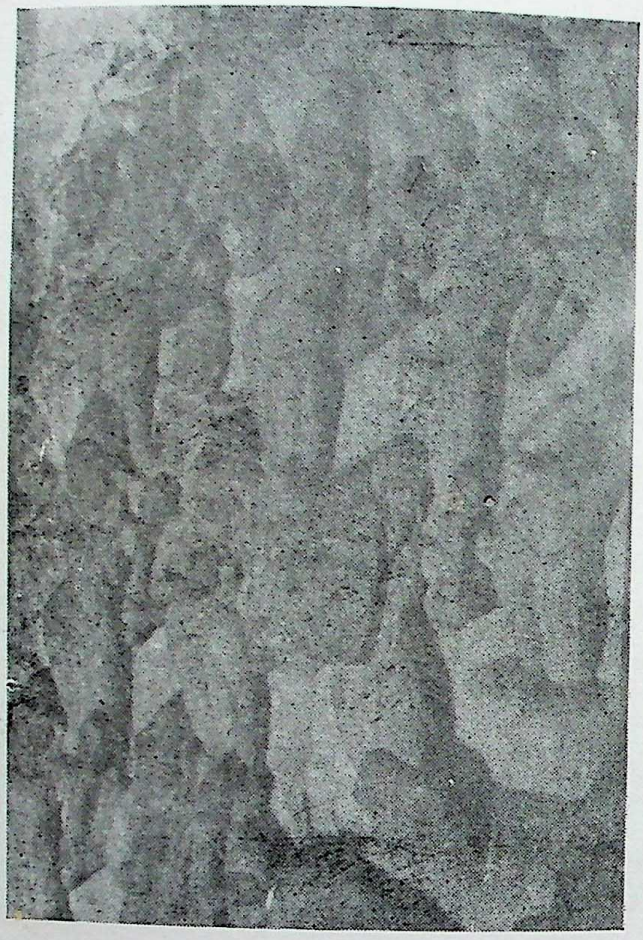

चित्र–६. एकादश रुद्र

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

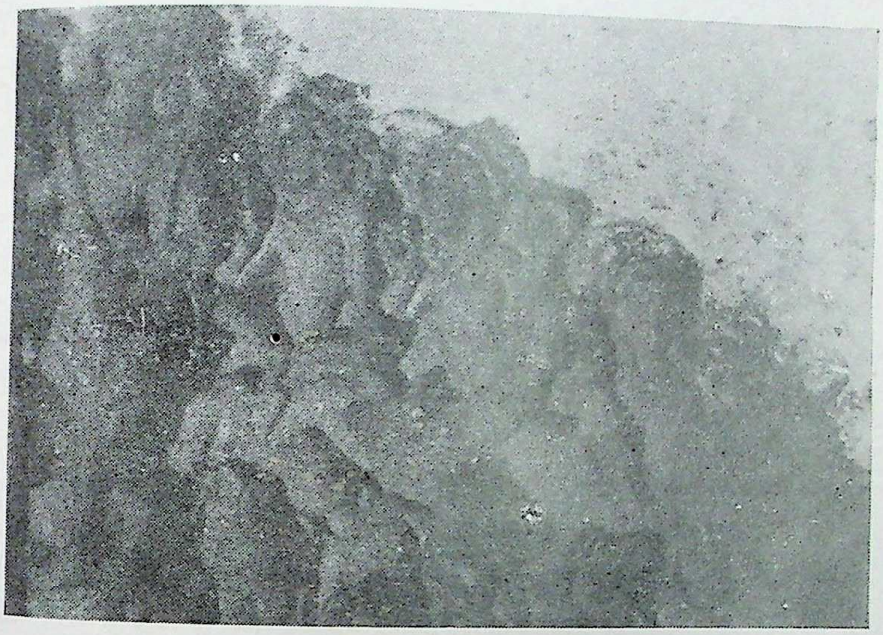

चित्र–७. राम के पीछे इन्द्र, यम व वरुण

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

(१) × (२) गदा (३) खड्ग (४) कुण्डलित कमल (५) ढाल (६) चक्र (७) धनुष्य (केवल छोर) (८) शंख (९) चामर-कमल धारिणी (१०) कमल-धारिणी (११) भूदेवी, हाथ जोड़े हुए (१२) नाग (१३) नाग (१४) अर्जुन (१५) ऋषि (१६) ऋषि (१७) उठेघुंघर वाला पुरुष (१८) मत्स्यमुख (१९) कूर्म मुख (२०) सिंह मुख (२१) वराह मुख (२२) शिव (२३) ब्रह्मा (२४) ह्यग्रीव (२५) बलराम (२६) बुद्ध (२७) गणेश (२८) परशुराम (२९) राम (३०) गजारूढ इन्द्र (३१) महिषारूढ यम (३२) वरुण (३३) मेषारूढ अग्नि (३४) नैऋुत (३५) वायु (३६) एकादश रुद्र (३७) द्वादश आदित्य रुद्रमुख पंक्ति

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

लंकावतार सूत्र–एक सांस्कृतिक अध्ययन

अंगने लाल

'लंकावतार सूत्रम्' यद्यपि महायान का उच्च कोटि का दार्शनिक ग्रन्थ है तथापि ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से इसका महत्त्व कम नहीं है। इस ग्रन्थ के तीन संस्करण उपलब्ध हैं। प्रथम संस्करण जिसमें एक लाख गाथाएं हैं, दूसरे संस्करण में छत्तीस हजार गाथाएं हैं जिस पर बोधिसत्व नागार्जुन ने भाष्य लिखा था। तीसरा संस्करण सबसे छोटा है जिसमें मात्र एक हजार गाथाएं हैं। इस संस्करण को "लंकाहृदय" कहा गया है।[1]

लंकावतार सूत्र का रचना काल निर्धारित करना कठिन है। डॉ० सतीश चन्द्र विद्याभूषण का मत है कि लंकावतार सूत्र लगभग ३०० ई० में लिखा गया जबकि डॉ० सुजूको इस ग्रन्थ का एक भाग ४४३ ई० से पहले का मानते हैं परन्तु "धरणी और सगाथकम" अध्यायों को बाद का मानते हैं। डॉ एस० एस० बागची (शीतांशु शेखर बागची) के अनुसार आगम साहित्य के संकलन के बाद ही लंकावतार ग्रन्थ रूप में प्रकाश में आया होगा। इसके साथ ही सभी बातों पर विचार करके वे यह भी कहते हैं कि शायद यह ग्रन्थ प्रथम शताब्दी ई० अथवा उसके पहले संकलित हुआ हो[2]।

चीनी भाषा में लंकावतार-सूत्र के चार अनुवाद हुए हैं। पहला अनुवाद धर्मरक्ष द्वारा ४१२ और ४३३ ई० के मध्य हुआ। दूसरा अनुवाद गुणभद्र द्वारा ४३३ ई० में किया गया। तीसरा अनुवाद बौधिरुचि द्वारा ५१३ ई० में और चौथा अनुवाद शिक्षानन्द द्वारा ७०० और ७०४ ई० के मध्य किया गया था।[3]

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने प्रथम शताब्दी ई० पू० से लेकर पांचवी शताब्दी के प्रथम चरण तक लंकावतार सूत्र का रचनाकार माना है। चूँकि बोधिसत्व नागार्जुन ने इस ग्रन्थ पर भाष्य लिखा था अतः उनके पूर्व अथवा उनके समय में इस ग्रंथ का अस्तित्व असंदिग्ध है। नागार्जुन सातवाहन शासक यज्ञश्री सातकर्णी अथवा उसके पूर्वगामी के समकालीन तथा उसके धर्म गुरू थे।[4] यज्ञश्री सातकर्णी का शासन काल १६५ ई० से १९५ ई० तक माना जाता है।[5] लंकावतार ग्रंथ नागार्जुन का उल्लेख करते हुए उन्हें दक्षिण का निवासी बताया है।[6] अतः इससे कुछ पूर्व ही लंकावतार सूत्र की रचना हुई होगी। इसका परिवर्धित संस्करण अवश्य गुप्त

डॉ० अंगने लाल, प्रोफेसर प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

साम्राज्य के पतन के बाद हुआ होगा क्योंकि ग्रन्थ गुप्तों का तथा हूणों के आक्रमण का भी दर्शन कराता है। लंकावतार सूत्र के "द्वितीय परिवर्त" में रावण ने तथागत बुद्ध से १०८ प्रश्न पूँछे हैं- जो इतिहास और संस्कृति से सम्बन्धित हैं।

अष्टोत्तरं प्रश्नशतं पृच्छामि यदती वरम्[७]

लंकावतार के दसवें परिवर्त में इतिहास पर प्रकाश डालने वाली एक मात्र गाथा इस प्रकार प्राप्त होती है—

मौर्या नन्दाश्च गुप्ताश्च ततो म्लेच्छा नृपायमा।
म्लेछान्ते शस्त्र संक्षोभः शस्त्रान्ते च कलियुगः ।।[८]

यहाँ पर मौर्यों को नन्दों के पहले बताया गया है जो भ्रमात्मक ही है क्योंकि यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि मौर्य राजवंश नन्दों के पश्चात् हुआ और अन्तिम नन्द शासक को मार करके ही नन्द साम्राज्य के ध्वंसावशेषों पर चन्द्रगुप्त मौर्य ने मौर्य साम्राज्य की आधारशिला रखी थी। संस्कृत बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान में भी इसी प्रकार का ऐतिहासिक विभ्रम पाया जाता है जहाँ बिन्दुसार को नन्द का पुत्र[९] और पुष्यमित्र शुंग को मौर्य वंशी बताया गया है।[१०] यह भी इतिहास वेत्ताओं द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है। नन्दों के बाद गुप्तवंश भी आया जैसा कि यह ग्रन्थ उल्लेख करता है। गुप्तों ने कुषाण वंश के पश्चात् साम्राज्य की स्थापना की। यह ज्ञात ही है कि गुप्त सम्राट् कुमार गुप्त प्रथम के शासन के अन्तिम वर्षों में हूणों तथा पुष्यमित्रों के भयंकर आक्रमण होने लगे थे।[११] सम्भवतः उनके साथ युद्ध करते हुए युद्ध भूमि में ही उन्हें वीरगति भी प्राप्त हुई थी।[१२] स्कन्दगुप्त के समय में भी हूणों के भयंकर आक्रमण होने लगे थे। इन्हीं आक्रमणकारी हूँण राजाओं को 'नृपाधमा' कहा गया है। स्कन्दगुप्त ने इन हूंणों (म्लेच्छों) के साथ साहसिक युद्ध किया था। हूणों के आक्रमणों की पुष्टि गुप्तकालीन अभिलेखों से भी होती है।

स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ शिलालेख से पता चलता है कि वीर स्कन्दगुप्त ने हूंणों के मान भंग कर दिये थे। (आमूल भग्नदर्पा निर्वचना म्लेच्छ)[१३] ये आक्रमणकारी म्लेच्छ हूंण ही थे, जिनका उल्लेख स्कन्दगुप्त के ही भिटरी प्रस्तर स्तंभ अभिलेख में मिलता है। इस अभिलेख के वर्णन से उनके आक्रमण की प्रचण्डता का स्पष्ट आभास मिल जाता है। उनके आक्रमण से पृथ्वी थर्रा उठी थी। (धरा कम्पिता)[१४] यद्यपि स्कन्द गुप्त से वे पराजित हुए तथापि उन्होंने गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण जारी रखे।[१५] और अन्त में अन्य अनेक कारणों के साथ ही म्लेच्छों (हूँणों) ने गुप्त साम्राज्य को पराभूत ही कर दिया।[१६]

लंकावतार सूत्र आगे यह भी बतलाता है कि म्लेच्छों के बाद देश में युद्धों में गिरावट आयेगी (म्लेच्छान्ते शस्त्र संक्षोभः)।[१७] अराजकता और कलह का यह युग राजपूत काल ही प्रतीत होता है। यदि ध्यान से देखा जाए तो मुगल साम्राज्य की स्थापना तक राजनैतिक एकता और सुदृढ़ता का अभाव दिखाई पड़ता है। ग्रन्थ यह भी बतलाता है कि इसके पश्चात् कलियुग का प्रारम्भ होगा। और कलियुग के समाप्त होते-होते सद्धर्म का लोप हो जायेगा।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

कलियुगान्ते लोकेषु सद्धर्मोहि न भावितः।[१८]

इस प्रकार लंकावतार सूत्र नन्द, मौर्य तथा गुप्त साम्राज्यों का उल्लेख तो करता ही है साथ ही म्लेच्छों के आक्रमणों के दुष्परिणामों का भी उल्लेख करता है।

बुद्ध ने स्वयं अपने मुख से कहा है कि मेरे निर्वाण के सौ वर्ष बाद व्यास होंगे जो महाभारत की रचना करेंगे। तत्पश्चात् पाण्डव, कौरव नन्द और मौर्य उत्पन्न होंगे। नन्द, मौर्य और गुप्त वंश के बाद अधम म्लेच्छ शासक होंगे म्लेच्छ शासन के पश्चात् उथल-पुथल होगी। उस उथल-पुथल के पश्चात् कलियुग प्रारम्भ होगा।[१९]

लंकावतार सूत्र केवल गौतम बुद्ध से ही परिचित नहीं है अपितु वह काश्यप ककुच्छन्द तथा कोनाक मुनि नामक पूर्व बुद्धों का भी उल्लेख करता है।[२०] इस प्रकार यह ग्रन्थ बौद्ध धर्म में प्रचलित अट्ठाइस बुद्धों को परम्परा की पुष्टि करता है। अतीत काल से इन्हीं बुद्धो की वन्दना नित्यप्रति की जाती है (ये च बुद्धा अतीता च)।

लंकावतार सूत्र में लंकापुरी का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यह नगरी भाँति-भाँति के रत्नों से विभूषित, रम्य और अलौकिक थी। नगर में शीतल जल वाले सुन्दर सरोवर थे। रत्नों की झालरें सजी हुई थी।[२१] नगर उत्तुंग प्रसादों के शिखरों और नगर उद्यानों से शोभायमान था। अशोक वाटिका (अशोक वानिका)[२२] बहुचर्चित उद्यान था। वास्तव में इससे वास्तुविदों की कुशलता का पता चलता है।

लंकावतार सूत्र से श्री लंका के ऐतिहासिक भूगोल पर भी प्रकाश पड़ता है। लंकामलय[२३] रत्न पर्तत[२४] तथा सुमेरु शृंग[२५] यहाँ के प्रमुख पर्वत थे। लंका मलय पर्वत को श्रेष्ठ पर्वत (गिरिवर)[२६] कहा गया। इसी पर्वत पर आसीन भगवान बुद्ध से राक्षसाधिपति रावण[२७] ने गतिशील और नेत्र प्रदान करने वाले सद्धर्म की याचना की थी।[२८] उस समय लंका में शश, खर, ऊष्ट वाजि (अश्व), विषाण, वच्यापुत्र आदि धर्म प्रचलित थे।[२९] इसीलिए रावण ने धर्माधर्म[३०] को पूँछते हुए अपने धर्म के विषय में पूँछा (धर्मःकतम्)[३१] लंकामलय पर्वत पर ही तथागत ने रावण को सद्धर्म का उपदेश दिया था। यह लंकामलय पर्वत दक्षिणी भारत के पश्चिमी घाट का ही भाग है जो समुद्र के पार उत्तरी लंका में दृष्टिगोचर होता है। इसे लंकापुरीमलय भी कहा गया है।[३२] लंका की राजधानी को लंकापुर[३३] कहते थे। महामानव बुद्ध ने रावण को महायान समझने के लिए पहले योगाचार[३४] का भी उपदेश किया जिसे सुनकर वह सपरिवार बौद्धधर्म का अनुयायी हो गया था।[३५]

रावण को चक्रवर्ती राजा कहा गया है (राजा चक्रवर्ती)[३६] राजकार्य संचालन में परामर्श देने के लिए परिषद होती थी[३७] लंका सम्पन्न देश था। समाज में नाना प्रकार के आभूषण धारण किये जाते थे जिनमें किरीट (मुकुट) आंगद (भुजबंद हरि, वग्र और हार (सूत्र) आदि आभूषण[३८] विशेष प्रचलित थे। ये आभूषण हीन, उत्कृष्ट मध्यम श्रेणी के और विशेष भी होते थे। (हीतोत्कृष्ठमध्यम विशेषों)[३९]। भोजन में मांस प्रचलित था। जब भगवान बुद्ध ने मांस का निषेध किया तब रावण ने उस पर बहुत तर्क वितर्क किया था[४०] अन्नपान[४१] का भी उल्लेख मिलता है। शिक्षा के लिये विद्याकेन्द्र (विद्यास्थान)[४२] थे जिनमें गुरुजन (आचार्य) शिष्यों को शिक्षा प्रदान करते थे[४३]। रोगियों के लिये चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध था (चिकित्सा शास्त्र सत्वानां)।[४४]

इस प्रकार लंकावतार सूत्र प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

संदर्भ

१. लंकावतार (डा० सुजूकी) इ० ट्रा—भूमिका

२. सद्धर्म लंकावतार सूत्रम, भूमिका, पृ० २४-२५ (मिथिला संस्करण)

३. स्ट० लंका०—सू० पू० ४-७ (सुजूकी)

४. के० एस० मूर्ति, नागार्जुन, पृ० १२

५. डा० अवस्थी, प्रा० भा० इति० पृ० १६४

६. लंकावतार—११८/१३-१६

दक्षिणापथ वेदल्यां भिक्षु श्रीमान महायशः ।
नागाह्दयः स नाम्रा तु सदसत्पक्ष दारकः ।।
प्रकाश्यं लोकें मध्यानं महायानमनुत्तरम् ।
आछाद्य भूमिं य युवितां यास्यते असो सुखावतीम् ।

७. वही, १०/१६

८. लंकावतार—परिवर्त १० गाथा ८६, पृ० ३६२-६३

९. दिव्या २३२/२१

१०. वही, २८२/४-५

११. डा० मजूमदार, गुप्त वाकाटक युग पृ० १७८-७६, डा० अवस्थी, प्रा० भा० इति० १३

१२. डा० अवस्थी, प्रा० भा० इति० पृ० २५१

१३. हिस्ट० जिट० इन्स०, पृ० १३

१४. वही, पृ० १०

१५ टिप्पणी—गुप्त युग में कुमारगुप्त प्रथम, स्कन्द गुप्त, बुद्ध गुप्त तथा भानुगुप्त के शासनकाल के आक्रमण हुए थे।

१६. प्रा० भा० इति० पृ० २६५—डा० अवस्थी प्रा० भा० इति० पृ० २६६-६८

१७. लंकावतार—३६२/१३

१८. वही—३६३/१

१९. जी० के० नारीमैन, लि० हि० सं० बु० पृ० ८१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

२०. वही १३/२६, ८/१८-१६

काश्यपः ककुच्छन्दश्च कोनाकमुनिरण्यहम् ।
भाषाति जिन पुत्राणां सगतयां समुदयतः ।।

२१. वही, २/१४

दिव्य लंकापुरी रम्या नाना रत्नैर्विभूषितम् ।
प्राग्भारैः शीतलैः रम्यै रत्नजाल वितानकैः ।।

२२. वही, ४/७-८
२३. वही, ६/१
२४. वही, ३/७
२५ वही, १/१०, ३/२
२६. वही, ३/२०
२७. वही, ६/१२
२८. वही, ४/६
२९. वही, १/१४
३०. वही, १/१६-२४
३१. वही, ८/१८
३२. वही, ८/११-२०
३३. वही, ८/१७
३४. वही, १/११
३५. वही, १/१
३६. वही, ५/१६-१७
३७. वही, प्रथम परिवर्त
३८. वही, १२/१४
३९. वही, ४/११
४०. वही, ७/२२-२३
४१ वही, ८/७
४२. वही, १३/७ अभक्ष्यं हि कथं मांस कथं मांस निषिध्यते ।
४३. वही, १२-१३
४४. वही, १२/२

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

THE MINOR GODDESS KUMBHĀṆḌĪ AND THE DEVĪ KŪṢMĀṆḌĪ

P. K. Agrawala

The Kumbhāṇḍas are an interesting class of semi-divine beings that are found to occur in various mythical contexts of early Indian art and literary traditions, both Brahmanical as well as the Buddhist and Jaina. Their inclusion in the small list of Four Mahārājika Gods, who preside over four quarters as the guardian deities each in a specific direction with their regent-chief, apparently testifies to the rank and popularity these semi-divines once enjoyed in the religious following and beliefs of the masses. Already in the *Atharvaveda* (2.9.16-17; 8.6.15), the same class of Kumbhāṇḍa genii is to be found mentioned under their variant name of *kumbhamuṣka*; both the expressions having identical denotation, refer apparently to a personification that is characterised by his pitcher-shaped scrotum, viz. "one who has pitcher-like testicles'[8] (*kumbha*+*aṇḍa* or *muṣka*). In subsequent traditions, the same being can be well recognised as specified by the variant names of *kumbhaṇḍa*, *kuhaṇḍa* (pkt), *kūṣmāṇḍa*, *kūṣmāṇḍa*, *kūśmāṇḍa*, *kuśmāṇḍa*. As the Buddhist commentary *Sumaṅgalavilāsinī* (c. 5th cent.) explains their form by observing that the Kumbhāṇḍas were so called for "they had huge stomachs and their genital organs were as big as pots", their figural depictions can be well identified in art from their generally featured character of nude males with exaggerated phallic organs and abdomen, beside their deformed and disproportionately caricatured limbs, such as a huge head, squat arms and legs.[1]

Side by side with the Kumbhāṇḍa figure, there seems to have evolved a female Kumbhāṇḍī in the popular fancy of early myths and art. Thus it is not strange that we find mention in literature of the Kumbhāṇḍī females together with the Kumbhāṇḍa males.[2] In one Purāṇic myth of creation, the first female Kūṣmāṇḍī is said to have been a child of Kapiśā from whom the sixteen noble clans of the Kumbhāṇḍas were born.[3]

Dr. P. K. Agrawala, B 1/54 Amethi Kothi, Nagwa, Varanasi-221005.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Perhaps the most remarkable example of a Kumbhāṇḍī is afforded by a Chandraketugarh terracotta of the first cent. B.C. to the first cent. A.D., now in the National Museum, New Delhi (fig. 1). It shows an obese female in the strict frontal posture, seated in a manner similar to that of the terracotta Kumbhāṇḍa figures (fig. 2) with her nudity exposed. This female counterpart of the Kumbhāṇḍa gaṇa is no doubt closely akin to the male's physiognomical type but having a less distorted face. Almost an identical specimen was further recovered from 1966-67 excavations at the same site.[4]

Still a more characteristic portrayal of the Kumbhāṇḍa and Kumbhāṇḍī figures together is noticeable in the well-known Bhaja Vihāra relief where they are shown as being trampled over by the chariot-wheels of a royal personage (fig. 3). The grossly disproportioned nude figures with grotesque demon-faces and huge dangling breasts are indeed unmistakable Kumbhāṇḍī forms accompanied with a similarly deformed Kumbhāṇḍa

Another interesting depiction of a Kūmbhāṇḍa couple will be perhaps recognised as included in the details of the famous Padmapāṇi—painting at Ajanta. A pair of seated figures seen near the head of Padmapāṇi represents indeed this class of genii and occurs here along with the Suparṇa, Vidyādhara and Gandharva couples stationed in the sky or on a hill-abode and with monkey and bird figures tenanting the house-tops on the opposite side.[5]

As noted elsewhere,[6] we also have the names Kūṣmāṇḍā, Kūṣmāṇḍī, Kūṣmāṇḍinī for a form of the great goddess Ambikā-Pārvatī and also for the Jaina śāsana-devatā or Yakṣī of Tīrthaṅkara Neminātha otherwise called Ambikā.[7] The Brahmanical Purāṇas often mention the name Kūṣmāṇḍī of the great goddess herself or of her one minor form.[8] The *Harivaṃśa Purāṇa* mentions Kūṣmāṇḍī as the name of a popular goddess, who is reckoned along with the great goddesses Rudrāṇī, Vāruṇī, Sinīvālī, Ekānaṃśā, Kātyāyanī, etc. and many other types of the folk mother-goddesses.[9] Similarly, she is one of the names of those goddesses who are invoked to spare the child : *kūṣmāṇḍi yakṣi bhagavati cāmuṇḍe muñca daha bālād gaccha ṭhaṭha.*[10]

The Devīpurāṇa, a late Tantric compilation, describes Kūṣmāṇḍā as a goddess seated on the corpse :—

kartrikā-muṇḍa-khaṭvāṅgī nṛpalāmbara-dhāriṇī (?) /
kūṣmāṇḍā nāma pretasthā danturā barbarā girau //
pūjitā navamāse tu sarvvakāmapradāyikā /[11]

In the orthodox list of the Nine Durgas, who are worshipped on nine respective days during the great Navarātra festival of the great goddess in autumn, Kūṣmāṇḍā comes at the fourth place[12] and to her is dedicated the invocation of the fourth day :—

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

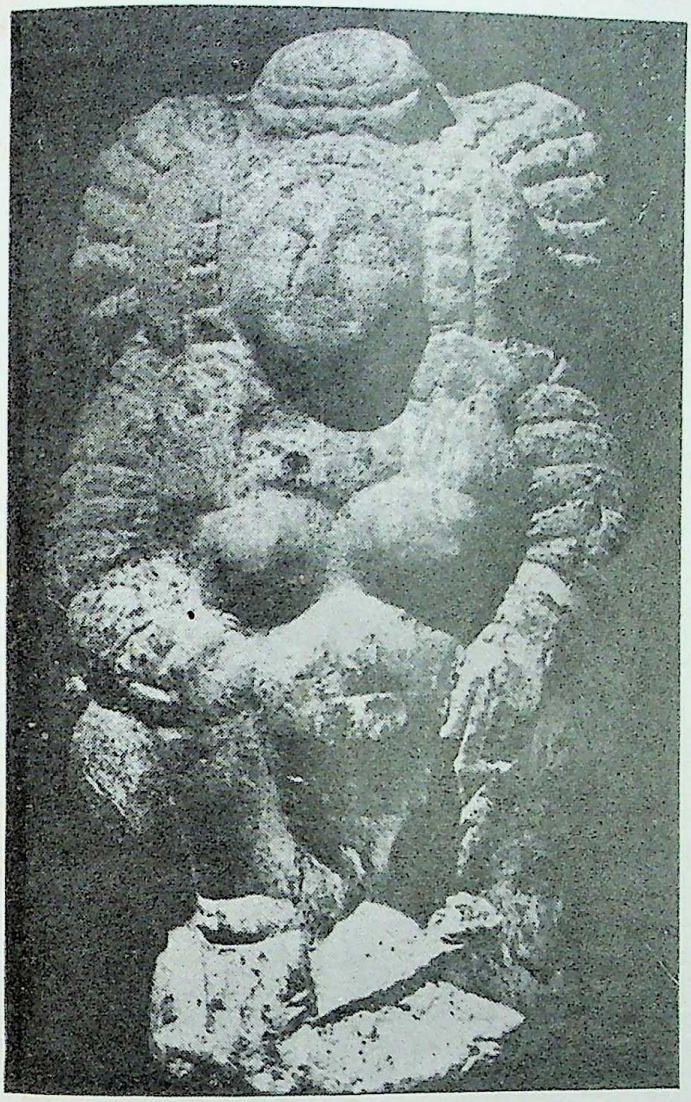

Fig. 1 Kumbhāṇḍī or a female Kumbhāṇḍa,
Terracotta, c. 1st Cent. B. C —c. 1st Cent. A. D.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Fig. 2 Nude Kumbhāṇḍa demon, blowing wind pipe, late Śuṅga period.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

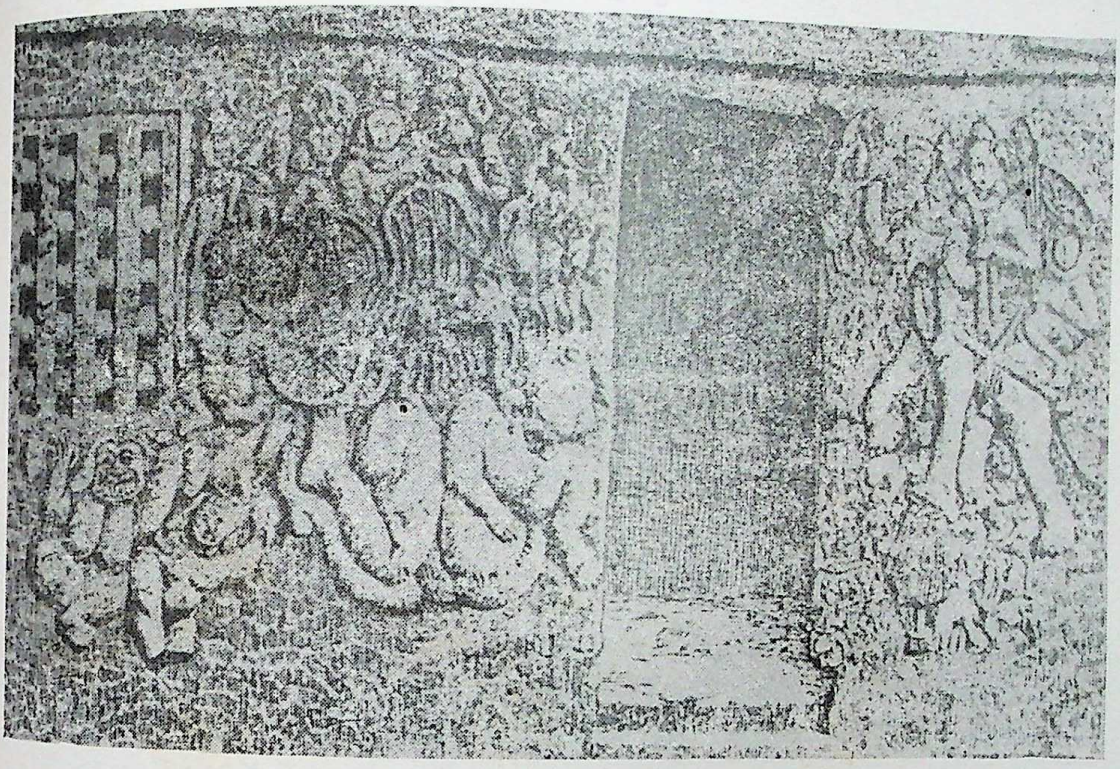

Fig. 3 Relief on wall, Vihāra, Bhaja, c. 2nd cent. B. C.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

surāpūrṇam kalaśam rudhirāplutameva ca |
dadhānā hastapadmābhyām kūṣmāṇḍā subhadāstu me ||

According to the great Sanskrit lexicon *Śabdakalpadruma* of the nineteenth century, the name Kūṣmāṇḍī of the goddess is to be explained from the fact of pumpkin-gourd offerings made to her during her worship : *ambikāyāśca kūṣmāṇḍabali-priyatvāt tathātvam. mantrātmakadevatās ṛkṣu tu striyām ṅīp.*[13]

There is, however, another view which understands the significance of this name of the great goddess as implying her aspect of cosmic creatrix : *kutsitaḥ uṣmā kūṣmā—trividha-tāpa-yuktaḥ samsāraḥ—sa aṇḍe māmsapeśyām udararūpāyām yasyāḥ sa kūṣmāṇḍā.*[14]

Fig. 1—Kumbhāṇḍī or a female Kumbhāṇḍa, Terracotta plaque, c. 1st cent. B.C.—c. 1st cent. A.D. From Chandraketugarh, now in the National Museum, New Delhi. Photo : National Museum.

Fig. 2—Frontally shown, nude Kumbhāṇḍa demon, sitting as engaged in the act of flowing a wind-pipe, or chewing a python, Terracotta plaque, from Kosam, late Śuṅga period. Now in the Banaras Hindu University Museum.

Fig. 3—Relief on wall, Vihara, Bhaja, c. 2nd cent. B.C. The scene on left shows male and female Kumbhāṇḍas overrun by the chariot- wheels. Drawing after J. Burgess.

REFERENCES

1. My studies on the Kumbhāṇḍas represent in part the results of my post-doctoral work during 1984-85 at the Department of Oriental Art (Seminar für Orientalische Kunstgeschichte), University of Bonn, sponsored by the Alexander von Humboldt Foundation, West Germany. I am Particularly grateful to Prof. Klaus Fischer for his keen interest and valuable comments. See my papers, "Some Kumbhāṇḍa Figures in Early Stūpa Art", International Seminar on the Buddhist Stūpa in India & South-East Asia, March 1985, B.H.U.; "The Kumbhāṇḍa Figures in Sanchi Sculpture". *East and West*, Rome, vol. 37, Nos. 1-4, Dec. 1987; "The Kumbhāṇḍa Overlord Virūḍhaka", *Ratna-Chandrikā : R. C. Agrawala Festschrift*, New Delhi, 1989; "The Kumbhāṇḍas : Their Identification and Names", *Bhāratī : R. C. Majumdar Volume*, No. 16, B. H. U., 1985-86; "Identification of Kumbhāṇḍa Figures in Early Terracottas", National Seminar on Indian Terracottas, Asutosh Museum, Calcutta, Feb. 1988; "Some Kumbhāṇḍa Figures on Mathura Railing-pillars", *Makaranda : Prof. J. C. Harle Felicitation Volume*, Delhi–Berlin (forthcoming); "The Vedic Kumbhamuṣka and the Kūṣmāṇḍa Concept", *Prof. G. C. Pande Felicitation Volume* (forthcoming); "Sixteen Noble Families of the Kumbhāṇḍas", *Prof. R. N. Mehta Felicitation Volume*, Jaipur

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

(under print) ; "A Note on the obscure Deity-name Kūṣmāṇḍarājaputra", *Prāchya-Pratibhā : Prof. V. S. Wakankara Volume*, Bhopal (forthcoming); "The Kumbāṇḍas in Indian Art and Literature", *Prāgdhārā*, Lucknow (forthcoming issue); "Idedtification of Kumbhāṇḍa Figures in Early Terracottas", *Bhārati*, B. H. U., No. 18 (under print); etc.

2. *Kumbhāṇḍa vā kumbhāṇḍi vā, Laṅkāvatārasūtra* 261.8.

3. *Vāyu Purāṇa* III. 69. 257; see my paper, "Sixteen Noble Families of the Kumbhāṇḍas", *R. N. Mehta Felicitation Volume* (under print).

4. *Indian Archaeology 1966-67—A Review*, p. 48, pl. XLI B.

5. A Ghosh, ed., *Ajanta*, New Delhi 1967, pl. XXII, lower details on right; also pl. XXIV for partial detail of the figures.

6. See our paper, "The Kumbhāṇḍas : Their Personification and Names", *Bhārati : R. C, Majumdar Volume*, No. 16, B.H.U.

7. B. C. Bhattacharya, *Jaina Iconography*, Lahore 1936, p. 142.

8. For example, *Kūrma Purāṇa* I.12.140; *Kālikā Purāṇa* 65.6.

9. Harivaṁśa Purāṇa, II.109.51.

10. *Īśānaśivagurudevapaddhati*, vol. II, pūrvārdha, 41-93 (p. 296).

11. 50.239-40.

12. *Kūṣmāṇḍeti caturthakam, Caṇḍi-kavaca*, verse 3.

13. See also p. 42 of the *Mahākāla Samhitā*, Kāmakalā-khaṇḍa, Allahabad edition.

14. R. N. D. Pāṇḍeya Śāstrī, *Śrī-durgāsaptaśati*, 36th edition, Gorakhpur. VS. 2040. p. 20.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

भारतीय संस्कृति

देवराज

जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं वह किसी स्थिर, एकरूप स्थिति या वास्तविकता का नाम नहीं है। वह एक कालावधि में सीमित स्थिति भी नहीं। सच यह है कि भारतीय संस्कृति इतिहास के प्रवहमान कलेवर में निरन्तर बदलता-विकसित होता यथार्थ है जो, अतीत युगों की भाँति, आज भी परिवर्तन एवं विकास की प्रक्रिया से गुजर रहा है। इससे पहले कि हम भारतीय संस्कृति नामक यथार्थ या वस्तु तत्त्व पर विस्तृत दृष्टि डालें, हम चाहेंगे कि संस्कृति नामक तत्व की अवधारणा पर थोड़ा विचार कर लें।

संस्कृति से सम्बन्धित एक दूसरा संप्रत्यय है, सभ्यता। उक्त दोनों संप्रत्ययों के सम्बन्ध के बारे में समाजशास्त्रियों में मतभेद है। कुछ विचारक सभ्यता के अंतर्गत संस्कृति का अंतर्भाव करते हैं, दूसरे संस्कृति के अन्तर्गत सभ्यता का। यह दृष्टिभेद वास्तव में एक सीमा तक शाब्दिक है। यहाँ किसी विवाद में न पड़कर हम कहेंगे कि संस्कृति नामक वास्तविकता के दो पक्ष हैं, एक बाह्य या भौतिक और दूसरा आन्तरिक या आत्मिक। यह भेद आपेक्षिक है, आत्यंतिक नहीं। वास्तव में संस्कृति के हर रूप की कमोवेश भौतिक अभिव्यक्ति होती है, और प्रत्येक भौतिक स्थिति का मनुष्य के अर्थवान अर्थात् मूल्यकेन्द्रित जीवन के लिये महत्व होता है। यों मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि तथाकथित भौतिक संस्कृति (मैटीरियल कल्चर) साधनभूत होती है, अर्थात् साधनकोटि में आती है, और आत्मिक संस्कृति साध्य कोटि में। नर-विज्ञान की एक प्रसिद्ध जानकार लेखिका रूथ बेनीडिक्ट ने अपनी प्रसिद्ध 'पुस्तक'पैटर्न्स ऑफ कल्चर' में संस्कृति की परिभाषा की है : समस्त सीखा हुआ व्यवहार। इस व्यवहार के विविध रूप हमें अतीत से—मुख्यतः अपने सामाजिक रीति रिवाजों, विश्वासों-आस्थाओं, कला कौशल आदि के रूप में—विरासत में मिलते हैं। इस विरासत के स्थूल रूप प्रायः समाज के सभी सदस्यों के जीवन में प्रतिफलित होते हैं; ये रूप सब मिलाकर सभ्यता का अंग कहे जा सकते हैं। किन्तु संस्कृति के अधिक सूक्ष्म, आत्मिक रूप हमें विविध-विस्तृत वाङमय के रूप में उपलब्ध होते हैं। इस वाङमय के अन्तर्गत काव्य-साहित्य, विविधशास्त्र एवं दर्शन, धर्म-अध्यात्म आदि का परिगणन होता है। इस विरासत को विविध श्रेणियों के प्रबुद्ध व्यक्ति अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार ग्रहण करते हैं। जाहिर

डा० देवराज, न्यू हैदराबाद कालोनी, लखनऊ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

है कि कोई भी एक व्यक्ति इस आत्मिक विरासत को समग्रता में ग्रहण नहीं कर पाता। यह स्थिति अतीत युगों में भी थी, आज और भी स्पष्ट है।

ऊपर हमने संस्कृति के भौतिक एवं आत्मिक पक्षों की चर्चा की। भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों, अनेक धातुओं के उपयोग, आक्रमण अथवा आत्मरक्षा के लिये निर्मित अस्त्र-शस्त्रों आदि का उल्लेख होता है। किन्तु सामान्य नागरिकों की सुरक्षा के लिए शासनतन्त्र अथवा राज्य सरकार भी जरूरी होती है। भरण-पोषण, प्रतिरक्षा-सुरक्षा आदि से सम्बन्धित साधनों एवं संस्थाओं को सभ्यता की संज्ञा भी दी जाती है। राज्य संस्था के साथ नागरिकों की स्वतन्त्रता का सवाल भी जुड़ा रहता है, इसलिए स्वतन्त्रता सभ्यता का एक आवश्यक अंग एवं मूल्य माना जाता है। संस्कृति सर्जनवृत्ति का फल है, उस वृत्ति की चरितार्थता के लिए स्वतन्त्रता जरूरी है।

अब हम भारतीय संस्कृति के विभिन्न युगों और उनमें प्रतिफलित मूल्यों पर विहंगम दृष्टि डालेंगे। भारतीय संस्कृति के विभिन्न युगों को वैदिक युग, रामायण-महाभारत आदि का युग, क्रमशः बौद्ध जैन धर्मों के अलावा वैष्णव-शैव सम्प्रदायों आदि के उदय व प्रसार का युग जिसका शताब्दियों बाद मध्ययुगीन भक्तिकाल में चरम उत्कर्ष हुआ, बौद्ध-धर्म के प्रसार तथा सम्राट अशोक के समय में उक्त धर्म के चरम् उत्कर्ष का युग, उसके बाद पौराणिक धर्म का अभ्युदय एवं गुप्तवंशी शासकों का युग जिसका विस्तार सम्राट हर्षवर्द्धन के समय तक माना जा सकता है; उसके बाद अनेक मुस्लिमवंशों और बाद में मुगलों के शासन का समय जब भक्ति संप्रदायों का महत्त्व बढ़ा; और अन्त में विदेशी शासन के तहत पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के दबाव एवं सम्पर्क में बदलता बनता संस्कृति का रूप जिसका नया संस्करण अथवा नया चरण, भारतीय पुनर्जागरण एवं स्वातंत्र्योत्तरभारत में दृष्टिगत है—ये नाम दिये गये हैं और दिये जा सकते हैं।

इस प्रसंग में हमें खास तौर पर यह संकेत करना है कि जहाँ वैदिक संस्कृति का एक रूप यज्ञों तथा वैसे अन्य रूढ़ि प्रधान आचरण में प्रतिफलित हुआ वहाँ दूसरी ओर उसके गर्भ से, प्रतिक्रिया के रूप में ही सही, ज्ञान-प्रधान उपनिषदों की उपासना और चिन्तन-पद्धति का विकास हुआ जिसके फलस्वरूप ईसा की लगभग बारहवीं शती तक हमारे देश में दर्शनों अथवा दार्शनिक चिंतन की अभूतपूर्व प्रगति हुई। कहना नहीं होगा कि इस प्रगति में देश के बौद्ध-जैन विचारकों का भी ठोस योगदान रहा। बौद्ध तथा जैन धर्म श्रमण संस्कृति के पुरस्कर्ता थे, जो भोगप्रधान वैदिक संस्कृति से काफी भिन्नता रखती थी। बाद में, विशेषतः अद्वैतवेदांत के प्रभाव में, जो हमारी आध्यात्मिक संस्कृति विकसित हुई वह उपनिषदों तथा खासकर महायान बौद्ध दर्शन का समन्वय रूप थी। यह समन्वय किसी न किसी रूप में आज तक चला आया है; उसने हमारे पुनर्जागरण काल के रामकृष्ण-विवेकानन्द जैसे संतशिक्षकों के उपदेशों में नया जीवन प्राप्त किया। वैदिक कर्मवाद तथा उपनिषदों के ज्ञान मार्ग का समन्वय भगवद्गीता में किया गया जिसका प्रभाव लोकमान्य तिलक, महात्मागांधी, श्री अरविन्द आदि के जीवन और दर्शन पर देखा जा सकता है।

संक्षेप में भारतीय अथवा हिन्दू संस्कृति के तीन मुख्यरूप देखे जा सकते हैं। प्रारम्भिक वैदिक युग के आर्यों का जीवन और विचार सरल, आशावादिता से अनुप्राणित, एवं सहजविश्वास भावना पर आधारित थे। लगभग दर्जनभर महत्त्वपूर्ण देवीदेवताओं में आस्था, स्तुति-प्रार्थना एवं यज्ञों की शक्ति में विश्वास, जीवन की उमंग की सहज अभिव्यक्ति, सोमपान, लम्बी आयु तथा वीर संतानों, ऐश्वर्य आदि के लिए देवताओं की पूजा-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अर्चना, शासन की सरल प्रणाली जिसमें कोई एक व्यक्ति अधिक शक्तिशाली नहीं बन सकता था—ये वैदिक आर्यों के जीवन के मुख्यतत्व थे। उपनिषदों के ऋषियों ने जीवन की ससीमता एवं नश्वरता का तीखा साक्षात्कार किया, पर साथ ही उससे उबरने का आशावादी मोक्षमार्ग भी खोज निकाला। किन्तु भगवान बुद्ध की पार-दर्शिनी शिक्षाओं ने भारतीय मनीषा को दुःख-शोक की व्याप्ति एवं विस्तार से परिचित कराया और संवेदनशील भारतीय मानस में वैराग्यवाद के बीज डाले। इस वैराग्यवाद के तीखेपन को अनेक भक्तिवादी विचार-सरणियों ने मृदुल बनाया और देश के मनचित्त को सगुण भगवान के प्रेमरस से सींचकर हरा भरा रूप दिया। विदेशी मुसलमानों के शासन काल में इस भक्ति भावना ने हमारे राष्ट्र की आशावल्लरी को मुरझाने से बचाया।

किन्तु यह ध्यातव्य है कि हमारे पुनर्जागरण के युग में भक्तिमार्ग की अपेक्षा अद्वैतवेदांत के ज्ञानमार्ग तथा गीता के कर्ममार्ग पर अधिक जोर दिया गया। द्रष्टव्य है कि इधर जिस पश्चिमी सभ्यता से हमारा गहरा सम्पर्क हुआ है उसमें ज्ञान-विज्ञान का विशेष महत्व है—और कर्म का भी। फलतः हम आज रामानुज आदि की अपेक्षा शंकर के वेदांत को अधिक महत्त्व देते हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि ईसाई धर्म के अपेक्षाकृत स्थूल मंतव्यों में असन्तोष का अनुभव करते हुए संवेदनशील पश्चिमी जिज्ञासु या तो हमारे अद्वैत की ओर आकृष्ट होते हैं या फिर महायान बौद्ध धर्म और उसके दर्शन की ओर। इसी सन्दर्भ में यह भी स्मरणीय है कि हमारे देश में धर्म और दर्शन के बीच वैसा झगड़ा कभी नहीं चला जैसा ईसाई धर्म के क्षेत्र में घटित हुआ। ईसाई धर्म तथा इस्लाम के अनुयायी भी धर्म को श्रद्धा विषय कहते हैं और दर्शन को बुद्धि का विषय मानते हैं। अपने देश में श्रद्धा और बुद्धि का यह द्वैत, कम से कम छः हिन्दू दर्शनों एवं प्रमुख बौद्ध दर्शनों के क्लासिकी विकास-युग में नहीं माना गया। सच यह है कि यहाँ दर्शन धार्मिक विश्वासों पर हावी रहा और धर्म का पथ-प्रदर्शक बना। इस दृष्टि से मध्ययुग या भक्तियुग में स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ।

निष्कर्ष यह है कि हमारे सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्कों का झुकाव अध्यात्म विद्या की ओर रहा और उस क्षेत्र में हमारी संस्कृति में अभूतपूर्व प्रगति हुई। इस प्रगति या विकास के दो परिणाम विशेष महत्त्व रखते हैं। एक, जैन बौद्ध दर्शनों में ही नहीं, कतिपय हिन्दू दर्शन पद्धतियों में भी आध्यात्मिक बोध और जीवन का सृष्टिकर्ता ईश्वर में विश्वास से आंतरिक सम्बन्ध माना नहीं गया। दूसरे, यहाँ मोक्ष का अर्थ मुख्यतया आत्मलाभ अथवा नित्य-शाश्वत आत्मा की अपने निजी शुद्ध रूप में अवस्थिति मानी गई। न्याय-वैशेषिक, सांख्य-वेदांत, मीमांसा, जैन दर्शन आदि सभी का यहाँ मतैक्य देखा जा सकता है। बौद्ध निर्वाण की कल्पना भी मोक्ष की सांख्य-वेदांत-सम्मत अवधारणा से मूलतः भिन्न नहीं है—भले ही बौद्ध धर्म और दर्शन में स्थूल रूप में नित्य आत्मा की स्वीकृति न हो।

दर्शन के सतर्क अनुचिंतन का विषय किसी संस्कृति के वे सरोकार होते हैं जो उसके मनीषी नेताओं की मन-बुद्धि के विशेष निकट हैं। ध्यातव्य है कि तथाकथित मोक्ष की स्थिति सब प्रकार के बन्धनों से पूर्ण मुक्ति की स्थिति है। किन्तु यह मुक्ति लौकिक से भिन्न अलौकिक धरातल की वस्तु है।

यहाँ हम संस्केत देना चाहते है कि हमारे देश की संस्कृति में व्यक्तियों और वर्गों के नैतिक-सामाजिक सम्बन्धों के बारे में दार्शनिकों द्वारा गम्भीर चिन्तन नहीं किया गया। यूनानी दार्शनिक अरस्तू तथा एपीक्यूरस ने—और यह एक उदाहरण है—मित्रता के स्वरूप और महत्त्व के बारे में संजीदगी से विचार किया है। यहाँ

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सामाजिक सम्बन्धों के सम्बन्ध में स्मृतिकारों ने हजारों पन्ने लिखे पर उनका लेखन प्रायः उपदेशपरक है और दार्शनिक आलोचना की कोटि में नहीं आता। यही बात नागरिक जनता तथा राज्य या शासन के सम्बन्धों के बारे में कही जा सकती है। हमारे किसी महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ने आदर्श राज्य के स्वरूप और उसके अन्तर्गत स्थापित उक्त सम्बन्धों के बारे में सूक्ष्म विचार करने की जरूरत नहीं महसूस की। फलतः राज्य व्यवस्था तथा वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में वही, उपदेशपरक बातें शताब्दियों तक दुहराती जाती रहीं। नतीजा यह कि यहाँ की जनता ने न कभी छोटे-बड़े स्वदेशी या विदेशी राजा के विरुद्ध विद्रोह किया, न वर्णव्यवस्था के। इस तरह के विद्रोह की भावना हमारे अपने युग की देन है। जहाँ एक ओर हमने ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध सत्याग्रह-संग्राम किया, वहाँ दूसरी ओर हमारे कथित निम्नवर्गों के सदस्य संप्रति उच्च जातियों या वर्गों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर रहे हैं। अठारहवीं शती के चौथे चरण की फ्रांस में घटित राज्य क्रांति ने स्वतन्त्रता एवं समानता (तथा समानता से सहचरित मानव एकता) के नारे उठाये थे। सिद्धांत में यहां सर्व भ्रातृभाव अथवा आत्मैक्यवाद, सर्वसमतावाद को पूरी-पूरी मान्यता दी गयी, पर हमारा व्यवहार उसका विरोधी, घोर भेदभाव का पोषक बना रहा। आज जान पड़ता पड़ता है कि अपने कथनी-करनी के इस विरोध को खत्म किये बिना हमारी संस्कृति का आगे बढ़ना सम्भव नहीं है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

ORIGIN AND ANTIQUITY OF INTOXICATING DRINKS IN INDIA

Shyam Manohar Mishra

Intoxicating drinks becalm weariness, impart vigour and inexpressable pleasure, stimulate sensuality, help in curing certain diseases and distract from frustration and worries enabling the drinkers to hold their own for the time being against the "deductions of science and mandates of religion".[1] Besides, spirituous liquors have also been associated with some socio-religious rituals and political ceremonies. No wonder, therefore, if most important festive occassions in ancient India were marked by their large-scale consumption and consequent revellries.

A perusal of several mythologies reveals that there was perhaps a constant quest for the 'immortal liquor' or 'water of life' in the mind of ancient man[2]. And in every part of ancient world the primitive races and tribes without having any knowledge of intoxicating drinks, took them with greatest avidity the moment they discovered them.[3] But in the absence of clear and credible evidence, it is difficult to ascertain as to when, where and how the knowledge, manufacture and use of intoxicants first started. In Indian context, the following depictions in the rock-shelters of late mesolithic period may be taken to be the earliest extant testimony regarding their use :

A scene in the rock-painting at Kathotia shows a group consisting of men, women and children engaged in music, dance and frolic activities. In this group two female figures are shown grinding some hard fruit or other eatable represented by red dots. On the basis of the activities and gestures shown by these people after consuming it, Erwin infers that the fruit or any other stuff (depicted in the picture) might have contained intoxicating ingredients.[3]

Another painting at Lakhajoar represents a group of persons displaying acrobatic dance-steps being followed by another group of seventeen dancers forming a line. The

Dr. Shyam Manohar Mishra, Reader, Ancient Indian History & Archaeology, Lucknow, University Lucknow.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

last man in the latter group appears to have had lost his balance. According to Erwin, the forest inhabited by these people definitely yielded some liquids, plants, fruits or roots having inebriating contents and that the intoxication caused by the consumption of such an eatable or liquid etc. led to fall of the man.[4]

In yet another painting in the ceiling of the rock-shelter No. III F-14 at Bhimvetkā, we find an interesting and unique figure of an old man drinking some liquid from a spouted vessel. The legs of this man are bent forming a slanted M, and his left arm seems drawn to support his back[5]. Although it is difficult to be definite about the nature of the liquid contained in the vessel, the posture of the person and other details of the depictions point to the possibility of its being an inebriating liquor.

Thus these pictorial depictions assigned to c. 8000 B.C. would point to a fairly early beginnings of the use of intoxicants in India. But V. S. Wakankar disagrees with Erwin, Mathpal and others, adding that the use of wine was not known in the mesolithic period.[6]

It is true that people in the mesolithic period neither knew the process of manufacturing wines nor produced raw stuffs etc. required for them. But they seem to have had discovered may be by chance, and also used some such fruits, roots or plants which contained intoxicating contents, as is evident from the depictions referred to above. In this context it is also relevant to mention that several ancient primitive tribes used to throw narcotics into the streams to stupefy fish in order to make them their easy prey. For example the Tahitians dropped into water an intoxicating mixture prepared from the *huteo* or *butes* nut or the hora plant. When the fish drank it, they became unconscious, floated on the surface and were easily caught.[7]

Next we enter into the neolithic age which marks the final phase of stone-age cultures. In the late phase of this period, man learnt the cultivation of a few grains and cereals which infact may give us some ground to postulate the possibility of manufacture and use of spirituous liquors in the period. And Rouechi goes to the extent of suggesting that the desire to ensure a regular supply of alcohol was the root cause of the origin of agriculture in the neolithic period.[8] J. Hawkas and Leonard Wooley make the following observations in this context : 'As all mankind at every level from savagery to decadent civilization, has always been dissatisfied with his state of consciousness and sought to change it by alcoholic (or other drugs), it is most unlikely that the first farmers were an exception to this practice. With a regular supply of grain, beer must surely have been brewed and it was certainly already made on quite a large scale in Pre-Dynastic Egypt.[9]

It has also been contended that the pre-Aryan Dravidians in India used two intoxicating drinks viz. *irā* and *māsara* and knew the technique of toddy-tapping and

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

preparing molasses. The discovery of chunam-like matter in a *lota* at Cuddapah in Andhra points towards the existence of palm-juice industry in neolithic period.[10]

Next comes the period of Harappa culture. This highly developed urban civilization had commercial contacts with Mesopotamia, Egypt, Greece and other countries where the use of alcoholic liquors was fairly common. We are told that the poor among Achaeans i.e., the Greeks of the Heroic Age (B.C. 3500-1000) lived on fish and grains; the warriors and the rich heavily depended on meat and wine, and the staple drink even among the poor and children was diluted wine.[11] And in the Sumerian civilization, wine figured in religious offerings at least one thousand years or so, before it appeared in the religious complex of Indo-Aryans.[12] It has been contended that the perforated pots with large hole at their bottom and small holes all over their body recovered from the Indus sites, were probably used for straining liquor.[13]

However, the earliest clear documentary evidence regarding the use of alcoholic drinks in India is encountered in the Vedic literature (c. 1500 B.C. 1500-500—c. 500 B.C.). The accounts of the *Ṛgveda* and later Vedic texts point to wide-spread use not only of the soma-juice (which was non-intoxicating) but also that of intoxicating *surā* and several other liquors.

The *Rāmāyaṇa* and some early Buddhist and Jain works throw interesting light on the origin of spirituous beverages. According to the *Rāmāyaṇa* different strong liquors prepared from sugarcane juice, molasses, honey and parched grains were produced by Kāmadhenu at the behest of sage Vaśiṣṭha.[14] In another context, the Epic describes *vāruṇi* as a daughter of Varuṇa born during the churning of ocean. The sons of Aditi who accepted her as their life-partner *i.e.*, started using it, came to be called *Surā*. Later on ordinary human beings also started the use of *vāruṇi*.[15]

The Kumbha Jātaka relates a different story of the mythical origin of *surā* and *vāruṇī* which may be summarised thus : A forester named *Surā* was wandering in the Himalaya region in search of medicinal herbs. In that forest-area the rain-water used to get stored in the cavities of some trees in which parrots dropped rice-grains growing nearby. In due course of time, the rice grains got rotten in the stored water which was thus converted into an intoxicating beverage. And the birds and animals who drank it became inebriated. Noticing this the forester also consumed it and experienced intoxication. Later he told about it to an ascetic named *vāruṇī*. Thereafter *Surā* and *Vāruṇa* took the beverage together only to get intoxicated. Thus the drink came to be called *surā* and *vāruṇi* after the names of the foresters *Surā* and *Vāruṇa*. Subsequently the ruler of the region was told about it and the information also passed on to the masses who asked for the drink.[16]

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Another Jātaka story informs us that a creeper called *āsāvati* contained a divine drink which could keep its consumer inebriated for months.[17] And the Jaina scholar Jinasena (c. 900 A.D.) would have us believe that the nectar-like juices *madhu*, *maireya*, *śidhu*, *ariṣṭa* and *āsava* etc. are obtained from the trees of Madyaṅga species and that these juices are called *madya* on account of their being stimulator of sensual desires.[18]

A perusal of the above carries the beginning of the use of intoxicants in India to c.8000 B.C. But more evidence is needed to confirm, reinforce and elaborate the inference regarding their use in mesolithic as well as neolithic period. However, the fact that the techniques of manufacturing exhilerating drink like *soma* and intoxicating beverage *surā* and others were well-known in the Ṛgvedic period, itself presupposes the much earlier beginnings of the use of such drinks. Besides, the pieces of evidence coming from the ancient civilizations of Egypt, Greece and other countries also lend indirect support to this supposition. And the above-mentioned accounts of the *Rāmāyaṇa*, *Jātaka* stories and the *Ādi Purāṇa*, notwithstanding their legendary nature, bring out the following facts :

1. Spirituous drinks *surā* and *vāruṇī* were attributed divine and mythical origins and associations to justify their use by human beings, in fairly early times.
2. The technique of preparing spirituous liquors from rice was discovered by chance. Still earlier in the mesolithic and neolithic periods, the consumption of certain fruits, roots, creeper or leaves etc. might have accidently revealed their intoxicating contents and effects.
3. In later periods sugarcane juice and its products, honey and several fruits and flowers besides cereals were used for manufacturing various alcoholic beverages.

REFERENCES

1. *JAS*, 1873, No. 1, p. 1.
2. Dange, S. A. *Three Stages in the advent of Soma*, p. 62.
3. Erwin, *Pre-historic Rock-paintings*, pp. 27-28.
4. *Ibid*, pp. 18-19.
5. *Archaeology and History*, (A Ghosh Felicitation Volume), Vol. 2, Delhi, 1987, p. 586.
6. Will Durant, *Story of Civilization*, Vol. 2, pp. 6-7.
7. *Ibid.*

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

8. Rouechi, J. S., *Social Control*, (Affiated East-West Press), 1962, p. 5.
9. Hawkas and Wooley, *Pre-history and Beginning of Civilization*, Vol. I, p. 317.
10. Dikshitar, V. R. R., *Pre-historic South India*, p. 75.
11. Will Durant, *op. cit.*, pp. 44-45.
12. Kramer, S. N., *History Begins at Sumer*, pp. 150, 188, 197 and 271.
13. *Vedic Age*, (1965), pp. 185-86.
14. एवमुक्ता वसिष्ठेन शबला शत्रुसूदन।
विदधे कामधुक्कामान् यस्य यस्य यथेप्सितम् ।।
इक्षून् मधुंस्तथा लाजान् मैरेयांश्च वरासवान् ।
पानानि च महार्हाणि भक्ष्यांश्चोच्चाव चांस्तथा ।।

Rāmāyaṇa, 1.53-1-2.

15. वरुणस्य ततः कन्यावारुणी रघुनंदन ।
उत्पपात महाभागा मार्गमाणा परिग्रहम ।
दितेः पुत्रान् तां रामजगृहुवरुणात्मजाम् ।।
अदितेस्तु सुतावीर-जगृहुस्तामनिन्दितां ।
असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः ।।
हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन् वारुणी ग्रहणात्सुताः ।

Ibid, I 45-35-38.

16. *Jātaka*, No. 516.
17. *Ibid.*
18. *Ādi Purāṇa*, IX.37-39.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CONCEPT OF JAMBŪDVĪPA JĀTAKAS

U. N. Upadhyaya

Jātakas like other *Pāli* texts and Jain literatures are considered to be the significant and informative literary evidence to study socio-religious condition of Budhist India. These are equally important for the study of historical geography of ancient India like *Pāṇini's Aṣṭhādhyāyī*, *Mahābhārata* and *Purāṇas*. A critical study of *Jātakas* show that in Pre-Budhist time, the very term *Jambūdvipa* was invariably used for whole of the Indian sub-continent as Budha himself has asserted this fact that he was born in *Jambūdvipa*.[1] *Mahāvaṁśa*[2] probably shares the above view of *Jātakas* and emphatically states that *Jambūdvīpa* is quite separate from *Singhala-dvipa* and *Tāmraparṇī*. Chinese traveller *Yuāng-Tsāng*[3] has also advocated that *Jambūdvipa* is essentially a literal translation of Chinese term *Champū*, which necessarily stand for *Jambūdvīpa* as envisaged by *Jātakas*. But surprisingly enough, he simultaneously uses another term Yin-tū which (in his opinion) denotes *Bhāratavarsha*. This statement of course, requires clasification in the back-ground of authentic historical evidence available from other sources.

Dr. *Winternitz*[5] observation on this issue probably rules out the feassibility of above two geographical terminologies used by Chinese traveller for he specifically maintains that *Jambūdvīpa* is exclusively used for *Bhārata* which is further testified by Tibbatan tradition as well. Hence the two separate terms *Chmpū* and *Yin-tū*[6] more or less conveys the same meaning. Further *Jātakas*[7] have furnished substantial material-evidence in support of our contention and therefore, the hypothetical confusion created by Chinese—traveller formulating two separate terminologies i e. *Champū* and *Yin-tū* for *Jambūdvipa* and *Bhāratavarsha* is basically wrong since it stands on slipery ground in absence of any concrete evidence, because these two geographical terminologies obviously stand only for *Jambūdvipa* of *Jātaka*. These terms simply indicate the various names of *Bhāratavarsha* and nothing else. On the other hand, we can not justifiably establish any conclusive opinion on this issue, undermining the *Purāṇic* sources which are indubitably of immense significance.

Dr. U. N. Upadhyaya, Deptt. of A. I. History & Archaeology, D. A. V. Degree College, Lucknow.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

However, a critical study of *Pāli* texts reveals that *Himaya* (Himālaya) comprising of 84,000 peaks is located in *Jambūdvipa* towards southern region of *Sumera* mo ntain. Thus it is probably established that *Jambūdvipa* described in *Pāli Tripiṭaka* is located towards south of *Himālaya*.[8]

According to *Purānic*[9] theory the earth consists of seven *dvipas* and *Jambūdvīpa* is one of them. Besides, *Jambūdvipa* construed by *Purāṇic* authors is a composition of nine *Varshas* and *Bhāratavarsha* is one of them. *Jambūdvipa* also occur in *Mahābhārata* where it has been described as *Sudersana-dvipa*.[10] Now we have to reconcile the above two contradictory theories of *Purāṇas* and *Jātakas* about *Jambūdvipa* on the basis of histo ical and geagraphical analysis of the two different propositions taking into consideration the views of Chinese traveller, topographical identification and observation made by Dr. *Winternitz*.

At the out-set, topographical identification of *Jambūdvipa* as suggested by *Jātakas*[11] are comparatively more convincing and certainly stand to reasons. *Mahā Umagga Jātaka*[12] refers that *Jambūdvipa* was surrounded by Sea. Similarly, we have reference of *Dakshiṇāpatha* and Western parts of *Jambūdvipa* (as evident from *Susandhi Jātaka*) which was connected by land and sea-route.[13]

We further notice the name of *Suraṭha* and *Śurapāraka*[14] in the western region, this bears the testimony from the fact given in the *Pāli* texts that on the western part of *Jambūdvipa*, *Bharukacch*[15] was an important sea-port. Likewise *Gāndhāra* and *Kamboja* formed a part of sixteen Janapadas of Budhist India, which have aptly been identified by the scholars with modern Afganistan and region of *Kashmira*.[16] So on the available geographical and historical evidence we may comfortably take modern Afganistan and Kashmira as the north-western boundary of *Jambūdvipa*. This is also attested by epigraphic evidence.[17] This leads us to believe that even in Maurayan times, Afganistan and Baluchistan formed the part of *Jambūdvīpa* as contended by *Jātakas*.

Moreover, geographical division of *Jambūdvipa* in five-sections namely – *Pubvanta*[18] (Purva desa), *Aparānta*,[19] *Uttarāpatha*,[20] *Dakshiṇāpatha*[21] and *Majjhimdeśa* makes our contention more authentic as it talies with most of the geographical features and division of *Bhāratavarsha*[22] The idea of 5 parts of *Bhārata* has equally been shared by Chinese travellers. This tradition has also been followed by *Huen-Tsang*.[24] In *Pāli* texts, *Mjjhimdeśa* has been assigned the highest position and according to *Jātakas* the northern boundary of *Mojjhimdeśo* was marked by mountain namely *Uśirdhwaja* which has been identified by *Cunninpham*,[25] *Dr. Laha*[26] and *Rāhul Sāṁskritāyana*[27] with *Uśirgiri* mountain located near Haridwar towards northern side of modern Kanakhala, which formed a part of *Himālaya*. Thus, it is established that northern—boundary of *Majjhimdeśa* of *Jātakas* s in consonance with the conventional geographical features and topography of *Madhyadeśa* of *Purāṇas*. From the perusal of *Nidhāna Kathā* of *Jātakas*, it transpires that

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Majjhimdeśa (*Madhyadeśa*) was 300 *Yojana* in length 250 *Yojana* in breadth and its circumferancial area approximately comes to 900 *Yojana*.[28] A clear conception of the factual boundaries of *Majjhimdeśa*[29] can be gathered from *Vinaya Piṭaka* and *Mahāvagga*. The contention of Dr. B. C. Law that boundary of *Madhyadeśa* as described in *Manusmriti* was extended upto *Magadha*,[30] appears to be a hypothetical conception, for want of tangible evidence.

Now, if we have bird's eye view over the geographical features of *Bhāratvarsha*[31] as described in *Purāṇas*, it becomes evident that geographical topography of *Bhārata* necessarily stands for *Jambūdvīpa* of *Jātakas*. To be more precise, the boundaries, shape and actual location of *Bhārata*[32] resembles to a great extent to that of topography of *Jambūdvīpa* of *Jātakas*. *Purāṇas* further suggest that *Bhāratavarsha* is a *Karmabhumi*,[33] which notion has amply been appreciated by *Jātakas* in respect of *Jambūdvīpa*, as Budha himself has asserted this fact and accordingly preferred *Jmbūdvīpa*, (*Bhāratavarsha* of *Purāṇas*) as centre of his main activities considering it as land of action (*Karmabhūmi*). Dr. Jaiswal has however, compared the *Purāṇic Jambūdvīpa* to that of entire Asian continent[34], which does not stand to reasons.

Thus it is seen that most of the historical and geographical descriptions of *Bhārata* envisaged by *Purāṇic* authors more or less resemble with the geographical features of *Jambūdvīpa* of *Jātakas*. At the out set, there remain sufficient evidence to oppose the views advocated by *Childer*[35] that *Jambūdvīpa* has been identified with *Bhārata* in 'narrower-sense'. Probably he has undermined the material evidence regarding *Jambūdvīpa* which do not leave any room for doubt. Moreover, there is every likelihood that due to geological evolutions, the shape and size of *Jambūdvīpa* of *Purāṇas* gradually changed and by the time of *Jātakas* probably it was transformed into a shape, size and features of *Bhāratavarsha* in totality. However, the definition, geographical location and identification of *Purāṇic Jambūdvīpa* is very much confusing and ambiguous, for it is used sometimes for *Bhārata* and elsewhere for hole of greater India. On the other hand, *Jambūdvīpa*[36] of *Pāli* texts has always been used for *Bhāratavarsha* which of course, carries much weight as this identification is definitely pregnant with convincing justification and logical tradition.

Probably *Bhārahavaha* of Jain tradition as suggested by Dr. B. S. Upadhyaya necessarily stands for *Jambūdvīpa*. Now it appears that the Chinese terms *Yin-tū* or *Yuan-tū* is the literal translation of Sanskrit terms *Indudeśa*, i.e. for *Bhārata* which was commonly known to Chinese.[37] Therefore, it is presumed that Chinese traditions have also accepted the concept of *Jambūdvīpa* of *Pāli*—text exclusively for *Bhārata*, because they have used both *Champū* and *Yin-tū* for *Jambūdvīpa*,[38] which is evidently testified by Dr. Witernitz, who had removed all the mis-conception on this issue.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Thus it is abundantly established that "the concept of *Jāmbūdivpa* as contended by *Jātakas* and "*Bhāratvarsha*" of *Purāṇic* theories are probably one and the same, as its authenticity can not be challenged at present, merely on the basis of vague and dubious interpretations, which are abviously shrouded with mystery.

REFERENCES

1. *Jātakaṭṭhakathā*, pt. I, p. 38, (*Bhārtiya Gyān Peetha*—Varanasi). It specifically refers that *Jambūdvīpa Yava Budha nibbatantiti*, Compare *Budhavaṁśa Aṭhakathā*, p. 48, Also *Papanchasūdani Majihima Nikāya—Aṭṭhakathā*, Vol. II, p. 917).
2. Upadhyaya, B. S. *Budha Kāleen Bhārtiya Bhūgol*, p. 54-56, Ist Edition.
3. See Thomas Watters, On *Yuān Chwāng* Travels in India Vol. I, p. 32-33 and 140. Perhaps *Yuān Chwāng's* both the terminologies stand for *Bhārata*.
4. During 2nd Century B.C. India was known to Chinese as *Yu-Yān-tū* or *Yin-tū* (Pl. see Cunn. A, A. Geog. of India, p. 11, Calcutta, 1924).
5. *Winternitz* : History of Indian Literature, Vol. II, p. 363, Foot Note 3. (Also see Cunn. A. Geog. India, p. 11).
6. *Yuān Chwāng* has used both the terminologies '*Champū*' or *Yin-tū* probably for *Jambūdvīpa* itself.
7. *Jātaka*, No. 72, pt. I, p. 463.
8. *Patmath* Jātaka, Vol. II, p. 443, *Sāmanta Pasādikā*, Vol. I, p. 119.
9. For details kindly see Sk. II.V. 17, 22.
1.9, 42, *Brahma*, 16.10-21-27, *Bhāgawata*, 5.16.1.34,31. *Bhishma Parva*, (*Jambū Kland Vinirmāṇaparva*), V. 13 to 17 and Ch. 6.
11. *Jātaka*, No. 72, pt. I, p. 463.
12. *Jātaka*, No. 546, pt. VI, p. 473, (Hindi Translation).
13. *Jātaka*, No. 360, pt. III, p. 349.
14. *Jātaka*, No. 463, pt. II, p. 337.
15. Rhyse Davids : Budhist India, p. 23, Ist Edition 1953.
16. Upadhyaya, B. S. *Budha Kāleen Bhūrtiya Bhūgola*, p. 62.
Literary Inscription, p. 9).
18. *Apūraṇaka Jātaka*, pt. I, p. 176-77.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

19. *Apūraṇaka Jātaka*, p. 176, *Suppanaka Jātaka*, pt. IV, p. 337. Also see *Indriya Jātaka*, pt. IV, p. 123. *Subhanda Jātaka*, pt. IV, p. 337.

20. *Tandunāla Jātaka*, pt. I, p. 208, *Ghaṭṭa Jātaka*, pt. IV, p. 281.

21. *Surbhanga Jātaka*, pt. I, p. 215, (Hindi Translation).

22. *Nidāna Kaṭṭha Jātaka*, pt. I, p. 116.

23. *Cunningham* : Ancient Geography of India, p. 11-14, Calcutta, 1924.

24. Beal, Budhist Records of the Western World, Vol. I, p. 70, London, 1880. Also Watters : *On Yuān Chwāng Travels* in India, Vol. I, p. 140.

25. Cunningham, A. Geography of Ancient India (Introduction, p. 43).

26. Dr. Laha. 'Geography of Budhism', p. 2. *India as described in early texts of Budhism and Jainism*, p. 211.

27. Rāhula Sāṁskrityāyana, *Budhacharyā*, p. 546.

28. *Jātaka Nidhāna Kathā*, pt. I, p. 116. In *Pāli* Texts it is described as "*so ayamatana tine yojanasatāni vitharata dhitiyāni Janāni pariphepathan nava yojana satumuti.* (*Jātakaṭṭhakathā*, Patham Bhagam, p. 39, *Bhartiya Jyan Peetha Kasi*).

29. *Vinaya* (Hindi Trans.), p. 213, Sarnath, Varanasi, 1935. Compare Geographical boundaries of *Majjhimdeśa* with that of *Madhyadeśa*.

30. The ancient Magadhana Country including Banaras and Budha Gaya was land par-excellence of Budha and Budhism. It was therefore, quite in the logic of circumstances that the Budhist Writers would extend the boundary of '*Madhyadeśa*', (*Majjhimadeśa*) further towards the east so as to include the Budhist holyland. (Dr. Law, B. C. Geog. of Early Budhism, p. 1, London, 1932. Compare India as described in Early Texts of Budhism and Jainism, p. 20-21, London, 1941).

31. "*Utare Himavānasti Khirodo dakshiṇesmṛtah etasminatara*, Devi Bhāratam Kshetramutaṁ". (Skand. vii, i, 11.8 (ii), 9(i).

32. "*Bharatam nama Yadavarsham dakshinantayam mayoditam Dakashine parato yasya puwena cha mahodadhi Himavanuttarena.* Karmikarasya Yatha gunah'. (Sk. VII, I, II).

33. *Karmabhūmi*—the land of action which leads to the attainment of four human-ends (*Purushārth*) viz., *Dharma*, *Artha*, *Kāma* and *Moksha*. (Sk. I, II, 37, 57-58).

34. Jaiswal, K. P. (Indian Antiquary, Vol. 62, p. 70). Dr. H. C. Ray Choudhury has also given vivid description of *Jambūdvīpa*. (Studies in Ind. Antiquities, p. 71).

35. *Childer's* (*Pāli* Dictionary, p. 165) points out that when opposed to *Simhaldvipa*,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Jambūdvīpa means the continent of India .. the Minor Rock Edict. No. 1 of Ashoka mentions *Jambūdvīpa* . .... ruled by that great emperor. In the epic and *Purāṇas* *Jambūdvīpa* . is one which is in its narrower sense identified with *Bhāratavarsha* or the Indian peninsula. (Historical Geography of Ancient India, p. 91).

36. Upadhyaya, B. S. *Budha Kāleen Bhārtiya Bhūgola*, p. 54, Fn.

37. Watters : *On Yuān Chwāng Travells in India*, Vol. I, p. 132, London,

38. See : Watters—'*On Yuān Chwāng Travells in India*', Vol. I, p. 138, London.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

TEMPLE OF GAURĪ-SOMANĀTHA AT MANDHATA, DISTT. KHANDWĀ, M. P.

B. L. Nagarch

Mandhata is one of the most celebrated places of Śaiva pilgrimage. It is located 75 kms. north-west of Khandwa in the district of the same name in Madhya Pradesh. The nearest Railway station is Onkareshwar road on metre gauge western railway connecting Ajmer with Khandwa. The distance from the Railway station to Mandhata is 11 kms and regular buses ply from the Railway station to Mandhata. Mandhata is connected with Khandwa, Indore Maheshwar and Ujjain by bus.

Mandhata is a village situated partly on the south bank and partly on an island in river Narmada. Some scholars have tried to identify Mandhata with ancient Māhishmatī. Mandhata has a number of temples. The main temple is dedicated to Onkareshwar. The temple is dedicated to one of the twelve Jyotirliṅgas.

The temple of Gauri Somanātha stands to the north of the island. It has a star-shaped plan, and stands on a spacious platform on the northern hill. It consists on plan of a *saptaratha* sanctum and a vestibule (pl. I). The sanctum enshrines a black stone polished *liṅga* (pl. II). The temple faces east. In front of the vestibule is a platform on which is installed a seated Nandi. The sanctum as well as the vestibule are two-storeyed. The first floor is approached by a flight of steps on the east.

The sanctum-doorway shows seven jambs or *śākhās*. The lower portion of the right flank of the doorway shows :

1. A female standing in *tribhaṅga* under a lotus-parsol and carrying *kaṭi* and upraised. Her left hand has been chopped off.

Dr. B. L. Nagarch, Superintending Archaeologist Archaeological, Survey of India, Temple Survey Project (North) Bhopal.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

2. A female standing in *tribhaṅga* under a lotus-parsol and carrying indistinct and *kalaśa*. Her left breast has been chopped off.

3. A female standing in *tribhaṅga* under a lotus-parsol and carrying *kaṭi* and *bijapūrka*. Her right hand has been chopped off.

4. A niche composed of two circular pilasters and containing an image of a four-armed *śaiva dvārapāla* standing in *tribhaṅga* and carrying indistinct, *triśula*, *sarpa*, and *bijapūraka*.

5. A female standing in *tribhaṅga* and carrying *kati* and *kalaśa*.

6. A female standing in *tribhaṅga* in a recess.

7. A male standing cross-legged and carrying concealed and a bow.

The left flank of the doorway shows (1) A female standing in *tribhaṅga* under a lotus-parsol and carrying upraised and *kaṭi* (2) A female standing in *tribhaṅga* under a lotus-parsol and carrying flower and *kaṭi* (3) A female standing in *tribhaṅga* and carrying *kalaśa* and *kaṭi*. She stands under a lotus-parsol. (4) A niche composed of two circular pilasters and containing an image of four-armed *śaiva-dvārapāla* standing in *tribhaṅga* and carrying *kalaśa triśūla*, *sarpa* and *gadā*. The *gadā* in his lower left hand has been chopped off. (5) A female standing in *tribhaṅga* under a lotus-parsol and carrying upraised and *kaṭi*. (6) A female standing in tribhaṅga in a recess and carrying upraised and *kaṭi* (7) A male standing cross-legged and carrying bow and indistinct.

The doorway is of overdoor design. The lintel of the doorway of the sanctum shows four-armed Gaṇeśa seated in *lalitāsana* on the *lalāṭa-bimba*.

The door-sill of the sanctum-doorway shows a *mandāraka* in the centre decorated with bold lotus-scrolls. The *mandāraka* is flanked on either side by a kīrttimukha with open mouth. Inside the sanctum is also seen an image of four-armed Pārvati standing in *samabhaṅga* (pl. III).

The vestibule is decorated with two hollow niche-shrines composed of two rectangular pilasters and surmounted by a *makara-toraṇa*. The niche-shrine in the southern wall contains a *śivaliṅga* made of polished black sandstone and measuring 0.65 mt. high. The niche-shrine in the northern wall is vacant at present. The ceiling of the sanctum consists of five receding octagons and is decorated on the top with geometrical and floral designs. (pl. IV).

The pīṭha of the temple consists of the following mouldings from bottom upwards, (1) plain *bhiṭṭa*, (2) *bhiṭṭa* decorated with half-chaitya arche design, (3) *jāḍyakumbha*, (4) *karṇikā*, (5) *kapota* and (6) *grasspaṭṭikā*. The *adhishṭhāna* mouldings show from bottom upwards. (1) *Khura* (2) *kumbha* divided into two segments by a median band

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

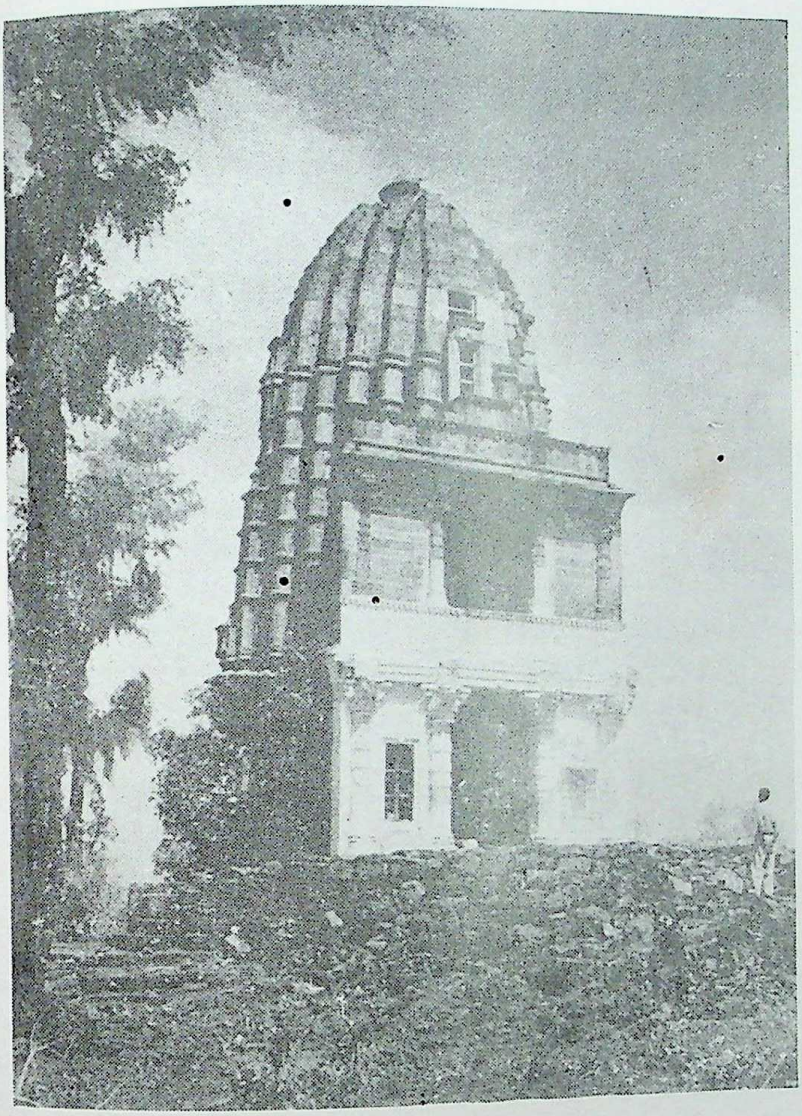

Pl. I. Gaurī Somanātha temple, General view from south east (M. P.)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

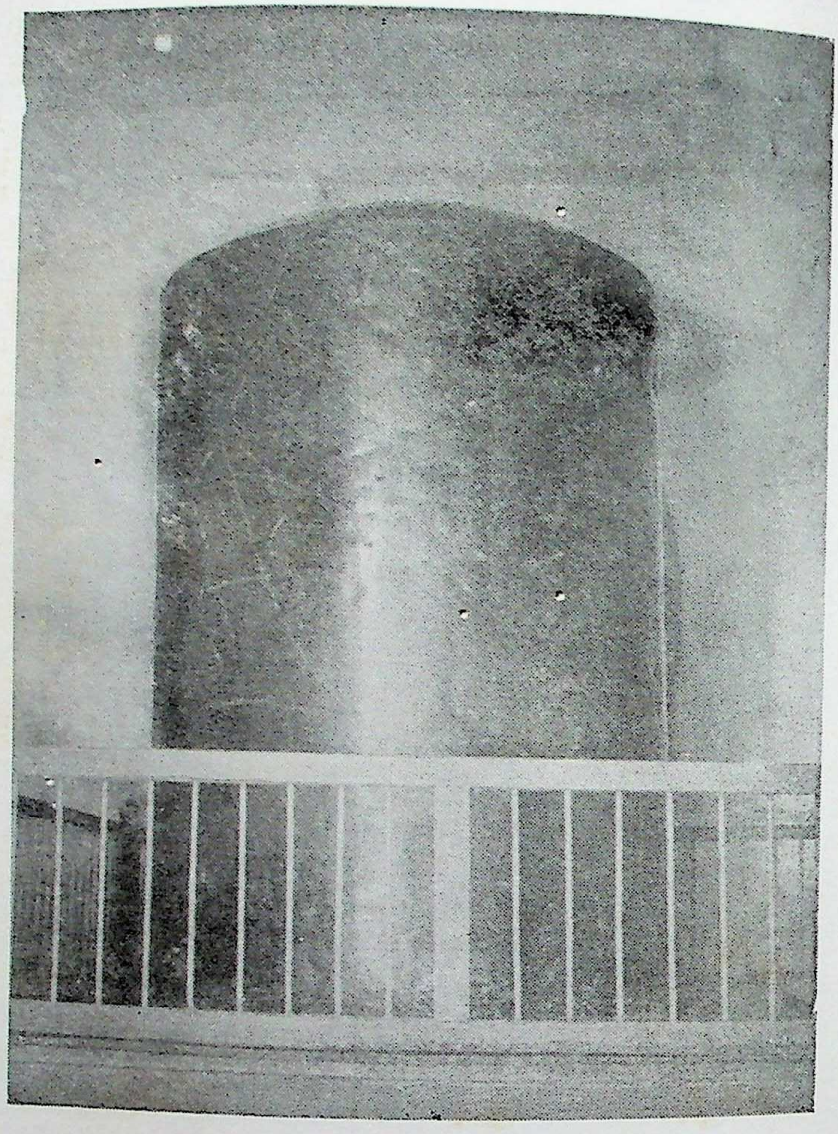

Pl II. Śivaliṅga, Gaurī-Somanātha temple (M. P.)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

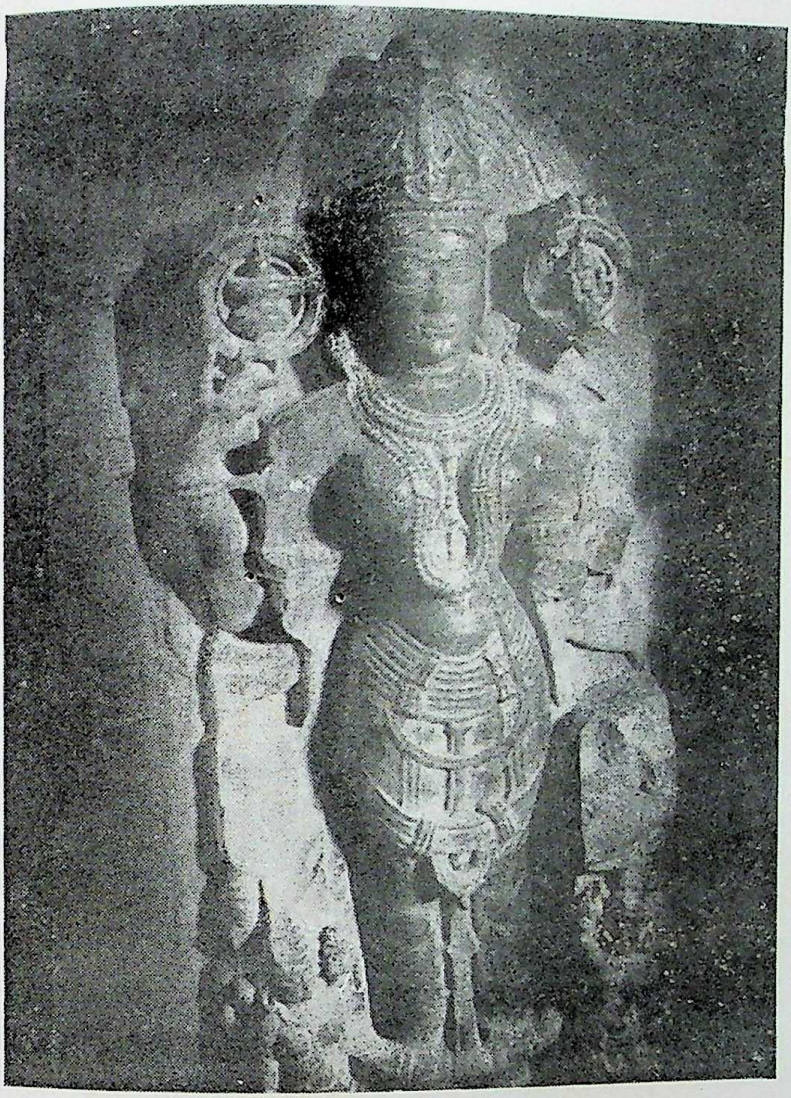

Pl. III Pārvatī, Gaurī-Somanātha temple (M. P.)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

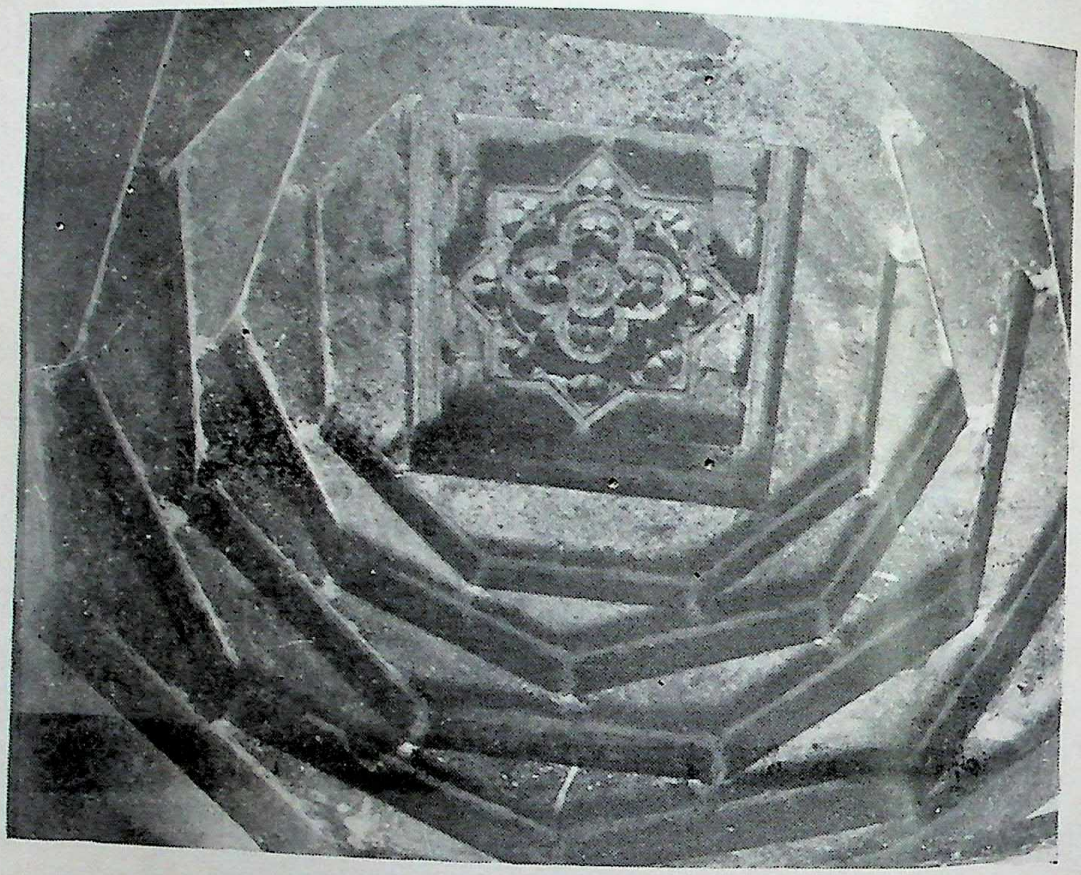

Pl. IV. Ceiling of the sanctum, Gaurī-Somanātha temple (M. P.)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Pl. V. The mouldings and the Jaṅghā on the northern facade Gaurī-Somanātha temple (M. P.)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

of diamonds and rosettes and decorated with diamond and chess designs in niches surmounted by a *chaitya*–arches, (3) *kalaśa* decorated with a median band of diamonds and rosettes, (4) *kapota* decorated with *kuḍūs*, (5) A plain *kalaśa*. Above this rests the *jaṅghā* divided into two segments by a *karṇikā* (pl. V). The upper portion of the *jaṅghā* is decorated with *chaitya*–arches and half lotus medallions. The *bhadra* on the *jaṅghā* shows an image of a deity in a niche. Above the *jaṅghā* rest the *varaṇḍikā* mouldings. The *varaṇḍikā* mouldings are surmounted by the *śikhara*. The *śikhara* is divided into seven storeys by *bhūmi-āmalakas*.

SCULPTURES ON THE SOUTHERN JAṄGHĀ FACADE :

The *bhadra* on the southern *jaṅghā* facade is decorated with a niche composed of two circular pilasters and surmounted by a *makaratoraṇa*. The niche contained an image of four-armed kubera standing in *tribhaṅga* and carrying *varada*-cum-*akshamālā*, purse, purse and *kalaśa*. He wears *karaṇḍa-mukuṭa*, *kuṇḍalas*, *vaikakshyaka*, *hāra* long *mālā* and a lower garment fastened by a *mekhalā*. The mount elephant is shown seated on his left.

2. The *kumbha* moulding of the *adhishṭhāna* shows on the *bhadra* a niche composed of two rectangular pilasters and surmounted by a *chhādya*. It is decorated with diamonds and lotus designs on the top. The niche contains an image of four-armed vaishṇavī seated on Garuḍa and carrying broken *chakra* and *gadā*. The head of Garuḍa and both the legs of Vaishṇavī have been chopped off. She wears *kirīṭamukuṭa*, *kuṇḍalas*, *vaikakshyaka*, *hāra*, *keyūras*, *valayas* and a *sārī* fastened by a *mekhalā*.

3. A niche on the lower portion of the śikhara and above the *varaṇḍikā* mouldings is lying vacant at present.

4. A niche on the seventh i.e. the top most storey of the *śikhara* contains an image of four-armed Śiva standing in *tribhaṅga* and holding a *khaṭvāṅga* in his upper right hand.

NICHE ON THE SOUTHERN WALL OF THE VESTIBULE :

A niche composed of four rectangular pilasters and surmounted by an *udgama* decorated with diamond designs is seen on the southern wall of the vestibule. It contains an image of four-armed Gaṇeśa seated in *lalitāsana* and carrying *aṅkuśa*, *paraśu*, *padma*, and *modaka-pātra*. He wears *karaṇḍamukuṭa*. He is pot-bellied and a snake is tied around his belly. His trunk rests on the *modakapātra*.

NICHES ON THE WESTERN FACADE :

The western facade of the temple shows four niches one on the *Kumbha*, other on

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

the *jaṅghā*, the third on the lower portion of the *śikhara* above the *jaṅghā* and the fourth on the seventh storey of the *śikhara* :

1. The niche on the *bhadra* of the *kumbha* consists of four rectangular pilasters and is surmounted by an *udgama* decorated with lotus and diamond designs. The niche contains an image of four-armed Maheśvarī seated on a bull. All of her hands except the right upper one have been chopped off. She carries a *triśūla* in her upper right hand. She wears *Jaṭāmukuṭa, kuṇḍalas, vaikakshyaka, hāra, keyūras, valayas* and *sāri* fastened by a *mekhalā*. Her breasts and legs have been chopped off.

2. The niche on the *bhadra* of the *jaṅghā* is composed of two circular pilasters and is surmounted by a *makaratorana*. It contains an image of four-armed Śiva standing in *tribhaṅga* and carrying *varada*-cum-*akshamālā, triśūla, khaṭvāṅga* and *gadā*. He wears *jaṭāmukuta, kuṇḍalas, vaikakshyaka, hāra yajñopavita, keyuras, valayas* a long *mālā* and a lower garment fastened by a *mekhalā*.

3. A niche on the lower position of the *śikhara* above the *varaṇḍika* mouldings, contains an image it four-armed Śiva standing in *samabhaṅga* and holding a *triśūla* and *sarpa* in his upper right and left hands. The image is made of black stone.

4. A niche on the seventh storey of the *śikhara* contains an image of Umā-Maheśvara seated.

NICHES ON THE NORTHERN FACADE

The northern facade shows four niches like the other facades on the *bhadra* :

1. The niche on the *kumbha* is composed of four rectangular pilasters and is surmounted by an *udgama* decorated with diamond designs. The niche contains an image of four-armed Brahmī seated in *lalitāsana* on a *pitha*, She wears *jaṭāmukuṭa, kuṇḍalas, vaikakshyaka, keyuras, valayas* and a lower garment fastened by a *mekhalā*. She carries *varada*-cum-*akshamālā, ṣruk, pustaka* and *ghaṭa*.

2. A niche on the *bhadra* of the *jaṅghā* composed of two circular pilasters and surmounted by a *makara-toraṇa*. It contains an image of four-armed Brahmā standing in *tribhaṅga* and carrying *varada*, chopped off spiral lotus-salk and *ghaṭa*, He is bearded, pot-bellied and has long moustaches. He wears *jaṭāmukuṭa, kuṇḍalas, hāra, keyūras, valayas*, a lower garment fastened by a *mekhalā* and a long *mālā*. The seated mount swan with chopped head is shown on his left.

3. A niche on the lower portion of the *śikhara* and above the *varaṇḍikā* mouldings is lying vacant at present.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

4. niche on the seventh storey of the *śikhara* contains an image of four-armed Devī standing in *tribhaṅga* and holding a *gadā* in her upper right hand.

SCULPTURES ON THE NORTHERN JAṄGHĀ FACADE

1. A niche composed of two circular pilasters and surmounted by a *makara-toraṇa*. It contains an image of four-armed Śiva standing in *tribhaṅga* and carrying *varada*-cum-*akshamālā*, *triśūla*, *sarpa* and *gadā*. He wears an elongated *jaṭāmukuṭa*, *kuṇḍalas*, *vaikakshyaka*, *hāra*, *keyuras*, *valayas*, a long *mālā* and a lower garment fastened by a *mekhalā*. The seated mount bull with upraised head is shown on his right.

2. A niche composed of two circular pilasters and surmounted by *makara toraṇa*. It contains an image of four-armed Śiva standing in *tribhaṅga* and carrying *bijapūraka*, *ḍamaru*, *khaṭvāṅga* and *kapāla*. He wears *karaṇḍamukuṭa*, *kuṇḍalas*, *vaikakshyaka*, *hāra*, *yajñopavita*, *keyuras*, *valayas* and a lower garment fastened by a *mekhalā* with loops and tassels.

3. A dancing *apsaras* shown under a lotus in a recess. Both of her hands have been chopped off.

4. An *apsaras* standing under a spiral lotus-stalk in a recess. Her right hand is in *kaṭi* while her left hand is held above her head.

5. A niche composed of two circular pilasters and surmounted by a *makara toraṇa*. It contains an image of four-armed Śiva standing, in *tribhaṅga* and carrying *varada*-cum-*akshamālā*, *triśūla*, *sarpa* broken. He wears *keyūras*, *valayas*, *nūpuras* and a long *mālā* and his lower garment is fastened by a *mekhalā*.

6. A niche composed of two circular pilasters and surmounted by a *makaratoraṇa*. It contains an image of four-armed Śiva standing in *tribhaṅga* and carrying *varada*-cum-*akshamālā* in his only surviving lower right hand. He wears *jaṭāmukuṭa*, *kuṇḍalas*, *vaikakshyaka*, *hāra*, *yajñopavita*, *keyūras*, *valayas*, *nupuras* and a long *mālā* and his lower garment is fastened by a *mekhalā* with loops and tassels.

7. A dancing *apsaras* under a spiral lotus-stalk in a recess.

8. An *apsaras* standing under a spiral lotus-stalk in a recess and dancing. Both of her legs have been choped off.

9. A dancing *apsaras*, under a spiral lotus-stalk in a recess. Her head has been chopped off.

10. A dancing *apsaras*, in a niche composed of the circular pilasters. Her right leg and left breast have been chopped off.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

11. A dancing *apsaras*. Her head, left hand and left leg have been chopped off. Her right hand is carried above her head.

12. As *apsaras* standing in *tribhaṅga* in a niche composed of two circular pilaster. Both of her hands have been chopped off.

NICHE ON THE NORTHERN WALL OF THE VESTIBULE

A niche composed of four rectangular pilasters and surmounted by an *udgama* decorated with diamond designs. It contains an image of four-armed Lakshmī seated in *lalitāsaṅa* and carrying *varada*-cum-*akshamālā*, *padma*, *padma* and *kalaśa*. She wears *karaṇḍa-mukuṭa*, *kayūras*, *valayas*, *nūpuras* and a lower garment fastened by a *mekhalā*.

The sanctum measures externally 10.50 mt. long and 7.50 mt. broad. The vestibule measures 7 mts. long and 2.50 mt. broad. The platform in front of the vestibule measures 9 mt. long. The platform is reached by a flight of steps on the east. The floor of the platform and the steps are in a bad state of preservation.

SCULPTURES AND ARCHITECTURAL FRAGMEENTS LYING AROUND THE TEMPLE

A number of sculptural and architectural fragments are lying scattered around the temple. They are as follows:—

1. Bust of a bearded ascetic holding a rosary in his right hand. His head and hand have been chopped off. He has moustaches.

2. Eight-armed Gaṇeśa dancing. He holds a serpent by his upper right and left hands. He holds a *modakapātra* in his lowest left hand. His head and remaining hands have been chopped off. He wears *karaṇḍa mukuṭa vaikakshyaka*, *hāra*, *keyuras*, *valayas*, *nupuras* and lower garment fastened by a *mekhalā* with loops and tassels. A female attendant standing in *tribhaṅga* and carrying *kaṭi* and *kalaśa* is shown on his right while the mount mouse is portrayed on his left. It is made of white sandstone and datable to c. 11th cen. AD. It measures 2.40 mt. high 1.30 mt. broad and 0.60 mt. thick.

3. A bold *kirttimukha* of white sandstone

4. Seated Gaṇeśa with hands chopped off. It is made of white sandstone

5. An *apsaras* standing under a spiral lotus-stalk and holding a child by her both hands.

6. Four-armed Mahishamardinī killing the buffalo demon.

The front portion of the temple has been washed with pink colour by the local people. This should be stopped immediately. The roof of the vestibule rests on

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

four pilasters. Each pilaster is decorated with *chaitya*-arches and half lotus-medallions. Above the shaft is a capital decorated with flying *bhuta*-brackets.

The temple is a grand specimen of Paramara temple architecture of c. 11th century AD and is under the protection of the department of Archaeology, Govt. of Madhya Pradesh.

REFERENCES

1. P.N. Srivastav, East Nimar District Gazetteer, Bhopal, 1969, p. 468-472
2. Nimar District Gazetteer p. 239, 241.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

DEVELOPMENT OF THE BRICK TEMPLES IN UTTAR PRADESH

Amar Singh

In ancient and medieval periods, many temples and images were built with stone, brick, wood or other perishable material. Out of these many have got ruined leaving only stray remains. Therefore, the standing temples are rare. However, loose images are in abundance. Due to lack of stone, in the plains of North India, brick work seems to have been very popular and extensively applied.

The earliest remains of the brick temples are traceable by excavations. These are in ruins and have no complete structures to give us a firm idea about their forms. A brick temple of the Mauryan period (c. 3rd century B.C.) was excavated at Bairat (District Jaipur in Rajasthan). It originally consisted of a small portico supported on two wooden pillars attached to a circular *garbhagṛha*. Portico was surrounded by a circumambulatory. The whole structure was enclosed within a rectangular compound.[1] Another example of a brick temple datable to Ist cent. B. C. is recovered at Nagari. During the course of excavations Bhandarkar found the remains of a brick platform in the western half of the Hathibada enclosure. There was no evidence of any superstructure on it. As suggested by him, the superstructure may have been made of brick or timber which may have disappeared in course of time.[2]

At Sonkh (District Mathura) the remains of an apsidal brick temple (No. 2) were discovered from the Kuṣāṇa level during the excavation. The temple was dedicated to nāga cult. Except for the entrance on the eastern side it was surrounded by pillars on all sides, only the brick foundations of which are now preserved. The whole structure was erected on a platform.[3] Another apsidal brick temple (No. 1) was also excavated from the same mound at Sonkh. Most probably, this temple in its oldest shape existed as early as Kuṣāṇa period.[4]

Dr. Amar Singh, Lecturer, Dept. of Ancient Indian History and Arch., University of Lucknow, Lucknow.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Two large terraced brick temples were revealed by the excavations at Ahicchatra (District Bareilly) belonging to the nāga period (c. 3rd-4th century A.D.) or slightly later in date.[5] Like Ahicchatra, there is another specimen of terraced brick temple of the same period excavated from Pawaya, near Gwalior, showing three terraces, of which the upper two are decorated with a row of pilasters surmounted by chaitya window motifs.[6]

From the above examples, we can say that during the pre-Gupta period brick temples were built circular, square, rectangular and apsidal on plan, We can not have a definite idea about their superstructures as they are ruined now.

Brick temples developed in two stages during the Gupta period. In the first stage, they were consisted of a square sanctum and a pillard portico covered by a monolithic flat roof. Sometimes, an ambulatory was also added around the sanctum. The form is represented by a ruined brick temple at Baigram (District Dinajpur, Bangala Desh).[7]

In the second stage of development, a *śikhara* was built over the garbhagṛha. The earliest example of the brick built *śikhara* type is represented by the temple at Bhitargaon (District Kanpur) datable to c. 5th or 6th century A.D.[8] It is distinguished for its pyramidal shape. The temple is *triratha* on plan, and consists of a square sanctum attached with a square ante-room, which is connected by an ablong passage. The sanctum and the ante-room are covered with corbelled ceilings representing domical vaults and the passage has wagon-vaulted roof based upon the true arch pattern presenting an evidence of rare and oldest use of the true arch, an unusual feature in a brick temple, as corbealled arch was generally used to cover them. The interior is plain and simple but the outer *jaṅghā* is decorated with *rathikābimbas* showing gods-goddesses and various other stories from the epics.[9]

Another brick temple at Bodhgaya (District Gaya, Bihar) similar to the Bhitargaon temple in plan and elevation shows more developed *śikhara* which is *pancha-ratha* and represents seven stories divided by *bhūmi-āmalakas* on the *Karṇas*. The *śikhara* is decorated with *candraśālās* and *rathikās*.[10]

After the Gupta period, during the 6th-7th centuries various temples forms were tried. Among the most developed is the brick-built Lakṣhmaṇa Temple at Sirpur (District Raipur, M.P.) which belongs to the 7th century A.D. The temple is raised on a high platform and consists of a square *garbhagṛha* covered with a curvelinear *śikhara*, a small vestibule and a pillared mandapa are attached to it. *Vedibandha* is ornamented with *khura*, *kumbha*, *kalaśa* and *kapota*. *Jaṅgha* is decorated with *rathikās* and the whole *śikhara* is devided into 4 stories by the *Bhoomiāmalakas*. The temple is *pañcaratha* on plan and in elevation and *bhadra* projections are embellished with a row of elaborate chaitya-dormers over the *śikhara*.[11]

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

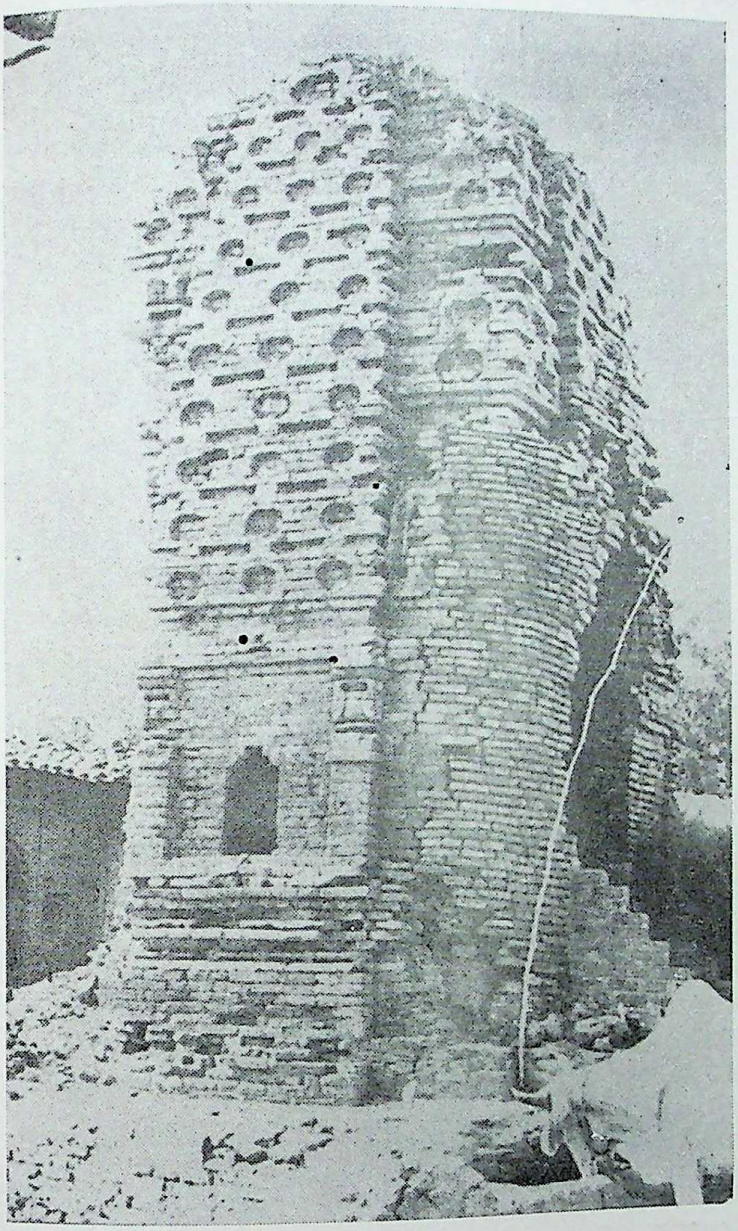

11. 1. Dhamanā Khurda, General View, c. 8th cent. A. D.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

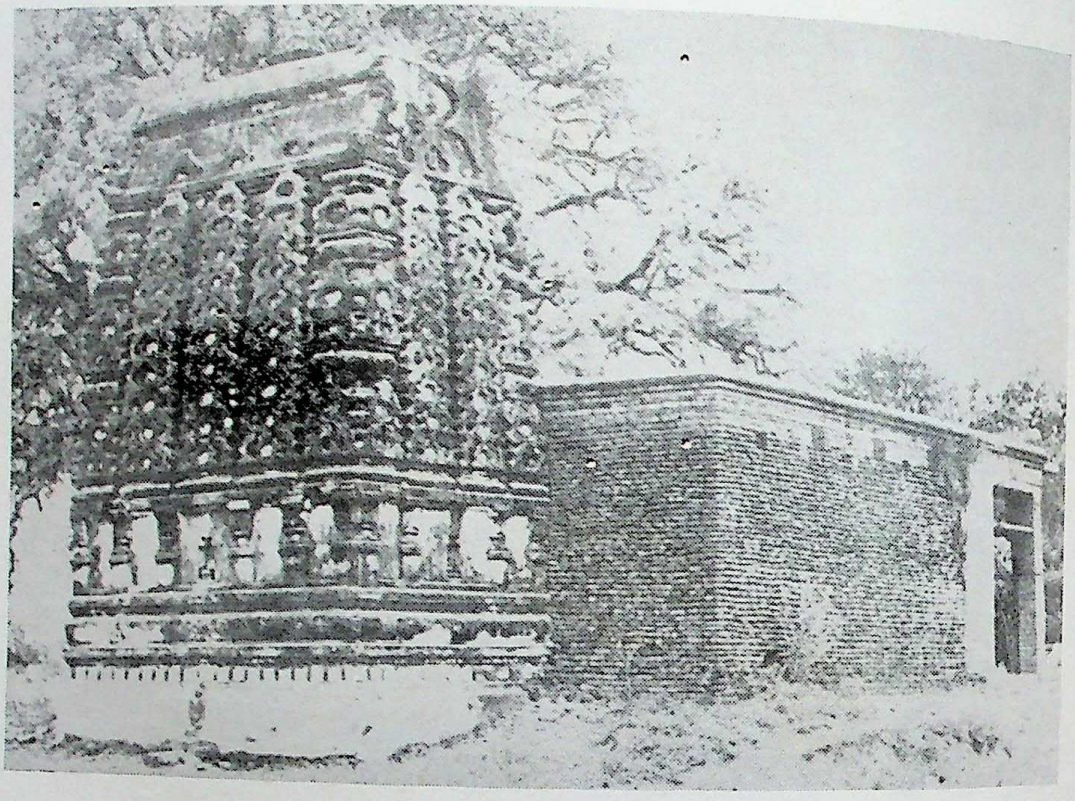

Pl. 2. Sarhana Bujurga, gajapṛsthakṛti, General View, c. 8th-9th cent. A. D.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

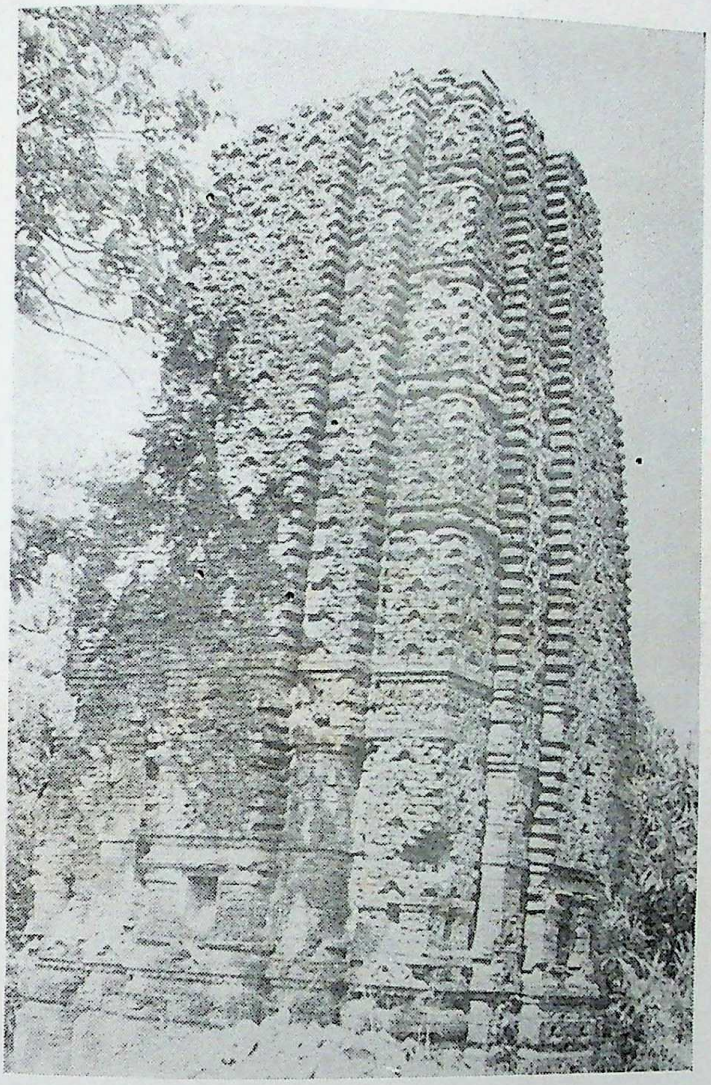

Pl. 3. Thithorā, General View, c. 10th cent. A. D.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

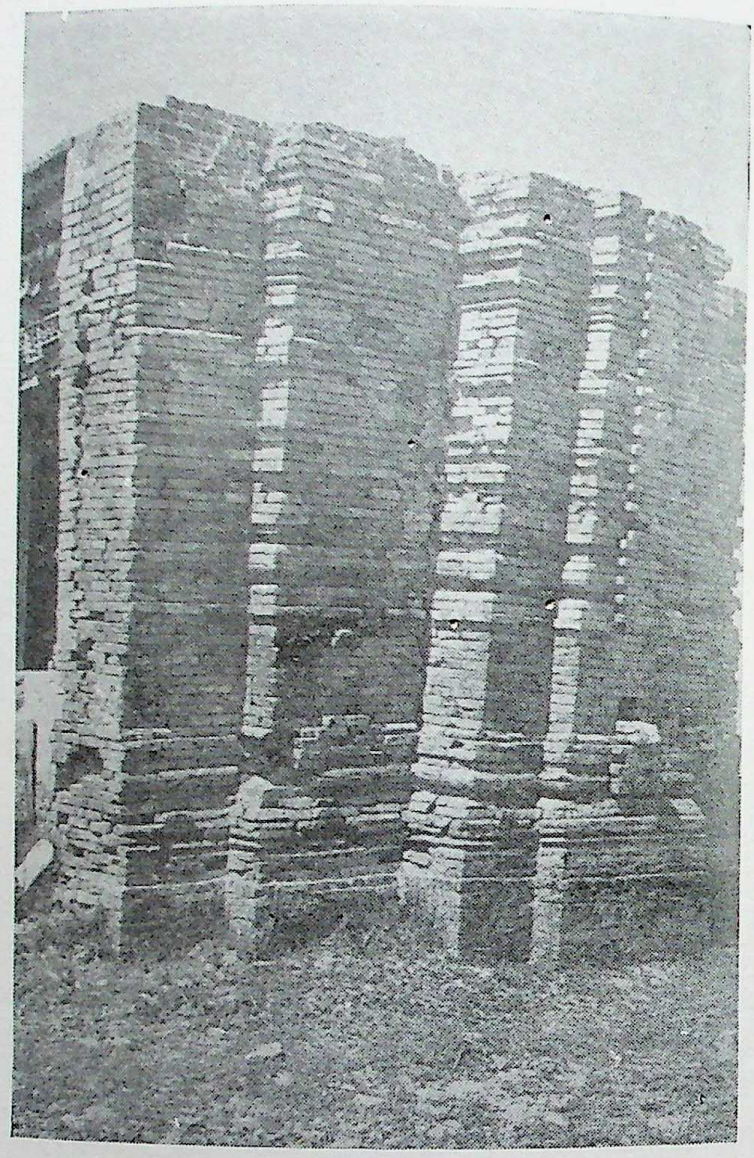

Pl. 4. Bahuā, View from North, c. 10th cent. A. D.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

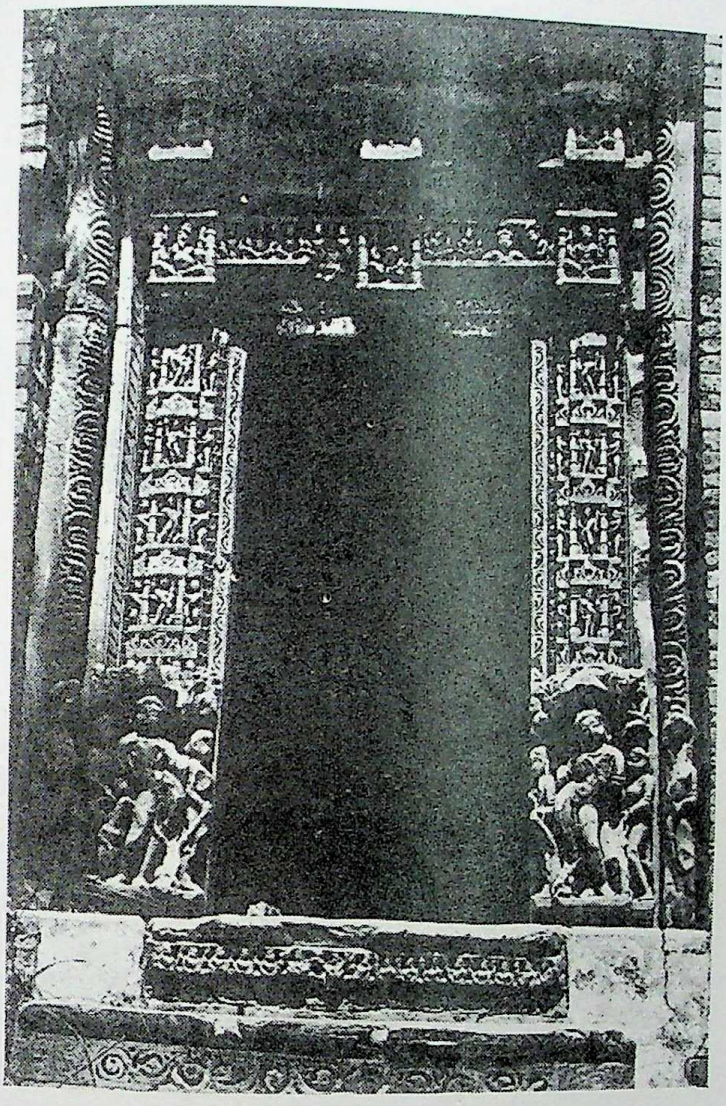

Pl. 5. Bahuā, lithic door way, c. 10th cent. A. D.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Pl. 6. Bahuā, garbhagṛha lithic, pilaster, c. 10th cent. A. D.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

During 8th to 10th centuries, the gangetic plains in U.P. contained a large number of temples moulded in bricks. Though less durable than stone, some of these brick temples, being capable of escaping the human and natural vandalism, are still in a fair state of preservation with their original form and ornamentation. These temples and their remains are reported from Nimiyā Kherā[12] (8th-9th cent. A.D.), Parāvalī[13] (8th-cent. A.D.), Rāra[14] (late 8th cent. A.D.), Simhua[15] (8th cent. A.D.), Kurthā (8th cent. A.D.) and Pisanarin ka Matha[16] (8th-9th cent. A.D.) in District Kanpur; Sarahana Buzurga[17] (late 8th cent. A.D.), Dhamna Khurda[18] (8th cent. A.D.), Thithaura[19] (9th cent. A.D.), Bahua[20] (10th cent. A.D.), Kurari[21] (10th cent. A.D.) and Tinduli[22] (late 10th cent. A.D.) in District Fatehpur; Karapaṅa-Nasīrābāda[23] (9th-10th cent. A.D.), Gohari[24] (9th-10th cent. A.D.) Bhaisāpārā[25] (10th-11th cent. A.D.), Chandravala[26] (11th-12th cent. A.D.), Binaura[27] (10th-11th cent. A.D.), Shivathāna[28] (10th cent. A.D.), Āntagāon[29] (10th cent. A.D.) and Kesarā[30] (8th cent. A.D.) in District Sitapur; Gegalāpura[31] (8th cent. A.D.), Janagaon[32] (10th-11th cent. A.D.), Sair Bahādurpura[33] (10th cent. A.D.) and Virapur[37] in District Lucknow.

The temples of Nīmiyā Kherā, Sarahana Buzurga, Dhamnā Khurd, Thithaurā and Karapana are representative examples of early medieval (8th-9th cent. A.D.) art whereas the temples of Kurāri, Bahuā, Tindulī and Nasīrabāda show their more developed character in decoration of mouldings and scrolls.

The plan and elevation of these temples in almost same as their counterparts in stone with a few regional variations. Generally, all the temples are comprised with a square *garbhagṛha* (sanctum) internally, capped by a curvilinear *śikhara* (spire) of *latina* style with a small antrala or *kapili* (vestibule) attached to it, sometimes preceded by an entrance-porch. Externally these temples are *caturāsra* (square), *aṣṭāsra* (octagonal), *dvādaśāsra* (twelve sided) and *ṣodaśāsra* (sixteen sided) showing *bhadras*, *subhadras* and *karṇas*. Only one example of a rectangular *garbhagṛha* surmounted by a *valabhi śikhara* (wagon-vault roof) is reported from Sarahana Buzurga, district Fatehpur, which is an exception. The temples of Nīmiyā Kherā, Karapana and Thithaurā represent their character as *pancāyatana* prāsāda as subsidiary shrines, one on each corner, were attached to them.

The *jagati* (plat-form) is an optional member in these temples. The temples of Nimiyā Kherā, Sarahana Buzurga and Dhamanā Khurda have no *jagati* and are directly raised from the ground while temples of Karapana, Thithaurā, Tindulī Sanicarā and Kurarī are elevated on a high *jagati* approached by a flight of steps,

Each temple is comprised of four parts namely-*vedibanaṅha*, *jaṅghā*, *kaṇṭha* or *grivā* and *śikhara*. The *vedibandha* consists of *khura*, a tall *kumbha*, *kalaśa*, plain *antarapaṭṭa* and *kapota* but the temples at Kurārī, Tindulī and Karapana are more developed showing *mancikā* or *vasanta paṭṭikā* surmounted by a narrow *antarapaṭṭa* and scroll-decoration on

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

the mouldings. The *kalaśa* and *kapota* are ornated with *candraśālās* of *ratna* motifs while *antarapaṭṭa* is filled with *jālaka*-pattern or lotus-petals.

Above vedībandha starts *jaṅghā* which is plain and simple, articulated by *bhadra*, alternating with *karṇas* in early temples. Each *bhadra* with a greater prominence is marked by a small *rathikā* flanked by pilasters of *rucaka* variety and surmounted by a beautiful udgama decorated with *candraśālās*. The *pratirathas* and *karṇas* are erected in the shape of *bhittistambha* carved with *ghaṭapallava* design. In more developed temples, the *jaṅghā* is fully carved and profusely ornated with floral scrolls. On every cardinal direction the *bhadra* has a pillared blank nich. The remaining *bhadras*, *subhadras* and *karṇas* are simply covered with scroll pattern representing the *udgama* of the early medieval stone temples. The offsets are carried upwards along the facade from the base to the top of the super-structure.

The *jaṅghā* is surmounted by the *varaṇḍikā* comprising a *paṭṭikā* or a *kapota* and is generally separated by a plain *antarpaṭṭa* and a *kapota* moulding from the *śikhara*.

The *śikhara* is initially of three vertical projections which gradually increased to five projections, profusely covered with *candraśālā jāla* or scrolls and the *karṇas* are treated with storeys *(bhūmis)* separated by *bhūmi-āmalakas*. But these projections in the kurāri temples are fully decorated with scroll-designs from top to bottom without dividng *śikhara* into *bhūmis* (storeys).

The *śikhara* terminates in a neck like construction *(grivā)*. In Nimiyā Kherā temple the *grivā* is surmounted by a well modelled *āmalaka* between two plain circular mouldings.

The top of the *śikhara* of all the temples is completely ruined, so it is impossible to say anything certainly regarding the crowning members like *kalaśa*, *āmalasāraka* etc. They might have been made of moulded bricks or stone but at present they are missing.

The *kapili* or *antarāla* is surmounted by the *śukanāsa*. The temples either show the use of *Kadalikaraṇa* (corbelling)—process to create a simple triangle on the place of *śukanāsa* which was a popular method used in the earlier brick temples or the *śukanāsa* is composed of four bold *udgamas* rising on pilasters decorated with *candrśālās* as represented in the Nimiyā Kherā temple. The device of *kadalikaraṇa* is also used in erecting the *śikhara* of temples.

The interior of the *garbhagṛha* is generally plain and simple but the stone made *samatala vitāna* of the intersecting squares engraved with *Kirttimukhas* in the temple of Tinduli, and *nābhichandaka vitāna* relieved with scrolls, folliage and lotus in the temple of Bahuā are supported on four lithic pilasters of *bhadraka* type decorated with shallow scrolls and *ghaṭapallavas*,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The door-frame is another lithic member along with the pilasters and the ceiling which is used only in the developed temples of Tindulī, Nimiyā Kherā and Bahuā. These door-frames are of pañcaśākhā variety decorated with *patra, puṣpa, rūpa, patra* and *khalva śākhās*. The lintel shows *navagṛaha-paṭṭa* and the *pedya* is ornated with Gangā-Yamunā and two females on each side. Gajalakṣmī holding a lotus in her left hand and seated on a lotus, is depicted on *lalātabimba* of Nimiyā Kherā temple, while three niches containing Śiva in the centre flanked by Brahmā and Viṣṇū are presented in door-lintel of Bahuā temple.

Thus in the plains of North India we observe that many brick temples were evolved during the Śuṅga-Kuṣṇā period or even earlier than that and were built in various forms such as circular, square, rectangular and apsidal on plan. We can not have a firm idea about their superstructure as they are not in existance. During the Gupta period brick temples developed in two stages. In the first stage of evolution, a pillared portico was attached to the square *garbhagṛha* roofed by a flat single stone. Sometimes an ambulatory was also added to it. In the second stage, the *garbhagṛha* was surmounted by a *śikhara*.

The next stage in the evolution of the brick temple began with the more elaborate development of the *Jagatī, garbhagṛha, vedibandha, jaṅghā, śikhara* and doorframe etc. This work began about the beginning of the Gupta period and continued right up to the medieval period. Generally all these temples were comprised of an internally square sanctum surmouted by a curvilinear *latina* type *śikhara* and a small vestibule was attached to it. Externally these temples were square, rectangular, octagonal, showing *bhadras subhadras* and *karṇas*. Some of them were *pancāyatana* in character. The *jagatī* was an optional member. *Vedibandha* was comprised of *khura*, a tall *kumbha, kalaśa*, plain *antara-paṭṭa* and *kapota* mouldings. *Jaṅghā* was plain and simple and embellished with three *rathikas*, one on each bhadra with a deity. The curvelinear *latina śikhara* was *triratha* or *pañcaratha*, profusely decorated with *candraśālājāla* or scrolls and *karṇas* were treated with storeys separated by *bhūmiāmalakas*. In the more developed temples stone made door-frames were ornamented with *tri-śākhās* or *panca-śākhās, navagraha-paṭṭas* and Gangā-Yamunā. For the decoration of the temple carved and moulded bricks were used but in some temples stone made door-jambs pilasters, architraves and ceilings were also applied to provide strength. The icons found in the *garbhagṛha* show that some of these temples were dedicated to Śiva, Viṣṇu, Sūrya or Śakti.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

REFERENCES

1. Deva, Krishna, Temples of North India, New Delhi, 1969 p, 5
2. Banerjea, J. N., Development of Hindu Iconography, Delhi, 1974, p. 91-92.
3. Hartel, Herbert, Some Results of the Excavations at Sonkh : A preliminary, report, New Delhi, 1976, pp. 93-99.
4. Hartel, Herbert, ibid, pp. 76-77.
5. Singh, S. B., Archaeology of Pānchala Region, Delhi, 1979, p. 18.
6. Deva, Krishna, ibid, p. 13; Williams, J. G., The Art of Gupta India, New Delhi, 1983, pp. 18-21, fig. 2-3
7. Ibid, p. 8
8. Ibid, p. 10, fig. 3; Vogel, J. Ph., Archaelogical Survey of India, Annual Report (ASIAR), 1908-09, p. 6 Joshi, M C., The Śiva Temple at Nibiyakherā (District Kanpur) and the chronology of the brick temples in the neighbourhood, Bharati No. 8, Part-I, Banaras Hindu University, Varanasi, (1964-65), pp. 69-72, Singh, R.C., Bulletin of Museum and Archaeology in U.P. No. 2 (December—1968), p. 31; Rajan, K.V.S., Bhitargaon Temple-Architectural and Chronological Considerations *Anuvak*, Fatehpur, pp. 49-55.
9. Ibid;
10. Ibid, fig. 4,
11. Ibid, pp. 11-12, fig. 5.
12. Nath, R. Marg, Vol. XXII, No. 2 (March-1969), p. 25; Cunningham, A., Archaeolcgical Survey of India Report, Vol. XI, p. 46; Joshi, M.C. Ibid, pp. 66-69, Deva, K. and Singh, Tahasildar, Two Brick Temples of Madhyedesha, *Anuvak*, Fatehpur, pp. 56-63.
13. Vogel, J. Ph. ASIAR, 1908-09, p. 17 ff; Cunningham, A., Archaeological Survey of India Report, Vol. XI, Varanasi, 1908, p. 46, Joshi, M. C. Ibid pp. 73-74, Singh, R.C. Bulletin of Museum and Archaeology in U.P. No. 3 (June 1969), pp. 70-77; Nath, R., Marg, Vol. XXII, No. 2 (March 1969), p. 25.
14. Ibid.
15. Ibid.
16. Ibid.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

17. Indian Archaeology—A Review, 1976-77, p. 80; Singh, Amar, The Brick Temples of Sarhan Buzurg and Dhamna Khurd. *Anuvak*, Fatehpur, pp. 64-69.

18. Singh, Amar, The Brick Temples at Sarhan Buzurg and Dhamna Khurd, *Anuvak*, Fatehpur, pp. 64-69.

19. Vogal, J. Ph., ASIAR, 1908-9, p. 21; District Gazetteer of Fatehpur, Vol. XX, 1906, pp. 191-192; Singh, Tahsildar and Singh, Amar, Some Brick Temples of Fatehpur District, *Anuvak*, Fatehpur, pp. 70-77.

20. Vogel, J. Ph., ASIAR, 1908-9, p. 20; Fuhrer, A., The Monumental Antiquities and Inspections in the North-Western Provinces and Oudh, pp. 158-159; Singh, Tahsildar and Singh, Amar, Some Brick Temples of Fatehpur District, *Anuvak*, Fatehpur, pp. 70-77.

21. Growse, F.S., Supplement of the Fatehpur Gazetteer, Allahabad, 1887, pp. 9 ff; Vogel, J. Ph., ASIAR, 1908-9, pp. 19-20 ff; Singh, Tahsildar and Singh, Amar, some Brick Temples of Fatehpur District, *Anuvak*, Fatehpur, pp. 70-77.

22. Growse, F.S , Supplement to the Fatehpur Gazetteer, Allahabad, 1887, p. 11; Deva, K. and Singh, Tahsildar, Two Brick Temples of Madhyadesha, *Anuvak*, Fatehpur, pp. 56-63.

23. Singh, Amar and Tewari, Rakesh, Nasīrābād ke Iṣtikā Mandir, Dhyanam, Vol. 1, Lucknow, 1981, pp. 9-13.

24. Singh, Girish Chandra, Sitapur-Hardoi ke Iṣtikā Mandir, Dhyanam, Vol. 2, Lucknow, 1982, pp. 11-16.

25. Ibid.

26. Ibid.

27. Ibid.

28. Ibid.

29. Ibid.

30. Ibid.

31. Ibid.

32. Ibid.

33. Ibid.

34. Fuhrer, A.. The Monumental Antiquities and Inspections in the North-Western Provinces of Oudh, p. 328.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

35. Puratatva Kārya Samikṣhā, 1986, U.P. State Archeological Organisation, Lucknow pp. 10-11.

36. Singh, Amar, Itagaon-Barkatabad Ka, Iṣtikā Mandir, Dhyanam, Vol. 3, Lucknow, 1983, p. 84.

37. Author is grateful to Dr. Rakesh Tewari, U.P. State Archaeological Organisation for the information.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

EXCELLENT FEMININE BEAUTY IN THE TERRACOTTAS

G. S. Bhadouria

The rationale of thought and the sensuousness of feeling in man all over the globe and throughout the known history of humanity has inspired him to portray his better-half that is woman, in various forms and moods, poses and postures. She has been portrayed in many other forms of her own person, full of every-charming beauty, sensuousity and that of a physical charm of varying degrees.

In our ancient literature there are numerous references regarding the terracotta art. It is said in *Āśvalāyana Gṛihya Pariśiṣta*[1] that for *Nāga-bali* a fine head of a snake in clay be made and worshipped for a year. According to the *Mahābhārata*, Nishād Ekalavya made a clay figure of his guru *Droṇāchārya* and practised archery in front of it. The *Harivaṁśa*[2] also refers to the clay figures of Madhu and Kaitabha. The clay figures are also mentioned in the *Brahma*[3], *Kālikā*[4], *Linga*[5] and *Nārada Parāṇas*.[6] There is an interesting reference to the toys in *Bhaddasāla Jātaka*.[7]

The *Kāśyapa Saṁhitā*[8] a medical treatise re-edited in the third century A.D. gives a long list of toys. There is a mention of toys also in the *Divyāvadāna*[9] a work written between the third and the fourth centuries A.D. *Kālidāsa* in his *Śākuntalam*[10] speaks of a painted terracotta peackock. Bāṇabhaṭṭa in the seventh century A.D., mentions *Lepyakāra-Kadambaka*, who prepared terracotta crocodiles, tortoises, coconuts, platains and betelnut-trees, on the eve of the marriage of *Rājyaśri*[11].

What is gleaned from the literature, is evident that so many references to the art of terracotta modelling might have come from the innumerous examples available in the society from the earlier days.

The frequent examples of terracotta art of different periods have been recovered from the centres like Bulandi Bāgh, Buxer, Kumhrāhār, Pātaliputra, Tēr, Nevāsā,

Dr. G. S. BHADOURIA, Department of Ancient Indian History and Archaeology, Lucknow University, Lucknow—226007

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Kolhāpur, Paithan, Kōndāpura and Dharṇikōta, Nāgārjunakoṇḍa, Uraiyūr, Kanchipuram, Mathurā, Jhūsī, Rājghāt, Ahichchattrā, Kauśāmbī, Bhītā, Bhītargāon, Chandausī, Śrāvastī Ghōsī, Bastī, Bānsgāon, Nālandā Nāgri, and Bīkāner, Pahārpur, Mahāsthān, Tāmluk and Tālasbāri, Devanīmōri, Mīrpur-Khās and Brahmnābād of the rpesent day Pakistan.

The Mauryan period is marked by a sudden spurt in artistic activity in the country and the terracotta art also made rapid strides. The figurines are unique on account of their remarkable stylistic traits in respect of physiognomy and expression. These figures are indeed remarkable for smooth modelling and their luminous bodies. The most distinguishing mark of these figures is their delicately carved features specially in the female ones. These figures often wear a fluttering skirt as the lower garments, while the breasts are shown bare. The figurines are depicted wearing very elaborate head-dress consisting of a number of rosettes bearing patterns. Round the neck is broad collar *(Kanthi)* and longish necklace dangles over the breasts, reaching the novel where its ring pendant is shown resting. Over the hips is seen a broad girdle *(Mekhala)* composed of a number of round bosses bearing a stamped beaded pattern in relief. The girdle, being broad, completely covers the genital region.

In the Sātavāhana period the figures are characterised by bold and vigorous physiognomy and extremely sensitive modelling. They are noted for their dynamic vitality and plastic simplicity of form.[12] Among these figures the woman with a parrot was favourite theme of artists here. In the full bloom of youth, she is often shown sitting and holding a parrot in her left hand. In some specimens, the parrot is shown pecking at the heavy breasts of the woman, but in most cases the bird is seen eagerly looking at the bunch of mangoes, held in her right hand. These figures are shown with rather sparse jewellery as compared to those of the Śungā period, which are always loaded with necklaces and other ornaments. The head dress in not as elaborate as the Śungā one, but on the contrary is rather simple. The whole mass of hair is piled-up and gathered in an elongated roll on the top of the head. This can be identified as *dhammilla* type of hair do. Some of the women wear a bicornate head-dress and some heave their hair done in the peacock plume fashion. Necklaces are generally made of two cords and they can be identified as the *Phalakahāra* referred by the Kautiyla in his *Arthaśāstra.*

They wear only a lower garment which is a kind of shorter *dhōti (ardhōruka).* The garment is secured in the wait by a girdle *(Mekhalā),* but it is so transparent that the female pudenda can be clearly seen. This exhibits the ancient Indian artists obsession to indicate the genital organs, of the figures he has fashioned.

Kushāṇ rulers are known as the patrons of art. But they have shown much of their interest in carving of the stone sculptures instead of delineating the terracotta

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

figurines. The artists of the Kuśāṇa period presented women in so well adorned form with the blend of their new styles, that the same women figurines has started looking to as more impressive and beautiful in its appearance. Though the terracottas vividly documented the investing results of their Greeco-Roman contacts and art styles.[13]

The older tradition of terracotta reliefs is widely seen in plaques from Chandraketugarh, Tāmluk, Rājghāt, Kauśāmbī, Shringvērapur, Bhītā and Mathurā[14]. Among the plaques that we have been found are erotic figure from Chandrakētugarh, and Bhītā, an example from Kauśāmbī showing a woman with a parrot on her right hand, a specimen from Mathurā depicting a woman holding flowers, scenes from Kauśāmbī and Rājghāt of the *Śalabhañjikā* under a tree and a depiction from Ahichchatrā of a drunken woman helped by her paramour or husband, some of the same subjects are also seen in Mathurā stone art.[15]

Coming to the specifices of the great art heritage of the Guptas. We notice, a great change in the delineations of so many terracotta figurines[16]. The fundamental difference noticed in the delineations of such pieces of the Gupta times in contrast with those of the times of the Kuśāṇas, is in the case of their facial expressions and richly endowed with the true concept of emotional glimpses.[17] Something which was lacking in case of otherwise beautiful sculptures of the Kuśāṇa times is the essence of emotional flavours that is called *rasadriṣṭi*, *rasābhāsa* or the concept of *rasa nishapatti*.[18] The noble concept of *rūpalāvaṇya sattra* and *rūpa sattra* were introduced and defined for the first time during this period.[19] The great sensuousity of form (that is *rūpa*) as defined by the master poet called Kālidasa in his words which means that 'it should not be for the exitement of evil thoughts' *(na rūpamitya-byabhichārabrittye)*[20] was equally adhered by the master artists of this time.

The other deviation in the field of Gupta style of art from that of the Kuśāṇas is noticed in the fact that here the so-called frequent nudity of the persons especially those from the fair-sex has been duly constrained.[21] Whereas in case of Kuśāṇa sculptures, exposure of the bodily contour and the organs of modesty is rather frequent.

The richest part of this great art is revealed in its great variety of motifs and themes. Practically every aspect of the life of the period is found represented in the art of the Gupta terracottas. Whether it is the most popular way of representing the woman in her *Śālabhañjikā* pose,[22] that of showing her attending the toilet[23] or the famous themes of *mithuna* or *dampati*[24], the terracotta modellers have received inspiration and also the recognition from the literary works of poets like Kālidāsa[25] and Bāṇa Bhaṭṭa[26] in fashioning their women sculptures,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

REFERENCES

1. *Āśva-lāyan Gṛhya Pariśista*, 3-16.
2. *Harivaṁśa* (Gita Press), 52.21.
3. *Bṛamha Purāṇa*, 50.9.
4. *Linga Purāṇa*, 85.61.
5. *Linga Purāṇa*, 11.3, 2.3, 14.4.
6. *Nārada Purāṇa*, 4, 11.13.
7. Francis Neil, *Jātakas*, Vol. III, London, 1956, *Jātaka* No. 4,6,5.
8. *Kāśyapa Saṁhitā* : vide Shah, U.P., "A reference to toys in *Kāśyapa Saṁhitā* see also Jr. of the M.S. Univ. of Baroda, Vol. V, No. I (1956). pp. 1-5.
9. *Divyāvadāna* ; Vide Joshi, N.P., "Glimpses of Terracotta Art in Classical Literature", Paper read at the Seminar on Indian Terracottas, Lucknow, 1973.
10. *Lalit Kalā*, No. 8. Oct. 1960, p. 56.
11. Cowell and Thomas, *The Harsha Charita of Bāṇa*, Delhi, 1964, p. 124.
12. Sankalia, H.D. and Dhavalikar, M.K., "The Terracotta Art of India", Marg, Vol. XXIII (1), Dec. 1969, p. 43.
13. Rosenfield, John M.; *Dynestic Art of the Kuśāṇas* (Berkeley and Loss Angetes, 1967), in the 'Forward' written by Rowland, Benjamin Jr., p. vii.
14. Dhavalikar, M. K. : *Masterpieces of Indian Terracottas*, Bombay, 1977, p. 35.
15. Agrawala, V.S. : "Terracotta Figurines of Ahichchatrā", *Ancient India*, No. 4, Calcutta (Jan. 1948), p. 119, pl. XLIII-B.
16. Hungtington, Susan L. : *The Art of Ancient India*, New York, 1985, p. 188.
17. Ibid.
18. Bajpai, K.D. : "Gupta Sculptures", Marg, Vol. XXVI (3), June 1973, p. 47 ff.
19. Agrawala, V.S. : *Gupta Art*, Varanasi, 1977, intro; He further mentions; varāhamihir, *Bṛihatsaṁhitā* ch. 105; *Vishṇudharmottara Purāṇa* I. 154.36 *ihaiva-Kṛitvā dharmajña rūpasattram mahāphalam;* Chapter I.155 called *rūpasasattravarṇana* besides the observance for this row of beauty.
20. *Kumārsaṁbhava*, Conto-5.
21. Op. cit. Hungtington, Susan L. and Agrawala, V.S.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

22. Sankalia, H.D. and Dhavalikar, M.K.; "Gupta Terracottas", Marg. Vol. XXIII (I), 1969.

23. Ibid.

24. Ibid.

25. *Kumārasaṁbhava*, VII, 42.

26. *Kādambari*, Sec. 120.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

लखनऊ संग्रहालय का नवप्राप्त अप्रकाशित मातृका-पट्ट

श्यामा नन्द उपाध्याय

भारत में मातृ उपासना की परम्परा प्राचीनतम है तथा हिन्दू धर्म में मातृ उपासना का विशिष्ट स्थान है। यद्यपि भारत में मातृ उपासना के संकेत प्रागैतिहासिक काल से ही मिलने लगते हैं किन्तु मातृ उपासना के ठोस प्राचीनतम प्रमाण सिन्धु सभ्यता के उत्खनन स्थलों से प्राप्त अवशेषों पर उकेरी गयी आकृतियाँ हैं।[1] इन्हीं के आधार पर अधिकांश विद्वान मातृका पूजा का श्रीगणेश इसी सभ्यता से मानते हैं।[2]

भारत के बाहर भी मातृ उपासना के साक्ष्य उपलब्ध हैं।[3] भारत में मातृ देवी की मूर्तियाँ ई०पू० चार हजार वर्ष से ई०पू० तीसरी शती तक एक विशेष प्रकार की मिलती हैं।[4] इसके पश्चात उनमें कई नवीन बातों का समावेश होने लगा और कालान्तर में वे बहुत कुछ परिवर्तन के साथ उपासित होती रहीं।

सप्त मातृकाओं का स्वरूप ऋग्वेद[5] में भी परिलक्षित होता है। परन्तु सात या आठ पौराणिक मातृ-देवियों ने विकास के लिए कई शताब्दियों का समय लिया। इनकी संख्या शास्त्रों में सात-आठ और सोलह तक बतायी गयी है इनके नामों में भी अन्तर मिलता हैं। ब्राह्मण धर्म में, सात-आठ अथवा और अधिक मातृकाओं के सामूहिक पूजन का विधान है।[6] सामान्यतः सप्तमातृकाओं में ब्राह्मी (ब्रह्माणी), माहेश्वरी (माहेशी), वैष्णवी, कौमारी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा की गणना होती है। कहीं-कहीं नारसिंही को भी सप्त मातृका सूची में सम्मिलित किया गया है। यह भी उल्लेखनीय है कि इन मातृकाओं के जिस स्वरूप का विकास कालान्तर में हुआ उन पर वैदिक देवताओं का अत्यधिक प्रभाव पड़ा।[7]

पुराणों में देवियों के इन समूह को विभिन्न देवताओं की शक्तियों से निर्मित बताया गया है। और इनका सम्बन्ध अन्धकासुर, रक्तबीज, निशुम्भ आदि दैत्यों के वध से जोड़ा गया है। 'वराहपुराण' की परम्परा के अनुसार सप्तमातृकाओं की उत्पत्ति का सम्बन्ध अन्धकासुर वध से है।[8] 'सुप्रभेदागम' में उल्लेख है कि यह सप्त-मातृकाएँ ब्रह्मा के द्वारा नृति नामक राक्षस को मारने के लिए उत्पन्न की गयीं।[9]

'मार्कण्डेयपुराण' के 'दुर्गासप्तशती' अंश में सप्तमातृकाओं की उत्पत्ति का प्रसंग रक्तबीज और शुम्भ-निशुम्भ वध से सम्बद्ध है।[10]

श्री श्यामा नन्द उपाध्याय, प्रदर्शक व्याख्याता, राज्य संग्रहालय, लखनऊ—226001

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ऋग्वेद[11] में 'सप्तवाहिनी' एवं महाभारत[12] में सप्तविधावाणी का उल्लेख है। इससे स्पष्ट होता है कि 'वाणी' जो कि एक अन्य देवी का रूप है, में यह शक्ति विद्यमान है जो अपनी इच्छानुसार अपने में वृद्धि कर सात मातृदेवियों के रूप में अपने को परिवर्तित कर सकती है।[13]

यद्यपि मातृका पूजा की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है किन्तु सप्तमातृकाओं का पाषाण कला में अंकन कुषाण काल से प्रारम्भ होता है और निरन्तर इनके अंकन में प्रगति देखने को मिलती है।

राज्य संग्रहालय लखनऊ का विवेच्य मातृका पट्ट श्री प्रताप नारायण टण्डन से वर्ष १९८९ में क्रय किया गया। पट्ट की माप 40.5 × 48.5 से०मी० है। पूर्व मध्य कालीन यह मातृकपट्ट प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। (सं० पं० सं० 89.104)

इस पट्ट में मात्र दो मातृकाएं वैष्णवी एवं माहेश्वरी का ही अंकन हैं—

वैष्णवी

चतुर्भुजी देवी पुरुषाकृति गरुड़ वाहन पर अर्धपर्यंकासन मुद्रा में विराजमान हैं। देवी अपने बायें अधः कर में गोलाकृति पदार्थ कदाचित मातुलिंग फल धारण किए हुए हैं। देवी का यह हाथ बायें मुड़े हुए पाद पर स्थित है। देवी का बायां ऊर्ध्व हस्त चक्रधारी है। देवी का दायाँ अधः कर वरद मुद्रा में है तथा बायाँ ऊर्ध्व कर पुष्पगुच्छ युक्त है। वैष्णवी देवी कर्णकुण्डल, कंठ हार आदि आभूषणों से अलंकृत हैं। उन्नत पयोधर एवं किरीट मुकुट से युक्त देवी की मूर्ति कहीं से भी खण्डित नहीं है। देवी की इस मूर्ति को रूपमण्डन[14] में वर्णित प्रतिमा लक्षण के लगभग अनुरूप निर्मित किया गया है। मात्र एक हाथ का लांक्षन भिन्न है।

माहेश्वरी

देवी द्विभुजी है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस एक ही मातृका पट्ट में देवी वैष्णवी को चतुर्भुजी एवं माहेश्वरी को द्विभुजी निर्मित किया गया है। रूपमण्डन[15] में चतुर्भुजी माहेश्वरी मूर्ति का विवरण है। जबकि यहाँ ऐसा नहीं है। देवी का दायां हाथ त्रिशूलधारी है। अपने बायें हाथ से देवी शिशु को सहारा दिए जानु पर बैठाये हुए है। दायें पाद के सन्निकट वाहन वृषभ का स्पष्ट अंकन है। यहां भी देवी अर्धपर्यंकासन मुद्रा में विराजमान हैं। पाषाण निर्मित यह मातृकापट्ट अभी तक अप्रकाशित है।

राज्य संग्रहालय लखनऊ के एक अन्य मातृकापट्ट[16] में भी मात्र दो मातृकाओं कौमारी एवं इन्द्राणी को निर्मित किया गया है।[17]

उपर्युक्त विवेच्य मातृकापट्ट भी संग्रहालय के इस मातृकापट्ट से मिलता है।[18] अन्तर केवल इतना है कि इस वर्तमान अप्रकाशित मातृकापट्ट में वैष्णवी एवं माहेश्वरी का अंकन है।

सन्दर्भ

1. Marshall J. Mohenjodaro and Indus civilization Vol. 1 pp. 62-63.
स०पु०प० अंक, 27-28, जून-दिसम्बर, 1981, पृ० 69.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चित्र-1. वैष्णवी एवं माहेश्वरी, पूर्व मध्य काल, सं० पं० सं० 89.104

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चित्र–२. कौमारी एवं इन्द्राणी, सं० पं० स० 66.228 ल० 9th–10th शती ई०

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

2. Mackey, E. Early Indus civilization, pp. 52-54.
3. Marshall, J. op. cit. vol. 1, p. 50, सं० पु० प० वही,
4. जोशी, एन०पी०, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान पृ० 115.
5. Agrawala, V.S. Devīmāhatmya, Preaface (iii)
6. श्रीवास्तव, पंकजलता, 'हिन्दू तथा जैन प्रतिमा विज्ञान' 1990, पृ० 252.
7. यस्यदेवस्य यद्रूपं यथा भूषण वाहनम् ।
   तद्वदेवहि तच्छक्ति सुरान योद धुमाययौ ।।
   श्री दुर्गा सप्तशत्याम् ।।८।।१४।।
8. व० पु० अ० 27.
9. Rao, T.A.G., Elements of Hindu Iconography vol. I, Part II, pp. 382-383.
10. ब्रह्मेशगुह विष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः ।
    शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तदरूपैश्च चण्डिकाययुः ।।
    यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषण वाहनम् ।
    तद्वदेवहितच्छक्तितर सुरान योद्धुमांययौ ।।
    देवीमाहत्म्य, ८।।१३.१४।।
11. ऋग्वेद, तीन, 7.1.
12. महाभारत, सभापर्व, ग्यारह, 34.
13. Dixit, S.K., The Mother Goddess, p. 194.
14. रूपमण्डनम्, 5, 66, पृ० 199
    'अपराजितपृच्छा' में भी गरूड़ासन वैष्णवी मूर्ति का विवरण है ।
15. वही, 5, 64, पृ० 199
16. संग्रहालय पंजीयन संख्या—66.228
17. BMA No. 27-28, June-Dec. 1981, pp. 78-79.
18. मातृका पट्ट संख्या 66.228 एवं उपर्युक्त विवेच्य मातृकापट्ट संख्या 89.104 की तुलना कीजिए ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

रामग्राम की पहचान

ओम प्रकाश लाल श्रीवास्तव एवं
सुमन सिंह

प्राचीन काल में महा जनपदों के बाद पालिग्रन्थों में जिन 10 गणतन्त्रों का उल्लेख किया गया है उनमें कोलियों का "रामग्राम" भी एक है। दीघ निकाय पर बुद्ध घोष की टीका के अनुसार "कोलिय वंश" शाक्य-कन्या एवं काशी के राजा राम से उत्पन्न हुआ था[1]। उल्लेखनीय है कि शाक्यों को इक्ष्वांकुवंशी कहा गया है और दिव्यावदान में कोलिय इक्ष्वाकुवंशी बताये गये हैं,[2] जिससे पता चलता है कि उन पर मातृ-पक्ष का भी प्रभाव था। भगवान बुद्ध की राख प्राप्त करने के लिए कोलियों ने अपने को बुद्ध का सजातीय बतलाया था। काशी के राजा राम को नागवंशी राजा कहा गया है[3]। महापरिनिर्वाणसुत्त के अनुसार रामग्राम में भगवान बुद्ध के अवशेष पर बने स्तूप की रक्षा नाग करते थे[4]। यह सांकेतिक हो सकता है। नाग का तात्पर्य सर्प न होकर नागवंश अर्थात् काशी के राजा राम के वंश से हो सकता है। इससे यह संकेत मिलता है कि रामग्राम के कोलिय अपने को पैतृक वंश से सम्बन्धित मानते थे, यद्यपि कहीं-कहीं पर उन्हें मातृवंश से सम्बोधित किया गया है, जिसका उन्हें समय पर (भगवान बुद्ध के परिनिर्पाण के समय) लाभ भी प्राप्त हुआ था।

अधिकांश बौद्धग्रंथों में कोलियों की राजधानी को रामग्राम बताया गया है। संभवतः कोलियों ने अपने प्रथम पुरुष राम के आधार पर अपनी राजधानी का नाम "रामग्राम" रखा होगा। रामग्राम की स्थिति के बारे में विद्वानों में काफी मतभेद है। श्री एस० पी० एल० कार्लायल ने बस्ती जिले के 'रामपुर देवरिया" को राम-ग्राम बतलाया है लेकिन डा० राजबली पाण्डेय ने चीनी यात्री ह्वेनसांग की यात्रा—वर्णन का उल्लेख करते हुए कार्लायल के मत से असहमति व्यक्त की है। उनके अनुसार ह्वेनसांग ने स्तूप की स्थिति रामग्राम से दक्षिण-पूर्व बतलाई है, जबकि रामपुर देवरिया का स्तूप उत्तर-पूर्व में है। ऐसी स्थिति में डा० पाण्डेय ने रामग्राम को रामपुर देवरिया न मानकर गोरखपुर का वर्तमान "रामगढ़ ताल" माना है[5]। रामगढ़ ताल पर यद्यपि डा० पाण्डेय ने किसी स्तूप का अवशेष नहीं देखा था लेकिन उन्होंने सिंहली कथाओं के आधार पर यह कल्पना कर ली कि स्तूप रामगढ़ ताल में चला गया होगा। रामग्राम और रामगढ़ ताल के नामों की एकरूपता भी इस सम्बन्ध में उनके अनुमान में सहायक प्रतीत होती है, लेकिन रामग्राम के बारे में उनका मत स्वीकार नहीं किया जा सकता।

डा० ओम प्रकाश लाल श्रीवास्तव, रजिस्ट्रीकरण अधिकारी, पुरावशेष एवं बहुमूल्य कलाकृति, गोरखपुर।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जनरल कनिंघम ने फाह्यान और ह्वेनसांग द्वारा दी गई दूरियों का विवेचन करके रामग्राम की पहचान गोरखपुर जिले में वर्तमान देवकली से की है[6], जो बांस गांव तहसील के अन्तर्गत कौड़ीराम से गोला जाने वाली सड़क पर स्थित है। यहाँ पर आज भी प्राचीन अवशेष एवं टीले मौजूद हैं। कनिंघम महोदय ने भी यह चर्चा की है कि सिंहली कथा के अनुसार रामग्राम का स्तूप गंगा में चला गया था और गंगा के माध्यम से समुद्र में गया जो नागों के द्वारा प्राप्त करके अपने राजा को दिया गया और उसने इस उपलक्ष्य में एक स्तूप बनवाया था। उनके अनुसार यह घटना 161 से 137 ई० पूर्व के बीच दुत्थगामिनी के राज्यकाल से सम्बन्धित है[7]। जल देवता नागों के द्वारा स्तूप बनवाने की घटना कल्पना मात्र लगती है। नागों के द्वारा स्तूप निर्माण की कथा के बारे में यही कहा जा सकता है कि सम्भवतः नागों अर्थात् नागवंशी क्षत्रियों से स्तूप का निर्माण कराया होगा अथवा इस रामग्राम के स्तूप को कभी कोई क्षति पहुंची होगी तो रामग्राम के ही नागवंशी राजाओं ने उसकी मरम्मत करवा दी होगी और बाद में यह कथा लंका के बौद्ध कथाओं से जुड़ गयी होगी। कनिंघम ने पुनः इस बात की चर्चा की है कि ई० पूर्व दूसरी शताब्दी के बहुत बाद फाह्यान और ह्वेनसांग ने रामग्राम में स्तूप को देखा था[8]। फाह्यान (पांचवी शताब्दी ई०) ने स्तूप के पास एक ताल की चर्चा की हैं, जिसमें पंखधारी नाग रहता था और स्तूप की रखवाली करता था। सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने वही स्तूप तथा स्वच्छ जल वाला तालाब देखा था जिसमें पंखधारी नाग रहते थे जो नित्य मानव रूप धारण करके पूजा करते थे। ह्वेनसांग ने नागों को मनुष्य रूप में परिवर्तित होते स्वयं ने देखा था अथवा नहीं, इस बारे में निश्चित रूप से तो कुछ कहा नहीं जा सकता लेकिन यह माना जा सकता है कि उस जलाशय में नाग रहते रहें होंगें और कोई भी मनुष्य नागों के डर से स्तूप को नुकसान नहीं पहुंचाता रहा होगा। उल्लेखनीय है कि दोनों चीनी यात्रियों ने अपनी यात्रा के दौरान रामग्राम में स्तूप को देखा था। यदि सिंहली कथा के अनुसार स्तूप ई० पूर्व की शताब्दियों में ही नदी में बह गया होता तो बाद में आने वाले ये यात्री किस प्रकार उस स्तूप को देखते। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि इन यात्रियों ने रामग्राम में स्तूप के पास ताल देखने की चर्चा की है, नदी की नहीं, जिससे पता चलता है कि रामग्राम किसी नदी के किनारे नहीं बसा था। अतः नदी में स्तूप बहने की मात्र एक कल्पना है और सम्भवतः लंका में बने स्तूप को महत्व देने के विचार से कही गयी होगी।

ऐसी स्थिति में कनिंघम महोदय ने देवकली के रूप में रामग्राम की जो पहचान की है, सम्पूर्ण भौगोलिक परिस्थितियों पर विचार करने पर वही ठीक लगता है। डा० राजबली पाण्डेय ने रोहिणी तथा अचिरावती (राप्ती) के संगम के आगे राप्ती के दक्षिण कोलियों के गणतंत्र की कल्पना की है और उसे गोरखपुर तहसील के दक्षिण भाग और बांस गांव तहसील के पश्चिम भाग में माना है[9]। इस दृष्टि से भी यही देवकली और तीयर का क्षेत्र प्राचीन रामग्राम हो सकता है। यदि डा० पाण्डेय लंका के बौद्ध ग्रन्थों की स्तूप के नदी में बह जाने वाली कथा को विशेष महत्व न देते तो वे भी रामगढ़ ताल की चर्चा रामग्राम के रूप में नहीं करते। पुनः उन्होंने मौर्यों की राजधानी पिप्पलियन के सन्दर्भ में लिखा है कि यह स्थान वर्तमान गोरखपुर से लगभग 14 मील (20-22 कि०मी०) दक्षिण पूर्व में था। इसके दक्षिण-पश्चिम में उन्होंने कोलियों की चर्चा की है[10]। अतः इस दृष्टि से भी रामग्राम वर्तमान गोरखपुर में न होकर तीयर और देवकली ग्रामों के क्षेत्र में होना चाहिए। फाह्यान की सूचना के आधार पर कनिंघम ने कहा है कि पांचवीं शताब्दी ई० में यह स्थान उजड़ चुका था क्योंकि उसने यहाँ पर एक छोटी धार्मिक व्यवस्था देखी थी और सातवीं शताब्दी ई० में ह्वेनसांग ने भी वही स्थिति देखी थी जहाँ पर केवल एक ही भिक्षु रहा करता था[11]। बाद में यह गिर गया होगा और आज जो टीला वहाँ पर है उसके

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

आकार प्रकार के अनुसार उसे स्तूप का अवशेष कहा जा सकता है।

पांचवीं शताब्दी ई० तक रामग्राम के उजड़ जाने का संभवतः राजनैतिक कारण रहा होगा क्योंकि गणतंत्रों के बाद पुनः राजतंत्रों में रामग्राम को वह स्थान नहीं प्राप्त हो सका, जो कोलियों के समय में था। अजातशत्रु तथा अशोक के समय स्तूप-अवशेषों को प्राप्त करने का जो प्रयास किया गया होगा उससे रामग्राम भी अछूता नहीं रह सका होगा, भले ही वहां का स्तूप सातवीं शताब्दी ई० तक मौजूद रहा। देवकली के रामग्राम होने के बारे में हम यह भी कहना चाहेगें कि केवल वर्तमान देवकली ही पूरा रामग्राम नहीं हो सकता। वर्तमान देवकली और तीयर ग्राम तथा इसके बीच के क्षेत्र को मिलाकर पूरा रामग्राम रहा होगा जिसके चतुर्दिक परिखायें थीं और वे आज भी तालों (खजुहा, करपइचा आदि) के रूप में विद्यमान हैं। इनकी परिधि लगभग 5-6 कि०मी० रही होगी। ये रामग्राम (देवकली और तीयर) की सुरक्षा के लिये थीं। रामग्राम के पराभव के बाद पांचवीं-सांतवीं शताब्दी ई० तक ये परिखायें तालों के रूप में परिवर्तित हो गयी होंगीं जिनको फाह्यान और ह्वेनसांग ने देखा था।

इन स्थानों (तीयर, देवकली, कनइल, दुबौली, पटखौली आदि ग्रामों) के सर्वेक्षण के समय तीयर में रिंगवेल तथा एक मौर्यकालीन प्रस्तर-डिस्क[12] का टुकड़ा मिला है जिस पर सिंह का अंकन है। इस प्रकार तीयर की प्राचीनता मौर्य काल और उसके पूर्व की प्रमाणित होती है। यहां पर कई बड़े-बड़े कुषाणकालीन मृदभाण्ड प्राप्त हुए थे, जिनमें केवल एक ही पूर्ण रूपेण बचा है जिसकी ऊँचाई ८५ से०मी०, मुख का व्यास ३०-२६ से० मी० तथा परिधि २७५ से०मी० है। यह एक शिवमंदिर में सुरक्षित है। ये मृदभाण्ड प्राचीनकाल में अन्न भंडारण के काम में आते थे।

इस प्रकार कुषाण कालीन विशाल मृदभाण्डों के परिपेक्ष्य में सौहगौरा ताम्रपत्र[13] में उल्लिखित तियवन/तिघवन शब्द की चर्चा की जा सकती है, जिसके बारे में विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर त्रितत, त्रिघर, त्रिवेणी आदि का उल्लेख किया है लेकिन उनका विवेचन करना हमारा अभिनय नहीं है बल्कि इस गाँव के नाम तियर अथवा तीयर तथा ताम्रपत्र लेख के तियवन/तिघवन शब्द की ध्वनि साम्यता पर विचार करना है। यह स्थान बांस गांव (बसगमें) से मात्र 3-4 कि०मी० दूर है जो मौर्य काल की दृष्टि से बहुत अधिक दूर नहीं है। श्रावस्ती से जब आदेश जारी किया जा रहा है तब बांस गांव और तीयर को बहुत अधिक दूर नहीं कहा जा सकता। यह भी विचारणीय है कि बांसगांव उस समय अधिक आबादी वाला प्रमुख गांव रहा होगा। अतः आबादी के बीच प्रशासकीय भण्डारण न रखकर उससे सटे हुए कुछ ही दूरी पर अन्न भण्डारण की व्यवस्था की गयी होगी, जो तत्कालीन परिखाओं से घिरे होने के कारण अत्यन्त ही सुरक्षित रहा होगा। उल्लेखनीय है कि तीन परिखाओं के चिन्ह यहां पर विद्यमान हैं। अतः तीन परिखाओं अर्थात् तीन घेरों वाला यह तियवन/तिघवन क्षेत्र रहा होगा जिसके आधार पर ही इसका नाम तिघर अथवा तियर/तीयर चला आ रहा है। उल्लेखनीय है कि जब कोठगलानि की चर्चा की जा चुकी है जिसका सम्बन्ध कोष्ठागार से है ही तब पुनः तिघवन/तिघवन से तीन तलों अथवा तीन घरों वाले कोष्ठागार कहने का तात्पर्य समझ में नहीं आता। अन्न भण्डारण के लिए तो जितने स्थान की आवश्यकता होगी, उतना प्रयोग में लिया ही जायेगा। प्रशासन की ओर से तीन ही घरों अथवा तलों का उल्लेख उचित नहीं जान पड़ता।

देवकली ग्राम में प्राईमरी पाठशाला के पास एक गोलाकार टीला है जिसे आज पलिहर बाबा का स्थान

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

कहा जाता है। इस टीले, में प्राचीन ईटें हैं और प्राप्त ईटों के आधार पर कम से कम यह गुप्तकालीन अवशेष तो है ही। यहां पर उल्लेखनीय है कि ह्वेनसांग ने रामग्राम के दक्षिण-पूर्व में स्तूप देखा था और यह टीला तीयर और देवकली को मिलाकर पूरे क्षेत्र के दक्षिण-पूर्व में ही है। अतः अधिक सम्भावना है कि यह रामग्राम के स्तूप का अवशेष हो सकता है जिसकी पहचान उत्खनन के बाद अच्छी तरह की जा सकती है। देवकली में अन्यत्र एक वट वृक्ष के नीचे उत्तर-गुप्तकाल की एक खंडित सूर्य प्रतिमा स्थित है। इस स्थल को धर्माइत स्थल अर्थात् धर्मादित्य का स्थान कहा जाता है। धर्मादित्य स्थान का तात्पर्य सूर्य-स्थान से है। आज भी यहाँ पर सूर्य-सप्तमी को धार्मिक कृत्य किये जाते हैं। यहाँ पर गुप्तकालीन ईटों के मिलने से ऐसा अनुमान है कि ये ईटें गुप्तकालीन मंदिर में लगी रही होगीं, जिसका गर्भगृह ऊँचाई पर था। पूर्व की ओर इस मंदिर का दरवाजा था तथा गर्भगृह तक पहुंचने के लिए गोलाकार सीढ़ियाँ थीं। इस मंदिर में प्रदक्षिणा प्रथ के भी होने के चिन्ह विद्यमान हैं। गर्भ-गृह के ऊँचाई पर होने से ऐसा अनुमान है कि संभवतः इसके नीचे भी कोई पूर्वकालीन स्थापत्य रहा होगा। वर्तमान तीयर और देवकली के बीच के क्षेत्र में भी कहीं-कहीं पर दीवारों तथा मृदभाण्डों के अवशेष प्राप्त होते हैं जहां पर लोग खोद-खोद कर खेती करते हैं। इन अवशेषों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस पूरे क्षेत्र में रामग्राम रहा होगा जिसके चतुर्दिक परिखाओं के होने से वह सुरक्षित था। ऐसी स्थिति में ही सम्भवतः अजातशत्रु रामग्राम के स्तूप को क्षति नहीं पहुंचा सका होगा।

इन परिखाओं के बाहर तीयर से दक्षिण दुबौली ग्राम में एक कुएं के अन्दर $40 \times 30 \times 10$ से०मी० के प्राचीन ईटें प्राप्त हुई हैं तथा पश्चिम में स्थिति कनइल ग्राम में प्राचीन मृदभाण्डों के टुकड़े एवं पटखौली ग्राम में शिव मंदिर में प्राचीन शिवलिंग मिला है जिसका यौनि मूत्र $120 \times 120 \times 75$ से०मी० आकार का है। टीले पर एक कच्ची मकान की दीवारों को सुरक्षित करने हेतु अनेक आकारों की प्राचीन ईटें लगी हुई हैं जो किसी अन्य प्राचीन स्थापत्य के अवशेष हैं। इनमें 22×5 से०मी० तथा 13×6 से० मी० आकार की गुप्त-कालीन अलंकृत ईटें हैं तथा कुछ अभिलिखित ईटें भी हैं जिन पर पहली-दूसरी शताब्दी ई० की ब्राह्मी लिपि में सिद्धं बा—(ब्राह्मण) अंकित है। इस क्षेत्र में इतने प्राचीन ईष्टिका अभिलेख पहली बार प्राप्त हुए हैं। इन ग्रामों के सर्वेक्षण से सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह उभर कर आया है कि वर्तमान तीयर और देवकली ही प्राचीन कोलियों का रामग्राम हो सकता है जिसके परिखा के बाहर भी प्राचीन अवशेष प्राप्त होते हैं जो इस क्षेत्र के इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भ

1. पाण्डेय, राजबली : गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृ० 68।
2. वही, पृ० 65
3. वही, पृ० 68
4. वही, पृ० 69
5. वही, पृ० 71
6. कनिंघम, ए : द एन्शिएण्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया, पृ० 355

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

7. वही,
8. वही,
9. पाण्डेय, राजबली : गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास पृ० 70
10. वही, पृ० 74
11. कनिंघम ए : द एन्शिएण्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया, पृ० 357
12. दिसम्बर, 1991 के सर्वेक्षण के बाद भी कृष्णानन्द त्रिपाठी ने दुबारा वहां जाकर इसकी खोज की
13. सरकार, डी० सी० : सलेक्ट इन्स्क्रिप्सन्स, पृ० 85

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

कल्याण चन्द्र का अठागुली ताम्रपत्र : नवीन खोज

विद्याधर एस० नेगी

उत्तर प्रदेश के तीन पर्वतीय जनपद क्रमशः नैनीताल, अल्मोड़ा एवं पिथौरागढ़ को मिलाकर बना भौगोलिक क्षेत्र कुमाऊँ कमिश्नरी के नाम से सर्वविदित है। आज बोलचाल में भी यह क्षेत्र 'कुमाऊँ' नाम से ही अभिहित किया जाता है।[1] कुमाऊँ के दक्षिणी भाग का निर्माण जहां तराई भावर क्षेत्र से हुआ है वहाँ उत्तर की ओर बढ़ते हुए पर्वतीय क्षेत्र में विभिन्न पर्वत श्रृंखलायें तथा ऊबड़-खाबड़ जमीन एवं जंगलों का बाहुल्य है। सुदूर उत्तरी सीमायें हिमाँच्छादित पर्वत श्रृंखला के रूप में इस क्षेत्र के लिये प्रहरी का कार्य सतत् करती रही हैं। इस प्रकार एक विषम भौगोलिक बनावट का यह भूक्षेत्र, भौगोलिक दृष्टि से जहां अपने आप में एक विशेषता वाला दिखलाई देता है, वहीं इन भौगोलिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप ही इस क्षेत्र की राजनीतिक अवस्थायें भी शेष भारत से कुछ भिन्न अवश्य रही हैं।

वस्तुतः मध्यकाल में कुमाऊँ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करने पर विदित होता है कि यहां पर सतत् स्थानीय राजवंशों का ही आधिपत्य रहा। यहां तक कि मुगलों के चरमोत्कर्ष के समय भी इस अंचल में, यहां के स्थानीय, "चन्द्र-राजवंश" के शासक अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने में सफल रहे, जिसके फलस्वरूप यहां की जनता को मुसलमानों के अत्याचारपूर्ण प्रशासन का सामना नहीं करना पड़ा। मुगल काल में कुमाऊँ पर शासन करने वाला प्रमुख राजवंश, "चन्द्र-राजवंश" ही था जिसने लगभग १३वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से अपना शासन प्रारम्भ कर १७९० ई० तक, लगभग सम्पूर्ण कुमाऊँ पर शासन किया। इनकी प्रारम्भिक राजधानी काली कुमाऊँ (चम्पावत) थी। १६वीं शताब्दी ई० के द्वितीय चतुर्थांश में, चन्द्र नरेश भीष्म द्वारा प्रारम्भिक राजधानी "चम्पावत" को बदलकर अल्मोड़ा में राजधानी बनाने की अनुश्रुति बहुप्रचलित है।[2] लेकिन इसी बीच कुछ षड्यन्त्रकारियों द्वारा भीष्म चन्द्र का वध कर दिया गया और भीष्म चन्द्र का राजनैतिक उत्तराधिकारी, अल्मोड़ा राजधानी से शासन करने वाला चन्द्र नरेश, बाली कल्याण चन्द्र गद्दी पर बैठा।[3] बाली कल्याण के उपरान्त अल्मोड़ा राजधानी से चन्द्र शासकों ने अबाध गति से १७९० ई० तक कुमाऊँ पर शासन किया। लेकिन स्मरणीय रहे कि सन १७४३-४४ ई० में अल्पावधि के लिए, कुछ माह तक, कुमाऊँ पर रोहेले अपना आधिपत्य स्थापित करने में सफल रहे। इसके मूल में चन्द्र राजाओं के

डा० विद्याधर एस० नेगी, पुरातत्व संस्थान, २४ तिलक मार्ग, नई दिल्ली

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

दरबार में सत्ता प्राप्ति की आपसी होड़ के कारण राजनैतिक अस्थिरता का उत्पन्न होना था।[४] इसी राजनीतिक दांवपेंच का एक परिणाम रोहेला आक्रमण की सफलता थी।

रोहेला आक्रमण के समय कुमाऊँ का शासक राजा कल्याण चन्द्र था। अभी तक ज्ञात अभिलेखीय साक्ष्यों में कल्याण चन्द्र के राज्यारोहण की तिथि अंकित नहीं मिलती है। जहां तक कल्याण चन्द्र के शासनकाल का सम्बन्ध है, विभिन्न चन्द्र वंशावलियों के अनुसार[५] वह अजीत चन्द्र के पश्चात् गद्दी पर बैठा। एटकिंसन ने कल्याण चन्द्र का शासन काल, अजीत चन्द्र (१७२६-२९ ई०) के पश्चात् सन् १७३० ई० से १७४७ ई० माना है।[६] एटकिंसन ने कल्याण चन्द्र के प्रथम ज्ञात ताम्रपत्र की तिथि १७३१ ई० बतलायी है।[७] एटकिंसन के अनुसार कल्याण चन्द्र ने १७ वर्ष राज्य किया।[८] लेकिन हाल में कुछ महत्वपूर्ण अभिलेखीय सामग्री के प्रकाश में आने से कल्याण चन्द्र के शासन काल में कुछ अन्तर स्पष्ट नजर आता है। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि अजीत चन्द्र के समय के अभिलेखीय साक्ष्यों से विदित होता है कि वह साके १६५३ (१७३१ ई०) में शासन कर रहा था।[९] इससे स्पष्ट है कि अजीत चन्द्र का राजनैतिक उत्तराधिकारी कल्याण चन्द्र १७३१ ई० में या उसके पश्चात् ही गद्दी पर बैठा होगा। कल्याण चन्द्र के शासन का अन्तिम ज्ञात ताम्रपत्र साके १६६८ (१७४६ ई०) का है।[१०] कल्याण चन्द्र के उत्तराधिकारी दीप चन्द्र का प्रथम ज्ञात ताम्रपत्र साके १६६९ (१७४७ ई०) का है।[११] उक्त विवरण से स्पष्ट है कि कल्याण चन्द्र ने न्यूनतम साके १६५३ (१७३१ ई०) से साके १६६८ (१७४६ ई०) अर्थात् १५ वर्ष तथा अधिकतम साके १६५३ (१७३१ ई०) से साके १६६९ (१७४७ ई०) तक कुल १६ वर्ष शासन किया।

कल्याण चन्द्र का शासन काल कुमाऊँ के इतिहास में एक ऐसा काल था, जबकि रोहेला आक्रमण का शिकार कुमाऊँ के निवासियों को बनना पड़ा। बाह्य एवं आन्तरिक परिस्थितियां इस आक्रमण के लिए जिम्मेदार थीं। रोहेला सरदार अली मुहम्मद खाँ पहले से ही, देवी चन्द्र द्वारा दाऊद खाँ के वध का बदला लेना चाहता था।[१२] दूसरी ओर यह एक ऐसा काल था जबकि मुगलों, मराठों एवं रोहेलों के मध्य राजनैतिक प्रतिस्पर्द्धा के कारण संघर्षपूर्ण स्थिति बनी हुई थी।[१३] और रोहेले कुमाऊँ को अपना स्थाई उपनिवेश बनाने के लिये नजर गड़ाये थे। इधर कुमाऊं में कल्याण चन्द्र के अत्याचारों से यहां की आन्तरिक स्थिति भी सन्तोषजनक एवं सामान्य न थी। कुछ चापलूस दरबारियों के सिखाये में आकर कल्याण चन्द्र ने ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों पर अत्याचार किये।[१४] अनेक निर्दोष, योग्य एवं ईमानदार अधिकारियों एवं प्रभावशाली व्यक्तियों को दण्डित किया गया। इन्हीं प्रभावशाली व्यक्तियों में से हिम्मत सिंह रोतेला भी एक था, जो कि राजा कल्याण चन्द्र के अत्याचारों से त्रसित होकर नीचे तराई की ओर भागा और वहां सेना एकत्र कर राजा के विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया। यद्यपि इस विद्रोह को कल्याण चन्द्र ने सफलतापूर्वक दबाया, परन्तु हिम्मत सिंह रोतेला हाथ न आ सका और वह भागकर रोहेलों के पड़ाव में आंवला पहुंचा।[१५] प्रतिशोध की अग्नि कल्याण चन्द्र को रोक न पाई और उसने आंवला में अपने आदमी भेज कर रोहेलों के पड़ाव में ही हिम्मत सिंह एवं उसके परिवार के लोगों की हत्या करवा दी।[१६] अपने शरणागत, हिम्मत सिंह रोतेला, के वध की इस घटना से क्रुद्ध होकर प्रतिक्रियास्वरूप रोहेला सरदार ने कुमाऊँ पर आक्रमण किया। यद्यपि कुमाऊँनी सरदारों ने इस आक्रमण का प्रतिरोध किया, लेकिन आन्तरिक राजनैतिक दीमक के कारण कुमाऊँनियों को कहीं भी सफलता नहीं मिली। अन्ततः रोहेलों ने चन्द्र राजधानी, अल्मोड़ा पर आसानी से अधिकार कर लिया।[१७] स्वयं राजा कल्याण चन्द्र जान बचाकर गढ़वाल की ओर भाग खड़ा हुआ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

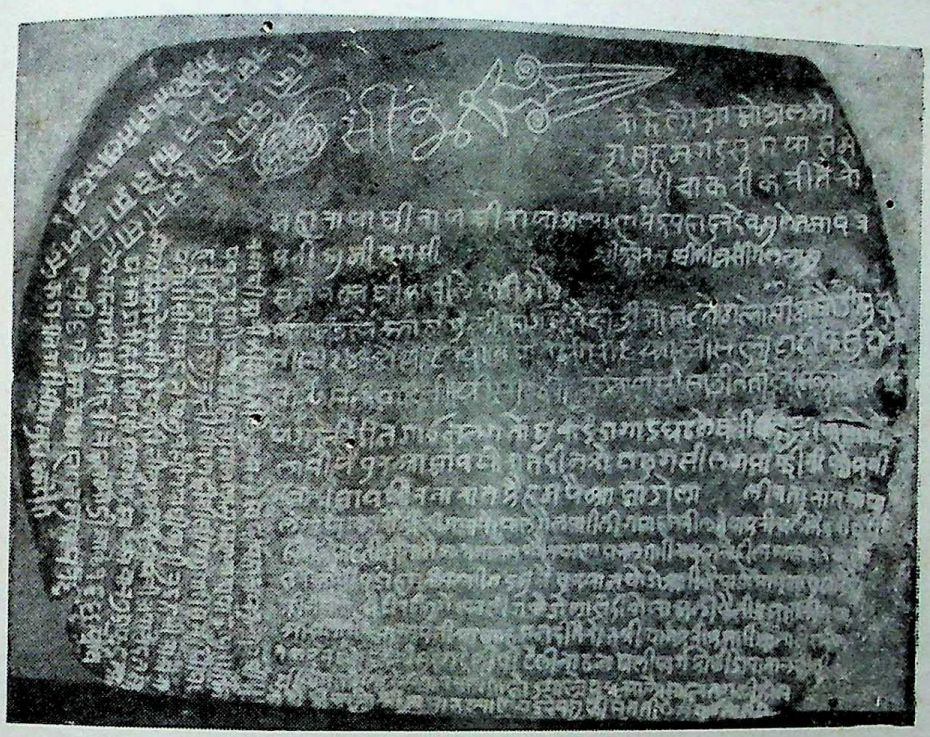

कल्याण चन्द्र का अठागुली ताम्रपत्र

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

इस रोहेला आक्रमण का विस्तृत वर्णन एटकिंसन द्वारा प्रस्तुत किया गया है।[१८] इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि अध्ययनरत ताम्रपत्र, इस आक्रमण के विषय में कुछ रोचक एवं महत्वपूर्ण तथ्यों को उजागर करता है। जो कि एटकिंसन एवं उसके बाद के लेखकों के वृत्तान्तों में प्राप्त नहीं होता। इस ताम्रपत्र के अध्ययन से स्पष्ट विदित होता है कि रोहेला आक्रमण को निष्फल करने में तथा रोहेलों को कुमाऊँ से बाहर खदेड़ने में किसी एक व्यक्ति या परिवार विशेष का ही हाथ न था बल्कि कुमाऊँ के विभिन्न प्रभावशाली व्यक्तियों का अलग-अलग समय और अलग-अलग स्थानों में महत्वपूर्ण योगदान रहा।[१९] इतना ही नहीं कल्याणचन्द्रोदय काव्य से इस बात की स्पष्ट सूचना भी ज्ञात होती है। इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रोहेला आक्रमण को निष्फल करने एवं रोहेलों से कुमाऊँ को मुक्त कराने के लिए समाज के विभिन्न वर्गों जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी प्रकार अनेक प्रभावशाली व्यक्तियों का नामोल्लेख भी इस काव्य में मिलता है।[२०]

अध्ययनरत ताम्रपत्र क. प्राप्तकर्ता समेर अधिकारी भी एक ऐसा ही प्रभावशाली व्यक्ति प्रतीत होता है जो कि "अठागुली" (बारामण्डल) क्षेत्र का निवासी था, जिसने अपने परिश्रम, साहस एवं बुद्धिमता से रोहेला आक्रमण के समय एक कुशलवीर पुरुष की भूमिका का निर्वाह किया और राजा तथा उसके परिवार की जान बचाकर उन्हें सकुशल सुरक्षित स्थान तक पहुंचाया। समेर अधिकारी की इस सेवा से प्रसन्न होकर राजा कल्याण चन्द्र ने उसे, उसके निवास क्षेत्र "अठागुली" में "रौत"[२१] में भूमि प्रदान की। इसी आशय युक्त प्रदत्त यह ताम्रपत्र है।

अध्ययनरत ताम्रपत्र में लिपि एवं भाषागत दृष्टि से अनेक विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं। जो कि निम्नवत् हैं—

१. 'क', व', 'ब' में, 'ध' और 'घ' में, 'ज', 'व', 'य', तथा कभी-कभी 'र' और 'त' में काफी समानता दिखलाई देती है।
२. कभी-कभी 'ट' और 'ठ' भी समान लगते हैं।
३. 'क' तथा 'फ' में अन्तर बहुत न्यून है।
४. प्रायः ('इ' की) बड़ी मात्रा का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ—'महाराजाधीराज', 'वीसी', 'फीरी', 'करी' आदि।
५. 'ख' के लिये सदा 'ष' का प्रयोग किया गया है।
६. ताम्रपत्र की लिपि नागरी, तथा भाषा कुमाऊँनी है।

मूलपाठ :

प्रस्तुत ताम्रपत्र का मूलपाठ निम्नवत है :—

१. 'महाराजाधीराज' श्री राजा कल्याण चन्द्र बहादुर देव ज्यू ले तमा पत्र

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

२. करी भुमी बगसी
३. समेर अधिकारी ले पाई मौ :
४. बारामण्डल अठागुली का गर्षा मै दाडीमा तलो मलो सीम पौडी सुदा
५. वीसी २४, भैंसोल वारपारवीसी ६, च्याली सेलाटाटीक सुदा वी—
६. सी ६, सतीयाली वीसी ४ १/२ जमा वीसी साडी तैतालीस थात करी
७. बगसी ईन गाउ लगतौ धुरा डंडा गाड घट लेष ईजर सुदा पायो रोहे—
८. ला बीजैपुर आया बटी रात दीन कोटा ढुंग सील गया फीरी फौज वी—
९. चलीया वटी रतारात कै हम पै आया डोला ली रतारात आ घा
१०. लागार्या आपु बोकि ली गया बोजा लगै लयाई ली गया हमरी चाकरी भली कै करी घेटी
११. हम छीया हतीछीना मै भला मानस और थाणादार लगाई राख छा रोहेला आया पर थाणा –
१२. दार भाजी पडा हूमरी चलाई गइसु मै सुकजाव घोड़ा आई नै पायो अपना पुठा कै वो—
१३. की बेर घेटी वटी तुंगेश्वर ली गयो डोला डांडी बोजा भली कै नीरभाई ली गया
१४. आ चलाई भया अपनी अस्लाहमन दी तै रौत की थात करी कमाई खाना सुं सर्वक—
१५. र अकर सर्व द्वंद वीसुद्ध गडेली पीटेली नाठ नठाली स्वर्ग को ढीडो पाताल की नी—
१६. धी वाजदार वजनीया वषरीया घोड्यालो कुकररालो साह रतगली को स—
१७. व टोडी पायो श्री राजा कल्याण चन्द्र देव ज्यु की संतती ले भुचाउनो समे—

बायें हासिया पर :

१. र अधीकारी की संतती ले भुवनों साक्षी महाराजकुमार श्री दी—
२. प चन्द्र गुसाई ज्यु श्री कीस्न सींग लला ज्यु प्राणनाथ पाडे पुरोहीत
३. हरीकीस्न पांडे गुरु हरीसींग लछीमी सींग गुसाई बगसी सीव दे—
४. व जोइसी रामदत्त अनुप सींग अधीकारी रुद्र हरीराम रा—
५. माकांत कीष्णदेव सीवदेव जोइसी लालमनी चौधरी भवानन्द जसे—
६. धर भंडारी हरीसींग सेज्याली कुमाऊँ का चार बुड़ा फुडता—
७. ल महरा लीषीतं हरीनंदन त्याडी साके १६६६ स्राव—
८. ण वदी ६ गुरौ मारफत हाजर मुकाम राजपुर कंडारीतं राई सींग सुदार कटोई।

दायें हासिये पर, ऊपर की ओर ;

१. रोहेलो आयो अलमो—

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

२. डा सु हम गड सु गया समे--

३. र ले बड़ी चाकरी करी तै रो—

बांयें हासिये के ऊपरी कोने पर :

१. त को बगसो हमरा सात

२ रया समेर की सेवा समजी

३. जो यो ले तै पर तलाक छन

दूसरी पंक्ति के किनारे (प्रथम व तीसरी) पंक्ति के मध्य :

१. श्री कुंवर कीस्न सींग लला ज्यु ।

अनुवाद (मूल पाठ का) :

ताम्रपत्र के मूलपाठ में अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो कि अब प्रचलन में नहीं हैं। फिर भी हमने समकालीन विभिन्न ताम्रपत्रों एवं लिपिपत्रों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर एकत्र जानकारी को ध्यान में रखते हुए, उपर्युक्त मूल पाठ का अनुवाद प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जो कि निम्नवत् है--

१. महाराजाधिराज श्री राजा कल्याण चन्द्र बहादुर देव जी ने ताम्रपत्र

२. जारी कर. भूमि प्रदान की

३ समेर अधिकारी ने भूमि प्राप्त की, मौजा

४. बारामण्डल अठागुली (अल्मोड़े जिले की बारामण्डल तहसील के अन्तर्गत अठागुली पट्टी आज भी विद्यमान है) का गर्खा (छोटी प्रशासनिक इकाई) में दाड़िमा (ग्राम का नाम), तल्ला मल्ला सीम (स्थान नाम) तथा खौड़ी (स्थान नाम) सहित

५. २४ बीसी (१ बीसी = २० नाली), भैसोल (स्थान नाम) वार-पार ६ बीसी, च्याली, सेला, टाटीक (सभी ग्राम नाम) सहित

६. ६ बीसी, सतीयाली, वर्तमान सत्याली (ग्राम नाम) की ४ १/२ बीसी, कुल साढे तैंतालीस (४३ १/२) बीसी 'थात'[२२] प्रदान

७. की गयी। इन गाँवों (ग्रामों) से लगे धुरा-डंडा,[२३] गाड़,[२४] घट,[२५] ईजर,[२६] लेख,[२७] सहित समेर को दिया गया

८. रोहेलों के बिजैपुर (भीमताल के निकट बीजैपुर या बिजीपुर नामक स्थान के किले में) आने के बाद रात दिन चलकर समेर अधिकारी कोटा ढुंग सील गये और फिर फौज

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

९. विचल जाने ('विचलियाबटी')[२८] अर्थात तितरबितर हो जाने के बाद रातोंरात हमारे पास आये, डोला लेकर आगे लंगे (चले)

१०. स्वयं डोला 'बोक' (उठाकर) ले गये। बोझा इत्यादि ले जाने का प्रबन्ध कर, हमारी सेवा भली-भांति की हम लोग घेटी (स्थान नाम)

११. में थे। हतछीना में हमारे आदमी (भला मानस)[२९] और थानेदार नियुक्त थे। रोहेलों के आते ही थानेदार

१२. भाग खड़े हुए और हम लोग 'गड' (गढ़वाल) की ओर चल पड़े। जब सुकजाव घोड़ा न आ सका[३०] तो अपनी पीठ में 'बोक' (ढो) कर

१३. घेटी से तुंगेश्वर (नामक स्थान गढ़वाल में विद्यमान है) ले गये, डोला-डांडी तथा बोझा (सामान) आदि ठीक प्रकार से ले गये।

१४. अपनी सारी असला (युद्ध सामग्री) समेर ने हमें दी। इस 'रौत' के उपलक्ष में (समेर को) कमा खाने के लिये थात प्रदान की गयी। सभी

१५. 'कर' मुक्त किये गये, सभी 'द्वंद' (विवाद) 'विशुद्ध' (ठीक) किये गये, गडेली-पिटेली, नाठ-नठ्याली, स्वर्ग को ढीठो, पाताल की निधि,

१६. बाजदार, बजनिया, बखरिया, घोड्यालो, कुकरालो, साह, रतगली आदि[३१]

१७. के लिये वसूले जाने वाले सभी 'कर' (टैक्सेज) समाप्त कर दिये गये। श्री राजा कल्याण चन्द्र देव जी की संतती (सन्तान) इस भूमि का उपभोग (समेर की सन्तान को) करने देंगी।

बायें हासिये पर :

१. समेर की सन्तानें इसका (प्रदत्त भूमि का) उपभोग करेंगी, साक्षी (गवाह) महाराजकुमार श्री

२. दीप चन्द्र गुसाई जी, श्री कृष्णसींग लला जी, प्राणनाथ पांडे पुरोहित

३ हरीकिस्न पांडे गुरु, हरीसींग गुसाई, बगसी (बख्शी) शिवदेव

४. जोशी, रामदत्त, अनूपसींग अधिकारी, रुद्र हरीराम रा—

५. माकांत कीष्णदेव सीदेव जोशी, लालमणी चौधरी, भवानन्द जसे ---

६. धर भंडारी, हरीसींग सेज्याली, कुमाऊँ का चार बुड़ा ('बुड़' बुढ़ा)[३२] फुड़ता—

७. ल (फड़त्याल), महरा, लिखितं (लेखक) हरीनंदन त्याड़ी (तिवारी) साके १६६६ स्राव—

८. ण वदी ६ गुरौ (गुरुवार) मारफत हाजर, मुकाम राजपुर कंडारीतं राई सींग सुदार कटोई

दायें हासिये पर ऊपर की ओर :

१. रोहेले (अल्मोड़ा) आये अल्मो—

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

२. ड़ा से हम लोग गढ़वाल की ओर गये। समेर
३. ने बड़ी सेवा की, जिसके लिये उसे

बाँये हासिये के ऊपरी कोने पर :

१. 'रोत' प्रदान की गयी, वह (समेर) हमारे साथ
२. रहा, समेर की सेवाओं के लिये प्रदत्त (इस भूमि को)
३. जो लेगा (अपृहृत करेगा), उसे 'तलाक' की सौगन्ध है।

दूसरी पंक्ति के किनारे (प्रथम व तीसरी पंक्ति के मध्य) :

१. श्री कुंवर कीस्न सींग लला ज्यु।

संदर्भ

१. कुमाऊँ के लिये कभी-कभी 'कुमायूँ' का प्रचलन होने लगा है। प्रायः मैदानी क्षेत्र के लोग, ही 'कुमायूँ' शब्द का उच्चारण एवं प्रयोग करते हैं। जबकि शुद्ध एवं मूल शब्द 'कुमाऊँ' है। चन्द्रकालीन अभिलेखों में सदैव 'कुमाऊँ' का ही प्रयोग मिलता है। तत्पश्चात गोरखों एवं अंग्रेजों के समय के अभिलेखीय साक्ष्यों में भी प्रायः 'कुमाऊँ' का प्रयोग इस अंचल के लिए किया गया है।

२. एटकिंसन, ई० टी० **द हिमालयन गजेटियर**, वाल्यूम-२, पार्ट-२, पृ० ३९, रिप्रिन्टेड—१९७३, कॉस्मो पब्लिकेशन दिल्ली---१,

३. वही।

४. वही, पृ०—५८० एवं आगे।

५. (अ) 'सीरा' (डीडी हाट क्षेत्र) से प्राप्त बहियों के अनुसार (प्राप्ति श्रोत—डा० रामसिंह एवं डा० नीरप्रभा के संकलन से)।
(आ) गल्ली से प्राप्त प्राचीन हस्तलिखित वंशावली (डा० एम० पी० जोशी के संकलन से प्राप्त)
(इ) एटकिंसन, ई०टी०—पूर्वोक्त, पृ० ५८३-८४

६. एटकिंसन—उक्त

७. वहीं पृ०—५८५ (पाद टिप्पणी)

८. वही

९. नेगी, विद्याधर—'कुमाऊँ का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास (११वीं शताब्दी से १८वीं शती तक)' **अप्रकाशित पी-एच०डी० शोध प्रबन्ध**; कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, (अक्टूबर १९८८) पृ०—६३

१०. वही

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

११. वही

१२. विस्तार हेतु देखिये —एटकिंसन—पूर्वोक्त, पृ० ५८२

१३. जोशी, एम०पी०—'चम्पावत कॉपर प्लेट ऑफ किंग कल्याण चन्द्र', **स्वस्ति श्री**, डा० वी०सी० छावड़ा फिलीसिटेशन वाल्यूम पृ०—१५२, आगम प्रकाशन दिल्ली १९८४,

१४. एटकिंसन – पूर्वोक्त, पृ० ५८४-८५
पाण्डे, बदरीदत्त— **कुमाऊँ का इतिहास**, पृ०—३१९-२०, प्रेम कुटी अल्मोड़ा, १९३७,

१५. एटकिंसन-उपरोक्त, पृ०—५८५-८६

१६. वही

१७. वही, पृ०—५८७

१८. वही, पृ०— ५८६-८७

१९. एक उल्लेखनीय साक्ष्य के रूप में, चम्पावत क्षेत्र के निवासी अनूपसिंह तड़ागी को प्राप्त ताम्रपत्र महत्वपूर्ण है। विस्तार हेतु देखिये—जोशी, एम०पी०, पूर्वोक्त, पृ० १५१-५५

२०. रोहेला आक्रमण के समय, रोहेलों से संघर्ष करने वाले बहुत से वीर योद्धाओं का नामोल्लेख कल्याण चन्द्रोदय काव्य में मिलता है। उदाहरणार्थ-हरिराम ज्योतिर्विद, जयकृष्ण, शिवदेव, लक्ष्मीपति, लक्ष्मीसिंह (राजकुंवर), चन्द्रि सिंह, रणजीत सिंह, करालकेसरी सिंह, धर्मु, तेज सिंह, गज सिंह, हिम्मत सिंह, नरी, जिउण, सुरतानक, श्याम सिंह, जरानाहरसिंह, वीर बल्लभ आदि (कल्याण चन्द्रोदय काव्य) हस्तलिखित प्रति (सर्ग ६ श्लोक सं० ६, ७, ८, ९, २०, २२ एवं २३), प्राप्ति डा० एम० पी० जोशी के संकलन से)।

२१. 'रौत' प्रकार का भूमिदान समस्त 'करों' से मुक्त रहता है। डी० सी० सरकार के अनुसार युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारे जाने (रक्त बहाने) के कारण मिलने वाली जागीर, 'रक्तपटक' कहलाती थी (इण्डियनइपिग्रेफिकल ग्लोजरी—पृ० २७५, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली १९६६) कुमाऊँ में प्रचलित 'रौत' भी 'रक्तपट्टक' के समान ही प्रतीत होती है। लेकिन 'रौत' युद्ध में मारे जाने के अतिरिक्त राजा अथवा राज्य के लिए प्राणों की बाजी लगाकर की गयी सेवा हेतु अथवा किसी विशिष्ट राजकीय सेवा हुत जीवित व्यक्ति को भी दी जाती थी। (नेगी, विद्याधर-पूर्वोक्त पृ० ३१०)

२२. 'धात' का तात्पर्य जागीर अथवा भूमि से है।

२३. 'धुरा-डंडा' का तात्पर्य स्थानीय बोली में 'धुर-डान', से है, जो कि भूमि की प्राकृतिक बनावट के आधार पर, भूमि की कोटि का सूचक है। 'धुर-डान' ऐसे क्षेत्र के लिए प्रयुक्त है जिसमें कि खेती के योग्य भूमि का अभाव रहता है, 'धुरडान' कम ऊँचाई वाली पहाड़ियाँ कहलाती हैं जहां से लोग घास, लकड़ी लाते हैं तथा यहां पशुचारण भी होता है।

२४. 'गाड़' का तात्पर्य छोटी नदी नुमा नाले के लिये स्थानीय अंचल में प्रचलित है। इसके जल से सिंचाई एवं घराट (पनचक्की) आदि भी चलायी जाती हैं।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

२५. 'घट' का तात्पर्य 'घराट' (पनचक्की) से है।

२६. 'लेष' (लेख) का तात्पर्य घने जंगलों वाली समतल भूमि से है। आवश्यकतानुसार जंगल काटकर इसे कृषि योग्य बनाया जा सकता है। उसमें उपज अच्छी होती है।

२७. 'ईजर का तात्पर्य एक प्रकार की बंजरभूमि से है जिसमें हर तीसरे वर्ष या लम्बे अन्तराल में खेती की जा सकती है। (स्टोवैल, वी०ए०-अ-मैकुवल आफ द लैण्ड टिन्यूर्स आफ द कुमाऊँ डिविजन, प्रिफेस-८, सुपरिन्टेन्डेन्ट, प्रिंटिंग एण्ड स्टेशनरी, इलाहाबाद, १९६६

२८ 'विचलिया' का तात्पर्य स्थानीय भाषा के अनुसार 'विचल जाने' अर्थात् विचलित हो (बिखर) जाने से है।

२९. 'भला मानस' स्थानीय बोली में 'भल मैस' अर्थात् अच्छे आदमी यानी प्रभावशाली एवं प्रमुख व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त हुआ है।

३०. 'मुकजाव' राजा के घोड़े का नाम प्रतीत होता है। संकट के समय संकीण पर्वतीय मार्ग पर भागते हुए मुख्य मार्ग से हटकर भी चलना पड़ा होगा। संकीर्ण मार्गों पर आज भी पशुओं को आसानी से नहीं चलाया जा सकता। इसलिये विकट मार्गों से घोड़ा न चल पाने के कारण राजा को अपनी पीठ में बिठाकर यानि स्वयं डोला-डांडि उठाकर समेरे अधिकारी ले गया होगा।

३१. 'गडेली, पिटेली, नाठ-नठ्याली, स्वर्ग को ढीडो, पाताल की निधि, बाजदार, बजनिया, घोड़ालो, कुकरालो, साह, रतगली', आदि ये सब विभिन्न प्रकारके 'कर' (टैक्सेज) हैं। (विस्तार हेतु देखिये—नेगी, विद्याधर—पूर्वोक्त, पृ० ४५१—आगे)

३२. चन्द्र प्रशासन के अन्तर्गत 'बुड़/बुढ़ा' एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक अधिकारी होता था। चम्पावत में 'चार-बूड़े', तड़ागी, कार्की, बोरा, एवं चौधरी, प्रारम्भिक चन्द्र प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका रखते थे। यही चार बूड़ा आगे भी प्रयुक्त होने लगा, परन्तु राज्य विस्तार के साथ-साथ 'बुड़ों' की संख्या में भी वृद्धि होने लगी। स्थान-स्थान पर 'बुड़े' नियुक्त किये जाने लगे। लेकिन उत्तरवर्ती ताम्रपत्रों में भी चार बूड़ों का उल्लेख मिलने से ऐसा प्रतीत होता है कि केन्द्रीय प्रशासन में कुछ प्रभावशाली 'धड़े' के 'बुड़ों' को ही स्थान दिया जाता होगा और इनकी संख्या केवल चार ही रही होगी।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

THE LYSIAS—ANTIALKIDAS COIN

Prashant Srivastava

A coin bearing the name of Lysias on the obverse, and that of Antialkidas on the reverse, presents a very interesting, but difficult problem. The coin-type is being described below.

Obv. : Bearded bust of Herakles, to r.; Club over left shoulder. *Gk.* legend on three sides : ΒΑΣΙΛΕΩΣ (l). ΑΝΙΚΗΤΟΥ (top) ΛΥΣΙΟΥ. (r.)

Rev. : Egg-shaped caps (pilei) of the Dioskuri, surmounted by stars, and two palm branches between. *Kh.* legend : *Maharajasa* (r.) *Jayadharasa* (top) *Amtialikitasa* (l)[1]

Antialkidas is generally believed to belong to the family of Eukratides.[2] Gardner has expressed the view that because the common type of Antialkidas is Dioskuri, and because his portrait resembles Heliokles', Antialkidas has to be placed in the family of Eukratidas.[3] He however, remarks that the connection between Antialkidas and Lysias is obscure.[4] Scholars are not sure about the family of Lysias. Wilson places Lysias in the rival family of Euthydemos.[5] Rapson, too, on the basis of the type "bust of king wearing elephant's scalp : Herakles standing", which was struck by Lysias singly, and which is the characterstic type of Demetrios, places Lysias in the Euthydemid family.[6] Tarn regards Lysias as a grandson of Demetrios.[7] Narain also regards him as scion of the Euthydemid family.[8]

Lassen, however, places Lysias and Antialkidas in same family.[9] Cunningham also regards Lysias and Antialkidas as belonging to the same family and regards the former as the predecessor, and the father or elder brother of the latter.[10] Marshall[11] and Sircar,[12] too, are of the same view.

On the basis of the coin-types issued by Lysias and Antialkidas separately, the

Dr. Prashant Srivastava, Lecturer, Department of Ancient Indian History & Archaeology, Lucknow University.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

view of Tarn and Narain, that Antialkidas belonged to the family of Eukratidas, and Lysias to the family of Euthydemos, seems to be quite convincing, though not final.

Earlier scholars regarded this coin-type as a joint-issue and it was generally taken to "denote the association of the younger prince in the government",[13] the 'younger prince' in this context being Antialkidas, for he occupies the inferior position on the reverse side of the coin and his name and titles are given in *Prākrit* in the *Kharoṣṭhi* script.[14] Rapson notices that on this joint-issue, Lysias is associated with Antialkidas,[15] but does not express any view regarding their relationship. Gardner, too, regards it as a joint coin.[16]

Tarn, who regards Lysias and Antialkidas as belonging to the rival *Yavana* families of Euthydemos and Eukratides,[17] takes this coin not as a joint coin,[18] but as a coin issued by Lysias alone and referring to, but not expressing, a *rapprochement*, "probably a treaty of permanent peace," "between the two *Yavana* factions, in view of the Saka menace already coming into view.[19] He suggests that when Heliokles occupied Bactria, some son of Demetrios maintained himself in some hill kingdom, and that Lysias, the son of this petty prince, entered into a treaty with Antialkidas and became an associate of some sort, though not a sub-king of Antialkidas, while he retained his hill kingdom. The coins bearing the names of Lysias and Antialkidas, being issued by Lysias alone, carry the name of Lysias in Greek on the obverse, though Antialkidas was probably the more powerful of the two.[20]

This hypothesis of Tarn, though very attractive, is not wholly satisfactory. Marshall has remarked,[21] "When a coin bears the names of kings without any indication of their relationship, it is natural to suppose that the king named on the obverse is the more important and senior of the two. It is hardly credible that a local princeling, reigning somewhere in the hills, would have the hardihood to relegate the great Antialkidas to an inferior position on the reverse of the coins which were struck in the latter's own mint and circulated in his own territories."

Whitehead has expressed doubt about this coin being in the nature of a joint-issue.[22] Narain was the first to express the possibility of this coin being a 'mule',[23] and he says, "In a period when the mints must have frequently passed from one king's possession to that of another, such a 'mule' is quite possible."[24]

Besides disagreeing with Tarn's view of a *rapprochement* between the rival Indo-Greek families, he "guesses" from the fact that Antialkidas overstruck the coins of Lysias, and Haliokles II, those of Philoxenos, that Lysias and Philoxenos had joined hands against the family of Eukratides.[25] If this suggestion is correct, this coin is most probably a 'mule',

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The greatest difficulty in accepting this coin-type as a joint-issue is that on this coin, the name of Antialkidas, who was a ruler far greater than Lysias, occurs in the inferior position on the reverse, which scholars find "hardly credible".[26] However, if one regards this coin-type to have been issued in the initial days of the reign of Antialkidas, when Lysias might have been the more powerful of the two the inferior position of Antialkidas on the reverse side of the coin becomes quite understandable. Again, there might have been two kings of the name of Antialkidas. The first king of this name might not have been very powerful, but the second Antialkidas was very powerful, and it is this Antialkidas II who overstruck the coins of Lysias. The king who occupies the inferior position on the reverse of the coin-type of Lysias, then should be indentified as Antialkidas I.

Antialkidas II might have been a son or grandson, and a successor of the first king of that name. Father and son have been known to use the similar coin-type.[27] Grandfather and grandson, too, have been seen to use similar devices on their respective coins.[28] Father and son are also known to have assumed similar epithets. Both Menadar and his son Strato I are known to have assumed the titles of ΣΩΤΗΡ [29] and ΔΙΚΑΙΟΣ [30]. This can explain the use, by Antialkidas II, of the coin-type and the title *Jayadhara* of Antialkidas I, which occurs on the reverse of the coin in question, if the assumption of the existence of two kings named Antialkidas be accepted.

We would also like to state that the coins of Antialkidas in the Punjab Museum Collection[31] have in the obverse legend, the late forms of the letters Σ (C, Ɛ) and Ω (ω). Whitehead finds this "remarkable occurring so early," and says that these late forms of the letters are not found "in this series prior to the well-known copper coins of Nikias."[33] May it be suggested that these coins, too, belong to the second Antialkidas ?

It is true that on the Lysias-Antialkidas coin, both Lysias and Antialkidas are given full royal titles.[34] But the same is the case with the joint-issues of Azes and Azilises.[35] So this is no reason for not regarding this coin-type of Lysias and Antialkidas as a joint-issue.

Hence, we see that the joint nature of this coin-type cannot altogether be ruled out. Narain's suggestion that this coin-type is a 'mule' is logical; it is, however, equally

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

possible that this coin-type is a joint-issue. At the present state of our knowledge, it is not justifiable to rule out any theory.

REFERENCE

1. *CASE*, p. 198, pl. VIII, Fig. 4 : *BMC, GSKBI* p. 166, pl. XXXI, 2 : *CIGC*, p. 148, pl. XXIII, 13.
2. *CHI*, Vol. I, p. 504; Tarn, *GBI*, p. 314; Narain, *IG*, p. 102. This conclusion is drawn on the basis of the type "piloi of the Dioskuri", characterstic of the family of Eukratides.
3. *BMC, GSKBI*, p. xxxiv.
4. *Ibid.*
5. *Ariana Antiqua*, p. 277.
6. *CHI*, Vol. I, p. 504.
7. *GBI*, p. 314.
8. *IG*, pp. 102, 115-16.
9. Lassen places Lysias after Antialkidas. See *Bactrian and Indo-Scythian Coins*, English Translation, p. 131.
10. *NC*, Vol. VIII, 1843, p. 175; *CASE*, p. 211.
11. *Taxila*, Vol. I, pp. 36-37. He regards Lysias an the father of Antialkidas.
12. *AIU*, p. 116. He expresses the possibility of Lysias' being the father of Antialkidas. He places Lysias' reign between those of Heliokles and Antialkidas.
13. *CASE*, p. 211.
14. *Ibid.*
15. *CHI*, Vol. I, p. 504.
16. *BMC, GSKBI*, p xxxiv.
17. *GBI*, p. 314.
18. Narain *IG*, p. 116 and fn. 3, seems to misunderstand Tarn, and says that Tarn takes it as a "joint issue"
19. *GBI*, p. 315.
20. *Ibid.*, pp. 314-15.
21. *Taxila*, Vol. I, p. 36.
22. *NC*, 1947, pp. 32-33.
23. *IG*, p. 116.
24. *Ibid.*

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization

25. *Ibid.*, p. 117.

26. Marshall, *Taxila*, Vol. I, p. 36.

27. Compare Menander's coin no. 373, *PMC*, Vol. 1, p. 54, with Strato's coin no. 355, *ibid.*, p. 49.

28. Compare Euthydemos I's coin no. 16, *PMC*, Vol. I, p. 12, with Euthydemos II's coin no. 34, *ibid.*, p. 15.

29. *PMC*, Vol. I, p. 54, nos. 373-380 (Menander) and *ibid.*, pp. 50-51, nos. 360-62, 366-69 (Strato I).

30. *PMC*, Vol. I. 59, no. 481, p. 65, no. 525 (Menander) and *ibid.*, p. 49, no. 355, p. 50, no, 359 (Strato I).

31. *PMC*, Vol, I, p. 33, 172, Pl. III, and p. 36, no. 212, Pl. IV.

32. *Ibid.*, p. 33, fn. 1.

33. *Ibid.*

34. Lysias is ΒΑΣΙΛΕΩΣ ΑΝΙΚΗΤΟΣ and Antialkidas is *Maharaja jayadhara.*

35. The obverse legend is ΒΑΣΙΛΕΩΣ ΒΑΣΙΛΕΩΝ ΜΕΓΑΛΟΥ ΑΖΟΥ.

and the reverse legend is *Maharajasa rajarajasa Mahatasa Ayilishasa* (see *PMC*, Vol. I, p. 132).

Abbreviations used :

AIU —*The Age of Imperial Unity*, edited by R.C. Majumdar and A.D. Pusalkar.

BMC, GSKBI —*British Museum Catalogue of the Coins of the Greek and Scythic Kings of Bactria and India*, by Percy Gardner.

CASE —*Coins of Alexander's Successors in the East*, by Alexander Cunningham.

CHI —*Cambrige History of India*, Vol. I, edited by E.J. Rapson.

CIGC —*Corpus of Indo-Greek Coins*, by A.N. Lahiri.

GBI —*The Greeks in Bactria and India* by W.W. Tarn.

IG —*The Indo-Greeks*, by A.K. Narain.

PMC —*Catalogue of the Coins in the Punjab Museum, Lahore*, Vol. I, by R. B. Whitehead.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

मत्स्य पुराण में सप्तांग सिद्धान्त और राज्य व्यवस्था

एस० के० जायसवाल

प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में पुराणों की उपयोगिता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पुराण, जिसका शाब्दिक अर्थ प्राचीन है, में वह समस्त साहित्य मिलता है जिसके आधार पर इतिहास, धर्म, राजशास्त्र आदि की व्याख्या की जा सकती है। पुराणों के ऐतिहासिक महत्व को अनेक रूपों में स्वीकार किया गया है। इनमें भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का धार्मिक आधार प्रस्तुत है। ये भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि हैं। उनके अध्ययन से स्पष्ट है कि ये वैदिक कथाओं, जन-श्रुतियों, सृष्टिविसृष्टि, प्रलय, मन्वंतर और राजवंश के प्रतीक हैं। इनमें भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन के उत्कर्षों का गौरव निहित है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से **मत्स्यपुराण** समस्त अट्ठारह महापुराणों में महत्वपूर्ण पुराण है जिसमें पृथ्वी पर हुए प्रलय का वर्णन है। यह पुराण विष्णु का मछली के रूप में अवतार लेने और पृथ्वी को सर्वनाश होने से बचाने का उल्लेख प्रस्तुत करता है। इसमें वर्णित "**मत्स्यावतार की कथा**[1] का ऐतिहासिक महत्व है। इसकी ऐतिहासिकता पर किसी प्रकार का संदेह इसलिए भी नहीं है क्योंकि इसका उल्लेख अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों **शतपथ ब्राह्मण, महाभारत, बाइबिल** और **कुरान** में भी मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह पुराण आन्ध्र -सातवाहन काल का है और पार्जिटर[2] के इस निष्कर्ष पर विश्वास किया जा सकता है कि इसकी रचना तृतीय शताब्दी ई० में हुई थी। इस पुराण से प्राचीन भारतीय राजशास्त्र व्यवस्था पर उचित प्रकाश पड़ता है।

राजशास्त्र व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य के सप्तांग सिद्धांत को प्रायः समस्त राजशास्त्र प्रणेताओं द्वारा स्वीकार किया गया।[3] यह माना गया कि राज्य सात अंगों से मिलकर बना है और उनका क्रम महत्व के अनुसार ही रखा गया। **मत्स्य पुराण** में राजधर्म के अन्तर्गत राजनीति की विशद व्याख्या करते हुए राज्य के सातों अंगों का वर्णन इस प्रकार मिलता है :-

स्वाम्यमात्यौ जनपदो दुर्गे दण्ड स्तथैव च।
कोशो मित्रं च धर्मज्ञ सप्तांग राज्यमुच्यते ॥[4]

डॉ० एस० के० जायसवाल, रिसर्च एसोसीएट (यू०जी०सी०) डिपार्टमेन्ट ऑफ एनसीएण्ट इन्डियन हिस्ट्री एन्ड आर्क्योलॉजी, लखनऊ यूनिवर्सिटी, लखनऊ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

अर्थात राज्य के सात अंग हैं :- स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, दण्ड, कोश एवं मित्र ।

स्वामी (राजा) राज्य का प्रधान अंग है और सप्तांग युक्त राज्य का मूल है । राज्य तथा राज्यांगों का मूल होने के कारण उसकी रक्षा आवश्यक है[५] । राज्य के शेष छः अंगों की रक्षा भी राजा द्वारा होना आवश्यक है[६] । वह (राजा) प्रजारूपी वृक्ष की जड़ है और उसकी रक्षा से राष्ट्र की वृद्धि होती है[७] । राजा को बगुले की भांति अर्थ का चिन्तन करने वाला, सिंह की भांति पराक्रमी, भेड़िये के समान लूट-पाट करने वाला, खरगोश की तरह आवश्यकता पड़ने पर छिपकर रहने वाला, शूकर के सदृश दृढ़ प्रहार करने वाला मोर की भांति विचित्र आकार वाला, कुत्ते की तरह अनन्य भक्त वाला, कोकिल की तरह मृदुभाषी तथा कौए की भांति सशंकित स्वभाव वाला होना चाहिये[८] । राजा की इन महत्वपूर्ण योग्यताओं पर विशेष बल देने का कारण राज्य प्रशासन पर उसकी भूमिका का होना था । राज्य का कल्याण राजा की योग्यताओं पर ही निर्भर करता था । एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि राजा को वेदवेत्ताओं से तीनों वेद, दण्डनीति, आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र) तथा आत्मविद्या ग्रहण करनी चाहिए[९] । उसे रात दिन इंद्रियों पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये क्योंकि जितेन्द्रिय राजा ही प्रजाओं को वश में करने में समर्थ हो सकता है[१०] । वह वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करने वाला, अपने धर्म से भ्रष्ट हुए लोगों को पुनः अपने-अपने धर्म में स्थापित कराने वाला तथा चारों आश्रमों की देख-रेख करने वाला होता है[११] । राज प्रशासन में प्रजा के प्रति अनुराग उत्पन्न करना अर्थात प्रजा-रंजन ही उसका प्रधान कर्तव्य समझा जाता था । इसका संकेत करते हुए कहा गया है कि राजा की लक्ष्मी उनकी प्रजा के अनुराग से ही उत्पन्न होने वाली होती है, इसलिये श्रेष्ठ राजाओं को पृथ्वी पर मानवों के प्रति प्रयत्न पूर्वक अनुराग करना चाहियें ।[१२]

प्राचीन भारत में राजा में दैवीय शक्तियों का समावेश स्वीकार किया गया और यह माना गया कि राजा की उत्पत्ति ही देवताओं के अंगों से हुई है । **मत्स्य पुराण** में भी इस सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि ब्रह्मा ने समस्त प्राणियों की रक्षा के लिये तथा दण्ड का प्रयोग करने के उद्देश्य से देवताओं के अंशों को लेकर राजा की सृष्टि की है ।[१३] राजा के दैवीय गुणों के आधार पर उसके समस्त कार्यों को दैवीय रूप में स्वीकार किया गया। इस संदर्भ में **मत्स्य पुराण** में महत्वपूर्ण उल्लेख मिलते हैं । जिस प्रकार यमराज समय आने पर सभी शत्रु-मित्र को दण्ड प्रदान करते हैं उसी प्रकार राजा को प्रजा के साथ-व्यवहार करना चाहिये और यह राजा का यमव्रत बताया गया है ।[१४] जिस प्रकार वरूण द्वारा पाश से बंधे हुए लोग दिखायी देते हैं उसी तरह पापाचरण करने वाले को पाश बद्ध करने को **वरूणव्रत** की संज्ञा दी गयी है ।[१५] पूर्ण चन्द्र को देखकर जिस तरह मनुष्य में प्रसन्नता का भाव आता है उसी तरह जिसे देखकर प्रजा प्रसन्न होती हो वह राजा चन्द्रमा के समान है ।[१६] **अग्निव्रत** में राजा को पापियों, दुष्ट सामन्तों तथा हिंसकों के प्रति तेजस्वी एवं प्रतापशाली होने की सलाह दी गयी है ।[१७] पृथ्वी जिस प्रकार समस्त जीवों को धारण करती है उसी तरह राजा को भी सम्पूर्ण प्राणियों का पालन-पोषण करना चाहिये । यह राजा का **पार्थिवव्रत** है ।[१८] राजा को इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरूण, चन्द्रमा, अग्नि तथा पृथ्वी के तेजोव्रत का आचरण करना चाहिये ।[१९] जिस तरह इन्द्र वर्ष के चार महीनों में वृष्टि करते हैं उसी प्रकार राजा को अपने राष्ट्र में स्वेच्छा से दान वृष्टि करनी चाहिये । यह राजा का **इन्द्रव्रत** है ।[२०] **सूर्यव्रत** के अन्तर्गत राजा को नित्य राज्य से उसी प्रकार कर ग्रहण करना चाहिये जिस तरह सूर्य आठ महीने तक अपनी किरणों से जल का अपहरण करते हैं ।[२१] जिस प्रकार मारूत समस्त प्राणियों में प्रवेश करके विचरण करता है उसी प्रकार

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

राजा को भी गुप्तचरों द्वारा समस्त प्राणियों में प्रविष्ट होना चाहिये। यह राजा का **मारूतव्रत** है।[२३] राज्य प्रशासन में राजा के कर्तव्य बहुत महत्वपूर्ण होते थे और उनका पालन करके ही श्रेष्ठ शासन व्यवस्था की स्थापना हो सकती थी। राजा पृथ्वी पर मनुष्य रूप में महान देवता था और उसका देवत्व उसके कार्यों में निहित था। विविध देवताओं के समान कार्य करने पर ही उसको उन देवताओं का स्वरूप प्रदान किया गया है।

अमात्य राज्य का दूसरा प्रधान अंग कहा गया है जिससे मंत्री का बोध होता है। राज्य की शासन व्यवस्था में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। राजा अपने समस्त कार्यों का सम्पादन मंत्रियों के परामर्श से ही करता था। **मत्स्य पुराण** में उल्लेख मिलता है कि राज्य की रक्षा करने वाले राजा को अभिषेक के जल से सिर के भीगने के तुरन्त बाद सहायकों (मंत्रियों) की नियुक्ति करनी चाहिये क्योंकि राज्य उन्हीं पर प्रतिष्ठित रहता है।[२४] जो कार्य छोटे से भी छोटा है वह भी सहायकों के अभाव में अकेले व्यक्ति के लिए दुष्कर होता है फिर राज्य जैसे महान उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को राजा अकेले कैसे कर सकता है।[२५] राजा को उत्तम कुल में उत्पन्न, शूरवीर, उच्च जाति में उत्पन्न बलवान, सम्पन्न, रूपवान, सत्वगुण से युक्त, सज्जन, क्षमाशील, कष्ट सहिष्णु, उत्साही, धर्मज्ञ, प्रियभाषी, हितोपदेश के काल का ज्ञाता, स्वामिभक्त तथा यश के अभिलाषी पुरुष को सहायक (मंत्री) के पद पर नियुक्त करना चाहिये।[२६] राजा को मंत्रियों की मंत्रणा को गुप्त रखना चाहिये क्योंकि मंत्रणा के प्रकट होने से अनेक आपत्तियां प्रकट होने लगती हैं।[२७] मन्त्र ही राज्य का मूल है और राजा को सदैव उसे सुरक्षित रखना चाहिये।[२८] मन्तज्ञ मंत्री द्वारा दिया गया मन्त्र सभी सम्पत्तियों तथा सुखों को प्रदान करने वाला होता है।[२९] मन्त्र के छल से अनेक राजा विनष्ट हो चुके हैं।[३०] आकृति, संकेत, गति, चेष्टा, वचन, नेत्र तथा मुख के विकारों से अन्तः स्थित मनोभावों का पता लगता है। जिस राजा के मन का इन उपायों द्वारा कुशल लोग भी पता लगाने में सफल न हो सके वसुन्धरा उसी के वश में सदैव बनी रहती है।[३१] राजा को केवल एक व्यक्ति या एक ही साथ अनेक व्यक्तियों से मंत्रणा नहीं करनी चाहिये।[३२] वास्तव में एक व्यक्ति से की गयी मन्त्रणा राजा को गलत परामर्श की ओर ले जा सकती थी और राज्य का अहित होने का भय हो सकता था। इसी तरह अनेक मंत्रियों से एक साथ मंत्रणा करने से उसके प्रकट हो जाने का भय रहता था। मंत्रणा ही राज्य का मंत्र था और उसी पर दृढ़ एवं सुव्यवस्थित राज्य की कल्पना सम्भव थी। राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत मंत्रियों की परामर्श पर राजा अपना ध्यान अवश्य केन्द्रित करता था क्योंकि इससे राज्य का कल्याण सम्भव था।

राज्य का तीसरा अंग **जनपद** था जिसका शाब्दिक अर्थ भूभाग है किन्तु भारतीय राजनीतिक दर्शन में इसका प्रयोग भूभाग और जनसंख्या दोनों के लिये किया गया है। **मत्स्य पुराण** में उल्लेख मिलता है कि राजा को अपने देश में निवास करना चाहिये।[३३] वह स्थान जहाँ वैश्य और शूद्र लोग अधिक मात्रा में रहते हों, जो शत्रुओं द्वारा हरण किये जाने योग्य न हो, जहां निरन्तर समानरूप से राजा के सुख-दुख के भागी एवं प्रेमीजन निवास करते हों इस प्रकार के देश में राजा को अपने सहायकों सहित निवास करना चाहिये।[३४] जिस तरह जनपद राज्य का मूलाधार है उसी प्रकार जनता जनपद की आधारशिला है। जनपद और जनता के अभाव में राज्य की कल्पना ही सम्भव नहीं है।

दुर्ग राज्य का चौथा अंग कहा गया है जिसके महत्व पर अनेक आचार्यों ने प्रकाश डाला है। **कौटिल्य** ने लिखा है कि यदि दुर्ग न हो तो कोष पर शत्रु सरलता से अधिकार कर सकता है। जिन राजाओं का दुर्ग सुदृढ़

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

होता है उन्हें परास्त करना सरल नहीं होता।[३४] दुर्ग राज्य की रक्षात्मक और आक्रामक शक्तियों का प्रतीक है। **मत्स्य पुराण** में छः प्रकार के दुर्गों का उल्लेख किया गया है— **धन्वदुर्ग, महीदुर्ग; नरदुर्ग, वृक्ष दुर्ग, जल दुर्ग** एवं **गिरि दुर्ग**।[३५] इन दुर्गों में गिरि दुर्ग को श्रेष्ठ कहा गया है।[३६] गिरि दुर्ग खाई, चहारदीवारी एवं तोप आदि सैकड़ों यंत्रों से घिरा होना चाहिये।[३७] उसमें किवाड़ सहित सुन्दर फाटक होना चाहिये जिससे हाथी पर बैठा हुआ पताका सहित राजा नगर में प्रविष्ट हो सके।[३८] दुर्ग में संगीतज्ञों और ब्राह्मणों के रहने का स्थान होना चाहिये।[३९] उसमें अनेक प्रकार के शस्त्रों से युक्त एवं हजारों को मारने में समर्थ योद्धाओं को रखना चाहिये क्योंकि उन्हीं से राज्य की रक्षा होती है।[४०] धनुष, तोमर, बाण, तलवार, कवच, लाठी, त्रिशूल आदि का संचय दुर्ग में होना चाहिये।[४१] सम्पूर्ण राज वस्तुओं को दुर्ग में गुप्त रूप से संगृहीत करना चाहिये।[४२] प्राचीन भारत में राज्य की सुरक्षा के लिये दुर्ग एक महत्वपूर्ण राज्यांग माना जाता था। सैन्य शक्ति का प्रयोग वहीं से भली-भांति हो सकता था।

राज्यांगों में पांचवां अंग कोष है। संचित कोष संकट काल में राज्य की रक्षा करता है। कोष की सुरक्षा करना राजा का उत्तरदायित्व है। राजा को अर्थ दोषों से बचने का संकेत **मत्स्य पुराण** में मिलता है। अर्थदोष दो प्रकार के बताये गये हैं—एक अर्थ का दोष और दूसरा अर्थ सम्बन्धी दोष।[४३] अपने दुर्ग के परकोटों तथा मूल दुर्ग आदि की उपेक्षा और अस्त व्यस्तता अर्थ सम्बन्धी दोष है और कुसमय में तथा कुपात्र को दिया गया दान एवं असत्कर्म का प्रचार अर्थ के दोष है।[४४] कोष के दूषित होने अथवा उसके अभाव में राजा जनशक्ति विहीन हो जाता था और ऐसे राजा का पतन निश्चित था।

दण्ड अथवा सेना को राज्य का छठा अंग कहा गया है। देश की व्यवस्था को सुचारू रूप से स्थापित रखने तथा बाहरी आक्रमणों से राज्य की सीमाओं को सुरक्षित रखने के लिये सेना की आवश्यकता होती है। **मत्स्य पुराण** में चतुरंगी सेना-हस्ति, रथ, अश्व एवं पैदल के अतिरिक्त गधे एवं ऊँटों की सेना को भी आवश्यक बताया गया है जिसका उपयोग विशेष रूप से ग्रीष्म ऋतु में हो सकता था।[४५] सैनिक संगठन का उद्देश्य देश रक्षा तथा राष्ट्र कण्टकों का विनाश करना है। राजा को देशकाल एवं त्रिकालज्ञ ज्योतिष से यात्रा की स्थिति को समझते हुए शत्रु को दण्ड देने के उद्देश्य से पुरोहित और मंत्रियों के परामर्श पर विजय यात्रा करनी चाहिये।[४६] राजा शत्रुओं का दमन तभी कर सकता था जब उसके पास शक्तिशाली सेना हो।

राज्य का सातवाँ और अंतिम अंग मित्र है। प्राचीन भारत में प्रत्येक राज्य की सुरक्षा शक्ति संतुलन से ही सम्भव थी जिसका तात्पर्य था कि राज्य अपने मैत्री पूर्ण सम्बन्ध इस प्रकार स्थापित करे कि शक्तिशाली राज्य का इस पर आक्रमण करने का साहस ही न हो। राज्य की सुरक्षा के लिए मित्र की आवश्यकता होती है। **मत्स्य पुराण** में मित्र तीन प्रकार के कहे गये हैं—प्रथम वे जो पिता-पितामह आदि के समय से मित्रता का व्यवहार करते चले आ रहे हैं, द्वितीय वे जो शत्रु के शत्रु हैं और तृतीय वे जो किन्हीं कारणों से बाद को मित्र बन गये। इन तीनों प्रकार के मित्रों में प्रथम प्रकार के मित्र को उत्तम बताते हुए उल्लेख किया गया है कि उनका आदर करना चाहिये।[४७]

राज्य के सप्तांग सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए **मत्स्य पुराण** द्वारा राज्य व्यवस्था पर उचित प्रकाश पड़ता है। प्रशासन जैसा कठिन कार्य अकेले राजा द्वारा संभव नहीं हो सकता। उसके लिए राज्य पदाधिकारियों

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

की आवश्यकता होती है। राजा को **सेनापति**,[४८] **प्रतिहारी**,[४९] **दूत**,[५०] **सन्धिविग्राहिक**,[५१] **देशरक्षक**,[५२] **सारथि**,[५३] **धर्माध्यक्ष**,[५४] **लेखक**[५५] **द्वारपाल**,[५६] **धनाध्यक्ष**.[५७] **वैद्य**,[५८] **गजाध्यक्ष**,[५९] **अश्वाध्यक्ष**,[६०] **दुर्गाध्यक्ष**,[६१] **अस्त्राचार्य**,[६२] **अन्तः पुराध्यक्ष**,[६३] की नियुक्ति उनकी योग्यताओं को ध्यान में रखकर करनी चाहिये। उत्तम, मध्यम तथा अधम कार्यों को भली-भांति समझकर वैसे ही उत्तम, मध्यम, एवं अधम पुरुषों को सौंपना राजा का कर्तव्य कहा गया है।[६४] युद्ध से विमुख न होना, प्रजाओं का पालन तथा ब्राह्मणों की सेवा-यह तीनों कार्य राजा के लिये कल्याणकारी हैं।[६५] दुर्दशाग्रस्थ, असहाय, वृद्धों एवं विधवा स्त्रियों के योगक्षेम एवं जीविका का प्रबन्ध राज्य के हित में राजा द्वारा होना चाहिये।[६६] जिस प्रकार पालतू बछड़ा बलवान होने पर कार्य करने में समर्थ होता है, उसी प्रकार पालन-पोषण कर समृद्ध किया हुआ राष्ट्र भी भविष्य में उन्नति की ओर अग्रसर होता है।[६७]

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राजा को **साम, भेद, दान, उपेक्षा, दण्ड, माया** तथा **इन्द्रजाल** नामक सात नीतियों का प्रयोग करना चाहिये।[६८] जहां राजा के सम्मुख आन्तिरिक कोप और बाहरी कोप दोनों उपस्थित हों वहां आन्तरिक कोप सबसे भीषण और विषम परिस्थिति वाला होता है क्योंकि इससे राजा का विनाश सम्भव है।[६९] रानी, युवराज, सेनापति, अमात्य और राजकुमार द्वारा किया गया क्रोध आंतरिक कोप है।[७०] राजा को सदैव आंतरिक कोप की रक्षा करनी चाहिये।[७१] राजा के लिये चरों की नियुक्ति भी आवश्यक है।[७२] चरों की भांति राज्य के मूलाधार गुप्तचर हैं, इसलिये राजा को उनकी परीक्षा करके उनकी नियुक्ति करनी चाहिये।[७३] राजा के समस्त कार्य गुप्तचरों पर ही निर्भर हैं इस कारण राजा को उनके प्रति यत्नशील रहना चाहिये।[७४]

दण्डनीति का प्रयोग भी राजा को सोच समझकर करना चाहिये क्योंकि सब कुछ दण्ड पर ही प्रतिष्ठित है।[७५] यदि राज्य में दण्डनीति की व्यवस्था न हो तो बालक, वृद्ध, आतुर, सन्यासी, ब्राह्मण, स्त्री और विधवा सभी मात्स्यन्याय के अनुसार आपस में एक दूसरे को समाप्त कर देंगे।[७६] यदि राजा दण्ड की व्यवस्था नहीं करता है तो सभी लोग मर्यादा का उल्लंघन कर जायेंगे।[७७] दण्ड सभी के सो जाने पर जागता रहता है, अतएव बुद्धिमान लोग दण्ड को धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं।[७८] राजा को धर्मशास्त्र के अनुसार ही दण्डनीति का प्रयोग करना चाहिये।[७९]

राजधर्म के अन्तर्गत भारतीय राज्य शास्त्र व्यवस्था का स्पष्ट उल्लेख **मत्स्य पुराण** में हुआ है। भारतीय राजनीति तथा शासन प्रणाली पर यथेष्ट प्रकाश डालने हेतु यह अमूल्य ग्रन्थ है। राजतन्त्र का स्वरूप, राजाओं के अधिकार एवं कर्तव्य, मंत्रियों का निर्वाचन एवं उनका महत्व, कर व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, सैन्य-व्यवस्था, राज कर्मचारियों की नियुक्ति एवं उनके उत्तरदायित्व का वर्णन जिस तरह विस्तृत रूप से इस पुराण में हुआ है वह भारतीय राजशास्त्र के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजतन्त्रात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राजा का प्रधान कर्तव्य प्रजारंजन बताया गया है जिसके लिये उसकी नियुक्ति हुई। इस संदर्भ में **मत्स्य पुराण** का यह उल्लेख बहुत महत्वपूर्ण है कि पृथ्वी का पालन करने वाले राजा के प्रति प्रजा का परम अनुराग हो जाता है। प्रजा के अनुराग से ही राजा को लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और लक्ष्मीवान राजा को ही यश प्राप्त होता है–

> एवं महीं पालयतोऽस्य भर्तुर्लोकानुरागः परमो भवेत्तु।
> लोकानुराग प्रभवा च लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतश्चापि परा च कीर्ति ॥[८०]

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

सन्दर्भ

१. मत्स्य पु०, अध्याय—१

2. Pargiter, Dynasties of the Kali Age, Introduction, p. XIII.

३. मनु० ९,२९४, कौ० अर्थ० ६, १, याज्ञ०, १,३५३, शुक्र० १,६१, कामन्दक १,१६,

४. मत्स्य पु०. २२०.१६,

५. वही २२०.२० सप्तांगस्यापि राजस्य मूलं प्रकीर्तितः । तनमूलत्वात् तथागंनां स तु रक्ष्यः प्रयत्नतः ।

६. वही २२०.२१

७. वही २१६.३४

८. वही २१५.६६-७१

९. वही २१५.५४

१०. वही २१५.५५

११. वही २१५.६३-६४

१२. वही २१५.६६

१३. वही २२६ १ दण्डप्रणयनार्थाय राजा सृष्टः स्वयम्भुवा ।
देवाभागानुपादाय सर्वभूतादिगुप्तये ।।

१४. वही २२६.४

१५. वही २२६.५

१६. वही २२६.६

१७. वही २२६.७

१८. वही २२६.८

१९. वही २२६.९

२०. वही २२६.१०

२१. वही २२६.११

२२. वही २२६.१२

२३. बही २१५.२ अभिषेकार्दशिरसा राज्ञा राज्यावलोकिना ।
सहायवरण कार्य तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम् ।

२४. वही २१५.३

२५. बही २१५.४-६

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

२६. वही २२०.३१-३२
२७. वही २२०.३३
२८. वही २२०.३४ मन्त्रवित्साधि तो मन्त्रः सम्पतीनां सुखावहः ।
२९. वही २२०.३५ मन्त्रच्छलेन बहवो विनष्टाः पृथ्वीक्षितः ।
३०. वही २२०.३५-३६
३१. वही २२०.३७
३२. वही २१७.१
३३. वही २१७.२-५
३४. कौ० अर्थ० ८.१
३५. मत्स्य पु० २१७.६-७ धन्वदुर्गे महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च वार्क्ष चैवाम्बदुर्गं च गिरिदुर्गं व पार्थिव ।
सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरि दुर्गं प्रशस्यते ।
३६. वही २१७.७
३७ वही २१७.८
३८. वही २१७.९
३९. वही २१७.२६
४०. वही २१७.२७-२८
४१. वही २१७.२९-३०
४२. वही २१७.४२
४३. वही २२०.११
४४. वही २२०.१२-१३
४५. वही २४०.१९-२०
४६. वही २४०.२७
४७. वही २४०.१७-१८
४८. वही २१५.१०
४९. वही २१५.११
५०. वही २१५.१२
५१. वही २१५.१६
५२. वही २१५.१७

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

५३. वही २१५.२१
५४. वही २१५.२४
५५. वही २१५.२६
५६. वही २१५.३०
५७. वही २१५.३२
५८. वही २१५.३४
५९. वही २१५.३६
६०. वही २१५.३८
६१. वही २१५.३९
६२. वही २१५.४१
६३. वही २१५.४२
६४. वही २१५.४८
६५. वही २१५.६२
६६. वही २१५.६३
६७. वही २२०.४१-४३
६८. वही २२२.२
६९. वही २२२.७
७०. वही २२२.८-९
७१. वही २२२.११
७२. वही २१५.९४
७३. वही २१५.९५
७४. वही २१५.९६
७५. वही २२५.७
७६. वही २२५.९
७७. वही २२५.१०
७८. वही २२५.१५
७९. वही २२५.४
८०. वही २२०.४७

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

तुन्ह्वांग में बौद्ध धर्म और संस्कृति

श्रीमती यमुना लाल

यद्यपि मध्य एशिया के कुछ देशों में महामानव बुद्ध के उपदेश सम्राट् अशोक के समय में ही पहुंच चुके थे तथापि मध्य एशिया के विभिन्न देशों में बौद्ध धर्म के विस्तार का श्रेय कुषाण सम्राट् कनिष्क को ही है जिसने मध्य एशिया के अनेक देशों को जीता था।[1] मध्य एशिया के जिन देशों ने तथागत के लोक-सुखयन उपदेशों को अपनाया और उनका प्रचार-प्रसार किया उनमें अफगानिस्तान, खोतन कूचा, काशगर, सोंख, तूर्फान, तुन्ह्वांग आदि प्रसिद्ध हैं। इनमें भी तुन्ह्वांग की अपनी ही विशेषता है जो शताब्दियों तक बौद्ध धर्म की ही नहीं अपितु कला, साहित्य और संस्कृति की भी अभिवृद्धि करता रहा। तुन्ह्वांग में अजन्ता की कला नालन्दा की विधा-विविधता तथा एलोरा की गुहा विहार कला और सांची के तोरण कला को एक साथ देखा जा सकता है। इस लघु शोध निबन्ध में तुन्ह्वांग में बौद्ध धर्म और सस्कृति के माध्यम से वर्तमान बौद्ध जगत को उसकी देनों पर प्रकाश डाला गया है।

कूचा से पूर्व तूर्फान के पार चीन की सीमा के समीप तुन्ह्वांग प्रदेश स्थित था। यह एक प्रसिद्ध नगर भी था। यहां से बहुमूल्य पुस्तकों का एक विस्मृत प्राचीन पुस्तकालय प्राप्त हुआ है।

तुन्ह्वांग का इतिहास नया नहीं है। सन् १९८ ई० के जो लेख उत्खनन् में प्राप्त हुए हैं उनसे ज्ञात होता है कि उस समय यहाँ चीनी सैनिक छावनी थी। सम्राट् मिङ्ती के सेनापति पन्-चाऊ ने काशगर और खोतन को जीता था और कनिष्क को उधर आगे बढ़ने से रोका था। वह तुन्ह्वांग से भगवान बुद्ध की एक मूर्ति अपने साथ चीनी सम्राट् के लिये लाया था।[2]

सहस्र बुद्ध गुहा विहार

नगर में दक्षिण-पश्चिम ६ मील दूर नदी के पास लगी पहाड़ी की पंक्तियाँ हैं जिन्हें खोदकर गुफाएं बनाई गई हैं जो इतनी पास हैं कि मधुमक्खी का छत्ता सा प्रतीत होती हैं। इन्हें सहस्र बुद्ध या सहस्र बुद्ध गुहा विहार कहते हैं। ये गुफाएं चौथी शताब्दी के मध्य बनाई गई थीं जिस समय भारत में समुद्र गुप्त दिग्विजय कर रहा

[1] डॉ० श्रीमती यमुना लाल, आर० २५ संजयपुरम्, लखनऊ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

था।[3] सबसे पहले इसकी खोज सर स्टाइन ने १९०६ ई० में की थी। गुफाओं की यह शृंखला एक हजार गज से भी अधिक लम्बी है।[4]

गुफाएं और भित्ति चित्र

सहस्र बुद्ध गुहा विहार की दीवालों पर भित्ति चित्र बने हुए हैं।[5] ये चित्र यद्यपि छठवीं शताब्दी में बनाये गये थे फिर भी बिल्कुल ठीक दशा में सुरक्षित हैं। वस्तुतः ये भित्ति चित्र बौद्ध कला की जीवन्त निधि हैं।[6] गुफाएं लटकती भी मालूम पड़ती हैं क्योंकि पहाड़ी की संरचना ही ऐसी है। इन गुफाओं की पहली दो गुफाएं बौद्ध भिक्षुओं -- लो-चुन एवं फा-लिन ने ३९९ ई० में बनाई थीं।[7] ऊपरी गुफा मन्दिर में जाने के लिए सीढ़ियां हैं। ये गुफा मन्दिर एलोरा की स्मृति दिलाती हैं। मुख्य गुहा मन्दिर में पहुंचने के लिए एक प्रशस्त पथा जिसके रास्ते से ही हवा और प्रकाश भी अन्दर पहुंचता था। इसी भीतरी गुफा में ४५ फीट लम्बी चौकोर सद्धम्म देशना शाला थी। जो पूरी पहाड़ी को कोर कर बनाई गई थी। देशना सभा के बीच में एक विशाल बुद्ध मूर्ति है जिसके अगल-बगल में देवताओं की मूर्तियां हैं। इसमें 'प्रदक्षिणा पथ' भी है।

तुन्ह्वांग या मध्य एशिया का अजन्ता

तुन्ह्वांग गुफा विहार की दीवारें भित्ति चित्रों से सुसज्जित हैं जिनमें फूल-पत्ते तथा अन्य चित्र बने हैं। इन चित्रों को देखकर अजन्ता की गुफाओं का तुरन्त स्मरण हो आता है। यद्यपि ये गुफाएं और इनके चित्र अजन्ता की गुफाओं के समकालीन हैं तथापि अजन्ता की अपेक्षा अधिक सुरक्षित हैं।[8]

तुन्ह्वांग की गुफाओं के चित्रों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—बुद्ध और बोधिसत्वों के चित्र तथा लौकिक जीवन से सम्बन्धित चित्र। यहां रेशमी पट्टों पर बने चित्र भी मिले हैं। जातक कथाओं के चित्रण भी प्राप्त हुए हैं।[9] इस प्रकार ये सांची के विशाल स्तूप के तोरण द्वारों की कला के अधिक समीप हैं।

तुन्ह्वांग पुस्तकालय

जिस समय सर स्टाइन सहस्र बुद्ध गुहा संघाराम की छान-बीन कर रहे थे, अकस्मात् उन्हें एक छोटी सी गुफा दिखाई दी। उन्होंने बड़ी उत्सुकता से पास जाकर उसे देखा और अन्तर्निहित सामग्री का निरीक्षण किया। गुफा हस्तलिखित ग्रन्थों और रेशमी पट्टों पर बने चित्रों से भरी हुई थी। ग्यारहवीं शताब्दी में वाह्य आक्रमण के संकट के समय इस गुफा को बन्द कर दिया गया था। और बाद में किसी को भी इस ग्रन्थागार का पता नहीं रहा। स्टाइन महोदय बहुत से हस्त लिखित ग्रन्थ तथा चित्र अपने साथ ले गये।

कालान्तर में इन्हीं गुफाओं से फ्रेंच विद्वानों ने भी बहुत से हस्तलिखित ग्रन्थ और चित्र प्राप्त प्राप्त किये। जो बाकी बचे उन्हें चीन सरकार की आज्ञा से पेकिङ्ग भेज दिया गया।[10]

१९०६-८ के बीच प्रो० पेलियो ने भी इस सहस्र बुद्ध गुहा विहार का भ्रमण किया। उन्होंने वहाँ के वाङ्ताओ बौद्ध भिक्षु से भी सम्पर्क किया जिसकी सहायता से ही सर स्टाइन ने उक्त पुस्तक भण्डार को खोजा था। वाङ्-ताओ की सहायता से जब महोदय पेलियो उसी के साथ सहस्र बुद्ध गुहा संघाराम का निरीक्षण कर

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

रहे थे तभी उन्हें भी एक पुस्तकों से परिपूर्ण गुफा का आभास हुआ।[11] उन्होंने उसको खोज-बीन कर देखा। उसमें हस्तलिखित पुस्तकों का अपार भण्डार प्राप्त हो गया। यह गुफा लगभग एक मीटर विस्तृत थी जिसमें चारों ओर हस्तलिखित ग्रन्थ भरे हुए थे। उनमें अधिकांश कुंडली बनाकर (लपेटकर) और कुछ मुड़े हुए पन्नों वर्तमान पुस्तकों की भांति बहुत ही सजाकर और संभालकर रखे गये थे। ये सभी ग्रन्थ चीनी, तिब्बती, उइगुरू और संस्कृत में लिखे हुए थे।[12]

तुन्ह्वांग पुस्तकालय या मध्य एशिया का नालन्दा

प्रो० पेलियो को जो ग्रन्थ-राशि इस गुफा से प्राप्त हुई थी उनमें से लगभग पन्द्रह हजार कुंडलीकृत ग्रन्थ थे।[13] इनमें से अधिकांश ग्रन्थ बौद्ध धर्म से सम्बन्धित थे।[14] शेष इतिहास, भूगोल, दर्शन साहित्य आदि से सम्बन्धित थे।[15] इस ग्रन्थ रत्नाकर को पाकर पेलियो इतने आनन्द विभोर हो उठे कि उन्होंने दो सप्ताह उन्हीं गुफाओं में बिताया।[16] प्रो० पेलियों और उनके साथियों ने तीन सप्ताह निरन्तर रूप से इन पुस्तकों की छान-बीन की। उनमें से ब्राह्मी लिपि तथा उइगुरू भाषा में लिखे हुए सभी ग्रन्थ अपने साथ ले जाने के लिये अलग छांट कर रख लिये। तिब्बती और चीनी में लिखे कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी छांटे। इस प्रकार के चुने हुए ग्रन्थों की संख्या भी पाँच हजार थी।[17]

प्रो० पेलियो ने फरवरी १९०७ से मई १९०८ तक तुन्ह्वांग की इन्हीं गुफाओं में बिताया। यहां उन्हें जो सामग्री प्राप्त हुई उसकी पूरी सूची तैयार करने में तीन वर्ष का समय लगा। जापान से इन ग्रन्थों को प्रकाशित कराया गया।[18]

'पेलियो के बाद स्टाइन महोदय पुनः तुन्ह्वांग पहुंचे। वहाँ उन्होंने २४ सन्दूक हस्तलेख तथा चित्रपट, गोटों तथा दूसरी चीजों से भरी हुई ४ सन्दूकें पांच हजार रुपये देकर खरीदीं।[19] प्रो० सिल्वेन लेवी ने इसके विषय में लिखा है--

'स्टाइन ने जिस महान ग्रन्थ राशि को जमा किया, उस पर काम करने के लिये जातीयता के किसी झूठे अभियान ने बाधा नहीं डाली। उनमें से कुछ ग्रन्थों को डेन विद्वान् विल्हेलम टामस को दिया गया जिसने कि ओखेन के तुर्की शिलालेखों को पढ़ा था; कुछ मध्य एशिया के दूसरे परिगवेषक फान-ले-काक को दिया गया, जो जर्मन हैं। कुछ पूसिन को, जो बेल्जियन हैं और महायान बौद्ध धर्म के पारंगत माने जाते हैं। पेलियो को चीनी ग्रन्थों की सूची बनाने का काम दिया गया। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों के काष्ठ पट्टिकाओं पर लिखे ग्रन्थों के सम्पादन करने का काम एक चीनी विद्वान् को दिया गया। सेनार्ट और बाबा बायर को खरोष्ठी में लिखी पट्टिकाओं के अध्ययन करने के लिए कहा गया। प्रो० गाथियो को सोग्डी में लिखे पन्ने दिए गए और सुखारी भाषा में लिखे पन्ने मुझे (लेवी को) मिले।'[20]

इस प्रकार बौद्ध केन्द्र तुन्ह्वांग से प्राप्त ग्रन्थागार के अवशेषों का अध्ययन करने के लिए चीन, योरोप और एशिया के प्रसिद्ध विद्वान जुटे थे। जापानी विद्वानों से भी इस भू-भाग में अनेक बौद्ध ग्रन्थों की खोज की थी। रेशमी पट्ट पर लिखित एक पुस्तक ती १२ गज लम्बी थी।[21]

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

तुन्ह्वांग भू-भाग पर भारतीय बौद्ध संस्कृति का व्यापक प्रभाव था। १०३५ ई० के पूर्व तुन्ह्वांग और उसके समीपवर्ती सभी प्रदेशों के लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। चीनी, सुन्डी, तिब्बती, तुर्की, उइगुरू भारतीय आदि कितने प्रकार के लोग वहां रहते थे जिन्होंने वहां की मिश्रित बौद्ध संस्कृति के निर्माण में बड़ा योगदान था।[२२]

इस प्रकार संक्षिप्त उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यो तो मध्य एशिया के अधिकांश देशों में बौद्ध धर्म की प्रधानता थी फिर भी तुन्ह्वांग कुछ विशेष ही था। महामानव बुद्ध तथा उनके श्रावकों के प्रति वहां के लोग बहुत ही श्रद्धावन्त थे। उनके पुरातात्विक अन्वेषण से उपलब्ध विविध प्रचुर सामग्री भी यही सिद्ध करती है। आज बौद्ध धर्म के अनेक ऐसे ग्रन्थ जो भारत में विलुप्त हो गये थे, लेकिन मध्य एशिया के देशों से हस्त-लिखित रूप में प्राप्त हुए हैं। यहां अजन्ता और एलोरा की भित्ति-चित्र-कला तथा पर्वतों को काटकर बनाए गए विहार एवं चैत्य कला के दर्शन भी होते हैं। निस्सन्देह यह भगवान बुद्ध का अदण्ड और अशस्त्र पर आधारित करुणा और मैत्री से सम्बद्ध धर्मराज्य का विस्तार ही था।

तुन्ह्वांग की पुरातात्विक उपलब्धियों ने विश्व के बौद्धों को ही नहीं अपितु अन्य विद्वानों और चिन्तकों को भी सोचने-समझने के लिए बाध्य कर दिया है। यही तुन्ह्वांग की महती देन है।

संदर्भ

१. इलियट, हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म जि० ३/१६७-६८
२. राहुल सांस्कृत्यायन, बौद्ध संस्कृति, पृ० २५९, सन् १६५२
३. वही पृ० २६१
४. सत्यकेतु विद्यालंकार, मध्य एशिया एवं चीन में भारतीय संस्कृति पृ० ११८-१६
५. वही पृ० ११९
६. बौद्ध संस्कृति, पृ० २६१
७. वही, पृ० २६३
८. म०ए०ची०भा०सं०, पृ० २६१
९. वही, पृ० २६२
१०. वही, पृ० ११९
११. म०ए०ची०भा०सं०, पृ० १२०
१२. बौ०सं०, पृ० २६४
१३. म०ए०ची०भा०सं० पृ० १२१
१४. बौ०सं०, पृ० २६४
१५. म०ए०ची०भा०सं० पृ० १२१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS

१६. बौ०सं०, पृ० २६४
१७. म०ए०ची०भा०सं०, पृ० १२१
१८. बौ०सं०, पृ० २६५
१९. वही, पृ० २६४
२०. वही, पृ० २६५
२१. वही, पृ० २६५
२२. म०ए०ची०भा०सं०, पृ० १२१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

प्रोषितभर्तृका

ममता मिश्रा

वाणिज्य-व्यापार, सैनिक अभियान अथवा किसी अन्य कारण से जो पुरुष दीर्घ प्रवास पर चले जाते थे, सन्यासी हो जाते थे अथवा लापता हो जाते थे, उनकी पत्नियों को प्राचीन भारतीय साक्ष्यों में **प्रोषित-भर्तृका**[1] **प्रोषितपतिका**[2], **गतपतिका**[3] तथा प्रोषितयोषिता[4] आदि कहा गया है। प्रारम्भिक धर्मशास्त्रों (धर्म एवं गृह्यसूत्र, मनुस्मृति) की रचना के समय तक महिलाओं की स्थिति में काफी गिरावट आ चुकी थी। धर्मशास्त्रकारों ने पतिपरायणता तथा इससे प्राप्त होने वाले तथाकथित पुण्यों को अनावश्यक महत्ता देकर स्त्रियों के मन में इन्हें कूट-कूट कर भर दिया था। पत्नी से पति के प्रति अंध-भक्ति एवं पूर्ण समर्पण की अपेक्षा की जाती थी। पति से पृथक होने पर उसका जीवन प्रयोजन एवं आकर्षणहीन हो जाता था, भले ही पति अयोग्य एवं पतित ही क्यों न हो। स्त्री की समस्त साज-सज्जा, सुख एवं प्रसन्नता पति को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखकर अपनी ओर आकृषित करने के लिये ही होती थी। अतः पति की अनुपस्थिति की अवधि में पत्नी के लिये अपने समस्त सुखों, साज-शृंगार तथा प्रसन्नता तक का परित्याग कर सधवा एवं विधवा के बीच का जीवन बिताने का प्रावधान किया गया। इसीलिये भास[5] तथा कालिदास[6] ने ऐसी स्त्री के लिये **अविधवा** शब्द का प्रयोग किया है और हाल ने इसे जीवन एवं मरण के बीच की स्थिति कहा है[7]।

महाकाव्यों में **प्रोषित-पतिकाओं** के विषय में कहा गया है कि वे कज्जल, विलेपन, आभूषणों तथा फूल-मालाओं का प्रयोग नहीं करती थीं और न ही पैरों में महावर लगाती थीं[8]। वे मलिन वस्त्र धारण करती थीं, बालों को एक ही वेणी में बांधती थी तथा अधिक व्रत-उपवास करने के कारण कृशगात हो गई थी[9]। विष्णु के अनुसार **प्रोषितभर्तृका** को प्रतिकर्म अर्थात् अलंकरण एवं क्रीड़ादि से विरद रहना चाहिये और पर-पुरुषों के घर नहीं जाना चाहिये[10]। याज्ञवल्क्य ने साज-शृंगार, खेल-कूद एवं पर-पुरुष के घर जाने के अतिरिक्त उसके लिये उत्सव (विवाहादि), मेले (जनसमूह) में जाने और हास-परिहास करने का भी निषेध किया[11]। बृहस्पति ने उपर्युक्त प्रावधानों का मोटे तौर पर समर्थन करने के साथ-साथ प्रोषितपतिकाओं को नृत्य-संगीत, आमिष आहार एवं 'मद्यपान' से विरत रहने का निर्देश दिया[12]। अभिज्ञानशाकुंतल नाटक से भी हमें पता चलता है कि अपने पति दुष्यन्त से पृथक रहने की दीर्घावधि में शकुंतला धूल-धूसरित वस्त्र पहनती थी। अपने केशों को उसने एक

डॉ० (कु०) ममता मिश्रा, शोधछात्रा, प्रा० भा० इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, ल०वि० वि०।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ही वेणी में बांध दिया था। समस्त सुखों से वंचित रहकर प्रोषितपतिका के व्रत का पालन करने के कारण उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था[13]। कामसूत्र में भी इससे मिलता-जुलता विवरण प्राप्त होता है[14]।

विवेच्य कालावधि के साक्ष्यों में हालकृत गाथासप्तशती एवं कालिदासकृत मेघदूत में प्राप्य प्रोषितपतिकाओं विषयक विस्तृत विवरण विशेषतया उल्लेखनीय तथा तुलनीय है। यह विवरण संक्षेप में इस प्रकार है-

पति का प्रवास पर जाना पत्नी के लिये असह्य दुःख का कारण था[15] और प्रवास पर जाने के लिये निर्धारित तिथि के पहले ही पत्नी के शरीर एवं उत्साह में शैथिल्य आने लगता था[16]। विरह की अवधि में वह उत्तम भोजनादि एवं आकर्षक वस्त्राभूषणों का परित्याग कर मलिन-वस्त्र धारण करती थी[17]। वह अपने केशों को एक वेणी में बांध देती थी जिसे या तो पति वापस आने पर खोलता था अथवा पति के आगमन पर वह स्वयं खोल देती थी[18]।

प्रोषितपतिका की आंखों में सदैव उसका पति बसा रहता था और वह उसी के विषय में दिन-रात सोचा करती थी[19]। नींद न आने के कारण ग्रीष्म ऋतु की छोटी रातें भी उसे लम्बी तथा भारी लगती थीं[20] और स्वप्न में भी पति के दर्शन नहीं हो पाते थे[21]। हाल के अनुसार दीर्घ सांसे लेना, रोना तथा विरह के गीत गाना, यही वियोग, में स्त्रियों के मनोविनोद होते हैं[22]। कालिदास ने (पति के प्रवास के दिनों का गणित लगाकर) विरहिणी द्वारा (प्रवास के दिन) देहली पर रखे गये फूलों की गणना करना और मन में पति के सहवास का आस्वादन करना ही उसके मन-बहलाने के साधन बतलाये हैं[23]। प्रवास के दिनों की गिनती **प्रोषितपतिका** द्वारा अपने हाथ-पैरों की उंगलियों की बार-बार गणना कर[24], दीवार पर रेखायें खींचकर[25], पति के नामाक्षरों को बार-बार लिखकर[26] तथा फूलों को गिनकर[27] भी की जाती थी। पति के आगमन की प्रतीक्षा में विरहिणी पथिकों को आशा भरी आँखों से देखती रहती थी[28]। इस प्रकार के कष्टपूर्ण एवं आकर्षण-विहीन दिनचर्या के कारण प्रोषित भर्तृका का शरीर इतना कृश हो जाता था कि उसके वलय ढीले होकर भूमि पर गिर जाते थे[29]। वह आमिष-आहार एवं मदिरा का परित्याग कर देती थी[30]। परिणामस्वरूप उसकी वही दशा हो जाती थी जो धन के न रहने पर घर की और गोधन से रहित हो जाने पर बथान की[31] यक्षणी ने पति के सकुशल पुनरागमन की प्रतीक्षा में (घर के द्वार से लगे) गलियारे में दो मंगलकलश रख दिये थे[32] और मात्र-पति के दर्शन एवं मिलन के लिये ही मानो वह जीवन धारण कर रही थी[33]। क्योंकि स्त्री के यौवन-विभ्रम एवं विलास-प्रीतम के प्रवास करने पर प्रवास करते हैं और उसके वापस आने पर ये भी लौट आते हैं[34]।

पत्नी के वियोग में प्रवासी पति के भी संतप्त होने के कुछ विवरण प्राप्य हैं। मेघदूध में यक्ष अपने को **दूर-बन्धु** अर्थात् पत्नी से दूर कहता है और अपनी विरहणी पत्नी की कष्टपूर्ण स्थिति के विषय में कल्पना कर स्वयं दुःख और वेदना का अनुभव करता है तथा विविध प्रकार से इनकी अभिव्यक्ति करता है[35]। इसी प्रकार सीता के वियोग में राम[36] और शकुंतला के विरह में दुष्यन्त अत्यधिक संताप का अनुभव करते हुए दर्शाये गये हैं।[37] परन्तु इस प्रकार विवरण आदर्श पतियों के सन्दर्भ में ही प्राप्य हैं। सामान्यतया स्त्रियाँ ही विरह की अग्नि में जलती थीं। इस सन्दर्भ में हाल का कथन तर्कसंगत एवं यथार्थ है। उसके अनुसार पति के वियोग में पत्नी का कष्ट उठाना तथा मर-मिटने को तैयार रहना वास्तव में महिलाओं का दोष है[38]।

पुरुष-प्रधान पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था में पुरुष सामान्यतया स्त्रियों के सुख दुःख की अधिक

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS

चिन्ता नहीं करते थे। पत्नी की दीर्घकालिक अनुपस्थिति में पुरुषों के भी परस्त्रीगामी होने की संभावना होती है। किन्तु धर्मशास्त्रकारों ने इस तथ्य की पूर्णतया उपेक्षा की और उनके लिये कोई विशेष नियम नहीं बनाये, जबकि स्त्रियों के प्रति भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते हुए उनके लिये कठोर तथा काफी हद तक अमानवीय प्रावधान किये।

यहाँ यह प्रश्न भी विचारणीय है कि प्राचीन भारत में प्रचलित संयुक्त परिवार व्यवस्था में किसी पुरुष की अनुपस्थिति में उसकी स्त्री के लिये न तो कोई असुरक्षा की समस्या थी और न ही भरण-पोषण की। इसके अतिरिक्त पति-पत्नी एक साथ रहकर भी स्वच्छंदता से एक दूसरे से मिलकर प्रणयवार्ता अथवा अन्य प्रकार से मनोविनोद प्रायः नहीं कर पाते थे। तो फिर पति के प्रवास पर जाने पर क्या पत्नी सचमुच इतनी अधिक असहाय एवं शोक-विह्वल हो जाती थी, जितना उसे विभिन्न साक्ष्यों में दर्शाया गया है ?

प्रोषितपतिका-विषयक विवरणों में काफी हद तक एकरूपता पाई जाती है। विविध साक्ष्यों की सामग्री के विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य उभरकर सामने आते हैं :—

१—प्रोषितपतिका के लिये साज-शृंगार का निषेध होने के कारण उसका शारीरिक आकर्षण काफी कम हो जाता था।

२—उसके लिये कामोद्दीपन में सहायता करने वाले आमिष भोजन तथा मादकपेय आदि का प्रयोग वर्जित था।

३—दूसरे के घरों में तथा उत्सव एवं मेले आदि में जाना भी प्रतिबंधित था।

४—व्रत-उपवास करने तथा संयमी जीवन बिताने का प्रावधान किया गया था।

इन नियमों का प्रावधान मुख्यतया **प्रोषितपतिका** के चरित्र-आचरण की रक्षार्थ किया गया था क्योंकि पति की दीर्घकालिक अनुपस्थिति में स्त्री की परपुरुष में आसक्ति हो जाने की संभावना रहती है।

विवेच्य कालावधि में पत्नी का पति का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो चुका था और पत्नी, पति में ही अपना सब कुछ निहित मानती थी। पति के बिना उसका जीवन आकर्षणविहीन तथा निस्सार सा हो जाता था। अतः महिलायें पति की दीर्घकालिक अनुपस्थिति में अपने भोजन, हर्षोल्लास, सुख, वस्त्राभूषणों एवं केश-सज्जा आदि के प्रति उदासीन रहती थीं और केवल अति आवश्यक वस्त्राभूषण ही पहनती थीं **प्रोषितपतिकाओं** द्वारा धारण किये जाने वाले वलयों एवं पुष्पों या पत्रों से निर्मित कुंडलों के अनेक उल्लेख प्राप्य हैं।

साहित्यिक साक्ष्यों, भित्तिचित्रों तथा मूर्ति-शिल्पों आदि के अवलोकन से प्रमाणित है कि प्राचीन भारत में केश-प्रसाधन पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता था और बालों को तेल, आभूषणों एवं फूलों आदि से सुसज्जित कर विविध प्रकार के जूड़ों एवं वेणियों में बांधा जाता था। परन्तु **प्रोषित-भतृकाओं** के लिये सभी लेखकों ने तैलादि के प्रयोग का निषेध किया और केशों को एक ही वेणी में बांधने का प्रावधान किया। विरहिणी के लिये भूमि पर शयन करने का भी नियम था।

उपर्युक्त नियम एवं निर्देश किस सीमा तक व्यवहार में लाये जाते थे, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote, C...

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

भी कहना कठिन है। किन्तु पतिपरायणता के आदर्श के व्यापक प्रचार को ध्यान में रखते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि अधिकांश **प्रोषित-पतिकायें** आकर्षक वस्त्राभूषण नहीं धारण करती होंगी। व्रत-उपवास करने तथा सामान्य भोजन न करने के कारण उनका थोड़ा बहुत शारीरिक भार भी कम हो जाता होगा। स्त्रियाँ प्राय: अनपढ़ होती थीं। अत: वे अपने ढंग से प्रवास के शेष दिनों की गणना भी करती होंगी। किन्तु कवियों के ये विवरण कि उनके केशों की वेणी पति के पुनरागमन पर ही खुलती थी; वे इतनी अधिक कृशगात हो जाती थीं कि उनके वलय कलाई से निकलकर गिर जाते थे; वे दूसरों के घरों, विवाहादि संस्कारों तथा उत्सवों में नहीं जाती थीं, स्पष्टत: काल्पनिक तथा अतिरंजित हैं।

परन्तु व्यावहारिक पक्ष सैद्धांतिक पक्ष से कुछ भिन्न था। **पंचतंत्र**, **हितोपदेश** एवं **चतुर्भाणी** जैसे ग्रन्थों में ऐसी महिलाओं के अनेक विवरण प्राप्य हैं जो पति की अल्पकालिक अनुपस्थिति तक में पर पुरुषों में आसक्त हो जाती थीं। इस सन्दर्भ में नारद के निम्नलिखित प्रावधान **प्रोषित-पतिकाओं** के प्रति उनके सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण के द्योतक हैं। उनके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य जाति की संतानयुक्त **प्रोषितभर्तृकाओं** द्वारा प्रवासी पति के वापस लौटने के लिये क्रमश: ८ ६ तथा ४ वर्ष तक और नि:संतान को ४, ३ एवं २ वर्ष तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त दूसरा विवाह करने में कोई दोष नहीं है। किन्तु उपर्युक्त परिस्थिति में शूद्रा स्त्री के दूसरे विवाह के लिये नारद ने कोई समय सीमा नहीं बतलाई है[१९]। इन प्रावधानों का कहां तक सामान्य प्रचलन था, यह अनुमान लगाने की बात है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि **प्रोषितपतिकाओं** के लिये बनाये गये नियम प्रमाणित करते हैं कि विवेच्य कालावधि के समाज में पति से पृथक् महिलाओं की अपनी पहचान नहीं रह गई थी।

सन्दर्भ

१— विष्णुस्मृति, २५/६-१०; याज्ञ०, १/८४।

२— गाथासत्तसई, १/३६ तथा ३६ आदि।

३— वही, ४/१५

४— नारदस्मृति, १२/१००

५— स्वप्नवासवदत्ता, अंक २

६— भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं,
तत्संदेशैर्हृदयनिहि तैरागतं त्वत्समीपम्। —मेघदूत, उत्तरार्द्ध, ३६

७— दुईगआ चिराअइ किं० सो मह पासमेदिददूण
गीविअमरणन्तर संठिआए अंदोलिए हिअमं ॥ —गाथा, उत्तरार्द्ध, ८४६

८— महाभारत, ३/६८/१३ तथा आगे; महाभारत, १३/१२३/१६-१७

६— रामायण, २/२६/२६-३०; ५/११/२; ५/१५-२०-२४; ५/१६/२०-२१

१०— भर्तरि प्रवसिते अत्रतिकर्मक्रिया। परगृहष्वनभिगमनम्। —विष्णु० २५/६-१०

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Hontag

११— क्रीड़ा-शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् ।
हास्यं परगृहे यानंत्यजेत्प्रोषितभर्तृका ।। —याज्ञ०, १/८४

१२— प्रसाधनं नृत्य-संगीत—समाजोत्सवदर्शनम् ।
मांसमद्याभियोगं च न कुर्यात् प्रोषिते प्रभौ ।। —बृपस्पति०, २५/१३

राम के वियोग में सीता ने भी मदिरापान का परित्याग कर दिया था—

न रामेण विमुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी ।
न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम् ।। —रामायण, ५/११/२

१३— वसने परिधूसरे वसाना नियमाक्षामुमुखी धृतैकवेणी ।
अति निष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घ-विरहव्रतं विभर्ति । —शाकुंतल०, ७/२१

१४— कामसूत्र, ४/१/४३-४४

१५— गाथा०, १/४६-४७ तथा ७६

१६— वही०, २/११; पूर्वमेघ, २ और २६; उत्तरमेघ, ३३

१७— गाथा०, १/३६; उत्तरमेघ, २६ और ८६४

१८— उत्तरमेघ, ३१-३२ तथा ३६

१६— गाथा०, २/३२-३३

२०— वही, उत्तर०, ८३६

२१— वही, ४/६७

२२— दी हुण्डाणीसासा रणरणओ रुज्जगग्गिरं गेअं ।
पिअविरहे जीविअवल्लहाण एसोच्चिअ विणोओ ।। —गाथा०, उत्तरार्ध, ८३७

२३— उत्तरमेघ, २७

२४— गाथा०, ४/७

२५— वही, ३/८

२६— वही, उत्तर०, ८३५

२७— पूर्वमेघ, ६; उत्तरमेघ, २७

२८— गाथा०, ४/२२

२६— गाथा०, २/३३; ३/५; पूर्वमेघ, २ तथा २९; उत्तरमेघ, ३३

३०— वही, १/६७; उत्तरमेघ, ३५

३१— वही, ७/६; उत्तरमेघ, २०

३२— गाथा० २/४०

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

३३— वही, ४/३६

३४— वही, उत्तरार्ध, ८६५

३५— पूर्वमेघ, ६

३६— रघुवंश, १३/२६-३२

३७— शाकुंतल०, अंक—६

३८— गाथा०, ६/८६

३९— नारद०, १२/६८-१०१

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Hertag

नवीन शैव प्रतिमाएं

जितेन्द्र कुमार

सघन वनों, कल-कल करती नदियों एवं पर्वत शृंखलाओं के क्षेत्र का नाम बुन्देलखण्ड है। पाषाण काल से आदि मानव इस क्षेत्र में आवास करता आ रहा है। जिसका क्रमिक विकास यहाँ के प्राप्त उपकरणों से होता है। प्रतिहार एवं चन्देल राजाओं के काल से यह क्षेत्र अपनी कला के लिए विख्यात है। मूर्ति कला के क्षेत्र में तो यह अग्रणी ही है। जिस प्रकार गांधार व मथुरा कुषाण कला के लिए ख्याति प्राप्त है तथा गुप्त कला के लिए मथुरा व सारनाथ विश्व विख्यात हैं, उसी प्रकार चन्देल कला के लिए बुन्देलखण्ड और खजुराहो प्रसिद्ध है। खजुराहो चन्देल कला का उत्कृष्ट अनूठा केन्द्र है।

बुन्देलखण्ड में गुप्त काल तक प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव था और महोबा, एरच (झांसी) तथा ढिकौली इसके केन्द्र थे। गुप्त काल में भी देवगढ़ का दसावतार मन्दिर ब्राह्मण मूर्ति कला एवं स्थापत्य कला का अद्वितीय उदाहरण है। गुप्त काल के बाद इस क्षेत्र में जैन व हिन्दू देव प्रतिमाओं की बहुलता है। बौद्ध धर्म का कोई भी उदाहरण महोबा को छोड़कर नहीं मिलता है। ऐसा लगता है कि प्रतिहार व चन्देल राजाओं के कुछ सामन्त निश्चय ही जैन धर्म से प्रभावित थे और इसी प्रभाव के परिणाम स्वरूप देवगढ़ सैरोनजी खुर्द, चांद पुर, धौरा, दुधई (ललितपुर) कचनेऊ (झांसी) आदि जैन धर्मांथ केन्द्र विकसित हुए। साथ ही साथ इन्हीं के समक्ष पाली, सैरौनजी खुर्द, (ललितपुर) रेवन, भदरवारा, गौरैया का ग्यारहा मन्दिर (झांसी) महोबा का कालिंजर हिन्दू धर्म के केन्द्र के रूप में विकसित हुए।

प्रस्तुत निबन्ध में भदरवारा, रेवन झांसी से प्राप्त कतिपय विशिष्ट शैव सम्प्रदाय की नवीन प्रतिमाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

शिवदूती

मत्स्य पुराण तथा श्री तत्व निधि में शिवदूती का उल्लेख आया है, श्री गोपीनाथ राव ने शिवदूती को 'शृगाल वदना' तथा (वहुबाहुयुता) बहुभुजी बताया है, लेकिन कही भी देवी के वाहन का उल्लेख नहीं आया है।

श्री जितेन्द्र कुमार, निदेशक, राजकीय बौद्ध संग्रहालय, गोरखपुर (उ०प्र०)।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collecti

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

प्रस्तुत मूर्ति में देवी बीसभुजी हैं। दाहिनी ओर सबसे ऊपर के हाथ में क्रमशः अभय, हस्तमुद्रा, चक्र, डमरू, खेटक, शंख, पुष्पकली, अक्षमाला, कमण्डलु, पुष्प तथा कतिपय वस्त्र धारण किये हैं। बायीं ओर के हाथों में क्रमशः त्रिशूल, घण्टा अस्पष्ट वस्तु, कपाल, ढाल, वज्र, पुष्प, दण्ड मुष्टिका, सर्प तथा अज्ञात वस्तु आदि से युक्त देवी शृगाल मुखी है। ऊपरी भाग में माला लिए गंधर्व स्त्री-पुरुषों का चित्रण है। देवी अर्धपर्यंक आसन में बैठी है। देवी का वाहन सिंह चौकी के नीचे बैठा है। दोनों ओर सिंह पर आरूढ़ चतुर्भुजी (खंडित) देवियां बैठी है तथा दोनों ओर अनुचरी खड़ी हुई है। चौकी के नीचे भाग में नृत्य मुद्रा में अनेक मानव आकृतियां (खण्डित) दर्शायी गयी हैं।

उल्लेखनीय है कि मऊरानीपुर के आस-पास कई गांव में सियारी माता नाम के अनेक मन्दिर हैं। इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि यह देवी शिवदूती (जैकाली) ही है। चित्र सं० १

वीणाधर दक्षिण मूर्ति

शिव महान योगी तथा ज्ञान के देवता हैं पुराणों एवं आगमों के मतानुसार शिवसंगीत के भी आदि देवता हैं। ऐसा माना जाता है कि सभी विद्याओं का केन्द्र आशुतोष शिव ही है। प्रस्तुत मूर्ति दो स्तम्भों के मध्य बनी हुई है। शिव वीणा 'अंशुमदभेदआगम' के विवरण के अनुसार धारण किये है। लेकिन शेष विवरण किसी भी दक्षिण भारतीय ग्रन्थों के विवरण से मेल नहीं खाता, क्योंकि यहाँ शिव अपने दाहिने हाथ में त्रिशूल और बाएं हाथ में श्रीफल लिये हुये हैं, जबकि 'कामिकागम' में खेटक एवं ताड़ पत्र का उल्लेख आया है। ऐसा श्री गोपी नाथ राव का मत है। शिव जटा मुकुट धारी है। अन्य सामान्य आभूषण धारण किये हैं। चित्र सं० २

दुर्गा

दसभुजी देवी दुर्गा स्थानक है वे अपने दांये हाथों में क्रमशः चक्र, अंकुश धारण किये है शेष तीन हाथ खण्डित हैं। बांयें एक हाथ में घण्टा, शेष अन्य हाथ खण्डित है। देवी के सिर पर जटा मुकुट है उसके ऊपर मध्यकालीन प्रतिमाओं में दर्शायें जाने वाला अंकन मुकुट रखा हुआ है देवी अपने दोनों कानों में कुण्डल, गले में एकावली व हार, एवं बाँहों में बाजूबन्द एवं कंगन धारण किये हुए हैं। देवी के नीचे का भाग खण्डित है दोनों ओर एक-एक माला धारियों का अंकन है। चित्र सं० ३

रावणानुग्रह

अलंकृत प्रभा मण्डल के मध्य उमा माहेश्वर बैठे हैं। प्रतिमा के ऊपरी भाग में दाहिनी ओर ब्रह्मा पद्मासन में बैठे हुए हैं। बांयीं ओर चतुर्भुजी विष्णु अपने वाहन गरुड़ पर आरूढ़ हैं। उड़ते हुए गंधर्व अपने हाथों में गदा आकार की वस्तु लिए हुये दर्शाये गये हैं। दोनों के मध्य प्रभा मण्डल के ऊपर मुकुट बना हुआ है। शिव का दाहिना हाथ चिन मुद्रा में, जबकि दूसरे हाथ में नीलोत्पल धारण किये हैं। ऊपर के बाँये हाथ में त्रिशूल है, जबकि नीचे के बांयें हाथ से पार्वती का आलिंगन कर रहे हैं तथा पार्वती उनकी बांयें जंघा पर बैठी हैं। शिव की जटाओं से प्रवाहित होने वाली गंगा दाहिनी ओर बैठी स्त्री के पास गिरती हुई दिखायी गई हैं। देवी पार्वती के बांयी ओर एक चौरी धारिणी बैठी हुई दर्शायी गई है। शिव के पैरों के समीप दायें ओर गणेश दर्शाये गये हैं,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization.

चित्र सं० १. शिव दूती

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चित्र सं० २. वीणाधर दक्षिणा मूर्ति

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization.

चित्र सं० ३. दुर्गा

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collecti

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

चित्र सं० ४. उमा महेश्वर (रावणानुग्रह मूर्ति)

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

गणेश के दाहिनी ओर का गण त्रिशूल लिए खड़ा है। बांयीं ओर कार्तिकेय माला लिए खड़े हैं, उनकी बाँयी ओर एक गण त्रिशूल लिए खड़ा है। पैरों के समीप देवता का वाहन नंदी बैठा है। जबकि देवी के नीचे उनका वाहन सिंह तथा दोनों के मध्य भृंगी ऋषी विराजमान हैं। नीचे रावण कैलाश को बलपूर्वक घुटनों के बल बैठा हुआ दर्शाया गया है। चित्र सं० ४

सन्दर्भ

१. राव, गोपीनाथ, एलीमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी।

२. राव, गोपीनाथ तदैव वालूम १, पार्ट २, पृ० ३६५।

३. बनर्जी, जे० एन०, डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी।

४. श्रीवास्तव, एम० सी० पी०, मदर गाडेसेस।

५. सरस्वती, एस० के०, सर्वे आफ इण्डियन स्कल्पचर।

६. सहाय, माइनर हिन्दू, जैन, बौद्ध डिटीज।

७. त्रिवेदी, एस० डी०, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व।

८. पाण्डेय, दीनबन्धु, नोट्स आन इण्डियन आइकनोग्राफी।

९. सरस्वती, एस०के०, सर्वे ऑफ इण्डियन स्कल्पचर्स वालूम २ भाग १, पृ०२८९-९०।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

प्राचीन
और व
कल्की
होना
नामक
है। इ

तक
पूर्ण स
अवत
उसकी
परम्प

करने
आकी
क्षतिग्र
जकस
श्रीयुत
लखन
की

श्री च

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization.

जकसड़ से मिली दशावतार प्रतिमा का विश्लेषण

चन्द्रभान उपाध्याय

विष्णु को विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समय-समय पर तरह-तरह के अवतार धारण करने पड़े। प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों में उनके पांच से लेकर उन्तालिस अवतारों तक की जानकारी प्राप्त होती है[1]। गरूड़[2] और वराह[3] पुराण में उल्लिखित उनके मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्की इन दस अवतारों को काफी ख्याति मिली। सर्वविदित है कि अन्तिम और दसवाँ कल्की अवतार अभी होना बाकी है। विष्णु की सबसे पुरानी प्रस्तर-प्रतिमा द्वितीय शताब्दी ई० पू० की मध्य प्रदेश के 'मल्हार' नामक स्थान से मिली है[4]। प्राचीन भारत के शिल्पियों ने उन्हें द्विभुजी, चतुर्भुजी व अष्टभुजी अभिघटित किया है। इनमें उनके चतुर्भुजी रूप का बाहुल्य है।

कुषाण काल की मिली संकर्षण, कृष्ण, वराह और नरसिंह आदि मूर्तियों से ज्ञात होता है कि इस समय तक विष्णु के अवतारवाद को प्रस्तर-कला में प्रवेश मिल चुका था। यह दूसरी बात है कि उनकी अवतार-मालिका पूर्ण रूपेण आबद्ध न हो सकी थी। गुप्तकाल में विष्णु का अवतारवाद निश्चित रूप से दृढ़ मूल हुआ, पर उनके अवतारों की संख्या और नामों में वैभिन्नता बनी रही। कालान्तर में पुराशिल्पियों ने विष्णु की श्रीमूर्ति के साथ उसकी पृष्ठशिला पर दशावतारों का अंकन छठवीं शताब्दी ई० के अन्तिम चरण में शुरू कर दिया[5]। आगे यह परम्परा पूरे मध्य काल तक चलती रही।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ के पुरा-प्रस्तर-कला संकलन में विष्णु की श्रीमूर्ति सहित अवतारों को प्रदर्शित करने वाली लगभग दो दर्जन से अधिक प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। इनमें अधिकांश खण्डित अवश्य हैं, पर उनमें शेष आकरित विष्णु के अवतारों को देखा जा सकता है। कुछ ऐसी भी दशावतार मूर्तियां उपलब्ध हैं, जो कहीं से क्षतिग्रस्त नहीं हैं, बिल्कुल सुरक्षित हैं। वर्ष १९८९ में जनपद लखीमपुरखीरी के ब्लाक नकहा में स्थित जकसड़ गांव से खेत की जुताई करते समय अत्रालोच्य दशावतार प्रतिमा निकली थी जिसे वहाँ के ग्राम-प्रधान श्रीयुत प्रहलाद सिंह मौर्य ने संस्कृति व साहित्य के प्रबल प्रहरी श्री अवधेश शुक्ल की प्रेरणा से राज्य संग्रहालय, लखनऊ को उपहार स्वरूप प्रदान किया[6]। श्वेत-पीत प्रस्तर की बनी यह उत्कृष्ट प्रतिमा लगभग बारहवीं शती की रचना जान पड़ती है।

श्री चन्द्रभान उपाध्याय, राज्य संग्रहालय, लखनऊ—२२६००१

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

त्रिरथ-वाहिका पर मध्य में महाम्बुज पर खड़े शंख, चक्र, गदा व वरदहस्ता चतुर्भुजी विष्णु वस्त्राभूषणों से पूर्णालंकृत हैं। वह दोनों पैरों में नूपुर पहने हैं। मूर्तिकला के क्षेत्र में प्रथम बार प्रतिहार नरेशों के समय में पुराशिल्पियों ने पुरूष देवता के पैरों में नूपुर पहनाया। इससे पहले किसी पुरुष देवता के पैरों में नूपुर नहीं दिखायी पड़ता। श्रीमूर्ति के गले में ग्रैवेयक, मुक्ता यज्ञोपवीत और घुटनों तक की वनमाला सुशोभित है। विष्णु के कटि में मेखला, चारों हाथों में कंगन, भुजाओं में केयुरक, कानों के अलंकृत कुण्डल, शीश पर ऊँचा किरीट मुकुट शिल्पी ने बड़ी बारीकी से पहना रखा है। मस्तक के पीछे तीन पट्टियों में बना अति अलंकृत प्रभामण्डल दर्शाया गया है। विष्णु के भाल पर तिलक और वक्ष पर 'श्रीवत्स' अंकित है। महाभारत में एक कथा है कि दक्ष-यज्ञ को विध्वंस करने के बाद रुद्र ने बदरिकाश्रम में बैठे नारायण पर अपना त्रिशूल चलाया जिसे नारायण ने अपने वक्ष पर 'श्रीवत्स' के रूप में स्वीकार किया[9]।

विष्णु के अगल-बगल कटि में मेखला, हाथों में कंगन, भुजाओं में भुजबन्द, गले में ग्रैवेयक और कानों में कुण्डल पहने त्रिभंग मुद्रा में खड़ी चवँरधारी युगल मूर्तियां बनी हैं। सबसे नीचे उनके पैरों में अञ्जलिबद्ध आराधना-लीन दो भक्त युगल बैठे हैं। श्रीमूर्ति के प्रभा-मण्डल के ऊपर प्रतिमा-परिकर के सर्वोच्च भाग अर्थात 'शृंग' में मानों गगन में विचरते मालाधारी विद्याधर और गन्धर्वों को दिखाया गया है। त्रिरथी-वाहिका के प्रथम और तृतीय भाग में हाथ में घट लिये सम्मिश्रित पुरुष और स्त्री दोनों आकृतियों को अलग-अलग झरोखों में चित्रित किया गया है। यह अर्धपुरुष और स्त्री आकृतियां क्रमशः समुद्र और गंगा हो सकती हैं। दशावतारों के साथ इस प्रतिमा में परम्परागत ब्रह्मत्रयी को भी यथोचित स्थान दिया गया है। वाह्यशाखा की रथिकाओं में दाहिनी ओर त्रिमुखी व द्विभुजी ब्रह्मा और बायीं ओर त्रिशूलहस्ता द्विभुजी जटाजूटधारी शिव अभिघटित हैं। इनके नीचे गज और सिंह शार्दूलों का सुन्दर अलंकरण हैं।

वाह्य शाखा के दोनों कोनों पर दायीं ओर विष्णु के मत्स्य और बायीं ओर कूर्म अवतारों को चित्रित किया गया गया हैं। महाम्बुज पर आसीन मत्स्य के ऊपर शिवलिंग बना हैं और उसके अगल-बगल दो अनाभि मानवाकृतियाँ चित्रित हैं। मध्यकालीन दशावतार मूर्तियों में प्रायः महामत्स्य पीठपर शिवलिंग का अंकन देखने को मिलता है[8]। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि उनके इस अवतार अर्थात महामत्स्य से शिवलिंग का क्या सम्बन्ध है? 'सुप्रभेदागम' में कहा गया है कि प्रलय के समय लिंग में सम्पूर्ण सृष्टि समा जाती है और पुनः सृजन काल में उसकी उत्पत्ति इसी से होती है[9]। इससे स्पष्ट है कि शिवलिंग 'सृष्टि की प्रलय और पुनः उसकी उत्पत्ति' इन दोनों भावों का द्योतक है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि यहाँ शिल्पी शिवलिंग के माध्यम से एक तो महामत्स्य से जुड़े प्रलय को व्यक्त करना चाहता है और दूसरा यह कि इसी के माध्यम से प्रलय में शिव की उपस्थिति को भी दिखलाना चाहता हो। अतः प्रलय में शिव के विद्यमान रहने और मत्स्य रूप में विष्णु के अवतरित होने की कल्पना को मूर्त रूप देने के अभिप्राय में उसने यह चित्रण किया हो[10]। पौराणिक कथा भी है कि एक बार मत्स्य ने मनु से कहा था कि प्रलय की स्थिति में तुम्हारे (मनु) साथ सोम, चन्द्र, ब्रह्मा और मैं (मत्स्य) तथा चारों दिशायें, चार वेद, पुराण, ऋषि मार्कण्डेय, नदी नर्वदादि रहेगें और भगवान शिव भी सहायतार्थ साथ होंगें। यहाँ महामत्स्य के साथ शिव की उपस्थिति प्रलय में स्वीकारी गयी है।[11]

उल्लेखनीय है कि गोरखपुर जिले के खुखुण्डु नामक स्थान से लगभग ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी की एक दशावतार प्रतिमा मिली है। यह प्रतिमा भी संयोग से राज्य संग्रहालय, लखनऊ के प्रस्तर-संकलन में

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

दशावतार विष्णु, ल० १२वीं शती ई०

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जकरूड़ से

उपलब्ध है
बनाया है
में विष्णु
गदा को
है, शायद
इंगित कर

शिल्पी ने
आकृति उ
हुई छीना-
मन्थन से
सुरक्षित है
कच्छप की
अनुपम हैं

भी अपने
सुखासन
सुखासन
अभिघटि
शिल्पियों
कोण है
को विष्णु
शंख-चक्र-
शिल्पी ने
सिंह आदि
और स्वर्ग

१.

२.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

उपलब्ध है[१३]। इस प्रतिमा में मत्स्यावतार का बड़ा विलक्षण चित्रण हुआ है। यहाँ शिल्पी ने एक खड़ा मत्स्य बनाया है और उसे मानवीय हाथ प्रदान किये हैं। मत्स्य अपने दाहिने हाथ में गदा पकड़े है। यहाँ मत्स्य के हाथ में विष्णु के अन्य आयुधों को छोड़ कर मात्र गदा का ही दिखलाया जाना विचारणीय है। पुराणों में विष्णु की गदा को 'वह्निशिखाकारा' और 'प्रदीप्तपावकोज्वला' कहा गया है'[१]। आग की लपट विनाशकारी होती है, शायद इसी भाव को लेकर शिल्पी परोक्ष रूप में यहाँ भी गदा के माध्यम से महाविनाश अर्थात प्रलय को इंगित करना चाहता है और उसमें प्रत्यक्ष रूप से अवतरित मत्स्य को दर्शाना चाहता है।

प्रतिमा में चित्रित कूर्मावतार भी बड़ा ही रोचक है। कच्छप महाम्बुज पर आसीन है। उसकी पीठ पर शिल्पी ने दो मानवाकृतियाँ बनायी हैं जिसमें एक आकृति कुछ लिए अपने एक हाथ को ऊपर उठाये है। दूसरी आकृति उसे छीनने का प्रयास कर रही है। देखकर लगता है कि शिल्पी मानों समुद्र-मन्थन से निकले 'अमृत' हेतु हुई छीना-झपटी का दृश्य अपनी आंखों से देखा था और उसे बिल्कुल वैसे ही यहाँ उतार दिया हो। समुद्र मन्थन से निकले रत्नों को चित्रित करने वाली आठवीं शताब्दी ई० की एक और प्रतिमा लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है, जो प्रतापगढ़ के कालाकांकर नामक स्थान से प्राप्त हुई है। यहाँ कूर्मावतार के चित्रण में शिल्पी ने कच्छप की पीठपर लक्ष्मी और उनके पीछे समुद्र-मंथन का दृश्य दिखाया है।[१४] कूर्मावतार के दोनों दृश्य अपने में अनुपम हैं।

आलोच्य प्रतिमा में पृथ्वी के उद्धार में संलग्न दो भुजी वराह आलीढ़ मुद्रा में देखे जा सकते हैं। नरसिंह भी अपने द्विभुजी रूप में हिरण्यकश्यप का उदर-विदीर्ण करने में जुटे हैं। बलि को छलने वाले विष्णु रूप वामन सुखासन मुद्रा में देखे जा सकते हैं। इनके नीचे द्विभुजी राम और अभय मुद्रा में बुद्ध खड़े हैं। नरसिंह के नीचे सुखासन में हाथ में परशु लिये परशुराम बैठे हैं और उनके नीचे सिर पर सर्प-फण धारण किये बलराम अभिघटित हैं। उल्लेखनीय है कि विष्णु के दशावतारों में कृष्ण को काफी ख्याति मिली है। परन्तु मध्य काल के शिल्पियों ने दशावतारों को अभिघटित करते समय इन्हें अक्सर छोड़ दिया है। डा० एस०डी त्रिवेदी का दृष्टि कोण है कि विष्णु स्वयं में वासुदेव कृष्ण हैं[१५]। अतः शिल्पियों ने कृष्ण को छोड़ दिया और उनके बदले बलराम को विष्णु के दशावतारों में सम्मिलित किया है। अगर कहीं कृष्ण का अंकन हुआ भी है तो वे विष्णु के समान शंख-चक्र-गदाहस्ता चर्तुभुजी रूप में ही चित्रित किये गये हैं।[१६] अन्त में घोड़े पर सवार कल्की का प्रर्दशन कर शिल्पी ने प्रतिमा को पूर्णता प्रदान की है। उसने प्रतिमा की वाहिका में समुद्र का अंकन, वाह्य शाखा में गज, सिंह आदि का प्रदर्शन, सर्वोच्च भाग अर्थात 'शृंग' में विद्याधर, गन्धर्वों का अभिघटन कर क्रमशः पाताल, पृथ्वी और स्वर्ग लोक में सर्वत्र श्रीमूर्ति (विष्णु) की त्रैलोक्य व्यापकता को प्रदर्शित किया है।

संदर्भ

१. जोशी, नीलकंठ पुरुषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, विहार—राष्ट्रभाषा—परिषद्, १९७७ पृ० सं० ९७-९८।

२. मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्कि तथैव च ॥ उत्तरभाग २०.३१।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

३. मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश ।। ४.२ ।।

४. वाजपेयी, कृष्ण दत्त, श्रीकृष्ण का वीररस, संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका, अंक २१-२४। पृ० सं० ६० ।

५. जोशी, एन० पी०, ब्रह्मनिकल स्कल्पचर्स इन दि स्टेट म्युजियम, लखनऊ, भाग २ सम्पुट १ पृ०सं० १३६

६. रा० सं० ल० परिग्रहण सं० ६०.१

७. अद्य प्रभृति श्रीवत्सः शूलाङ्को मे भवत्ययम् ।
मम पार्ष्ण्याङ्कितश्चापि श्रीकण्ठस्त्वं भविष्यसि ।। शान्ति० ३४२.१३४ ।।

८. रा० सं० ल० परिग्रहण सं० ४२.१८६, रा० सं० झांसी परिग्रहण सं० ८०.७१ इत्यादि

९. लयं गच्छन्ति भूतानि संहारे निखिलं यतः ।
सृष्टि काले पुनस्सृष्टिं तस्माल्लिङ्गमुदीरितम् ।।

१०. उपाध्याय, चन्द्रभान, विष्णु के मत्स्यावतार-दृश्यों में मौलिक तत्व क्या है ? नवजीवन, ६ अक्टूबर '६१.

११. स्वामी जगदीश्वरानन्द, विष्णु : दी चीफ हिन्दू डीटी, नोएडा, मयुर, १९८८, पृ०सं० ५५.

१२. रा० सं० ल० परिग्रहण सं० एच० १०७.

१३. जोशी, नीलकंठ पुरुषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान पृ० सं० ७६.

१४. रा० सं० ल० परिग्रहण सं० ४२.१८६.

१५. त्रिवेदी, एस० डी०, कृष्णावतार इन स्कल्पचरल आर्ट, संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका, अंक २१-२४ पृ० सं० ८१.

१६. रा० सं० ल० परिग्रहण सं० एच० १०६, एच० ११३, ओ० ८४ इत्यादि ।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

PHYSICAL VERIFICATION OF THE ARTIFACTS IN AN ART AND ARCHAEOLOGICAL MUSEUM

Bansi Lal Malla

The physical verification is one of the most important aspects of museum administration. The term physical verification means the objects acquired for the museum should be verified whether that object is there in the museum or not, and in doing so the each object is to be physically verified. according to the description noted in the official inventory, namely, the General Accession Register. Sometimes, for such verification the Sectional Accession Register may also be consulted.

WHY PHYSICAL VERIFICATION IS NEEDED ?

A museum collects objects for two purposes. Firstly, an object is collected for its safe keeping. The museum ensures the safety and the Security of the object for a long span of time, secondly, the object is collected to communicate the information contained in it. If a museum does physical verification periodically then the presence of an object in the museum is verified. If an object is misplaced or stolen or somehow missing from the museum it can not be detected unless physical verification is done. In case of a theft matter can be brought to the notice of certain organisations which can help in the recovery of the object.

The physical verification helps in estimating the condition of the particular object. In case the object has gathered lot of dust or dirt, or it is attacked by insects and—fungus, or it has been a victim of climatic changes, then during the period of physical verification it would be detected and prompt actions may be taken to get this object freed from all or one of these damaging agencies. If physical verification is not done then nobody will ever come to know about all these things and the object is likely to be damaged or spoiled, before long. Thus, physical verification is also required for the health of the collected objects. The physical verification also offers new ideas to the curators

Dr. BANSI LAL MALLA, Bharat Kala Bhavan, B.H.U., Varanasi—221005

CC-0. Bhagavad Ramanuja National

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

to write articles, monographs and notes on certain spacific areas, while handling for physical verification such ideas my crop up in the mind of the curators. Besides physical verification by the museum personnel, the verification is also conducted sometimes by the funds giving authorities through their auditors. If the auditors are convinced that the acquired objects have been audited and verified, and the presence of objects is endorsed by them, then there will be no difficulty for getting further funds for development of the museum. Thus, physical verification should be carried out in every museum.

PRE-REQUISITS OF PHYSICAL VERIFICATION

The physical verification in an Art and Archaeological Museum can be done properly if it has a proper documentation, otherwise it becomes extremely difficult. The object should be clearly numbered and with good marking so that no confussion is aroused in dcciphering its number while documenting an object in comparison with the description noted in the General Accession Register and Sectional—Accession Register. Its accession number, serial number, descriptions, measurement, weight, provenence, period and material ought to be very clearly written. The ambiguous description or very brief description or descriptions with less known technical terms create difficulty in the course of physical verification. When the object is physically verified as per description then it is to be checked whether description includes atleast one or more than one identifying marks. Such marks help in the quick identification of the object. When physical verification is completed, the entire report is to be signed with dates by the three officers who were assigned this job of verification. This means that on the date of the signature, the position of the acquired objects were reported and endorsed. Sometimes, the officers tick mark the objects verified on the register itself. This is not a sound practice because how many tick marks a register can accomidate year after year. For this it is better that seperate sheets of papers with accession numbers be prepared and then these numbers are to be ticked. But the description of the object should by tallied with the help of the descriptions in the Accession Register.

PERIOD FOR PHYSICAL VERIFICATION

There has been a controversy among the museologists and also auditing officials as to when the physical verification should be done. Should a museum physically verify all its objects every year or once in five years or once in a decade ? It is definitely good if the objects are physically verified annually. Because less the period of gap of verification greater will be the security of the object. If an object is stolen and is detected after five or ten years through physieal verification, it would not be possible either by the CBI personnel or by the inter-pol to trace the object. But, if it is detected within a year,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

actions become more easier for the recovery of the object. Sometimes, the sectional incharge may notice the missing of an object and for which he may be required to explain. He can keep silent about the missing for a long span of time, even he may not inform anybody before his retirement. But a physical verification with lesser gap in time may detect this missing and can involve the sectional incharge, and make him responsible for the loss. Hence, physical verification with lesser gap is advisable. But in a big museum which has huge collection, can not afford to have physical verification of a huge quantity of objects can not be done within the span of one year. In such cases, a random verification is advisable.

WHY MUSEUM WITH LARGE COLLECTIONS CAN NOT VERIFY PHYSICALLY ALL ITS OBJECTS ANNUALLY

The process of physical verification is somewhat complicated and technical. It requires generally three senior personnels. One of which should be the incharge of the section of which physical verification is to be done. The physical verification requires General Accession Register and at times Section Accession Register to compare the assistance of atleast two or three attendants. First of all the inventory number and the number of the object has to be tallied, then the other details of the objects noted in the register such as, short description, dimension, weight, size, colour, material, inscription etc. ought to be tallied. Each object therefore takes lot of time. Besides, the officers who are assigned to do the physical verification have routine work of their own sections. They have to attend their respective sections, cheek their related galleries, attend to the scholars, to work out catalogues, other documentations for the new arrivals etc., thus normally these officers can afford only a part of their office hours for the physical verification. Therefore, a museum with huge collection can not physically verify its objects every year, but verification once in three years or atleast in five years is a must for every museum big or small.

DUTIES OF OFFICERS ENGAGED IN PHYSICAL VERIFICATION

In course of physical verification if something otherwise is detected then it has to be brought to the notice of higher authorities so that actions may be taken for its recovery. Besides, the section incharge is to be served a show case notice as to why it is missing or whether he can say when it was last seen in the collection ? The missing objects detected through physical verification should be properly reported, and in General Accession Register, as well as, in the Sectional Accession Register, this has to be noted in the remarks columns. The competent authorities should take actions to write off these objects so that in future there will be no difficulty in physical verification or in other documentation procedures. If any object needs mending, cleaning, treatment with insecticides, supporting etc., all these are to be also reported to the competent authorities so that necessary steps of conservation can be taken up in time.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

जिसमें
अध्ययन
देशों में
किया
से प्राच
सैकड़ों
बोधिवृ

क्रम

१.

२.

३.

४.

५.

६.

उत्तरी
निकाय

श्रीमती

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

'दीघनिकाय'—एक सांस्कृतिक परिचय

मनोजनी देवी

बौद्ध साहित्य भारत के प्राचीनतम साहित्यों में से एक है। यह साहित्य विशाल महासागर के समान है, जिसमें बुद्ध धर्म के अनेक निकायों की साहित्य-धाराएं मिलती हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहास के अध्ययन के लिए इस साहित्य को अतीव महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसके मूल ग्रन्थों का अनुवाद अनेक भारतेतर देशों में उनकी भाषाओं में किया गया है। यह साहित्य दो प्रमुख भागों (क) पालि (ख) संस्कृत में विभाजित किया गया है। 'दीघ निकाय' पालि वर्ग के सुत्तपिटक का एक निकाय है। इसे भाषा और वर्ण्य विषय की दृष्टि से प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है। यह ग्रन्थ दर्शन और तर्कशास्त्र से परिपूर्ण है और बौद्ध धर्म की प्राचीनता को सैकड़ों वर्ष पूर्व ले जाता है, क्योंकि यहाँ शाक्य मुनि बुद्ध के अतिरिक्त छः बुद्धों के नाम, वंश, परिवार तथा बोधिवृक्ष और उनकी आयु का वर्णन किया गया है।[1]

क्रम	नाम	कुल	माता-पिता	पितृनगर	बोधिवृक्ष	आयु
१.	विपस्सी	खत्तिय	बन्धुमती, बन्धुमान	बन्धुमती नगरी	पांडरवृक्ष	अस्सी हजार वर्ष
२.	सिखी	खत्तिय	प्रभावतीदेवी, अरुणराजा	अरुणावती राजधानी	पुण्डरीक	सत्तर हजार वर्ष
३.	वेस्सभू	खत्तिय	ससोवतीदेवी, सुप्रतीतराजा	अनोमा	साल	साठ हजार वर्ष
४.	ककुसन्ध	ब्राह्मण	विशाखा अग्निदत्त	खेमवती नगरी	सिरीस	चालीस हजार वर्ष
५.	कोणागमन	ब्राह्मण	उत्तरा यज्ञदत्त	सोभवती नगरी	गूलर	तीस हजार वर्ष
६.	कस्सप	ब्राह्मण	धनवती ब्रह्मदत्त	वाराणसी	बर्गद	बीस हजार वर्ष

उपर्युक्त इन पूर्व बुद्धों की पुष्टि पुरातत्त्वपरक खोजों से भी होती है। सांची के महास्तूप के दक्षिणी और उत्तरी तोरण द्वारों पर इन पूर्व बुद्धो का बोधिवृक्षों के अंकन द्वारा प्रतीकात्मक चित्रण किया गया है।[2] दीघ निकाय का मात्र ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व ही नहीं है, बल्कि यह ग्रन्थ प्राकृतिक भूगोल और पर्यावरण

श्रीमती मनोजनी देवी, प्रकाशन सहायिका, राज्य संग्रहालय, लखनऊ

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

पर भी पर्याप्त प्रकाश डालता है। बुद्ध के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि वे वन में जन्म ग्रहण करते हैं, वन में ज्ञान प्राप्त करते हैं, वन में ही उपदेश करते हैं और परिनिर्वाण भी वन में ही प्राप्त करते हैं। प्रकृति और पर्यावरण के महत्त्व को बुद्ध ने भली भांति समझा था। इसीलिए वे और उनका भिक्षु संघ वनोद्यानों (प्रावारिक आम्रवन[3], तपोदाराम, जीवकाम्रवन, सारन्दद-चैत्य तथा बहुपुत्रक चैत्य[4]) में ही ठहरते थे।

बुद्ध कालीन राजनैतिक भूगोल पर भी इस निकाय से प्रकाश पड़ता है। दस गणराज्यों की तालिका के लिए इसे अद्वितीय ग्रन्थ माना गया है। लेकिन इन गणराज्यों के अतिरिक्त भी अन्य गणराज्यों का उल्लेख इसमें प्राप्त होता है, जिनकी ओर विद्वानों का ध्यान अब तक नहीं गया है। राजनैतिक भूगोल परिवर्तनशील है क्योंकि राज्यों और गणराज्यों की सीमाएं समय-समय पर विस्तृत और संकुचित होती रहीं हैं।

भगवान् बुद्ध और महावीर का युग धार्मिक क्रान्ति का ही नहीं अपितु सामाजिक क्रान्ति का भी युग था। भगवान् बुद्ध ने जन्म के आधार पर वर्ण-व्यवस्था का तर्कों द्वारा खण्डन किया और उसे कर्म के आधार पर स्वीकार किया, जिसमें परिवर्तनशीलता थी। उन्होंने 'जन्म नहीं, कर्म प्रधान है'[5] पर बल दिया। ज्ञान के क्षेत्र में क्षत्रिय आचार्यों को ब्राह्मण आचार्यों पर विजय करते पाते हैं। वर्ण श्रेष्ठत्व के वैचारिक संघर्ष में क्षत्रियों की विजय दिखाई पड़ती है। क्योंकि पूर्व प्रचलित वर्णक्रम—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के स्थान पर क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र वर्ण क्रम प्राप्त होता है।[6] इसी प्रकार बुद्ध ने चतुराश्रमों के स्थान पर ब्रह्मचर्य[7], गृहस्थ और संन्यास[8] (भिक्षु) तीन आश्रमों को ही स्वीकार किया। साथ ही इन आश्रमों में प्रवेश की आयु सीमा, वर्ण और जातिगत प्रतिबन्धों को भी समाप्त कर दिया। संघ की सदस्यता किसी जाति तक सीमित न थी। परन्तु दास, सैनिक, ऋणी व्यक्ति जो किसी कृतज्ञता अथवा अभिभावकता के अन्तर्गत हो, सघ में अपने मालिक की अनुमति के बिना प्रविष्ट नहीं हो सकता था।[9] यही कारण है कि उस समय सामाजिक समीकरण की प्रबल प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। संस्कारों[10] में दीक्षा (श्रामणेर दीक्षा) तथा उपसम्पदा[11] संस्कार (भिक्षुचर्या ग्रहण करने का संस्कार) प्रचलित हुए। किसी भी वर्ण का व्यक्ति अपने गुणकर्मों के आधार पर उपाध्याय (उपदेशक) और आचार्य बन सकता था।

विवाह[12] समाज संवर्द्धन का मूलाधार है। दीघ निकाय भी विवाह के महत्त्व को स्पष्ट करता हुआ उसके प्रकारों और विधियों का वर्णन करता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि नवविवाहिता पत्नी को मंगल आशीष भी दिये जाते थे, जिसमें मुख्यतः उनके गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यों की ओर संकेत रहता था। ऐसे ही एक अवसर पर स्वयं बुद्ध ने एक नवविवाहिता दम्पत्ति को उपदेश दिया था कि 'घर की आग बाहर न ले जाना और बाहर की आग घर में न लाना।' यह उपदेश आज भी सार्थक और गृहस्थ जीवन के लिए अतीव उपयोगी है। इसका तात्पर्य है बाहर राग, द्वेष, लोभ, मोह, कलह की जो आग जल रही है उसे अपने घर न लाना और अपने घर के यदा कदा मनमुटाव, लड़ाई झगड़े की आग को बाहर न बतलाना। बौद्ध साहित्य सात प्रकार की पत्नियों का अद्वितीय वर्णन करता है।[13]

बौद्ध युग में स्त्रियों का सम्मान बढ़ा वे उपदेशिका[14] (भिक्षुणी) बनीं। वे शिक्षा-दीक्षा का भी कार्य करती थीं। उन्होंने उत्कृष्ट साहित्य की रचना की है, जिसका वर्णन 'थेरीगाथा' में प्राप्त होता है। सुप्रसिद्ध 'वैशाली सुन्दरी' आम्रपाली[15] (गणिका) ने बुद्ध तथा उनके संघ को भोजन के लिए आमन्त्रित किया। तथागत

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MOE

ने उसे स्वीकार किया। उसने बुद्ध से धर्मोपदेश गृहण कर, भिक्षु संघ के लिये अपना आवस्रन दान दिया[१५]। विशाखा[१७] गोपा[१८] अपनी ज्ञान गरिमा के कारण नारी जगत में प्रसिद्ध ही हैं। इनके अलावा दीघ निकाय में नन्दा, सुजाता[१९] जैसी महिलाओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

दीघ निकाय भारत में द्वितीय नगरीय सभ्यता को दर्शाता है। जहाँ भारत में एक कोने से दूसरे कोने तक नगरों और महानगरों (चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी)[२०] की भरमार थी वहीं मनुष्य की आवश्यकताओं के साथ-साथ उसका आस-पास के ग्रामों नगरों, जनपदों और देशों तथा विदेशों से सम्बन्ध बढ़ते गये। बौद्ध युग में यह सम्बन्ध द्वीप-द्वीपान्तर तक स्थापित हो गया था।[२१] इसी युग की दूसरी विशेषता औद्योगीकरण और व्यापार थी। शिल्प ज्ञान इतनी उन्नति पर था कि वह ज्ञान प्रगति (मंगल) का कारण माना जाता था।[२२] उस समय शिल्पियों ने अलग-अलग अपने संघ बना लिये थे और वे अधिकतर सम्पन्न भी थे।

एक ओर जहां इस ग्रन्थ में सुख समृद्धि का वर्णन प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर अभाव ग्रस्तता भी दिखाई पड़ती है। कदाचित् महामानव बुद्ध पहले महापुरुष थे जिन्होंने यह घोषणा की थी कि 'भूख सबसे बड़ा रोग है' और 'निर्धनता सभी पापों की जननी है।'[२३] भूख और निर्धनता से ग्रस्त मानव के दुख के लिए ही बुद्धत्त्व प्राप्त करते हैं और जीव मात्र के कल्याण के लिए सदा ही रत रहते हैं।[२४] उन्होंने अपने अनुयायी भिक्षुओं को बहुजन हित और बहुजन सुख के लिए, लोगों पर अनुकम्पा करने के लिए, देवों और मनुष्यों के हित एवं सुख के लिए, विचरण करने के लिए आदेश किया। ···। जो आदि में कल्याणकारी है; मध्य में कल्याणकारी है, और अन्त में भी कल्याणकारी है।'[२५] दुःखों से पीड़ित मानव को दुःख मुक्त करने के लिए, शोकाकुल लोगों को शोक मुक्त करने तथा भयग्रस्त लोगों को निर्भय करने के लिए आदेश किया।[२६]

भारत में धर्म की अवधारणा सम्पूर्ण समाज को एक सूत्र में बांधने के लिए हुई थी। समय-समय पर धर्म की परिभाषायें परिवर्तित होती रहीं। ब्राह्मण ग्रन्थों में धर्म को लौकिक समृद्धि और मरणोपरान्त स्वर्ग प्राप्ति कराने वाला बतलाया गया है।[२७] भगवान् बुद्ध ने सभी पापों से दूर रहना, कुशल कर्मों का सम्पादन करना, और अपना चित्त निर्मल रखना धर्म बताया है।[२८] उन्होंने यहां तक कहा कि पापों से आयु और वर्ण का ह्रास होता है।[२९] अशोक के द्वितीय, तृतीय एवं सांतवें स्तम्भ अभिलेख इसे और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि पाप कर्मों से दूर रहना, कल्याणकारी कार्यों को करना दया, दान, सत्य, पवित्रता, मृदुता और साधुता धर्म के तत्त्व हैं।[३०] पुराण भी धर्म को चतुष्पदी --सत्य, दान, तप और दया से युक्त मानते हैं।[३१] धर्म की इस उदात्त अवधारणा में धर्म का सम्बन्ध मनुष्य से था और ईश्वर तथा आत्मा का कोई स्थान नहीं था। कालान्तर में नाना प्रकार के अन्धविश्वास और परम्पराएं धर्म में जुड़ती गईं, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि अन्धविश्वासों और परम्पराओं की बहुलता ने सदधर्म को ही ढक लिया।

भारत में दर्शन का विशेष महत्त्व रहा है, जो आध्यात्मिक चिन्तन पर बल देता है। इसमें मनुष्य स्वयं अपने में अन्य सभी को देखने और समझने का प्रयास करता है। 'दीघ निकाय' में उस समय प्रचलित दर्शनों का विवेचन प्राप्त होता है, जिससे ज्ञात होता है कि आदि अन्त सम्बन्धी अनेक धारणाएँ प्रचलित थीं।[३२] अक्रियावाद (पूर्ण काश्यप का मत)[३३], दैववाद (मक्खलिगोसाल का मत), जड़वाद या उच्छेदन वाद (अजितकेश कम्बल का मत)[३४], अकृततावाद (पकुध कात्यायन का मत), चातुर्याम संवर (निगण्ठनाथ पुत्त का मत)[३५], अनिश्चितता-वाद (संजय बेलट्ठिपुत्त का मत)[३६] छः तीर्थंकरों के दर्शन प्रचलित थे।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ईश्वरवाद आत्मवाद[३७] और शाश्वतवाद ब्राह्मण दर्शन की विशेषतायें रही हैं। बुद्ध ने अनात्मवाद[३८], अनीश्वरवाद और क्षणिकवाद की स्थापना की थी। बुद्ध की मैत्री, करुणा और मुदिता[३९] से पूर्ण ब्रह्म विहार की अवधारणा आज भी विश्वशान्ति स्थापना के लिए पथ प्रशस्त करती है।

उत्तर भारत में फैले हुए गणराज्यों का प्रशासन और वाद विवादों का निर्णय गणपरिषद में होता था। विवादों पर भली भांति विचार-विमर्श के पश्चात् बहुमत के आधार पर निर्णय लिये जाते थे। परिषद की बैठक संस्थागारों[४०] में होती थी, जो आधुनिक विधान भवन के समान थे।

राजतन्त्रात्मक राज्यों तथा उनकी प्रशासन व्यवस्था का विवरण भी दीघ निकाय में प्राप्त होता है। यह मगध साम्राज्य की स्थापना का युग था, जिसके संस्थापक श्रेणिय बिम्बसार और सुधारकर्ता कुणीक अजातशत्रु[४१] ने अपनी विस्तारवादी नीतियों से पास-पड़ोस तथा दूरस्थ राज्यों पर विजय प्राप्त करके अपने राज्य में समाहित कर लिया। राज्योत्तपत्ति का 'महासम्मत सिद्धान्त' इसी ग्रन्थ में प्राप्त होता है।[४२]

शिक्षा और उसके केन्द्रों की रूप-रेखा का विवरण भी दीघ निकाय में प्राप्त होता है। शिक्षा साहित्य का उद्देश्य और आवश्यकता अज्ञानान्धकार को दूर करना था। गुरुकुलों[४३] में गुरु-शिष्य सम्बन्ध मधुर थे।[४४] पाठ्य विषयों में जहाँ धार्मिक शिक्षा साहित्य का महत्व था, वहीं लौकिक जीवनोपयोगी शिक्षा भी दी जाती थी। राजकुमारों को अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा भी दी जाती थी। ये शिष्य गुरुजनों को शुल्क प्रदान करते थे। निर्धन शिष्य शुल्क के बदले सेवा-सुश्रुषा करके उसकी पूर्ति करते थे। श्रावस्ती[४५], कौशाम्बी, वाराणसी[४६], कुशीनगर[४७] बोधगया[४८], वैशाली[४९] जैसे शिक्षा केन्द्रों के साथ-साथ कुछ प्रसिद्ध आचार्यों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

कला मनुष्य के जीवन का एक अभिन्न अंग रही है। कला विहीन पुरुष को बिना सींग और पूंछ वाला पशु कहा गया है।[५०] इसकी मानव के लिए आवश्यकता तथा बौद्ध दृष्टिकोण पर भी 'दीघ निकाय' से सूचना मिलती है। भगवान् बुद्ध के जीवन और उनके श्रेष्ठ विचारों ने चैत्य[५१], स्तम्भ, स्तूप[५२] और विहारों आदि के निर्माण के साथ-साथ भवन निर्माण कला को भी प्रभावित किया। इस साहित्य में वर्णित मूर्तियों, खिलौनों के अतिरिक्त चित्रकला पर भी प्रकाश पड़ता है।

नगर नियोजन और मूर्तिकला के क्षेत्र में बुद्ध और उनके अनुयायियों का विशेष महत्त्व रहा है। नगर सुरक्षा के लिए दुर्ग बनते थे; सुन्दर एवं भव्य प्रासादों का निर्माण होता था जिनमें सोने, चांदी, मणि तथा स्फटिक का भी प्रयोग होता था।[५३]

चिकित्सा एवं आयुर्वेद के प्रति बौद्ध दृष्टिकोण उदार था। भिक्षुओं के लिए दीक्षा के साथ साथ आयुर्वेद की शिक्षा भी दी जाती थी। इस अपने औषधीय ज्ञान से वे वनस्पतियों के द्वारा रोगग्रस्त दुःखी लोगों को निःशुल्क औषधि प्रदान करते थे। दीघ निकाय चिकित्सा एवं आयुर्वेदाचार्यों का भी वर्णन करता है। चिकित्सा शास्त्र के विषय में जीवक[५४] को कौन नहीं जानता ? शल्य चिकित्सा द्वारा शिशु उत्पत्ति, शिशुपालन पोषण एवं उन्हें स्वस्थ रखने के लिए विभिन्न प्रकार की औषधियां होती थीं। जीवक इस विद्या में पारंगत थे इसीलिए उन्हें 'कौमार भृत्य' कहा गया।[५५]

इस प्रकार दीघ निकाय से छठवीं और पांचवीं शताब्दी ई० पू० के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर महत्त्व पूर्ण प्रकाश पड़ता है।

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage

सन्दर्भ

१—दीघ नि० मू० (दुतियो-विभागो) १९३७, पृ० २ से ७ तक, सांकृत्यायन, दी० नि०, पृ० ९५-९६ १९७९,

२—भास्कर नाथ मिश्र, साँची १९८२, पृ० ४१

३—दीघ नि० मू० (दुतियो-विभागो) १९३७, पृ० ६७, सांकृत्यायन दी० नि० १९७९, पृ० १२२

४—दीघ नि० मू० (दुतियो-विभागो) १९३७, पृ० ९४, सांकृत्यायन दी० नि० १९७९, पृ० १३४

५—वही० पृ० २४५

६—दीघ नि० मू० (पठमो-भागो) १९४२, पृ० १०१, वही पृ० ३६, २४४

७—वही पृ० ११३, वही पृ० ४०

८—दीघ नि० मू० (दुतियो-विभागो) १९३७, पृ० २१, वही पृ० १०३

९—बाशम, ए० एल०, अद्भुत भारत १९६७, पृ० २८८

१०—दीघ नि० मू० (दुतियो विभागो) १९३७, पृ० १२५, सांकृत्यायन दी० नि० पृ० १४६, १६४, १६५

११—वही पृ० १२१, वही पृ० १४६

१२—दीघ नि० मू० (पठमो-भागो) १९४२, पृ० १३, वही पृ० ५

१३—अंगुत्तर निकाय जि० ४ पृ० ९१, पाद० टि० तथा जातक जि० २, पृ० ३४७

१४—सांकृत्यायन, दी० नि० पृ० १३३

१५—दीघ नि० मू० (दुतियो-विभागो) १९३७, पृ० ८१, सांकृत्यायन, दी० नि० पृ० १२७, भिक्षु धर्म रक्षित म० प० नि० सुत्र, संवत २०१५, पृ० ५२, ५३

१६—दीघ नि० मू० (दुतियो-विभागो) १९३७, पृ० ८१, सांकृत्यायन, दीघ० नि० १९७९ पृ० १२९

१७—कु० विद्यावती मालविका, आदर्श बौद्ध महिलाएं, बुद्धाब्द २४९९, पृ० ४९

१८—वही पृ० ५

१९—सांकृत्यायन, दी० नि० १९७९, पृ० १२६

२०—दीघ नि० मू० (दुतियो-विभागो) १९३७, पृ० १३४, सांकृत्यायन, दी० नि० १९७९ पृ० १५२

२१—लाल, ए० अश्वघोषकालीन भारत १९७३, पृ० १३

२२—महामंगल सूत्र

२३—'भुभुच्छता परमा रोगा', सांकृत्यायन, दी० नि० १९७९ पृ० २३५

२४—जगदिधताय बुद्धो हि बोधमाप्नोति शाश्वतम् ।
अत एव च जीवानां सर्वेषां तुहिते रतः ॥ बुद्धचरित १५/२८

२५—चरथ भिक्खवे, चारिकं बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देव मनुस्सानं,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

'.... ।' देसेथ भिक्खवे धम्मं, आदि कल्याणं, मज्झे कल्याणं परिओसान कल्याणं । दीघ नि० मू० (दुतियो-विभागो) १९३७, पृ० ३५ सांस्कृत्यायन, दी० नि० १९७९, पृ० १०८, दृष्टव्य-दत्त और बाजपेई उ०प्र० में बौ० ध० का वि० १९५६, पृ० २४

२६—दुक्खप्पत्ता च निद्दुक्खा, भयप्पत्ता च निब्भया ।
सोकप्पत्ता च निस्सोका, होन्तु सब्बेपि पापिनो ।।

२७—'यतोऽभ्युदय निश्रेयससिद्धिः स धर्मः'

२८—धम्मपद— सब्ब पापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा ।
सचित्त परियोदपनं, एतं बुद्धानुसासनं ।।

२९—सांकृत्यायन, दी० नि० १९७९, पृ० २३६

३०—अशोक का दूसरा, तीसरा और सातवाँ स्तम्भ लेख

३१—अवस्थी, ए० बी० एल० गरुण पुराण—एक अध्ययन

३२—सांकृत्यायन, दी० नि० १९७९, पृ० ५

३३—दीघ नि० मू० (पठमो-भागो) १९४२, पृ० ५७, ५२, सांकृत्यायन दी० नि० १९७९, पृ० १८, १९

३४—वही पृ० ५७, ६४, ६५, वही० पृ० १७, १९, २०

३५—वही पृ० ५८, ६७, ६८ वही पृ० १८, १९, २०

३६—वही पृ० ५८, ६९, वही पृ० १८, २२

३७—सांकृत्यायन, दी० नि० १९७९ पृ० ७२

३८—वही पृ० ११०, दत्त और बाजपेई उ०प्र० में बौ० ध० का वि० १९५६ पृ० १५३

३९—दीघ नि० मू० (पठमो-भागो) १९४२, पृ० २८४, सांस्कृत्यायन, दी० नि० पृ० १९७१, पृ० ९१

४०—वही पृ० १०२, वही पृ० ३५, १४७, २८१

४१—दीघ नि० मू० (दुतियो-भागो) १९३७, पृ० ५९, वही पृ० ११७

४२—सांकृत्यायन, दी० नि० १९७९, पृ० २४४

४३—वही पृ० ३५

४४—सांकृत्यायन, बुद्ध-चर्य्या १९८८, पृ० ५०

४५—सांकृत्यायन, दी० नि० १९७९, पृ० ६७, ७६, ९५, १२४, १४३, १५२, १८३, २४०, २६०

४६—वही पृ० १४३

४७—वही पृ० १४३, १४७, १५२

४८—वही पृ० १४१

४९—वही पृ० ५६, ११९, १२७, १२८, १२९, १३०, २१८, २२०, ३७९

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization

५०—साहित्य संगीत कला विहीनः ।
साक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः ।। भर्तृहरि
दृष्टव्य लाल, ए०, अश्वघोष कालीन भारत १९७३ पृ० १६४

५१—सांकृत्यायन दी० नि० १९७१, पृ० १३०, १३३, १३४, २१८

५२—वही पृ० १५०, १५१

५३—वही पृ० १५६

५४—दीघ नि० मू० (पठमो-भागो) १९४२, पृ० ५६, सांकृत्यायन, दी० नि० १९७९, पृ० १६, १८

५५—वही पृ० ५६, वही पृ० १६

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage

निवेदन

१ यह पत्रिका उत्तर प्रदेश के संग्रहालयों एवं पुरातत्व से सम्बन्धित सभी विषयों पर लिखे गये शोध-पत्रों का स्वागत करती है।

२ लेख हिन्दी या अंग्रेजी में लिखे जा सकते हैं।

३ लेख भेजने के पूर्व लेखक निम्नलिखित बातों पर विशेष रूप से ध्यान देने की कृपा करें---

अ संक्षेप चिन्हों का पूर्ण स्पष्टीकरण पहली वार प्रयोगित सन्दर्भ में हो।

ब चित्र और रेखाचित्र के शीर्षक हल्की पेन्सिल से उनके पीछे अंकित हों। उनके शीर्षकों की एक प्रति अलग से लेख के साथ भी नत्थी रहे। इसी प्रकार चित्रों का ऊपरी हिस्सा (टाप साइड) भी चित्र के पीछे अंकित हो। ब्लाक्स के लिए छाया चित्र उत्तम कोटि के हों।

स चित्र, रेखाचित्र या अन्य सहायता के लिए आभार-प्रदर्शन सन्दर्भों के प्रारम्भ के पहले अंकित किया जाना चाहिये।

द संदर्भ सम्पूर्ण लेख के अन्त में संख्याक्रम से दिये जायेंगे।

४ लेख, चित्र एवं रेखाचित्र आदि के चयन के विषय में कार्यकारी सम्पादक का निर्णय अंतिम होगा।

५ लेखों में प्रदर्शित मतों के लिए सम्पादक मण्डल उत्तरदायी नहीं है।

६ अस्वीकृत लेख तभी वापस भेजे जायेंगे जब उनके साथ लेखक द्वारा उचित मात्रा में डाक टिकट भेजे गये हों।

७ लेख प्रकाशित होने पर लेखक को पत्रिका के अंक की एक प्रति तथा उसके लेख की २५ प्रतियां भेंट की जायेंगी।

८ लेख कागज के एक ही ओर दोहरे स्पेस में सुस्पष्ट अंकित हों।

९ पत्रिका में प्रकाशित लेख, चित्र या छाया चित्र पूर्ण रूप से पुनः मुद्रित करने के लिए पूर्वानुमति लेना आवश्यक है।

१० पत्रिका सम्बन्धी सभी प्रकार के पत्र व्यवहार कार्यकारी सम्पादक, संग्रहालय-पुरातत्व पत्रिका, राज्य संग्रहालय, लखनऊ—२२६००१, के पते पर किया जाय। फोन---२३५५४२

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

TABLE OF TRANSLITERATION

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए
a	ā	i	ī	u	ū	e
ऐ	ओ	औ	अं	अः	ऋ	ऌ
ai	o	au	ṁ	ḥ	ṛ	ḷ
क्	ख्	ग्	घ्	ङ
k	kh	g	gh	ṅ
च्	छ्	ज्	झ्	ञ
ç	ch	j	jh	ñ
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्
ṭ	ṭh	ḍ	ḍh	ṇ
त्	थ्	द्	ध्	न्
t	th	d	dh	n
प्	फ्	ब्	भ्	म्
p	ph	b	bh	m
य्	र्	ल्	व्	श्
y	r	l	v	ś
ष्	स्	ह्	क्ष्	त्र्
ṣ	s	h	kṣ	tr
ज्ञ	
jñ	

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva

MUSEUM PUBLICATIONS FOR SALE

	Books	Authors	Price Per Copy Rs. P.
1.	Catalogue of Brahmanical Sculptures in the State Museum, Lucknow, Part I	Dr. N. P. Joshi	26.00
2.	Catalogue of Gandhāra Sculptures in the State Museum, Lucknow	Dr. N. P. Joshi & Sri R. C. Sharma	17.35
3.	Catalogue of Indo-Greek Coins in the State Museum; Lucknow	Dr. A. K. Srivastava	9.75
4.	Catelogue of Śaka Pahlava Coins of Northern India in the State Museum, Lucknow	Dr. A. K. Srivastava	16.00
5.	Supplimentary Catalogue of Mughal Coins in the Sate Museum, Lucknow	Sri C. R. Singhal	20.00
6.	Coins Hoards of Uttar Pradesh in the State Museum, Lucknow, Vol. I	Dr. A. K. Srivastava	27.00 (Bound) 22.00 (Paper back)
7.	Art in the Gupta and Post-Gupta Coinages of Northern India	Dr. B. N. Mukherjee	70.00
8.	Sculptures in Jhansi Museum	Dr. S. D. Trivedi	80.00
9.	The Jarai Temple at Barua Sagar	Dr. S. D. Trivedi	100.00 Lib. Ed.
10.	Brahmanical Sculptures in the State Museum, Lucknow, Part 2 Vol. I	Dr. N. P. Joshi	250.00
11.	—do— Part 2 Vol. II		200.00
12.	Masterpieces in the State Museum, Lucknow	Dr. S. D. Trivedi	200.00
13.	Glimpses of the Arts of Avadh	Asfaq Ahmad Khan	20.00 Library Editior. 5.00 Readers Editior

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Research Journals

		Rs. P.
Builetin of Museum & Archaeology in U. P.		
Nos. 11–12 to 18		3.00 (Per No.)
Nos. 19-20 June-Dec. 1977 (Joint issue)		10.00
Nos. 21-24 June 1978—Dec. 1979 (Joint issue)		20.00
Nos. 21-24 Krishna in Art (Delux Library Edition)		60.00
No. 25 Index Issue June 1980		6.00
No. 26 Decorative Art Dec. 1980		6.00
Nos. 27-28 June-Dec. 1981 (Joint issue)		10.00
Nos. 29-30 ,, ,, 1982 (,, ,,)		10.00
No. 31 June 1983		6.00
No. 32 Dec. 1983		6.00
Nos. 33-34 June-Dec. 1984 (,, ,,)		10.00
Nos. 35-36 ,, ,, 1985 (,, ,,)		10.00
No. 37 June 1986		6.00
No. 38 Dec. 1986		6.00
No. 39 June 1987		6.00
No. 40 Dec. 1987		6.00
Nos. 41-42 June-Dec. 1988	(Paper back)	20.00
Nos. 41-42 June-Dec. 1988	(Special Issue)	100.00
Nos. 43-44 June-Dec. 1989	(Paper back)	20.00
Nos. 45-46 June-Dec. 1990		10.00

Note : Prices are liable to change : Postage extra. Attractive terms for Booksellers. Contact the Director, State Museum, Lucknow-226 001. Phone No. 35542.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization

GLORIES OF GAYA

GLIMPSES OF HISTORY AND ARCHAEOLOGY

Edited by

Upendra Thakur
Naseem Akhtar
Naresh Banerjee

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Dig

42ND IHC, MU

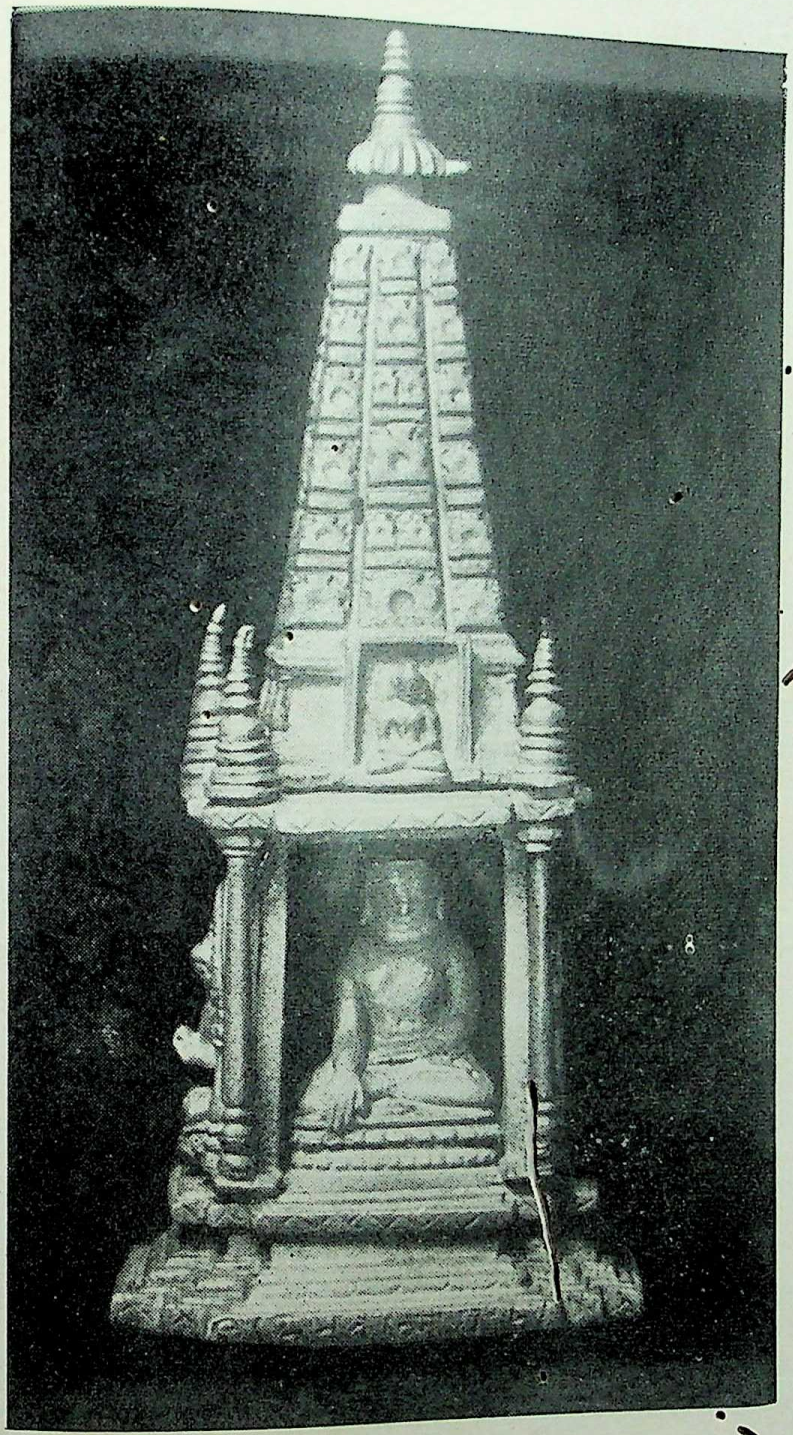

Miniature Mahabodhi Temple
Bronze, 11th Century AD
Gaya Museum

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

GLORIES OF GAYA

Glimpses of History and Archaeology

42ND INDIAN HISTORY CONGRESS SOUVENIR

Edited by

Upendra Thakur
M. A., D. Phil,
Professor and Head,
Department of Ancient Indian and Asian Studies,
Magadh University, Bodh Gaya

Naseem Akhtar
M. A. (Gold Medalist)
BIHAR EDUCATION SERVICE
Curator, Gaya Museum, Gaya

Naresh Banerjee
M. A., Ph. D., Dip. UNIU.
Department of Economics
Gaya College, Gaya

MAGADH UNIVERSITY
BODH GAYA, BIHAR
Dec. 28, 29, 30, 1981

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Editors are not responsible for
the views expressed by the contributors

December 1981

Published by
Dr. Upendra Thakur
Local Secretary, IHC
Magadh University, Bodh-Gaya

Printed by
Umesh Agrawal
Standard Printers, Gaya

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

Sri Neelam Sanjiva Reddy
President of India

Dr. Jagannath Mishra
Chief Minister
Bihar

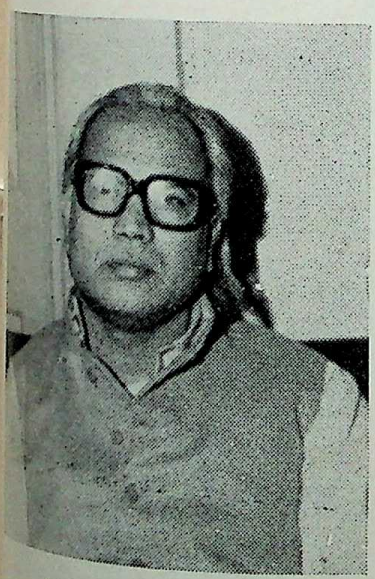

Dr. K. K. Mandal
Vice-Chancellor, MU
Chairman,
Reception Committee

Dr. S. B. Singh
Pro - V. C., MU
Deputy Chairman,
Reception Committee

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

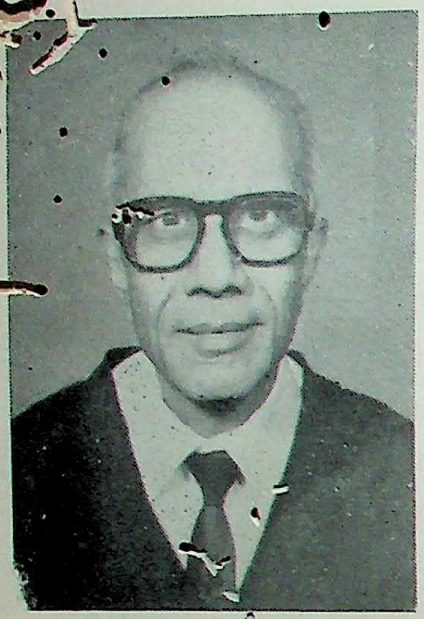

Dr. S. C. Mishra
President Elect
42nd Session IHC

Dr. Sumit Sarkar
Secretary, IHC

Dr. Upendra Thakur
Local Secretary

Dr. R. N. Prasad
Joint Local Secretary

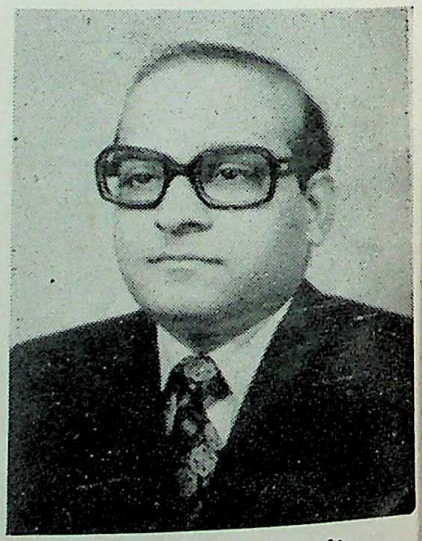

Dr. K. M. Shrimali
Treasurer, IHC

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

Press Secretary to the President

President's Secretariat
Rastrapati Bhawan
New Delhi-110004

No. F. 2 - M / 81

November 26, 1981

Please refer to your letter dated the 17th November 1981. The President of India is glad to know that the 42nd Session of Indian History Congress is being held at Magadh University, Bodh Gaya from the 28th December, 1981. The President sends his greetings to the organisers and the participants and best wishes for the success of the Session.

K. Suryanarayana

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

VICE - PRESIDENT
INDIA
NEW DELHI

26th November, 1981

I am glad to learn that the 42nd Session of the Indian History Congress will be held at Magadh University, Bodh Gaya from 28th to 30th December, 1981 and a Souvenir ' Glories of Gaya : Glimpses of History and Archaeology" will be published on that occasion. I send my best wishes for the success of the publication and the deliberations of the Congress.

M. Hidayatullah

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

CHIEF MINISTER, BIHAR

PATNA

11 - 12 - 81

I am happy to know that Magadh University is hosting the 42nd Session of Indian History Congress from December 28 to 30 next.

It is in the fitness of things that Bodh Gaya, which has had a glorious past, should be chosen as the venue of the Indian History Congress. Its association with Lord Budha has carved out for it, a place of unique distinction in the history of world thought and culture.

I wish the congress great success.

(Dr.) Jagannath Mishra

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

WELCOME

Chairman, Reception Committee
42nd IHC

The Magadh University feels honoured by hosting the 42nd Indian History Congress from December 28 to 30, 1981.

I take this opportunity to welcome the delegates to this holy land of Buddha and hope that we shall be able to provide them the necessary hospitality, making their stay comfortable and memorable.

The history of Magadha had always had its impact on the history of India. Political emancipation of India had practically begun from this part of the country. The great enlightenment of Buddha in this region has worked as a motive force for spreading the message of peace and love throughout the world. Besides being a centre of religious unity, Gaya has been a seat of great ancestoral worship.

This meet offers a symbolic opportunity to our learned scholars for contributing new ideas to the history of India and other parts of the world.

I wish the Conference all success.

Dr. K. K. Mandal
Vice - Chancellor, MU
Bodh Gaya

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

WELCOME

Local Secretary
42nd IHC

The Magadh University is going to step into its 20th year of glorious existence. And with this, we are going to add a new chapter in the history of its birth and development.

The 42nd Indian History Congress, which our University is hosting is likely to open a new dimension in the field of historical research.

Selection of Bodh Gaya as a place for the grand meet is quite appropriate. Besides being associated with the enlightenment of Lord Buddha, Bodh Gaya today offers a unique phenomenon of religious faiths and cultural beliefs. Obviously, the delegates coming to this holy land are expected to find their stay very pleasant and delightfully satisfying.

We have put in all resources at our disposal to make their stay comfortable. We are equally conscious of the shortcomings. A small place like this can not provide the modern amenities to the level desirable. However, we believe, this will not dampen the spirit in which we are going to meet.

It is a proud privilege for me to have been given the onus responsibility for organising the congress.

I welcome my friends and assure them all co-operation from the organising committee.

Upendra Thakur
Professor and Head
Ancient Indian and Asian Studies
Magadh University
Bodh Gaya.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGang

42ND IHC
NT

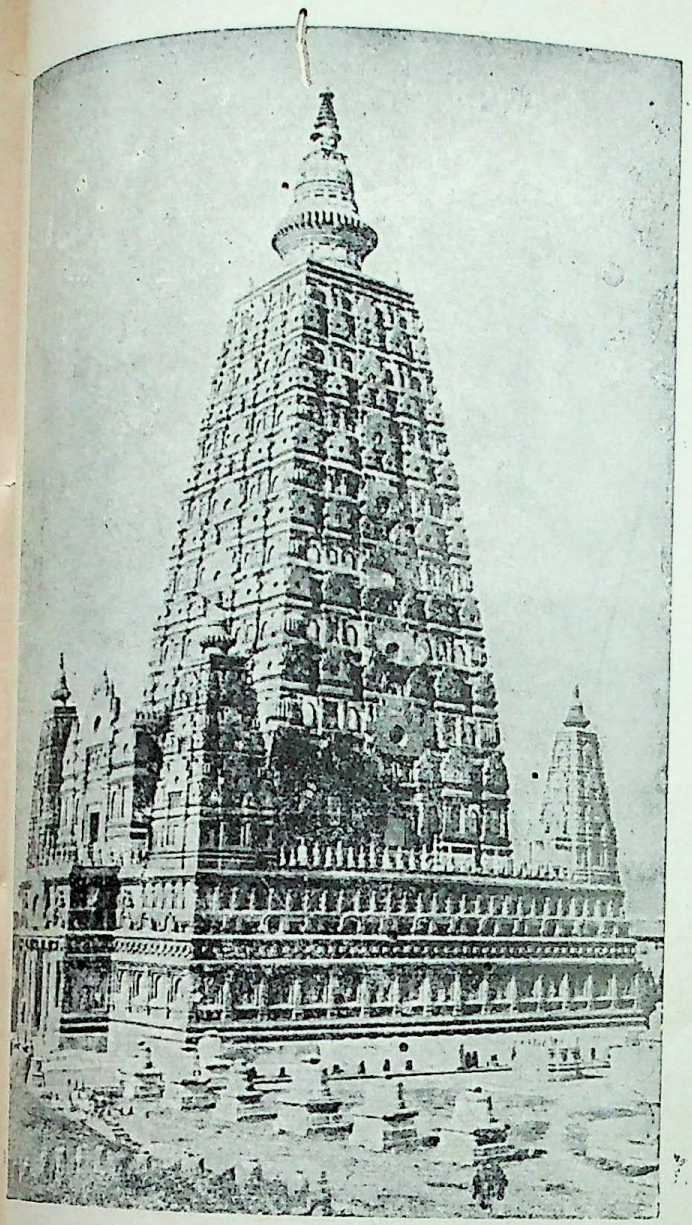

Mahabodhi Temple,
Bodh Gaya

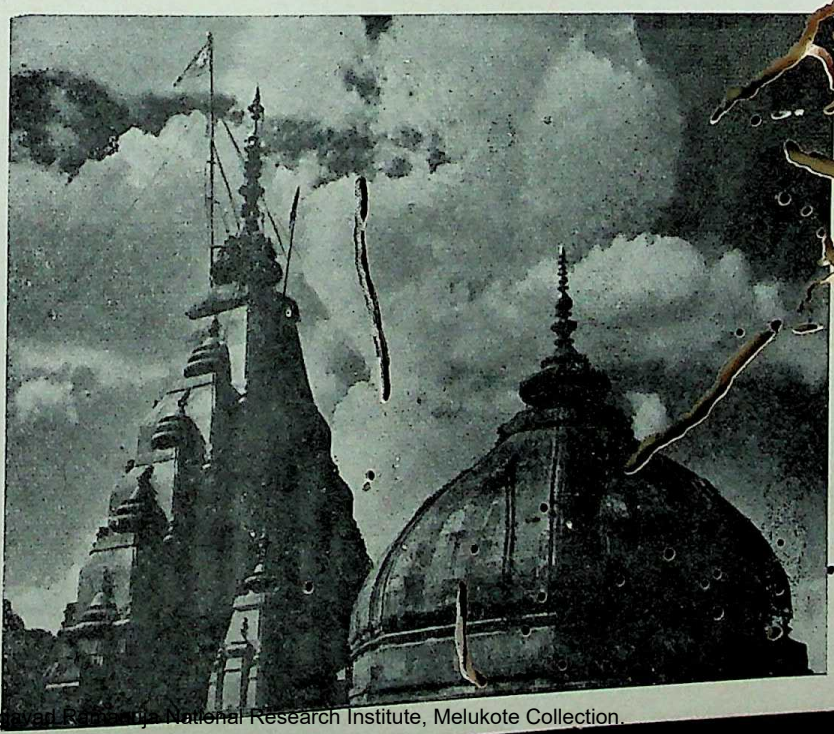

Vishnupada Temple
Gaya

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri
42ND IHC, MU

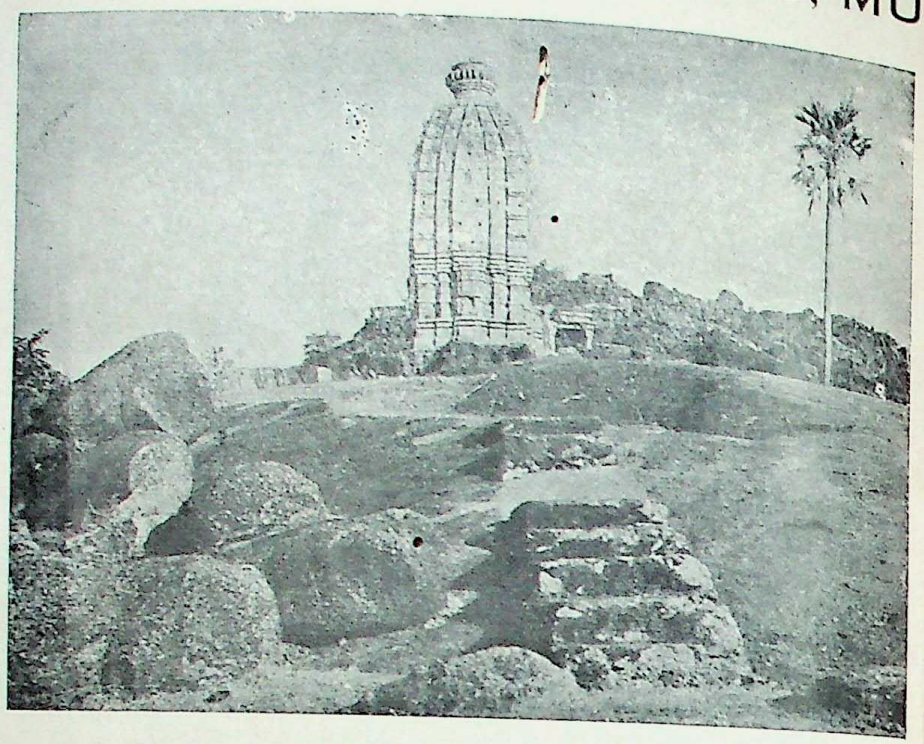

Umga Temple,
14th - 15th Century
A. D.

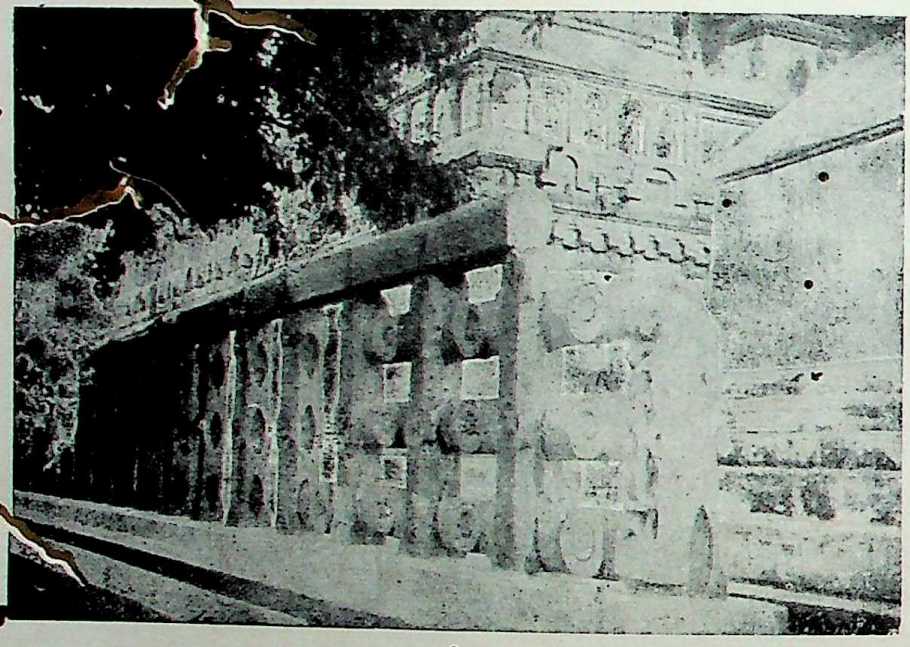

Railing,
Bodh Gaya

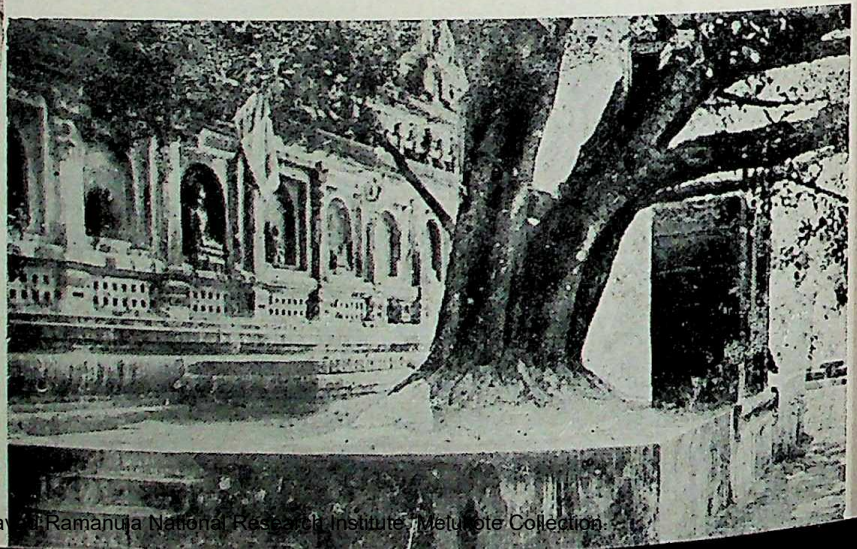

Bodhi Tree,
Bodh Gaya

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mellukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

42ND IHC, MU

Avalokiteshvara, 10th Century AD
Naradah Museum Nawadah

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

42ND IHC, MU

Harihara, 11th Century AD
Naradah Museum, Nawadah

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Vishnu, Stone, 11th Century A. D.
Gaya Museum

Kamadeva with Rati and Trisha, Stone, 10th Century A. D.
Gaya Museum

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

42ND IHC, M

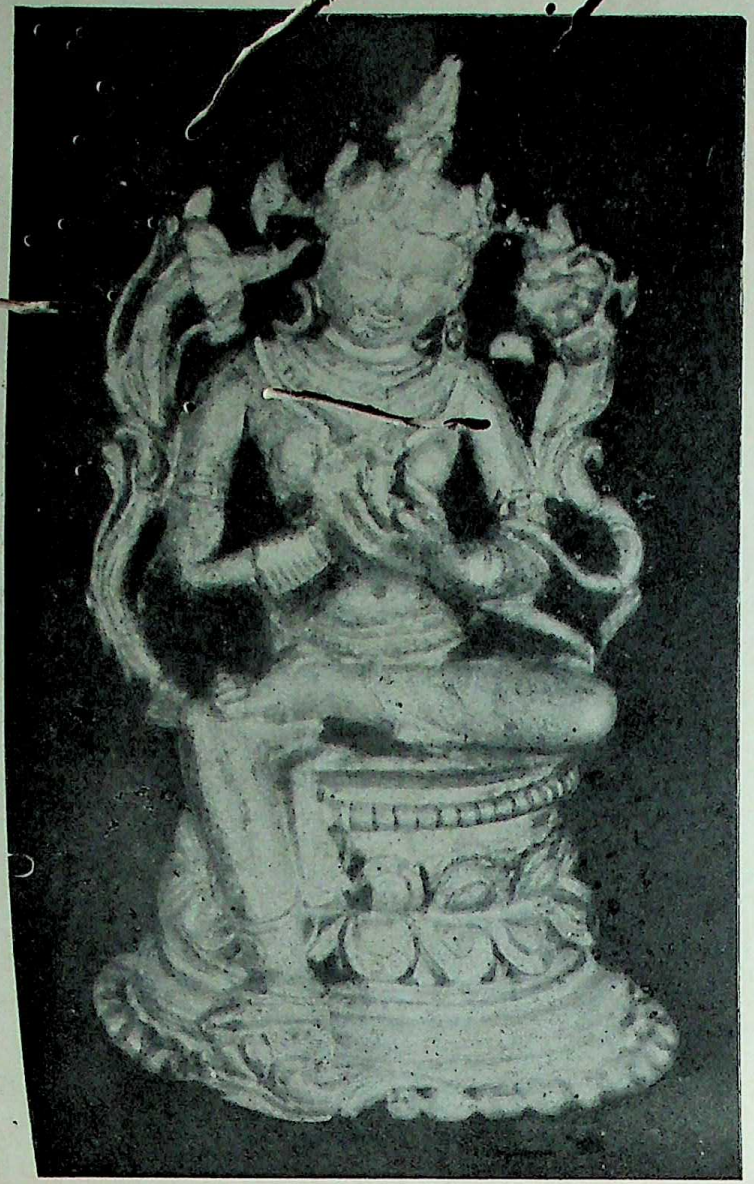

Mahashri TARA, Bronze, 10th-11th Century AD
Gaya Museum

Buddha, 9th Century AD
Gaya Museum

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

CONTENTS

Message	...		
Welcome	...	K. K. Mandal	
Welcome	...	Upendra Thakur	
Contributors	...		
Editors' Note	...		XI
Gaya : The Land of Peace and Glory	...	Upendra Thakur	1
Gaya Through the Ages	...	Radhakrishna Chaudhary	4
Gaya Under the Governorship of Raja Man Singh	...	R. N. Prasad	17
Gaya in 1857 - 58	...	Shyam Bihari Singh	20
Gaya Tirtha	...	M. Pathak	27
On Vishnupada of Gaya	...	K. Chaudhary	31
A Religious Study of Gaya	...	M. M. Chakraverty	41
Gaya : A Place of Hindu Pilgrimage	...	Yugal Kishore Mishra	51
Early Economy of Gaya	...	Md. Aquique	53
Ancient Remains and Antiquities of Gaya	...	Krishna Kant Sharma	57
Archaeological Sites in Gaya : Recent Discoveries	...	Sarjug Prasad Singh	60
Archaeological Excavations in Gaya : A Picture Emerges	...	Naseem Akhtar	70
A Note on the Date of the Mahabodhi Temple	...	Vijay Kumar Thakur	76
culptures of Gaya	...	Parvez Akhtar	81
Gaya : Centre of a Tourist Complex	...	Naresh Banerjee	85
Kurkihar in Archaeological Perspective	...	Pranesh Kumar Sinha	91
Magadh University : Venue of Congress	...	Naresh Banerjee Naseem Akhtar	93
Committees			
Photographs			
Plates			
Maps — 1) Gaya Tourist Complex			
2) Gaya - Bodh Gaya Road Guide			

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CONTRIBUTORS

K. K. Mandal, M. A., Ph. D., Vice-Chancellor, Magadh Universiry, Bodh Gaya.

Upendra Thakur, M. A., D. Phil., Professor and Head, Department of Ancient Indian and Asian Studies, M. U.

Radhakrishna Chaudhary, M. A., Department of History, Bhagalpur University.

R. N. Prasad, M. A., Ph.D., Formerly Professor and Head, Department of History, M. U.

Shyam Bihari Singh, M. A., Ph. D., Pro-Vice-Chancellor, M. U.

M. Pathak, M. A., Head, Department of Geography, M. U.

K. Chaudhary, M. A., Ph. D., Head, P. G. Department of Ancient Indian History, Archaeology and Culture, T.D. College, Jaunpur.

Mathura Mohan Chakravarty, Art Critic, Gaya.

Yugal Kishore Mishra, M. A., Ph. D., Department of Ancient Indian and Asian Studies, M. U.

Md. Aquique, M. A., Ph. D., Department of Ancient Indian and Asian Studies, M. U.

Krishna Kant Sharma, M. A., Directorate of Archaeology and Museums, Bihar, Patna.

Sarjug Prasad Singh, M. A., Ph. D., BES, Registering Officer, Directorate of Archaeology and Museums, Bihar, Gaya.

Naseem Akhtar, M. A., BES, Department of Archaeology and Museums, Bihar, Curator, Gaya Museum, Gaya.

Vijay Kumar Thakur, M. A., Department of History, Patna University, Patna.

Pranesh Kumar Sinha, Research Scholar, AIAS, M. U.

Parvez Akhtar, M. A., Research Scholar, Department of Ancient Indian History and Archaeology, Patna University, Patna.

Naresh Banerjee, M. A., Ph. D., Dip. UNIU, Department of Economics, Gaya College, Gaya.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: CC-0.

EDITORS' NOTE

The Glories of Gaya is in your hands. The 42nd Session of Indian History Congress being held at Bodh Gaya from December 28 to 30, 1981, offers us the rare opportunity to bring out a publication on Gaya that can satisfy the intellectual curiosity and, at the same time, place on record such information which can help further studies.

This Souvenir is primarily a record of some aspects of history and archaeology of Gaya.

With a growing awareness for regional studies, this publication is likely to give further impetus to regional and case studies which, we believe, have not yet been covered widely in different branches of research. It is interesting to recall that Gaya Itihas Parishad was formed in 1947 with an idea to write a regional history of this area. However, the programme appeared to have not materialised. Regional studies have a definite purpose. It helps in focusing the attention on such aspects of academic pursuits which otherwise are not usually considered seriously. Secondly, such studies help the planners in laying down the future programmes for coordination and development.

We have included in our study the old district of Gaya which now forms the geographical area of Magadh Division. For such studies, it may not be considered aptly justified to move around some definite geographical lines. This has prompted us to include the article on tourist complex of Gaya. Even in other articles reflections on old Magadh region and culture can be traced. In fact, the adjoining areas of Magadh Division are so neatly associated with the past and present of this part of Bihar that it is difficult for anybody to desist from making reference to such places.

The articles in the Souvenir give a fair idea of even such allied topics on which no seperate articles have been included. The order of the articles has been to give first preference to the political and religious history, then to economy and lastly to archaeology and allied matters.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The Souvenir, thus, is an abridged version of what can be known as the History and Archaeology of Gaya.

This region has been the centre of cultural activities since time immemorial. It was the nerve centre in the history of Magadha and was also a seat of asceticism, a remarkable characteristics since the days of Kassapa brothers.

It may not be out of place to record here that Sonpur in Gaya is the first place in eastern India where one of the earliest evidences of a settled village life has been discovered. Iron, which decisively contributed to the rise of cities, large scale agriculture and in the emergence of Magadha as a powerful unifying force in northen India. was possibly introduced in this area as is evident from the Sonpur findings.

It appears from later development that the whole region around Gaya had been a sacred zone. The quiet environment of this place might have prompted the ascetics to settle down around here, which is clear from the excavation of earliest rock-cut caves at Barabar-Nagarjuni hills and Sitamadhi. Since the days of Buddha, the area might have enjoyed peace and serenity, leading to the visit of many saints. This sacred zone inspired Gautam Buddha, Vardhamana Mahavira, Chaitanya Mahaprabhu, Vijay Krishna Goswami and others to meditate here. This is also the spiritual birth place of Ramkrishna Paramahansa.

It may be presumed that the sacredness of this zone led to the belief that the ancestral worship would be the natural corolary to freeing the soul from the Hell of Yama to the Paradise of Vishnu.

The establishment of Magadh University at Bodh Gaya in 1962 has encouraged advance studies and research. A meet like the Indian History Congress could not have been possible but for the ready cooperation that has come from the authorities and staff of the university. We shall be failing in our duties if we do not mention the names of Dr. Jagannath Mishra, Chief Minister of Bihar, and Dr. K. K. Mandal, Vice-Chancellor of Magadh University who have been taking immense interest in organising the meet and in bringing out this publication. The Bihar Government has equally been helpful.

We also acknowledge the cooperation extended by Sri Umesh Agrawal of the Standard Printers, Gaya, for bringing out this Souvenir in time.

Bodh Gaya
28-12-1981

UT
NA
NB

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

UPENDRA THAKUR

GAYA : THE LAND OF PEACE AND GLORY

Like all other ancient historical places the antiquity of Gaya also is shrouded in obscurity. Its name does not occur in the Vedas, but it is mentioned in later works the *Ramayana* and the *Mahabharata*. The Samhitas or religious codes of Atri, Vasistha and Yajnavalkya recognise Gaya as a place where the offering of *Pinda* is gratifying to the manes. This unique eminence Gaya holds in the Hindu mind to the present day, the *Pitripaksha* or dark fortnight of the month of Asvin (generally. September) being held most propitious for the ceremony.

It was during the ascendency of Buddhism in Northern India that Bodhgaya, about eight miles away from Gaya city drew votaries from far and near while Hindu Gaya or *Brahama Gaya*, as Abul Fazl later called it, was of little note. Fa-hien, who visited India in the fifth centurry A. D. wrote that "inside the city was all emptiness and desolation" and Hiuen Tsang, who visited Gaya in the seventh century, said nothing about it. Even in the eighth century Gaya had no place among the sacred cities of India.

The rise of Gaya dates from the time of the Guptas who were ardent Vaisnavas. The earliest Gupta plate discovered so far, viz. that of Samudragupta's time, had a Garuda seal and relates to Gaya Visaya. The grants in Gaya Visaya of the earlier Pala kings who were staunch Buddhists were however in favour of Buddhist establishment as shown by the two copper-plates of Dharmapala and Devapala found at Nalanda. But, from the time of the fifth king of the Pala dynasty who bore the pronounced Vaisnava name of Narayanapala, almost all the inscriptions of the Pala period, discovered at Gaya, record the erection either of Suryan or Vaisnavite structures.

Although these inscriptions prove the prevalence of Visnu worship at Gaya, they throw no light either on the legend of Gayasura or Visnupada or the present sanctity of Gaya as a place propitious for the offering of Pinda to the manes.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The legend has been interpreted as an allegory of the triumph of Hinduism and the Visnupada as an object of worship of the Buddhists appropriated by the Hindus. It is true, at some of the outlying shrines, notably on the Pretasila hill, and at the Matangesvara temple in the doab, east of Bodhgaya, the relics of the two faith commingle, but we have almost negligible trace of Buddhism in the shape of images and inscriptions in the town of Gaya itself as we find scanty remains of Brahmanism at Bodhgaya. From the inscriptions found at the two centres it is clear that they flourished side by side from the ninth to twelfth century and then fell together before the Turkish invasion.

It was probably at the end of the eighteenth century, when there was a revival of Hinduism that Gaya was given a place among the five spots of northern India sacred to the manes with the present legend of its origin. The current authority for this is *Gaya-mahatmya* which is but an appendix of the *Vayu Purana* and given in abridged forms in *Agni* and *Garuda Puranas*. The shrine of Gayasura, at which Pindas are offered, stand in the road to the cremation ground and the *Pitha* is represented by an image of two armed Visnu crudely carved on a rock.

The dilapidated Buddhist shrine of Bodhgaya, about eight miles south of the town of Gaya, comprises the Bodhi Tree under which the Buddha is said to have attained enlightenment, the *Vajrasana* or his seat under that Tree, and the Mahabodhi Temple and its railing which are said to date from the time of Asoka. A vast number of Votive stupas, images and ruined structures lie round about them.

The name Bodhgaya came into prominence at the time of Amara Deva as it is first found in his inscription. The original name was Sambodhi, which appears in the eighth rock edict of Asoka. This afterwards changed to Mahabodhi, as we find in later inscriptions, and in the "Mo-ho-pu-ti" Vihara of Hiuen Tsang. The Buddhist literature of Ceylon, Burma and China abound in references to this greatest of all Buddhist shrines.

A sacred place of pilgrimage, a unique centre of Buddhist learning and a most ancient seat of Vajrasana, and a symbol of enlightenment, sublimity, serenity and compassion, Bodhgaya is a name to conjure with in the history of human thought and culture. It is a place where the great Buddha attained the supreme knowledge and enlightenment and taught the suffering humanity the four noble truths and the ways of *Nirvana* leading to the ultimate redemption of the tormented soul from the bondage of selfish cravings and utter agonies of miserable existence. It is a place where the restless Sankara, the great Advaitist, contemplated for days and nights and found divine solace and peace. Thus hallowed by the memory of the great seers and sanctified by the divine teachings of the great Lord, Bodhgaya constitutes a standing monument to the unbounded wisdom, splendid glory and grandeur of India's past.

The Mahabodhi Vihara, popularly known as the Bodhgaya Temple, has been the centre of attraction of both the devotees and laymen through the ages. One of the most interesting and impressive religious buildings in India, it is a unique memorial and perhaps the oldest and most venerable of its kind. Manya

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Dig

temple, not only in India but also in Burma and Nepal, has been modelled on its pattern.

The story of the erection of this great temple is equally interesting. The honour for the erection of the first temple goes to Asoka, the apostle of peace, nonviolence and benevolence. The original temple underwent successive repairs in different periods and there are still two sculptured representations of the Asokan temple with the holy Pipal tree behind it, shedding devine lustre over its peaceful surroundings.

The legend goes that the present imposing temple was set up sometimes in the second century A. D. by a Brahamana convert to Buddhism who was practising penance at Kailasa. One day he received a divine communication from Lord Siva to erect a large Vihara by the side of the Bodhi Tree which still exists to the south of the temple. In the beginning of the fifth century the place was visited by Fa-hien who saw the three monasteries standing to the north of the temple, and later also by Hiuen Tsang the great Chinese Buddhist Master of Law, as well as a host of other Buddhist devotees from the different countries of Asia. The monasteries were built in the fourth century by Meghavarman, the Buddhist king of Ceylon, with the permission of the mighty Indian monarch, Samudra Gupta.

Many additions and restorations were effected in the succeding periods. The temple has seen many ups and downs in its long life and the period between A. D. 600-620 witnessed the worst calamity in its history when the Pipal tree was entirely uprooted and the image of the Buddha concealed by a wall built by Sasanka, the powerful king of Bengal and a staunch opponent of Buddhism. The tragedy was however, soon over and another massive addition was made to the buttress forming a great niche in the middle, by the Burmese in the eleventh century. The last addition consisted of two square buttresses, one on each side of the great central buttress.

In the following century repairs were carried out by Dharmaraksita, a Bhikshu, the cost of which was brone by Asokaball the king of Sapadalaksa (Siwalik hills). Another work of restoration was undertaken by the Burmese in about the same period and in the beginning of the nineteenth century it was also visited by the king of Burma.

The modern history of the temple begins from the end of the nineteenth century when the king of Burma wrote a letter to the Government of India seeking permission to restore the temple and also to construct a monastery for the Buddhist monks, which was readily granted. In recent times also several restorations and additions have deen made to the original temple.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

RADHAKRISHNA CHAUDHARY

GAYA THROUGH THE AGES

Gaya, the shrine eternal, represents an amalgam of prehistoric and historic periods. As a part of Magadha, it remained outside the pale of Aryanism and was associated with the culture of the Vratyas. Though not specifically mentioned in the Vedas, it is mentioned in the *Nirukta, Ramayana* and the *Mahabharata*. As one of the greatest places of pilgrimages, the sanctity of Gayasradha is based upon a legend in the *Gayamahatmya*. Yajnavalkya, Vasistha and Atri recognise Gaya as a place of offering *Pinda* at Pretasila. According to *Gayamahatmya*, God granted Gayasura's request for being the holiest. Sankaracarya gave Gaya the Place of honour

Gaya records a fusion of faiths and has the proud privilege of being the meeting place of Hinduism and Buddhism. It presents a nucleus of several religions like Hindunism, Buddhism, Jainism etc. and represents a fusion of faith. As a cosmopolitan centre, it represents a sacred place carrying in its tradition the imprints of the Vratyas, Aryans, Buddhists and Brahmanical cultures. The famous Buddhist scholar, said to be hailing from Gaya, Buddhaghosha was well up in Vedic lores and had drunk deep at the fountain of Patanjali. The *Bodhi* Tree is an object of worship for the Hindus also. *Asvatha* represents the tree of life and symbol of Vitality. Buddhism represented the dynamic energy and expansive form of culture. The mingling of Buddhism and Hinduism came under the broad canopy of the all embracing city of Gaya.

Though Fahien and Hiuentsang donot say anything about the *Gayasradha*, the fact remains that Gaya had acquired a religious status both for the Hindus and the Buddhists. It was also an important centre of Saivism and from the Pala records it is evident that Saivism was flourishing side by side with Buddhism without any feeling of enemity. *Gaya inscription* of Dharmapala shows that the Buddhists allowed the Hindus to instal the figure of Siva and Brahma. By the ninth century A.D, the sanctity of Gaya as a *tirtha* had been revived and temples began to be raised. By the ninth century A. D., it acquired Pan-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

Indian celebrity. An inscription of the 10th century A. D. near Akshayavata traces the origin of *Pinda* offering at Gaya. An inscription of Vajrapani (1060 A. D.) boasts of raising Gaya to a big city. We learn from the *Prapitamaheshwara Temple inscription* (1242 A. D.) that persons from the north-west had come to worship at Gaya. From twelfth century onward, we have records of visits of pilgrims from outside. The *Gayasura* myth had obtained some currency by that time. The *Saktipura Grant* of Laksmanasena refers to *Gayali* priests. The worship of the footprint of the Vishnu image at Gaya symbolically represents the stepping of Vaishnava deity on the stone of virtue pressing the upper part of the body of Gayasura. All these go to prove the provenance of Vaishnavism in Gaya. It is believed that Vishnupada became a place of pilgrimage as early as the fourth century A. D.

The Vishnupada temple is one of the most sacred of all the Vaishnava temples of India. There are also temples of *Narsimha, Gadadhara Vishnu, Krishnadwarka,* Sun and others. Vishnu and Sun temples made Gaya rather unique to the Hindu world. The present Vishnupada temple was made by Ahalya Bai (18th Century A.D.) and a minister of Nepal presented a bell to the temple. Francis Gillanders, a collector of Pilgrims of Gaya (1790), presented a second bell to the temple. His body is buried near the foot of the Ramashila. There are a large number of inscriptions in the campus of the Vishnupada temple ranging from the 9th to the 18th century A. D.—recording donations from different parts of the country.

According to a legend, Amurtarayas, son of Kusha, king of Kanyakubj, descended from the Pururavas. His son Gaya reigned in Gaya district but his dynasty was overthrown by Vasu. Gaya owes its origin to a demon king Gayasura. The details about the sanctity of Gaya are found in the *Gayamahatmya* which forms a part of the *Vayupurana* and is found in the abridged form in the *Agni* and the *Garuda Puranas*. The *Gayamahatmya* can not be placed earlier than the 12th-13th century A. D. Gaya played an important role in the evolution and development of civilzation. Gaya figures prominently in the Buddhist literature. Buddhaghosh takes to mean Gaya just to mean *Gayagrama, Gayakshetra* was a district region and three Buddhist division of Gaya were derived from the names of three Kassappa brothers, viz., Gaya Kassappa, Nadikassappa and Uruvelakassappa. The *Mahavagga* refers to three Kassappa brothers and it was the reputation of these three brothers and the ader of asceticism that attracted the Buddha to this region. Gaya was the centre of the *Jatilas* who formed a distinct group of ascetics. The story of the *Jatilas* is preserved in the Jatakas. A commander of Kasi, Saradhanga, retired from the world to live the life of a hermit. Whereas Brahmagaya retained the eternal domain of Akshayata, Bodhgaya represented the enternal light of the Bodhi tree where the Buddha attained enlightenment, Gaya at that time was a great religious, cultural and intellectual centre and the *Jatilas* had a large following. The *Nagas* were also highly honoured and there was one Naga in the temple of Uruvilvakassappa who was overpowered by the Buddha. The people of Gaya also worshipped *Yaksha*. After attaining enlightenment, Buddha preached on the Gayasirsa Hill. The *Bo*-tree acquired the name of *Bodhi, Mahabodhi* and *Bodhgaya*. After this

CC-0. Bhagavat P

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

event, Gaya came to be known as *Brahmagaya* and *Bodh-Gaya* reflecting the distinction between the Hindus and the Buddhists. Abul Fazal also makes this distinction. The *Mahavamsha* and the *Lalita vistara* abound in references. The emergence of *Bo*-tree influenced art. Art with tree motif exercised a potent influence on popular mind.

Buddhism gave a new turn to the history of Gaya for all time to come. It was an epoch making event in human history. The name Buddhagaya, first occurs in an apocryphal inscription of Amaradeva (948 A. D.). *Boddhi* and *Mahaboddhi* were in frequent use and are referred to in a number of inscriptions. Inscriptions inside the Mahaboddhi area are available from the first century B. C. to the thirteenth century A. D. Underneath the *Bo* tree was placed by Ashoka (269-236 B.C.), who visited Gaya, a polished sandstone called Vajrasana (or diamond throne). Chinese, Burmese, Ceylonese inscriptions and inscriptions of various Indian and foreign rulers and feudal lord are available from the region. Ashoka transplanted a branch of Bodhi tree from Gaya to Ceylon.

II

Magadha came into prominence in the sixth century B. C. and it included Patna, Gaya and parts of Hazaribagh. Gaya formed a part of great Magadha political entity and from the reign of Ashoka onwards Gaya came to acquire special significance. Ashoka's love for Buddhism and Bodhi tree roused up zealousy and revengeful spirit in the heart of his second queen *Tishyarakshita* who had cut down the Bodhi tree. It is said that the tree was miraculously brought to life. The two Bharhut carvings represent the Bodhi tree and an Ashokan pillar surmounted by an elephant. The Barabar and Nagarjuni Hill caves contain Mauryan Inscription and are dedicated to the *Ajivikas* by Ashoka and his grandson, Dasharatha. These caves are the earliest examples of cave architecture of Bihar. These caves are excavated in the hardest granite with infinite care, and the interior surface are barnished like glass. The *Sitamarhi* Caves (now in the district of Nawada) are similar to that of Barabar caves and contain several sculptures. Form the later inscriptions it appears that the caves were occupied by the Brahmana ascetics. Anantavarmana Maukhari placed Brahmanicali mages in these caves. Yoganānda has left a record of his adoration of Siddheshwara images in the Vapi Cave. The Shunga sculptures at Bodh-Gaya have a place of lasting interest in the history of Indian art.

Kharavela of Kalinga took advantage of the fluid political situation of Magadha and invaded the area. He led an expedition into Gorthagiri (Barabar Hills) and defeated the king of Magadha. The *Mitras* appear to have been connected with Gaya as their names appear on the stone railings of Bodh Gaya. Whether the *Mitras* were connected with the Shungas or were independent ruling dynasties, it is difficult to say in the present state of our knowledge. We have the name of Kaushiki putra Indragnimitra, Brahmanimitra and others. The name of Kurangi, wife of Indragnimitra, has been inscribed as a donor of the fifteen of the surviving pillars and the two coping pieces of the old sandstone railing. Her munificence was responsible for the erection of the old sandstone railing, the old diamond thorne and jewel walk shrine. The

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

name of Sirima occurs with that of Kurangi as a joint donor of two of the surviving coping pieces of the sandstone railing. Nagadevi, wife of Brahmanimitra, also erected a *Yaksha* pillar. Gaya formed a part of the Kushana empire. According to Cunningham, Huvishka furnished funds, for the building of Mahabodhi.

Under the imperial Guptas, Gaya attained prominence. In one of the inscriptions of Samudragupta (the spurious *Gaya copper plate* was issued from Ayodhya), Gaya is mentioned as a *Vishaya*. It was an administrative headquarter under the Guptas. Gaya vishaya was included in Magadhabhukti. Samudragupta is famous in the history of Gaya for the exchange of letters between him and Meghavarmana of Ceylon (c.330 A. D.). The king of Ceylon has sent two monks and his brother to pay homage to the *Vajrasana* and also to visit the monastery built by Ashoka When on their return they complained that they could not stay in comfort, Meghavarmana dicided to found a monastery at Gaya.

Meghavarmana dispatched a mission to Samudragupta with invaluable gifts and requested for permission to found a monastery at Gaya. The permission was granted. A splendid convent known as Mahabodhi Sangharam was constructed to the north of the Bodhi tree. When Hiuentsang visited this monastery in the seventh century A. D., it was occupied by a thousand monks of the Sthavira School of Mahayana sect.

Dated sculptures of the Gupta period have been noticed from Gaya. Two figures of Buddha, standing and the other sitting, from Bodhgaya are the earliest dated sculptures of the Gupta period (corresponding to A. D. 383) and stylistically belcng to the Mathura tradition of the earlier centuries. Thirteen inscriptions belonging to the period between A. D. 100 and 400 are set forth in a chronological order and these mark some distinct stages in the growth and development of the life of the Buddhist holy land. We learn from the *Mehrauli pillar inscription* that Chandra, set a lofty standard of Vishnu on the Vishnupada Hill. The inscription is an evidence of the fact that the Vishnupada was in existence and a Vaishnava like Chandragupta II might have visited the place and paid his offerings to the footprints of Vishnu. According to Fahien the three monasteries at Bodhgaya were surrounded by Jungles and the city was empty and desolate. Towards the last days of the Gupta rule some of the *Kumaramatyas* seem to have asserted their independence as we find *Kumaramatya* Maharaja Nandana issuing a land grant in Gaya district in his own right (EI. X. p.49 . The Maukharis were also ruling at Gaya as feudatories of the Guptas but they also asserted their independence.

Three Maukhari inscriptions in the Barabar and Nagarjuni Hills, in the Lomash Rishi and Gopika caves are important for a study of the contemporary history. These inscriptions supply us with the name of Yajnavarmana, Shardulavarmana and Anantavarmana. Anantavarmana installed the image of Krishna in the Pravaragiri cave near Gaya. He also set up images of *Bhutapati* (Shiva), *Parvati* (Devi) and *Katyayani in Barabar* and Nagarjuni Hill cave. One of these three inscriptions refers to a temple of Siddheshwara which is still in *Situ*, on the highest of the Barabar peaks. The Maukhari's ruled over Gaya, first as feud-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

atories of the Guptas, and later as independent rulers. Gaya continued to be an important administrative centre as the seal of the city of Gaya as the headquarters of Gaya vishaya has been found at Nalanda. Buddhaghosha, born in a Brahmana family of Bodh-Gaya, reached Ceylon in the reign of King Mahanama (409-31). Mahanama II is author of a lengthy sanskrit inscription at Gaya (588 A. D.) which does not refer to any king but records the installation of a Buddhist temple. The *Bodhgaya inscription* of Mahanama records to the presentation of the statue by a *Sthavira*. He was possibly the man who composed the most ancient part of the Pali *Mahavamsa*.

Shashanka has been castigated for his being anti-Buddhist and also for burning the *Bodhi* tree. Barua does not agree to this view and suggests that it was under Shashanka's auspices that theBuddhist shrine was built at Bodhgaya and that he has been blackmailed by Hiuentsang. Barua further does not agree with the views ofChiang-Hsia-Pias who credits Ashoka with the construction of the temple. Chiang's assertion is supported by a Burmese inscription. Hiuentsang holds the view that Ashoka first built a small *vihara*. Barua suggests that the temple came into existence after Fahien and before Hiuentsang. Though the issue is confusing, the inscriptions from the precincts of the Mahabodhi set forth in a chronological order (between A.D. 100 and 400) mark the stages in the growth and development of Mahabodhi. Hiuentsang, admits that a Brahmana devotee of *Shiva Maheshwara* was the builder of the Mahabodhi Vihara. According to Barua, that Brahmana was the minister of Shashanka. Even the sculptor was a brahmana.

According to Hiuentsang, Gaya was crowded with splendid Buddhist shrines and peaceful monasteries. There was a magnificent monastery at Gunamati, a spot in the south of Dharawat, containing fifty Buddhist priests and the richly endowed convent of Shilabhadra. Gaya contained one thousand highly respected brahmanas. He saw stupas erected by Ashoka at *Pragbodhi*. Bodh-Caya temple was surronded by a vast number of temples, stupas and minor shrines. *Bodhi* tree was visited on each anniversary of the *Nirvana* day by the princes of different countries and by pious multitudes numbering tens of thousands. There was a splendid *stupa* at Bakraur. Hiuentsang passed through *Kukkutapadagriha* (Kurkihar) and *Jeshthivana* (Jethian) and springs of *Topovann*. We are not told as to who was ruling in this area. Purnavarmana, Prakshyatakirtti and a Ceylone Shramana are also associated with the development of Mahabodhi Vihara. The Bodhgaya temple, as it stands now, was restored by Cunningham and Beglar on the basis of a small model found amongst the ruins.

Gaya played a prominent part in the history of Bihar under the later Guptas of Magadha whose founder Adityasena revived the glory of Magadha once again and extended his authority up to the shores of the sea. He was the greatest king of his time (A. D. 655-680). The earliest record of this family is the *Aphsad inscription*, discovered from the present district of Nawada (formerly a part of the district of Gaya). Besides being an important source of later Guptas it is ranked as one of the best *Kavyas*. Adityasena's undisputed sovereignty in eastern and southern Bihar is further proved by a number of inscriptions from other parts of Bihar like Mandar and Vaidyanatha. He caused

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

the construction of a big temple of Vishnu. A Ramayana stucco panel has been discovered at Aphsad. His wife also got a tank excavated at Mandar.

The later Guptas seem to have been supplanted by the Palas in Gaya. Though the Palas themselves were Buddhists, they were tolerant to other sects and we have at Gaya the conglomeration of various religious sects like Snaivism, Vaishnavism, Jainism etc. Brahma a sectarian deity in the Pre-Gupta Period, came to occupy a subsidiary position in the post-Gupta period. Princes, nobles. officials, and even ordinary men continued to visit Gaya through the centuries and the fact stands subtantiated by a series of inscriptions. The *Chaturmukhi Mahadeva*, erected in the twentysixth years of the reign of Dharmapala at Gaya, shows the figure of Surya Shiva and Vihsnu. Shiva's marriage with Parvati is also depicted. From Kurkihar, we have inscribed images of Balarama, Vishnu, and various other deities of both Hindu and Buddhist pantheon. The image of Balarama is dated in the ninth year of Devapala and those of Vishnu belonging to the eleventh-twelfth centuries A.D. These Kurkihar discoveries are remarkable for artistic excellence, high class workmanship and wealthy iconographic details. The bronzes are a class in itself in the whole range of ancient and medieval bronze industry in India. Kurkihar finds represent the period from ninth to eleventh century A. D. and it is evident that during this period the Palas had undisputed hold over Gaya. Gaya has a number of architectural remains of the Pala period.

A stone inscription of the time of Narayanapala begins with the salutation to Murari. The inscription of Nrisimha of the time of Nayapala appears to have been influenced by the teachings of the *Gita*. Gaya seems to have been the centre of Vaishnavism. According to Lakshmidhara the presiding deity of Gaya is Narayana having *Saranga* and *Gada* in his hands. The identity of Vishnu and Murari is clearly stated in line seven of the *Krishnadwarika temple inscription*. Narayanapala's *Gaya inscription* (dated in the 7th year) shows that he was in control of Gaya. It records the erection of a monastery for Brahmanas practicing austerity, by Bhandadeva, and contains invocation to Vishnu in Nrisimha form. Inscription of Rajyapala, Gopala II, Mahipala I, Nayapala, Vigrahapala III, and others have been found in the district of Gaya and all these are the surest indications of the authority of the Palas. Narayanapala may have sought freindship with the Rashtrakuta King and married his own son Rajyapala to the daughter of Jayatunga (Rashtrakuta Tungadeva, son of Krishna II 9-880) who is believed to have commanded Anga, Kalinga and Magadha. Jayatunga has been identified by some with Rashtrakuta Tunga-Dharmavaloka of Gaya. Mahendrapala Pratihara's inscriptions of the ninth and tenth years have also been found from Gaya. After Mahendrapala, Narayanapala recovered his Magadhan kingdom and it was possibly in connection with the overthrow of the Pratihara's authority that Narayanapala sought Rashtrakuta's alliance since both of them were bounded by matrimonial alliance. Rajyapala ruled over Gaya (950 A.D.) and the Pala authority continued unabated till the time of Vigrahapala III.

It was during the time of Nayapala that Sudraka, son of Paritosh, became the virtual protector of Gaya by his own

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mokshagundam

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

arms. In the inscription of his grandson, Yakshapala, Sudraka is said to have defeated his enemies who fled into the forest He was the master of Gaya region. He and his son, Vishvarupa, recognised Nayapala's suzerainty upto the fifteenth year of his reign. In his war against the Kalachuris. Vigrahapala III may have got some help from Vishvarupa as the *Akshayavata inscription* refers to him having destroyed all his enemies. During the reigns of the successors of Vigrahapala III, the families of Sudraka and Vishvarupa claimed independence. They accepted the authority of the Palas upto the fifteenth year of the reign of Vigrahapala III as is evident from the *Akshayavata inscription*. Vishvarupa or Vishvaditya helped Vigrahapala III against his enemies.

His son Yakshapala was virtually an independent ruler. He ignored Ramapala as he does not make any mention of the Pala overlord. His *Sitala temple inscription* records the erection of a temple dedicated to various deities and also of digging a tank. His genealogy is also found in this very inscription. We further learn from the *Krishnadwarika temple inscrption* that he erected a temple of Janardana. The inscription was composed by a veterinary surgeon named Sahadeva. Sudraka's family appears to have taken advantage of the fluid political situation in and around the region and by the strenth of their own arms they made themselves independent of the Palas. Yakshapala's power soon evaporated and Gaya seems to had been under the control of the kingdom of Pithi.

It is said that Ballalasena may have defeated Govindapala of Gaya though there is no definite proof to support this contention. A stone slab bearing an inscription records a transaction relating to the Gadadhara Vishnu temple at Gaya (1175 A. D.) in the reign of Govindapala. This epigraph begins with invocation to Vasudeva. The *Gaya stone temple inscription of* Govindapala was discovered before the courtyard of Vishnupada temple. A *lingam* is to be found at the top of the record. Long before Govindapala and after Ramapala, the forest tracts of Gaya had passed under the *Manas*. Taking advantage of the death of Ramapala, the *Manas* declared themselves independent and made themselves the master of that part of Magadha and ruled at least for two generations if not more. We learn from the *Govindapur stone insciription* of poet Gangadhara (Saka 1059 A. D. 1137-38) that the Mana dynasty exercised authority in the district of Nawada. He refers to *Magadhesha* Varnamana at whose court his uncle, Dasaratha, was appointed • Pratihara while Gangadhara himself became a minister of Varnamana's son Rudramana (EI, II. 343). We do not know anything about their relationship with the *Manas* of Hazaribagh(of The *Dudhapani Rock inscription)*. The *Manas* were brought to their knees by Govindapala who seems to have regained his authority and ruled over the area from 1161 A. D. onwards. The Gahadwalas under Vijayachandra and Jayachandra conquered Gaya. The *Bodhgaya inscription* of Jayachandra Gahadawala (1189-93) shows that he controlled Gaya region or might have come on a pilgrimage. They might have held sway over the region for sometime. An inscription of Udagashri from Simhala of the 11th-12th century A. D. has also been noticed in Gaya.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitized

It has been held by a set of scholars that the *Pithipatis* were the Vassals of Turks. It would not be out of place to examine this statement in the light of epigraphic evidence. In Bodhgaya itself are records inscribed by the ruling chiefs of Kumaon and Sapadalaksha whose dates suggest a continuous occupation of the district by the Hindus upto the reign of Balbana. Ashokachalla, his brother and his priests figure in these inscriptions in *L.S.* 51 and 74 and the year 1813 of the *Nirvana* era corresponding to 1270 A. D. The fact that the inscription of Ashokachalla, dated in the *atitarajya samvat* 51 and 74 of the *Lakshman Samvat* and the *Janibigha inscription* of Jayasena in 83 of the same are makes it clear that they must have conquered Gaya from the Gahadawalas.

Dharmaswami, the celebrated Tibetan traveller, visited Gaya in 1234-36 A. D. when king Budhasena was ruling and he was followed by his son Jayasena who appears to have been ruling in 1283 A. D. *Vajrasana* (Bodh-Gaya) was the capital of the dynasty. Mangalaswamina received a gift on behalf of the *Vajrasana* from Jayasena of *Pithi*. Jayasena may be regarded as the last independent king ruling in South Bihar with head quarters at Gaya. It is belived that the *Hinayanis* controlled Bodhgaya and the abbots, who were well known for their knowledge of the *Tripitakas*, continued to be imported from Ceylon till the end of the thirteenth century. The era referred to in the inscriptions may be regarded as having started in 1200 A. D. Budhasena ruled from 1200 to 1270 and he was the founder of the Sena dynasty of Gaya.

A large number of Chinese inscriptions (ranging between tenth and thirteenth century A. D.) have been noticed at Gaya. These inscriptions refer to not only various monks but also to various aspects of Buddhism. Bodh Gaya used to be frequented by Buddhists from different parts of the world. One of the inscriptions of the period praises Nirmanakaya, Sambhogkaya and Dharmakaya. Rulers of Ceylon, Burma and China showed deep interest in Bodh-Gaya and *Vajrasana*.

Vajrasana was the Capital of the *Pithipatis* and the Senas of Gaya were known as *Pithipatis*. Buddhasena (1200-1270) fled into the forest on the outskirts of Gaya on the approach of the Muslim raiders but returned soon after their withdrawal. According to Dharmaswami the Buddhists had put up an image of Shiva at *Vajrasana* in front of the Buddha image in order to protect it from the wrath of the non-Buddhists. This would indicate that Brahmanical opposition to Buddhism was a factor to be reckoned with in this region. The reaction of the Hindus against the Buddhists is also reflected from the stone slab found at Konch (in the district of Gaya) which, while representing all the incarnations of Vishnu, has excluded the figuer of Buddha. Some such incidents could have provoked some reactions of the Budhhists to give vent to their feelings through the images of some of their gods shown as humiliating the Hindu divinities. Dharmaswami spent his first monsoon retreat (July-October 1234) at Bodh-Gaya. He reached there on the *Baisakhipurnima* day. He had to flee away for seventeen days owing to the apprehended Muslim attack. He met no scholar at Gaya.

Muslim armies, raided Nalanda and Gaya. Panic reigned in Magadha. The ruler of Magadha, Buddhasena, was not able

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

to provide protection. His escape into the forest for fear of the Turks proves that he was not necessarily a vassal of the Muslims. He belonged to the Chhinda dynasty and is referred to as *Pithipati*. Gaya continued to be independent till the reign of Jayasena. Gaya vishaya at that time had two *Nayas*, *viz*, Achala and Pitisinachcha. There were two *Viharas*. *Pithi* was the abbreviation of Vajrapitha — Bodh-Gaya and Buddhasena is described as *Pithipati* in his inscription. Asokachalla of Sapadalaksha was a contemporary of Buddhasena,

The stone slab inscription of Buddhasena (preserved in the British Museum) is addressed to the inhabitants of the rural areas attached to the Vritti grant of rent free property of the entire foundation called *Mahabodhi* in favour of Bhikshu Pandita. Donees are advised to become submissive and pay him proper dues He had to arrange for the rehabilitation of the Ceylonese monks and the property at Mahabodhi belonging to them should be handed over to them by the donee. The inscription refers to two Officers *viz*. Sadhanika Ranaka Brahmadhara (leader of the forces) and Mandalika Sahajapala. According to Dharmaswami, the Bodhgaya establishment had been deserted by all except four monks on account of the repeated Muslim conquests. The ancient image had been walled up by a brick wall and a new one had been put up in the antechamber. The old image had already been despoiled of its emeral eyes earlier. When the Muslims had gone away, people returned and the wall was removed and the ancient image was made available to the devotees. Dharmaswami refers to the ruins of stone gate in front of Bodhgaya temple. Bodhgaya had Ceylonese Hinayani priests who had no respect for Tibetan Tantrikas and Mahayanists. The Mahayanist goddes Tara was popular at Bodh-Gaya.

The *Lakshmana Samvat* used in the three Gaya records (*EI* XII.28; 29; *I.A.*XLVIII.47) refers to an era connected with the King of that name, Lakshmanasena of Bengal. In this case it appears that the era was counted originally from the accession of Lakshmanasena in 1179 A. D. and the year 83 of Bhuddhasena's record would be 1262 A.D. when Jayasena was ruling. Altekar thinks that the era started in 1200 A. D. which, however, is not convincing.

III

Before closing the account of Gaya under the Hindus and Buddhists it would not be out of place to recapitulate certain issues which had important bearing on the history of Gaya and had relavance to Buddhism in those days. *Vajrasana* was an important centre of learing and Buddhism and Gaya continued to be the centre of Brahmanism. The famous Buddhist scholar, Atisha Dipamkara, had studied under the abbot of Bodhgaya monastery. He is said to have made a pilgrimage to *Vajrasana*. He was connected with almost all the Viharas of his time. He defeated the *Trithika* heretics at Gaya and maintained the superiority of Buddhism over all other religions of Magadha. He was also honoured by the Kalachuris. When Kalachuris were defacted by Nayapala, Atisha was at *Vajrasana*. Atisha not only gave shelter to the Kalachuris (Karna) and his vanquished forces but also made arrangements for their safe departure. He also helped in establishing peace between the Palas and the Kalachuris. Atisha must have helped the Kalachuris on compassionate ground otherwise it does not stand to reason why a

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization

native of Bihar (and also the preceptor of Nayapala) should show mercy to an invading army. Before leaving for Tibet, Atisha visited *Vajrasana*. It is from Gaya that he proceeded to Syambhunatha Chaitya in Nepal on His way to Tibet. He succeeded in reforming Lamaism in Tibet. The rock sculptures near his tomb in Lhasa show that he and his followers strove to reproduce the surroundings of their monasteris in Gaya and according to Waddell they reminded one of the similar hills in the Buddhist holy land round Buddhagaya whence Atisa came.

IV

It is evident from the *Prapitamaheshwara inscription* that by 1240 A. D. Gaya had come under the Slave danasty. It was included in the dominion of Sultan Muizuddin Bahram Shah (1240-42). In front of the Vishnupada temple, there is an inscription of Kakatiya Prataparudra I of Warangal (Andhra Pradesh). He might have come here to offer *Pinda* and left the inscription to commemorate his visit. In the same compound, we have an inscription of Hoyasala Nrisimha III and of Krishnadeva of Vijayanagara. This inscription is recorded in Telgu characters and is described as *Vijayasasana*. The inscription was set by the court poet who visited Gaya as a proxy of his patron. Another inscription of Vijayanagar is called *Dharmasasana* and it is in the same compound.

Bihar was a bone of contention between the Sultans of Delhi, Bengal and Jaunpur and naturally Gaya continued to form a part of the Muslim dominian after 1240 A. D. It is said that Rana Sanga of Udaipur liberated Gaya from the Tartars after a great struggle. There is an inscription in the shrine of Bibi Kamalo at Kako (Gaya) which gives us the names of the successors of Firoz Shah. A mosque inscription at Amthua (Gaya) gives the date A. H. 935/942 (1528-29/1535) when Shershah had not attained the sovereignty of Gaya.

When the Afgans were being oppressed by Akbar, a mighty upsurge ensued in the district of Gaya by the forcible expulsion of Arab Bahadur from the fort of Mahar (Gaya). He was the agent of Munim Khan. He was expelled by two Afgan nobles, named Haji and Ghazi. The stern attitude of Muzaffar Khan Turbati succeeded in quelling the disturbance only temporarily. When Turbati was transferred in 1577, fresh upsurge of rebels was seen and Todarmal was sent to suppress the rebels. The Muslim rebels were supported by the Hindu Raja of Bhojapur, Dalpat Shahi. Todarmal reached Gaya on September 27, 1580. The rebels moved and halted at Bahira also known as Shahr-i-Bahira or Sherghati. They were under the leadership of Masum who was worsted by Todarmal. Todarmal succeeded in bringing the area from Sherghati to Rohtas under the control of the Mughals. After having captured and occupied the place, the Mughal army came and stayed at Gaya on October 20, 1580.

Sherghati was one of the important centres of the rebels against Akbar in Bihar. The rebel could not hold long and were ultimately defeated and vanquished. During the reign of Aurangzeb, Daud Khan was the subadar of Bihar and he founded the city of Daudnagar as a mark of his victory against the Raja of Palamau. His successor Governor Shamshir Khan had got his tomb erected at Shamshernagar

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

(Gaya) during his life time, which is one of the principal monuments of modern Bihar. The Zamindars of Gaya were reduced by Fedai Khan, the governor of Bihar. In the reign of Aurangzeb, two scholars of Amthua (Gaya) were invited to Delhi and were appointed members of the Syndicate of celebrated theologicans for compiling *Fatwa-i-Alamgiri*, in which the contribution of Bhagalpur was equally great. Various saints and scholars of Amthua and their families have firmans from the time of Shahjehan to Muhammad Shah.

Gaya, after the weakening of the Mughal empire, came to be parcelled out into a number of Zamindaries, viz. (i) Tekari (ii Narhat (iii) Samai (iv) Siris and Kutumba(v) Ramgarh. Allivardi subdued most of them. Gaya assumed importance in eighteenth century after the rise of the Marathas. It lay on their route of depredations.

To curb the power of the Raja of Ramgarh an expedition was sent in 1840. The campaign was headed by the father of the author of *Siyar-ul-Mutakharin* and assisted by the Zamindars of Siris, Kutumba, Sherghati, Tekari and others. The campaign had to be abandoned in view of the Maratha attack. Balaji Rao marched through Gaya in 1743. Daud's grandson Ahmad Khan opposed but ultimately he had to surrender. The Marathas passed through Tekari, Gaya and Manpur. In 1745, Marathas under Raghuji Bhonsle attacked and plundered Tekari.

The Deputy Governor of Bihar, Ram Narayan led an expedition against Vishnusimha of Siris-Kutumba. When Shah Alam invaded Bihar, Kamgar Khan of Gaya joined him and became important in the politics of the then Bihar. On being independent and declaring himself as emperor, Shah Alam reigned without opposition from Daudnagar to the environs of Bihar. On January 15, 1761 he had to give battle to the English troops and the battle was fought at Manpur (Gaya) and he was forced to see the peace with the English. Under the Mughal Sarkar, Bihar had its headquarters at Gaya.

In 1770, when the Revenue Council was set up at Patna, the administrative set up of Gaya was linked up with Patna. In 1787, the office of the Revenue chief was abolished. When Thomas Law became the Collector of the district of Bihar, he had his headquarters at Gaya which included the areas af Patna and Gaya upto Kiul. Patna was made a district in 1825. In 1865, the district of Bihar was changed with the district of Gaya which has now been made a commissinary in 1981. Buchanan Visited Kurtha, Kuadol and Barabar in the 19th century. He has given a vivid description of Barabar caves and Vishnupad a temple.

V

In 1857, Gaya played a prominent role. The mutiny at Danapur threw Gaya into ferment. A Sanskrit document preserved in the National Archives and dated 1854 throws light on the corrupt police administration in pre-mutiny Gaya. The document is a petition in Sanskrit of Vishwanath Dikshit addressed to Lord Dalhousie and is dated june 3, 1854. It gives us a succinct acount of how things were going on in and around Gaya and also the value of gold and silver in those days while on a pil-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization.

grimage to Gaya. Vishwanath lost (rather his articles and valuable were stolen in connivance with the administration) and the petition contains the list of articles. A *Bania* incharge of the market place was often in league with the local thieves and the rural police had an understanding with them. Vishwanath was one of the Court Panditas of Alwar. Things had come to such a nass that law and order had come to standstill in the region. It was in such a state of affairs that mutiny took place.

On September 5, 1857, the fifth irregular cavalry which had revolted at Bhagalpur invaded Gaya district but they were ultimately defeated. During this period, Jodhara Singh emerged as a leader of the revolt against the Britishers. He openly bosted that he would destroy every public place and building between Son and Monghyr. He declared that the British Raj was over and made grants of land to his followers. At the battle of Kasma, he was finally routed and humbled and there was ruthless suppression and confiscation of the property of the rebels. The House of Tekari had secret sympathy with the leaders of the movement. The insurgents became active again in 1858. Jehanabad thana was surprised, government buildings burnt, *Daroga* cut into pieces and his body hung up by the hills on the tree opposite to the Thana.

Gaya figures prominently in the freedom movement in the present century. On April 6,1919 there was a complete *hartal* in the district of Gaya. The Ali brothers visited Gaya and the visit of Mahatma Gandhi had a permanent effect on the then nationalists. Gaya was on the forefront in the Non Cooperation movement of 1921, Civil Disobedience movement of 1930-33 and the Quit India movement of 1942. Leaders like Shrikrishna Prakash Sensingh, Anugrah Narayan Singh, Braj Kishore Prasad, Jay Prakash Narayan, Jadunandan Sharma, Hasan Imam, Sachidanand Sinha, Bajrang datta Sharma and various others were associated with the freedom movement.

Gaya forms a landmark in the history of the Indian National Congress and also in the history of constitutional development. After the arrest of Mahatma Gandhi, the All India Congress session was held at Gaya in 1922. Dr. Rajendra Prasad was the Secretary of the Reception Committee. The session was presided over by C. R. Das. It was here at the thirtyseventh session that the problem of council entry was discussed and the resolution, though moved and seconded by C. R. Das and Motilal Nehru respectively was lost and the session voted for the continuance of the boy-cott of legislature. Rajendra Babu was elected Secretary and the office was shifted to Patna. Tana Bhagats also attended this conference. At the instance of C. R. Das, Swaraj Party was formed in 1923 and it included among others Motilal Nehru, Ajmal Khan, Vithalbhai Patel etc.

Gaya's share in revolutionary politics is second to none. A youth league was formed in 1929 and the Provincial Congress Conference was held at Gaya in 1932. The youth league was involved in the Gaya conspiracy case of 1933. Shyamacharan Bhartuhar, Keshav Prasad Singh and Bishwanath Mathur were deputed to Andaman. The Kisan politics also attracted the people of Gaya. In 1939 the All India Kisan Confe-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

rence was held under the presidentship of Acharya Narendradeva. Jay Prakash Narain graced the Presidentship of Gaya District Congress Committee.

When Vonoba Bhave landed his foot on the holy land of Bihar in 1955, he was accorded a prophet's welcome and Gaya's contribution in the Bhoodan Movement is unique. Gaya was practically the capital of the Bhoodan Movement and Sheokodora Asrama, founded by Jayprakash Narayan and a band of his devoted workers like Gita Babu, Anand Kishore Das and Lakshmi Narayan, became the beacon light of Sarvodaya Movement in ths country. His Australian biographer has given a vivid description of how the Asrama came into existence. If Gaya is sacred to the Hindus, it is so to the Buddhists and has held aloft the teachings of the great Master through the humanitarianism of Sarvodaya which found Gaya to be the most suitable place for its propagation in Bihar.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

R. N. PRASAD

GAYA UNDER THE GOVERNORSHIP OF RAJA MAN SINGH

(1587 - 1594 A. D.)

Bodh Gaya has profound significance in History as an international centre of liberal faith and culture and as the place of the Great Enlightenment of Gautam Buddha, which generated a highly creative force for the benefit of mankind, far and wide. Bodh Gaya had a University of its own in early 13th century, known as Vajrasana University. It was just on the pattern of Nalanda, Vikramshila and Uddantpuri Universities of ancient Bihar. We get a significant account about Vajarasana University in the biography of Dharmasvamin, a Tibetan monk pilgrim, which was translated into English and edited a few years back by the famous scholar Dr. G. Roerich.

The holy city of Gaya is also associated with the governorship of Raja Man Singh of Amber. Raja Man Singh was the governor of Bihar from 1587 to 1594 A. D. The city of Gaya was often attacked by the Afghans who had built a strong fort in Sherghati which was quite close to the city. Besides, the city of Gaya was also attacked by the Cheros — a Dravidian tribe who resided in the jungles of Palamau. The people of Gaya had constructed a wall round the city to save themselves from these attack, but this too did not provide sufficient protection to the people. Man Singh, the then governor of Bihar with Patna as H. Q., had to come to Gaya quite often to repeal the attacks of the rebel Afghans. Ultimately he decided to found a new city on the other side of river Phalgu so that the people of Gaya might be saved from the constant inroads of the Afghans and the Cheros. The town which Raja Man Singh founded is still extant and is known as Manpur.

The fact about founding of the city of Manpur is corroborated by 'Vansawali' in the State Archives of Bikaner. The Vansawali says, "From Azimabad the Maharaja went to Gaya and offered Sradh for forty-five days and brought the town of Sambhu-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

puri which was the abode of the Sayyids under occupation. In between the town of Gaya and Sambhupuri the river Phalgu flows, but the water was not visible because it was filled with sand all over. The Raja crossed the river and ordered that a big city be established. The order was carried out by the artisans engaged for the purpose and the new city named Manpur sprang up."

Manpur now forms an important locality of the city of Gaya. It is also an important centre of cottage industry where cotton clothes are woven by hundreds of weavers. Raja Man Singh also constructed a fort at Manpur known as "*Mangarhi.*" Excepting the bricks of the outer walls, everything else has gone down under a mound of earth and sand.

Raja Man Singh also built seven wells in the city of Manpur because even at that time there was the problem of water scarcity. Out of seven, only one is still extant and is still used by the people of the locality. This well has some marked features. It is quite large being about 20 ft. in diameter. The well is located in the middle of a rectangular platform about 40 ft. in length and 20 ft. in width. The most important feature of this well is the long open tunnel five feet wide which is located on the eastern end of the platform and connected with the mouth of well by a small covered tunnel, 3 ft. wide, and this takes out the refuge water of the well. The bigger tunnel serves the purpose of a water reservoir for animals to drink from. The raised platform is about 5 ft. high and has four broad stairs round it.

Another important edifice associated with the memory of Raja Man Singh is the *Nilakantha Mahadeva* temple with the big tank attached to it. As is the usual feature with Raja Man Singh's temples besides the cheif diety, there are other Gods and Goddesses here also e. g. Lord Vishnu, Lord Surya, Ganesh and Indra. All these are carved out of stones and appear very artistic and their style appears to be of later Gupta period. The image of Suryadeva is finely carved with two lotus flowers in hands. The walls of the Sanctum are relieved by four niches on which are placed the images of Surya, Ganesh and Indra. Lord Vishnu occupies the ground-floor to the west of the main deity. The idol of Nilakantha Mahadeva is placed in the centre of a circular platform made of black-stone. The idol is carved out of a single piece of black-stone. One thing is quite peculiar. It appears that all the idols and the images had to bear the stroke of the axes of the invaders because they are all partly disfigured. It is quite possible that the Afghans who had been defeated at the hands of Raja Man Singh attacked the temple at an opportune moment when the Raja had left the Eastern Provinces for the distant south.

The Nilakantha Mahadeva temple of Raja Man Singh consists of a Sanctum and a *Baradari*. The *Baradari* is rectangular in shape, its size being 12 ft. long and 15 ft. wide. It is also covered by a circular dome on which is placed the lotus flower in full bloom. The main sanctum is covered by a vertical dome which looks quite pleasing. The whole structure is built of bricks, lime and mortor. The temple is intact. One torn undated *farman* in possession of the chief priest of Manpur temple, which bears the seals of several governors of Mughal times indicates that sufficient provision had been

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

made for the upkeep and maintenance of the temple at Manpur.

At the foot of the temple, there is a big tank. Local tradition affirms that the tank once covered a space of nineteen acres of land. Even a casual glance at the tank suggests that formerly it must have been quite extensive covering a large area but now a large portion of it is silted up. Even then the tank is quite big-about 100 ft. long and 75 ft. wide. The tank has on all sides long stairs made of stone but these are now in tottering condition.

There are traces of a big garden enclosing the temple and the tank. A large number of Mango and Peepal trees are still standing round about the tank. It is quite possible that Raja Man Singh had laid out a beautiful garden encircling the whole area.

The provision of a large tank and several wells in the city of Manpur clearly indicates that the Raja wanted thereby to remove the problem of water scarcity in the town. The people of Gaya even now suffer from the scarcity of water. Raja Man Singh was conscious of this difficulty of the people of Manpur and, therefore, he made a liberal provision of water in order to enable the people to tide over this difficulty.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

SHYAM BIHARI SINGH

GAYA IN 1857-58

Mutinies of sepoys in Bengal as well as in the Upper Provinces created commotion in the various districts of Bihar. The district of Gaya, then known as the district of Bihar, became the high road for all mutineers from the east. As the British troops were despatched through the Grand Trunk road to the Upper Provinces, it became imperative for the British authority to keep control over the district. The district authorities were instructed to make arrangement for supplying conveyance and provisions to the detachments of European soldiers. The news of the mutiny of sepoys at Benares on the 4th June, 1857, ran through the district as an electric shock. Sign of a possible outbreak appeared. At that time the district had no European soldier. At once a telegraphic message was sent to Calcutta for the despatch of a detachment of European troops. A company of H. M. 's 64th, then passing through Sherghatty, was ordered to march to Gaya. Subsequently, 120 Sikh soldiers were sent to Gaya. It is interesting to note that the people of the town of Gaya generally looked down upon the Sikh soldiers and refused to sit or smoke with them. One day a carpenter accused a Sikh soldier of his food being mixed with bone-powder of pigs and cows. The authority at once arrested him and got him hanged. It was also widely circulated in the town that one refusing to smoke with a Sikh soldier would be flogged.[1] On the 10th of July, 1857, the detachment of the H. M.'s 64th was ordered to proceed on the Grand Trunk road. This naturally weakened the position of the British authority at Gaya. The march of British troops up the Trunk road was also discontinued at that time. Mr. Money, the magistrate of Gaya, described the British position in these words : "In any case, physically we were much weaker. Clouds both from the north and the east were casting their shadows before us; no one believed in the troops at Dinapore; the 5th Irregulars were said to be shaky; more than all, just at that time the march of English troops up the Trunk road was discontinued. It was evident the time had come when the Government, having done all it could do, was fair to sit and watch the result of that memorable conflict between English courage

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

without numbers and Indian numbers without courage."[2] Under the circumstances the European ladies and babies were evacuted to Dinapore. One European lady evacuated from Gaya to Dinapore described the situation in these words: "I took it from the hand of the Lord and left Gyah but trusting that the hand will hear the prayer of his people, that it shall be for a short time. it is a trial time, dark around us, but his word is our light, disturbances and mutinies without end, but he is the prince of life, the captain of our salvation, and he must reign till all his enemies lay down under his feet..... Sometimes fear will arise in our heart but the Lord who till this moment took care for us in such a way that we have to praise his holy name. He will also afterwards provide for us. We are in his hands and that it is a great comfort. Oh that it may please the Lord in soon bringing to an end all this miseries and affiliation. It is the hand of the Lord which we have to kiss but it is heavy for the mind of men to do this in time of tribulation and in all to praise his holy name. The lord is loving his people. We are written in balms of his hand. He will bless it for ever. Our prayer is that the Lord may preserve our district especially our Gyah and all our friends near and dear to us from this miseries and grant us that we soon could turn back and find opportunity to proclaim his holy gospel amongst this poor benighted people".[3]

On the 25th of July, 1857, three native regiments at Dinapore mutinied. The news of this mutiny produced no commotion at Gaya, although, the British had only a force of 45 European and 120 Sikh soldiers at that time in the district. Six weeks earlier it might have produced an out-break at Gaya. The leaders of scoundrels had already been arrested and put into prison, Gaya had at that time 160 najibs (native armed police). They kept watch over the treasury of the district alternately with the Sikh soldiers. Many of them were untrustworthy, but in July, 1857, they could show no sign of rebellious spirit. On the 31st July, 1857, Mr. Tayler, the commissioner of Patna Division, informed the magistrate of Gaya of the defeat of Dunbar's party at Arrah and instructed—"Everything must now be sacrificed to holding the country and the occupation of a central position." He also instructed the civil authorities to proceed at once with all their force secretly and expeditiously to Patna. Mr. Money, the magistrate of Bihar, at once collected all the officers of the station and decided to go to Patna with all the native and European soldiers. Leaving the treasury in charge of najibs, the British officers left Gaya at 6 P. m. on 31-7-1857.[4] After going a mile beyond the town Mr. Money changed his mind and returned to Gaya along with Mr. Holings. Others were asked to go to Patna. As the Gaya treasury had at that time about 7 lacs of rupees, Mr. Money thought of removing it to a safe British station. On returning he found the native guards of the treasury as well as the Jail in good order. As the European and Sikh soldiers had been sent to Patna, Mr. Money was without any force for two days. People of the town must have known it, but no attempt was made to overthrow the British authority. Meanwhile Mr. Money sent a message to Captain Thomsen of the 64th, who was passing through the G.T. Road, to come to Gaya for escorting the treasure to Calcutta. He also called

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

a meeting of the Gayawals of the place and asked for their assistance at such a critical moment. They made liberal promise to help the Government with men and arms. But their promise was not followed by action. Only one Gayawal namely Deonath Sejwar sent a few useful men. On 2-8-1857 a regiment of the H.M's 64th came. The treasure was loaded on bullock carts. At first Mr. Money thought of taking the treasure to Patna. Ultimately he decided to take the treasure to Calcutta, because the news came from Dinapore that 8th N. I. were in full march towards Gaya. On the 3rd August, 1857, the British party with treasure left Gaya at 6 P. M. As soon as the Najibs learnt of it, they broke open the Jail gate and released the prisoners. Prisoners and the Guards combined together and marched towards the residence of Mr. Money, who managed to join the British party. The mob followed them up to about three miles from Gaya and twice attacked them. But they returned back after losing five or six persons. Thereafter the British party moved towards the G. T. Road unmolested and ultimately succeeded in depositing seven lacs of rupees at the Calcutta treasury. On returning back the najibs and prisoners looted a little money left in the treasury for the food of the prisoners. The najibs marched towards Arrah, while the prisoners returned to their homes. "Silent but trembling the town remained that night; next morning in its full force awoke the spirit of the oriental savage; every scoundrel had dreamt of plunder during the night and now awoke to verify his dream"[5] Indiscriminate plunder continued for several days. One or two bands under able leaders levied only blackmail going from house to house and sold immunity and safety. Five or six of the Gayawals mustered their followers and sacked a whole quarter of the town. The unhappy Hindoo mahajans were the chief losers. They were preyed upon on one hand by the muslim rabbles of the lower town and on the other hand by the Gayawals of the upper. There was no government in the city for thirteen days. It is a sad reflection on the people that none came forward to organise a government or to make arrangement for the maintenance of peace in the city in the absence of any governmental authority. Even none of the landed aristocracy of the district took this opportunity to occupy the city.

On the 16th of August 1857, Gaya was re-occupied by the British authority. A force consisting of 45 European soldiers and 200 Sikhs of the Bengal Police battalion was sent for the purpose. It was essential for restoration of the communication on the G. T. Road. The mutiny of sepoys at Dinapore and abandonment of the station of Gaya had provided an opportunity for some people to take up arms. The Nawada Sub-division was particularly much disturbed. Hyder Ali Khan collected a few followers and attempted to regain the possession of the Rajgir pergunah. He declared that the Company's rule had ceased in the Rajgir pergunah. His followers began to plunder on all sides. They had secured an old gun from the fort at Hasua and created havoc.[6] Subsequently, Hyder Ali Khan was arrested and hanged. At Wazeerganj some 12 or 14 villages united under the leadership of Kosheal Singh, a ticcadar of several villages and indulged in indiscriminate plunder. In the western thannahs three or four factories belonging to Mr. Solano, the only European planter in the district, were destroyed. Disturbances in the district were characterised

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

by loot and plunder. "Hindostanee Raj Hooa Kooer Singh ke Raj—loot loot" were the cries with which one Zemindar attacked the weaker one. One village plundered the other. Highway robbery became common. Some Zemindars in the Nawada sub-division employed the Rajwars for such purposes. The Rajwars particularly confined their attacks to the Dunwah pass.[1] The most lamentable fact is that there was no influential land-holder in the district, who could knead into one the various elements of disorder. Koer Singh had written to the Deo Rajah and Modenarain of Tikari for joining the revolt against the British, but got no response.

On the 14th of August, 1857, the 5th Irregular cavalry muntinied at Bhagalpur. After remaining for sometime in the Santhal Parganas they moved towards the west in a leisurely way. On Aug. 29, Mr Money the Magistrate of Bihar telegraphed to the Secretary to the Bengal Government—"The 5th Irregulars were at Mudenganj forty miles off (from Gaya) on the 26th; their declared intention was to go to Nawada and Hasua."[8] On the 1st September, he again telegraphed—"Hyder Ally Khan's rising is a small matter, still it ought to be put down. He has only a small rabble with him The 5th were still at Muden Ganj six miles from Nawada. We have not enough men to attack them and protect Gaya".[9] On the 2nd September, he frantically telegraphed—"The 5th Irregulars at Hasua have demanded a lac of rupees from a Zemindar there and intend staying two days there. Unless they go back. they have now but three roads by Bulwa Chattee, by Gaya or by Bela. If you send us at once a few Seiks or Europeans we can manage them at least in two place."[10] On the same day came the reply from the Secretary to Government of Bengal —"Expect no Europeans. The 5th are not two hundred and fifty and are at great disadvantage. You must have atleast 300 men, of whom 35 are Europeans. The 5th won't take G. T. Road, while the Europeans are passing up."[11] As a matter of fact the 5th Irregulars when left Bhagalpur had 350 men. but on reaching Gaya their number had swelled up to 800.[12] On the 5th September, the mutineers were at Wazeerganj. Next morning they left the place and moved towards the G. T. Road. They were not aware of the fact that the British had already occupied Gaya. On the 8th September 1857, Captain Rattray engaged the mutineers in a fight near Bodh Gaya across the river. The mutineers got the best of the engagement and marched on to Gaya successfully. They found the town unprotected and released the prisoners from the Jail. Next morning they proceeded on to Tikari. It is said that they exacted a contribution of one lac of rupees from the Rani of Tikari and marched towards the west. They crossed the river Soane on the morning of the 17th Oct, 1857. Amar Singh with his followers was awaiting their arrival on the otherside of the river. Thus, the 5th Irregulars brought to the aid of Koer Singh not only a substantial physical assistance, but the prestige of a triumphal march of 200 miles through the British dominion. On the way these mutineers perpetrated atrocities of all kinds. Rape, robbery and murder marked the progress of their march. They were joined at Gaya by a well known scoundrel, Inder Singh and his followers. All the bad characters of Gaya had joined them. As regards the effects of the march of the 5th Irregulars through the district Mr. Money rightly observed in a letter dated

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

10th September, 1857 "the presence of these mutineers (5th Irregulars) was doing great mischief. Their immunity was a confession of weakness on the part of the authorities of Government. A general disbelief in the power to put them down was becoming apparent. Although the first of the next month (October, 1857) is the last day fixed for the payment of this quarter's revenue not one rupee had been paid into the treasury for above a week and the natives had possession of the eastern portions of the district. Anarchy and confusion followed their steps everywhere. Not only was the current quarter's revenue stopped by their presence but the next year's opium revenue was threatened"[13] In the same letter he wrote—"During last ten days rascally set of mutineers have been wandering about in my district levying contributions of money, carrying off women and spreading terror everywhere. A trial of strength has proved the enemy even stronger than I anticipated. He is now free to plunder the whole of the west of the district as has been done in the east."[14]

As soon as the 5th Irregulars crossed the Soane, the approach of the mutineers of the Ramgarh Battalion began to cause alarm. Most of the men of this corps were recruited from the neighbourhood of Sherghatty and other parts of the district. It was seriously apprehended that these mutineers would march down to Gaya. But they were surprised and defeated at Chuttra by Major English and subsequently driven into the jungles of Rohtas. Immediately thereafter a fresh alarm was caused in the district by the movements of three companies of the 32nd N. I., which had mutinied at Deoghar on the 17th October, 1857. They followed the foot-steps of the 5th Irregulars and marched through the district. They came as far as Wazeerganj, but the arrival of Major English at Gaya forced them to turn towards the north. Major English tried to cut them off at Jehanabad, but they managed to slip away towards the west. Within a week they were followed by two other companies of the same regiment mutinied in the Raj Mahal hills. To encounter these mutineers Major English advanced towards Nawadah on the 1st of November, 1857. Mutineers got scent of it and managed to slip away. Thus in 1857 three bands of mutineers passed through the district and joined the rebels west of the river Soane.

In the beginning of November, 1857, a body of European mounted police was sanctioned for the Bihar district. This proved very useful in restoring order in the district. Trials under Act XVI of 1857 were held. Several persons were executed and many more sentenced to various terms of imprisonment. An extra-police force of 250 was sanctioned for the Nawada Sub-division. The average number of extra police entertained throughout the district, from September to December, 1857, was about 300 men monthly. It is interesting to note that under instruction from the Commissioner, dated 12th June, 1857 only men of the low caste (Dusadh and Chamar) were recruited in the extra-police force. Rajputs, Brahmins and Muslims were not trusted at that time Hence they were particularly not recruited.[15] In January 1858, one hundred sailors with officers of the Indian Navy were sent to Gaya. The march of H. M. 's 85th regiment through the district seemed to offer a good opportunity for dismantling the fort of Tikari. Two companies of the regiment togather with the

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

sailors went to Tikari and seized guns, ammunitions, etc, from the Rani of Tikari. As a matter of fact lawlessness prevailing in the district had compelled the Rani to have the arms for her own protection. The fort was, however, not destroyed. A rebel named Futteh Singh collected some followers in the district and organised several plundering raids in the western part of the district. The Deo Raja and Sonepura Raja volunteered to put him down. The Sonepura Raja actually attacked and defeated him. Another rebel namely Jodhar Singh entered the district from the west. He had collected a large number of followers and plundered indiscriminately. It was apprehended that Gaya ane its jail would again be attackcd. To avoid this situation it was decided to remove the worst prisoners to Shrghatty under the protection of the najib guard. This detachment broke into mutiny on the road within six miles of Sherghatty, shot their native officers and released prisoners. Nine of them went off to join the rebels. The jail at Gaya had meanwhile been left in charge of the remainder of the najib guard. On the night of the 21st June 1858, they reported that 200 rebels came quietly to the Jail and released the prisoners. Thus, the Gaya Jail was broken open thrice during 1857-58. On the 24th June, the Jahanabad thana was surprised, the Government building burnt, the Daroga cut to pieces and his mangled body hung up on a tree opposite the site of the thana. Jodhar Singh even boasted that he would destroy every public building between the Soane and Monghyr.[16] These rebels kept clear of any stations where British troops were posted. They carried on depredations in the scattered thanas. On the 29th June, 1858, a party of rebels under Hetum Singh, a brother of Jodhar Singh, was surprised and defeated in the village of Nimawan by a company of the British force.[17] Meanwhile, Captain Rattary had been despatched on this side of the Soane to deal with these rebels. On the 4th July he succeeded in defeating Jodhar Singh at a place called Kasma. This victory had the effect of clearing the whole of the Gaya district of rebels.

Thus, in 1857-58, disturbances occurred in the Gaya district. Three bands of mutineers passed through the district from the east. One band of mutineers attempted to enter the district from the south, but were forced to retreat towards the Rohtas hills. These mutineers had no concerted programme. They evoked little sympathy in the hearts of the people. Mr. Money rightly observed in his police report of 1857—"Had the Dinapore regiments, the Ramghur Battalion, the 5th Irregulars and the 32nd N. I. gone together, nothing could for a time have withstood them. But a greater than earthly power put divisions in their councils—many chanels absorbed and let off the waters, which rushing along one bed would have proved an overpowering and devastating torrent."[18] Moreover, the mutineers were not equipped with correct and trustworthy information. For six hours two companies of the 32nd N.I. were within nine miles of an English force, but they did not know of it. The 5th Irregulars were not aware till they approached near that Gaya had been re-occupied by the British forces. These facts amply disply the lack of organisaiion on the part of the mutineers who passed through the district The so-called rebels like Hyder Ali Khan, Koshteal Singh, Jodhar Singh and Futteh Singh indulged in indiscriminate plunder.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The result was that they could not enlist the support and sympathy of the people in general. The Zemindars, on the whole, were well disposed towards the British Government. Three Zemindars entertained, for a short time, a few men at their own expense. The Deo Raja had kept up a body of 26 men on the G. T. Road at his own expense. Some of the Zemindars furnished some good men to the Government for appointment as Burkundaze. In the Nawada subdivision, Himat Ram of Hasua and Mahanth Debundas Poory of Bodhhouli were the ardent supporters of the Government and rendered every assistance in their power. Teep Narayan Singh, the Tekayut of Moujah Ektara rendered valuable services to the Government against a plundering gang of rebels. The Government presented him a sowrd worth Rs. 200/- with a suitable inscription upon it.[20] The Sonepura Raja placed a number of his own men for protecting the police chowkee of Munjheewan and prevented Futteh Singh, a rebel from plundering the pergunnah of Belownjah. The Raja had also given some assistance to the authorities in Shahbad and Palamau.[21] Many of the Zemindars lent their elephants to the Government for service against the rebels. Out of about sixty elephants in the district, the Government got 41 for its own use. People too were generally on the side of the Government. There was no trace of anything like popular movement in the district. The mutineers or rebels had no cunstructive programme. People had become sick of their excesses. As regards the disturbances of the Gaya district Sir F. J. Halliday, the first Lieutenant Governor of Bengal observed—"..... it is tolerably evident that except with a few of the bad characters with whom riot and disorder are a trade and profession, the rebels have here also met with but little sympathy."[22]

REFERENCE

1 Extract from the Police Report of the Patna Division for 1857. 2 *Ibid.*

3 Letter from Mrs. E. Grief to Mr. H. Davies, Dy. Magistrate, Shergatty, 29 July, 1857 (Gaya Collectorate records, 1857).

4 Extract from Police Report of the Patna Division for 1857. 5 *Ibid.*

6 Letter from the Commissioner of Patna Division to the Magistrate of Gaya, 27th August, 1857.

7 Letter from Mr. H. Darries to Off. Magistrate of Bihar, 4th December, 1858.

8 Telegraph messages preesved in the Gaya Collectorate Records Vol. 18 (Issue side).

9 *Ibid.* 10 *Ibid.* 11 *Ibid.*

12 From Money to A. R. Young, Secretary to the Government of Bengal, 10th September, 1857. 13 *Ibid.* 14 *Ibid.*

15 Extract of letter no. 324 dated 12th June, 1857 from Commissioner, Patna Division to Magistrates of districts.

16 Buckland, *Bengal under Lieutenant Governors* Vol. I. p. 93. 17 *Ibid.* p. 94.

18 Extract from the Police Report of the Patna Division for 1857.

19 From Mr. Campbell, Deputy Magistrate, Nawada, to Mr. A. Money, 6th August, 1858.

20 From Secretary to Bengal Government to the Commissioner of Patna Division, 19th December, 1857.

21 From H. Davies, Deputy Magistrate ot Sherghatty to the Magistrate of Bihar, 22nd Dec., 1858.

22 Buckland C. E., *Bengal Under Lieutenant Governors*, Vol. I, P. 159.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

M. PATHAK

GAYA TIRTHA

Introduction

Gaya holds an important place on the religious map of the world. It is the 'Pitri Tirtha' par excellance and commands reverence all over the Hindu domain.

It is located on the high western bank of the river Phalgu, the joint stream of the Mohana and the Niranjana (Lilajana), regarded more sacred than the holy Ganga.[1] Extending from 24°35'36" to 24°50'30" N. latitudes and from 84°57'58" to 85°03'18" E longitudes, it is the fourth[2] city of Bihar. It covers an area of about 30.72 Km.[2] It is an important junction on the Grand Chord section of the Eastern Railway. It is connected with the National Highway No 2[3] by a 32 Km. long modern road at Dobhi. It is now on the Air-map of India. It experiences the Tropical Monsoon type of climate. Summers (40.6°C) are hot and Winters (8.9°C) are cold. The rainy season lasts for about three months.

The city is divided in two parts: (i) Ancient or Andar Gaya (ii) Modern or Sahebganj. The former with Vishnupada temple as its nucleus is the age old settlement of Gayapuri of narrow lanes lined with old mansions of the Gayawalas, the Gayapriests. The latter denotes the administrative, commercial, educational and residential complexes.

History

Gaya occupies a unique place in religio-cultural history of India. Its antiquity is shrouded by mythological obscurity. Long before the Aryanisation of Kikata,[4] the ancient Magadh,[5] it was a seat of a mighty Asura kingdom, Gayasura being the last in the lineage. The legend of Gayasura significantly denotes the cultural conflict between the sedentary non-Aryan people and the robust, mobile and virile Aryans. The motionless body of the vanquished Asura ruler stretching from Gayashira hill to Mahendragiri in Andhra Pradesh and his naval point on the Viraja hill at Jaipur in Orissa denotes the domain of the demon.[6] In this part of India Aryanisation was virtually pioneered by the Vratyas.

During the post-Vedic period, Gaya earned eminence when 'Pinda-dana' ceremony began to be observed in elaborate

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

manner because people at that time had clear concept of heaven and hell. It was incumbent on every son to observe Shraddha to release the spirits of the ancestors from the horrors of hell.[7] By the age of the Great Epics it had been sanctified as a sacred site of paramount importance for pilgrimage and the compulsory 'Tirtha' of Shraddha rites.

In the 6th century B. C., Gaya felt the new religious waves of Jainism and Buddhism. About 10 Km. south of Gayapuri the prince Siddhartha became Buddha under the shade of the 'Bodhidruma', the banyan tree. The mere halting on the Gayashirsha hill or the preaching of the 'Fire Sermon' on the same mount or by taming of the demon Suchiloma in his tower on the Gaya-tank, or even the conversion of the Jatilas of the place did not suffice to convert the city of Gaya into a Buddhist sanctrum." Gaya Shirsha hill like neighbouring region, was open to all without distinction of caste or creed. 'Gaya had been a famous Pitri-Tirtha centuries before Christ.'[9]

Up to the 7th century A. D., the growth of this sacred city remained eclipsed which is clear from the travel accounts of the Chinese pilgrims, Fa Hian (A. D. 409) and Huen Tsang (A. D. 637). The former had seen the city a complete waste within the walls while the latter had found it in a decadent condition. Its subdued religious superiority began to be revived from the 8th century onward. Several majestic temples were constructed and artistic icons were installed therein. Numerous tanks came into existence. All these developments had taken place during the Pala period (8th to 12th century A. D.)[10]

This Gaya Tirtha was visited by several revivers and reformers of Hinduism, such as, Shankaracharya (788-820 A. D.), Ramanujacharya (1017-1107. A. D.), Madhavacharya (1238-1317 A. D.), Vallabhacharya (1478-1530 A. D.) etc. Chaitanya, the Vaishnava reformer, had performed Shraddha here in 1508 A. D. and had received initiation from Shri Ishwarpuri.

The eminent Arab scholar Alberuni (997-1030 A. D.) and the Persian traveller Gurdezi (12th century A. D.), the well known Maithili poet Vidyapati and the erudite scholar Shri Chandeshwara Thakur (14th century A. D.) have left vivid accounts of this place.[11]

It has experienced many ups and downs during the Turko-Afgan and Mughal rules. After the battle of Manpnr (15. 1. 1761) between Shah Alam and East India Company, it passed into the hands of British people. In 1885 A. D. it became the headquarters of the newly formed district of the same name, out of the old districts of Bihar and Ramgarh. In the subsquent year (1886) it became a municipal town. After independence, the city is sprawling towards the west and along the sandy eastern bank of the Phalgu and since Nov. 1956, it has an Improvement Trust.

Religious Outlook

Quite distinct from 'Deva' or 'Loka' Tirthas, Gaya is the prime 'Pitri Tirtha'. A man should desire to have many sons(descendents) in the hope that atleast one of them will undertake pilgrimage to Gaya.[13] It is ranked as the most sacred place for shraddha performance.[14] There is no spot within this holy city where there is not a sanctrum worth visiting.[15]

Gaya kshetra was 5 Krosas (16km) in extent stretching from Pretshila in the north

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

to the sacred Bo-tree at Bodh Gaya in the south. [16] The inner zone was 2.5 krosas (8km.) and the core zone was one krosa (2km.). The Gaya Eulogium suggests that Brahma, Vishnu and Shiva were the principal deities and all other Aryan, male and female deities and Tirthas found their locations here. Gayatri, Sandhya, Savitri, Twelve Adityas, Yama, Eight Vasus, Eleven Rudras, Seven Rishis are Vedic personalities. Vinayaka is another form of Ganesha. Phalguchandi, Mundprishta, Kamakhya, Shmashanakshi and Mangala Gauri are distinct forms of Sahkti. Even Buddha in the form of Dharmeshwara (Lord of Righteousness) is worshipped in Bodh Gaya. All these suffice to prove religious tolerance.

The analysis and classification of the 'vedies' (sacred sites) throws a flood of light upon the cultural exchange, fusion and erystalisation here from the Pre- Aryan and Vedic times. Oldest Aryan Vedies are located in Brahma Gaya and in its close vicinity lie the vedies of Sun and Vama. The holy spots of Shiva and Shakti are on the line of demarcation between those related with the Asuras and the Aryans. Vishnu-vedies were last to be added. The tree-worship of Akshayavata and Ashwatha denotes the tribal form of worship accepted by the Aryans. For bathing and tarpana the river Phalgu and its affluents and the tanks like Vaitarani, Brahmakund, Brahmasarowar, Uttarmanas, Ramasagara, etc. were estimeed with great veneration. The Shiva, Shakti, Saur, Ganapatya together with the Vedic form of worship, and Brahmanism and the later Vaishnavism have been co-existing quite peacefully. Gaya, in brief, is a grand conglomeration of varied forms of Hinduism.

Pilgrims generally perform Gaya Shradha in three ways : (i) *Eka Drishti Gaya*—It comprises three vedies, viz, Phalgu, Vishnupada and Akshayavata. Majority of Pilgrims visit only these three vedies. (ii) *Darshani Gaya*—Pilgrims have to move to 35 vedies. (iii) *Khapara Gaya*—In this 'Pinda dana' is performed at 45 vedies where only the rich and leisured pesons can afford to spend money and time to complete it within 15 or 18 days.

Everyday is regarded auspicious for Gaya Shradha.[17] But there are well marked periods [18] for it. Vayu Purana laid down *Mina* (March), *Mesha* (April) *Kanya* (October), *Karmuka* (December) *Ghata* (February). According to the degree of auspiciousness the order is : *Virgo* (Sept -Oct.), *Pisces* (March-April), *Sagittarius* (Dec. Jan.), *Aries* (April-May), and *Aquarius*. The first three periods correspond to the three seasons when the pilgrims flock to this sacred city. The seasons are (i) *Ashwina* (Sept.-Oct.) (ii) *Pausha* (Dec. Jan.) (iii) *Chaitra* (March-April) which are significantly styled *Fasils* or season of harvest. [19]

Hinduism is not sectarian or regional rather it embraces in its fold the whole universe, whatever life it contains as a creation of one Brahma. Every Hindu family is a partnership between the living and the dead. The Shraddha is intended to impress the idea of family solidarity on the members.[20]

REFERENCES

1 *Gaya Padodakan Vishnoh Phalgurhyadi Gadadharah swayam hidravarupena tasmad. Gangadhikam Viduh.* 2 *1981 census.* 3 *Historical Grant Trunk Road.* 4 Kikata,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

the land of kikatas, a tribe hostile to Rigvedic singers (*Rigaveda* 53.14) Kikateshu Gaya punya. Punyan Rajgrham vanami chyavanashraman punyam nadi punya punah punam. *Vayu Purana* 108-73. 5 The earliest mention of Magadh is found in *Atharva veda* 22.14. Later texts disclose a clear antipathy to the people of Magadh. *Katyayan Shrauta Sutras*: VIII-6.22 & XXII 4.22, 6 Pathak, M. Pauranic Geography of Gaya. *Transactions of the Indian Council of Geographers*, Patna 1968, Page 59. 7 Kane, P. V. *History of Dharmashastra*. Vol IV Poona 1953 P. 159 8 Barua, B. M. *Gaya and Bodh Gaya*. Vol. I Calcutta 1931 P. 121. 9 Kane, P. V. *Hist. of Dharmashastra* P. 660. 10 Chakravarti, Rai Bahadur Manmohan. *J. A. S. B.* Vol. LXIX Pt. I, 1900, PP 190-195. 11 Singhal, G.D. *Pilgrimage Geography of Greater Gaya*, Ph. D. Thesis, M.U., 1972 P. 91. 12 '*Bihar and Orissa Municipal Act*'. 1922, P. 8. 13 Eshtavya bahavah putra yadyeko Gayam Vrajet, *Vayu Purana* – 105.10. 14 Pitritirtha Gaya nama Sarvatortha varam Shubham. Matsya Purana 22-31. 15 Gayayam na hi tatsthanam yatra tirtham na vidyate Sanidhyam sarva tirthanam Gaya tirtha tato varam. *Vayu Purana*-105-47. 16 *Vayu Purana*, 108-67-69. 17 *Ibid*, 105.29, 106.56. 18 Mine Meshe sthito surye kanyayam karmukeGhate Gayayam durlabham loke vadanti rishayah sada, *Vayu Purana* 105-47. 19 Barua, B.M., *Gaya and Bodh Gaya* Vol. I, Calcutta, 1931 P. 30. 20 Dr. Radha Krishnan. *Hindu view of life P. 84*.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

K. CHAUDHARY

ON VISHNUPADA OF GAYA

The Rigveda contains valuable records of the beliefs and practices of the early Aryans in India. In its the name of Vishnu occurs about 100 times and he claims five whole hymns. The most significant trait of Vishnu is his taking of three strides[1]. It has been mentioned about a dozen times in the Rigveda. His highest step is conceived as his favourable abode and is also said to be the home of the departed spirits[2].

Yaska in his Nirukta has explained the three strides of Vishnu with the help of Shakapuni and Aurnavabha[3]. Yaska has observed "Vishnu strides over this, whatever exists. He plants his step in a three fold manner, i.e. 'for the three-fold existence, on earth, in the atmosphere, and in the sky', according to Shakapuni, or; 'On the hill where he rises, on the meridian and on the hill where he sets.' (Gayashirasi) according to Aurnavabha".

Shakapuni has been quoted in the Nirukta some fourteen times[4]. The author of the Brhad-devata has also quoted some Shakapuni about seven times[5]. Shakapuni has been quoted in some comparatively later works also[6]. Shakapuni of all these works is supposed to be one and the same as he has been quoted in all the texts only in connection with the Vedic explanations. It is possible that in a period prior to Yaska and to the author of the Brihad-devata, lived some renowned scholar of the Vedas, who was called Shakapuni. He was an authority on the Vedas. Kunhan Raja has suggested that this Vedic scholar Shakapuni was an author of Nirukta, which preceded the Nirukta of Yaska[7].

The other scholar quoted by Yaska is Aurnavabha, who has been quoted in all four times in the Nirukta[8], On all these places, he has been taken as an authority. K. P. Jaiswal[9] was probably the first scholar to suggest the identification of this Aurnavabha with another mentioned in the Brihadaranyaka Upanishad[10], followed by J. C. Ghosh[11]. The two Aurnavabhas may possibly be one and the same person, and it is certain that the Aurnavabha quoted by Yaska was one of the greatest authorities on the Vedas in a period anterior to Yaska.

Yaska is known to have lived in a period prior to that of Buddha[12], and

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Aurnavabha lived even earlier than Yaska[13]. It may be observed that both of these traditions, one of Shakapuni and the other of Aurnavabha, are quite old one, at least belonging to a period prior to that of Yaska.

According to Shakapuni, Vishnu plants his step on 'prithivi', 'antariksha' and 'divi'[14]. Durgacharya has explained 'prithivi' as earth (in the form of terrestial fire) and 'divi' as sky (in his sun form in the sky)[15]. Vishnu's step in the 'antariksha' has been explained by Durgacharya as 'vaidyutamana' i. e. in the form of lightning[16]. The Mahabharata locates 'tirthas' in 'antariksha'[17]. It pointedly state that the Pushkara tirtha was in 'antariksha'[18]. Hence it, appears that in ancient India 'antariksha' some times meant a mountain peak almost reaching upto the sky[19]. Therefore, it is observed that Vishnupada in 'antariksha' meant, the place of Vishnu bearing his foot-print and this place was always a high peak of some mountain. Yet the evidence of the Mahabharata only indicates a later interpretation of the term 'antariksha'. As such Shakapuni interpreted the three steps as associated with the course of the sun through the three divisions of the universe i. e. prithivi, antariksha and divi. This view gets support from the later Samhitas and the Brahmanas, and is accepted by Bergaigne, Macdonell and others[20].

Yaska writes--'Samarohane Vishnupade gayashirasitya-urnavabhah'[21]. The view of Aurnavabha has been translated by L. Swarup as follows "On the mountain of sunrise, on the meridion, and on the mountain of sunset"[22]. But the purport of this view appears to have been more clear to the scholars of the yore than to the scholars of this age[23]. The commentary of Durgacharya runs—"Samarohane udaya-girav udyan padam ekam nidhatte 'Vishnupade' madhyandtne ntarikshe 'gayshirasy' astamgiravity Aurnavabhah acharyo manyate"[24]. This has been translated as "He plants one foot on the 'Samarohana' (place of rising), when mounting over the hill of ascension; (another) on the 'Vishnupada', the meridian sky; (a third) on the 'gayashiras', the hill of setting"[25]. From the commentry of Durgacharya it is explicitly clear that Samarohana, Vishnupada and Gayashiras were the name of places. The name Samarohana parvata in the ancient period just like Udayagiri may have been given to some mountain of sunrise, which began to be called Samarohana in general having dropped its later part i. e. parvata. As the Greek gods were Olympians, hence Vishnu the solar god's stepping on hill tops is not strange.

Some scholars have interpreted the opinion of Aurnavabha as given by Yaska as 'a further elucidation of Shakapuni's view'[26]. The reasons forwarded by them are far from being convincing. Actually it is another interpretation of the three steps of Vishnu and quite an independent one, Shakapuni was a famous Vedic scholar of yore. It is clear not only from his being quoted in the Brihad-devata and Nirukta, but also from his being quoted in other texts, and if we have to agree with C. Kunhan Raja, Shakapuni even wrote a Nirukta, which preceded the Nirukta of Yaska.

So far Aurnavabha is concerned, who has been quoted only four times by the Yaska and is not known in the context of the Vedic interpretation from any other text,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

he appears to be a relatively new scholar in the field of the Vedic studies. He probably belonged to the Upanishadic age. Shakapuni and Aurnavabha, the two predecessors of Yaska and Vedic scholars of great repute, were probably divided by a big gap of time. As such, we can not expect Aurnavabha to be merely elucidating on Shakapuni. He was definitely explaining the three steps of Vishnu in which context his opinion has been given by Yaska. Had it been an explanation of Shakapuni's view, there was no need of quoting Aurnavabha. Yaska was competent enough to do it himself. Yaska has given the opinions of the two scholars, only because they held divergent views. This shows the significance which Yaska or during his age, was attached to the views of the two scholars.

If the suggestion of K. P. Jaiswal and J. C. Ghosh about the identification of the Aurnavabha quoted by Yaska, with the Aurnavabha of the Brihadaranyake Upanishad is accepted, in that case for properly following the opinion of the Aurnavabha we have to keep an eye on the position of Vishnu during the Upanishadic period. In the Upanishads, Vishnu[27] has been identified with sacrifice (a feature of the Brahmana period) and Brahman. He has been associated with all the major gods like Prajapati and Indra. In the Taittiriya Upanishad, the wide striding Vishnu is asked to be propitious[28]. His highest step gets a very significant place in the Katha Upanishad[29]. In the Maitri Upanishad Vishnu has been described as 'all supporting'[30]. Significantly enough the most characteristic trial of Vishnu as the promoter of conception is found in the Brihadaranyaka Upanishad[31].

Thus, it is observed that the solar aspect of the Vedic Vishnu, by the time of the Upanishads, had gone into oblivion. Yet his association with the sacrifice (special feature of the Brahmana literature) [32] was ripe in the memory. The wide-striding propitious Vishnu, as promoter of the human embrayos [33] had become exceptionally gracious and as such very close to human life. After safe deliveries, thanks giving may have been a routine, for which some concrete object may have been required by the lower stratum of the society, which had nothing to do with the philosophical interpretations of the highest step of Vishnu by the Upanishadic seers. His title 'girikshit' mountain-dwelling, and 'giristha' mountain abiding [34] and concept of his paramapada, [35] in this age of Bhakti [36] may have helped in establishing some of the mountain peaks as his abode, and the importance of his paramapada may have led in the emergence of spots on hill for his worship in the pada-form i, e. the symbolic representation of Vishnu and his worship [37] in this form might have been popular in the Upanishadic period amongst the lower classes of the society.

When we analyse Yaska in this light we come to the following conclusions :—

1 Yaska has placed Shakapuni first,

(a) Who was an old authority on the Vedic interpretations; and

(b) Who explained the three steps of Vishnu with great stress on the solar aspect of Vishnu, as well as, keeping in view the sun as a natural phenomenon.

(c) It represents an earlier layer of the Rigvedic thought.

2 Aurnavabha has been placed second,

(a) He probably belonged to the Upanishadic period, which was posterior to Shakapuni;

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

(b) He in accordance with the developments in his age (i. e. with symbolic sacrifices, bold acceptance of Bhakti, which in turn was associated with the puja ritual) has associated the three steps of Vhisnu, with the three places (which was the need of the time) one of them being Gayashiras.

(c) This is in tune with the Upanishadic concept of Vishnu as wide-striding, propitious and very closely associated with the human life.

(d) This represents evolution in the concept of Vishnu's three strides.

2

Scholars have accepted Samarohana, Vishnupada and Gayashiras, where according to Aurnavabha (and Durgacharya's commentary on it) Vishnu placed his steps at three different places [38]. Scholars have located all the three at Gaya and its neighbourhood[39], which may or may not be correct.

So far Gayashiras is concerned, it as a name of a place is known to us from the Mahabharata [40], Vishnu Dharmasutra[41], Vamana Purana[42], Skanda Purana [43] and the Buddhist work Mahavagga [44]. The latest mentioned work contains a clue for the location of the place. It states that Buddha for a short period dwelt at Uruvela. From Uruvela he went to Gayashisa, which is the Pali equivalent of Gayashirsa, and which in the Nirukta has been called as Gayashiras.

Ancient Gaya was divided into three tracts viz. Uruvela, Nadi and Gaya after the names of the three famous Kassapa leaders[45]. Buddhaghosha in his commentry on the Anguttara Nikaya has noted the fact that Gaya Kassapa came to be known as such after his becoming an ascetic at Gayashirsa[46]. The Gaya tract was by the side of the river of the same name, sometimes also called as Phalgu[47]. Thus, it is suggested that the Gayashiras of the Nirukta may be identified with the present day Gayashirsa, which exists adjacent to the river Phalgu in the Gaya district. Vishnu-worship in the pada-form (foot-print form) is still prevalent in Gaya[48].

Kassapas who were closely associated with Gaya were well known as great sacrificers[49]. They offered even hundreds of creatures in the sacrifice[50], Uruvela (a Gaya tract) was the most important centre of their activity, because of the seniority, as well as the high personality of Uruvela Kassapa. Urvela Kassapa[51] used to perform a great sacrifice at the beginning of the wet season every year[52]. The Buddhist account credits the masses of Anga and Magadha[53] not only with their visiting the place. but also with the abundant supply of the food stuff, which sufficed (the needs of the sacrifice as well as) the congregation[54]. According to Vayu Purana, a king named Dharmaratha, grand father of Dasharatha, and king of Anga, performed sacrifice at Vishnupadagiri[55]. As the Buddhist account credits the people of Anga and Magadha for their close association with Uruvela Kassapa and the sacrifice he used to perform, hence it is suggested that the Visnupadagiri where Dharmaratha, the king of Anga performed a sacrifice, may be identified with the Vishnupada mountain of Gaya, which was also adjacent to the kingdom of Anga. The performance of sacrifice at Gaya by the Kassapas and Dharmaratha may have had

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

some association with the worship of Vishnu in the form of sacrifice.

Gaya as a place of the Shraddha ceremony is well known. In the Mahabharata[56] it is said that the food offered to pitras at the holy river Phalgu (in Gaya), the hill Gayashiras and the Akshayavata becomes inexhaustible. Smrities also refer to Gaya as an important place for offering to pitras[57]. Vayu and other Puranas inform us, that one who performs Shraddha at Gaya becomes free from the debt due to pitras[58].

The Vishnumriti contains information about different holy spots of Gaya i. e, Gayashirsa, Akashayavata and Phalgutirtha[59]. The Mahabharata contains a reference to a Savitrpadam at Gaya[60]. It has been suggested that Vishnu is described here in the form of Savitr, the sun-god[61]. We understand that it represents coninuity of the Shakapuni tradition in which Vishnu was taken as sun in the form of natural phenomena. This is why the author of the text thought Savitr to be more appropriate than Vishnu. and as such he preferred to call it Savitr-padam instead of Vishnupadam. A Basarh (Vaishali) seal with legend Shri—Vishnupadasvaminarayana (Narayana. the lord of the illustrious Visnhupada) in early Gupta characters[62], shows that a Vishnupada temple existed at Gaya during the fourth century A. D.

According to some scholars, Gaya region was known to the Rigvedic seers as Kikata[63]. Gaya as a personal name, with which the name of the place may be associated[73] is referred to in two hymns of the Rigveda[75], one verse of the Aitareya Brahmana[66], and in a verse in the Atharvaveda[67]. Besides these. Gaya as a descendent of Atri[68], author of Rigveda[69]; a rajarish[70]; son of Ays[71], Amurtarayas[72]; of a Manu[73], and others is also known to us[74]. Jaina writers have mentioned two early kings of Rajagriha, namely Samudra-vijaya and his son Gaya[75]. Thus it is observed that the early name of the Gaya region was Kikata. Later on when a Rigvedic seer stayed at this place and prepared a hymn, the place was named after him as Gaya. Many seers, kings and others were later named after him as Gaya, including one king of Rajagriha mentioned by the Jaina writers. Buddha is known to have visited the hermitage of the sage Gaya[76].

The Majjhima Nikaya[77] has mentioned Gaya as chief amongst the oldest rivers in which people bathed to get rid of their sins. It also records that the Gaya tract was by the side of the river of the same name, sometimes also called as Phalgu[78]. Buddhaghosha has used the word Gaya for the locality, as well as, for a bathing place near it. Hinen-tsang[79], theChinese traveller has also mentioned the purifying merit of Gaya. Dharmapala in his Udana commentry[80] has mentioned Gaya-tirtha the bathing place, supposed to possess the power to wash away sins.

It is observed that the Gaya tract may have been a centre of human habitation from a very early period, as there was sufficient drinking water available. The water and the fertile land attracted people to this place. After the Rigvedic seer Gaya, the river was also named Gaya, but its old name however continued as Phalgu. The concept of washing away the sins, may be a very old thought, preceding the Rigvedic period, as other ancient rivers also thought to possess such power. This may have been later propaga-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mel

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

-ted by the fire sacrificers of Gaya, inorder to attract the people of the neighbouring region of Anga, Magadha and other places, so that sufficient funds may be collected for the sacrifice.

Gaya was a famous centre of sacrifice. People of the neighbouring region of Anga and Magadha recognised it as such during the period of the Kassapa brothers, who in age were senior to Buddha. It is presumed that when the Kikata pradesh came into close contact of the Aryans, and the Rigvedic seer Gaya established his hermitage over here, the place began humming with life alongwith the sacrificial ritual called Yajna. This practice continued, and the old fame of the association of the region with sacrifice was the main moving force, for the people of Anga and Magadha, during the age of the Kassapa brothers[81]. They supplied, because of the old fame, so much material, as not only to suffice the needs of the sacrifice, but also that of the congregation over there. This also indicates the role played by the people of Anga and Magadha in the evolutian of Gaya, as a centre of religious significance.

Gaya was associated with asceticism. Kassapas became ascetics here. Siddhartha attained Buddhahood at Gaya. This is why, the locality was named after him as 'Bodha-Gaya'. He preached Gaya-sutra at Gaya-shirsa[82]. Thus it is observed that the place Gaya has continued to be a centre of religious significance from the period of the Rigvedic seer Gaya, if not still earlier.

During the period of the Brahmana literature, Vishnu was identified with Yajna. This may have been the real reason of the associatiation of Vishnu, the Vedic god with Gaya an important regional centre of Yajna. The hill on which Yajnas were being performed, may have slowly emerged as a place of Vishnu, in his pada form.

Significantly enough Mahabharata has recorded that the pada (feet) of Narayana-Vishnu were worshipped by the shudras [83]. The local people, who represented the lower stratum of the society, were not following the path of Yajna, but were adhering to the path of Puja and Bhakti. For them Vishnupada was of immense value.

Some natural hollow and fetish in the rocks or hill[84] (near which Yajna was being performed), and which in turn was being worshipped by the lower stratum of the society might have been grouped, then associated and ultimately identified with the Vishunpada. The natural outcome of it was the emergence of the hill as Vishunpad-agiri.

Ancestor worship is an old practice, which has come down to the civilised world as legacy of the stone age man. Amongst ancient hunters, the Tasmanians possessed stones, which represented absent friends 'plenty long way off' [85]. These stones were carefully painted and arranged. There are still a good number of aboriginals with divergent customs in Bihar. It is presumed that some form of ancestor worship may have existed in the lower stratum of the society amongst the people of Bihar. In the Gaya region this may have existed from a period prior to the association of Vishnu with Gaya.

Vishnu as sacrifice got identified with the hill (in his pada form, on the basis of

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

the concept of his paramapada) in the Gaya region, which was famous amongst the neighbouring region for this puruose. Vishnu's highest step was considered the home of the departed spirits. This aspect might have been considered by the priests, as well as, by the people of the lower stratum of the society. This might have led in associating the two, and ultimate identification of the two. This helped in the evolution of the practice. It naturally developed into what we call Shraddha today.

Thus, it is observed that Vishnu in his pada form was worshipped at Gaya, during the period of Aurnavabha, who preceded Yaska. The practice was prevalent amongst the lower stratum of the society, which has been classed at one place in the Mahabharata as 'Shudra'. The practice was in vogue at Gaya during the early centuries of the Christian era and it still continues.

However, there are references, of Vishnu's worship in pada form, from other places also, inside India, as well as, from South-East-Asia, belonging to the early centuries of the christian era, specially to the Gupta period[89]. This shows the dominent role Vishnu was playing in the life of the people. In this context, the significance of the oldest Vishnupada of Gaya requires proper evaluation.

References

1 *RV*. I. 154. Louis Renou has traced Iranian parallel of the three strides of Vishnu, in the three strides of Amesha-Spenta. L. Renou, *Veaic India* (Calcutta, 1957), p. 66. The three strides of Vishnu are referred in the *Samveda* (I.222), *Atharvaveda* (7.26.4) and *Vajasaneyi Samhita* (5.15) also. For Amesh-Spenta see The *Journal of Theological Studies*, Vol. XLIV (1943), pp. 119f.

2 *RV*. I. 154.6.

3 *Nirukta* XII. 19. *Bibliotheca Indica*, Vol. IV. pp. 281f.

4 *Studies in Humanities*, Vol. VI, p. 27.

5 *Op. cit*. p. 28.

6 Skandasvami's commentary on *RV*. I. 46, 13; I. 52. 14; I. 83. 5; and I. 113. 18. *Nirukta*-Samuccaya of Varuruci IV. 8. and in Madhava's Commentry on *RV*.

7 C. Kunhan Raja *A Note* on Shakapuni (*Kuppaswamy Commemoration Volume*), p. 82.

8 *Nirukta* I. 2.26; II. 7.15; III. 12,1; and IV. 12.19.

9 *Ind. Ant*. 1918, p. 84.

10 The Upanishadic Aurnavabha was a pupil of a teacher named Kaundinya. One Kaundinya took perilous voyage to South-East-Asia in ancient period and is well known for the dissemination of Indian Culture there. The similarity in the name is significant. It requires proper study.

11 *Ind. Cul*.. Vol. I (1934-35), p. 516.

12 *SBE*. Vol. XIII, pp. XXII-XXIII.

13 Winternitz. *History of Sanskrit Literature* (English Translation), Vol. I, p. 69.

14 *Nirukta* XII. 19.

15 J. Muir, *OST*, Vol. iV, p. 65.

16 *Studies in Humanities*, Vol. VI (1962), p. 29.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

17 *Mbh.* Vanaparan, 83.193.

18 Op. Cit,, 203.

19 *Studies in Humanities*, Loc. Cit.

20 Macdonell, *Vedic Mythology*, p. 38; Keith, *The Religion and Philosophy of the Veda and Upanishada*, Vol. I. p. 108.

21 *Nirukta* XII. 19.

22 L Swarup, *The Nirukta trans.* (London, 1921), XII. 19, p. 190.

23 Max Mullar, Translation of *Rigveda* Vol. I, p. 117; J. Muir, *OST*. Vol. IV, p, 66.

24 See also B.M. Barua, *Gaya and Buddhagaya*, Vol. I, p. 85; J. C. Ghosh, *Ind. Cul*, Vol, I (1935-36), p. 517; J. C. Ghosh, *JBORS*, Vol. XXIV (1938), pp. 89-92; P. V. Kane, *History of Dharmashastra*, Vol. IV, pp. 646f.; D. C. Sircar, *JIH*, Vol, XXXII (1954), p. 228; D. C. Sircar, *Geo. Anc. Med. India*, p. 229; K. Chaudhary. *Studies in Humanities*, Vol. VI (1962), p. 30; S. Jaiswal, *The Origin and Development of Vaishnavism* (New Delhi, 1981), pp. 245-46.

25 Muir, *OST*, Vol. IV, p. 65.

26 Suvira Jaiswal, *The Origin and Development of Vaisnavism* (New Delhi,1981), p. 246.

27 K. Chaudhary, *Origin and Development of Vaisnavism*, pp. 51-53.

28 *Taitt. Up.* I. 1. I and I. 12. I; Radhakrishnan, The *Principal Upanisads*, p. 527 and pp. 534-540.

29 *Katha Up.*, I. 3. 9; Radhakrishnan, *op. cit.*, pp. 624 f.

30 *Maitri Up.*, V. I.; Radhakrishnan, *op. cit.*, pp. 826 f.

31 *Brinr. Up.*, VI. 4.21.

32 K. Chaudhary, *op. cit.*, p. 50.

33 *RV.*, VII. 36.9; K. Chaudhary, *op. cit.*, pp. 41-42.

34 *RV.*, I. 154.2 and 3; K. Chaudhary, *op. cit* , p. 39.

35 K. Chaudhary, *loc. cit.*

36 See K. Chaudhary, 'Studies in the Origins of Bhakti', being published in *JBRS*.

37 K. Chaudhary, Puja Ritual and Indus *Evidence*, being published in *JBRS*.

38 B. M. Barua, *Gaya and Buddha-Gaya*, Vol. I, pp. 85 f.; J. C. Ghosh, *Ind. Cul.*, Vol. I (1934-35), p. 517; P. V. Kane, *History of Dharmasastra*, Vol IV (Poona, 1953), pp.646 f.; D. C. Sirkar, *JIH*, Vol. XXXII (1954), p. 288; Sirkar, *Geo. Anct. Med. India*, p. 229.

39 P. V. Kane, *op. cit.*, p. 47, B. M. Barua, *op. cit.*, p. 246.

40 *Mdh.*, Vanaparva, 87.11; 95.9.

41 *Visnu Dharma Sutar*, 85.4.

42 *Vamana Purana*, 22.20.

43 *Skanda Purana*, I.2. 13-21.

44 *Mahavagga*, I.21. 1; *SBE*, XIV, p. 134.

45 B. M. Barua, *Gaya and Buddhagaya*, Vol. I, p. 85.

46 *Manoratha Purni*, Siamese Ed., Part I, p. 324.

47 *Papanchasudani*, Siamese Ed., Part I, p. 145.

48 Barua, *op. cit* , p. 246.

46 *SBE*, Vol. 30, p. 244; *Sat. Br.*, XIII. 7. 15; *SBE*, Vol. 44, p. 421.

50 *SBE*. Vol. 36, p. 16; *The Questions of King Milinda*, IV, 5. 17.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

51 *Manoratha-purni*, Siamese Ed., Pt. I, pp. 325-26.

52 *Vinaya Mahavagga*, p. 27; Cf. Barua, *op. cit.*, p. 98.

53 B. C. Law, The Anga in Ancient India, *JBBRAS*, Vol. 20 (1944), pp. 45-51.

54 *Vinaya Mahavagga*, p. 27.

55 *Vayu Purana*, Uttara, Adhyaya-37, 101-102.

56 *Mbh.* Vanaparva, Ch. 87, and 95.12.

57 *Vasistha Dharma Sutra* XI. 42 & Ch. 85.65-67; *Shankha Smriti* 14.27-28; *Lakhita Smriti* 12-13; and *Matsyapurana* 22,4-6, see also. Studies in Humanities, Vol, VII (1963), p. 18 and food note.

58 *Vayu Purana* 105.30; 108 60 and 90; 109.41; *Naradiya* (Uttara) 44.54; *Garuda Purana* 1.83.

59 *Vishnusmriti*, Chapter 85. As this passage is in prose hence it is presumed to represent, the oldest stratum of the text.

60 The Tirthayatra section of the *Vanaparva*, *Mbh.* III. 82.81.

61 Kane, *Hist. of Dharmasastra*, Vol. IV, p. 649; S. Jaiswal, *op. cit.*, p. 247.

62 *ASIAR*, 1903-04, pp. 10-11, Seal No. 31; K. Chaudhary, Origin and Development of Vaisnavism, p. 183.

63 Raychaudhuri, *Studies in Indian Antiquities*, pp. 17-19.

64 D. C. Sircar, *Geo. Anc. Med. India*, p. 299.

65 *RV.* X. 63.17; 64.17. See also Macdonell and Keith, *Vedic Index* (Varanasi, 1958) pp. 219-20.

66 *Ait. Br.* V, 2-12.

67 *Atharvaveda* 1.14.4.

68 *RV.* V. 92.19.

69 *Loc. cit.*

70 *Mbh.* I. 3.4.4.9.13.

71 *Mbh.* I 360.

72 *Mbh.* VII. 64.

73 *Harivamsa* 880; *Bhagavata Purana* II.

74 *Studies in Humanities*, Vol. VII (1963), p. 17.

75 *SBE*, XLV. p. 86.

76 Asvaghosh, *Buddha Charita*, XII 87-88,

77 *Majjhima Nikaya*, Vol. I, Vatthapama Sutta,

78 *Loc. cit.*

79 Beal, *Buddhist Records*, Vol. II, p. 113.

80 *Udana Commentry* PTS. pp. 74-75; of, *Sutta Nipata Commentry*, PTS, I, p, 301,

81 C. S. Upasak, The Role of Uruvela Kassapa in the spread of Buddhism, *Studies in Pali & Buddhism*, Ed. A. K. Narain (Delhi, 1979), p. 369-374.

82 *Angultara Nikaya*, Vol. IV, pp. 302 f; *Mahavagga*, I. 21. I; *SBE*. Vol. XIII, p. 134.

83 Padan Shudra bhajante me. *Mbh.*, III. 187.13.

84 S. Jaiswal, *op. cit* , pp, 247 and 249-50,

85 W. J. Sollas, *Ancient Hunters* (Macmillan, 1924) has given details about the Tasmanians, all of whom are dead. See also, H, E, L, Meilersh, *The Story of Man* (London, 1959), p. 162.

86 The Mahabharata contains some six references to other places associated with Vishnupada, three of which speak of it as a spot on the top of a northern

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

hill. (*Mbh*., III.81.87; 130 8; V. 109,19; VIII.57.32; XII.29,31; XIII.126.39). In the Ramayana, Vishnupada has been located in Valhika, a mistake fer Vahika, on the river Vipasa (*Ramayana*, II, 68. 19; Sircar, *Geo. Anct. Med. India*, pp. 185f.). The Mehrauli piller inscription of king Chandra mentions a Vishnupadagiri, (Sircar, *Select Inscriptions*, Vol. I. pp. 185f.). A Vakataka inscription has recorded gift of land by one Narayanaraja for the maintenance of a charitable hall in honour of padamula of Mahapurusa i. e. Vishnu (Mirashi, *Ep. Ind.*, Vol. XXIII, No. 14). An inscription of 423 A. D. discovered at Nagari, informs that three bania brothers erected a shrine for the footprints of Mahapurusa i. e. Vishnu (*MASI*, No. 4, pp. 120-121). The Nala king Skandavarman's Podagadh inscription of the fifth century A. D. has recorded establishment of a padamula of Vishnu (*Ep. Ind.* Vol. XXI, No. 24, line 5). The *Rithpur copper plate inscription* of the Vakataka queen Prabhavatigupta records ramagirisvaminah padamulat i. e. the foot of (the deity) Ramagirisvamin (Sircar, *op cit.*, pp. 415f.). Another inscription of the same queen records bhagavatpadamule nivedya (*Ep. Ind*, XV, No. 4. line 14). Kalidasa in his work Meghaduta has paid homage to the hills of Ramagiri, which contains the foot-prints of Raghupati i. e. Rama son of Dasaratha. This Ramagiri has been taken to be modern Ramtek near Nagpur (*Meghaduta*, V. 12; see also Mirashi, *Ep. Ind.*, XXIV, p. 12 fn.).

An inscription of the fifth century A. D. of the Kambuja king Gunavarman mentions the affixing of a padamula i. e. foot-print in the earth of the lord Chakratirthasvamin, described as Hari, Narayana and Madhava i. e. Vishnu (sthapitam bhagavato bhuvi padamulam, Majumdar, *Ins. Kambuja*, V. 8). A rock inscription of Java, which is engraved below the footprints of king Purnavarman (fifth cen. A. D.) compares the feet of the king [probably because the king's toes had lotus marks and according to *Vishnupurana* (V. 13. 32), the foot steps of the bhagavat are marked with dhvaja (flagstaff), abja (lotus), vajra (diamond), ankusa (goad) and yava (barley)] with those of Vishnu (*Ep. Ind.*, XXII, No. 2. line 4.).

□

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and ... Digitization eGangotri

M. M. CHAKRAVERTY

A RELIGIOUS STUDY OF GAYA

The history of Gaya affords an interesting history of the evolution of the different religions and cultures of the various races inhabiting Gaya-region in different periods, Viz., the Kikatas, Asuras, Kolas, Aryans, etc. This pre-historic holy land had witnessed the rise and fall of many ancient civilisations which left behind distinctive marks on the land and its people. The earlier civilisations of the *Vratyas*, *Asuras*, etc were submerged in the midst of the superior civilisations of the Aryans who assimilated many non-Aryan beliefs, cults and traits, e. g., the worshipping of the sacred footprints and of the revered ancestors. The Asura-religion alluded to the 'Tantricism' of the Gaya-region.[1] The principle and practice of 'Hata Yoga' had their origin in Vratyaism[2].

The province of Bihar has a glorious history of its own, "Among all the nations of the epic-age the Videhas of Mithilla were considered the most cultured. And when the nations of the epic age diclined in power, the Magadhas of South Bihar took the lead, and were, for centuries the most powerful and the most enlightened nation in India".[3]

In the Vedic period, the ancient name of Magadha was Kikata (*Rig Veda*, III, 53. 14) which was then inhabited by the non-Aryan primitive tribes of Vratyas and the Asuras, having their distinct religions and cultures. The old districts of Patna and Gaya formed this territory proper. In *Atharva Veda* (I. 14. 4.), Gaya appears to be a wonder-worker or a sorcerer, In Vedic Samhitas, the Asuras and the Rakshsas are credited with tricks and magic (*Rg*. VII. 99. 4; *Ath*. IV, 23, 50). It is not difficult to imagine how a sorcerer named Gaya could have been transformed into Gaya-Asura later on in the Pauranic age, it is worthy to note that near Brahmayoni, Pretsila and other places of the Gaya district "signs of Kola-civilisation are still apparent."[4] Gaya was connected with the 'Gayatri-worship. *Brihat Aranyaka Upanisad* (V. 14. 4.) invokes Gayatri as "Gayatri preserves the Gayas, the Pranas are the Gayas,"

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The land of Magadha (ar Magah), which includes Gaya, might have been derived from the word 'Mâgi', the Fire (or Sun) worshipping priests of the ancient Iran, who had formed a colony in the Estern India, particularly in Magadha, since the remote time. And they are called 'Maga Brahmanas' (*Vishnu Purana*, 2, 4, 69-71). It is assumed that the inferior class of 'Brahmabandhu Brahmanas' of the Magadha country, mentioned in the *Srauta Sutra* and other hoary scriptures, these 'Magis' were latterly absorved in Brahmanic fold. They are also known as 'Saka-Dvipi Brahmanas' (*Mahabharata*, Vishma Parva, 12,33; *Bhavisya Purana* Brahma Parva, 139, 142; etc.) They originally came from Sakasthan (or Sjestan). These Sun-worshipping priests settled down in the Gaya district and also in other parts of eastefen India as is evident from the inscription dated 1137-38 A.D. found at village Govindpur in Gaya district[5] . The ancient Parsees had their temple at Gaya[6] . "At Gaya we find presence of the Sun-temple, the Sun-cult and Sakadvip-Brahmanas, and it is quite likely that some beliefs of the Magian priests and cults of ancient Iran might have been absorbed into the general system of Hindu belief and practice,"[7] , The Gaya-wal-Pandas of Gaya declare themselves as 'Agnihôtri Brahmanas' which signifies the worshippers of Fire (or Sun)[8] .

During the earlier Vedic period, Brahmanas of Aryavarta showed a marked antipathy towards the land of Magadha and its people (Rg, III, 53, 14), most probably, of its being the seat of other rival religions of Vratyaism, Asuraism, Buddhism, Jainaism, etc, who had less regard for the Brahmana-faith[11]. Baudhayana (6th. Century B. C.) mentioned Magadha as a country inhabited by non-Aryan people[12]. Gaya, as a notable place for funeral obsequies, rose to eminence during the post Vedic period, particularly, in the Pauranic age.

In the earliest stage, nature-worship gained predominance in the land of Gaya when the rocks, the streams, the trees, etc, were venerated as sacred objecs.

All through the ages, in the rural area of the Gaya district, the mass of the lower caste Hindus of the aborigi nal descent have apprehensive intelligence, characterised by the fear of the unkown and the invisible and the dread of the supernatural powers with horrid shapes. Such primitive beliefs and cults originated in the demonology prevalent among the non-Aryan people of this place, The illiterate and the unenlightened village people cannot associate together power and benignity. The doors of reason and causation of nature have not been opened to them. So, queer and superstitous beliefs, giving birth to black-art, sorcery and witch-craft, have sprung up in their rude and undeveloped minds. According to their belief, malevolent spirits are hovering around to pounce upon them, These godlings and malignant spirits can be propitiated and kept back from doing mischief, only by means of special way of worship, chanting peculiar incantations and offering of suitable sacrifices. The Demi-gods are represented by small mound called 'Pindi' or shapeless stones placed in open space of the village; They are smeared with vermillion and food, wine, meat, blood, etc, are offered to appease them, The conception of some godlings are based on Hero-worship. They are immortalised in ballads, pastoral and folk songs in uncouth Magahi-dialect. The uneducated and simple Muha-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

mmedans also, being influenced by the superstitous beliefs of their Hindu neighbours, venerate some godlings of their own.

There is a vast number of various godlings and malevolent spirits worshipped by the lower class people throughout the Gaya district in order to get rid of deseases, difficulties and dangers and also for the fulfilment of the cherished desires or vows. A brief account of the principal and popular godlings and evil spirits, prevalent in this district, is given below :—

"Bhut, Pret, Pisach, Dano, Jeen, Agia-Betal, Dank Baba, (Raghuni-Dank, Jhunki-Dank, Damar-Dank, Lahra-Dank, etc.), Pahasber & Pandubba (Water-Witches), Dain, Kichin, Churail, etc."

—Worshipped by all low caste Hindus.

"Dihwar"—Guardian-deity of a village.

"Baghaut"—Protector from tigers.

"Goraiya Baba, Salesh[13], Kalua-Vir, Chuhar-Mall," etc.

—Worshipped generally by Dusads and Doms.

"Hansraja"— Worshipped by Mushars.
"Ban Singh"— ,, ,, Bhogtas.
"Amar Singh"— ,, ,, Malhash.
"Ram Thakur"— ,, ,, Hazams.
"Naik Saheb"— ,, ,, Telis.

"Kunwar Bijoy Mall"—Forms theme of the legend-poem sung by the men of the Teli Caste[14].

"Lorik[15] and Virkuar"—Goalas venerate these Cow-herd-heroes in their popular folk-songs (Lorikayan).

"Pancho Pir, Khaje-Khijir, Ghazi-Mia, Sheikh Siddu, Sokha Baba, Pir-Mansur, Pir Makhdum Shah, Kamalo Bibi," etc.
—Worshipped by the lower class Muslims, alongwith some Hindus.

In bygone days, Gaya proper was a renowned place of pilgrimage, when bathing in the Gaya-river (Phalgu) and the Gaya-Tank (Brahma-Kunda at Pretshila) was believed to have been of special merit as a means of washing away sins and impurities, *Vayu purana* (III. 16) says that the river Phalgu is more sacred than the Ganges.

"The people hold a festival every year in the former half of March (Phagguna, and a baptizing at the bathing stage) (Titthavis-eks), the festival being called the Gaya-Lent (Gaya-Phaggu or Gaya-Phalgu)[16]." And this festival of "Ashtaka" kept concern with the Sraddha-rite, (*Asvalayana Griha Suttra*, II. 4, 3).

During the life-time of Buddha, Gaya acknowledged superiority to others in point of sanctity which may be known from the archaic Pali-writing "*Yasma Cha Loke Gaya Samattars.*"[17]

From *Mahavastu* (V. III, P. 324) and other Pali texts, it is known that during the time of Buddha, the tract of Gaya was inhabited by two classes of aboriginals:— worshippers of the Demi-gods of "Nagas" (Muchalinda, Kamandaka, etc,)-the rulers of the waters, and of "Yaskshas" (Chunda, etc,)-the rulers of the rocks. The Buddhist scriptures '*Samyutta-Nikaya* & *Sutta-Nipata*' informs us that at Buddha's life-time, there existed a tower-like rude stone-structure on the bank of the Gaya-Tank (present Brahma-Kunda at the foot of Pretshila, once noted for its hot-water-spring), where the

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Yaskshas 'Suchiloma' (Needle-haired) and 'Khara' (rough-skinned) lived. Buddha visited this Tank and subdued the demon Suchiloma by his miraculous feats.

Magadha was the centre of activities of the two great religions of Buddhism and Jainaism. It was the scene of the life-work of their founders Gautama Buddha (623-543 B. C.) and his elder contemporary Vardhamana Mahavira. They gave to the world the apostle of 'Ahimsa' and universal love. The Jaina relics in the Gaya district are scattered in the hills of Brahmayoni, Pacher-Pahar, Sarawak, Deokuli, etc. The Vajrasana Maha Vihara of Bodh-Gaya was a renowned seat of learning; Buddhaghosa (5th century A. D.), the great exponent of Buddhism and Pali writer, and also AtisaDipankara (982-1054 A. D.), the renowned Buddhist scholar and preacher were illustrious students of this Maha Vihara.

Gaya was a noted centre of the Jatilas, an old order of Vedic ascetics who had matted hairs and were worshippers of sun, Fire and also Earth-goddess (*Mahavagga*, P. 33). Bhasma-Kuta hill (modern Magnlagauri-hill, Goprachar-Vedi) is believed to have been the important site where the Jatilas lighted the ever blazing fire: Jatilas were the predecessors of the Shaiva ascetics[18] Shaivaism prevailed over the Gaya-region before Vaishnavism's gaining strong-hold in the soil of Gaya.

Gaya-region was a seat of the Ajeevivaka-sect, founded by Gosala Makkhali (6th. Century B. C.). The Ajeevikas were almost nude and were noted for their ascetic practices of the most rigorous kind. Even the aborigines had a great reverence to them: "The Ajeevaka ascetics in their turn settled down as Vaishnavas in their popular estimation[19]." Emperor Ashoka and his grand son Dasharatha built highly polished Cave-Halls in the Barabar-hills (ancient names 'Gorathgiri & Pravaragiri'), situated at a distance of 18 miles to the north of the Gaya town, and dedicated by them to the Ajeevakas as is evident from the epigraphical records[20]: Barabar-caves is the first landmark in the development of the rock-cut architecture of India.

Vishnu is considered as one of the twelve 'Adityas' or aspects of the Sun-god. The chief characteristic of Vishnu (Tri-Vikrama) as described in the *Rig Veda*, is his great Triple Steps or three strides which signifies the Sun. Vishnu's 'Sudarsana Chakra represents the circular shape of Sun, his 'Kaustubha Mani' looks like the glittering Sun and the conception of his mount 'Garuda' comes from the Vedic Sun-bird 'Garutman[21].'

In the *Nirukta* (Devata Kanda, 12-19), *Yaska* (600 B. C.), while explaining the Vedic passage "*Idam Vishnur Vichakrame Tredha Nidadhe Padam*" (*Rg.* 1. 22. 17), ordinarily Known as '*Tripada Vikrama*' of Vishnu (or Sun), quoted interpretation of the earlier commentator Aurnavbha as "Samarohane Vishnupade Gayasirasi", which signifies three strides of his daily course, that is, Sun's rising point, the meridian and the setting point. It is not difficult to imagine that the Vedic allegory of Visnu's (or Sun's) three strides and Aurnavabha's interpreation thereof, are the nucleus of the magnified legend of Gaya-Asura in the Vayu and Agni Puranas[22].

"The origin and history of 'Sripadas' are yet wrapt in darkness, but we have sufficient data to warrant the inference that

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

their worship is connected with the strides i. e. 'Vikramas' of Vishnu[23]," Vaishnavism was prevalent even before the 6th. Cen. B. C. The form of worship of Trivikrama-Vamana-Vishnu was the worship of his devine foot-print. Some erudite scholars are of the opinion that Vishnupada at Gaya existed even before the time of Yaskacharya (600 B. C.) and also Buddha[24]. The origin of the system of 'Charan-Puja' may be traced back to the primitive mode of ancestor-worship. Representations of the 'Nandi Padas' have been found in some ancient 'Purana'-coins and religious seals[25].

The Buddhists (Mahayanist School) borrowed the conception and parctice of the footprint-worship of their Master from the Hindus who also, in their turn, had misappropriated this trait from the pre-Aryan aborigines[26].

Gayadham is the most sacred Tirtha of the Vaishnava world. The iconic represeantation of lord Vishnu, in his mace-bearing form (Gadadhara), is the presiding deity of Gaya-Kshetra (*Vayu* Ch. 109). Here, he is also manifested in the most reverential symbolic form of his sacred foot-print. Nowhere in India, lord Vishnu is worshipped by his foot-print.[27] Gaya has been the chief centre of the practice of the footprint-worship since a remote time. Besides the principal 'Pada' of Vishnu (*Vayu*, 112. 68), there exist at Gaya many other sacred 'Padas' of various gods and Rishis, viz. Rudrapada, Brahmapada, Sakrapada, Suryapada, Savitripada, Matangapada, Agastapada, etc. Even the hoof-prints of the heavenly cows and calves are worshipped at Gaya in the holy Vedis of 'Goprachar and Gobachhoa'.

The cult of Gaya-Shraddha is originated in the pre-Aryan ancestor-worship and popular demonolatry[28]. The Pinda-Dan Cult was originally practised by the Vratyas and the Asuras of the Gaya-region and which was incorporated in and further elaborated by the Brahmana Cult. It is worthwhile to note that besides the Gayawals[29], the principal officiating priests of the Gaya-pilgrimage, there is another class of Gaya priests called 'Dhamins' or 'Pretia Brahmins', having sole officiating power over the five Vedis of Ramshila and Pretshila hills, and they are considered to have been originated from the non-Aryan stock of the Gaya-region[30]. It is interesting to note that the aboriginal tribes of Oraon and Saora, still existing in Bihar and Orissa, observe simple forms of 'Shammanistic' Sraddha-rites (or ancestor-worship), known as 'Harbora, Sikunda', etc[31].

Yama (or Dharma), son of Sun-god, is deeply connected with the cult of Gaya-Shraddha. He is the supreme ruler of the dead or 'Pitris' and also of the nether world. For the propitiation of Yama, his hell-hounds (Hell-Guards) and the Crows (Yama's messengers), Pindas are offered at Gaya in the Vedis of Pretshila and Kakbali (*Vayu*, 108, 28, 31; III. 38, 39), so that, the departed souls of the ancestors would be liberated from the clutches of Yama. This animistic form of worship saviours of primitive origin.

During the later Vedic age, we find a clear idea of heaven and hell and Pindadan-ceremony began to be observed in more elaborated manner. Hence, it becomes incumbent on every son to offer Pindas to release the spirit of the ancestors from the horrors of hell[32].

Brahma, the Hindu Triadic God, is considered as 'Pitamaha' or the grandfather

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

of the universe. The Cult of Brahma perhaps gave rise to the practice of worshipping forefathers and this cult most probably, was associated with the Pindadan-Cult or the worship of forefathers at Gaya. *Markandeya Purana* relates that Brahma's grand daughter Swadha married the 'Pitrins'. It is worth-while to note that the Brahmayoni-hill (Savitripada) and Prapitameswara are the important Vedis of the Brahmapuri (Gaya town) where Pindas are offered for the liberation of the departed forefathers.

The mythological story of the demon Gaya-Asura signifies the triumphant victory of the powerful Aryans over the primitive Asuras, the indegenous inhabitants of the Gaya-region. The same Pauranic legend further relates the interesting history of the evolution of the different sectarian bodies of the Hindus. This mythological legend of Gaya-Asura relates that, at first, Brahma, the Chief of the Brahma-Cult, had attempted to subdue the Asura-Cult of Gaya, under the leadership of Gaye-Asura, but failed in his endeavour; Then Siva the head of the Saiva-Cult, was persuaded to do the some hereulian task, but he also could not suceed, Ultimately, lord Vishnu was called in the field and he was able-to fully overpower the mighty Gaya-Asura. And since then, Vaishnavism pervades over the Gaya-region. Now, alongwith, Vishnu, the principal deity of Gaya, other devinities of the Hindupantheon, are also worshipped here, viz, Siva, Sun, Ganesha, Ram, Sita, Gayatri, Mangla, etc. This unitv of different cults and sects was the characteristic teaching of India and the Gaya-site is a glowing example of that perception.

The existence of the Vishnupada. Temple at Gaya in the 4th. Century A. D. is evident from a Terracotta Seal (No. 31), discovered in Vaisali (modern Basarh) by Dr. T. Bloch, in which there are symbols of 'Sankha, Chakra, Gada' which are the essential emblems of lord Vishnu, with the two-lined legend "Sri Vishnupada Swami Naraya (na)", meaning Narayana, the lord of the illustrios Vishnupada. The seal came from the famous Vishnupada-temple of Gaya.[33] R. D. Banerji aud other eminent scholars are of opinion that the Vishnupada temple was already popular, at least throughout Bihar, in about the early part of the 4th Century A. D.[34]. The relation of Vaisali with Gaya is also apparent from the popular story related in the Puranas (*Agni*, 105.54 *Garuda*, 84.32; *Vayu*, 112, 7-15) The legend narrates that how the king Visala of Vaisali, after offering Pindas at Gaya, secured a son and also himself went to heaven and saved his ancestors from spirit-life. The Vaisali-Seal, therefore, most probably, was a mark of commoration of this incident.

The present stone-built temple of Vishnupad was built by the piety of the magnanimous Maharani Ahilyabai Holkar (1725-95) by october 21, 1783. The magnificent style of the temple tells of the Indian architectural glory,

Majority of the temples, images, tanks inscriptions of Hindu-Gaya were built, installed, excavated and inscribed during the reign of the Buddhist kings belonging to the Pala-Dynasty of Bengal (8th to 12th. Century A. D.) [35] Most of the present temples, Vedis and Gayawal's residences in the Old Gaya are supposed to have been built upon old ruins and mounds, i. e., over the 4th. or 5th Stratum[36] A careful excavation might disclose a link between the Indo Gangetic Valley civilisation in the pre-historic days.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

The great Chinese travellers Fa-Hien visited Gaya in 409 A. D.[37] and Hieun Tsiang in 637 and he found here one thousand families of respectable Brahmins who were independent of royal power[38] Probably, they were the forefathers of the present Gayawal-priests. Sankaracharya (788-820), the great reviver of Hinduism, is said to have visited Gaya[39]. The reputed Vaishnava leaders Ramanujachanya (1017-1107), Madhavacharya (1238-1317), Vallavacharya (1478-1530), etc., are believed to have visited Gaya Tirtha[40]. Mahaprabhu Sri Chaitanya Deva visited Gaya in 1508 A. D. for performing Gaya-Sarddha. The very sight of the holy foot-print of lord Vishnu filled his tender heart with extreme ecstatic devotion and completely changed his mind! He became veritably a god-intoxicating devotee or 'Bhakta' Here, he got spiritual inspiration from Swami Iswarpuri[41]. Due to the influence and association of the aforesaid Vaishnava leaders, Gaya becama a renowned seat of the Vaishnava-Seet. It may be noted that the Gayawal-Brahmins became followers of Madhava School of Vaishnavism after taking 'Dikksha' from Swami Vidyadhiswarji in 1630[42].

Gaya is regarded as a sacred place by the Hindus and the Buddhists alike. Hindus venerate Buddha as the ninth incarnation (Avatara) of lord Vishnu. Bodhi-druma of Bodh-Gaya forms one of the holy Vedis of the Gaya-pilgrimage (*Vayu*, III-77). The traditional city of Gaya was sanctified by the august visit of lord Buddha who delivered his famous 'Fire Sermon' ('*Aditya Paiyaya Sutta*') on the Gayashirsa-hill (Brahmayoni) before one thousand Jatila ascetics newly converted to his Faith. Bodh-Gaya, situated six miles south of Gaya, gained world-wide importance and sanctity on account of its associsalon with the momentous event of Buddha's attaining 'Supreme Wisdom' (*Sambodhi*) under the holy Bodhi-Tree, the oldest historical tree of the world.

After the enactment of "The Bihar Harijan Act, 1949," the Harijans ceremoniously entered into the Vishnupada Temple on 29-11-1953 and touched the sacred foot-print of their supreme God. Even in fomer days, the untouchables had free access inside the temple for the reason that it contains only the foot-print and no image. *Vayu Purana* (Ch. 107 & 108) asserts that all men, irrespective of caste or creed, touching the sacred 'Dharmasila' containing the Foot-print, would gain salvation.

Now, millions of pilgrims of the Hindu-universe visit the sacred Gaya, the best place for the performance of funeral obsequies, to celebrate the solemn rite of Gaya-Sraddha, by offering Pindas to the manes, in order to release the departed ancestors from sthe painful spirit-life and horrors of hell. During the Pitripaksh-Mela, held in the dark half of Aswin, more than a lakh of pilgrims come to Gaya for performing the Gaya-Shraddha.

The central idea in the cult of Gaya-Shraddha and Pinda-Dan, is the payment of the solemn, debits of gratitude to the departed ancestors. The 'Sraddha-Mantras' indicate that when a man offers Pindas, he not only propitiates his forefathers, but also all the deceased persons of the universe, even all the dead animals, birds, insects and trees. (*Vayu Puran*, 110,22.47). Thus he becomes the wellwisher, friend, and relation of the whole universe. Really, it is a matter of great wonder and glory to observe that no other religion has got such a noble, broad, grand and ideal conception of a rite, having universal appeal, union and love.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Reference

1 *I.H.Q*, 1930.

2 *Prang-Maurya Bihar*, (Hindi). D. S. Triveđ. p. 19.

3 *Literature of Bengal*—Ramesh Chandra Dutta.

4 *B D.G.*—Gaya, p. 20.

5 *E. I.* Vol. II. p. 333.

6 *J R A.S.* p. 441, 1915; Dabistan-i-Mazahbi (Persian) by Fyzi.

7 *The Sacred Complex in Hindu-Gaya*, L. P. Vidyarthi, p. 27.

8 *Gaya Ek Jhanki*, (Hindi), R B. Lal, 250; *JBORS*, 1938, pp. 89-III.

9 *E.I.* Vol. IX, pp 323-334.

10 *B.D.G.*-Gaya, pp. 22 & 23.

11 *Glories of Magadha*, pp. 6-9:—J. N. Samaddar, pp. 6-9; '*Indian Literature*', p, 79.

12 Grierson's *Notes On the District of Gayâ*, p. I, 1892.

13 Grierson's '*Maithili Chrisomathy*', p. 3. Calcutta, 1882.

14 *Archaeological Survey of India*, Vol, VII. pp. III. 114.

15 *Ibid.*, p. 79.

16 *Pslams of the Brethren*, ('Therigatha'), Rhys Davids, p, 181.

17 Buddha Ghosa's '*Papanoha Sudani*', Siamese Edition, Pt. I, p. 147.

18 *Gaya and Buddha-Gaya*, Part I, B. M, Barua, p. 216.

19 *Indian Antiquary*, 1920, p. 361.

20 Fleet's *Corpus Inscriptionum Indicarum*; *E.I.*, Vol. IXX.

21 *Vedic Mythology*, A. A, Macdonnel, p. 39.

22 *Gaya and Buddha-Gaya*, Part I p. 41.

23 *Manual of Indian Buddhism*, Kern, p.98.

24 *Indian Antiquary*, 1938, 'Vaishnava-worship and Buddhism, K. P. Jayaswal, p. 84.

25 *Development of Hindu Iconography*, pp. 199, 201 & 211—J. N. Banerjee,

26 *Gaya and Buddha-Gaya*, Part I, pp. X, 43, 45, & 245; Part II, pp. 62-64.

27 From an inscription of the 5th Century A. D. it may be known that a temple, containing Vishnu's foot-print, was built by king Guna Varman in the country of Kambuja or Cambodia in Indo China. (Vide R. C. Majumdar's *Kambuja Inscriptions*.)

28 Gaya Sraddha and Gayawals.—L. S. S. O' Malley, *J.A.S.B.* 1903, Vol LXXIII, No. 3 pp. 1-11.

29 The earliest available epigraphic mention of the Gayawals has been referred to in the 'Saktipura Copper Grant plate' of the 6th regnal year of Lakshman Sen of Bengal (1183 A. D.) Epiaraphica Indica, Vol. XXI, p. 215-216.

30 *Bengal District Gazetteers*-Gaya, 1906, p. 71-72.—O'Malley.

31 *The Sacred Complex of Hindu Gaya*, L. P. Vidyarthi, p. 41.

32 *History of Dharmastra*, IV, P. V. Kane, p. 159.

33 *Archaeological Survey of India Reports*, 1903-04, pp. 104-111.

34 *Pre-Historic India*, R. D. Banerji, p. 186.

35 (a) *MASB*, Vol. V, pp. 30-78.

(b) *JASB*, Vol, I XIX, Pt. I, pp, 190-195, 1900—Article by Rai Bahadur Monmohan Chakraverty,

(c) *Archaeological Survey of India*, Vol. III, p. 125:—Cunningham's Reports.

36 *JBRS*, Vol. XL, Pt. 3, 1954.

37 Fa-Hein's *Records of Buddhistic Kingdoms*, Legge, p. 87.

38 *Buddhistic Records of The Western World*, Si-Yu-Ki: Ed, by Samuel Beal. Vol. II, p. 113.

39 B. D. G. Gaya, 1957, p. 88

40 *Bhagavata Sampradaya*. (Hindi), Baldeo Upadhyaya p. 203.

41 Krishnadas Kaviraja's '*Chaitanya Charitamrita*'. (Bengali): Translated by Jadunath Sarkr- P, X.

42 *Brihat Gaya Mahatmya*: (Hindi), Sri K. L. Gurda. p. 110.

□

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

YUGAL KISHORE MISHRA

GAYA — A PLACE OF HINDU PILGRIMAGE

In the religious history of India, Gaya occupies a unique place and it is one of the great places of pilgrimage. No city in India arouses religious emotion of Hindus as Gaya does. According to P. V. Kane, "Places of Pilgrimage and religious fairs encourage and develop national solidarity and conciousness. Gaya had been a renowned place of Pilgrimage, where taking a bath in the Phalgu and Brahma-Kunda at Pretssla was supposed to be of special merit as a means of washing impurities. There is hardly any city in the world that can claim greater antiquity greater sanctity and greater veneration than Gaya. The pouring of Pilgrims to Gaya is for Shraddha rites and rituals and thereby to release the souls of their ancestors from the horrors of hell.

For the Hindus, visiting of holly places is an important act of religious merit and is known as tirtha. Gaya enjoys the highest position amongst all the places of the Hindu Pilgrimage, because it is the most suitable sanctorum for ancestor-worship. The ancestors desire to get relief from the painful hell by the performance of the Gaya Shraddha by their sons.

We come to know from the epics (*Ramayaua* and *Mahabharata*), *Puranas* and other ancient literatures the sacredness of Gaya. Gaya Pilgrimage has Pre-historic, Vedic and Buddhistic background. It was one of the most important seats of the River-Valley-civilizations in ancient India. The pre-historic Vratya importance of Gaya was acknowledged by the Aryans also.

Gaya, the city of five hundred temples has got special sanctity for the pilgrimage. It is turned into a big 'Mela' during Pitripaksha. More than a lac pilgrims congregate at Gaya and thousands offer 'Tarpana' and Pinda'. In Gaya every tenth house has got a temple, big or small and about 200 festivals are celebrated during the year. For these reasons Gaya is known as "the city of temples and pilgrimage". Pilgrims visit Varanasi and Prayag for the sacred bath in the river Ganga and Sangam respectively but the visit of Gaya is for Shraddha, Tarpana and for

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

the sake of their ancestors, to offer Pinda and to keep the lineage of their family.

The Gaya Pilgrimage has got universal appeal. Apart from the Pitri Tirtha, there is a special sanctity of Gaya for the Vaishnava Pilgrims due to the Vishnupad temple. Because of Mangala Gauri, it has a noted place among the places of Pilgrimage of Shakti cult. Gaya is considered to be a holy place for the devotees of Lord Shiva also due to the famous Pitamaheshwar temple.

Gaya is a compulsary Tirtha for Hindus. It is incumbent upon every Hindu to observe Shraddha-rite at this prime Pitri-tirtha. So pilgrims used to visit this sacred site since ancient time. Pilgrimage is an institution where one tends to keep away one's mind out of narrowness and to concentrate for sometime on noble thoughts and aspirations. The religious rite of pilgrimage has been practised in all countries since time immemorial. But India, to her credit, after Rigvedic time possesses largest number of Tirthas and holy places. The sight of the holy places empties our minds of meanness and for the moment, at least, fills our heart with a sense of nature's beauty and with purity and brings us in time with the Infinite.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

MD. AQUIQUE

THE EARLY ECONOMY OF GAYA

Regional studies and research in India have not yet been as popular as they should be. Primarily because of the lack of proper facilities very few students are attracted towards the field of historical studies. However, an attempt has been made here to discuss the contribution of Gaya in the early economic history of Ihdia.

Physiographically, Gaya is situated in the territorial zone between the Gangetic plain in the north and the Chotanagpur plateau in the south. A part of the ancient kingdom of Magadha, it represented a place of cultural transition and played an important role in the evolution and development of Indian culture.

Archaeological investigations demonstrate that during the Pre-historic period, the distritct was inhabited by the stone using people. Palaeolithic tools have been picked up from the Jethian Valley. They lived in natural caves and relied on hunting and food-gathering for their subsistence. Gradually, they developed their tools and spread in open land and invented various ways to control the nature. The Palaeolithic man was a savage hunter moving in small groups from place to place in search of food. A significant change in the economy of the people of Gaya from that of hunting and food-gathering to that of pastoralism or settled agriculture took place around 1500 B. C. The remains of the earliest food-producing society and settled people in this district have come to light at Sonpur, a place near Bela Besides, being a food-gatherer, the chalcalithic man of Sonpur was also food-producer. Sonpur people domesticated cattle and cultivated rice.

The early economy of Gaya like elsewhere was primarily rural. Agriculture and cattle-breeding formed the nucleus of the economic pursuits of the peasantry. Our sources present a detailed account of the agricultural process pursued by the farmers in early period which is practically the

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

same as practised in the modern villages of Gaya. They refer to ploughing the fields, pulling up of the weeds, reaping the crops, arranging them in bundles, getting them trodden, picking the straw, removing the chaff, winning and garnering the harvest as the successive stages of the process of agriculture. Forests were being cleared and turned into arable fields. We are told of heavy ploughs drawn by oxen. Next to cultivation, cattle breading seems to have been the main occupation of the rural population, both pastoral and agricultural. Benefits of manure and irrigation was availed by the cultivators. Cattle served not only as an aid to agriculture but it also provided food in the form of meat, milk, curd and butter, etc. In addition to cattle, horses, goats and rams seem to have been the main domestic animals of the Gaya region.

As at present the main crop of Gaya was paddy, of which several vartieties were cultivated. *Sali, vihi* or *Vrihi*, *barley* (*yava*), sesamum *(tila)*, beans *(masa)*, wheat *(godhuna)*, lentiles *(masura)*, pulses *(khalvat)*, *landula, mahavrihi, hayana, shashtika* & *Munga* etc., all of which seem to have been cultivated in Gaya which was mainly a rice-producing region.

It appears that there were many grades of landholding, down from those of a few acres under the poor farmers upto those of hundreds of acres of land owned by the wealthy cultivators. According to the *Sutta Nipatta*, the Brahmana Kashi Bharadvaja of the village Ekanala needed 500 ploughs for ploughing his plot of land. One of the Jatakas refer that a wealthy cultivator in the village Salindiya possessed on thousand Karises (probably 800acres) of cultivable land. But such plots were probably a few and farmers carrying on agricultural pursuits with the aid of only a pair of oxen were not unknown in Gaya region. The plots under different owners were separated by boundary stones. The rice-fields of Gaya are described in the *Mahavagga* (VIII. 12. 1) as divided into short pieces, in rows, by outside boundaries, and by cross boundaries. Panini shows that arable lands were divided into separate holdings, held by individual owners.

With the rise of urban life in the Gangetic Valley, settlements in Gaya were gaining prominence as centres of industries and trade in Bihar. The economic life of Gaya was also marked by the localisation of various industries in separate villages. There are references to village of smiths, carpenters, weavers, jewellers, basket makers, dyers, fishermen, slaughterers, etc. which were generally located in the vicinity of the cities. Some industries were localised in the streets of the towns. Popular stories refer to the separate street of weavers, washermen, ivory-workers, etc.

Manufacturies were set up by the state with the mineral metals as raw materials. Metals were employed in making articles of use and ornaments, as well as the implements and weapons of war. Sonpur excavation has yielded different varieties of articles made from iron (viz., chisel, arrowheads, sockted blades, spears, javelins, nails, axes, etc) from the Mauryan levels. It may be noted here that iron slags were picked up from a pre-N. B. P. ware horizon (pre-600 B. C.) of Sonpur.

Jewellers appear to have fashioned numerous types of ornaments of gold, silver, conch, pearls, gems, coral, and other pre-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

cious metals and stones.' Making solid and hollow objects, plaiting, coating, fixing and gilding are the artisans work. Various types of necklaces were manufactured of gold, pearls, gems etc. Ornaments of crystals were also mafactured. From Sonpur, a crystal figure with an Egyptian face was discovered. A glass bangle was also found at Sonpur.

Amongst other industries of Gaya worth noting, mention may be made of making toys and earthen vessels. Terracotta toys found in the Mauryan level from ancient site like Sonpur prove the existing varieties in toy-rattles, animal figures, men and women figures etc. Kautilya refers to vessels of clay. These facts clearly indicate that the potter's art had reached its highest water-mark in the Gaya region. From excavated site fine grey, red, black and black-and-red wares of thin fabric have been found as common pottery. But the most distinctive pottery is the so called Northern Black Polished Ware (NBP) with its metallic ring and lustrous polish. From excavation at Sonpur NBP sherds of different hues have been discovered, which show the prevalence of ceramic industry in Gaya.

It is reasonable to presume that most of the industries were organised into guilds of artisans and craftsmen who played an important role in the sphere of trade and industry of Gaya. The Buddhist sources mention eighteen guilds and it appears that almost all the craftsmen had organised themselves into guilds, headed by an alderman (*jetthaka*). The guilds were autonomous bodies with their own laws, recognised by the State, and exercising considerable control over the members. Guild-laws enjoyed state-recognition and guilds were often consulted by the king. Disputes among the guilds were also probably settled by the king.

Number of references have been made in the ancient Indian literature about the maritime and caravan trade, which prove that land and sea routes were freely used by the Indians in early times, as highways of international commerce.

Gaya is an inland region. She, therefore, ought to have had her own inland routes reaching the sea port on the western and eastern coasts of India, for her trade with the foreign nations by sea. And we have ample evidence to show that there were great caravans passing east and west through Gaya. The classical writers mention caravan routes passing directly from Patna to the Persion gulf. Even Iran was directly linked up with Gaya (Magadha) by a well provided trade-route by land (Tarn, the Greeks in *Bactria and India*, p. 87). Eratosthenes seems to have known well the Royal Road to Pataliputra. The first thing that struck him, on entering India, was this Royal Road starting right down from the frontier and meeting Taxila, Hastinapur, Kanauj and Prayaga on the route.

The trade routes facilitated the island commerce to a great extent. And the Pali works are full of such accounts. One such road linked Sarvasti and Rajagriha, meeting on its many places like Kapilavastu, Kusinara, Pava, Vaisali, Pataliputra & Nalanda. The road continued further to Gaya and met the another route leading to Varanasi

The overland trade, seems to have surpassed in importance the sea-borne trade. At the time of king Bimbisara of Magadha, there was a brisk trade between Rajagariha

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

and Roruka (Sovira in Gujrat). It was on the road from Rajagriha to Nalanda that Mahakassapa met the Buddha for the first time. *Vinaya Pitaka* mentions a highway between Varanasi and Rajagriha through Gaya.

We are told in the ancient literature that Magadha especially Gaya was connected to different countries and nations through seaports situated on the eastern and western coasts.

It appears now that the economic pursuits of the earliest people of Gaya centred around hunting and food gathering for their subsistence. Gradually, they passed into the stage of food production and cattle-breeding. Agriculture was the mainstay of the economy. Subsequently, they came to know metallurgy, firstly copper and then iron. The introduction of the latter metal gave firmer footing to their economy and facilitated the large scale farming and rise of cities. Brisk economic activities have been marked since the time of Buddha, and Gaya was an important centre of trade and industries. The region was well connected with high-ways and sea-ports situated on the eastern and western coasts.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

KRISHNA KANT SHARMA

ANCIENT REMAINS AND ANTIQUITIES OF GAYA

The volume and nature of ancient remains and antiquities have through the ages been a fairly reliable barometer of the advance of civilization in different parts of the world. Gaya Lat. 24°.47' N. Long. 84°,59' E) is situated about 92 kilometres south of Patna, and is connected with all important cities in India. It has been a famous centre of pilgrimage for the Hindus and Buddhists throughout the centuries. This centre was a stronghold of the Hindu pilgrims even before Buddha. Hiuen Tsang in the 7th century A. D., found the city of Gaya to be a thriving Hindu town, well defended and occupied by a thousand families of Brahamans. It is, of course, natural for the people of Gaya region, that has produced a brilliant creative history and a tremendous work of art, to wish to know and to retain it. Not only it is the visible symbol of its past greatness (especially if its present is not equally resplendent); it is also a positive proof of its concern with the higher human aspirations. The preservation of cultural heritage in each region is essential for encouraging among its own people an appreciation of its artistic tradition and achievement. With the above ends in view the Central Government has established a museum at Bodh-Gaya. The State Government of Bihar, took over the charge of the private museum of Gaya which was established in 1952.

Gaya occupied an unique place in the evolution and development of the culture and civilization from the very beginning of the human activities. The existence of man in this part of country is revealed by a number of his earliest relics in the form of palaeolithic tools belonging to the mid-pleistocene. These archaic relics comprise various stone implements used by prehistoric man in his daily life for the procurement of food, ranging from rude stone chippings and flakes of pebbles and cores to polished implements. This testimony of his hand work, the implements used in each age, furnishes us with the best basis for the classification of the stone age into Palaeolithic (early, middle and late stone ages) and

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute. Mysuru.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Neolithic. In Gaya district, from the Jethian valley, a good number of prehistoric artifacts have been picked up. The valley supplied all the amenities of life. Besides, two rocks-shelters near Sherghati are located which suggest that the people of this region also dwelt in the natural caves of forested hills and mountains. A few celts from Sonpur found in association with the Northern Black Polished Ware are interesting as such evidence are also noticed from South-East Asia, Malaya and Indo-China.

Several seasons of the archaeological operations at Sonpur, locally known as Sonitpur, (Long 84'. 56" E. and Lat. 24' 57 N), situated five kms, west of Bela Railway Station on the Patna-Gaya section of Eastern Railway have yielded material remains of chalcolithic culture. Sonpur does not claim to have possessed a spectacular or historically important structure, it is important from purely archaeological point of view. The exavation at this site clearly demonstrates the penetration of the chalcolithic black- and -red ware (Pre-N B. P. Ware horizon) in the middle Ganga valley. The earliest people of Sonpur lived in mud-plastered houses made of reeds and bomboos. Lime floors with circular pits were also exposed. A few black - and - red ware sherds have also been picked up through exploration from Keur, Bhelavar, Dabthu Chilorgarh, Kawargarh, Uttaragrah, Jaipurgrah Bodh Gaya and Dharawat of the same district. However, their exact significance and Chronological position can be ascertained only after archaeological excavations.

The evidences of the well known ceramic industry. the Northern Black Polished Ware (600-150 B. C.) are also not wanting from the district of Gaya. Period II of the excavated Sonpur site yielded a large number of N. B. P. Ware sherds. At Sonpur the N. B. P. Ware was made of well-levigated clay; it was wel-fired and had lustrous shine like mirror. Specimens in different shades, such as, golden, silvery, steel-blue, pinkish and black were picked up. A few examples of this Ware were found in bi-colours. i. e. , one side was golden and the other silvery. Another interesting find was a crystal human face, with exotic features resembling Egyptian face, possibly used as a pendent which testifies to the trade and commerce during that period. Recently a good number of the N. B. P. sites, such as, Lakhaurgarh and Paryiargarh under Jahanabad Police Station, Uttaragarh and Chhotoigarh under Kurtha Police Station and also from Chilorgarh, Kabargarh and Dabthu situated under Gurua, Konch and Ghoshi Police Stations respectively have been brought to light by the Directorate of Archaeology & Museums, Bihar.

Barabar and Nagarjuni Hill caves, the examples of the earliest rock-cut architecture in India, are situated about 25 kms. north of Gaya. They form a very valuable part of immense archaeological wealh of Gaya. Of all the seven rock-cut caves, four are in Barabar hills which were built by Emperor Ashoka. The remaining three are in Nagarjuni hills which were gifted by Dasarath, a grandson of Ashoka to the monks of the Ajivika etc. These monuments represent the artistic activities of the people of this region right from the early historic period.

The stone railings at Bodh-Gaya, made of sandstone and granite consist of pillars,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization...

crossbars and with copings on the top bearing carvings such as sculptured panels, medallians and other ornamental patterns besides the sacred Bodhi-Tree and the ancient relics of the great temple, there are numerous votive stupas, chaityas and the traces of other shrines that are among the living Budhist monuments of Gaya.

Bronzes found at Kurkihar near Wazirganj Police Station are also worth noting. It had suddenly come to light in 1930 when an important discovery of a hoard of 226 bronzes was made at one spot along with five other objects. These included pedestals, conches, mainiature, crystal, stupas, bells etc. The images represented mostly Buddhist and a few Hindu deities. These valuable collections are now preserved in the Patna Museum.

Some other most interesting ancient remains and antiquities of the district, of which, mention may be made of stone sculptures belonging to the Pala period, acquired for Gaya Museum, are from Dabthu, 4 km. to the north of Hulasganj. Sculptures include three images of Vishnu, three of Kamadeva with Rati and Trisha, one dancing Shiva, oneUma-Maheshwar etc. Besides three or four brick built temples are also clearly visible in the village. A collosal image of Vishnu (2 m. 63 cm. x 1 m. 4 cm.) of the Pala period was also found at Nawadiha near Khizersarai P. S. of the same district. Twelve rare bronze images of Pala period were also acquired for Gaya Museum from Jaipurgarh in Fatehpur block. The discovered images include Tara Hariti, Sadakshari Lokeshwar, Maitreya, Vishnu, Ganesh and a replica of Mahabodhi temple of Bodh-Gaya. Besides two stone sculptures, one of dancing Ganesh and other of Simhavahni Durga were also acquired from the village Kachanawa.

Gaya Museum, Gaya, also acquired through field work and gift a few worthwhile antiquities which include two bronze images. One of them is that of Vishnu (18.5m × 0.08m), belonging to the 12th century A. D. from Wazirganj, and the other is that of Varah (3cm. × 2cm.) with three miniature figures of the same animal on either side of the body of the main figure, belonging to the Pala period, from Bhelawar. The museum also received eight architectural and sculptural pieces which include door jambs, Uma-Maheshwara and Surya from Jangamabari, (Gaya town). One stone image of Manjushri of the Pala period and a Javelin of the 18th century from Gaya town and a few Shaivite images fromPali are also worthmentioning objects acquired by the museum.

Thus, the ancient remains and antiquities obtained in Gaya district are rich and variegated and reflect the originality, virility and the artistic tradition of the people.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

SARJUG PRASAD SINGH

ARCHAEOLOGICAL SITES IN GAYA : RECENT DISCOVERIES

Gaya's contribution in the reconstruction of the early history of Bihar, rather India, is remarkable. The region is very rich in antiquities and a large number of archaeological sites have been discovered by the efforts of both the European and Indian explorers. The explorations conducted by the European explorers such as Buchanan Hamilton, Major kittoe, Cunningham, Broadley, Beglar, Grierson and others are note worthy. As a result, several ancient sites such as Bodh Gaya, Bakraur, Barabar, Dharawat, Keur, Konch, Kurkihar, Aphsad, Daryapur-Prabati, Jethian, Pali, Cheon, Chillor Ghenjan, and others were discovered. Sonpur, Bakraur and Aphsad were excavated. After the publication of Cunningham's reports, no serious and systematic survey of the archaeological sites have been undertaken.

It is worthy of note that the Gaya region comprising the districts of Gaya, Nawadah and Aurangabad is spotted with mounds and old habitational sites of the different periods of archaeological horizons. It occupies an important place so far as the evolution of early man is concerned. Relics of human activities of Palaeolithic Age (of Middle and Upper Stone Age) comprising of rude stone tools of quartzite have been found from the Jethian Valley, not far away from Rajgir. Polished stone tools of Neolithic Culture have been found from Sonpur and Chillor. Stone celts, microliths and fossilized bones of animal, fish and tortoise are found in the old bed of the Paimar river which flows at a distance of about 6 Kilometres to the east of Gaya. The N. B. P. sites in the region under review are many and the Kushana-Gupta-Pala-Sena sites are numerous. Almost all the old village in the Magadha region are either located on the old sites or contain some ancient relics. Some important sites discovered or revisited are described here which throw new light on the archaeology of the region:

Agandha: The village of Agandha also called Agandha-Bhalua is in the Bela police station of the Gaya District about 12 Kilo-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digit

metres to the north of Gaya and 5 Kilometres to the south of Barabar hills. Agandha is a N. B. P. site. Some protion of the mound to the south of the village is well-preserved which is about 5 metres high and covers roughly an area of about three acres of land. A rectangular stone slab now fixed in a nearby grave, contains an inscription in three lines. The characters belong to about 8th-9th Century A. D.

Two cast copper coins were found in the possession of a villager. Previously, a large hoard of silver punch-marked coins, now presered in Patna Museum, was discovered from the same site.

Amarut. Situated on the north-western bank of the Falgu river, the village of Amarut is in the Sherghati police station about 4 Kilometres to the south of Dobhi on the G. T. Road. The well known Kolhua or Kauleshvari hill which is famous for the Buddist, Jaina and Hidu shrines and monuments are not far away from Amarut. The mound is about 6 metres high and occupies an area of about 8 acres of land. Sherds of black-and-red ware, N. B. P. ware, black ware, grey ware and red ware were found from the site.

Amas : The village of Amas is situated on the G. T. Road, in the police station of the same name in Aurangabad District. It is a Buddhist site and the old mound is situated to the south of the village. Several mutilated stone images and pedestals of the votive *stupas* are lying here and there in the village. It appears that Amas was an important Buddhist centre during the Pala-Sena period.

Anti: The village of Anti is about 6Kms. to the south-east of Nawadahon theNawadah-Jamui road and approachable from Kadirganj. The old mound, about three metres in height, covers an area of about 50 acres of land. Some unoccupied portion of the mound to the south of the village is well-preserved.

It is worthy of note that on the eastern part of the mound, the villagers have dug out the remains of an old temple of Shiva called Pataleshvara Mahadeva temple. The temple is made of bricks of the Pala period. It contains a rectangular deep underground sanctum surrounded by a narrow *Pradakshinapatha*. The sanctum enshrines a Shiva-Linga. A large number of Brahmanical images (numbering more than twenty) of black stone datable to the 9th-10th century A. D. have been descovered from the excavation of the temple by the villagers. The images are now kept around the *Pradakshinapatha*. A beautiful standing image of Harihara of about 9th century A. D. (5'3" in height) is very interesting.

Arhit : Arhit is a small village siutated on the western bank of the Phalgu river in Ghoshi police station of the Gaya District. The village is approachable from Telahra (or Telhara) which lies on the Jahanabad-Ekangarsarai road Arhit is a Gupta-Pala site and the mound is now occupied by the village houses. A beautiful image of eight handed Durga of black stone, datable to the 9th century A.D., is lying in a piece of baren land about 300 metres to the east of the village. Her three right hands are broken and holds a *Chakra* in the remaining one. Her front left hand is also broken. She carries a bow, ghanta and arasi (looking glass) in the others. A half-buried broken image of Surya is also lying there.

Barama (Barava) : The village of Barama is situated in the Ghoshi Police Station of

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

the Gaya District about 10 Kms. to the north-east of Jahanabad. The village lies on an old site. The cultivated fields to the east of the village are full of old pot-sherds and brick-bats. In the middle of the village, on a small mound called Mahadeva-Asthan, villagers have collected several broken images of Surya, Vishnu, Uma-Maheshvara and Ganesha etc., for worship. A beautiful image of Surya of black stone, found buried in the house of an inhabitant of the said village, has been acquired by the present author. The image is beautifully carved out on a black stone slab measuring 2'-11". The height of the image is 1.5½". The God is represented standing on a *ratha* drawn by seven horses. The chariotier Aruna is shown seated in between the legs of the god and driving the chariot. The God wears various ornaments and high boots. He holds full-bloomed lotus flowers in either hands. The image is flanked by *Dandi* and *Pingalā* and above them are the representations of *Usha* and *Pratyusha* charging arrows to Vanquish the darkness of ignorance bestowing light of wisdom of knowledge.

Bhelavar: The village of Bhelavar also lies in the Ghosi poliee station of the Gaya District. It is about 10 Kms. to the east of Jahanabad Court railway station on the Patna-Gaya section of the Eastern Railway.

The old name of the village is said to be Bhattavaa. Bhopanabhatta, a Kashmirian Brahmana, the founder of the family of the Bhelauriya Bhumihar Brahman is believed to have lived there.

Situated close to the south of the village, the old mound called Bhelavargarh is an interesting site of high antiquity. Potsherds of black-and-red ware of pre-N. B. P. variety, N. B. P. ware, grey ware black ware and red ware are found there. Numerous terracotta seals and sealings, silver and copper punch-marked, Mitra, Kushana and Muslim coins have been found from the village. Several earthen balls containg inscriptions in the characters of the Gupta and Pala periods bearing the names such as Kshiradeva, Mahidhardeva, Koshya, Agnisutadharedeva, Chandramitra-Vatu, Mahidaradakshadeva Prahrasyadeva and Bhangabhava etc., have been discovered. A circular terracotta sealing bearing the famous Buddhist creed was found in the possession of Shri Jamuna Sharma of the same village and 16 silver punch-marked coins which formed the part of a big hoard were found in the collection of Shri Pasupati Singh of the village Barhaona, situated 1 Km. to the east of Bhelavar. A broken terracotta horse of the Mauryan period, found from the site in question, bears the decoration of incised lines and impressions of concentric circle, on its back.

The site of Bhelavar seem to have come under occupation sometime during the pre-N. B P. period and remained in continuous occupation upto the Pala period. It is said to have been an important Military Centre of the Great Mughals.

Numerous Brahmanical images of Vishnu, Surya, Uma-Maheshvara, Simhavahini-Durga, Ganesha and Shiva-lingas of the 9th-10th Century A D. discovered from the village, suggest that Bhelavar was an important religious centre and a place of pilgrimage during the Pala period.

Charui: The village of Charui lies on the southern bank of the Falgu river in

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and

Ghosi police station of the Gaya District. It is about 3 Kms. to the north of Bandhuganj, situated on the Jahanabad-Ekangarsarai road. An old earthen mound about 5 metres high is situated on the eastern part of the village. Several Brahmanical images which include Chamunda, Durga, Vishnu, Ganesha, Surya, Uma-Maheshvara etc. of the Pala period are kept at kalisthan.

Chhatoi: The village of chhatoi is situated about 5 Kms. to the south of Kurtha in Gaya District. To the south of the village and at a near distance to the east of the Kurtha-Tekari road lies an extensive old mound which covers roughly an area of about 20 acres of land. The mound is about 8 metres high. To the east of the mound lies, an old tank.

The sherds of the N. B. P. ware and other associated potteries are found on the surface. it is reported that a large hoard of silver punch-marked coins was found in an earthen pot while a cultivator was digging a water chanel in a filed to the west of the mound.

Chillor : The village of Chillor (Long. 24·41' Lat. 84.48') in Gaya District is situated about 25 Kms. to the south-west of Gaya and 3 Kms. to the east of Guruva on the bank of the river Morhar. In 1847, the place was visited by Major Kittoe who refers to a high mound and a mud-fort built on it and he believed it to be 'the site of an ancient city of gret extent'.

The present author, during his visit, found sherds of black-and-red ware of pre-N. B. P. types bearing black and white paintings of parallel and vertical lines from the surface. Some sherds bear yellow painting of hook designs. Sherds of basins show chocolate polish on the upper surface of the sharp finished rims and may be compared with the similar Neolithic-Chalcolithic potteries of Chirand and Sonpur. Sherds of N.B P. ware such as dishes bowls, cups and basins etc., show lusturous shining of golden, silvery, steel-blue and black polish and may be compared with the excavated potteries of Sonpur (Gaya District).

Dharawat : The village of Dharawat lies, (Long. 25°3' Lat. 55°2') in the Makhdumpur police station of the Gaya District. It is about 8 Kms. to the north-west of the well-known Barabar hills and about the same distance to the east of Makhdumpur railway station on the Patna-Gaya section of the Eastern Railway. The old name of the place is said to be Kanchanapura, Dharmapura, Dharmavar etc., and its origin is traditionally attributed to a legendary King named Padmachakra whose son Chandrasena is credited to have excavated the Chandokhartal or Chandrapokhar situated close to the south of the village.

In 1847, the site was visited by Major Kittoe and subsequently by Cunningham and Beglar. Close to the east of the village and north-east of the tank lies a row of three high mounds which occupy an area of about half a Kilometre long and one-fourth Kilometre wide. Recently, sherds of black-and-red ware, N. B. P. ware and other associated potteries are found on the mounds. Ruins of old brick structures of Gupta-Pala period are scattered on the hills to the south of the tank (Chandrapokhar). A standing image of eight handed Boddhistava-Padmapani is now kept by the side of the Narasimha. temple built on the north-eastern corner of the embankment of the Chandrapokhar and at a short distance to the south of the village.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Dharawat is a very rich site and a large number of seals and sealings discovered there are now preserved in the Patna Museum. Ten clay sealings bearing the representation of a *Stupa* and the famous Buddhist creed have been recently discovered from a small mound to the south-west of the village. Cunningham excavated the remains of a great monastery on the northern slope of the hill known as Ratni or Kunwa and discovered a number of Buddhist images bearing the usual Buddhist creed formula. Two interesting seals bearing the representation of a *stupa* surrounded by three umbrellas and four flags or streamers with inscriptions *Tathagatasya Buddhasya* on one and simply *Buddha* on the other were also discovered. Several Buddhist images of Avalokiteshvara Padmapani, Tara and Jambhala and votive-*stupas* datable to the early Pala period are still lying on the northern foot of the hill to the south of the tank.

Dhangama (Dhangava): The village is situated about 5 Kms. to the east of Jahanabad railway station in Gaya District. A huge earthen mound called Dhangamagarh is situated about one Kilometre to the south of the village. The mound is about 20 metres high and occupies an area of about 15 acres of land. During the present author's visit of the site, sherds of N. B. P. ware were found on the surface. Some mutilated Buddhist sculptures were also found under a *Pipal* tree on the top of the mound which were probably brought from the near by site of Dakshini, situated about 2 Kms. to the east of the mound.

Dabur: The village of Dabur lies about 1 km. to the south of the Ismailpur railway station on the Grand Chord section of the Eastern Railway. An old mound and ruins of a stone temple are located to the south of the village and some pillars are still standing. Images of Vishnu and Surya discovered from the site are now installed on a high *pucca* platform on the back of a modern temple situated at a near distance to the east of the village.

Guruva: Guruva is a small town and police station in the Gaya District. An old mound covering an area of about 3 bighas of land is situated to the east of the market and to the south of the road which runs to the Block Offie. Sherds of N. B. P. ware are found scattered on the mound. Some early coins are also said to have been found there.

Jethian: The village of Jethian is situated in the Rajgir valley about 16 kms. to the south west of Rajgir town.

In 1871, the place was visited by Cunningham who identified Jethian with Yashtivana of the Buddhist tradition.

At a close distance to the east of the village lies the old habitational site which has now been brought under cultivation. Sherds of N. B. P. ware, grey ware and other potteries and antiquities such as stone and terracotta beads, cast copper coins and metal objects are found on the surface. About one hundred metres to the south of the village, lies an old tank. Sculptures of Buddhist deities such as Bodhisattva, Tara, Budda etc., are kept under trees just to the south of the village and to the east of the tank. At a distance of 1km. to the east of Jethian near the village of Khiri lies the Rajapinda cave said to be the abode of the famous robber Angulimala of the Buddhist tradition.

The most interesting discoveries from Jethian valley are stone tools of Middle and Upper Palaeolithic Cultures.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Jhakhad: The village of Jhakhad in the Ghosi police station of the Gaya District, lies on the Masaurhi-Okari road about 1 km. north of the village of Data-Mai. The village occupies an extensive high mound which can be seen from for away distance. It is a N. B. P. site hitherto unknown. Images of black stone of Durga, Surya, Vishnu and others were found near a well to the east of the village. A circular black stone (8" in diametre) bears the representation of the foot-prints, *vajra*, *Ankusha* and lotus.

Kabar : The village of Kabar lies in the Konch police station of the Gaya District. It is about 10 kms. to south of Konch and connected by a jeepable *Kacha* road. There lies to the south of the village a large plateau of high mound which occupies an area of more than half a kilometre square. The mound is about 5 metres high. It is surrounded by a deep moat from all sides. Sherds of black-and-red ware, N.B.P. ware, grey ware and black ware etc., are found on the surface. Silver and copper punch-marked coins, cast copper coins and a billon coin bearing the legend *Vasudattasa* in the Brahmi characters of about the 2nd-3rd century B. C. has been found.

Kachanama : The village of Kachanama is situated in the Bela police station about 5 kms. to the south of Barabar hills. Kachanama is a Gupta-Pala site. Stone sculptures, pillars and ruins of old temples are seen here and there in the streets and fields of the village and also to the south of the nearby tank. Images of Ganesha, Uma-Maheshvara, Vishnu, Surya and Shiva-Lingas are kept near a garden at a close distance to the west of the village.

It may be noted in this connection that two beautiful images one of six handed dancing Ganesha and another of Simhavahini Durga have been acquired recently by the present author.

Keur : The village of Keur (lat. 25°3', Long 85°10') is situated about 4 kms. to the south-east of Hulasganj in the police station of the same name in the Gaya District. About 400 metres to the north of the village lies a circular high mound of bricks which appears to represent the ruins of an old *stupa*. The mound is about 25 metres high and covers an area of about 3 acres of land. In about 1929, the place was visited by A. Banerji Shastri who wrongly proposed to identify the site with the ruins of the famous Vikramshila University founded by the Pala King Dharmapala. Within a brick-enclosure to the north of the village, several Shiva-Lingas and the images of Surya, Vishnu, Durga, Uma-Maheshvara, Buddha-pannels and Votive *stupas* etc. of the Pala-Sena period are kept for worship. A bronze image of *Kurmavatara* with other *avataras* is fixed into a raised *pucca* platform near a Primary School. During the present author's recent visit of the site, sherds of balack ware and grey ware of coarse fabric were found. The site is surrounded by old tanks from all sides. The ruins of old-*stupas*, temples and tanks and the discovery of the Buddhist and Brahmanical images from the site show that it was an important feligious centre during the Pala-Sena period.

Khaneta-Pali : The village lies in the Bela police station of the Gaya District. It is situated on the Jahanabad-Gaya Road about 1.5 kms to the north of the Bela Railway Station on the Patna-Gaya line.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

It is a Pala-Sena site and stone pillars of old temples are lying scattered in the fields to the south of the village. Four images of Vishnu of black stone datable to about 10th century A. D. are lying under a tree by the side of the road. Images of Uma-Maheshvara, Durga, Surya and Vishnu etc., are also installed in a modern temple situated to the south of the village, close to the east of the above road.

Kinjar : The site is situated on the Jahanabad-Arwal road on the eastern bank of the Pun-Pun river. It is a N. B. P. site of considerable importance. During the present author's visit of the site a hoard of silver and copper punch-marked coins and cast copper coins were found in the possession of a cultivator of the same place. The hoard is said to have been found in a earthen pot, in course of ploughing the field to the south of the village called *dih*. Terracotta figurines of Maurya-Shunga period are often found by the cultivators while working in the fields on the site.

Kurua : The village of Kurua is about 3 kms to the north of Okari and one km to the north west of Arhit (q. v.). An old earthen mound about 5 metres high is situated in between the fields to the south of the village. The mound occupies an area of about one acre of land. Sherds of grey ware and red ware of fine fabric were found on the surface. From the surface exploration, it appears that the place was under occupation during the Gupta Pala period.

Lari: The village of Lari lies about 5 kms. to the south-west of Kurtha in the Gaya District. An Extensive mound and several old tanks are situated to the south and south-west of the village. Sherds of the N. B. P. ware and some early coins have been found.

Makanpur: The village of Makanpur is situated about 3 kms. to the north-east of Warsaliganj in the Nawadah District. The old name of the place is said to be Mukundapur and associated in the local tradition with Krishna and Radha. An old site called Radhasthana is situated to the east of the village. It may be noted in this connection that the place called Bhadethriasthan (or Bhadresvaristhan) is a N B. P. site. Sherds of N. B. P. ware and greyware etc are found there. In the middle of the village lies a broken part of a red stone door-jamb of the Gupta period. A beautiful image of Varaha and two of Vishnu of black stone datable to the 10th century A. D. have been recently discovered.

Makhpa: The village of Makhpa is in the Tekari police station of the Gaya District. It is about 2 kms. to the north of Tekari Fort and situated on an old site of Gupta-Pala period. There lies about ¼ kms. to the south of the village, a temple of the Goddess Varahi and hence the place is locally called Varahisthan. A large image of Varahi is installed in the temple and several images of Vishnu, Uma-Maheshvara, Durga and Ganesha are fixed into the walls around the *Pradakshinapatha* of the temple.

Nagamagarh : The village of Nagamagarh lies in the Gurva police station of the Gaya District about 12 kms to the west of Guruva Bazar. It is a N. B. P. site. There stands in the middle of the village a very high mound which covers an extensive area. A large number of Buddhist and Brahmanical images discovered from the site are now kept in the rooms and also on the

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

roof of a modern temple built on the site of an old temple in the middle of the village. A beautiful image of Avalokiteshvara Padmapani seated in *Lalitasana* is kept in the northern room of the temple for worship.

Neuri : The village of Neuri is situated in the Bela police station on the Jahanabad Gaya road about 2 kms to the south of Bela Bazar. It is a Gupta-Pala site and was an important centre of the Buddhists. There stood an old temple of bricks which contain large number of sculptures, votive-*stupas* and pannels representing the figures of the Buddha. Several broken images of Buddha, Bodhisattva, Tara and pannels of Buddha figures are kept near the temple. A beautiful image of Jambhala of black stone is lying in the field to the east of the temple.

Okari : The village lies in the Ghoshi police station of the Gaya District about 3 kms. to the north of Bandhuganj. It is Surrounded from three sides by the Falgu river and its branches. The village is situated on an old mound which is about 15 metres high. The old name of the village is said to be Vishnupur. During the recent visit of the present author three rectangular old pillars of cist stone all bearing inscriptions in the characters of the 8th century A. D. were found in the garden of the Okri High School. The traces of the inscriptions are now partly preserved.

It is worth nothing that Okri was an important religious centre of the Hindus during the Pala period and there stood several temples of bricks and stone. A large number of Brahmanical images of black stone belonging to the 8th-9th century A.D. are now kept at not less than ten sacred places of the village. At a near distance to the north of the Masaurhi-Okri road several stone images of Surya, Vishnu, Bhairava, Uma-Maheshvara, Durga, Ganesha, Kubera and Shiva-lingas are kept in an open space at the Mahadeva-sthana of the village of Jaitipur located at a near distance to the north of Okri.

Seonan : The village of Seonan is in the Jahanabad Sub-division of the Gaya District about 3 kms. to the south-west of the Nadaul railway station on the Patna-Gaya line. An old mound covering a large area is situated to the south of the village. Stone images of black stone datable to the 8th-10th century A.D. are scattered here and there at the sacred places of the village. Two images of Vishnu are lying under a *pipal* tree to the north of the village and four standing images of the same deity and ane each of Ganesha, Surya and Uma-Maheshvara are kept in a brick-enclosure at Ganesha-sthana to the south of the village.

Sihati: The village of Sihati is situated in the Jahanabad Sub-division and police station of the Gaya District. It is about 5 kms. to the east of Jahanabad court railway station on the Patna-Gaya line. The village is very famous for sun temple and tanks which are situated about 500 metres to the east of the village. An old mound locally called Dahksinigarh is situated to the south of the tank just by the side of the above road. According to the local tradition the old name of the place was Dakshapur, the capital of king Daksha, the father of Sati and the performer of the great *Yajna* in which the latter had burnt herself.

Dakshinigarh is very extensive and covers an area of about 15 acres of land. It is about 10 metres high. Sherds of grey

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

ware and other associated potteries are found on the surface. A large number of broken images of Durga, Ganesha, Vishnu, Surya etc., are now kept under the trees on the northern slope of the mound and also in the temple built on the western embankment of the tank referred to above.

Simuari: The village of Simuari is famous for the old fort which lies in the Tekari police station of the Gaya District about 3 kms. to the north of Tekari fort and connected by road. Like the Tekari fort, The fort in question is also surrounded by deep moats from all sides and is situated on an old site of the N. B. P. period Sherds of N. B. P. Ware are found in the most and the core of the mound.

Sumera: The village of Sumera lies in the Tehta police station of the Gaya District about 6 kms to the east of the railway station of the the same name on the Patna-Gaya section of the Eastern Railway. Close to the south of the village lies a very high mound which is about 50 metres high and covers an area of about half an acre of land.

In my recent, visit no representative pottery was found. It appears that the present level of the high mound was raised by pilling the layers of stiff clay some-time during the Gupta-Pala period in order to use it as a watchtower. Several images of Vishnu, Uma-Maheshvara etc., found from the site, are now installed in a modern temple situated close to the west of the village.

Suppi: The village of Suppi is about 15 kms to the east of Jahanabad in the Ghosi police station of the Gaya District. It is connected by a *Kacha* road from Hatimora (Hatimoda) on the Jahanabad-Hulasganj road. The old name of tha place was Suppiya or Supriya meaning beautiful or lovely. The old mound of Suppi also called *Suppigarh* is situated about 1 km to the south of the village. It occupies a vast area and the mound is about 10 metres high. Sherds of black-and-red ware, N. B. P. ware and other associated potteries are found on the surface. A terracotta plaque found from the present site represents the figure of standing sun-god, driving one-wheeled chariot drawn by four horses. The god holds the reins of the running horses. He is attended by two females represented on the upper field at a higher level in order to show the distance from the god.

It may be noted that the earliest anthropomorphic figure of the Sun god is represented on a pot-sherd of the Mauryan period found from Patna. The deity is shown standing with his charioteer Aruna on a four-horsed chariot. A Sunga plaque fouud from chandraketugarh also bears the representation of the Sun god flanked by two females and riding on a toy-chariot drawn by four horses. The sun god seated on one-wheeled chariot drawn by four horses is also represented on a Sunga railing pillar at Bodhgaya. An image found from Bhaja also shows the god driving a four-horsed chariot.

Tekari: Tekari is an important market town and police station of Gaya District. It is about 25 kms to the west of Gaya and connected by road. The place is famous for the old forts of the Maharajas of Tekari. It is significant to note that the fort of Tekari, situated to the west of the town is built on an old mound of the N.B.P. period. Sherds of N. B. P. ware, grey ware and black ware etc., are found on the unoccupied portion of the mound to the south of

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

the fort. A copper punch-marked coin discovered from the same site was found in the possession of Shri Tara Sharan Mishra of the same town It is a specimen of 0.5 *pana* (or *Karsapana*).

Utren Pali : The village of Utren and Pali are situated in the Konch police station of the Gaya District. It is about 22 kms to the west of Gaya and situated just by the side of the Gaya-Konch road. The site of Utren was in occupation during the Gupta-Pala period is attested by the ruins of old temples and stone pillars and sculptures scattered on the mound to the south of the village on both sides of the road. Numerous Shiva-lingas, Nandi and images of Vishnu, Uma-Maheshvara, Durga etc, are found scattered in the fields to the south of the village. Interestingly enough the images of Lakulisha, Shiva, Surya, Parvati and others aquired from the same site by the present author are now exhibited in the Gaya Museum.

Uttara: The village of Uttara lies in the Kurtha police station of Gaya District about .5 km. to the north of Lari (q. v.). The village is associated in the local tradition with the well-known heroine Uttara of the *Mahahbarata*. It is said that the village was visited by the Pandava and Krishna on his way to Rajagriha, the capital of king Jarasandha of Magadha. Uttara appears to be a pre-N. B. P. site. Sherds of black-and-red ware, N. B. P. ware and other associated potteries are found on the surface in the fields. The village itself is situated on the mound and the remains of old bricks and stone temples are found scattered near the shrine of *Makhdum Saheb* of the village. During the Pala period, Uttara was an important place for the Buddhists as suggested by the discovery of Buddhist sculptures and Votive *Stupas* datable to the 9th century A. D. Apart from these, there are still a large number of archaeological sites of great importance. Some more sites may be mentioned here such as Atri, Jamuava, Ghenjan, Guneri, Chatihar, Jaru, Kespa, lava, Korra, Kako, Dharnai, Newari, Rajauli, Belai, Manjhar, Lat, Sachai, Er, Dharnai, Chatiyana, Maksudpur, Konch, Mokai, Mirganj, Pisua Rame, Belsar, Pariyava, Pariyari etc. in the Gaya District, Thera, Dariyapur-parvati etc, in the Nawadah District and Daudnagar, Deva, Umga, Deo Kund, etc in the Aurangabad District.

Thus, recent explorations have brought to light several new sites besides adding more deatails to the already known ones. There may be more sites not yet tapped in the region. The collections being preserved in the museums of Patna, Gaya Nawadah, Bodh Gaya and others also testify the archaeological importance of the region under review. The study shows that this part of the Magadha has played an important role in the development of Indian civilisation. It has been under continuous occupation since the Palaeolithic period.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

NASEEM AKHTAR

ARCHAEOLOGICAL EXCAVATIONS IN GAYA : A PICTURE EMERGES

Gaya, the heart of Magadha, is one of the richest regions of the World so far as the archaeological remains are concerned. Almost each village of the region lies on an ancient mound or ruins and offers an extensive scope for archaeological activities and research. However, only three sites have scientifically been excavated so far which provide fresh materials for reconstructing the history of Gaya.

The beginning of archaeological activities in Gaya, as represented by extensive survey and partial excavation, was actually initiated by Alexander Cunningham in 1861, although Buchanan Hamilton, Major Kittoe and others have done some preliminary work earlier. The first two places which claimed Cunningham's attention and from where he actually started his survey were Gaya and Bodh Gaya. The work of Cunningham and his assistants provided a solid basis for archaeolgical operations and helped in laying the foundation of the historical archaelogy in Bihar. The scientific excavation in Gaya actually began in the post independence era. It is not until 1956 that we notice any effort being made in this region for undertaking excavation work. In fact, it was Shri Baldeo Prasad, the founder of Gaya Museum, who had drawn the attention of the Government and scholars towards the growing needs of excavation here. He submitted a long list of archaeologically potential sites and insisted for the excavation at Sonpur.

Sonpur (Lat. 24·28', Long. 84·58') is situated about 5 Kms. west of Bela railway station on the Patna-Gaya Section of the Eastern Railway. The mound is locally called as *Banasur ka Gadh*, and also by the name of Sonitpur. The mounds are 5 to 10 feet in height above the surrounding fields. The excavations conducted for five seasons under the auspices of Bihar Government (1956-57, 1959-62 and 1971) have brought to light three successive cultural periods with a sub-division in the earliest phase. Sub-period IA and IB of period I are characterised respectively by coarse black-and-red ware with copper and finer

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

black-and-red ware with the emergence of iron towards its latest phase.

The earliest people settled above the natural soil represented by the yellowish compact clay. Average thickness of the deposit was 12 feet (Period I of which 2 feet represented the earliest sub-period. Out of 10231 sq. ft. till 1962) of the total area excavated only 525 sq. ft. has yielded remains of the earliest sub-period. It appears that in sub-period IB, the habitational area was twenty times larger than the earlier one. The limited area suggests that the settlement was not large. Most probably the same people, in course of time, spread up there and occupied more areas of the site gradually due to the rise in population.

The earliest people lived in the huts formed by wooden or bamboo posts. Around these, were provided reed or bamboo screens plastered with mud as is indicated by the remains of lumps of clay bearing reed or bamboo impressions. Floors were made of clay mixed with silt. These were further coated with lime to make them smooth, firm and insectproof. This method of constructing huts was most common at the contemporary sites. However, exact plans of houses could not be traced owing to the limited nature of excavation in lower levels.

The people practised agriculture, hunting and fishing for their livelihood as is evidenced by the discoveries of husk impressions on potteries and charred rice grains, animal bones and some hunting tools. Unfortunately, the ratio of vegetal diet has not been marked. Similarly, animal bones, reported to have been found in fairly large numbers, have also not been identified. However, cattle seems to have occupied a prominent place. Paddy cultivation and cattle-breeding are the main occupations of this area even to this day.

The richest yield of the material remains of the period is of course its pottery. It has been divided into three groups the red ware, the black ware and the black-and-red ware. The entire range is turned on wheel, though hand-made specimens are also not wanting. The fabric is coarse and the clay contains a large proportion of sand. The surface is invariably treated with a slip.

The black-and-red ware forms the highest percentage of frequency. Bowl is more common which might have been used as a multipurpose pot. Other types include dish, vase and basin (both plain and lipped). Next comes the black or black-sliped ware. Fired under reducing conditions, it represents such types as bowl, dish and lipped bowl. Red ware was very much restricted. Besides bowl and vase, shallow lid and perforated pots were also made in this fabric.

The fabric became little improved in the sub-period I B. A few new types such as evolved dish with a carination at the waist towards a shallow base occurred. They were made of well-levigated clay and are mostly thin and well-burnt. A few of them have decorated bands on the shoulder with applique design. This sub-period also witnessed the appearance of a few painted sherds. They have been found on the red-slipped shoulder portion of vases in cream solid dots. A few black pieces of dish-rims were found with white paintings. The motives include curved lines and group of lines and sometimes with design having parallel strokes.

The whole range shows mainly three functional groups—which were for everyday

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

rough use, those for a refined use and lastly probably for ceremonial or ritualistic purposes. The forms are mostly utilitarian in nature. In the last category, we may put the lipped and perforated pots.

Bone tools have been found in a large number though the types are very limited which include points and arrow-heads (both tanged and socketed varieties). Besides its hardness and easy workability, the use of bone was probably due to the paucity of copper. Only a few copper wires, which might have been used for making rings, have been found.

A few microlithic blades and points were found from the later phase of the period which must have survived from the earlier levels.

Evidences regarding the disposal of the dead have come to light from the sub period I B. The post-cremation burials, each a circular pit about 1.2 to 1.8 metre in diametre and 75 cms. in depth, contained ash, bone-pieces and potteries. However, whether it represents a human burial or an animal burial, we could not say with any certainty because the bones have not been identified by specialists.

Iron slags occurred towards the close of the period in a pre-N. B. P. Ware horizon. Its use gave the people a new power and a new sense of security. Besides being played an important role in large-scale agriculture and rise of cities, it facilitated the rise of Magadha as a powerful political force.

It appears that the pottery with basic utilitarian types and poor material cultural equipment found at Sonpur, may represent a small rural habitation of less skilled peasant communities who had just started agriculture, domestication of animals and a settled life.

The beginning of the black-and-red ware habitation at Sonpur may be pushed back much earlier than considered by the excavator. We have only one C-14 determinatian, i. e. 6 5 $\pm$ 110 B. C. (TF-376) for the latest level of the sub-period I B, below which lies about 10 feet thick cultural deposit. It is noteworthy that the sample (charred rice) was not specially collected for C-14 determination. The sample must have been contaminated by younger carbon. Stratigraphically, the sample belonged to the latest phase of the black-and-red ware habitation. Keeping in view the nature of habitation and assemblage, the present author has suggested elsewhere that the chalcolithic settlements of Sonpur and Chirand (district Saran) were contemporary (JBRS, LXII, p. 10). The earliest level may be dated to 1500 B. C. and the period came to an end in about 700 B. C.

The succeeding period was marked by the emergence of the wellknown N. B. P. Ware, the people still lived in the huts made of wattle - and - daub though, at one place, slight trace of mud wall was noticed. Terracotta ring-wells were also brought to light. The period witnessed for the first time money economy. Copper and silver punch-marked coins, besides uninscribed cast copper coins, were found for the first time from this period. Introduction of coin changed the whole economic structure of the people and facilitated large scale trade, both inland and foreign,

The N. B. P. Ware has been described as the delux ware of its time. The surface bears highly lustrous mirror-like polish.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

It shows various hues like steel - blue, black, silvery, golden, pinkish and some times in bi-colour in golden and silvery. Sonpur claims to be the only site in Bihar, rather in India, from where very fine specimens of the N. B. P. sherds in abundance have been reported. Types include dish and bowl (both plain and corrugated.) Potteries of the preceding period continued to be made on a mass scale.

A fairly good number of sherds bearing painting in cream pigment were discovered. The design consisted of loops, dots, sigmas, nandipadas, pipal leaves, etc. The decoration on vases and basins comprised applique, cut and incised designs. The period also yielded a fairly good number of pot-sherds having graffiti marks. It included parallel lines, trees, ladder, bow and arrow, *swastika* etc.

The period also witnessed large scale use of iron. Tools and weapons of this metal included lance, spear-head, arrow-head, dagger, axe, nail, chisel, blade, etc. The use of copper also increased. Antimony rods, bangles, besides socketed arrow-heads were discovered.

Terracottas included human and animal figurines. Mention may be made of a female dancing figurine wearing under garment and flouncing skirt which is a good example of delicate taste.

Polished stone axes were found in a fairly good number. It is surprising that such neolithic axes have not been found so far from the preceding chalcolithic period. The occurrence of these celts may suggest a neolithic tradition of the society. A full fledged earlier neolithic period in the vicinity may not be ruled out,

Other antiquities included beads of semi-precious stones, glass beads and bangles. The discovery of a crystal human face representing a pendant is very important. The facial features are Egyptian which may go to suggest some trade-relation with that country.

The period come to an end due to a large scale fire,

Sonpur was re-occupied after a short interval of time. Black-and-red and the N. B. P. wares were conspicuous by their absence. Now red ware of medium to coarse fabric occurred, besides a few black and grey wares. Sprinklers made their appearance for the first time. Other types include conical bowl, spouted vessel, lid-cum-bowl, etc. A few pots decorated with applique and stamped floral designs were also found. The pottery of this period was crude and ill fired representing a degenerated industry.

Neolithic celts continued to be used. The period may belong to 1st-2nd century A.D.

Next excavated site of Gaya is Bakraur (Lat. 24°42, Long. 85°1'). It is situated at a distance of about one km. north-east of the famous Mahadodhi temple. The circular mound at the site is 11 metres in heght. It was identified by Cunningham with that of the *stupa* known to Buddhist tradition as the *gandha-basti-stupa* mentioned by Hiuen Tsiang.

Bakraur was excavated under the auspices of the Archaeological Survey of India during the field season of 1972-73. As a result, three stages of construction in the stupa came to light. The diameter of the *stupa* was 55 metres in its earliest form. The *pradakshinapatha*, made of burnt bricks,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

was very narrow being two metres in width. An enclosure wall was provided around *stupa*. In the second stage of construction, the diameter of the stupa was enlarged. A five metre wide *pradakshinapatha*, made of thick lime plaster, was constructed after covering up the original one. In the final stage, the diameter of the stupa was raised to 65.50 metres. An enclosure wall of burnt bricks, railings and gateways were also provided.

Several inscribed plaques, made of plaster, representing Buddha in *bhumi sparsha-mudra*, were the most important discovery. The legend *Devapalarajasya Sujatagriha* are in Pala characters. It indicates that the *stupa* was made during the reign of Devapala to mark the place where Sujata, who offered Payasa to Siddharatha, lived. These inscriptions may go to prove that Bakraur was the place where Sujata used to reside. A date between eighth and ninth centuries has been assigned to the last phase of the *stupa*. It seems that the original *stupa* was constructed during the regime of the later Guptas or slightly earlier.

One of the most important sites of the region, where archaeological excavation is still in progress, is Aphsad (Lat 25·4', long. 85·40') The site is situated at a distance of about 24 kms. north-east of Nawadah. The main mound is about 60 feet in height from the ground level. Aphsad is well known for a huge figure of Varaha incarnation and a stone inscription of Adityasena, a later Gupta king. It records the construction of a vaishnava temple and a religious institution.

The site was brought to light by Major kittoe in 1847. Bloch in his report for the year 1901-02, made a strong recommendation for the excavation of the site, but the actual operation began only during the field season of 1973-74 by the Directorate of Archaeology & Museums, Bihar.

A few years earlier before the commencement of archaeological excavation, a part of the mound was dug out by some curious villagers. They exposed as many as eight rectangular panels with stucco images depicting Ramayanic scenes in a story sequence. It clearly shows that the mound represents the ruins of a Vaishnava temple referred to in Adityasena's inscription.

As a result of five seasons of archaeological excavations (1973-74, 1977-78, 1978-79, 1979-80 and 1980-81), remains of a well-planned Vaishnava temple belonging to the later Gupta period has been brought to light.

The temple, constructed in four tiers (excluding ground level), was provided with an uniform system of *Pradakshinapatha* for each tier. The exterior walls of such tiers possess beautiful cornices. A staircase for climbing up to the top of the temple has been provided on the northern side. A platform was made at the junction of each tier for easy movement of the devotees. The sanctum or the main shrine is on the top of the temple. Bricks of the temple-walls have been founded by applying a thin coating of mud mortar. Lime and *surkhi* were used in plastering work. Beautiful niches adorn the walls throughout. It is interesting to note here that the foundation of all the walls have been sunk from the ground level which indicate the beginning of the piling system of construction.

The site is still under excavation. Further work may throw positive light on the

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

layout and the plan of the temple besides, the problem of the continuation of the stuceo panels.

Excavations conducted so far in Gaya region, though exploratory in nature, throw considerable light on the early history of the area. Now a more detailed and systematic survey followed by horizontal excavations are needed to know the exact nature of the settlement-pattern and economic-pattern of the early people besides, solving the problems of the origin of the early peasant culture, introduction of iron and other allied matters. Further excavations at Sonpur and Jethian, Raunagarh, (near Guraru, from where the present author has collected sherds of the white painted black-and-red ware for the first time in this area) Chillorgarh, Uttaragarh, Dharawat, Jaipurgarh, Baidrabad, Bodh Gaya, Gaya City, Kurkihar, Bhelavar, etc. may provide a clear picture of the evolution and development of civilisation in this part of the country.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

VIJAY KUMAR THAKUR

A NOTE ON THE DATE OF THE MAHA-BODHI TEMPLE

The origin of the Mahabodhi temple at Bodh-Gaya is still shrouded in mystery, the main reason for this being the nature of the sources for its study. The Buddhist texts constitute the basic sources, but they are not very clear on many points though they are helpful. This is a situation that can be illustrated by making a reference to three different sources relating to Ashoka's visit to Bodh Gaya. Rock Edict VIII informs us that Ashoka "undertook a pilgrimage to Sambodhi" ten years after his coronation.[1] The *Mahavamsa*, however, puts this visit in the 18th regnal year of Ashoka. The *Divyavadana* seemingly refers to yet another account when it notes that Ashoka visited Bodh Gaya in the course of a general and continuous tour of all the places of Northern India associated with Buddhism.[3] In fact, the *Divyavadana* makes Lumbini-grove as the first of the holy places visited by Ashoka on his pilgrimage with his preceptor Upagupta, and this was followed by his visit to the Bodhi Tree. According to the *Divyavadana* Ashoka undertook this pilgrimage after getting constructed the numerous *viharas* and *stupas* which, according to the *Mahavamsa*[4] were completed after his seventh regnal year, *i. e.* after 262 B. C. Thus the legends may be taken to be in complete agreement with the inscription on this point. The *Divyavadana* also tells us that after the first visit to the Bodhi Tree, Ashoka became so much attached to it that out of jealousy his then Chief Queen, Tisyarksita, got the tree distroyed. Eventually she was moved by the King's devotion to the tree, and accompanied him on his anxious visit to the Tree with elaborate measures to revive it.[5] Thus, Ashoka undertook *dhama-yatras* to Bodh Gaya, one in his tenth regnal year as suggested by the inscription, and another in his eighteenth regnal year as suggested by the *Mahavamsa*. Thus, contrary to D. K. Barua's assertions, these sources do not contradict each other on this point, rather they are mutually supplementary.[6] D. K. Barua suggests, however, that Ashoka's visit to this place,

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

hardly indicates his association with the Mahabodhi temple, for this is a point which does not find mention either in his inscriptions or in the Buddhist texts.[7] To him the only contribution of Ashoka to Bodh-Gaya seems to be the emergence of this place as an important centre of Buddhist pilgrimage because of his *dhammayatras*.[8] This point, however, needs reconsideration.

On the basis of Hieun-Tsang's testimony it is suggested that Ashoka got constructed a small shrine on the spot where the Buddha attained enlightenment[9] It is interesting to note that among the bas-reliefs of the ruined *stupa* at Bharhut there were two sculptural representations of this small shrine with the Bodhi Tree behind and one of them contained the legend: "The Bodhi Tree of the Blessed Shakya Muni".[10] As these sculptures belong to the close of the 2nd century B. C., the bas-reliefs can be taken as fairly faithful representation of the original structure. These bas-reliefs suggest that the original shrine was an open pavilion supported on pillars. The Vajrasana or the Diamond Throne was in the centre, decorated in front with a set of four pillars. Just behind the Vajrasana was the Bodhi Tree rising high above the building and adorned on each side with a combined symbol of the *Triratna* or the Threefold Jewel and a *Dharmachakra*, standing on the top of a short pillar. The top of the throne was ornamented with flowers but the Buddha image is absent. The "Vajrasana room" had one chamber each of the same style on each of its sides. That the bas-reliefs apparently represented the original structure is partially corroborated by the discovery *in situ* of the two pillar-bases as well as a sandstone throne alongwith other corroborative details. Moreover, the upper surface of the throne is carved with geometrical patterns, circular in the middle, with a double border of squares while the four sides are richly carved with pigeons and the conventional acanthus flowers and the geese usually seen on Ashokan pillar capitals, the latter suggesting apparent Ashokan connection with the structure. The discovery of an illegible votive inscription, on the narrow side of its upper surface, in early Brahmi script intended to record a gift of the throne further corroborates this hypothesis. In spite of such unassailable archaeological evidence B. M. Barua refuses to give any credit to Ashoka for any constructional activity at Bodh Gaya and adds, "Even it is difficult to ascribe to his (Asoka's) piety the erection of the smaller shrine reffered to by the Chinese pilgrim (Hieun-Tsang). The only smaller shrine which may be believed to have existed and stood in front of the original Bo-tree as anything like a shrine is the Diamond-throne temple...this earlier shrine was not brought into being by King Ashoka but by some such personage as Kurangi, the Matron and Lady Kurangi, to whose munificence the ancient stone-railing was mainly due. The diamond-throne temple still exists inside the present temple without its covering roof and with its four pillars broken and damaged".[11] Obviously, B.M. Barua is so much influenced by a set of fifteen votive inscriptions of Kurangi on pillars and two on coping stones[12] that he even ignores positive archaeological evidences suggesting Ashoka's association with the temple. In fact, underneath the Vajrasana was discovered a brick platform, ornamented on its side with figures of men and lion, and this was certainly a post-

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Vajrasana construction. Inside the masonary of the brick platform, in the middle of its front face, was found a ball of stiff earth or clay which, when broken, yielded a number of gold and silver objects, gems and pearls including a hollow golden amulet imitating the obverse motif of a coin of Huvishka on both its faces, and five punch-marked coins.[13] While removing the plaster on the platform it was further discovered that the mortar "instead of being composed of sand and lime, consisted of coarsely pounded coral mixed with small fragments of sapphire, crystal, pearl and ivory, bounded together with lime", obviously indicating that this shrine or Vajrasana was held in highest veneration and sanctity. That the shrine had already become highly venerated at the time of these apparent additions indicates the existence of an earlier structure which was partly embellished during this period. The Ashokan Vajrasana was provided with a platform and the donations of Kurangi seemingly relate to this second phase of construction.

That constructional activities mainly of an additional nature were going on in the 1st-2nd centuries A.D. is further proved by the discovery of an inscripition on the pedestal of a statue of the Buddha found near a small ruined temple close to the south gate of the railing of the Great Temple.[14] This statute apparently belonged to this period as is obvious from the Indo-scythian style of letters and the style of sculptures. Fourtunately, the inscription is dated in the *samvat* year 64, and as the record is worded in the usual form of the Indo-Scythian inscriptions discovered at Mathura, there is hardly any doubt that it belonged to 2nd century A.D. The year 64 is probably of the Saka era, which is within the reign period of Huvishka. The present inscription is badly damaged, and the donor's name is hardly legible. He was, however, a *maharaja* (a feudatory of the Kushana king Huvishka) who, according to Cunningham, "may, therefore, have been the agent employed by the Indo-Scythian king Huvishka in building the great Temple. His name was either Tukamala or Turamala".[15]

This is a conclusion which suggests that the Mahabodhi temple was built during the reign of Huvishka, but it is sadly out of tune with the known facts. To begin with, it may be noted that the image inscription under discussion hardly refers to the construction of any temple, big or small; it only refers to the setting up of two images. That this would have been the most appropriate thing after the emergence of Mahayanism and image worship, is beyond doubt. The Ashokan shrine was given the Buddha image which it did not contain before. But, to us it seems, that the two images under discussion could not have been installed in the Bodhi shrine, for they are the images of Buddha-Bodhisattva. So these sculptural activities during Huvishka's reign do not give any indication of the structural embellishment of the Ashoka shrine; these additions, if at all connected with the main shrine, were supplementary to the changes introduced by Kurangi and others.

A peep into the accounts of Chinese pilgrims is quite revealing in this context. Fa-hsien, who left China in A. D. 399 and travelled across India and from Orissa sailed to Sri Lanka returning to his native land in A. D. 414, refers to Bodh Gaya in very clear terms. From Gaya he came to Bodh-Gaya which was full of forests. There he saw all the important sports

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

connected with the pre-enlightenment phase of the Buddha and noted that they were all desolate; at some of these places, however, topes had been constructed. He, however, noticed three manasteries at the place where the Buddha attained perfect wisdom. He did not notice the Mahabodhi temple;[16] obviously it had not been constructed by his time. Thus, it can be suggested that the Mahabodhi temple had not come into being till the beginning of the 5th century A. D.

Hieun-Tsang is however, more helpfull in this context. He left China in A. D. 629 and did not return to his country till A. D. 648. He presents a graphic account of this temple. When he came to the Bodhi Tree he found it enclosed with high and strong brick walls. Referring to the boundaries he says that the main gate opened towards the Niranjana river in the east, the south gate was connected with a beautiful flower tank, the north gate led to the Mahabodhi Samgharam constructed by a king of Sri Lanka, and the west limit was a natural defence. He also refers to a number of topes and shrines, quite close to each other as well as to the Bodhi Tree, constructed as memorials by sovereigns, high officials, and nobles of India, who were pious Buddhists. In the centre of the Bodhi Tree enclosure he noticed the Vijrasana and to the east of the Bodhi Tree he saw a temple about 160 feet in height. This temple was built of brick and coated with lime and had tiers of niches with gold images. The four walls of the temple were adorned with exquisite carving of pearl strings and genii, and on the roof was a gilt copper *amalaka*. On the eastern side of the temple there were three interconnected halls all beautified with precious objects and a passage through them communicated with the inner chamber. Hieun-Tsang also refers to a host of other monuments that he came across at Bodh-Gaya.[17] It is certain, therefore that by the beginning of the 7th century A. D. the Mahabodhi temple had come into existence. That the Chinese pilgrim saw the same temple which stands to-day is abvious from the following comparison made by Cunningham between Hieun Tsang's description and the details of the modern temple structure:[18]

(i) The dimensions of the two are almost the same ; the present structure is 48 feet square at its base and 170 feet in height, a dimension which almost tallies with Hieun-Tsang's account. It is interesting to note that in 1861, when the temple was fully exposed. its height was exactly 160 feet, and the height rose to 170 feet only after the repair of its pinnacle.

(ii) Almost in tune with Hieun-Tsang's description it is built of bluish bricks, with a coating of plaster.

(iii) The four faces of the temple present several tiers of niches, rising one above the other, each of which, no doubt, once held a Buddhist figure as described by Hieun-Tsang. By the time of Cunningham, however, only three figures remained.

(iv) The entrance on the eastern side, not mentioned by Hieun-Tsang, was certainly a later addition to the original construction, for its brick-courses do not correspond with those of the main body of the temple . Otherwise, the description of the Chinese traveller about the boundaries of the temple is perfectly in consonance with the modern temple-complex.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

The accounts of Fa-hsian and Hieun-Tsang positively suggest that the Mahabodhi temple was built between *c.* A. D.420 and *c.* A. D. 600 i. e, after Fa-hsian's departure and before Hieun-Tsang's arrival. In this context, it is revealing to note that the earliest available record pertaining to the repairs of the Mahabodhi temple belongs to the 6th-7th centuries A. D.[19] Most probably the repairs had been undertaken before Hieun-Tsang's visit because his description of the temple hardly suggests any need for repairs or rennovations. Thus, the latest date limit of the repairs can be put at *c.* A. D 625. It is a common knowledge that any strong structure requires repairs not before a hundred years or so. This will imply that the original temple must have been constructed around A. D. 525 or so. This is a date which will seem logical from a number of counts. When Fa-hsian came to India he saw the whole area full of forests in the first quarter of the 5th century A. D., and one can presume that any worth while constructional activity on such a spot could not have been undertaken and completed immediately after Fa-hsian's departure; this situation makes our dating quite plausible. Secondly, the important Gupta monarchs were all followers of Brahmanical religion and therefore, the construction can not be attributed to their initiative. Obviously when the Gupta empire had completely weakened after A. D. 500, the temple might have been constructed. This is, however, not to suggest that temples are built only through royal initiative; but it is certain that such important temples could not have been constructed without explicit royal consent at least. Finally, if one goes by the history of Indian temple architecture, it would seem that such temples could have been constructed only towards the end of the Gupta period, i. e. around the date suggested by us. Thus, the main Mahabodhi temple seems to have been built towards the beginning of the 6th century A.D. and a working date around A. D. 525 may be suggested for the same. Apparently the construction of the temple was preceded by two phases of structural activities near the Vajrasana first during Ashoka's reign and second during 1st century A. D.

REFERENCES

1 B. M. Barua, *Inscriptions of Ashoka*, pt. ii (Calcutta, 1945), p. 186. 2 XX. 1. 3 R. K. Mookerji, *Ashoka* (Delhi, 1955), p. 149. 4 V. 173. 5 R. K. Mookerji, *op. cit.*, pp. 149-50. 6 *Buddha Gaya Temple : Its History* (Buddha Gaya, 1981) ,p 11 7 Ashoka's association with the temple has been mentioned in a hymn of Chinese pilgrim Hasia-pias (A.D. 1021) and a late Burmese inscription. Even Hsuan-Tsang credits him with the erection of a ten feet high stone boundary wall around the Bodhi Tree. 8 *Op. cit*, pp. 11-12. 9 A. Cunningham, *Mahabodhi or the Great Budhist Temple under the Bodhi Tree at Buddha-Gaya* (London, 1892), p 5. 10 D. K. Barua, *op. cit*, p.12. 11 *Gaya and Buddha-Gaya*, Vol. II (Calcutta 1934), p. 40. 12 A. Cunningham, *op. cit*, p. 15. 13 *Ibid.*, p. 20., 14 B. M. Barua *op. cit.*, p. 70. 15 *Op. cit* pp. 18-21. 16 James Legge (tr.), A *Record of the Buddhistic Kingdoms: Being an Account by the Chinese Monk Fa-Hien of his Travels in India and Ceylon (A.D. 399-414) in search of the Buddhist Books of Discipline* (New York, 1965), pp.87-90. 17 T. Watters, *On Yuan Chawang's Travels in India* (A. D. 629-645) (Delhi, 1965), pp. 110-138. 18 A. Cunningham, *op. cit*, p. 18. 19 B. M. Barua, *op. cit*, p. 68.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

PARVEZ AKHTAR

SCULPTURES OF GAYA

Sculpture has been regarded as the highest expression of human feeling. An artist, according to his ability and imagination can express his feeling blended with beauty and aesthetics. Gaya has been one of the most prominent, creative and radiating centres of Indian History and Civilisation from the very early times. The region has contributed considerably in the field of artistic pursuits too. Large number of sculptures have been found scattered all over the region which demonstrate different modes of expressions and the artistic genius of the anonymus artists of Gaya. These sculptures reflect the contemporary religious beliefs. Here an attempt has been made to discuss in brief the metal and stone sculptures of Gaya with a special reference to the recent discoveries.

The beginning of artistic activities in Gaya can be traced back to the Mauryan period. However, the paucity of Mauryan specimens is noteworthy. Except a crystal human figure and a terracotta dancing female figurine, both from Sonpur, and lustrous polish of Barabar-Nagarjuni hill caves, nothing could be assigned definitely to the artistic pursuits of the period.

The Shunga period witnessed the brisk artistic activities. Bodh Gaya was one of the main centres of art. The low relief carved on the railings at Bodh Gaya has been provided with the carvings representing incidents connected with the life of Buddha and the *Jataka* stories. The overall treatment of these stories is very impressive and shows a rare kind of clarity. One of the reliefs shows the Bodhi Tree surrounded by a railing. Another relief represents Surya, standing on a one-wheeled chariot drawn by four horses. A number of *Rashis* has also been found on Bodh Gaya railings. Both these examples demonstrate that Bodh Gaya was also an important centre of Solar cult. Other notable figures include winged animals, fish-tailed human being, yaksha, the scene showing Gajalakshmi, tree nymph, etc.

The art specimen of the Kushana period are quite a few in number not only in Gaya region,, but in the whole state. A trio of Vasudeva, Balarama and Ekanamsha, found from Devangarh (Nawadah district and preserved in Patna Museum) may be noted here. All the three images are massive in appearance. The two-armed Goddess is

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

standing erect on a pedestal and her right hand is shown in *abhaya mudra*. Baladeva has also two hands, the right hand in *abhya mudra* and the left one holding a plough besides a canopy of a seven hooded serpent over his head. Vasudeva, who is four-armed, is wearing a *mukuta*. He is holding a *gada* in the upper right hand while the upper left hand holds a *chakra*. The lower right hand is shown in *abhaya mudra* and the lower left hand holds a *shankha*.

It is interesting to note here that the Mathura school of sculpture specialised in carving out the images of Buddha in anthropomorphic form but surprisingly enough Bihar, the land of Buddhism, did not furnish a single representation of the Master in human form which can be dated in the Kushana period. It seems most probable that the Buddhism in Bihar was not influenced by the movement of the anthropomorphic worship of the Master. They were staunch Hinayanists and still worshipped the Buddha in symbolic form.

The age of the Imperial Guptas ushered in a new era in the history of Indian art. The sphere of the Gupta art embodying the high ideal of the Sarnath school spread far and wide in the east. Both Brahmanical and Buddhist images were made during the period. Besides Gaya and Bodh Gaya, other important centres were at Pachar in the Gaya district and Aphsad, Mahrawan and Devangarh in the Nawadah district.

A huge *Varaha* figure and stucco pannels depicting Ramayanic scenes, both from Aphsad, are well-known. Other Brahmanical images include those of Shiva linga and Indra from Gaya; Revanta, Brahmani and Kaumari from Pachar (Gaya); Ganga and Yamuna on the door-jambs from Devangarh (Nawadah) and Dancing deity from Maharawan (Nawadah).

The Shiva-linga has the human face of Shiva carved boldy on one side with the Shiva-head having the hair tied up into a *jata*. The image of Revanta is elagantly carved. The deity wears a beautiful headdress and his curly locks flow on the shoulders. An umbrella over his head held by an attandant has a flying banner.

It is worthwhile to mention here the figure of Indra in the Vishnupada temple. The image is represented as seated in the *ardhaparyanka* pose with the left leg folded and placed on the seat and the right leg pendent. The right hand is shown in the *varada mudra*, whereas the left hand is placed on the thigh. The throne is held up on the back of a pair of small sized elephats standing on the either side of the seat facing towards the left and the right.

One of the monumental art pieces of the period is a sculpture representing two dancers on two sides of a wheel. The figures are carved out of a circular sand stone, looking like a wheel of a chariot. The figures are very graceful and full of vigour and life.

The images of Buddha and Bodhisattavas made their appearence during the Gupta period in Gaya region.

Bodh Gaya has a proud privilege to produce the earliest datable sculpture of the Buddha, now in Indian Museum, Calcutta. The image which contains a date in the year 64 is slightly larger than the life size. It has been represented seated in *padmasana* with left hand, now broken, appearing to have been raised in the *abhaya mudra*. The upper garment covers the left shoulder only. The

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

figure is quite massive in its proportions with a full belly and expansive chest, and a large heavy head. The head is bent slightly downward and the eyes are closed. This image set the pattern for the evolved and distinctive Buddha figures throughout Asia.

The *Jataka* scenes have also been depicted on some of the sculptured pannels. One such pannel at Bodh Gaya represents the *kachchhapa Jataka*. The figures are well proportioned within the small space of the carving.

A new epoch started in the realm of art with the advent of the eighth century which has bequeathed to us a number of images in stone and metal. The period between the 8th and 12th century witnessed the establishment of a new school of sculpture in Bihar with Gaya as the focal point. It may be termed as the Magadha school of sculpture. These sculptures adorn the museums at Patna, Gaya, Bodh Gaya, Nawadah, Calcutta etc.

The stone sculptures of the period in Gaya, like their counterparts in the other parts of Bihar, are generally carved out of the black basalt. They are carved on stelae in high reliefs with a few exception where images have been modelled fully in the round. During the period, the images were made exceedingly beautiful and highly charming almost to the point of sensuousness. The ornamentation became gradually lavish and sumptuous and accessories exaggerated to the utmost.

Numerous images of the Buddha, besides representing the main figure, also depict principal events and miracles connected with Master's life. Besides the Buddha images in various poses, a number of Boddhisattvas and Taras have also been found from different parts of Gaya. An image of Aprajita is interesting (now in Gaya musem) in which the deity has been represented as humiliating Ganesha.

The Brahmanical images include the figures of Vishnu, Shiva, Harihara, Surya, Uma-Maheshvara, Saptamatrikas, Kubera, Agni, Dikpalas, Sraswati, Durga, Ganesha, Chamunda, Bhairva, Lakulisha and a host of other divinities.

Jaina images are very rare in this area. Mention may be made of a life-sized figure of Parshvanath now in the Naradah Museum, Nawadah. It is a brilliant example of contemporay art.

Recently, three images of Kamavdeva have been found from Dabthu (Ghosi), now is Gaya Museum, in which the main figure is accompanied by Rati and Trisha.

The bronze images of the Pala period are exceedingly beautiful and charming. The artists fallowed the technique of *cire perdue* or *lost-wax* proces. Bronze figures have been found at Kurkihar and recently at Jaipurgarh.

Majority of the images are Buddhist but there are also some Brahmanical images. Buddha, Maitreya, Avolokiteshvara, Manjushri, Tara, Paranshabari, Hariti, Shadakshri-Lokeshwara are among the Buddhist deites, while among The Brahmanical deirtes, Vishnu, Balarama, Uma-Maheshvara and Ganesha may be mentioned.

Buddha has usually been shown either standing on the pedestal in abhaya pose or seated on it and displaying the *bhumisparsha mudra*. Amongst the Bodhisattavas, Avalokiteshwara was very popular. A four-armed Avalokiteshwara from Kurkihar is

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

noted for its sensuous modelling and contemplative serenity. Hayagriva from the same place, perfectly modelled in the round, is a masterpiece of the period.

The image of Mahashri Tara from Jaipurgarh, now in Gaya Museum, is another master-piece. The figure is shown in *lalitasana* and both the hands exhibit *dharmachakra paravartana mudra*. The deity is decked with a beautiful crown and usual ornaments. Another rare image from the same place is of Sadakshri-Lokeshwara. The four-armed principal figure seated in *dhyanasana*, holds a lotus in the left hand and a rosary in the right. The other two hands are in *anjali mudra*. To his right is Manidhara and to the left is Sadakshri Mahavidya with identical features.

It may not be out of place to mention the discovery of a miniature Mahabodhi temple from the same place. The sanctum possessed the depiction of the Buddha in *bhumisparsha mudra*. There are niches on all the three sides which contain figures depicting birth-scene of the Buddha, the Budhha in *bhumisparsha mudra* and *dharmachakra mudra* respectively.

Of the Brahmanical images, a four-armed image of Balarama came from Kurkihar. The two back hands of the deity hold ploughshare and club. One of the right hands is broken while the other probably shows a sweet ball and a wine cup. It is an elaborate piece of bronze casting.

Some of the bronze sculptures of this period show beautiful gold or silver gilding. These are greatly admired for their artistic values.

It appears that the history of sculpture in Gaya region beginning from the Mauryan period and continuing upto the 12th century A.D. forms a brilliant chapter in the history indicating the great height to which artists of this area were capable of rising.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

NARESH BANERJEE

GAYA — CENTRE OF A TOURIST COMPLEX

Gaya as centre of a tourist complex needs to be rightly projected. That its importance is not limited to its being the seat of ancestor worship or to being close to Rajgir, Bodh Gaya and Barabar hills, deserve attention. The present study contemplates to list out more such places in and around Gaya which are no less fascinating and attractive.

The travellors look for informations. And many of them who come from not-so-affluent section of tourists, like to spend the holidays at peaceful and quiet places which are at the same time less expensive. Religion, recreation, knowledge and culture have proved major issues influencing the behaviour and itinerary of the tourists. An average travellor wants cheap and comfortable accomodation, timely medical service, comfortable transport facilities and sympathy from the local people. Small places having the right type of tourist potential often suffers from such maladies that make the visitor shaky and unwilling.

The tourist industry in the country in general suffers from bad planning. Large number of art galleries and museums have been set up at one place which already enjoys the privileges of being an important city. In Delhi, we have 22 such important art galleries and museums. Their number is 10 in Bombay, 12 in Calcutta and 5 in Madras. A casual visitor can do no justice with such places by going round all the sites. How small places have proved alluring for the world tourists can be known from a decade old records. Denmark, about 70 times geographically smaller, had attracted 40 times more number of tourists than India. Switzerland, 70 times smaller and Hawaii, 500 times smaller, attracted 17 and 8 times more number of world tourists. Evidently, size of a country is not the factor that influences the tourist draw. So is the case with the cities or villages in a country.

In 1977, India shared 0.27 percent out of 2450 lakh of world tourists. The number has grown by 7 times during last 20 years.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

However the income from world tourists has increased far more, by about 112 times. And we had spared only 6 percent of this earning for the promotion and growth of tourism industry. A new dimension in our tourist policy has to be added.

The old district of Gaya, created in 1865, had 4 sub-divisions - Gaya Sadar, Aurangabad, Nawada and Jehanabad. The status of Nawada and Aurangabad was raised to the level of districts in 1972. And the same geographical area has come to be known as the Magadh Division from May 18, 1981..

For the study of tourist potential, we have not confined our investigation within the limit of this area. Some places from the adjoining districts of Nalanda, Hazaribagh and Palamau have been included keeping in view their proximity to the city of Gaya, as well as, their locations which form a cluster so much required for promoting a tourist complex.

The Division itself is bounded by the high lands of Chhotanagpur plateau on the south and south east. The north is alluvial plain but have several low ranges of hills or isolated peaks presenting a landscape of eternal beauty. The waterfalls of Ka kolat, 16 Kms. south east of Nawada, and that of Hariokhar, 20 Kms. south of Bhalua, are picturesque and very beautiful. The rivers with few exceptions are hill streams taking their rise in the highlands of Chhotanagpur plateau and flow accross the area from south to north. Many of them, including the Chanpi hill stream, 10 Kms. south of Bhalua, excel as ideal picnic spots. The tourists have used the hot water spring of Rajgir, 68 Kms. east north of Gaya and that of Surajkund, 16 Kms. east south of Barhi, as health resorts. The river Phalgu flowing through Gaya is sacred to the Hindus and it is the first holy site visited by the pilgrims who come to Gaya for offering oblations to their ancestors.

The nature in the region is charming. The low thorny scrub-wood and masses of cactus, the flowering shrubs and screepers, the post-monsoon graceful festoons of spiraea on the peaks and hill ranges and the brushwood under the hills passing into submontane forest have proved fascinating for the lovers of nature. The isolated trap rock hills dotted over many parts of the region continue to be favourite resots for the wild animals and game birds. The Bhalua sanctuary, about 50 Kms. south east of Gaya, and the national parks of Betla (95 Kms. south from Daltonganj) and Hazaribagh (31 Kms. south west from Barhi) have already proved major attractions for the tourists.

Gaya as centre of tourist complex has to offer infatuating spots. The Nava Nalanda Mahavihara, 13 Kms. north of Rajgir, and the Magdh University at Bodh Gaya are centres of study and research where scholars from different parts of the world have assembled to gain knowledge. The Bihar Government museums at Gaya and Nawada and the Archaeological museum at Bodh Gaya display such cultural properties that throw unique light on the cultural history of the region. The Nalanda ruins, the Rajgir hill top temples, the Monasteries of Bodh Gaya, the water temple at Pavapuri, the rock cut caves at Barabar and Sitamadhi, the forts at Tikari and Daudnagar, the Hindu temples at Deo and Konch, the Mosques at Daudnagar and Daryapur Parvati, the Stupas at Kurkihar and

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Bakraur-all have their own fascinating stories to tell the visitors.

Gaya is centrally connected with the major cities of India, The National Highway No. 2 (G. T. road) covers 110 Kms, and the Ranchi Patna Highway No. 33 covers about 50 Kms. within the ivision. The state transport net work connects Gaya with 75 important places in Bihar. The city enjoys good railway connection and the Grand Chord section of the Eastern Railway brings Calcutta and Mughulsarai nearer to Gaya. The Indian Airlines will shortly introduce feeder service via Gaya.

The city has a number of dharmasalas, rest houses and government bunglows to offer accomodation. The weather is rich from October to March in the whole region.

A brief note on the important monuments of Magadh Division and on some interesting sites beyond the bnundary might help the visitors in finalising their itinerary.

Mahabodhi Temple- at Bodh Gaya, about 9 Kms. south from Gaya, is believed to be more than 1300 years old. The main shrine chamber af the temple measures 47 feet 3 inches by 48 feet 8 inches externally and 20 feet 4 inches by 13 feet internally. The sanctum inside is double storied and has a vaulted roof. It is 180 ft. high and the slender pyramidal tower springs from a square platform, on the four corners of which are similar towers of smaller size. At the western wall of the sanctum is an alter upon which is placed ihe principal image, a large medieval statue of Buddha.

Other places of interest at Bodh Gaya include the monasteries of Tibet, Japan, Thailand, Burma and China; Bodhi Tree; Vajrasana; Stone railings; Jaiprakash Udyan; Birla mandir; Buddha pokhar.

Vishnupada Temple—in Gaya, the most sacred shrine for the Hindus. The temple has a sanctum, a pillared hall infront and an open courtyard all around. The octagonal sanctum measures 38 feet externally and the pyramidal tower over it is 100 feet high. The hall 58 feet square, is supported on 8 rows of pillars clustered in groups of 4. The central dome is formed by overlapping stones. Inside the temple is a footmark in the rock, larger than human size, believed to be of Vishnu. The temple is built in grey colour granite stone and is believed to have been erected by the Marattha Rani Ahilya Bai Holkar of Indore at the end of 18th century.

Brahmajoni hill—in Gaya, 450 feet high; at the top is a small natural fissure in the rocks looking like a symbol of Yoni or the womb Close to the summit has a statue of Brahma placed on a pedastal. The temple is believed to have been erected in 1633. The long flight of stone steps to the south east of the hill were erected by the Maratha Deva Rao Bhao Sahib in 1869.

Ramshila hill—in Gaya, 372 feet high; has a temple containing a Lingam called Pataleshwara Mahadeva and small figures of Siva and Parvati. The erection period is believed to be 1014 A. D. The upper portion of the temple has been constructed in recent years. The hill can be approached by a flight of stone steps.

Pretshila hill - in Gaya, 540 feet high ; is the hill of ghosts and is sacred to Yema, the Hindu God of hell. At the top is a small temple dedicated to Yama. The shrine contains a rude piece of rock before which

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

the pilgrims offer pindas. The long flight of stone steps are believed to have been laid in 1774.

Barabar hills—about 24 Kms. north of Gaya and about 10 Kms. from Bela railway station, has 4 rock cut caves, believed to have been excavated during the reign of Ashoka. The hills have been identified with the Gorathagiri mentioned in Mahabharata. Karna Chaupar, the north facing cave has single chamber measuring 33 feet 6.5 inches by 14 feet with a vaulted roof 6 feet 1.5 inches at sides and 10 feet high in the centre. The interior is highly polished. The second cave, known as Sudama cave, faces south and has 2 chambers. The inner one is circular, about 19 feet in diameter. The outer chamber is 32 feet 9 inches by 19 feet 6 inches. Both have vaulted roofs. The interior bears high polish. Similar to this is the Lomasrishi cave facing south and having 2 chambers. The outer one is 32 feet 4 inches by 19 feet 4 inches and the inner one is 14 feet 3 inches by 17 feet. Both the interior and outer surface is rough and at places have chisel marks. Excavated on a granite boulder is the Viswa Jhopri cave facing south. Its outer appartment is 14 feet by 8 feet 4 inches. With a flat roof the inner circular room measures 11 feet in diameter. The interior is unfinished but the outer part is polished. The caves belong to 3rd century B. C., excavated during the reign of Ashoka.

About a kilometre east are the caves in the Nagarjuni hills. The Gopi cave in the south, at a height of about 50 feet above plain, has an oblong chamber measuring 44 feet 7 inches by 19 feet 2 inches. With a vaulted roof its central chamber is 10 feet high and the walls at sides are 6 feet high. The interior is polished. The other 2 caves here are excavated in a low rocky ridge on the northern side. The westward cave is Vadathika cave, the passage measuring 6 feet 1·5 inches high, 7 feet 2 inches long on northern side and 5 feet 9 inches long on southern side. The cave measures 16 feet 9 inches by 11 feet 3 inches and its walls are curved. The height at the centre is 7 feet 8 inches. The east side cave has one chamber measuring 16 feet 9 inches by 11 feet 3 inches. It is known as Vapi or Vapiyaka cave. The roof is vaulted and the side walls measure 4 feet 9 inches and the central portion is 7 feet 5 inches high. These caves were excavated during the reign of Dasarath (about 231 BC), grandson of Asoka.

Apsad- in Nawada, 9 Kms. north from Warshaliganj, has the Vishnu temple and a religious monastery built about the year 600 A. D. by the mother of Adityasena, a king of later Gupta period. It is believed to be an important Brahmnical site, first noticed by Major Kittoe in 1847.

Cheon- in Aurangabad, 5 Kms, south east of Rafiganj railway station, known for the Jain rock cut cave and the ruins of a Saiva temple. It is believed to have been built when the Umga temple was constructed,

Umga- in Aurangabad, 14 Kms east of Deo, is known for the Vaishnava temple measuring 68 feet 6 inches by 53 feet and about 60 feet high. It is built of square granite blocks without the help of cement. It was probably erected before 1439 A.D. Over the entrance doorways, pillars and archives were extracts from the holy 'Koran' and the word 'Allah'. The extracts were scratched.

Deo- in Aurangabad, 10 Kms. south east, has famous Surya Mandir believed

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

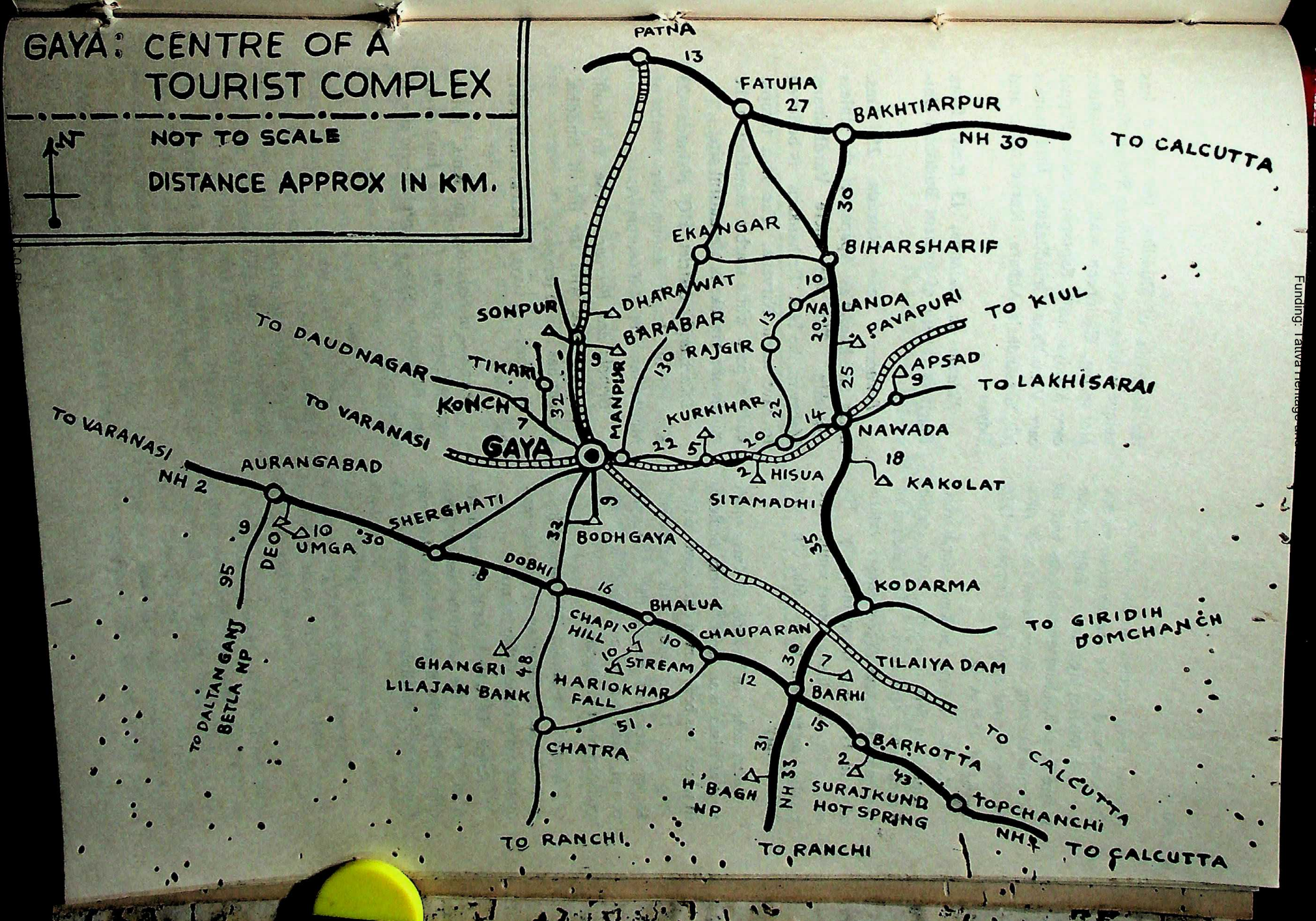
GAYA: CENTRE OF A TOURIST COMPLEX
NOT TO SCALE
DISTANCE APPROX IN KM.
N
PATNA
13
FATUHA
27
BAKHTIARPUR
NH 30
TO CALCUTTA
30
EKANGAR
BIHARSHARIF
10
NALANDA
PAVAPURI
TO KIUL
SONPUR
DHARAWAT
BARABAR
130
RAJGIR
13
20
TO DAUDNAGAR
TIKARI
9
MANPUR
25
APSAD
9
TO LAKHISARAI
KONCH
7
32
KURKIHAR
22
14
NAWADA
TO VARANASI
GAYA
22
5
20
18
TO VARANASI
NH 2
AURANGABAD
2
HISUA
KAKOLAT
SITAMADHI
SHERGHATI
9
32
BODHGAYA
35
9
10
30
DEO
UMGA
95
DOBHI
8
16
KODARMA
BHALUA
TO GIRIDIH
DOMCHANCH
CHAPI HILL
10
10
CHAUPARAN
10
STREAM
30
7
TILAIYA DAM
TO DALTANGANJ
BETLA NP
GHANGRI
48
LILAJAN BANK
HARIOKHAR FALL
12
BARHI
51
15
BARKOTTA
TO CALCUTTA
CHATRA
31
2
43
H'BAGH NP
NH 33
SURAJKUND HOT SPRING
TOPCHANCHI
NH 7
TO CALCUTTA
TO RANCHI.
TO RANCHI

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

to have been erected around 1450 A. D. The courtyard of the temple measures 300 feet. It is 100 feet high, and is built of cut to size finished square stone blocks with an umbrella like top. Inscriptions found gave the dates of erection of the temple as 1236 A. D. and 1548 A. D.

Konch- in Gaya 30 Kms. north west, 7 Kms. from Tekari, has the Saiva temple Koncheswara Mahadeva. The sanctum of the temple measures 28 feet square externally and 11.25 feet square internally. The roof inside looks like a tunnel vault. The erection dates given varies- 6th, 8th and 15th century.

Sitamadhi- in Nawada, 10 Kms. south west of Hisua, is an isolated rocky boulder, in which has been carved out a cave 16 feet long and 11 feet wide with high polish. It was excavated during the Mayuryan period, and can be compared with the polished caves in Barabar.

Sonpur- in Gaya, 5 Kms. west of Bela, a site famous for bringing to ligt the remains of early chalcolithic culture.

Rajgir—in Nalanda, 64 Kms east north from Gaya, is the site of the ancient kingdom of Rajagriha, flourished long before the foundation of Pataliputra. Associated with the activities of Buddha, the place has unique visiting spots including Shanti Stupa, Hot spring, Cyclopean wall, Son Bhandar cave, Maniyar math, Saptaparni cave, Peppal cave Venu Vana, Griddhakuta, Bimbisara's jail, Jarasandha's Akhara, Karnel tank, and Udyan

Nalanda- in Nalanda, 13 Kms. from Rajgir, is the site of ancient Buddhist University.

Pawapuri— near Nawada, 25 Kms. north, also known as Apapapuri, the sinless township. The site where Vardhamana Mahavira, the 24th Tirthankara is believed to have taken Nirvana. The Jain temple built of pure white marble standing in the middle of a big lake is a beautiful site.

Biharsharif— district HQ Nalanda 23 Kms from Rajgir, known for tombs of Muslim saints of 14th century A. D.

Uruvela and Bakraur— close to Bodh Gaya, associated with the life of Buddha. Bakraur has Hindu temples.

Sherghati – in Gaya, 34 Kms, south west, has a fort.

Jethian— in Nalanda, 16 Kms. south west of Rajgir, known for stone built drain and Rajapinda cave. A prehistoric site, it is believed.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

PRANESH KUMAR SINHA

KURKIHAR IN ARCHAEOLOGICAL PERSPECTIVES

Kurkihar, one of the most imposing archaeological sites of Gaya region, still awaits archaeologist's spade. The village is situated about 5 Kms. north-east of Wazirganj and about 25 Kms to the east of Gaya. The antiquarian remains of the place was first brought to light by kittoe in 1847. He collected "10 cart loads of idols".

Though, the site is popularly known as Kurkihar, the true name of the place is said to be *Kurak-Vihara* which Cunningham believed to be a contracted form of *Kukkuta-pada-vihara*, since the Sanskrit word *Kukkuta* is the same as the Hindi *Kukkar* or *Kurak*. A large *vihara* of this name is mentioned by Hiuen Tsiang as existing near Pataliputra or Patna. Cunningham would, however, connect the ruins at Kurkihar with the Kukkua-pada-giri of the Chinese Pilgrims. According to Buddhist tradition it was a scene of some of the miracles of Maha-kashyapa. However, identification of *Kukkuta-pada-giri* is still shrouded in obscurity.

Fahian records the site as the scene of some of Maha Kashayp's miracles and aventually of his *nirvana* or death. Fahian's account is as follows :— "The great Chia - yeh (Kashyapa) is at present in this mountain. He split the mountain to get in. The place where he entered will barely admit a man. Going down to a great distance there is a niche in which stands a full length image of Chia - yeh. Outside the niche is the place where he used to wash his hands, and the people of the district if they have the headache, use the earth (from that spot) for plasters, and are at once cured. Therefore, since that time there have been Lo-hans on this mountain and when the devotees of neghbouring countries come to make their offerings to Chia-yeh, the lo-hans appear by night to the stead fast once, converse with them, and resolve their doubts, they then suddenly vanish."

The main mound of the Budhhist ruins to the south of village measures about 600 feet square and about 25 feet high which, as seen from Cunningham's sketch plan, includes ruins of a small fort with solid brick walls. It is obviously this mound which Kittoe

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

refers to in his account of the place. He saw here not only the numerous Budhhist images, large and small but also innumerable votive stupas,

He says, there were, in his time, "rows after rows of Chaityas extending north and south for several hundred feet," while in 1872 Broadley was also struck by the varities of the Chaityas of which he had about 25 distinct varieties in his own collection then. Of the images which once belonged to these ruins many are now in Indian Museum Calcutta, as referred to in Anderson's catalogue. According to Cunningham, the mound represents, ruins of a Buddhist *Stupa*, the super structure of which had already been dug away for bricks by the people of the locality. Cunningham suspects that the relic-chamber of the *stupa* had been opened quite early by the villagers and the relics or antiquities, if any, lost for ever.

In course of quarrying at the mound for bricks, a remarkably large hoard of bronzes was discovered all of a sudden in 1930. The find spot is said by Sarswati and Sarkar to be some 25 feet below the top of the mound. According to K. P. Jaiswal, in all 230 pieces were received in Patna Museum including "Pedestals, conches, miniature crystal, *stupas*, bells, potteries etc. The actual images are 150. Three of the images are plated with gold. Although there are a few pieces which are Pre-Pala, the collection as a whole is Pala". The images are mostly Buddhist and include Tara, Avalokiteshwara, Lok nath, Vagishwara and others. As many as 51 images represented the Buddha only. Hindu images, only 6 in number, are represented by Vishnu, Shiva - Parwati, Surya and Balarama.

Cunningham refers to a small mound, about 120 feet square to the north of the village. It is known as *Sugatghar* i. e. "house of *Sugata*", one of the well known titles of Buddha. This mound may represent the *Sugata-Gandha-Kuti* of the inscription published by Cunningham. Cunningham considers Kurkihar as "perhaps the largest place between the cities of Gaya and Bihar". The place occupied a great importance both for Hindus and Buddhists as is evident from images and inscriptions found at the site

It is strange that the ruins of Kurkihar have not been systematically explored or excavated so far. Bloch realised the importannce of the place and the need for systemetic excavation as early as 1902. But it is really very painfull, rather unfortunate, that such an important site is lying uncared and being destroyed by local people. The excavation would help to know more about the metallurgy and casting technique of ancient India, besides anreveiling the nature and character of the buried monument.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

NARESH BANERJEE
NASEEM AKHTAR

MAGADH UNIVERSITY: VENUE OF CONGRESS

About 20 years— from March 1,1962 to December 28, 1981 is not a long journey in the life of an institution. During this small run, Magadh University has achieved its well earned distinction. Establishment of this abode of higher learning and research at Bodh Gaya - a place famous for love and peace - has further enlighted the spirit of academic brotherhood in this region. But for this university, it would not have been possible to organise such gala meets.

Gaya has rather a brief history of the development of modern system of education, vis-a-vis, management of educational institutions. During the first half of the 19th century education was left to be sponsored under private entrepreneurship. Giving an account of educational system then prevailing Buchanan Hamilton wrote in 1812, there is no public schools, and there is no Guru or teacher who is not a servant to some wealthy man. The Gurus however, are allowed to instruct the children of the neighbours and a hut is built for a school house without the village, lest the Guru have frequent opportunities of seeing women.

The first English school set up by the Government in 1845 was followed by the establishment of 15 more vernacular schools during 1855-56 with 574 students receiving instructions. By the end of 1919, Gaya had 4 English high schools preparing 1123 students for the entrance examination of the Calcutta University. About 24 years later was set up the Gaya College as a coeducational institution for teaching up to degree standard. This college played a prominent role in the setting up of this university in 1962.

In 1959, there were two universities in Bihar. While Patna was a teaching cum residential university, Bihar was the only affiliating university functioning from Patna. Then came the universities of Ranchi and Bhagalpur in 1960. The character of the Patna University was changed and the colleges around Patna Division were affiliated to it.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Meanwhile, people of this area were demanding a separate university for the Magadh region, with headquarter at Gaya. The Mahants of Bodh Gaya and Budhouli declared their willingness to donate 300 and 100 acres of land respectively for the proposed university. Gaya College governing body in a resolution in July 1961 offered to place at the disposal of the Government its entire properties including 75 acres of land. The generous managing authorities of the famous Mannualal Library promised a gift of 16,000 rare books and journals and another 500 volumes of rare manuscripts. These magnanimous offers made the Government to pass the Magadh University Act of 1961 for the establishment of the Magadh University with headquarter at Bodh Gaya.

The first academic session of the university started in 1962-63 in two rented buildings at mohalla Murarpur. Post graduate teaching was introduced in English, Economics, Geography, History, Mathematics, Philosophy and Hindi. The offices of the university started functioning at the red house near Gandhi Maidan. The university then had 2 constituent and 28 affiliated colleges under its jurisdiction with 22,500 students on the roll.

Meanwhile, plans for the construction of buildings at the site, about 3 Kms. west of the main Mahabodhi Temple of Bodh Gaya, were finalised. The foundation of the campus was laid by Dr. S. Radhakrishnan, President of India, on August 20, 1964. It took more than 5 years to complete the erection of some important buildings and on December 15, 1969, all the offices and teaching departments were shifted to its present campus.

Spread over a vast open land overlooking the Gaya Dobhi Road on the east, the university now has 50 constitnent and 20 affiliated colleges with 91,882 students under its jurisdiction covering the districts of Gaya, Patna, Nalanda, Nawada, Aurangabad Bhojpur and Rohtas. Ten more post graduate teaching departments - Sanskrit and pali, Urdu, Applied Economics and Commerce, Physics, Chemistry, Botany, Zoology, Ancient Indian and Asian Studies, Political Science, and Psychology - have been added during this period. The university has facilities of teaching in faculties of arts, commerce, science, law and medicine. The university library has 140000 books.

The present campus is still developing. Some important blocks which have been constructed include those for the science departments, administration, library, guests, medical services, students, social science departments and language and literature departments.

The university had the privilege of growing under eminent persons as Vice-chancellors. Besides Dr. K. K. Mandal, the present Vice-chancellor, others who were in the university are Dr. K. K. Dutta, Sri Zawar Hussain, Sri Rai Bageshwari Prasad, (acting) Sri B. M. K. Sinha, Sri Gopal Prasad, Sri R. S. Mandal, Sri Sacchidanand Prasad, Dr. Narmadeshwar Prasad, Dr. P. Dayal, Dr. C. D. Singh (acting), Dr. S. K. Prasad (acting), Dr. R. P. Singh (acting), Dr. H. G. Singh and Sri J. C. Kundra.

The university has hosted the meets of the Indian Economic Association and the Indian Zoological Congress in the past.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE

RECEPTION COMMITTEE

Chairman	Dr. K. K. Mandal Vice-Chancellor, M. U.
Deputy Chairman	Dr. S. B. Singh Pro Vice-Chancellor, M. U.
Local Seceretary	Dr. U. Thakur
Local Joint Secretary	Dr. R. N. Prasad

Members

Sri C. M. Jha, IAS
Commissioner, Magadh Division

Sri K. A. Jacob, IPS
D.I.G., Magadh Range

Sri Chunchun Jha, IAS
District Magistrate

Sri Nasim Ahmad, IPS
Police Superintendent

Sri R. N. Sahay
Financial Advisor, M. U.

Sri S. N. Singh
Dean, Students Welfare, M. U.

Sri B. Singh
Co-ordinator,
College Development Council, M.U.

Sri D. P. Verma
Registrar, M. U.

Dr. B. N. Prasad
Head, Hindi Department

Dr. C. N. Mishra
Head, Sanskrit Department

Dr. S. K. Prasad
Head, English Department

Dr. S. M. Hasnain
Head, Urdu Department

Dr. B. K. Lal
Head, Philosophy Department

Dr. N. C. Agrawal
Head, Commerce Department

Dr. H. G. Singh
Head, Economics Department

Dr. R. C. Prasad
Head, Pol. Science Department

Prof. M. Pathak
Head, Geography Department

Dr. A. S. Yadav
Head, Botany Department

Dr. G. P. Singh
Head, Physics Department

Dr. E. B. Singh
Head, Chemistry Department

Dr. S. B. Singh
Head, Zoology Department

Dr. B. K. Singh
Head, Psychology Department

Dr. U. S. Singh
Head, History Department

Dr. B. B. Prasad, Principal
Gaya Colleg, Gaya

Dr. B. Singh, Principal
A. M. College, Gaya

Smt. S. Mahajan, Principal
G. B. M. College, Gaya

Principal, J. J. College, Gaya

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EXECUTIVE COMMITTEE AND OFFICE-BEARERS

IHC 42 SESSION

President : Professor D. C. Sircar

Vice-Presidents : Professor G. H. Khared
Professor S. Gopal

Secretary : Professor Sumit Sarkar

Joint Secretaries : Dr. Aniruddha Ray
Professor M.G.S. Narayanan

Treasurer : Dr. K. M. Shrimali

Members : Professor M. Athar Ali, Aligarh
Dr. Indu Banga, Amritsar
Dr. Santosh Basu, Santiniketan
Dr. Kanailal Chattopadhyay, Calcutta
Professor R. K Choudhary, Bhagalpur
Dr. S. P. Gupta, Aligarh
Dr. Mushirul Hassan, New Delhi
Dr. Suvira Jaiswal, New Delhi
Dr. S. P. Kashyap, Agra
Dr. Chandra Pant, Allahabad
Dr. Sarda Raju, Madras
Prof. Sita Ram Singh, Muzaffarpur
Dr. Tara Saran Singh, Patna
Dr. (Mrs.) A. J Syed, Bombay
Professor Upendra Thakur, Bodh-Gaya
Dr. K. Veerathappa, Bangalore

Presidents :

42nd Session	:	Prof. S. C. Mishra, Baroda
Sec. I Ancient India	:	Prof. B. N. Mukherjee, Calcutta
Sec. II Medieval India	:	Prof. Om Prakash, Delhi
Sec. III Modern India	:	Prof. V. N. Dutta, Kurukshetra
Sec. IV Other Countries	:	Prof. Suryanarayanan, Madras
Sec. V Epigraphy, Historical Archaeology, Numismatics	:	Sri B. K. Thapar, Delhi

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

SUB - COMMITTEE

Co-Ordination Committee

1 Dr. A. S. Yadav
2 Dr. R. C. Prasad
3 All Conveners of the Committees.

Registration

1 Dr. R. N. Prasad
2 Dr. P. C. Roy
3 Dr. Uma Shankar Singh
4 Dr. A. K. Sinha
5 Dr. Banbir Singh
6 Dr. Birendra Prasad
7 Dr. Md. Aquique

Conference Hall and Programme Management

1 Prof. R. K. Choudhary (Convener)
2 Dr. V. K. Thakur
3 Sri Ram Swarup Singh

Sectional Meeting

1 Dr. S. Sahai (Convener)
2 Dr. Y. K. Mishra
3 Dr. M. K. Sharan
4 Dr. Md. Aquique

Book Exhibition

1 Dr. G. P. Singh
2 Sri Rajendra Prasad
3 Sri K. N. Choudhary
4 Sri S. K. Choudhary

Messing

1 Dr. L. N. Gupta (Convener)
2 Dr. R. C. P. Singh
3 Dr. Shyam Sundar Prasad
4 Dr. Kamata Prasad Singh
5 Dr. Deo Mani Prasad
6 Dr. Kamal Kishore Mishra

Accomodation

1 Dr. H. G. Singh, (Convener)
2 Dr. R. C. Prasad
3 Dr. G. P. Singh
4 Dr. E. B. Singh
5 Sri D. P. N. Sharma
6 Dr. I. B. Srivastava
7 Dr. J. P. Singh
8 Dr. V. N. Melhotra
9 Dr. K. B. Mishra
10 Sri R. K. Singh
11 Dr. Kamta Prasad Singh

Excursion

1 Dr. Y. K. Mishra (Convener)
2 Dr. K. D. Prasad
3 Dr. Ram Pravesh Singh
4 Sri L. N. Singh
5 Sri Suraj Kumar Yadav
6 Kumar Devendra Singh
7 Sri Ravi Angshuman

Transport

1 Sri R. N. Sahay (Convener)
2 Dr. Bhagirath Singh
3 Dean, Student welfare, M. U.

CC-0. Bhagavad Ramanuja Nathamuni.

IKG-MoE. Digitization: eGangotri.

General Information

1 Smt. Shanti Singh
2 Dr. Rai Ashwani Kumar
3 Dr. Shashi Awasthi
4 Dr. Bimala Choudhary
5 Dr. Awdhesh Kumar Singh
6 Smt. Shanti Singh
7 Sri Ram Bachan Singh 'Tomar'
8 Dr. Kamta Pd. Choubey
9 Sri Avnendra Kumar Singh
10 Sri Rana Singh
11 Sri Ram Naresh Singh
12 Sri Arun Kumar Mishra
13 Sri Sheo Sankar Rai
14 Miss Sapana Varma
15 Mrs. N. Khair
16 Miss Punam Sinha
17 Sri Basant Kumar Singh

Railway Reservation

1 Dr. Krishna Murari (Convener)
2 Sri Pranesh Kumar Sinha
3 Sri Rakesh Choubey
4 Sri Ram Awadhesh Rai

Railway Reception

1 Dr. R. C. P. Singh (Convener)
2 Dr. M. K. Sharan
3 Dr. Vidya Nand Upadhyay
4 Dr. Surendra Pd. Singh
5 Dr. Rajan Gupta
6 Sri Sunil Kumar
7 Sri Bimal Kishor Mishra
8 Sri Binod Kumar Singh
9 Sri Shiyaram Singh
10 Sri Mithilesh Kumar Tiwari
11 Sri Bikrama Singh

Souvenir

1 Sri Naseem Akhtar (Convener)
2 Dr. N. C. Banerjee

Invitation

1 Dr. A. Tulku (Convener)
2 Sri D. N. Thakur
3 Sri Shyama Kant Jha
4 Sri Kumar Nagendra Singh

Cultural Show

1 Dr. Rameshwar Singh "Kasyap"
2 Sri Rana Pratap Sinha
3 Sri D. P. N. Sharma
4 Sri Shami Khan
5 Sri R. K. Mishra
6 Sri Nalin Kumar Shastri
7 Sri Arun Kumar Singh
8 Sri Kumar Dilip Singh

Publicity

1 Dr. Basudeo Nandan Prasad (Convener)
2 Dr. Purnamasi Rai
3 Dr. N. C. Banerjee
4 Sri Lalit Gyanendu
5 Sri Naseem Akhtar
6 Sri Vijoy Kumar

Archaeological Exhibition

1 Sri Naseem Akhtar (Convener)
2 Dr. Sarjug Prasad Singh
3 Sri Anil Kumar Ojha

Business Meeting Organising Committee

1 Dr. Uma Shankar Singh (Convener)
2 Dr. Kameshwar Singh
3 Dr. K. B. N. Singh
4 Miss Renu Sinha
5 Mrs. Sulochana Srivastava
6 Sri Hari Narain Singh
7 Sri Sheo Shankar Singh
8 Sri Raj Kishore Singh
9 Sri Saroj Kumar
10 Sri Birendra Singh

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Law and Order

1 Sri C. M. Jha, IAS
2 Sri K. A. Jacob, IPS
3 Sri Chun Chun Jha, IAS
4 Sri Nasim Ahmad, IPS
5 Sri R. Tiwari
6 All members of Reception Committeee.

Campus Reception

1 Dr. Bankey Bihari Sharan (Convener)
2 Smt. Bimala Singh
3 Dr. Chitranjan Sinha
4 Dr. Sudarshan Sharma
5 Sri Bhavesh Chandra
6 Sri Raj Kumar Singh
7 Sri Laljee Prasad
8 Sri Arun Kumar Pandey

Medical Aid

1 Medical Officer
M. U. Bodh-Gaya.

Office

1 Sri D. N. Thakur
2 Sri N. K. Upadhyay
3 Sri M. D. Monazir Imam
4 Sri Baraj Mohan Tiwari

Student Members of the Reception Committee

1 Sri Baban Singh
2 Sri Upendra Narain Singh
3 Sri Yogendra Pd. Singh
4 Sri Braj Nandan Pd.
5 Sri Ram Kishore Singh
6 Sri Hirday Narain Singh
7 Sri Raj Kumar Pathak
8 Sri Gopal Sharma
9 Sri Prabhat Kumar Rukhaiyar

Registrar, MU, ex-officio member of all Committees

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute.

MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

GAYA CITY & BODH GAYA ROAD GUIDE

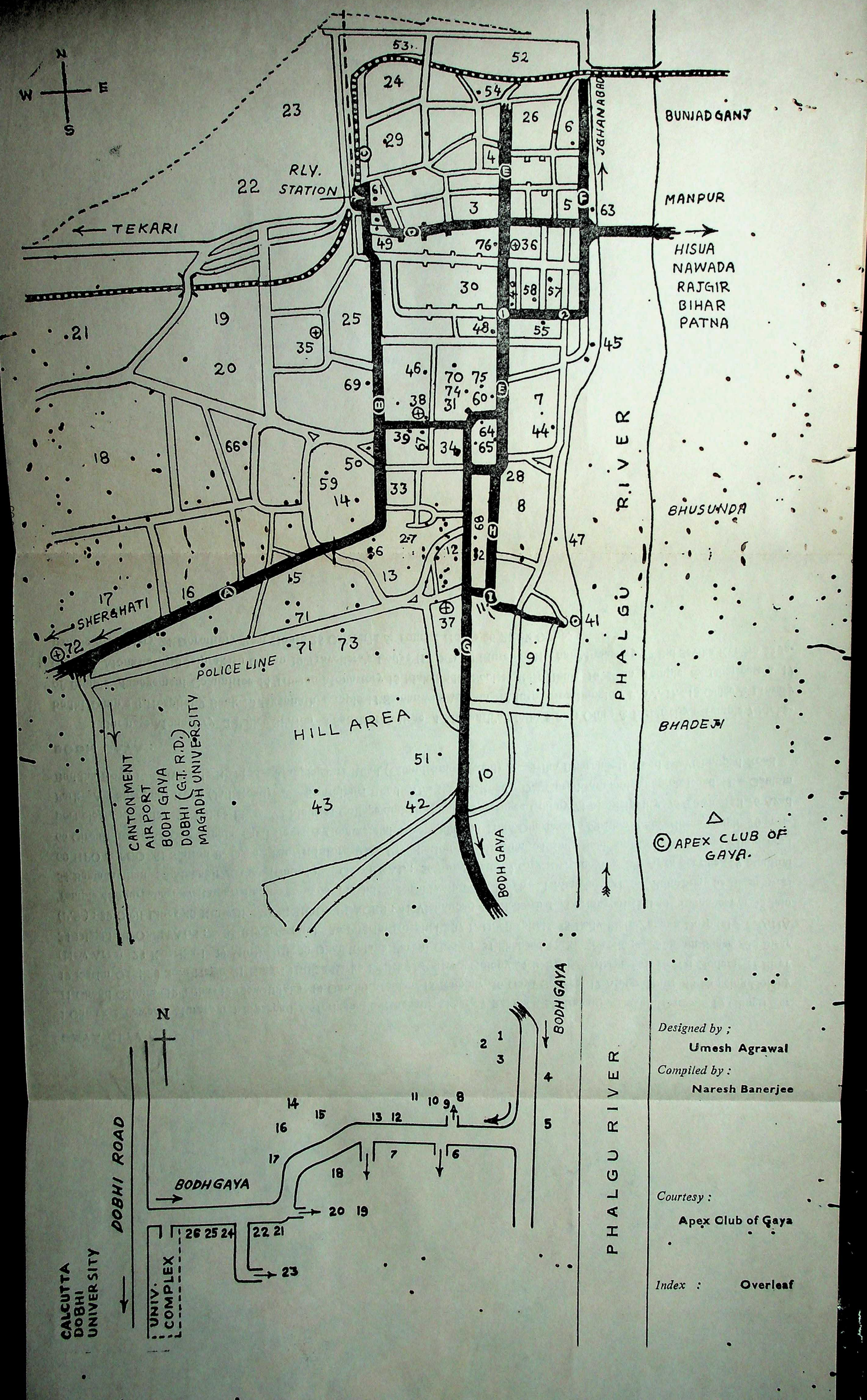

Designed by ;
Umesh Agrawal

Compiled by :
Naresh Banerjee

Courtesy :
Apex Club of Gaya

Index : **Overleaf**

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

...titute, Melukote Collection.

GAYA CITY :

1 Chowk 2 Tower 3 Murarpur 4 Piparpati 5 Moriaghat 6 Panchaiti Akhara 7 Ramna 8 Nadraganj 9 Dakhin Darwaja 10 Ghugri Tar 11 Chand Choura 12 Tilha 13 Gewalbigha 14 Gandhi Maidan 15 Rampur 16 Gaya College 17 Anugrahpuri 18 Housing Colony 19 Karim Ganj 20 Seva Nagar 21 Katari Hill 22 Barka Delha 23 Railway Colony 24 Bairagi 25 Marufganj 26 Nai Godam 27 Bisar (New Area) 28 Koeribari 29 Murli Hill 30 Dhamitola & Purani Godam 31 Shaheed Park. TANK :— 32 Ram Sagar 33 Bisar 34 Digghi HOSPITALS :— 35 Rly. Hospital 36 Pilgrim Hospital 37 I. D. Hospital 38 Lady Elgin Zanana Hospital THANA (P.S.) : 39 Civil Lines 40 Kotwali RELIGIOUS PLACES : 41 Vishnupad 42 Akshaybat 43 Bramyoni Hill 44 Pitamaheswar 45 Jain Temple 46 Durgabari 47 Ramkrishna Ashram 48 Masjid 49 Gurudwara 50 Church 51 Manglagauri 52 Ramshila 53 Bageshwari 54 Bagla Asthan 55 Mahabir Asthan (Chowk) GENERAL : 56 Bus Stand 57 City Rly. Booking 58 Apex Service 59 Stadium 60 HPO & PCO 61 Station P- O. 62 Tourist information Rly. Station 63 Museum 64 State Bank and Collectorate 65 Zila School 66 Circuit house 67 Dak Bangla, Civil Court & Commercial Taxes Office 68 Tilha Dharmasala 69 Bharat Sevashram Sangh 70 Passport clearance office 71 Police Lines 72 Medical College and Hospital 73 Refugee Colony 74 Municipality 75 Town Hall 76 Azad Park A—Sherghati Road (Jail Road) B—Swarajpuri Road C—Station Road D—Gurudwara and Anugrah Road E—Gautam Buddha Road F—Riverside Road G—Manglagauri Road (Chandchoura Road) H—Tilha Dharmasala Road I—Vishnupad Road

BODH GAYA :

1 Burmese Monastery 2 Police Station 3 Sanskrit College 4 Mahanth's Math 5 Post Office & Electricity 6 Temple 7 Mahabodhi Temple 8 Hospital 9 Bank 10 Jagannath Temple 11 Samanway Ashram 12 Inspection Banglow P. W. D. 13 Office & Library of Temple Management Committee 14 Tibetan Monastery 15 Mahabodhi Society Rest House 16 Birla Temple & Dharmasala 17 Chinese Monastery 18 Jaiprakash Udyan 19 Travellers's Lodge (ITDC) 20 Museum 21 Thai Monastery 22 Bal Sevika Kendra 23 Japanese Monastery 24 Dormitory Rest House 25 Cafeteria & Tourist House 26 Block Office.

CC-0. Bhagavad Ramanuja National R
• Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Bhagavad Gita Trust.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

CC-0. Prasanvad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri

CC-0. Bhagavad Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Ramanuja National Research Institute, Melukote Collection.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri.

Funding: Tattva Heritage and IKS-MoE. Digitization: eGangotri